Sri Ram-Charit Manas
—Katha Sudha Sagar—
by
Reverend Sri Kripashankar Ji Ramayani

Founder: Akhil Bhartiya Manas Prachaar Samiti.
Address: Ram Aasraya Bagiya,
Sri Maniram Das ji ki Chawani,
P.O. Ayodhya, Pin-224123
Dist. Faizabad, U.P. India

This holy Book, 'Ram Charit Manas—Katha Sudha Sagar', is based on two nine-day discourses that Swami Sri Kripashankar Ji Ramayani, who was a well-known learned spiritual teacher, preacher, scholar and Master of his time, had given on two separate occasions—once at Chitrakoot Dhaam, and then at Sri Maniram Dasji Ki Chawani at Ayodhya (between 2nd July and 11th July, 2003). He was so renowned for his scholarship and complete mastery of the holy book, the epic Ram Charit Manas of Goswami Tulsidas, that even those who themselves were preachers and teachers in their own right used to listen to him attentively and attend his discourses.

The present book—which literally means 'an ocean of spiritual ambrosia that is contained in the holy book, the Ram Charit Manas, describing the divine life of Lord Ram, an incarnation of the Supreme Being'—has been written and corrected by Sri Kripashankar Ji himself before it was first published in Hindi, the language in which he preached, and which is the national language of India that is widely spoken in the country.

But it is felt that the print edition has a very limited reach and access, and this priceless gem on the holy book 'Ram Charit Manas' should be converted and launched on the internet on this website so that it is made easily available in an ebook format (standard PDF-Acrobat Reader) to everyone who wants to read it in the modern age of internet by way of FREE DOWNLOAD from this website by "clicking at the Download button" attached to it.

For downloading the PDF software if the reader does not have it already, another button is given by clicking which the reader can easily access the software, which he/she can then download and install in his/her tablet, computer or smart-phone.

Following the traditional patters on all stories of the Ramayana, this book is also divided into seven Cantos, known as 'Kaanda'. Hence, we have Baal Kaand, Ayodhya Kaand, Aranya Kaand, Kishkindha Kaand, Sundar Kaand, Lanka Kaand, and Uttar Kaand. The whole original book in Hindi is presented in an ebook PDF format here.

Ajai Kumar Chhawchharia, Ayodhya.

प्रकाशक :
श्रीगंगादास कृपाशंकर सेवा संस्थान
रामआसरे बगिया
श्रीस्वामी मणिरामदासजीकी छावनी
श्रीअयोध्याजी—२२४१२३

☆

प्रथम संस्करण — ११०० प्रतियाँ
फाल्गुन पूर्णिमा—२०६१ संवत्
मार्च २००५

☆

न्यौछावर—एक सौ पच्चीस रुपये मात्र

☆

पुस्तक प्राप्ति स्थान :
श्रीगंगादास कृपाशंकर सेवा संस्थान
रामआसरे बगिया
श्रीस्वामी मणिरामदासजीकी छावनी
श्रीअयोध्याजी—२२४१२३

☆

कम्प्यूटर टाइप सेटिंग :
रवीशचन्द्र शुक्ल
न्यू माधोपुर कालोनी, गोरखपुर

☆

मुद्रक :
राधा प्रेस
दिल्ली

॥ श्रीसीताराम ॥

अनुक्रमणिका

	विषय	पृष्ठ-संख्या
१.	दो शब्द (परमपूज्य श्रीमणिरामदासजी छावनी पीठाधीश्वर श्रीनृत्यगोपालदासजी महाराज, श्रीअयोध्याजी)	ख
२.	श्रीरामचरितमानसका नवाह प्रवचन (जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य स्वामी श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी महाराज श्रीसुग्रीवकिला, श्रीअयोध्याजी)	ग
३.	भूमिका (जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य तुलसी पीठाधीश्वर श्रीरामभद्राचार्यजी महाराज श्रीचित्रकूटधाम)	घ
४.	प्रकाशकीय निवेदन (श्रीगङ्गाशरणजी गुप्त, मन्त्री—गंगादास कृपाशङ्कर सेवा संस्थान)	ज
५.	प्रणति निवेदन (आचार्य श्रीकृपाशङ्कर रामायणी)	ञ
६.	श्रीरामजीकी आरती	ठ
७.	बालकाण्ड	१—१४८
८.	अयोध्याकाण्ड	१४९—३१५
९.	अरण्यकाण्ड	३१६—३६५
१०.	किष्किन्धाकाण्ड	३६६—४१२
११.	सुन्दरकाण्ड	४१३—४५६
१२.	लङ्काकाण्ड	४५७—५०७
१३.	उत्तरकाण्ड	५०८—५४५
१४.	श्रीरामायणजीकी आरती	५४६

नवाहकथाके विश्राम स्थल

पहला विश्राम	४५
दूसरा विश्राम	१००
तीसरा विश्राम	१४६
चौथा विश्राम	२११
पाँचवाँ विश्राम	२६६
छठाँ विश्राम	३५५
सातवाँ विश्राम	४६३
आठवाँ विश्राम	५१५
नवाँ विश्राम	५४५

॥ श्रीजानकीरमणो विजयते॥

दो शब्द

अनन्तश्रीविभूषित पूज्यपाद महान्त श्रीनृत्यगोपालदासजी महाराज पीठाधीश्वर श्रीमणिरामदास छावनी श्रीअयोध्याजी की मङ्गलकामना।

त्रिविधतापसन्तप्त प्राणियोंके लिए भगवच्चरित्र ही सुख, शान्ति प्रदाता है। अनन्त कल्याण गुणगणनिलय भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकारके दिव्यातिदिव्य गुण श्रीभगवान्को प्रकट होनेके लिये विवश कर देते हैं। वेदवेदान्तवेद्य परात्पर पूर्ण पुरुषोत्तम ही श्रीराम हैं।

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥

पुरातनकालसे भगवद्गुण सरोवरमें अवगाहनशील ऋषि मुनि कविजन भगवद्गुणगान कर अपनी वाणीको सफल करते आये हैं। आदिकवि महर्षि श्रीवाल्मीकिजीसे लेकर श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी एवं वर्तमानकालतकके कवि मनीषियोंने अपनेको धन्य किया है भगवद् यश लिखकर। तदुपरान्त उन महनीय मन्त्रों एवं सूत्रोंकी व्याख्या विद्वद्वरेण्योंने की है। उसी परम्परामें आते हैं आचार्य श्रीकृपाशङ्करजी महाराज जिन्होंने श्रीमद्रामचरितमानसपर '**कथा सुधा सागर**' व्याख्याकर भक्तजनोंको परमानन्द प्रदान किया है, जिसमें विभिन्न संस्कृत रामायणों, श्रीमद्भागवत, हनुमन्नाटक तथा एकादश ग्रन्थ एवं रामरसायन आदि सद्ग्रन्थोंके सन्दर्भ देकर सुवर्णमें सुगन्धि ला दी है। सम्पूर्ण भक्तसमाज आचार्यश्रीका सदा ऋणी रहेगा।

नृत्यगोपाल दास
(परमपूज्य श्रीनृत्यगोपालदासजी महाराज)

श्रीरामचरितमानसका नवाह प्रवचन

अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य स्वामी श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी महाराज,
श्रीरामज्योतिष्पीठ सुग्रीवकिला श्रीअयोध्याजी की सम्मति।

लोकमङ्गलकी सर्वतोमुखी पुनीत भावनाका महान् उद्देश्य ही श्रीरामचरितमानसके रूपमें श्रीरामका वाङ्मय अवतार माना जाता है। भगवान् श्रीरामका अवतार जिन परिस्थितियोंमें हुआ था, उस समय सारी मानवीय परम्पराओं तथा नैतिक धार्मिक आध्यात्मिक परम्पराओंको नष्ट करनेवाली राक्षसी प्रवृत्तियों और उपद्रवोंके कारण सारी मानवताका ही अस्तित्व सङ्कटापन्न हो गया था। उसकी संस्थापना ही श्रीरामअवतारका प्रयोजन था; परन्तु कालान्तरमें वैसी ही परिस्थितियोंमें जब देश उलझकर किङ्कर्त्तव्यविमूढ़ बन चुका था तो उस नैराश्यकी भावनामें पुनः अपने तपोबल, दूरदृष्टि और लोककल्याणकी उद्दाम लालसासे ओतप्रोत श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने इस ग्रन्थका प्रणयन करके समूची मानव जातिका महान् उपकार किया है। इस ग्रन्थका जितना भी प्रचार प्रसार होगा वह समाजहितमें उतना ही महान् उपकारक कार्य होगा। हमारे समाजहितैषी विद्वानों, सन्तों और मनीषियोंने इसी कारण यथाशक्ति इसके प्रचारका प्रयास किया है।

अयोध्यानगरी तो श्रीरामकी भी जननी है और यहाँसे ही श्रीरामचरितमानसका भी दिव्य प्रकाश फैला है। श्रीरामचरितमानसके प्रचार प्रसारमें भी अयोध्याने अग्रणी भूमिका निभाई है। यहाँपर अनेक सन्तपुरुषोंकी वाणियोंको सङ्गृहीत करके मानसपीयूष जैसी विस्तृत टीकाओंका प्रणयन हो चुका है। इसी भावनाका दर्शन हमें आचार्य श्रीकृपाशङ्करजीके इस अभिनव प्रयासमें भी हो रहा है। आचार्य शब्दकी सार्थकताको ही चरितार्थ किया है आचार्य श्री ने—

आचिनोति च शास्त्रार्थान् आचारेस्थापयत्यपि।
स्वयमाचरते यस्मात्तस्मादाचार्य उच्यते॥

अर्थात् जो अपने आप शास्त्रोंका अध्ययनादि द्वारा संग्रह करे और तब उस अपने ज्ञानद्वारा लोगोंको उसका बोध कराए और तदनुसार अपने जीवनको बिताए वही आचार्य कहलाने योग्य है। यह सारा दुर्लभ संयोग वर्तमानके घोरान्धकारव्याप्त युगमें भी हमें आचार्य श्री कृपाशङ्करजीमें उपलब्ध होता है।

इस बार वे श्रीरामचरितमानसके प्रचार प्रसारमें सर्वाधिक सहायक नवाह प्रवचनोंकी शैलीको शास्त्रानुसार उपस्थित करके लोकमङ्गलके महान् माङ्गलिक उद्देश्यकी पूर्ति कर रहे हैं जो सर्वथा स्तुत्य प्रयास है। सभी सुधीजनोंको इनकी इस कृपाका आभार स्वीकार करना चाहिये।

भवदीय

स्वामी पुरुषोत्तमाचार्य

॥ जय श्रीसीताराम। नमो राघवाय॥

भूमिका

धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीतुलसीपीठाधीश्वर संस्थापक एवं महामहिम कुलाधिपति जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलाङ्ग विश्वविद्यालय चित्रकूट, श्रीमज्जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्यजी महाराज श्रीचित्रकूटधाम।

अपूर्वं कौसल्या शुभसुकृतराशेरनुपदं,
पदम्प्राचां सारस्वतसुमनसां मान्यमहसाम्।
सरय्वाः कुलेषु प्रथित यशसं तप्ततपसं,
वयस्यै क्रीडन्तं कमपिकलये श्यामल शिशुम्॥
जयति कविकुमुद चन्द्रो हुलसी हर्षवर्द्धनस्तुलसी।
सुजनचकोरकदम्बो यत्कविताकौमुदी पिबति॥

श्रीमद्रामचरितमानस साक्षात् परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा परमेश्वर परमपुरुष परमाराध्य परमेष्ठिप्रणम्य प्रातः पूज्य पुरुष पुङ्गव प्रथीयसी प्रतिभा परिणूत पतितपावन परमेष्ट परमार्तिहर परममङ्गलमहोदय महा महनीय महीमहिम महिलाललामलालित नवनलिनचरण निरतिशय सारसर्वस्व वसुमती भामिनी भागधेय विज्ञेय गुणगणगरिम गवीशगवेषणीय निखिल निगम महातात्पर्यराजवर्य मर्यादापुरुषोत्तम पुरुष पुरातन सनातन नित्यनूतन परब्रह्म कौसल्यानन्दवर्द्धन परम प्रभु श्रीरामके अक्षरावतार होनेके साथ ही भारतीय भारतीके मुक्तोपहार मुक्ताहार भी हैं। इस सर्वविद्वत् विनिर्णीत सिद्धान्तपर किसी भी प्राच्य प्रतीच्य विपश्चित्वरेण्यको मनागपि संशय नहीं है। महर्षि वाल्मीकिकी ही भाँति समस्त प्राच्य प्रतीच्य कविपुङ्गवोंके परमादर्श माँ सरस्वतीके परम यशस्वी पुत्र गोस्वामी तुलसीदासजीकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञाका **'प्रज्ञं मन्यमनस्कमानमर्दन प्रज्ञान'** सर्वतोभावेन सभीको सविस्मय विनयावनतकन्धर करता आ रहा है। विगत चतुश्शताब्दियोंसे वैदिक श्रुतियोंके समान ही श्रीरामचरितमानसकी चौपाइयाँ सिद्धमन्त्रोंकी पङ्क्तिपावनी बनकर पिछले चार सौ एकतीस वर्षोंसे निष्ठावान् सनातन धर्मावलम्बियोंके लिये ऐहिकामुष्मिक कामनाओंके प्रदानमें कामधेनुकी कमनीय भूमिका निभाती आ रही हैं। एक ओर जहाँ—

ब्रह्म निरूपन धरम बिधि बरनहिं तत्त्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग॥

(१। ४४)

जैसा श्रीमानसजीका सुप्रसिद्ध दोहा एक ही साथ भक्तिसिद्धान्तके साथ भारतकी षड्दर्शन परम्पराका उद्गीथ बनकर आविद्वत्पामरको ऋषि विज्ञानकी शिक्षा देता है। वहीं दूसरी ओर—

कृषी निरावहिं चतुर किसाना।
जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥

(४। १५। ८)

जैसी सूक्तिसुधासे कृषि विज्ञानकी भी जिज्ञासासुधाको मुधायित होता दृष्टिगोचर हो रहा है। श्रीवाल्मीकिनवावतार गोस्वामी तुलसीदास महाराजने हम जैसे सकल साधनहीन दीनजीवोंमें जिजीविषाका सञ्चार करनेहेतु अवधीभाषाके कलशमें एक ऐसी अनूठी मानसी कथासुधा भरी जो अमृतपायी देवताओंके लिये भी नित्य स्पृहणीय बन गयी। सावरमन्त्रके ही समान श्रीरामचरितमानसका प्रत्येक वाक्य भक्तिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाले मनुष्यकी प्रत्येक मनोवाञ्छित कामनाकी जिस

निश्चयसे पूर्ति करता चला आ रहा है, आज भी उसका कोई विकल्प नहीं दीख रहा है। गोस्वामी तुलसीदासजीने तो इस तथ्यको डिम-डिम घोषके साथ शपथपूर्वक प्रतिज्ञान करते हुये कहा—

जे एहि कथहि सनेह समेता।
कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी।
कलि मल रहित सुमंगल भागी॥
सपनेहुँ साँचेहुँ मोहि पर जौं हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा भनिति प्रभाउ॥

(श्रीरामचरितमानस १। १५)

अर्थात् जो भी भाई बहन स्वस्थ चित्तसे समझकर प्रेमपूर्वक यह मानसकथा कहेंगे और सुनेंगे वे कलियुगके मलसे रहित होकर भक्तिरूप सुन्दर मङ्गलमय सहभागी बनकर श्रीसीतारामजीके चरणानुरागी हो जायेंगे। यदि मुझपर स्वप्नमें भी भगवान् शिव एवं भगवती पार्वतीजीका सत्य प्रसाद है तो मैंने, अवधी भाषामें कही हुयी, श्रीरामकथाका जो प्रभाव कहा है, वह अक्षरसः सत्य होकर रहेगा। गोस्वामीजीके इस कथनका संवत् १६३१ से अद्यावधि असंख्य नरनारियोंको प्रत्यक्ष चमत्कार अनुभूत हो रहा है। लाखों लोग अपनी अपनी कामनाके अनुसार मानसके अनेक सम्पुटोंसे मानसजीका नवाह पारायण तथा मासपारायण करके देवदुर्लभ फल प्राप्त करते देखे और सुने जाते हैं। किंबहुना प्रस्तुत भूमिकाके लेखक इस अकिञ्चन दासने भी—

गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई।
अलप काल बिद्या सब आई॥

(१। २०४। ४)

सम्पुटसे अध्ययनपर्यन्त मानसजीका मासपारायण पाठ करके जो प्राप्त किया, यह चमत्कार अब किसीसे छिपा नहीं है। मुझे तो जीवनमें जो कुछ भी मिला है वह श्रीमानसजीकी निर्व्याज करुणाका ही परिणाम है। सन्त, परदुःखकातर होते हैं। ***'पर दुख द्रवै संत सुपुनीता।'*** इसी स्वभावसे गोस्वामी तुलसीदासजीने प्राणिमात्रकी समस्त समस्याओंका अपने उदात्त मानसमें प्रतिबिम्बन करके **'स्वान्तः सुखाय'** श्रीरामचरितमानसका प्रणयन किया।

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ।

(मानस मङ्गलाचरण १। ७)

गोस्वामीजीका 'स्व' विराट्का 'स्व' है; क्योंकि वे स्वयं विराट् पुरुष हैं। पाणिनिके अनुसार 'स्व' शब्द आत्मा, आत्मीय, ज्ञाति और धन अर्थमें सक्त है **'स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्'** (१। १। ३५) गोस्वामीजी **स्व** अर्थात् जीवात्माके अन्तःसुखके लिये श्रीरामचरितमानसका प्रणयन कर रहे हैं। **'स्वस्य आत्मनः अन्तः सुखाय।'** जीवात्मा अनेक हैं ***'जीव अनेक एक श्रीकंता'*** अर्थात् यह श्रीरामचरितमानस उन अनन्त बद्ध, मुक्त और नित्य जीवात्माओंको सुख देनेके लिये है जो प्रभु श्रीरामकी प्रपत्ति चाहते हैं—

बिषई साधक सिद्ध सयाने।
त्रिबिध जीव जग बेद बखाने॥
राम सनेह सरस मन जासू।
साधु सभा बड़ आदर तासू॥

(मानस २। २७७। ३, ४)

अर्थात् वेदोंने विषयी, साधक, सिद्ध इन तीन प्रकारके जीवोंकी चर्चा की है, इनमें जिसका भी मन श्रीरामजीके प्रेममें आनन्दकी अनुभूति करता है साधुओंकी सभामें उसीका आदर होता है और श्रीरामचरितमानस रामप्रेममय है **'प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।'** गोस्वामीजी भी सन्तोंके समाजमें अपनी भणिति श्रीरामचरितमानसके सम्मानकी प्रार्थना करते हैं।

होहु प्रसन्न देहु बरदानू।
साधु समाज भनिति सनमानू॥

(मानस १। १४। ७)

'**स्व**' आत्मीयोंके लिये तुलसीदासजीने मानसजीकी रचना की है, '**स्वेषां आत्मीयानां अन्तःसुखाय स्वान्तःसुखाय**' श्रीवैष्णव गोस्वामीजी तुलसीदासजीके आत्मीय हैं उनके सुखके लिये उन्होंने श्रीरामचरितमानसकी रचना की है।

राम उपासक जे जग माहीं।
एहि सम प्रिय तिन्ह कें कछु नाहीं॥

(मानस ७। १३०। ३)

(३) '**स्वानां ज्ञातीनां अन्तःसुखाय स्वान्तःसुखाय**'। गोस्वामी तुलसीदासजीकी ज्ञाति सम्पूर्ण मानवकी है। अर्थात् मानवमात्रके अन्तःसुखके लिये उन्होंने श्रीरामचरितमानसकी रचना की है '**दह्यन्ति नो मानवाः**' श्रीरामचरितमानसमें अवगाहन करके मानवमात्र संसारके तीनों तापोंसे नहीं जलता।

(४) '**स्वस्य धनस्य अन्तःसुखाय**' गोस्वामीजीके धन स्वयं श्रीरामचन्द्रजी हैं—

सकल सुकृत फल मातु पिता के जीवनधन तुलसी के॥

(गीतावली बालकाण्ड ५६)

उनके अन्तःसुखके लिये तुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसकी रचना की। श्रीरामचरितमानसमें प्रत्येक काण्डमें दो दो भक्तोंके क्रमसे सात काण्डोंमें चौदह भक्तोंकी चर्चा की गयी है, जिससे भगवान् श्रीरामको अनन्त सुख प्राप्त होता है। यद्वा—श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामीजीने श्रीभरतचरित्रकी बड़ी ही उत्तम चर्चा की है, जो प्रभु श्रीरामको बहुत प्रिय है। अथवा—गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके '**स्व**' धन हैं भगवान् श्रीराम उनके अन्तःसुखके लिये तुलसीदास महाराजने श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामकथाके वे ८४ चौरासी प्रसङ्ग कहे हैं जो नारदभक्तिसूत्रके ८४ चौरासी सूत्रोंकी व्याख्या ही है। भगवान् श्रीरामको भक्ति बहुत प्रिय है।

पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी।

(मानस ७। ११६। ४)

अतएव ग्रन्थकी रचनाका उद्देश्य सर्वसर्वेश्वर भगवान् श्रीसीतारामकी प्रसन्नतामात्र है। मनुष्यका शरीर उसीके हाथके अनुसार चौरासी अङ्गुलोंका होता है, जिसका सङ्केत है मनुष्य योनि चौरासी लाख भोग योनियोंके पश्चात् प्राप्त होती है।

आकर चारि लच्छ चौरासी।
जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा।
काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(मानस ७। ४४। ४—६)

अर्थात् यह अविनाशी जीव चार खानों और चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करता रहता है, यह काल, कर्म, स्वभाव तथा तीनों गुणोंसे घिरा हुआ, निरन्तर मायाके फेरेमें फिरता रहता है। बिना कारणके प्रेम करनेवाले ईश्वर करुणा करके कभी मानव शरीर दे देते हैं, उसीके सुखके लिये तुलसीदासजी महाराजने श्रीरामचरितमानसकी रचना की। अथवा—'**स्व**' सर्वनाम होनेके कारण बुद्धिस्थत्वोपलक्षित तत्तत्धर्मावच्छिन्नमें सक्त होनेसे अपने मनका भी वाचक है '**स्वस्य निज मनसः अन्तःसुखाय**' अर्थात् गोस्वामीजीने अपने मनके अन्तःसुखके लिये श्रीरामचरितमानसकी रचना की।

भाषाबद्ध करबि मैं सोई।
मोरें मन प्रबोध जेहिं होई॥

(मानस १। ३१। २)

इस प्रकार इस मानस ग्रन्थमें एक साथ ऋषियोंकी तपस्या, भक्तोंकी नमस्या और आचार्योंकी

वरिवस्याके दर्शन हो जाते हैं। चार संवादों तथा सप्त सोपानोंके माध्यमसे गोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसमें चारों वेदों, छहों दर्शनों एवं भक्तिका जिस चातुर्यसे प्रतिपादन किया है, विश्व साहित्यमें उसका उपमान ढूँढ़ पाना सुतरां असम्भव है। श्रीरामचरितमानस पर अद्यावधि शताधिक टीकाएँ प्रकाशित तथा पाण्डुलिपिके रूपमें उपलब्ध होती हैं। प्रत्येक टीका किसी न किसी वैशिष्ट्यके कारण स्वयं में वन्दनीय तथा अभिनन्दनीय है।

को बड़ छोट कहत अपराधू।

भगवान् श्रीसीतारामजीकी निर्व्याज करुणासे प्रेरित होकर अनेक कथावाचक महानुभावोंकी अपेक्षाके वशंवद अत्यन्त प्रियंवद वर्तमान कथावाचकोंकी परम्पराके पितामह, स्वनामधन्य, वैष्णवरत्न, विद्वन्मूर्धन्य, श्रोत्रिय, सरयूपारीण ब्राह्मणकुलावतंस, वैखानसव्रती शिरोमणि अयोध्यावासी आचार्य श्रीकृपाशङ्करजी महाराजने श्रीरामचरितमानसके नवाह पारायण कथाके क्रमसे **'श्रीरामचरितमानस कथा-सुधा-सागर'** नामक सुन्दर ग्रन्थ लिखकर प्रभु श्रीसीतारामजीकी अनुपम वाङ्मयी सेवा प्रस्तुत की है। आचार्य श्रीकृपाशङ्करजी मेरे इतने अन्तरङ्ग हैं कि उनकी प्रशंसा पूरी पूरी मेरी प्रशंसा हो जायगी, तथा मैं सत्य कथनका लोभ संवृत नहीं कर पा रहा हूँ। आचार्य श्रीकृपाशङ्करजी अपनी अस्सी वर्षकी अवस्थामें अभी भी जितने सक्रिय हैं उतना सोलह वर्षका किशोर भी सक्रिय नहीं रहता। नित्य प्रातः चार बजेसे रात्रि ग्यारह बजेतक सतत भगवत्-भागवत सेवामें निरत, वाल्मीकीय रामायण, रामचरितमानस एवं भागवतका यह वृद्ध उद्गाता कभी भी अपनी विहित उद्गीथसे विरत नहीं होता। आचार्यश्रीने अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञामें प्रतिविम्बित मानसजीके जिन उच्चमान और अनुच्चमान भगवदीय भाव विन्दुओंका सहजतासे सङ्कलन किया है, निश्चित ही उससे इनके ग्रन्थकी महार्घता अनुपम बन गयी है। श्रीरामचरितमानसकी अर्थसङ्गति, प्राचीन और नवीन भावोंका संगुंफन, शब्दसौष्ठव, कथाओंका औचित्य विचार आदि ऐसे पक्ष उपस्थित हुये हैं, इस ग्रन्थमें जो इसकी अर्थवत्ताको अधिक प्रासङ्गिक बना रहे हैं। आचार्य श्रीकृपाशङ्करजी द्वारा प्रणीत किष्किन्धाकाण्डकी श्रीगुरुकृपा कादम्बिनी नामक टीकाके प्रायः सभी अंश मैंने गम्भीरतासे देखे हैं। आचार्यजीका वाल्मीकीयरामायण कथा सुधासागर हमारे ही समक्ष लोकार्पित हुआ। आचार्य श्रीकृपाशङ्करजीकी श्रीमद्भागवत्के सप्तम स्कन्धपर लिखी हुई श्रीगुरुकृपा कादम्बिनी टीकाकी भूमिका भी मैंने लिखी। आज श्रीरामचरितमानस कथा-सुधा-सागरके भूमिका लेखनका भी सौभाग्य मैं प्राप्त कर रहा हूँ। मैं भगवान् श्रीसीतारामजीके श्रीयुगलचरणोंमें प्रार्थना करता हूँ कि इसी प्रकार आचार्यश्री नित्य नूतन ग्रन्थ लिखते रहें और मैं उन सबकी भूमिका लिखता रहूँ।

जब लगि रामचरित्र कथा वक्ता बड़भागी।
रामचरितमानस बखानि उमगै अनुरागी॥
जब लगि राघव कृपालसै यह भारत धरिणी।
वरणाश्रमरत लोग निरत निज निज आचरणी॥
आचार्य कृपाशङ्कररचित तब लगि राजै नित नवल।
श्रीरामचरितमानसलसित कथा-सुधा-सागर विमल॥

इति मङ्गलमाशास्ते

धर्मचक्रवर्त्ती कविकुलरत्न महामहोपाध्याय श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु
रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्यजी महाराज श्रीचित्रकूटधाम

॥ जय श्रीसीताराम ॥

प्रकाशकीय निवेदन

श्रीरामानन्दमहं वन्दे वेदवेदान्तपारगम्।
श्रीराममन्त्रप्रदातारं सर्वलोकोपकारकम्॥
श्रीसीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥

पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजके समकालीन यतिराजश्री मधुसूदन सरस्वतीजीकी यह मान्यता थी कि श्रीगोस्वामीजीकी समस्त रामायण तो निगमागम सम्मत है ही; किन्तु उनके दूसरे वचनोंको भी उसी प्रकार मानना चाहिए। तब दूसरा कोई उनके वचनोंमें अश्रद्धा कर ही कैसे सकता है?

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके सर्व सम्मान्य सार्वभौम ग्रन्थ श्रीरामचरितमानसकी अद्यावधि अनेक भाषाओंमें अनेक टीकायें हुई हैं, हो रही हैं और होती रहेंगी। मेरे गुरुदेव आचार्य श्रीकृपाशङ्करजी महाराजकी भी श्रीरामचरितमानसपर उत्तरकाण्डके अस्सी दोहा पर्यन्त गुरुकृपाकादम्बिनी टीकाके कैसेट एवं सी०डी० टेप श्रीमहाराजजीकी प्रिय शिष्या आदरणीया गुरुबहन श्रीमती मधुरानी अग्रवालके पास सुरक्षित हैं। जिसमें केवल किष्किन्धाकाण्डकी गुरुकृपाकादम्बिनी टीका प्रकाशित हुई है। शेषको यथासमय प्रकाशित करनेका विचार है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवतकी संस्कृत टीका माहात्म्यसे लेकर दशम स्कन्धके तेईस अध्यायपर्यन्त लिखी जा चुकी है। उसमेंसे भी केवल सप्तम स्कन्धकी गुरुकृपाकादम्बिनी टीका प्रकाशित हुई है। शेषको भी प्रकाशित करनेका विचार है।

इधर लगभग चार वर्षोंसे कुछ विद्वानों, सन्तों, मेरे गुरुभाइयों और भक्तोंका विशेष आग्रह था कि '**श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण कथा सुधा सागर**' की भाँति श्रीरामचरितमानसकी कथाका संक्षिप्त ग्रन्थ प्रकाशित हो, जिससे श्रीमानसके जिज्ञासुओं, भक्तों और कथावाचकोंको आनन्द मिले। इसी भावनासे आचार्यश्रीके निष्ठावान् भक्त हरदोईके समाजसेवी, व्यवसायी, वैष्णव पण्डित श्रीराजाराम दीक्षितने श्रीचित्रकूटधामकी नवाह्न कथाको हरदोईके ही पण्डित श्रीकृष्णजी शास्त्रीसे लिपिबद्ध कराया। इस कथाका आयोजन निर्मोही अखाड़ा राघवप्रयाग श्रीचित्रकूटधाममें वहाँके श्रीमहान्तजी पूज्यपाद श्रीरामाश्रयदासजी महाराजके द्वारा आयोजित हुआ था। इसके पश्चात् श्रीमणिरामदासजीकी छावनीके महान्त पूज्यचरण श्रद्धेय श्रीनृत्यगोपालदासजी महाराजके कुशल संरक्षणमें मेरे गुरुभाई वैद्य श्रीयदुकूलभूषणजी शास्त्री कपूरथला श्रीविजयकुमारजी संधीर एवं भक्तिमती श्रीमती नीलमजी संधीर न्यूयार्क (अमेरिका) ने २ जुलाई से ११ जुलाई २००३ तक श्रीरामचरितमानसकी नवाह्न कथाका आयोजन श्रीमणिरामदासजीकी छावनी अयोध्यामें किया, उस कथाको भी लिपिबद्ध करा लिया गया।

इन दोनों कथाओंके लेखके आधारपर हमारे गुरुदेव पूज्यपाद आचार्य श्रीकृपाशङ्करजी महाराजने सौ दिवसका मौन लेकर उन दोनों कथाओंको संवर्द्धित करके '**श्रीरामचरितमानस कथा-सुधा-सागर**' ग्रन्थकी रचना की। यह

ग्रन्थ श्रीरामचरितमानस नवाह कथाके आधारपर लिखा गया है। इसे संस्थानकी सेवा समझकर भावुकजन स्वीकार करें।

इस ग्रन्थकी प्रेस कॉपी तैयार करनेमें हमारी प्रत्येक गतिविधिमें सहायता हेतु तत्पर पूज्य श्रीबालकृष्णाचार्यजी व्याकरणाचार्य, श्रीजगदीश दासजी, श्रीकृष्णाचार्यजी और श्रीरामलाल दासजी रामायणी श्रीअयोध्याजीने लगनपूर्वक कार्य किया है। संस्थान इसके लिये इनका आभारी है।

इसके कम्पोजिंग एवं प्रूफरीडिंग में हमारे गुरुभाई श्रीरजनीकान्त शर्मा, श्रीराधेश्याम शुक्ल और श्रीरवीशचन्द्र शुक्ल ने अहोरात्र परिश्रम करके यह कार्य सम्पन्न किया है। इनके भी हम आभारी हैं।

जिनके प्रयाससे यह ग्रन्थ यथासमय हम लोगोंको बिना परिश्रमके प्राप्त हुआ उनके हम आभारी हैं। इनमें श्रीबंशीवल्लभजी शर्मा राधा प्रेस दिल्ली, श्रीकृष्ण कुमारजी खेमका वाराणसी, श्रीबिहारीलालजी सराफ दिल्ली, श्रीनारायणप्रसादजी अजितसरिया गोरखपुर, श्रीजगदीशचन्द्रजी अग्रवाल श्रीअयोध्या आदिका जो हार्दिक सहयोग हमें मिला है उसे हम विस्मृत नहीं कर सकते हैं। हमें विश्वास है कि इन महानुभावोंका और **'श्रीगङ्गादास कृपाशङ्कर सेवा संस्थान'** के न्यासियोंका सहयोग भविष्यमें भी मिलता रहेगा। हम उन सभी व्यक्तियोंके प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने इन पुनीत कार्यमें ज्ञाताज्ञात सहयोग दिया है।

देशके प्रख्यात विद्वान् श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्यजी महाराज श्रीचित्रकूटधामके हम अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने श्रद्धा एवं स्नेहपूर्वक ग्रन्थकी भूमिका लिखकर स्वयं सम्प्रेषित करके हमें अनुगृहीत किया है।

अन्तमें परम पूज्य महान्त श्रीस्वामी नृत्यगोपालजी महाराज और श्रीगुरुदेवके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करते हैं और भगवान् श्री सीतारामजीसे प्रार्थना करते हैं कि हमें इस प्रकारके पावन कार्योंके करनेकी प्रेरणा सदा प्रदान करते रहें। यह ग्रन्थ पाठकों और श्रोताओंका मार्गदर्शन करे यही हमारी सफलता है एवं यही शुभ अभिलाषा है। प्रकाशनकी त्रुटियोंके लिये क्षमा याचना करते हुए भविष्यके लिये मार्गदर्शनकी कामना करते हैं।

श्रीमहाराजजीके पूर्व प्रकाशित ग्रन्थोंके सम्बन्धमें अनेक विद्वानों, सन्तों और भक्तोंके विचार पद्य और गद्यमें हमें प्राप्त हुए हैं। वे सब हमारे पास सुरक्षित हैं। उनको एक पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशित करनेका विचार है। उनके प्रति भी हम अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं।

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहहु अनुकूल॥

श्रीगुरुचरणरज

गङ्गाशरण गुप्त

मन्त्री : श्रीगङ्गादास कृपाशङ्कर सेवा संस्थान
श्रीस्वामी मणिरामदास छावनी, श्रीअयोयाजी
बसन्त पञ्चमी, २०६१

रामजी पालनेमें

एक बार जननीं अन्हवाए। करि सिंगार पालनाँ पौढ़ाए॥

॥ जय श्रीसीताराम ॥

प्रणति निवेदन

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डाधिनायक अकारण करुण करुणावरुणालय सर्वान्तरात्मा सर्वशक्तिमान् सर्वनियामक सर्वान्तर्यामी सर्वान्तर्दर्शी कृपापाथनाथ रघुनाथ सीतानाथ अयोध्यानाथ लोकाभिराम लोकलोचनभिराम मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीसीतारामचन्द्रजीके धराधाममें समवतीर्ण होकर अनेक प्रकारकी रसमयी लीलाओंके करनेका एक प्रधान कारण यह भी है कि मनुष्य उन लीलाओंका गान करके, उनका अध्ययन करके, श्रवण करके, मनन करके, अनुकरण करके अविद्याकी अनादि ग्रन्थियोंसे मुक्त हो करके भगवत्पद प्रेमकी उपलब्धि कर ले।

कलियुगी जीवोंके लिये दु:खोंसे मुक्त होनेका और भवसन्तरण करनेका प्रधान साधन श्रीसीतारामजीके गुणोंका गान करना ही है।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

कौसल्यानन्दसंवर्द्धन श्रीमद्दशरथनन्दन श्रीरघुनन्दनको अपना बनानेका, उनको वशमें करनेका, उनकी कृपाकटाक्षकी उपलब्धि करनेका एकमात्र साधन श्रीरामगुणगान ही है। श्रीराघवेन्द्र सरकारकी श्रीमुखवाणी हैं—

मम गुन गावत पुलक सरीरा।
गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाकें।
तात निरंतर बस मैं ताकें॥

किसी व्याजसे अपने परमाराध्य परमप्रेमास्पद जीवनाराध्य जीवनसारसर्वस्व श्रीसीतारामजीकी लीलाओंका, गुणोंका स्मरण श्रीरामभक्तोंके जीवनका चरम लक्ष्य है। इसी भावनासे **श्रीरामचरितमानस कथा-सुधा-सागर** में डूबनेका दासने प्रयास किया है। मेरा विश्वास है कि उस प्रयासमें मुझ सामर्थ्यहीन साधनहीन सर्वविधदीन विद्याविहीनकी मेरे समर्थ स्वामीने सहायता की है।

श्रीगोविन्दराजजीका एक पद मुझे निरन्तर स्मरण रहता है। करुणासागर कोदण्डपाणि श्रीरामजी मेरी वाणीके मृदुल सिंहासनपर विराजमान होकर मेरी तरह बुद्धिहीनसे परम गम्भीर परमपावन श्रीचरित्रकी रचना करा रहे हैं। वे निश्चय ही मुझे उपहासका पात्र नहीं बनने देंगे।

क्वाहं मन्दमतिर्गभीरहृदयं रामायणं तत्क्वच,
व्याख्यानेऽस्य परिभ्रमन्नहमहो हासास्पदं धीमताम्।
कोभारोऽत्र मम स्वयं कुलगुरुः कोदण्डपाणिः कृपा,
कूपारो रचयत्यदः सपदि मज्जिह्वाग्रसिंहासनः॥

जिन सद्ग्रन्थोंके स्वाध्यायसे दासने प्रेरणा प्राप्त की उनकी सूची लम्बी होगी, अत: उन ग्रन्थोंके निर्माताओंके श्रीचरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हूँ। जिन जिन श्रीगुरुचरणोंमें बैठकर दासने स्वाध्याय किया है, जिनकी करुणा ही मेरा सम्बल है, उनके श्रीचरणोंमें पुन: पुन: अभिवादन करता हूँ। उन कृपालु गुरुजनोंका आशीर्वाद ही मेरा पथप्रदर्शक है।

जगद्गुरु रामानन्दाचार्य तुसलीपीठाधीश्वर श्रीरामभद्राचार्यजी, जगद्गुरु रामानुजाचार्य सुग्रीव

किलाधीश श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी, साधु हृदय, सन्त स्वभाव महान्त श्रीनृत्यगोपादासजी महाराज मेरे सर्वथा अपने हैं। इन लोगोंने अपनी भावपूर्ण लेखनीके द्वारा मेरा उत्साह संवर्द्धन किया है एतावता मैं इनका कृतज्ञ हूँ।

अन्तमें मैं अपने दीक्षागुरु, श्रीरामचरितमानसके टीकाकार, वैराग्यकी अप्रतिम प्रतिमा छोटाछत्ता श्रीजगन्नाथपुरीके यशस्वी महान्त, महान् सन्तसेवी अनन्त श्रीसमलङ्कृत १०८ श्रीगङ्गादासजी महाराज और अपने शिक्षागुरु परमपूज्य प्रातःस्मरणीय महान् सन्त अनन्तश्रीविभूषित १०८ रामायणी श्रीरामकृष्णदासजी महाराज वाराणसीके श्रीचरणोंमें मनसा वाचा कर्मणा साष्टाङ्ग प्रणति निवेदन करते हुए इनके प्रसादकी आकाङ्क्षा करता हूँ।

मेरे इस श्रीरामचरितमानस कथा-सुधा-सागरमें डूबनेके प्रयाससे करुणासागर श्रीसीतारामजी अपने परिकरोंके सहित प्रसन्न हों। सन्तजन, विद्वज्जन, महज्जन, स्वजन और सज्जनवृन्द प्रसन्न होकर मेरा उत्साह संवर्द्धन करें।

अज्ञान दोषान्मति विभ्रमाद्वा,
यदर्थहीनं लिखितं मयात्र।
तत्सर्वमार्यैः परिशोधनीयं,
क्रोधो न कार्यो ननु मानवोऽहम्॥

भगवत्प्रेमका भिखारी

कृपाशङ्कर

श्रीमणिरामदासजीकी छावनी

श्रीअयोध्याजी

बसन्त पञ्चमी, २०६१

श्रीरामजीकी आरती

राम आरती होन लगी है,
जगमग जगमग जोति जगी है॥
कंचन भवन रतन सिंहासन,
दासन्ह डासे झिलमिल डासन।
तापर राजत जगत प्रकाशन,
देखत छबि मति प्रेम पगी है॥ १॥
महकत धूप बरत महताबी,
झलकत कुंडल रबि छबि दासी।
अंग अंग सुंदरता फाबी,
आनँद की सरिता उमगी है॥ २॥
घंटा घरी मृदंग बजावत,
नूपुर पग धरि नाचत गावत।
पूरत संखहि चँवर डोलावत,
सुनतै दूरि बलाय भगी है॥ ३॥
रूप देखि जननी हरषत हैं,
अँजुरिन देव सुमन बरषत हैं।
करि दंडवत चरन परसत हैं,
सुमति राम के रंग रँगी है॥ ४॥

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीरामचरितमानस
कथा-सुधा-सागर
बालकाण्ड

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसरस्वत्यै नमः। श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः। ॐ नमो भगवते परमहंसास्वादित चरणकमलचिन्मकरन्दाय भक्तजन मानस निवासाय श्रीरामचन्द्राय। ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नमः। आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवाद-निकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः। श्रीसीतालक्ष्मणभरतशत्रुघ्नहनुमत्समेताय परब्रह्मणे श्रीरामचन्द्राय नमः। श्रीमन्महर्षि वाल्मीकिचरणकमलेभ्यो नमः। श्रीमद्गोस्वामितुलसिदास चरणकमलेभ्यो नमः।

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युः तं नमामि गजाननम्॥

नीलाम्बुजश्यामल कोमलाङ्गं सीतासमारोपित वामभागम्।
पाणौ महासायक चारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥
आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम्।
अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान् स नः प्रभुः॥
रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम्।
सुग्रीवं वायुसूनुञ्च प्रणमामि पुनः पुनः॥
जानकीजीवनं वन्दे माण्डवीप्राणवल्लभम्।
उर्मिलारमणं वन्दे कीर्तिकान्तं नमाम्यहम्॥
अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपति वरदूतं वातजातं नमामि॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारि परिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥
वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥
योऽन्तःप्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्तचरण श्रवणत्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्॥
प्रथितरामकथाऽमृतमानसं शिवविहङ्गमुनीन्द्रविगाहितम्।
तदमृतं तुलसीदलमिश्रितं वितरते तुलसीकवये नमः॥
श्रीसीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥
श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।
वरनउँ रघुबर बिमल जस जो दायकु फल चारि॥
श्रीतुलसीके पद कमल बार-बार शिर नाय।
रामचरितमानस विमल कथा कहौं चित चाय॥

अनन्तकोटिब्रह्माण्डाधिनायक करुणावरुणालय मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीसीतारामचन्द्रजी अनादि हैं, उनका मङ्गलमय चरित्र भी अनादि और अनन्त है। भूदेवी के रजकणोंकी एवं वारिधिके अम्बुकणोंकी गणना अपनी प्रतिभाके प्रभावसे कर चुकने पर भी जगत्में ऐसा कौन कवि—मनीषी है जो भगवान् श्रीरामजीकी शक्तिकी, गुणोंकी, चरित्रोंकी, अवतारोंकी गणना कर सके।

विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह यः
पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि।

(श्रीमद्भागवत २। ७। ४०)

राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।

सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार॥

(श्रीरामचरितमानस १। ३३)

राम अनंत अनंत गुनानी।
जन्म कर्म अनंत नामानी॥
जल सीकर महि रज गनि जाहीं।
रघुपति चरित न बरनि सिराहीं॥

(श्रीरामचरितमानस ७। ५२। ३-४)

उसी अनादि अनन्त मङ्गलमय श्रीरामचरित्रका सर्वप्रथम कविताकानन कोकिल आदिकवि महर्षि श्रीवाल्मीकिजीने ऋतम्भरा प्रज्ञासे साक्षात्कार किया था। मात्र साक्षात्कार ही नहीं किया अपितु लोकपितामह श्रीब्रह्माजीकी कल्याणी आज्ञासे श्रीरामचरित्रका निर्माण भी किया।

बंदउँ मुनि पद कंजु रामायन जेहिं निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित॥

श्रीब्रह्माजीने आदिकविको केवल चरित्र निर्माणकी आज्ञा ही नहीं दी अपितु हार्दिक मङ्गलाशासन भी किया। श्रीब्रह्माजीने कहा—हे ब्रह्मन्! हे वेद तत्वार्थवेत्तः! इस छन्दके विषयमें अन्यथा विचार न करें। मेरे सङ्कल्प किं वा प्रेरणासे ही तुम्हारे मुखसे ऐसी विलक्षण वाणी निकली है।

श्लोक एवास्त्वयं बद्धो नात्र कार्या विचारणा।
मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती॥

(श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण १। २। ३१)

'**मच्छन्दात्**' का अर्थ रामायणशिरोमणि टीकाकारने इस प्रकार किया है—'**मच्छन्दात् मह्यं मत्कल्याणार्थं छन्दः प्रादुर्भावे सङ्कल्पो यस्य सः रामः तस्मात्**' मेरे कल्याणके लिये ही जिन्होंने संसारमें प्रादुर्भूत होनेका सङ्कल्प किया है, उन श्रीरामजीकी अनुकम्पासे ही तुम्हारे मुखसे '**मा निषाद**' आदि सरस्वती प्रवृत्त हुई है। इस अर्थमें श्रीब्रह्माजीकी श्रीरामभक्तिका दर्शन होता है। सरस्वती तो भगवत्प्रेरणासे ही कार्य करती हैं।

सारद दारुनारि सम स्वामी।
रामु सूत्रधर अंतरजामी॥
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी।
कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥

(श्रीरामचरितमानस १। १०५। ५-६)

श्रीब्रह्मा कहते हैं—हे आदिकवे! भगवान् श्रीरामचन्द्रकी मङ्गलमयी प्रेरणासे ही मैंने अपने पुत्र नारदको तथा पत्नी सरस्वतीको तुम्हारे सन्निकट भेजा है। एतावता हे ऋषिश्रेष्ठ! अब आप मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रके सम्पूर्ण चरित्रोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करें। हे भगवन्! परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीराम संसारमें सबसे बड़े धर्मात्मा और धीर पुरुष हैं। 'धीर' का भाव कि '**धियः रावणादीनां अयोध्याप्रजानाञ्च ब्रह्मादीनाञ्च बुद्धीः ईरयति प्रेरयतीति धीरः**' आपने श्रीनारदके मुखसे जैसा श्रवण किया है उसीके अनुसार वर्णन करिये। श्रीनारद एक अधिकारी और परमभागवत गुरु हैं।

रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम।
धर्मात्मनो भगवतो लोके रामस्य धीमतः॥
वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्।

(श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण १। २। ३२, ३३)

भगवान् श्रीनारदजीकी कृपासे—गुरुकृपासे आपको श्रीरामजीके गुप्त एवं प्रकट सम्पूर्ण चरित्र अज्ञात होनेपर भी ज्ञात हो जायेंगे।

तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति।

(श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण १। २। ३५)

सूझहिं राम चरित मनि मानिक।
गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥

जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान॥

(श्रीरामचरितमानस १। १)

हे मुनिश्रेष्ठ! मेरा आशीर्वाद है कि इस काव्यमें अङ्कित आपकी कोई भी वाणी अनृत—असत्य नहीं होगी। असम्भावित अर्थवाली नहीं होगी।

न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति।

(श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण १। २। ३५)

'आपकी बात अनृत नहीं होगी' का भाव यह है कि आप अपनी तपःपूत लेखनीके द्वारा जो कुछ भी लिख देंगे वह चरित्र करुणासागर भक्तवाञ्छाकल्पतरु मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रको करना ही पड़ेगा।

यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद् वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय।

(श्रीमद्भागवत ३। ९। ११)

इस प्रकार आश्वस्त करके, आशीर्वाद देकरके, वरदान देकरके, रामचरित्र रचनेकी आज्ञा देकर श्रीब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये।

यह बात सर्वविदित है और लोकसे तथा शास्त्रसे प्रमाणित है कि महाकवि श्रीगोस्वामि-तुलसीदासजी आदिकवि श्रीवाल्मीकिजीके ही अवतार हैं। एतावता श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण सम्बन्धी समस्त पूर्ववर्णित आशीर्वाद—वरदान श्रीमद्-रामचरितमानसको भी सहज ही समुपलब्ध हैं।

श्रीभविष्यपुराणमें कहते हैं—हे देवि! कलियुगमें श्रीवाल्मीकिजी श्रीतुलसीदास होंगे। वे कल्याणी श्रीरामकथाकी रचना लोकभाषामें करेंगे।

वाल्मीकिस्तुलसीदासः कलौ देवि भविष्यति।
रामचन्द्रकथा साध्वीं भाषारूपाङ्करिष्यति॥

महान् भागवत श्रीनाभाजी महाराजने तो श्रीगोस्वामीजीको अपने भक्तमालके सुमेरुके रूपमें स्वीकार किया है। वे भी कहते हैं—श्रीतुलसीदासजीने अपार संसार समुद्र सन्तरणके लिये श्रीरामचरित्ररूपी नौकाका निर्माण किया। इस प्रकार स्वयं महर्षि श्रीवाल्मीकिजी ही कठिन कलिकालके कुटिल जीवोंका उद्धार करनेके लिये श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासजीके रूपमें अवतरित हुये।

त्रेता काव्य निबन्ध करिब सतकोटि रमायन।
इक अच्छर उद्धरें ब्रह्म इत्यादि करी जिन होत परायन॥
अब भक्तनि सुख दैन बहुरि वपु धरि लीला बिसतारी।
रामचरन रसमत्त रटन अहनिसि व्रतधारी॥
संसार असारके पार को सुगमरूप नौका लयौ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित वालमीकि तुलसी भयौ॥

(श्रीनाभाजीकृत भक्तमाल मूल छप्पय १२९)

श्रीमद्रामचरितमानसको श्रीरामायण भी कहते हैं। यद्यपि श्रीरामायण तो श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणका ही नाम है; परन्तु लोकमें श्रीरामचरितमानसको भी श्रीरामायणजी कहते हैं।

आरति श्रीरामायणजी की।
कीरति कलित ललित सिय पी की॥

मानसकारने भी आदि और अन्तमें श्लोकोंमें श्रीरामायणनामका उल्लेख किया है।

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।

और अन्तमें—

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं,
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्॥

श्रीरामायण शब्दका अर्थ है—(क) '**श्रीरामस्य चरितान्वितमयनं शास्त्रम्**' अर्थात् श्रीरामचरित्रसे संयुक्त शास्त्रका ही नाम श्रीरामायण है।

(ख) रामायणका सीधा अर्थ है 'श्रीरामजीका अयन—घर' अर्थात् इसमें श्रीरामजी सपरिकर नित्य निवास करते हैं, इसलिये इस ग्रन्थको सँभालकर रखना चाहिये—गाना चाहिये।

जे गावहिं यह चरित सँभारे।
तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥

(ग) श्रीरामायणजी श्रीरामजीका साक्षात् स्वरूप है। इसके एक-एक अक्षर श्रीरामजीके रोम हैं। एतावता श्रीरामायणजीके अक्षरोंका अर्थ सँभालकर करना चाहिये अन्यथा रोम टूटनेकी तरह श्रीरामजीको पीड़ा होती है।

(घ) यह ग्रन्थ श्रीरामजीकी प्राप्तिका साधन है। जिसके द्वारा श्रीरामजीकी साक्षात् प्राप्ति हो उसे श्रीरामायण कहते हैं।

श्रीरामः अय्यते प्राप्यते येन तद् रामायणम्।

(ङ) श्रीरामजीके स्वरूपका जिसके द्वारा परिज्ञान हो उसे श्रीरामायण कहते हैं। यह भाव भी '**अय् गतौ**' धातुसे ही सिद्ध होगा। लोग कहते हैं हम चार बार रामायण पढ़ गये। मेरी प्रार्थना है कि श्रीरामायणजीको केवल पढ़ें नहीं, अपना लें, जीवनमें उतार लें और अपना कण्ठहार बना लें। भगवान् श्रीसीतारामजीकी कृपा निश्चित ही प्राप्त हो जायगी।

यह श्रीमद्रामचरितमानस कोई पुस्तक नहीं है, कोई सामान्य ग्रन्थ भी नहीं है अपितु यह तो रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीका साक्षात् वाङ्मय श्रीविग्रह-शरीर है।

बालकाण्ड प्रभु पाँव अयोध्या कटि मन मोहै।
उदर बन्यो आरण्य हृदय किष्किन्धा सोहै॥
सुन्दर ग्रीव मुखारविन्द लङ्का कहि गायो।
जहाँ दशानन आदि निशाचर सकल समायो॥
मस्तक उत्तरकाण्ड शुचि यहि विधि तुलसीदास भन।
आदि अन्त लौ देखिये श्रीमन्मानस राम तन॥

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतके विषयमें भी पद्मपुराणमें—श्रीमद्भागवत माहात्म्यमें वर्णन किया गया है—नन्दनन्दन श्यामसुन्दर परमानन्दकन्द मुरलीमनोहर श्रीकृष्णचन्द्रजीने अपना समग्र तेज श्रीमद्भागवतमें स्थापित कर दिया है। वे अन्तर्धान होकरके कलियुगी प्राणियोंका मङ्गल करनेके लिये श्रीमद्भागवतरूपी क्षीरसागरमें प्रविष्ट हो गये। एतावता यह ठाकुरजीकी साक्षात् वाङ्मयी मूर्ति है। इसके सेवन, श्रवण, पठन और दर्शनसे व्यक्तिके समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं।

स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात्।
तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम्॥
तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः।
सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी ॥

(श्रीभागवत माहात्म्य ३। ६१, ६२)

इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीताके विषयमें भी आचार्य लोग कहते हैं।

श्रीरामजीकी ही भाँति श्रीरामचरितमानस भी दिव्य, अनुपम और सर्वजनचित्ताकर्षक है। अर्बुदपति और वराकापति, बड़े-से-बड़े आचार्य और निरक्षर भट्टाचार्य दोनों इस ग्रन्थका आदर करते हैं।

बुध विश्राम सकल जन रंजनि।
रामकथा कलि कलुष बिभंजनि॥

श्रीरामचरितमानसके काले-काले एक-एक अक्षर श्रीरामजीके रोमस्थानापन्न हैं, इसलिये इसके अक्षरोंको काटना नहीं चाहिये। पन्नोंको मोड़ना नहीं चाहिये। बड़े आदरसे रखना चाहिये। इसके वर्णन करनेमें भी सावधानी होनी चाहिये।

जे गावहिं यह चरित सँभारे।
तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिं सादर नर नारी।
तेइ सुरबर मानस अधिकारी॥

(श्रीरामचरितमानस १। ३८। १-२)

मेरे परमाराध्य, प्राणाराध्य, जीवनसारसर्वस्व श्रीसीतारामजी, श्रीरामकथाके रसज्ञ श्रोता—रसिया श्रीहनुमान्‌जी महाराज और मेरे गुरुदेव जिनके श्रीचरणोंमें बैठकर दासने श्रीरामचरितमानसकी शिक्षा प्राप्त की है मुझे वह शक्ति प्रदान करें, भाव प्रदान करें कि मैं भक्तिपूर्वक श्रीरामचरितमानसकी कथा आपको सुना सकूँ।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥

इस श्लोकमें वाणी और विनायक अर्थात् श्रीसरस्वतीजी और श्रीगणेशजीकी वन्दना है। वर्णों, अर्थसंघों, रसों, छन्दों और मङ्गलोंके करनेवाले श्रीसरस्वतीजी और श्रीगणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ।

ग्रन्थका यह प्रथम श्लोक है। ग्रन्थ लिखनेमें श्रीसरस्वतीजी प्रेरणा देती हैं और श्रीगणेशजी लिखनेमें प्रतिबन्धक विघ्नोंको नष्ट कर देते हैं। लिखनेमें भी श्रीगणेशजीकी अनोखी प्रतिभा है—वे अद्वितीय लेखक हैं। दोनोंकी वन्दना करके भक्तकवि प्रार्थना करते हैं—हे मातः! मुझे लिखनेके लिये प्रेरणा प्रदान करें, मेरी लेखनीको सशक्त बनावें। हे गणराज! हमें लिखनेकी शक्ति प्रदान करें और समस्त विघ्नोंका अपनोदन करके ग्रन्थका मार्ग प्रशस्त करें।

वर्ण, अर्थ, रस और छन्दका ठीक-ठीक प्रयोग ही किसी ग्रन्थको उपादेय बनाता है। उपादेय ग्रन्थसे ही आत्म मङ्गल, सामाजिक मङ्गल और जगन्मङ्गल होता है। संसारका समस्त साहित्य अक्षर, अर्थ, रस और छन्दका ही तो विस्तार है।

प्रवेशिकासे लेकर आचार्यतककी पढ़ाई इन्हीं चारोंमें पूर्ण हो जाती है।

आरम्भमें बालक वर्णोंसे—अ, इ, उ, ऋ, लृ आदिसे परिचित होता है। इन्हीं वर्णोंके समूहसे शब्द बनता है। शब्दसे ही अर्थसंघ—अर्थसमूहकी उत्पत्ति होती है। र, आ, म इन तीन वर्णोंसे 'राम' शब्द निष्पन्न होता है। 'राम' शब्दका अर्थ है—श्रीदशरथका पुत्र, श्रीकौसल्याका लाल, श्रीभरत आदिके भ्राता, श्रीसीताके पति और श्रीहनुमानजीके स्वामी आदि। '**वर्णानामर्थसंघानाम्**'। अर्थ समूहसे ही रसकी सृष्टि होती है। तदनन्तर छन्दोंका निर्माण होने लगता है। छन्द भी कई प्रकारके होते हैं। छन्दका माङ्गलिक होना भी परमावश्यक है। छन्दोंकी रचनामें—कविता करनेमें सँभालकी बहुत आवश्यकता है। किसी कवितासे कविको कुष्ठरोग हो जाता है और पुनः किसी कविताके निर्माणसे उसकी निवृत्ति भी हो जाती है। पूज्यचरण श्रीगोस्वामीजी इस प्रथमपदमें श्रीवाणीविनायककी वन्दना करके प्रवेशिकासे आचार्य—महामहोपाध्यायतककी योग्यता और जगन्मङ्गलकी याचना करते हैं। भाव यह है कि प्रार्थना करते हैं—यह ग्रन्थ विद्वानोंमें समादृत हो और इससे जगन्मङ्गल भी सम्पन्न हो।

मनीषियोंने आर्षग्रन्थोंके प्रथमपदको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है। इस परम्परासे श्रीरामचरित मानसके प्रथम श्लोकमें भी आचार्योंने सातों काण्डोंकी कथाका अनुसन्धान किया है। '**वर्णानाम्**' इस शब्दसे बालकाण्डकी कथाका उद्‌बोधन किया है। पूर्णब्रह्म परमात्मा सच्चिदानन्दघन, सर्वव्यापक प्रभु इस काण्डमें मानव जातिके एक विशेष वर्णमें अवतरित होते हैं। श्रीरामचन्द्रजी स्वयं कहते हैं—'***हम छत्री मृगया बन करहीं***' इस

काण्डमें श्रीरामजीके जन्मसे लेकर विवाहपर्यन्त समस्त वर्णसंस्कार सम्पन्न होते हैं।

'**अर्थसंघानाम्**'—'अर्थसंघ' शब्दका अर्थ अर्थोंका समूह अर्थात् राज्य भी सम्भव है। अयोध्याकाण्डके प्रथम दोहेसे ही राज्यका प्रसङ्ग आरम्भ हो गया।

सब के उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु।
आप अछत जुबराज पद रामहि देउ नरेसु॥

(२। १)

नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू॥

(२। २। ८)

सम्पूर्ण अयोध्याकाण्डमें मुख्यरूपसे राज्यका ही प्रसङ्ग है। श्रीरामको राज्य हो, श्रीभरतका राज्य हो, श्रीलक्ष्मणका राज्य हो; परन्तु अन्तमें श्रीपादुकाजीका राज्य सम्पन्न हो गया।

सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि।
सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि॥

(२। ३२३)

श्रीपादुकाजीकी आज्ञासे ही राज्यकार्य सञ्चालित होने लगा।

नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥

(२। ३२५)

'**रसानाम्**'—संस्कृत साहित्यमें रसकी अनेक प्रकारकी व्याख्या है। '**रस आस्वादने**' धातुसे 'रस' शब्दकी निष्पत्ति होती है। '**रसतीति रसः**' किं वा '**रस्यते इति रसः**'। भगवान् स्वयं रसस्वरूप हैं। '**रसो वै सः**' '**रसोऽहमप्सु कौन्तेय**'।

साहित्यमें दस प्रकारके मुख्य रस हैं।

श्रृङ्गार वीर करुणाद्भुत हास्य भयानकाः।
वीभत्स रौद्रौ वात्सल्यं शान्तश्चेति रसा दश॥

'**रसानाम्**' से अरण्यकाण्डकी कथाका सङ्केत किया गया है। उपर्युक्त दसों प्रकारके रसोंकी व्याख्या अरण्यकाण्डमें है। सर्वप्रथम शृङ्गार रसका वर्णन ही श्रीगोस्वामीजीने किया है। भावुक भक्तजन कहते हैं—चित्रकूटमें श्रीरामजीने श्रीसीताजीके साथ अनेक प्रकारके रास विहार किये हैं। श्रीभुशुण्डि रामायण आदि ग्रन्थोंमें इस रासविहारका विशेष वर्णन है। श्रीरामचरितमानसमें श्रीठाकुरजीके द्वारा श्रीसीताजीके शृङ्गारका वर्णन चित्रकूटकी स्फटिकशिलाके प्रसङ्गमें निरूपित है।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए।
निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर।
बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥

(३। १। ३-४)

श्रीगीतावली रामायणमें भी सङ्क्षिप्त परन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चित्रण है।

बिरचित तहँ परनसाल, अति बिचित्र लषनलाल,
निवसत जहँ नित कृपालु राम-जानकी।
निजकर राजीवनयन पल्लव-दल-रचित सयन,
प्यास परसपर पीयूष प्रेम-पानकी॥
सिय अँग लिखैं धातुराग, सुमननि भूषन-बिभाग,
तिलक-करनि का कहौं कलानिधानकी।
माधुरी-बिलास-हास, गावत जस तुलसिदास,
बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रानकी॥

(२। ४४)

इस युगल झाँकीका मङ्गलमय दर्शन करनेके लिये बड़े-बड़े अमलात्मा वीतराग महात्मा चकोरका रूप धारण करके वहाँ परमानन्द प्राप्त करते हैं।

चितवत मुनिगन चकोर, बैठे निज ठौर ठौर,
अच्छय अकलंक सरद-चंद-चंदिनी।
उदित सदा बन-अकास, मुदित बदत तुलसिदास,
जय जय रघुनंदन जय जनकनंदिनी॥

(गीतावली २। ४३)

खरदूषण और विराधवधके प्रसङ्गमें वीर रसका, शूर्पणखाके प्रसङ्गमें अद्‌भुत, हास्य, भयानक, वीभत्स और रौद्र रसोंका परिपाक है। श्रीजटायुके प्रसङ्गमें करुणरस और श्रीशबरीके प्रसङ्गमें वात्सल्य रसका तथा अन्तमें श्रीनारदजीके प्रसङ्गमें शान्तरसका अनुसन्धान करना चाहिये।

'**छन्दसाम्**'—छन्दकी अनेक जातियाँ हैं उसी प्रकार वानरोंकी भी अनेक जातियाँ हैं।

एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ।
नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरूथ॥

(४। २१)

बानर कटक उमा मैं देखा।
सो मूरुख जो करन चह लेखा॥

(४। २२। १)

'**छन्दसाम्**' से किष्किन्धाकाण्डका मनन करना चाहिये।

'**अपि**'—निश्चयवाचक शब्द है। श्रीसीताजीकी स्थितिका निश्चय, उनका प्रामाणिक अभिज्ञान सुन्दरकाण्डमें ही हुआ है।

'**मङ्गलानाम्**'—रावणवधसे त्रैलोक्यका मङ्गल हुआ है। देवता, मनुष्य और मुनियोंका मन प्रसन्न हो गया। एतावता '**मङ्गलानाम्**' से लंकाकाण्ड कहा।

'**कर्त्तारौ**'—इस शब्दसे उत्तरकाण्डका अनुशीलन करना चाहिये। '***राज बैठि कीन्हीं बहु लीला।***' इन सातों काण्डोंकी रचनाका सामर्थ्य प्राप्त करनेके लिये श्रीगोस्वामीजी वाणी और विनायककी वन्दना करते हैं।

श्रद्धा विश्वासस्वरूप श्रीभवानीशङ्करकी वन्दना करके शङ्करस्वरूप गुरुदेवकी वन्दना करते हैं। '**जगद्‌गुरुं च शाश्वतम्।**'

कवीन्द्र श्रीवाल्मीकिजी और कपीन्द्र श्रीहनुमान्‌जीकी एकसाथ वन्दना करते हैं। इनके एकसाथ वन्दना करनेका आशय यह है—दोनों ही युगल सरकार श्रीसीतारामचन्द्रजीके अनुपम गुणगायक हैं। दोनोंका निवास वनमें है। एकका महर्षि होनेके कारण और दूसरे तो कपीश्वर ही हैं। '**ऋषयो वेदमन्त्र द्रष्टारः**' एतावता एक तो महर्षि ही ठहरे, उनकी ज्ञानकी शुद्धताका क्या पूछना? दूसरे '**ज्ञानिनामग्रगण्य**' हैं। एतावता दोनों विशुद्ध विज्ञानी हैं। अतएव दोनोंकी वन्दना एकसाथ की गयी है।

भगवान् श्रीशङ्करकी बात छोड़ देनी चाहिये, उन्होंने तो अपने मानसको '**निज मानस**' में ही रखा था। लोकमें तो श्रीरामचरित्रके दो ही आदि कर्त्ता हुये। उसमें भी महर्षि श्रीवाल्मीकिकी कृति ही विश्व विश्रुत हुयी। श्रीहनुमान्‌जीने तो अपनी मङ्गलमयी कृतिको महर्षिके आग्रहपर समुद्रको समर्पित कर दिया था। एतावता दोनों आदि श्रीरामचरित्र गायकोंकी वन्दना एकसाथ की गई और उसमें भी प्रथम कवीश्वर ही स्मरण किये गये।

भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासका कार्यकाल महर्षि श्रीवाल्मीकिसे बहुत पीछे है, अतः व्यासजीने भले ही श्रीरामचरित्रका वर्णन किया हो; परन्तु वे रामचरित्रके आदि आचार्योंकी गणनामें नहीं आते हैं।

श्रीगोस्वामीजीको स्वयं श्रीसीतारामजीका गुणगान करना है। वे भी उस पुण्यारण्यमें विहार करना चाहते हैं, अतएव वहाँके दो आचार्योंका स्मरण करते हैं। वह गुणग्राम पुण्यारण्य है, उपवन नहीं है, उसमें प्रवेश करनेमें प्रतिबन्ध नहीं है; परन्तु भूलने भटकनेका भय तो है ही। एतावता उस पुण्यारण्यके दो महान् सुपरिचित मर्मज्ञोंसे—मार्गाभिज्ञोंसे प्रार्थना कर रहे हैं कि आपलोग हमारा मार्गदर्शन करके शक्ति प्रदान करें। बड़ी भावपूर्ण वन्दना है।

सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥

इसके पश्चात् श्रीमिथिलेशनन्दिनी सीताजीकी स्वतन्त्र वन्दना करते हैं।

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥

श्रीसीताजी संसारका उद्भव-प्राकट्य, स्थिति—पालन और संहार करनेवाली हैं '**जन्माद्यस्य यतः**'। परन्तु वात्सल्यमयी श्रीजानकीजीके संहारमें भी करुणा छिपी है अतः क्लेशहारिणी हैं। जगज्जननी हैं अतएव प्राणीमात्रका सर्वविध कल्याण करती हैं। 'सर्वश्रेयस्करी' हैं। प्रेय तो यह संसार है इसकी तो वे उद्भवस्थिति संहारकारिणी ही हैं, यहाँ जो कुछ मिलेगा उनकी कृपासे ही। श्रेय—इस जगत्से छूटकर परमधामकी प्राप्ति भी उन्हींकी कृपासे होती है। सभी प्रकारके श्रेय—श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणकमलोंमें अमल अनुराग उनकी भावमयी नवधा, रागानुगा, प्रेमा आदि भक्ति, चतुर्विधामुक्तियाँ, ज्ञान, वैराग्य आदि भी उन्हींकी कृपासे प्राप्त होते हैं। ऐसी श्रीरामचन्द्रजीकी प्राणवल्लभा, प्राणेश्वरी, प्रियतमा, परब्रह्ममहिषी श्रीसीताजीके श्रीचरणोंमें श्रीगोस्वामीजी प्रणति निवेदन करते हैं।

इस वन्दनामें 'सीता' नामका प्रयोग अत्यन्त रहस्यपूर्ण, भावपूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण है। 'सीता' शब्दकी व्याख्या ही इस श्लोकके छः विशेषणों द्वारा की गयी है। (१) '**सूयते इति सीता**' अर्थात् श्रीसीताजी चराचरात्मक जगत्को समुत्पन्न करती हैं। इस अर्थमें '**षूङ् प्राणिप्रसवे**' धातुसे 'सीता' शब्दकी निष्पत्ति हुयी है। (२) '**सवतीतिसीता**' अर्थात् जो समग्र ऐश्वर्यसे युक्त होकर उस ऐश्वर्यसे समस्त जगत्की स्थिति-पालन करती हैं। '**षू प्रसवैश्वर्ययोः**' धातु है। (३) '**स्यति इति सीता**' अर्थात् जो संहार करती है '**षोऽन्त कर्मणि**' धातु है। (४) '**स्यति इति सीता**' अर्थात् जो आश्रितजनोंके अशेष क्लेशोंका विनाश करती हैं। '**षोऽन्त कर्मणि**' धातु है। (५) '**सवतीति सीता**' अर्थात् जो भक्तोंको सद्बुद्धि प्रदान करके, उनको सत्कार्यमें प्रेरित करके किं वा उन्हें श्रीरामके चरणोंमें प्रेरित करके किं बहुना श्रीठाकुरजीको भक्तोंके कल्याण करनेके लिये प्रेरित करके आश्रितजनोंका सर्वविध कल्याण करती हैं। '**षू प्रेरणे**' धातु है। (६) '**सिनोतीति सीता**' अर्थात् जो अपने मङ्गलमय स्नेहसे, प्रेमरज्जुसे बाँध लेती हैं—अपने प्राणवल्लभ श्रीरामजीको अपने वशमें कर लेती हैं। एतावता वे श्रीरामवल्लभा हैं। इस अर्थमें '**षिञ् बन्धने**' धातु है।

श्रीकिशोरीजीकी वन्दना करके भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी वन्दना करते हैं। पूज्यचरण काशीनिवासी श्रीपण्डित रामकुमारजीका भाव है—पहले परमानन्ददायक श्रीसीतापदका स्मरण करके श्रीरामनामका अभ्यास प्रशस्त माना गया है।

आदौ सीतापदं पुण्यं परमानन्ददायकम्।
पश्चाच्छ्रीरामनामस्य अभ्याशञ्च प्रशस्यते॥

(नारदीय पुराण)

इसलिये श्रीसीताजीकी वन्दना करके उन श्रीरामजीकी वन्दना करते हैं जिनके श्रीचरण ही भवसमुद्र पार करनेवालोंके लिये एकमात्र प्लव अर्थात् नौका या बेड़ा हैं।

भव-जलधि-पोत चरनारबिंद।
जानकी-रवन आनंद-कंद॥

(श्रीविनयपत्रिकाजी ६४)

त्वदंघ्रिमूल ये नराः भजंति हीन मत्सराः॥
पतंति नो भवार्णवे। वितर्क वीचि संकुले॥

(श्रीरामचरितमानस ३। ४)

अगर यह नाव छूट गयी तो भवसागरमें डूबना निश्चित है। श्रीरामजी अशेष—समस्त

कारणोंसे परे हैं—

बिषय करन सुर जीव समेता।
सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई।
राम अनादि अवधपति सोई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।
मायाधीस ग्यान गुन धामू॥

(१। ११७। ७-८)

श्रीरामजीकी वन्दनाका आनन्द श्रीगोस्वामीजीके शब्दों में लें—

यन्मायावशवर्त्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

इसके पश्चात् भाषामें—चार सोरठोंमें, पञ्चदेव—श्रीगणेश, श्रीसूर्य, श्रीविष्णु, उमा और उमारमणकी वन्दना करके गुरुचरणकमलकी वन्दना करते हैं—

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥

श्रीगुरुदेवका सामान्य प्रकारसे नाम लेना धर्मशास्त्रमें वर्जित हैं, अतः 'नररूपहरि' में श्रीगोस्वामीजीने सङ्केतपूर्वक नामग्रहण करके वन्दना की है। इसके पश्चात् तेरह पङ्क्तियोंमें श्रीगुरुदेवकी विभिन्न प्रकारसे वन्दना करके 'नयनामृत' अञ्जनसे ज्ञाननेत्रको निर्मल करके भवमोचन श्रीरामचरित्रके वर्णनकी प्रतिज्ञा करते हैं—

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन।
बरनउँ राम चरित भव मोचन॥

सन्तहृदय श्रीगोस्वामीजी सन्तसमाजकी विलक्षण वन्दना करते हैं। वे कहते हैं—सन्त समाज तो साक्षात् तीर्थराज प्रयाग है—

मुद मंगलमय संत समाजू।
जो जग जंगम तीरथराजू॥

तीर्थराज प्रयागमें विशेष महत्ता त्रिवेणी—श्रीगङ्गा, यमुना और अदृश्य सरस्वतीकी है। सन्तसमाजरूप तीर्थराज प्रयागमें श्रीरामभक्तिकी कथा ही श्रीगङ्गाजीकी अमल धवल धारा है। श्रीगङ्गाजी और श्रीरामभक्ति दोनों प्राणीमात्रको पावन करती हैं। दोनों श्रीशंकरजीसे सम्बन्धित हैं। गङ्गाजी उनके मस्तकपर रहती हैं। **'देवापगामस्तके'** और भक्ति हृदयमें निवास करती हैं। ***'शंकर हृदय भगति भूतल'।*** ब्रह्मविचारका प्रचार ही सरस्वती है और कर्मकी कथा ही यमुनाजी हैं—

राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा।
सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥
बिधि निषेधमय कलि मल हरनी।
करम कथा रबिनंदिनि बरनी॥

तीर्थराज प्रयागमें स्नान करनेका फल विलम्बसे मिल सकता है; परन्तु सन्तसमाजकी त्रिवेणीमें स्नानका फल सद्यः मिलता है—

मज्जन फल पेखिअ ततकाला।
काक होहिं पिक बकउ मराला॥

लङ्किनीको तत्काल सन्तदर्शनका—सत्सङ्गका फल मिला। उसकी काकके समान वाणी थी।

जानेहिं नहीं मरमु सठ मोरा।
मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥

(५। ४। ३)

सत्सङ्ग मिलते ही अर्थात् श्रीरामसेवाके परमाणु जिन हाथोंमें विद्यमान हैं। उसके स्पर्श

होते ही उसकी वाणी परिवर्तित हो गयी।

तात मोर अति पुन्य बहूता।
देखेउँ नयन राम कर दूता॥

(५। ४। ८)

उसका बकके समान व्यवहार मरालके व्यवहारमें परिणत हो गया।

प्रबिसि नगर कीजै सब काजा।
हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥

(५। ५। १)

मरालका विवेक प्राप्त हो गया, इसीलिए उसने सत्सङ्गकी महिमाका वर्णन भी किया है।

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(५। ४)

सन्त समाजकी वन्दना करके सन्तकी वन्दना करते हैं। जिस प्रकार अञ्जलिका सुगन्धित पुष्प दोनों हाथोंको सुगन्धित करता है, उसी प्रकार समान चित्तवाले सन्त शत्रु-मित्र दोनोंका हित सम्पादन करते हैं; क्योंकि उनका न कोई हित है और न अनहित—

बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥

सन्त वन्दना करके दुष्ट वन्दना करते हैं। व्यङ्गसे किंवा असद्भावसे नहीं वन्दना करते हैं अपितु सद्भावसे करते हैं—

बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ।

श्रीकाष्ठजिह्वा स्वामी लिखते हैं—अपना सर्वस्व नष्ट करके, नरक यात्रा प्रशस्त करके दुष्ट लोग सब प्रकारसे साधुके मलको धो डालते हैं। अतएव इनको प्रणाम करना उचित ही है—

सर्वस अपनो बिगारि सिर धरि जमदूत मार,
सब प्रकार खल धोवैं साधुन के मलन को।
महाब्रतधारी बिनु हेतु उपकारी ए,
ऐसी जिय जानि प्रणाम किये खलन को॥

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—ब्रह्माका यह प्रपञ्च-पाञ्चभौतिकीसृष्टि गुण और अवगुणसे सनी हुई है—

कहहिं बेद इतिहास पुराना।
बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना॥

'साना' का अर्थ है कि एकसे अधिक वस्तुओंको इस प्रकार मिलाना कि उन्हें आपातत: अलग न किया जा सके। जैसे दिन में सूर्यका प्रकाश गुण है परन्तु ग्रीष्मकालमें घामका होना अवगुण है। परन्तु सूर्यके प्रकाशसे घामको अलग नहीं किया जा सकता। दूध और जल दोनों मिले हैं, उनको अलग करना कठिन है, परन्तु हंसके सामने मिला हुआ दूध और जल रख दें वह बिना श्रमके दूधको अलग करके स्वीकार कर लेगा और जलका परित्याग कर देगा। इसी प्रकार इस जड़-चेतन और गुण-दोषमय संसारकी श्रीब्रह्माजीने सृष्टि की है; परन्तु सन्तरूपी हंस दोषरूपी जलको छोड़कर गुणरूपी दूधको स्वीकार कर लेते हैं। यह मात्र हंसका ही कार्य है दूसरेमें यह सामर्थ्य नहीं है—

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥

श्रीगोस्वामीजी जीव मात्रकी वन्दना श्रीसीताराममय जानकर बद्धाञ्जलि होकर करते हैं—

आकर चारि लाख चौरासी।
जाति जीव जल थल नभ बासी॥

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

श्रेष्ठ भक्तोंका लक्षण भी यही है।

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(७। ११२ ख)

श्रीपद्मपुराणके उत्तरखण्डमें भी श्रीसीयराममयकी व्याख्या इसी प्रकार है—

स्त्रीलिङ्गन्तु त्रिलोकेषु यत् तत्सर्वं हि जानकी।
पुन्नामलाञ्छितं यत्तु तत् सर्वं हि भवान् प्रभो॥

(पद्मपुराण उत्तरखण्ड)

आगे भक्त कवि अपना दैन्य प्रकट करते हुये कहते हैं—सज्जनलोग मेरी धृष्टताको क्षमा करके मुझ बालकके वचनको मन लगाकर श्रवण करेंगे। अपनी कविता तो सभीको अच्छी लगती है, जो दूसरोंकी रचना सुनकर प्रसन्न होते हैं वे श्रेष्ठ पुरुष हैं। संसारमें सरवरों और नदियोंके समान बहुत लोग हैं जो बाह्य जल पाकर अपनी वृद्धिसे ही वृद्धिङ्गत होते हैं—बढ़ते हैं, परन्तु सन्तोंकी तो अनोखी प्रकृति है। वे समुद्रके समान हैं, समुद्र वर्षाके जलसे नहीं बढ़ता है तथा अपनी वृद्धिसे भी नहीं बढ़ता है। वह तो दूसरोंकी उन्नतिसे समुन्नत होता है। इसी प्रकार सन्त भी समुद्रकी भाँति दूसरोंकी उन्नतिसे समुच्छलित होते हैं—प्रसन्न होते हैं। समुद्र पूर्ण चन्द्रको देख करके बढ़ता है। उस समय उसमें ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगती हैं। उस समय सन्तकी और समुद्रकी शोभा अपूर्व होती है, देखते ही बनती है—

जग बहु नर सर सरि सम भाई।
जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई॥
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई।
देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई॥

इस समय एक अनोखा भावमय प्रसङ्ग स्मरण आ रहा है, उसका भी आनन्द लें। रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीने श्रीशङ्करजीका धनुष तोड़ दिया है। जनकपुरवासी प्रसन्न हो गये। इस समय और लोगोंकी प्रसन्नताका वर्णन हमें अभीष्ट नहीं है। धनुष तोड़नेसे श्रीविश्वामित्रजीको महान् प्रसन्नता हुई। उनका रूप पवित्र समुद्र है, वह समुद्र प्रेमजलसे परिपूर्ण है। जल भी छिछला नहीं है, गहरा है, देखनेमें सुहावना प्रतीत हो रहा है। श्रीविश्वामित्ररूप समुद्रने जब धनुष तोड़नेवाले वीरेन्द्रमुकुटमणि श्रीरामचन्द्ररूपी चन्द्रमाको देखा तब श्रीविश्वामित्ररूप समुद्रमें बाढ़ आ गयी। ऊँची ऊँची लहरें उठने लगीं। महर्षिके शरीरमें पुलकावली छा गयी। आँखोंसे प्रसन्नताके कारण प्रेमाश्रु छलकने लगे। वे अपने मनमें कहने लगे—धन्य हो मेरे पुत्र! धन्य हो मेरे वत्स! सर्वदा मङ्गल हो तुम्हारा! तुमने युग-युगान्तरमें, कल्प-कल्पान्तरमें, प्रलय-प्रलयान्तरमें मेरा नाम अमर कर दिया—

प्रभु दोउ चापखंड महि डारे।
देखि लोग सब भए सुखारे॥
कौसिकरूप पयोनिधि पावन।
प्रेम बारि अवगाहु सुहावन॥
रामरूप राकेसु निहारी।
बढ़त बीचि पुलकावलि भारी॥

धन्य है सन्तोंकी प्रसन्नता!

सज्जन सकृत सिंधु सम कोई।
देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई॥

धन्य है! भक्त कविकी वन्दनामें सृष्टिका

एक प्राणी भी नहीं छूटा है। धन्य है!

एक बार भूमिसम्बन्धी एक विवाद न्यायालयमें चल रहा था। एक दिन मुकदमाकी पैरवी करनेवाले व्यक्तिने मुझसे कहा—आप इस सादे कागज पर हस्ताक्षर कर दें। मैंने कहा—यह तो सादा कागज है, इसमें कुछ लिखा ही नहीं है, मैं कैसे हस्ताक्षर करूँ? प्रत्युत्तर में उसने कहा—आप हस्ताक्षर कर दें, इसमें जो लिखना है वकील लिख देंगे। मैंने सोचा—हस्ताक्षर मेरा है, मैटर वकीलका होगा; परन्तु वह न्यायाधीशकी दृष्टिमें तो मेरा ही लिखा माना जायेगा। बस, यह सोचते ही मेरे मुखसे वाह! वाह! निकलने लगा। सामने उपस्थित व्यक्ति आश्चर्यविस्फारित नेत्रोंसे मुझे देखने लगा। मैंने कहा—भाई! मुझे तो श्रीगोस्वामीजीकी एक चौपाईका अर्थ आज ही लगा है—ज्ञात हुआ है। वे भी तो लिखते हैं।

कबित बिबेक एक नहिं मोरें।
सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें॥

भाव यह है—इसमें भाव तो श्रीशङ्करजीका है; परन्तु नाम मेरा होगा।

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—मेरे इस ग्रन्थका प्रधान विषय क्या है?

एहि महँ रघुपति नाम उदारा।
अति पावन पुरान श्रुति सारा॥

उदारकी परिभाषा 'भगवद्गुणदर्पण' नामक ग्रन्थमें इस प्रकार है—जो सुपात्र, कुपात्र, देश, कालका ध्यान न देकर आवश्यकतासे अधिक स्वार्थरहित होकर देता है उसे 'उदार' कहते हैं।

पात्रापात्रविवेकेन देशकालाद्यपेक्षणात्।
वदान्यत्वं विदुर्वेदा औदार्यवचसापरे॥

ब्राह्मणसे चाण्डालपर्यन्त और यवन आदि समस्त विधर्मियोंको समानभावसे पालन करनेके कारण किंवा मुक्ति प्रदान करनेके कारण श्रीरामनाममहाराज उदार हैं। वाराहपुराणमें श्रीशङ्करजीने कहा है—हे देवि! एक यवन बैलका व्यापार करते हुए किसी वनमें ठहरा था। वह अत्यन्त वृद्ध था, सङ्ग्रहणी रोगसे पीड़ित था। रात्रिमें शौचके लिए गया। दैवयोगसे—प्रारब्धसे एक शूकरके बच्चेने उसे धक्का दे दिया। वह उसी समय गिरकर मर गया। धक्का लगने के कारण गिरते समय उसके मुखसे 'हरामने मार डाला' 'हरामने मार डाला' ये शब्द निकले। इस 'हराम'के ब्याजसे 'राम' कहनेके कारण वह गोपदके समान भवसागरसे तर गया। भाव यह कि यदि कोई स्नेहपूर्वक रामनामका जप करे तो उसका तो कहना ही क्या है?

दैवाच्छूकरशावकेन निहतो म्लेच्छो जराजर्जरो
हारामेण हतोऽस्मि भूमि पतितो जल्पंस्तनुं त्यक्तवान्।
तीर्णो गोष्पदवद्भवार्णवमहो नाम्नः प्रभावादहो
किं चित्रं यदि रामनाम रसिकास्ते यान्ति रामास्पदम्॥

(वाराहपुराण)

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—मेरा यह ग्रन्थ मौलिक नहीं है अपितु मेरे पूर्ववर्त्ती मननशील महात्माओंने जो श्रीहरिका गुणगान किया है उसी मार्गके अनुसार चलना मेरे लिये सुगम है।

मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई।
तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई॥

फिर कहते हैं—श्रीरामचरित्ररूपी अपार नदीको पार करना है। तैर कर पार जाना मेरे लिये असम्भव है। हाँ, यदि सेतुका निर्माण हुआ हो तो मेरे जैसा सामर्थ्यहीन भी पार कर सकता है। पिपीलिका-चींटी भी तो पुलके सहारे नदीके उस पार धीरे-धीरे पहुँच ही जाती है। बस, अब मेरा मन सन्तुष्ट हो गया, बलिष्ठ हो गया। बलवान् होना

भी चाहिये; क्योंकि बलहीनको भगवत्तत्वकी उपलब्धि नहीं होती है। **'नायमात्मा बल हीनेन लभ्यः'।**

अति अपार जे सरित बर जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं॥

एहि प्रकार बल मनहि देखाई।
करिहउँ रघुपति कथा सुहाई॥

इसके पश्चात् श्रीभगवान्‌का सुयश वर्णन करनेवाले कवियोंकी वन्दना करते हैं। उनमें सर्वप्रथम श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीकी वन्दना करते हैं ***'ब्यास आदि कबि पुंगव नाना'*** इसके पश्चात् श्रीरामचरित्रगान करनेवाले कलियुगके कवियोंको प्रणाम करते हैं।

कलि के कबिन्ह करउँ परनामा।
जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा॥

इनमें महाकवि कालिदास, भवभूति, जयदेव, मुरारी, भोजराज प्रभृति श्रीराम गुणगान करनेवालोंका नाम स्वीकार किया जाता है। तत्पश्चात् संस्कृत भाषाके अतिरिक्त लोकभाषामें श्रीरामचरित्रकी रचना करनेवालोंकी वन्दना भावुक कविने की है।

जे प्राकृत कबि परम सयाने।
भाषाँ जिन्ह हरि चरित बखाने॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगें।
प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागें॥

अन्तमें सर्वश्रेष्ठ आदिकवि महर्षि श्रीवाल्मीकिजीके श्रीचरणकमलोंकी वन्दना करते हैं।

बंदउँ मुनि पद कंजु रामायन जेहिं निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित॥

इसमें नाम न लिखकर केवल उनका कार्य बता रहे हैं। श्रीव्यास आदिने तो रामचरित्रके अतिरिक्त और भी बहुत कुछ लिखा है। परन्तु श्रीवाल्मीकिजीने तो श्रीरामचरित्रके अतिरिक्त कुछ भी नहीं लिखा है। यह इनकी महान् विशेषता है एतावता नामकी जगह ***'रामायन जेहिं निरमयउ'*** लिखते हैं। दूसरा भाव यह भी है—***'रामायण'*** नामसे केवल श्रीवाल्मीकीयरामायणका ही परिज्ञान होता है। अन्य रामायणोंके लिये रचयिता, श्रोता, विषयवस्तुका नाम निर्देश करना पड़ता है। जैसे—भुशुण्डि रामायण, लोमश रामायण, अध्यात्मरामायण, आनन्द रामायण आदि। श्रीगोस्वामीजीके ग्रन्थका नाम तो 'श्रीरामचरितमानस' है। एतावता ***'रामायन जेहिं निरमयउ'*** पदमें श्रीवाल्मीकिके नामका परिज्ञान असन्दिग्ध है।

आगे अविवेकहारिणी श्रीशारदाजी और पापहारिणी श्रीगङ्गाजीकी एक साथ वन्दना करते हैं। दोनोंमें बड़ी समानता है। सबसे बड़ी समानता यह है कि दोनोंका एक द्रवरूप-नदीका रूप आज भी प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है।

पुनि बंदउँ सारद सुरसरिता।
जुगल पुनीत मनोहर चरिता॥
मज्जन पान पाप हर एका।
कहत सुनत एक हर अबिबेका॥

श्रीतुलसीदासजीके जीवनमें शिवाशिव-श्रीपार्वती शङ्करका महान सहयोग रहा है। जनश्रुति यह भी है—करुणामयी श्रीपार्वतीजीने श्रीगोस्वामीजीको पुत्रकी भाँति अपना स्तन्यपान कराया था और श्रीशङ्करजीकी प्रेरणासे ही भाषामें श्रीरामचरितकी रचना हुई। कृतज्ञ कवि कहते हैं कि इन दोनोंका प्रसाद प्राप्त करके चित्तोत्साहपूर्वक श्रीरामचरित्रका वर्णन कर रहा हूँ।

सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ।
बरनउँ रामचरित चित चाऊ॥

अत्यन्त पावनि श्रीअयोध्याजी और कलिकल्मषनाशिनी श्रीसरयूजीकी एक साथ वन्दना करते हैं।

बंदउँ अवध पुरी अति पावनि।
सरजू सरि कलि कलुष नसावनि॥

महर्षि श्रीवाल्मीकिने भी श्रीअयोध्या सरयूका एक साथही वर्णन किया है—

कैलासपर्वते राम मनसा निर्मितं परम्॥
ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः।
तस्मात् सुस्राव सरसः सायोध्यामुपगूहते॥
सरः प्रवृत्ता सरयूः पुण्या ब्रह्मसरश्च्युता।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण १।२४।८—१०)

'अति पावनि' का भाव यह है कि श्रीअयोध्याजी ठाकुरजीकी मस्तक हैं।

विष्णोः पादमवन्तिकां गुणवतीं मध्यञ्च काञ्चीपुरीं,
नाभिं द्वारवतीं वदन्ति हृदयं मायापुरीं योगिनः।
ग्रीवामूल मुदाहरन्ति मथुरां नासाञ्च वाराणसीम्,
एतद् ब्रह्मपदं वदन्ति मुनयोऽयोध्यां पुरीं मस्तकम्॥

(रुद्रयामले)

स्मरण रहे, श्रीअयोध्याजीका महत्त्व श्रीसरयूसे है और श्रीसरयूका महत्त्व श्रीअयोध्यासे है। श्रीसरयूजी श्रीअयोध्याके लिये ही मानसरोवरसे पधारी हैं। इसके पश्चात् श्रीअयोध्याजीके नरनारियोंकी वन्दना करते हैं *'प्रनवउँ पुर नर नारि बहोरी'।* अयोध्याके निवासी तो साक्षात् जगन्नाथस्वरूप हैं—

अयोध्या च परंब्रह्म सरयूः सगुणः पुमान्।
तन्निवासी जगन्नाथः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

आगे श्रीरामजननी श्रीकौसल्याजीकी वन्दना करते हैं। श्रीकौसल्यारूप पूर्व दिशामें श्रीरामचन्द्ररूप चन्द्रका प्राकट्य हुआ है।

बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची।
कीरति जासु सकल जग माची॥
प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू।
बिस्व सुखद खल कमल तुसारू॥

समस्त रानियोंके साथ श्रीदशरथजीकी वन्दना करके श्रीदशरथजीकी स्वतन्त्र वन्दना करते हैं।

बंदउँ अबध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ॥

सत्यप्रेमकी कसौटीपर तो चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजी ही खरे उतरते हैं। सत्यस्नेही तो मछली है।

सुलभ प्रीति प्रीतम सबै कहत करत सब कोइ।
तुलसी मीन पुनीत ते त्रिभुवन बड़ो न कोइ॥
मकर उरग दादुर, कमठ जल जीवन जल गेह।
तुलसी एकै मीन को है साँचलो सनेह॥

(श्रीदोहावलीजी ३२०, ३१८)

रामपद—श्रीदशरथजीका श्रीरामजीमें वात्सल्य भाव है। इस भावमें चरणारविन्दका ध्यान नहीं होता है; परन्तु यहाँ *'सत्य प्रेम जेहि रामपद'* लिखा है। श्रीदशरथजी ध्यान भी 'रामपद'का ही करते हैं—*'अस कहि गे बिश्राम गृहँ रामचरन चितु लाइ'।* इन्होंने भगवान्‌से वरदानमें भी 'पदरति'की ही याचनाकी है।

सुत बिषइक तव पद रति होऊ।
मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ॥

(१।१५१)

श्रीदशरथजीके समधी श्रीजनकजीकी वन्दना करते हैं—श्रीजनकका श्रीरामचरणोंमें गूढ़ स्नेह था। श्रीजनकजीका वास्तविक परिचय तो श्रीतुलसीदासजीने ही दिया है—वे न केवल योगी थे और न भोगी थे, वे तो गूढ़ स्नेही हैं। स्नेहको उन्होंने योग और भोगके आवरणमें छिपा रखा था, परन्तु प्रेम पारखी श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करतेही वह प्रकट हो गया।

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू।
जाहि राम पद गूढ़ सनेहू॥

जोग भोग महँ राखेउ गोई।
राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥

श्रीजनकजीकी वन्दना श्रीरामपरिकरके मध्यमें करनेका भाव यह है—(क) श्रीरामके पिताकी वन्दना करनेके पश्चात् श्रीसीताके पिताकी वन्दना आवश्यक हो गयी। (ख) श्रीदशरथजीकी वन्दनाके बाद उनके समधीकी वन्दना होनी ही चाहिये। (ग) सत्यप्रेमीकी वन्दनाके पश्चात् गूढ़प्रेमीकी वन्दना आवश्यक थी। (घ) पूज्य पं० श्रीरामकुमारजी कहते हैं—श्रीजनकजीको श्रीरामका परिकर समझकर अवधवासियोंके मध्यमें वन्दना की। (ङ) इसके अतिरिक्त और कोई उचित स्थान उनकी वन्दनाका नहीं था। (च) मेरे श्रीमहाराजजी कहते थे—देवियोंको पिताके सम्मानसे प्रसन्नता होती है। अतएव मेरी इस वन्दनासे मेरी आराध्या करुणामयी श्रीमैथिली प्रसन्न होंगी एतावता इस स्थलपर सम्मानपूर्वक वन्दना की गई।

अब श्रीरामजीके भाईयोंकी वन्दना आरम्भ करते हैं, उनमें सर्वप्रथम श्रीभरतजीकी वन्दना करते हैं—

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना।
जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥

श्रीभरतजीका प्रेम तो महान् है ही साथ ही इनके 'नेमव्रत'में भी किञ्चिन्मात्र भी न्यूनता नहीं है। यह विशेष अनुकरणीय है। बिना नियमकी दृढ़ताके प्रेममें स्थिरता नहीं आती है। श्रीभरतकी रहनिकी यही विशेषता है कि प्रेम भी महान् है और नियम तथा व्रत भी अद्वितीय है।

मोहि भावति कहि आवति नहि भरतजू की रहनि।
सजल नयन सिथिल बयन प्रभु-गुन-गन कहनि॥
असन-बसन-अयन-सयन धरम गरुअ गहनि।
दिन दिन पन-प्रेम-नेम निरुपधि निरबहनि॥

(श्रीगीतावली रामायण २।८०)

श्रीलक्ष्मणजीकी वन्दनामें उनके गुणोंमें 'शीतल' शब्दको अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। वन्दनाका प्रथम शब्द ही शीतल है। बाहरसे क्षुब्ध और क्रुद्ध परिज्ञात होनेवाले श्रीलक्ष्मणजी अपने स्वभावसे स्वयं अत्यन्त शीतल हैं। रावणके गुप्तचर शुक सारनके प्रसङ्गका मनन करना चाहिये। श्रीरामचन्द्रजीकी कीर्ति निर्मल पताकाके समान है तथा श्रीलक्ष्मणका यश उसमें दण्डकी भाँति सुशोभित हो रहा है। श्रीलक्ष्मणजी अपने क्रियाकलापोंसे, अपने प्रत्येक विचारोंसे एकमात्र अपने स्वामी श्रीराघवेन्द्रके यशको ऊपर उठाना चाहते हैं। दण्डके बिना पताका धूलिधूसरित हो जाती है। इसी प्रकार श्रीलक्ष्मणके यशदण्डके विना श्रीरामका यश सुरक्षित नहीं हो सकता है। मेघनादके नागपाशसे बँधनेके प्रसङ्गने श्रीरघुपति कीर्ति पताकाको नीचे झुका दिया था। श्रीगरुड़ ऐसे महान् भक्तको भी मोहित कर दिया था।

मोहि भयउ अति मोह प्रभु बंधन रन महुँ निरखि।
चिदानंद संदोह राम बिकल कारन कवन॥

(७।६८ ख)

परन्तु मेघनादका वध करके श्रीलक्ष्मणने पुनः श्रीरघुपति-कीर्तिपताकाको समुन्नत कर दिया। वास्तवमें दण्डको कोई देखे या न देखे परन्तु पताकाको हमारे नेत्रोंका विषय बनानेमें श्रेय तो दण्डको ही है।

बंदउँ लछिमन पद जलजाता।
सीतल सुभग भगत सुख दाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका।
दंड समान भयउ जस जाका॥

श्रीशत्रुघ्नकी वन्दनामें इनका नाम 'रिपुसूदन' है। उनके नामकरणके समय भी त्रिकालज्ञ महात्मा श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—

जाके सुमिरन ते रिपु नासा।
नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥

(१।१९७)

श्रीवाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डका प्रथम श्लोक श्रीशत्रुघ्नका चरित्र निरूपण कर रहा है।

गच्छता मातुलकुलं भरतेन तदानघः।
शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नो नीतः प्रीति पुरस्कृतः॥

(२।१।१)

इस श्लोकमें श्रीशत्रुघ्नके लिये तीन विशेषण प्रयुक्त हैं। इन तीनों विशेषणोंमें श्रीशत्रुघ्नका जीवन दर्शन सन्निहित है। इसको कभी विस्तारसे श्रवण करना चाहिये। 'अनघः' अर्थात् ईर्ष्यारहित हैं। श्रीशत्रुघ्नने कभी यह नहीं सोचा कि श्रीरामजीकी सेवामें मैं क्यों न रहूँ? '**सोदरस्य लक्ष्मणस्य बल वद् रामाश्रय प्रयुक्तेर्ष्या रहितः नित्यशत्रुघ्नः**'। शत्रुघ्न तो और कोई भी हो सकता है; परन्तु ये तो नित्य शत्रुघ्न हैं। राग, द्वेष, काम, मोह आदि जो नित्य शत्रु हैं; ये नित्य शत्रु इनमें नहीं हैं। यह तो सामान्य बात है, श्रीशत्रुघ्न तो इनके निवारक हैं '**नित्यशत्रवः रागद्वेषादयः तन्निवारकः**'। नित्य शत्रुघ्न हैं अर्थात् जितेन्द्रिय हैं। कौन-सा प्राणी होगा जिसे श्रीरामका भुवन मोहन कोटि कोटि कन्दर्पदलन चित्ताकर्षक स्वरूप विमुग्ध नहीं करता है।

कहउ सखी अस को तनुधारी।
जो न मोह यह रूप निहारी॥

(१।२२१)

श्रीरामजी तो चितचोर हैं, मनचोर हैं और नेत्रचोर हैं। परन्तु धन्य हैं श्रीशत्रुघ्न, श्रीराममें आसक्त अपनी नेत्रेन्द्रियोंको, अपने मनको वहाँसे बलात् हटाकर श्रीरामदास भरतकी सेवा करनेके लिये उनके साथ हो लिये। इससे उनका नित्य शत्रुघ्नत्व-जितेन्द्रियत्व सिद्ध है। '**दृष्टिचित्तापहारिणि रामे आसक्तं चक्षुरिन्द्रियं निगृह्य भरतेन सह गतत्वात् जितेन्द्रियत्वं प्रसिद्धम्**' (भूषण टीका) इस 'दासानुदासत्व' की ही 'नित्यशत्रुघ्न' संज्ञा है। तीसरा विशेषण भी महत्त्वपूर्ण है '**प्रीतिपुरस्कृतः**', '**प्रीत्या स्नेहेन पुरस्कृतः युक्तः**' अर्थात् श्रीशत्रुघ्नजी श्रीराम, भरत और लक्ष्मण तीनोंके निरतिशय स्नेहसे युक्त हैं। इन्हीं समस्त भावोंका संक्षिप्त रूप है, श्रीगोस्वामीजीकी वन्दनामें।

रिपुसूदन पद कमल नमामी।
सूर सुसील भरत अनुगामी॥

श्रीहनुमान्जीकी वन्दनामें विलक्षणता यह है—दो बार वन्दना की गई है, एक बार चौपाईमें और दूसरी बार दोहामें। वन्दनामें तीन नामोंका प्रयोग है—महाबीर, हनुमान् और पवनकुमार। सर्वप्रथम महावीर नाम आता है।

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना॥

महावीर—और लोग केवल वीरताके कारण महावीर हो सकते हैं; परन्तु श्रीहनुमान्जी तो गुण और नाम दोनोंसे महावीर हैं। इनकी अभिधा 'महावीर' है। 'महावीर' शब्दसे इन्हींका बोध होता है। वीरताको अनेक प्रकारसे समझाया जा सकता है—(क) शारीरिक वीरतामें ये अकेले ही लङ्काके समस्त राक्षसोंका संहार करनेमें समर्थ हैं। ये अद्वितीय योद्धा हैं तीनों लोकमें।

कौन की हाँक पर चौंक चण्डीस बिधि,
चंड कर थकित फिरि तुरग हाँके।

कौन के तेज बलसीम भट भीम से
भीमता निरखि कर नयन ढाँके॥
दास-तुलसीस के बिरुद बरनत बिदुष,
बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके।
नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन,
कहाँ हनुमान-से बीर बाँके॥

(श्रीकवितावली ६।४५)

(ख) वीरेन्द्र मुकुटमणि श्रीरामचन्द्रजीको जिन्होंने अपने वशमें कर लिया है। उनसे महान् वीर कौन हो सकता है?

अपने बस करि राखे रामू।

(ग) 'वीर' शब्दका अर्थ है '**विशेषेण ईरयति प्रेरयतीति वीरः**' दर्शनार्थी भक्तोंको प्रेरित करके श्रीरामचरणोंमें पहुँचा देते हैं। श्रीविभीषण इसके प्रमाण हैं।

तुम्हरो मन्त्र बिभीषन माना।
लंकेस्वर भए सब जग जाना॥

(श्रीहनुमानचालीसा)

(घ) करुणामय श्रीरामजीको आर्त भक्तोंके ऊपर करुणा करनेके लिये प्रेरित करते हैं। भक्तोंकी करुण गाथा सुनाकर भक्तवत्सल श्रीरामजीके राजीव नयनोंमें प्रेमाश्रुओंका अवतरण करा देते हैं।

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना।
भरि आए जल राजिव नयना॥

(५।३२। १)

बस यही तो श्रीहनुमान्‌जीका कार्य है। महान्‌को-श्रीराम भगवान्‌को भक्तोंके ऊपर करुणा करनेके लिये विशेष प्रेरणा देते हैं। इसीलिये उनका नाम 'महावीर' है। भक्तकवि श्रीविनय पत्रिकाजीमें बड़े भावपूर्ण शब्दोंमें लिखते हैं—***'साहेब कहूँ न राम से तोसे न उसीले'*** अर्थात् हे हनुमान्‌जी! श्रीरामजीके तरह कोई करुणामय स्वामी नहीं है और उनकी कृपा—करुणा प्राप्त करनेके लिये आपकी भाँति 'उसीला' अर्थात् माध्यम नहीं है। श्रीहनुमान्‌जी हमें भी इस कथाके माध्यमसे श्रीसीतारामजीका कृपापात्र बना दें।

श्रीसुग्रीवजी, श्रीजाम्बवान्‌जी, श्रीविभीषणजी और श्रीअङ्गदजी आदि समस्त वानर समाजकी वन्दना करके ***'जे बिनु काम राम के चेरे'*** की वन्दना करते हैं।

इसके अनन्तर भक्तकवि तीन भक्त मुनियोंकी वन्दना करते हैं। उनमें सबसे पहले नाम है व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीका—

सुक सनकादि भगत मुनि नारद।
जे मुनिबर बिग्यान बिसारद॥
प्रनवउँ सबहि धरनि धरि सीसा।
करहु कृपा जन जानि मुनीसा॥

व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी तो पूतनाकी गतिको प्रतिपादित करनेवाले पदको श्रवण करके पागल हो गये—भाव विभोर हो गये। वे बार-बार आर्त्तस्वरमें कहने लगे।

''कंवा दयालुं शरणं व्रजेम''

अर्थात् उन करुणामय श्रीकृष्णके अतिरिक्त त्रिलोकमें कौन दयालु है, जिसकी शरणमें जायें? श्रीसनकादि तो निरन्तर श्रीहरि सङ्कीर्तनमें तत्पर रहते हैं। भगवल्लीलामृतका रसास्वादन करके सदा उसीमें उन्मत्त रहते हैं और एकमात्र भगवत् कथा ही उनका जीवन सार-सर्वस्व है। 'हरिः शरणम्' यह मन्त्र नित्य उनके मुखमें विराजमान रहता है अर्थात् इस मन्त्रका नित्य जप किया करते हैं।

सदा वैकुण्ठनिलया हरिकीर्तनतत्पराः।
लीलामृतरसोन्मत्ताः कथामात्रैकजीविनः॥
हरिः शरणमेवं हि नित्यं येषां मुखे वचः।

(श्रीभागवत माहात्म्य २।४७, ४८)

श्रीनारदजीकी भावमयी भक्ति तो प्रसिद्ध ही है। श्रीसूतजी कहते हैं—अहो! यह देवर्षि श्रीनारद धन्य हैं; क्योंकि यह शार्ङ्गपाणि श्रीहरिकी लीलाको, वीणाकी तन्त्रीको झङ्कृत करते हुए गा-गा करके स्वयं तो आनन्दविभोर रहते ही हैं साथ-साथ सन्तापसन्तप्त जगत्को परमानन्दका आस्वादन कराते रहते हैं।

अहो देवर्षिधन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत्॥

(श्रीमद्भागवतपुराण १।६।३९)

निर्मल बुद्धि प्राप्त करनेके लिये श्रीगोस्वामीजी अपनी आराध्या, रामवल्लभा, नित्य किशोरी, मिथिलेश राजकिशोरी श्रीजानकीजीकी वन्दना करते हैं—

जनकसुता जग जननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुना निधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ।
जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ॥

यह श्रीरामचरितमानसकी गायत्री है। इसका जप सब कर सकते हैं। स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण, चाण्डाल, म्लेच्छ सबका इसमें अधिकार है। गायत्री मन्त्रमें यही प्रार्थना है। '**धियो यो नः प्रचोदयात्**' और श्रीरामचरितमानसमें यहाँ भी ठीक यही प्रार्थना है—'***निरमल मति पावउँ***'। इसके जप करनेसे बुद्धि, शुद्ध और तीव्र होती है। मेरा अनुभूत प्रयोग है। श्रद्धा विश्वासपूर्वक जप करके आनन्द लें।

श्रीमिथिलेशकिशोरी सीताजीकी वन्दना करके श्रीरामजीकी वन्दना करते हैं—

पुनि मन बचन कर्म रघुनायक।
चरन कमल बंदउँ सब लायक॥
राजिवनयन धरे धनु सायक।
भगत बिपति भंजन सुख दायक॥

मनसे ध्यान, वचनसे गुणगान किंवा नामजप और कर्मसे प्रणति निवेदन करते हुये वन्दना करना ही सच्ची वन्दना है। श्रीरामजी 'सर्वं कर्तुं समर्थ' हैं। हाथोंमें धनुषबाण लेकर राजीवनयन प्रभु भक्तोंकी विपत्तिका नाश करके उन्हें परमानन्द प्रदान करते हैं।

श्रीसीतारामजीकी अलग-अलग वन्दना करके अब सम्मिलित वन्दना कर रहे हैं।

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥

गिरा और अर्थका—शब्द और अर्थका नित्य सम्बन्ध होता है। '**नित्यः शब्दार्थ सम्बन्धः**'। इसमें श्रीगोस्वामीजीका भाव यह है कि गिरा और अर्थ अभिन्न होनेपर भी जिस प्रकार भिन्न परिज्ञात होते हैं, उसी भाँति 'सीता' और 'राम' दोनों एक ही अभिन्न तत्त्व हैं। तथापि लीला क्षेत्रमें अवतरित होकर भिन्न परिज्ञात होते हैं। दार्शनिक दृष्टिसे गिरा और अर्थका दृष्टान्त गम्भीर आशयसे परिपूर्ण है, एतावता जल और बीचिके सरल दृष्टान्तसे भी श्रीसीताजी और श्रीरामजीका अभिन्न ब्रह्मतत्त्व निरूपित किया है। महाकवि कालिदासने भी इसी प्रकारकी उपमाका प्रयोग किया है।

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

(रघुवंशमहाकाव्य १।१)

मेरे पूज्यचरण श्रीगुरुदेव एक श्लोक इस प्रसङ्गमें कहते थे।

तत्त्वतो मन्त्रतो वापि रूपतो गुणतोऽपि वा।
न पृथग्भावना यस्य स ज्ञेयो भावुकोत्तमः॥

श्रीसीतारामजीकी सम्मिलित वन्दना करके श्रीगोस्वामीजी श्रीरामनामकी वन्दना करते हैं। इस वन्दनामें भक्त कविने श्रीरामनामके प्रति अपना हृदय स्पष्ट कर दिया है। उनकी श्रीरामनाम भक्ति अपूर्व थी। यह वन्दना विस्तारसे है। नव दोहोंमें, ९१ पङ्क्तियोंमें श्रीरामनामकी वन्दना है। अनेक नामजापकोंके, नामभक्तोंके, उनकी सिद्धियोंके विशिष्ट वर्णन हैं। श्रीगणेशजी, शङ्करजी, पार्वतीजी, महर्षि वाल्मीकिजी, श्रीसनकादि, प्रह्लादजी, ध्रुवजी, श्रीहनुमान्‌जी, अजामिल, गजेन्द्र, गणिका आदि अनेक नामाराधकोंके उदाहरणसे इस प्रसङ्गको अलङ्कृत किया है। इस प्रसङ्गकी प्रथम पङ्क्ति है।

बंदउँ नाम राम रघुबर को।
हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

मैं रघुवरके रामनामकी वन्दना करता हूँ, जो अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाका कारण है। 'रघुवरके रामनाम' लिखनेका आशय यह है—(१) राम शब्दमें अतिव्याप्ति है। साहित्यमें बलराम, परशुराम आदि अनेक रामोंका वर्णन है। ***'कहा राम सन राम'*** पद्मपुराणमें दशावतारोंके वर्णनमें तीन राम—दाशरथि राम, परशुराम और बलराम, रामशब्दसे अभिहित किये गए हैं।

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः।
रामो रामश्च रामश्च कृष्णः कल्की च ते दश॥

इसलिये 'रघुवरका रामनाम' कहा गया है। (२) जिस समय श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचरित-मानसकी रचना आरम्भ की, उस समय महात्मा कबीरके पन्थका विशेष प्रचार था। कबीरने परतम परात्पर परब्रह्मका नाम 'राम' माना और उसके जपका उपदेश करते रहे, परन्तु 'रघुबरके रामका नाम' उसे नहीं मानते थे। उनकी साखी है—

दशरथ कुल अवतरि नहिं आया।
नहिं लंकाके राव सतावा॥

अर्थात् जिस परमात्माका नाम राम है उसने दशरथके घरमें कभी नहीं अवतार लिया। गोस्वामीजी श्रीरामनामकी वन्दनामें आरम्भसे ही इस मतका खण्डन करते हैं। 'रघुबर' के रामनामकी वन्दना करते हुए परब्रह्मके रामनामसे उसकी एकताका निरूपण किया है। श्रीरामनाम महाराज अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके कारण हैं, विधि हरिहरमय हैं। वर्षा ऋतुरूपी भक्तिके श्रावण और भाद्रपद मास हैं। भाव यह है कि श्रीरामनाम और भक्तिमें अभेद सम्बन्ध है।

वरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास॥

भक्तिरूपी सौभाग्यवती स्त्रीके रकार और मकार कुण्डल हैं।

भगति सुतिय कल करन बिभूषन।

श्रीरामनाममहाराज तो श्रीकृष्ण और श्रीबलराम हैं—***'जीह जसोमति हरि हलधरसे'।***

सब प्रकारसे सम्पन्न घर भी पुत्ररत्नके बिना सुशोभित नहीं होता है। इसी प्रकार मुखरूपी घरमें जिह्वारूपी माताकी गोदमें 'रा' और 'म' रूपी बालक न हों तो मुखकी शोभा नहीं होती है।

दंपति रस रसना दसन परिजन बदन सुगेह।
तुलसी हर हित बरन सिसु संपति सहज सनेह॥

(श्रीदोहावली रामायण २४)

श्रीरामजीके चार प्रकारके भक्त हैं। सभी भक्तोंका इन चारों भक्तोंमें अन्तर्भाव माना जाता है। श्रीगीताजीमें भी श्रीकृष्णजीने कहा है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

(श्रीगीताजी ७। १६)

ये चार भक्त उदार हैं। ये चारों किस प्रकार उदार हो सकते हैं? श्रीगीताजीका भाष्य लिखते हुए जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज लिखते हैं—ये चारों इसलिये उदार हैं कि हम कुछ देते हैं तो ये कृपापूर्वक स्वीकार कर लेते हैं।

उदाराः वदान्याः ये मत्तो यत् किञ्चिद् अपि गृह्णन्ति, ते हि मम सर्वस्व दायिनः।

इन चारों भक्तोंको श्रीरामनाममहाराजका ही आश्रय है।

राम भगत जग चारि प्रकारा।
सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥
चहू चतुर कहुँ नाम अधारा।
ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा॥

श्रीगोस्वीमीजी कहते हैं—श्रीरामनाममहाराज सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म दोनोंसे बड़े हैं।

ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥

विषवृक्षकी डाली, पत्ती आदि समाप्त करनेवालेकी अपेक्षा जड़से वृक्षको समाप्त करनेवाला अधिक प्रभावशाली व्यक्ति माना जाता है। इसी प्रकार—अहल्या पत्थर हुई, पत्थर शापसे हुई, श्राप पापके कारण हुआ और पाप कुमतिके कारण हुआ। ध्यान दें, श्रीरामजीने अहल्याको तार दिया, परन्तु श्रीरामनाम महाराजने तो मूलभूत कुमतिको ही सुधार दिया।

राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

श्रीरामनामके प्रभावसे ही श्रीप्रह्लाद भक्तशिरोमणि हो गये, ध्रुवने ध्रुवलोककी प्राप्ति कर ली और श्रीहनुमान्‌जीने तो श्रीरामजीको ही अपने वशमें कर लिया। श्रीरामजी श्रीहनुमान्‌के वशङ्गत और वशंवद हो गये।

श्रीरामनामकी महिमाके समापनकी चौपाई तो गजब की है अर्थात् अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उस चौपाईमें तो मेरी तरहके पामर प्राणियोंको भी मार्ग मिल जायगा, सहारा मिल जायगा—अवलम्ब मिल जायेगा।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

एक बार मैं गीताप्रेस गोरखपुरमें कथा कहनेके लिये गया था। संयोगवश एक दिन मेरी पीठमें दर्द हो गया। उपचार करनेवाले डाक्टरने कहा—गर्म पानीकी थैलीसे सेंक करा लें। मैंने गर्म पानीकी रबरकी थैलीसे रात भर सेंक किया। दूसरे दिन डाक्टर महोदयने पूछा—दर्द कैसा है? मैंने कहा—भैया! दर्द तो समाप्त हो ही गया, दर्दके साथ मेरा भ्रम भी समाप्त हो गया। आपने तो मेरे जीवनकी समस्या ही सुलझा दी—मेरी बहुत बड़ी शङ्काका समाधान हो गया। डाक्टर महोदयने आश्चर्यविस्फारित नेत्रोंसे मुझे देखते हुए पूछा—कैसा भ्रम? कैसी समस्या? मैंने कहा—मुझे भ्रम था कि जब रामनाम जपमें मन नहीं लगता है तब मुझे क्या लाभ होगा? श्रीकबीरदासजीने मेरे भ्रमको पक्का कर दिया था।

माला फेरत जुग भया मिटा न मनका फेर।
करका मनका डार के मनका मनका फेर॥

परन्तु आज समस्याका समाधान हो गया। मेरे सारे भ्रम निर्मूल हो गये। आज मैं यह सोच रहा हूँ—जब ऊपरसे गर्म पानीकी थैलीके सेंकसे भीतरका दर्द नष्ट हो गया तब ऊपरसे बिना मन

लगे भी किया हुआ श्रीरामनाम जप क्या अन्तःकरणके कालुष्यको, मनके पापको नहीं नष्ट कर देगा? अतएव मन लगे या न लगे, ऊपरसे हो या भीतरसे, ढोंगसे हो या सद्भावसे श्रीरामनामका जप अवश्य करना चाहिये। श्रीरामनामके जपसे कल्याण सुनिश्चित है।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

श्रीरामनामका महत्व निरूपण करके भक्तकवि अपने आराध्य करुणामय श्रीरामचन्द्रजीके स्वभावका वर्णन करते हैं। संसारके स्वामी अपने सेवकोंके वचन और कर्मको देखते हैं; परन्तु श्रीरामजी तो अपने भक्तोंके मनको देखते हैं। वाणी और कर्मसे विगड़ जाय तो भी विशेष हानि नहीं है।

बचन बेष तें जो बनै सो बिगरइ परिनाम।
तुलसी मन तें जो बनै बनी बनाई राम॥

(श्रीदोहावलीजी १५४)

भाव यह है कि हृदय अच्छा न हो तो मात्र वचनसे ही सर्वज्ञ श्रीरामजी नहीं रीझते।

मूर्खो वदति विष्णाय बुधो वदति विष्णवे।
नमः इत्येवमर्थञ्च द्वयोरेव समं फलम्॥

(नारद पञ्चरात्र, प्रथमरात्र)

मूर्ख—व्याकरण ज्ञानरहित व्यक्ति '**विष्णाय नमः**' कहता है, जो व्याकरणकी दृष्टिसे अशुद्ध है। वस्तुतः '**विष्णवे नमः**' कहना चाहिये। विद्वान् यही कहकर प्रणाम करता है; परन्तु श्रीठाकुरजी यह देखते हैं कि '**नमः**' का उच्चारण भावपूर्वक कौन कर रहा है। कृपालु प्रभुके ध्यानमें दासकी की हुई त्रुटिकी बात तो आती ही नहीं है। वे तो भक्तके हृदयके एकबार भी आये हुये सुन्दर भावको सौ-सौ बार स्मरण करते हैं।

कहत नसाइ होइ हियँ नीकी।
रीझत राम जानि जन जी की॥
रहति न प्रभु चित चूक किए की।
करत सुरति सय बार हिए की॥

मनकी बात तो श्रीठाकुरजी ही जानते हैं। संसार तो ऊपरकी बात—वचन और कर्मकी बात अर्थात् केवल व्यवहार जानता है; परन्तु विडम्बना यह है—श्रीरामजी मनको देखते हैं उन्हें हम मन नहीं देते हैं, व्यवहार देते हैं और संसार व्यवहार देखता है मनकी बात नहीं समझता, उसे हम मन देते हैं। इस प्रसङ्गमें निम्नाङ्कित दोहे मनन करने योग्य हैं—

रे मन सब सों निरस ह्वै सरस राम सों होहि।
भलो सिखावन देत है निसि दिन तुलसी तोहि॥
सूधे मन सूधे बचन सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि रघुबर प्रेम प्रसूति॥
बेष बिसद बोलनि मधुर मन कटु करम मलीन।
तुलसी राम न पाइऐ भएँ बिषय जल मीन॥
बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥

(श्रीदोहावलीजी)

इसके पश्चात् श्रीरामचरितमानसकी अध्ययन परम्पराका वर्णन करते हैं। भगवान् श्रीशङ्करने इस चरित्रका निर्माण करके कृपापूर्वक श्रीपार्वतीजीको सुनाया। वही चरित्र श्रीशङ्करजीने लोमश ऋषिके माध्यमसे श्रीकाकभुसुण्डिजीको प्रदान किया। उनके द्वारा महर्षि याज्ञवल्क्यने प्राप्त किया। उन्होंने श्रीभरद्वाजजीको विस्तारसे सुनाया।

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा।
बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥

सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा।
राम भगत अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा।
तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—मैंने भी अपने गुरुदेव श्रीनरहर्यानन्दजीसे वही कथा शूकरक्षेत्रमें सुनी—

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—गुरुके द्वारा प्राप्त उस कथाको ही मैं भाषाबद्ध करूँगा।

तदपि कही गुर बारहिं बारा।
समुझि परी कछु मति अनुसारा॥
भाषाबद्ध करबि मैं सोई।
मोरें मन प्रबोध जेहिं होई॥

इसके पश्चात् दो दोहोंमें महाकविने श्रीरामकथा और श्रीरामचरित्रके महत्त्वका विशद वर्णन किया है, मधुर वर्णन किया है, मनन करने योग्य है। मैं उसे प्रणाम करके श्रीरामचरितमानसके प्राकट्यकी चर्चा करता हूँ।

श्री शुभ संवत् १६३१ में मङ्गलमयी श्रीरामनवमी आयी। इस रामनवमीकी विशेषता यह थी कि श्रीरामजीके प्राकट्यकी वेलामें जो योग, लग्न, ग्रह, वार, नक्षत्र, तिथि आदि थे वह सबके सब इस रामनवमीमें विद्यमान थे। इसी पावन तिथिमें श्रीअवधधाममें श्रीरामचरितमानस प्रकाशित हुआ।

संबत सोरह सै एकतीसा।
करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥
नौमी भौम बार मधु मासा।
अवधपुरीं यह चरित प्रकासा॥

श्रीरामनवमीको ही श्रीरामजीका जन्मोत्सव भक्त लोग मनाते हैं। मनाना भी चाहिये; परन्तु श्रीरामजीको, उनकी गुणावलियोंको समझनेकी शक्ति जिस ग्रन्थने दी है उस ग्रन्थकी—श्रीरामचरितमानसकी जयन्ती भी रामनवमीको ही उत्साहपूर्वक मनानी चाहिये। इस प्रकार स्थान शुद्धि और समयशुद्धिका निरूपण करके अब कहते हैं—रामनवमीके ही दिन इस विमल कथाका आरम्भ हुआ।

बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा।
सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥

इस ग्रन्थके प्राकट्यका प्रयोजन भी निरूपित कर दिया कि इसके श्रवण करते ही काम, मद और दम्भ विनष्ट हो जाते हैं।

अब ग्रन्थके नामकरणका प्रसङ्ग वर्णन करते हैं। श्रीरामजीका नामकरण श्रीवसिष्ठजीने किया। उसी प्रकार इस ग्रन्थका नाम भगवान् भूतभावन श्रीशङ्करजीने प्रसन्नतापूर्वक किया।

रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥
तातें रामचरितमानस बर।
धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर॥

नामकरणके पश्चात् मानस प्रसङ्गका रहस्यमय निरूपण है। अत्यन्त महत्वपूर्ण और गम्भीर प्रसङ्ग है। मानस सरके चार घाटोंका बहुत सुन्दर वर्णन है। पूर्व दिशामें 'दैन्यघाट' है जिसपर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी बैठकर सन्त समाज किंवा अपने मनको कथा सुना रहे हैं। पश्चिम दिशामें 'ज्ञानकाण्ड घाट' है जिसपर बैठकर भगवान् श्रीशङ्करजी श्रीपार्वतीजीको कथा सुना रहे हैं। उत्तर दिशामें 'उपासनाकाण्ड घाट' है जहाँ बैठकर श्रीकाकभुसुण्डिजी श्रीगरुड़जीको

कथा सुना रहे हैं। दक्षिण दिशामें 'कर्मकाण्ड घाट' है वहाँ श्रीयाज्ञवल्क्यजी श्रीभरद्वाजजीको कथा सुना रहे हैं। इस प्रकार श्रीगोस्वामीजीने अपने मानस सरमें चार घाट बनाकर प्रत्येक घाटके लिये वक्ता और श्रोता नियत कर दिये हैं। जिसमें मार्ग अलग-अलग होनेपर भी प्राप्य स्थान एक ही है।

सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥

इस प्रकार मानस सरका प्रसङ्ग निरूपण करके मानसरोवरसे निकली हुई श्रीसरयूजीका वर्णन करते हैं।

चली सुभग कबिता सरिता सो।
राम बिमल जस जल भरिता सो॥

श्रीसरयूजी मानसरोवरसे निकलीं जिनमें श्रीठाकुरजीके नेत्रोंका मङ्गलमय, करुणामय जल भरा हुआ है। कविता-सरयू कविके हृदयसे निकलीं जिनमें श्रीरामजीका सुयशरूपी जल भरा है। एतावता दोनों पुनीत हैं, दोनों ब्रह्मद्रव हैं, दोनों सुमानसनन्दिनी हैं।

नदी पुनीत सुमानस नंदिनि।
कलिमल तृन तरु मूल निकंदिनि॥

(क) श्रीसरयूजीकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनके तटपर श्रीअयोध्याजी हैं। श्रीरामकथाकी अनुपम विशेषता यह है कि उससे सम्बद्ध सन्तोंकी सभा है। सन्त सभा और श्रीअयोध्याजी दोनों अनुपम हैं। (ख) दोनों ही श्रीसीतारामजीके आनन्दके लिये उनका विहारस्थल है। (ग) श्रीरामकथाका जो महत्व सन्त समाजमें है वह अन्यत्र नहीं है। इसी प्रकार श्रीसरयूजीका जो महत्त्व श्रीअवधमें है वह अन्यत्र नहीं है। (घ) श्रीरामकथाकी शोभा सन्त समाजसे है और सन्तसमाजकी शोभा श्रीरामकथासे है। इसी प्रकार श्रीअयोध्याजी श्रीसरयूजीकी शोभा है और श्रीसरयूजीसे श्रीअयोध्याजीकी शोभा है। नदीके दोनों तटपर नगर, ग्राम और पुरवे होते हैं। श्रीरामकथारूपी, श्रीसरयूजीके तटपर तीन प्रकारके श्रोता निवास करते हैं। तीन प्रकारके श्रोताओंके विषयमें सन्तोंके अलग-अलग विचार हैं। (क) ***सुनहि विमुक्त विरत अरु विषयी।*** (ख) सात्विक, राजस और तामस। (ग) सूपकी भाँति, चलनीकी भाँति और खेतकी नालीकी भाँति। काष्ठजिह्वा स्वामी कहते हैं—उत्तम श्रोता सूपकी तरह सारग्राही होते हैं, मध्यम श्रोता चलनीकी भाँति असारग्राही होते हैं और निकृष्ट श्रोता खेतकी नालीकी भाँति होते हैं जो खेत सींचते समय गीली तो हो जाती है, परन्तु तुरन्त ही सूख जाती है। इसी प्रकार ये श्रोता सुनते तो हैं; परन्तु धारण और मनन नहीं करते हैं।

श्रोता त्रिबिध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल।
संतसभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल॥

श्रीसरयूजीका पर्यवसान श्रीगङ्गाजीमें होता है अर्थात् श्रीसरयूजी कुछ दूर चलकर छपराके पास श्रीगङ्गाजीमें मिल जाती हैं। श्रीगङ्गाजी भक्ति हैं ***'राम भगति जहँ सुरसरि धारा'*** भाव कि श्रीरामकथाका पर्यवसान श्रीरामजीकी लोकपावनी भक्तिमें ही है। श्रीसरयूजी वसिष्ठनन्दिनी—वासिष्ठी हैं, श्रीगङ्गाजी भगीरथनन्दिनी—भागीरथी हैं। जिस प्रकार गुरुकन्याको देखकर राजकन्या उसे आदरपूर्वक अपने अङ्कमें ले लेती है, इसी प्रकार श्रीगङ्गाजीने श्रीसरयूजीको अपनेमें विलीन कर लिया—अपना बना लिया। अथवा श्रीसरयूजी नेत्रजा हैं—

श्रीहरिके नेत्रोंसे निकली हैं **'साक्षान्नारायणस्यैव आनन्दाश्रुसमुद्भवा'**। श्रीगङ्गाजी पादोद्भवा हैं—श्रीहरिके श्रीचरणोंसे निकली हैं **'नखनिर्गता मुनिवन्दिता त्रैलोक पावनि सुरसरी'** जो जल नेत्रसे प्रवाहित होगा वह जल चरणकी ओर ही जायेगा। एतावता श्रीसरयूजीका ही श्रीगङ्गामें जाना उचित है।

रामभगति सुरसरितहि जाई।
मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥

इस प्रकार पहले श्रीरामचरितमानसका रूपक मानससरसे बाँधकर मानसका स्वरूप ***'जस मानस जेहि बिधि भयउ'*** से ***'अस मानस मानस चख चाही'*** तक निरूपण किया। इसके पश्चात् ***'चली सुभग कबिता सरिता सो'*** से आरम्भ करके श्रीरामचरितमानस काव्यका रूपक श्रीसरयू नदीसे बाँधकर वर्णन किया। यह भी अतिशय गम्भीर प्रसङ्ग है। समयाभावसे विवशताजन्य प्रणाम निवेदन करके श्रीयाज्ञवल्क्य और श्रीभरद्वाज दोनों महर्षियोंका मिलन और उनका सुन्दर संवाद निरूपण करते हैं। श्रीभरद्वाज मुनि तीर्थराज प्रयागमें निवास करते हैं। वे श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणोंके महान् अनुरागी हैं। माघकी मकर संक्रान्तिके पावनपर्वपर उनके पावन आश्रममें मननशील महात्मा और वेदमन्त्र द्रष्टा ऋषियोंका सङ्गम होता था।

तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा।
जाहिं जे मज्जन तीरथराजा॥

प्रतिवर्ष इस प्रकार आनन्द होता था। स्नान करके सबलोग-महर्षिलोग चले जाते थे। एक बार मुनियोंके प्रस्थानके पश्चात् श्रीभरद्वाजजीने श्रीयाज्ञवल्क्यजीको आदरपूर्वक रोक लिया और उनका आदरपूर्वक पादप्रक्षालन करके उन्हें पावन आसनपर बिठाया।

जागबलिक मुनि परम बिबेकी।
भरद्वाज राखे पद टेकी॥
सादर चरन सरोज पखारे।
अति पुनीत आसन बैठारे॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी यज्ञोंके प्रधान वक्ता थे **'यज्ञस्य वल्को वक्ता'**। महर्षि भरद्वाजने पूछा—हे प्रभो! 'दशरथनन्दन श्रीराम' और 'श्रीशङ्करके आराध्य भगवान् राम'में क्या अन्तर है? ये दोनों एक हैं अथवा भिन्न-भिन्न हैं।

रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही।
कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही॥
एक राम अवधेस कुमारा।
तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा।
भयउ रोषु रन रावनु मारा॥
प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि॥
जैसें मिटै मोर भ्रम भारी।
कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी॥

प्रश्न सुनकरके महर्षि प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—आप बहुत चतुर हैं, प्रश्न करनेकी कलामें परम निपुण हैं। आप मन, वचन और कर्मसे पक्के रामभक्त हैं, परन्तु आपने अत्यन्त अज्ञानीकी भाँति प्रश्न किया है। मैं समझ गया, आप मर्मज्ञ श्रोता हैं।

रामभगत तुम्ह मन क्रम बानी।
चतुराई तुम्हारि मैं जानी॥
चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा।
कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा॥

अच्छा, अब आप श्रीरामकथा सुनें। श्रीरामचन्द्रजीकी कथा अमृतस्रावी चन्द्रमाकी किरणकी भाँति है, जिसका सन्तरूपी चकोर पान किया करते हैं।

रामकथा ससि किरन समाना।
संत चकोर करहिं जेहि पाना॥

हे भरद्वाजजी! इस सन्दर्भमें हम आपको श्रीशङ्कर-पार्वतीका संवाद सुनाते हैं।

एक बार त्रेता जुग माहीं।
संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥

चारों युगोंमें दूसरा युग त्रेतायुग है। इसमें श्रीठाकुरजीके तीन अवतार होते हैं। आरम्भमें श्रीवामन अवतार, मध्यमें श्रीपरशुरामावतार और अन्तमें श्रीरामावतार। अथवा—एक अग्निका इस युगमें तीन भेद हुआ। दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि।

त्रीन् भेदान् एति प्राप्नोतीति त्रेता।
त्रिधा प्रणीतो ज्वलनो मुनिभिर्वेदपारगैः।
अतस्त्रेतात्त्वमापन्नो यदेकस्त्रिविधः कृतः॥

(श्रीहरिवंशे)

त्रेतायुगकी कथा है, एकबार श्रीशङ्करजी श्रीसतीजीको साथमें लेकर महर्षि अगस्त्यके पास गये। वहाँ बहुत सुन्दर सत्सङ्ग हुआ। श्रीरामकथाके मर्मज्ञ महर्षि अगस्त्यने श्रीरामकथाका वर्णन किया और भक्तिरस मर्मज्ञ श्रीशङ्करजीने श्रीरामभक्तिका निरूपण किया। कुछ दिन अगस्त्याश्रममें सत्सङ्ग करके, उनसे विदा माँग करके श्रीसतीके साथ श्रीशङ्करने प्रस्थान किया।

मुनि सन बिदा माँगि त्रिपुरारी।
चले भवन सँग दच्छकुमारी॥

उसी समय पूर्णब्रह्म परमात्माने रघुवंशमें अवतार लिया था। वे अविनाशी उदासी वेष धारण करके दण्डकारण्यमें परिभ्रमण कर रहे थे। उसी मार्गसे जाते हुए श्रीशङ्कर सोचते हैं—मेरे आराध्यके, मेरे परम प्रियतमके, मेरे स्वामीके दर्शन कैसे होंगे? भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान् श्रीरामजीने उसी समय उसी स्थलपर उन्हें दर्शन दिया। उस समय श्रीसीताजीका हरण होगया था। भगवान् ***'हा गुन खानि जानकी सीता'*** कहकर करुणक्रन्दन कर रहे थे—विलाप कर रहे थे। वे पर्वतस्थ वृक्षोंसे, वनकी लताओंसे पूछते हुये कह रहे थे—मैं शोकाग्निदग्ध दाशरथि राम हूँ। क्या तुमलोगोंने मेरी सुन्दरी सीताको देखा है? न जाने मेरी प्राणेश्वरीको कौन ले गया? अरे तुम कौन हो? तुम लोगोंमेंसे किसीने देखा है?

रे वृक्षाः पर्वतस्था गिरिगहनलता वायुना वीज्यमाना
रामोऽहं व्याकुलात्मा दशरथतनयः शोकशुक्रेण दग्धः।
बिम्बोष्ठी चारुनेत्री सुविपुलजघना बद्धनागेन्द्रकाञ्ची,
हा सीता केन नीता मम हृदयगता को भवान् केन दृष्टा॥

(हनुमन्नाटक ५। १०)

इस प्रकार विलाप करते हुए अपने आराध्यको देखकर श्रीशङ्कर अति प्रसन्न हुये।

'उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा'। श्रीरामजीके दर्शनके लिये वे अत्यन्त व्याकुल थे। अतः अत्यन्त हर्ष हुआ। किंवा 'मेरी उत्कट लालसा समझकर मेरे कृपालु स्वामीने कृपा करके मुझे दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया—निहाल कर दिया'। यह सोचकर प्रभुकी भक्तवत्सलताका अनुमान करके विशेष हर्ष हुआ। कुअवसर—उचित समय न समझकर निकट जाकरके परिचय नहीं किया; परन्तु नेत्र भरकर अपने स्वामीका दर्शन कर लिया। नेत्रघटको छबिसिन्धु जलसे

परिपूर्ण कर लिया। किंवा पुनः ऐसा अवसर नहीं मिलेगा, सम्प्रति निकट एकान्त है अतः नेत्र भरकर अवलोकन किया। किंवा अपने नेत्रोंमें अपने स्वामीको भर लिया, अब किसी और के दर्शनकी अभिलाषा ही समाप्त हो गयी। किंवा जब नेत्र श्रीरामरूपसे भरे रहेंगे तब कामादि विकार दृष्टिगोचर ही नहीं होंगे।

संभु समय तेहि रामहि देखा।
उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा॥
भरि लोचन छबिसिंधु निहारी।
कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी॥

एतावता श्रीरामचन्द्रजीको 'सच्चिदानन्द' कहकर प्रणाम करेंगे। यद्यपि प्रभुमें सम्प्रति सत् चित् आनन्द तीनों का ही अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है। जब वे अश्रुवर्षण करते हुए रुदन कर रहे हैं तब 'आनन्द' कहाँ है? जब वे जड़ चेतनसे श्रीसीताजीका पता पूछ रहे हैं तब 'चित्' कहाँ है? और जब वे विरह व्याकुल हैं तब 'सत्' कहाँ है? वास्तवमें श्रीशङ्करजीकी दृष्टिमें वे सच्चिदानन्द हैं। उन्हें उनमें विकारके दर्शन नहीं हुये, निर्विकारमें विकार सम्भव ही नहीं है। श्रीशङ्करजीको भगवान्‌की जगत्‌को पवित्र करनेवाली लीलाके दर्शन हुये। एतावता उनके मुखसे सहसा निकल पड़ा।

जय सच्चिदानंद जग पावन।
अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥

ऐसा कहकर कामारि श्रीशङ्कर चल पड़े। 'कामारि' को कामजन्य विकारका दर्शन कैसे सम्भव हो सकता है? जाते समय मार्गमें प्रभुकी करुणाका अनुभव करके उनका शरीर रोमाञ्च कण्टकित हो रहा था ***'पुनि पुनि पुलकत कृपा निकेता'।***

श्रीठाकुरजीके जिस स्वरूपको देखकर भगवान् शङ्करके मनमें अमल, अलौकिक प्रेम उत्पन्न हुआ। उसी स्वरूपको देखकर और अपने पति श्रीशङ्करजीकी प्रेमविभोर स्थिति का अनुभव करके श्रीसतीके मनमें महान् सन्देह उत्पन्न हो गया ***'उर उपजा संदेहु बिसेषी'।*** श्रीसती सोचती हैं—मेरे पति जगद्वन्द्य हैं, उन्होंने एक राजाके बालकको प्रणाम किया, मात्र प्रणाम ही नहीं किया अपितु 'सच्चिदानन्द' भी कहा। उनकी छविको देखकर सम्प्रति भी प्रेमविभोर हैं। यदि ये भगवान् विष्णु हैं तो वे भी श्रीशङ्करकी ही भाँति सर्वज्ञ हैं। वे ज्ञानधाम, रमापति, असुरारि अनजानकी भाँति स्त्रीको क्यों खोजेंगे? परन्तु श्रीशङ्करजीकी वाणी असत्य भी नहीं हो सकती। इस प्रकार श्रीसतीके मनमें अपार संशय उत्पन्न हो गया ***'अस संसय मन भयउ अपारा'*** यद्यपि श्रीसतीने अपने मनका संशय प्रकट नहीं किया, परन्तु अन्तर्यामी श्रीशङ्करजीने सब कुछ जान लिया और उन्होंने प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्दप्रमाणसे उन्हें समझानेका प्रयास किया। ***'जासु कथा कुंभज रिषि गाई'*** इत्यादि प्रत्यक्ष प्रमाण है ***'सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा'*** यह अनुमान प्रमाण है। ***'कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं'*** यह शब्द प्रमाण है। अनेक प्रकारसे समझानेपर भी श्रीसतीका सन्देह नष्ट नहीं हुआ तब श्रीशङ्करजीने कहा—अपने अतिसन्देह अर्थात् भारी मोह और भ्रमका अपाकरण करनेके लिये तुम स्वयं जाकर उनकी परीक्षा क्यों नहीं ले लेतीं? तुम्हारे पुनः आनेतक मैं वटवृक्षकी छायामें बैठकर प्रतीक्षा करूँगा।

जौं तुम्हरें मन अति संदेहू।
तौ किन जाइ परीछा लेहू॥

तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं।
जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं॥

सतीजी विचारकर परीक्षा लेनेके लिये कुछ आगे बढ़कर श्रीसीताजीका रूप धारण करके श्रीरामजीके आगे चलीं। उनके सीतारूपसे श्रीलक्ष्मणको भ्रम हो गया; परन्तु श्रीरामजीको भ्रम नहीं हुआ। सर्वदर्शी, सर्वान्तर्यामी, देवताओंके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी सतीजीका कपट जान गये। वे परीक्षा लेनेके लिये आई थीं अतः प्रभुने परीक्षा दी। हाथ जोड़कर पिताका नाम ग्रहण करते हुए अपना नाम लेकर अभिवादन किया।

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू।
पिता समेत लीन्ह निज नामू॥

अभिवादनकी यही सनातन परम्परा है **'अभिमुखीकरणाय वादनं गोत्रनामोच्चारणपूर्वक नमस्कारः'**। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक प्रणाम करनेवालेकी और ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, साधनवृद्ध तथा अनुभववृद्धोंकी सेवा करनेवालोंकी आयु, विद्या, यश और बल बढ़ जाते हैं।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि सम्प्रवर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशो बलम्॥

(मनुस्मृति)

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामजीने अभिवादन करके पूछा—आज आप इस बीहड़वनमें अकेले किस कारण घूम रही हैं, धर्मध्वज श्रीशङ्करजी कहाँ हैं?

कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू।
बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

परीक्षा पूर्ण हो गयी। सतीजीके हृदयके सन्देहकी, भ्रमकी, मोहकी निवृत्ति होगयी, परन्तु उसके स्थानपर हृदयमें अति सङ्कोच, भय और महान् सोच उत्पन्न हो गया। उनका हृदय दारुणदाहसे संदग्ध होने लगा।

राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदय बड़ सोचु॥

श्रीठाकुरजीने अपने प्रभावका भी कुछ दर्शन कराया। कई झाँकियाँ दिखायीं। सतीने देखा—उनके आगे श्रीसीता और लक्ष्मणके साथ श्रीरामजी हैं। जब पीछे मुड़कर देखा तब वहाँ भी श्रीलक्ष्मण सीताजीके साथ प्रभु विद्यमान थे। ऊपर नीचे सभी ओर—दशों दिशाओंमें प्रभुके दर्शन हो रहे हैं ***'जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना'***। भाव कि प्रभुने बताया—हमारा वियोग किसी देश में, किसी कालमें कदापि कथमपि नहीं होता है। हम तीनों सदा साथ-साथ रहते हैं और हम सर्वत्र हैं। देश, काल, अवसरका हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं है। सतीजीने आगे देखा—श्रीशङ्करजी, श्रीब्रह्माजी, और श्रीविष्णुजी एवं अन्य सब देवता प्रभुकी वन्दना एवं सेवा कर रहे हैं। इससे प्रभुने बताया—हम समस्त देवताओंके स्वामी हैं। आगे देखा कि ***'सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते'***। प्रभुने कहा—हे देवि! जब हमारे सेवकोंको स्त्रीका वियोग नहीं होता है तब हमें कैसे हो सकता है? सतीका हृदय काँपने लगा, देहाध्यास समाप्त हो गया, मार्गमें ही नेत्र बन्द करके बैठ गयीं। कुछ देरके बाद जब आँखें खोलीं तब कुछ नहीं दिखाई पड़ा। स्थिति पूर्ववत् हो गयी।

हृदय कंप तन सुधि कछु नाहीं।
नयन मूदि बैठीं मग माहीं॥
बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी।
कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी॥

प्रभुने कहा—देखो, हमारा आविर्भाव और

तिरोभाव भी होता है, हम जन्म मरणसे रहित हैं।

श्रीसती भगवान् शङ्करके पास गईं। श्रीशङ्करने हँसकर पूछा—कहो कुशलतापूर्वक परीक्षा ले आईं?

गईं समीप महेस तब हँसि पूछी कुसलात।
लीन्हि परीक्षा कवन बिधि कहहु सत्य सब बात॥

श्रीशङ्करजी अत्यन्त सरल हैं—भोले हैं। उन्हें इसका दुःख नहीं है कि इन्होंने हमारी बात नहीं मानी, वे हँसकर ही बोले। हाँ, उन्हें यह शङ्का अवश्य है कि सती असत्य भाषण कर सकती हैं एतावता कहते हैं ***'कहहु सत्य सब बात'***। किंवा—सतीजीके भयभीत भावको देखकर हँसकर कहते हैं—***'कहहु सत्य सब बात'।*** अथवा—मेरी बात पर अविश्वास करके एक अपराध कर चुकी हो, असत्य बोलकर दूसरा अपराध न करलेना इसलिये कहते हैं—

सत्य कहहु सब बात।

श्रीसतीने कहा मैंने कुछ भी परीक्षा नहीं ली अपितु आपकी भाँति प्रणाम करके चली आयी।

कछु न परीक्षा लीन्हि गोसाईं।
कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं॥

श्रीशङ्करजीको श्रीसतीकी बात पर विश्वास नहीं हुआ एतावता वे ध्यानके द्वारा देखकर सतीका समस्त चरित्र जान गये।

तव संकर देखेउ धरि ध्याना।
सती जो कीन्ह चरित सबु जाना॥

श्रीरामजी सतीका कपट बिना किसी साधनके अनायासेन जान गये, परन्तु उसीको जानने के लिये श्रीशङ्करको ध्यानावस्थित होना पड़ा। यह अन्तर्मनन करने योग्य है। इससे यह सिद्ध हो गया कि श्रीरामजीके अतिरिक्त कोई सर्वज्ञ नहीं है, यदि किसीमें सर्वज्ञताके दर्शन होते हैं तो वह श्रीरामकृपासे ही है, यह समझना चाहिये। श्रीरामजीका ज्ञान निरावरण ज्ञान है, इनके अतिरिक्त सबका ज्ञान सावरण है।

श्रीसीताजीका वेष धारण करनेके कारण श्रीशङ्करजीके हृदयमें विशेष विषाद समुत्पन्न हो गया। उन्होंने भगवत् प्रेरणासे निश्चय कर लिया।

एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं।
सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं॥

श्रीगोस्वामीजी संसारको शिक्षा देते हुए लिखते हैं।

जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि।
बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि॥

इस प्रसङ्गमें श्रीभिखारीदासजीका एक पद मनन करने योग्य है।

दास परस्पर प्रेम लखौ गुण क्षीर को नीर मिले सरसात है।
नीर बिकावत आपन भाव जाइ जहाँ जहँ क्षीर विकात है॥
पावक जारन क्षीर लग्यो तब नीर जरावत आपन गात है।
नीर क पीर निवारिबे को क्षीर घरीहु घरी उफनात है॥

भगवान् श्रीशङ्कर कैलास पहुँचकर समाधिस्थ हो गये। सती कहीं अन्यत्र नहीं गईं, उन्होंने किसीसे अपना दुःख निवेदन भी नहीं किया। वे भीतर ही भीतर पतिके परित्यागके भारी दुःखसे जल रही हैं। उनका हृदय कुम्हारके आँवेकी भाँति अधिक-अधिक तप रहा है।

तपइ अवाँ इव उर अधिकाई।

भाव कि जिस प्रकार कुम्हारकी भट्ठीकी आग प्रकट नहीं होती है उसी प्रकार सतीजी अपना दुःख प्रकट नहीं करती हैं, भीतर ही भीतर अपनेको कुम्हारके बर्तन की भाँति जला रही हैं। जलते-जलते सत्तासी हजार वर्ष व्यतीत हो गये। श्रीशङ्करजीने अपनी समाधिका परित्याग

कर दिया। 'राम-राम' इस प्रकार स्मरण करने लगे।

बीतें संबत सहस सतासी।
तजी समाधि संभु अबिनासी॥
राम नाम सिव सुमिरन लागे।
जानेउ सतीं जगतपति जागे॥

उसी समय सतीके पिता दक्ष यज्ञ कर रहे थे। उसमें सम्मिलित होनेके लिये श्रीविष्णु, ब्रह्मा और शङ्करजीके अतिरिक्त समस्त देवता अपना-अपना विमान सजाकर चले जा रहे थे।

बिष्नु बिरंचि महेसु बिहाई।
चले सकल सुर जान बनाई॥

देवताओंकी सुन्दरियाँ कल गान कर रही थीं। यज्ञमहोत्सवकी बात सुनकर सतीके शुष्क मनमें भी तनिक प्रसन्नता हुई। उन्होंने भय, सङ्कोच और प्रेमसे भीगी वाणीमें श्रीशङ्करजीसे कहा—हे कृपालो! मेरे पिताके भवनमें महान् उत्सव है मुझे अपनी भवक्षिति—जन्मभूमि देखनेकी भी लालसा है। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं भी उसे सादर देखने जाऊँ।

पिता भवन उत्सव परम जौं प्रभु आयसु होइ।
तो मैं जाउँ कृपायतन सादर देखन सोइ॥

भगवान् श्रीशङ्करने उन्हें आज्ञा नहीं दी, आज्ञा न देनेमें भी सतीजीका कल्याण ही था, परन्तु श्रीसती रोकनेपर भी प्रस्थान कर गयीं।

पिता भवनमें जानेपर पिताने तो बात भी नहीं की। दक्षके डरसे चाहते हुये भी किसीने उनका आदर नहीं किया। हाँ, एक माता अवश्य आदरपूर्वक मिलीं, बहनें व्यङ्गकी हँसी हँसते हुये मिलीं। इन व्यवहारोंसे श्रीसती अनमनी हो गयीं। जब उन्होंने यज्ञका दर्शन किया, तब उन्हें अपने पतिकी बात ध्यानमें आगयी कि उन्होंने यहाँ आनेसे क्यों रोका था। यज्ञमें श्रीशङ्करजीका भाग न देखकर, उनका अपमान समझकर उनके मनमें अत्यन्त क्रोध हुआ। उस क्रोधसे मानों वे समस्त लोकोंको भस्म कर देंगी।

अरुद्रभागं तमवेक्ष्म चाध्वरं
पिता च देवे कृतहेलनं विभौ।
अनादृता यज्ञसदस्यधीश्वरी
चुकोप लोकानिव धक्ष्यती रुषा॥

(श्रीमद्भागवत ४। ४। ९)

कुद्ध होकर श्रीसतीने कहा मेरा अज्ञानी पिता दक्ष मङ्गलरूप भगवान् शिवकी निन्दा करता है एतावता वह अमङ्गलरूप है '**पवित्रकीर्तिं तमलङ्घ्यशासनं भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः**'। श्रीसतीने कहा—हा हंत! इस अमङ्गलमय शिवनिन्दक दक्षका मुझसे सम्बन्ध है, क्योंकि मेरा यह शरीर दक्ष शुक्र सम्भूत है एतावता इसका सम्बन्ध समाप्त करनेके लिये मैं इस शरीरको सद्यः समाप्त कर दूँगी। एक पल भी भगवन्निन्दकका सम्बन्ध हमें अभीष्ट नहीं है।

पिता मंदमति निंदत तेही।
दच्छ सुक्र संभव यह देही॥
तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू।
उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू॥
अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं
न धारयिष्ये शितिकण्ठगर्हिणः।

(श्रीभागवत ४। ४। १८)

इस प्रकार कहकर श्रीसतीने योगाग्निमें अपने शरीरको स्वाहा कर दिया।

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा।
भयउ सकल मख हाहाकारा॥

ददर्श देहो हतकल्मषः सती
सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना।

(श्रीभागवत ४। ४। २७)

श्रीसतीजी चार प्रकारकी अग्नियोंमें जलीं थीं। पहले तो सत्तासी हजार वर्ष पर्यन्त अपने परम प्रियतम प्राणेश्वर श्रीशङ्करजीकी विरहाग्निमें जलीं ***'तपइ अवाँ इव उर अधिकाई'।*** दूसरे अपने प्राणप्रिय श्रीशङ्करजीके अपमानकी अग्निमें जलीं ***'प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ'।*** तीसरे पतिके अपमानसे समुत्पन्न प्रचण्ड क्रोधकी अग्निमें जलीं ***'समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा'*** और अन्तमें चौथे योगाग्निसे अपने शरीरको जला ही दिया।

श्रीनारदजीसे समाचार पाकर श्रीशङ्करजीको महान् क्लेश और क्रोध हुआ। उन्होंने वीरभद्रको भेजकर दक्षके यज्ञका विध्वंस करवा दिया। परन्तु महर्षि भृगु उस यज्ञके प्रभावसम्पन्न आचार्य थे। वे सप्तर्षियोंमें एक थे, ब्रह्माजीके मानसपुत्र थे एतावता उन्होंने यज्ञकी रक्षा की।

सती मरनु सुनि संभु गन लगे करन मख खीस।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस॥

श्रीसती परीक्षा करनेके पश्चात् भगवान् श्रीरामसे अत्यन्त प्रभावित हो गयीं। श्रीरामजीके प्रति उनकी गम्भीर निष्ठा थी, वे उन्हें अपना सर्वसमर्थ आराध्य मानती थीं। जब विपत्ति असह्य हो जाती है तब वे विपत्ति निवारणके लिये श्रीरामजीकी शरणमें जाती हैं। जब शङ्करविरह असह्य हो गया तब भी उन्होंने प्रभुसे ही याचनाकी थी।

जौं प्रभु दीनदयालु कहावा।
आरति हरन बेद जसु गावा॥
तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी।
छूटउ बेगि देह यह मोरी॥

(१। ५९)

जीवनकी अन्तिम बेलामें भी उन्हें भगवान् श्रीरामका स्मरण आया। भक्तवत्सल भगवान् उनके सन्निकट पहुँच गये और बोले—हे देवि! मेरे स्वरूपकी जिज्ञासामें आपने महान् कष्ट उठाया। पतिकी विरहाग्निमें जलीं। हे तपस्विनि! हे पतिव्रते! हे शङ्करप्रिये! आज जीवनके अन्तिम क्षणोंमें आपकी किसी भी अभिलाषाको पूर्ण करके मैं स्वयं धन्य हो जाऊँगा। आप अपनी आन्तरिक अभिलाषाको निःसङ्कोच बतावें। श्रीहरिकी वाणी सुनकर श्रीसतीकी आँखोंसे झर-झर आँसू बरस पड़े। श्रीसतीने कहा—हे भक्तवाञ्छाकल्पतरो! हे करुणामय प्रभो! आपके श्रीचरणोंमें मेरी यही याचना है—जिस पतिने मेरा परित्याग कर दिया, जिनके लम्बे चौड़े वियोगमें मैं तिल-तिल करके जली हूँ, जो अपनी प्रतिज्ञापालनमें सुदृढ़ हैं, और जो नियमव्रत पालन करनेमें बड़े कठोर हैं; हे करुणामय! मुझे दुःख है कि मैं उनकी सेवा न कर सकी अतएव मेरी अन्तिम अभिलाषा है कि जन्म जन्मान्तरमें कृपालु शङ्कर ही मुझे पति रूपमें प्राप्त हों और उनके श्रीचरणोंमें मेरा अनुराग दृढ़ रहे।

सतीं मरत हरि सन बरु मागा।
जनम जनम सिव पद अनुरागा॥

शरीर त्यागकर श्रीसतीने इस बार हिमालयके यहाँ पार्वतीके रूपमें जन्म धारण किया। पर्वतकी भाँति अपने आराध्य श्रीशङ्करजीके श्रीचरणोंमें अपनी श्रद्धा स्थिर रखनेके लिये श्रद्धा स्वरूपिणी भगवती पार्वती पर्वतराजके घरमें जन्मीं। जिस

प्रकार पर्वतको कोई डिगा नहीं सकता उसी प्रकार पार्वतीको भी कोई नहीं डिगा सकता—चलायमान नहीं कर सकता। वे कठिन परिस्थितियोंके झञ्झावातमें अपने पिता पर्वतराजकी भाँति अविकम्पित रहीं **'धैर्येण हिमवानिव'**।

देवदर्शन देवर्षि श्रीनारदजी शैलराजके यहाँ पहुँच गये। शैलराजने उनका पूजन करके श्रीपार्वतीको प्रणाम कराया और पूछा—हे देवर्षे! मेरी पुत्रीके गुणावगुणको विचारकर बतावें।

त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सर्बत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन मुनिबर हृदयँ बिचारि॥

श्रीनारदने कहा—हे नगराज! आपकी पुत्री सर्वगुण सम्पन्न है इसके द्वारा माता-पिताको महान् कीर्ति प्राप्त होगी। यह अपने प्रियतम पतिकी प्रियतमा पत्नी होगी। अखण्ड सौभाग्यवती होगी। हे पर्वतराज! अब अवगुण भी सुनें—

अगुन अमान मातु पितु हीना।
उदासीन सब संसय छीना।
जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख॥

श्रीनारदके वचनोंको सुनकर उसको सत्य जानकर पर्वतराज और उनकी पत्नीको कष्ट हुआ; परन्तु श्रीपार्वती प्रसन्न हो गयीं।

दुख दंपतिहि उमा हरषानी!

श्रीनारदने पुनः कहा—हे नगराज! मेरे कहे हुये समस्त अवगुण श्रीशङ्करमें हैं। यदि श्रीशङ्करसे विवाह हो जाय तो समस्त अवगुण भी गुण ही हो जायेंगे। परन्तु श्रीशङ्कर दुराराध्य हैं। उनकी प्राप्तिके लिये आपकी पुत्रीको कठिन तपस्या करनी चाहिये।

जौं तप करै कुमारि तुम्हारी।
भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥

श्रीनारदने कहा—अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये शिवाराधन प्रशस्त माना गया है

इच्छित फल बिनु सिव अवराधें।
लहिअ न कोटि जोग जप साधें॥

श्रीनारदजीने अपने आराध्य श्रीहरिका स्मरण करके गिरीशनन्दिनीको आशीर्वाद दिया।

अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस।
होइहि यह कल्यान अब संसय तजहु गिरीस॥

श्रीपार्वतीजी अपने दुःखी माता-पिताको अपने स्वप्नके व्याजसे समझाकर वनमें जाकर कठिन तपस्या करने लगीं।

उर धरि उमा प्रानपति चरना।
जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥

श्रीपार्वतीने अपनी सुकुमार देहका अध्यास समाप्त कर दिया ***'बिसरी देह तपहिं मनु लागा'***। एक हजार वर्षतक मूल फल खाया, सौ वर्ष पर्यन्त शाक खाकर तपस्या की। तीन हजार वर्ष पर्यन्त शुष्क बिल्वपत्र भक्षण किया। पुनः उसका भी परित्याग कर दिया। इस प्रकार अत्यन्त कठोर तपस्या की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्ने आकाशवाणी की—हे गिरिराजनन्दिनि! आपकी अभिलाषा पूर्ण हो गयी, अब असह्य क्लेशका परित्याग कर दो। आपको श्रीशङ्करजीकी प्राप्ति अवश्य होगी।

भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारि॥

श्रीपार्वतीके जन्म, उनकी कठिन तपस्या और वर प्राप्तिकी कथा कहकर श्रीयाज्ञवल्क्यजी कहते हैं—हे भरद्वाज! श्रीपार्वतीजीका सुन्दर चरित्र मैंने वर्णन किया, अब आप श्रीशङ्करजीका सुन्दर चरित्र श्रवण करें।

उमा चरित सुन्दर मैं गावा।
सुनहु संभु कर चरित सुहावा॥

श्रीसतीके देहोत्सर्गके पश्चात् श्रीशङ्करजीके मनमें वैराग्य हो गया। वे निरन्तर श्रीरामनामका जप करते थे और यत्र तत्र श्रीरामकथा सुनते थे। वे समस्त लोकको कृतार्थ करनेके लिये भूमि पर विचरण करते थे। यद्यपि वे आप्तकाम, पूर्णकाम और परम निष्काम थे फिर भी सतीके विरहजन्य दुःखसे दुखी रहते थे, क्योंकि श्रीसती परम भक्तिमती थीं।

श्रीशङ्करजीका नेम और प्रेम देखकर भगवान् श्रीराम उनके सामने प्रकट हो गये।

नेमु प्रेमु संकर कर देखा।
अबिचल हृदयँ भगति कै रेखा॥
प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला।
रूप सील निधि तेज बिसाला॥

इस चौपाईमें श्रीरामजीको 'कृतज्ञ' और 'कृपालु' विशेषण दिया है। श्रीशङ्करजीके त्याग और सतीके बलिदानका महत्त्व जानते हैं एतावता कृतज्ञ हैं। इन दोनोंके—श्रीशङ्कर और पार्वतीके दुःखोंका अपनोदन करनेमें मैं समर्थ हूँ और श्रीशङ्कर-पार्वतीको मैं अपने स्नेहिल प्रभावसे मिला भी सकता हूँ। इस प्रकार अपने सामर्थ्यका अनुसन्धान करनेके कारण भगवान् श्रीरामजी कृपालु हैं। कृपाकी परिभाषा भी इसी प्रकार है।

रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः।
इति सामर्थ्यसन्धानं कृपा सा पारमेश्वरी॥

(भगवद् गुणदर्पण)

कृपालु श्रीरामजीने श्रीशङ्करजीके प्रण और प्रेमके निर्वाहकी श्लाघा की। श्रीपार्वतीजीके जन्म और उनकी अत्यन्त पावन करनीका विस्तारपूर्वक वर्णन किया।

अति पुनीत गिरिजा कै करनी।
बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी॥

'गिरिजा' का भाव कि अब वे सती नहीं हैं अपितु गिरिजा हैं। मूर्तिमती श्रद्धा हैं, यदि आप उन्हें नहीं प्राप्त होंगे किंवा नहीं स्वीकार करेंगे तो वे देह-विसर्जन कर देंगी।

सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा।
हठ न छूट छूटै बरु देहा॥

करुणामय श्रीठाकुरजीने विनती करके श्रीशङ्करजीसे श्रीपार्वतीसे विवाह करनेकी भिक्षा माँगी। यह भक्तोंके लिये अत्यन्त भावुक और प्रेरक प्रसङ्ग है। कृपालु श्रीरामजी कहते हैं—जो सबकी आशा छोड़कर मात्र मेरी आशा करता है, किसी और से याचना न करके मात्र मुझसे याचना करता है, उस भक्तकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये आवश्यकता पड़ने पर मैं याचना भी कर सकता हूँ। कृतज्ञ कृपालु श्रीरामजीके इस चरित्रको पढ़ करके और श्रवण करके जिसके मनमें उनके प्रति भक्तिभावना न उत्पन्न हो निश्चित ही वह अभागा है।

अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागें देहु॥

श्रीशङ्करजीने अपने परमाराध्य स्वामी श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा स्वीकार कर ली। श्रीरामजी श्रीशङ्करजीके स्नेहिल व्यवहारसे उनकी आज्ञा पालनरूप सेवासे अत्यन्त सन्तुष्ट होकर अन्तर्धान हो गये।

उसी समय श्रीशङ्करजीके सन्निकट सप्तर्षिगण पधारे। श्रीशङ्करजीने उनसे अत्यन्त सुन्दर वचनों में कहा।

तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए।
बोले प्रभु अति बचन सुहाए॥

पारबती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परिच्छा लेहु।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन दूरि करेहु संदेहु॥

सप्तर्षियोंने तत्काल श्रीशङ्करजीकी आज्ञाका पालन किया। वे मूर्तिमती—साक्षात् तपस्याकी प्रतिमूर्ति श्रीपार्वतीके पास जाकर उनसे प्रश्न करने लगे। हे देवि! आप किस कारणसे इतनी कठोर तपस्या कर रहीं है? आप किसकी आराधना कर रही हैं? आपके मनमें कौनसी अभिलाषा है? इन प्रश्नोंको सुनकर भी ललनारत्न श्रीपार्वतीजीने सङ्कोचके कारण उत्तर नहीं दिया। तब उन्होंने कहा—हमसे मर्मकी बात—रहस्यकी बात सच सच क्यों नहीं बतातीं? बार-बार प्रश्न करनेपर अत्यन्त सङ्कुचित मनसे श्रीगौरीने उत्तर दिया—हे मुनीश्वरो! आप लोग हमारी जड़ता सुनकर हँसेंगे ***'हँसिहहु सुनि हमारि जड़ताई'।*** हे मुनियो! मैं अपने गुरुदेव श्रीनारदजीके बचनोंको ही सत्य समझकर श्रीसदाशिवको अपना पति बनाना चाहती हूँ। यह मेरा अविवेक ही तो है।

देखहु मुनि अबिबेक हमारा।
चाहिअ सदा सिवहि भरतारा॥

इन पङ्क्तियोंमें 'जड़' और 'अविवेक' दोनों शब्द पर ध्यान दें। यह दोनों शब्द मनन करने योग्य हैं। उत्कृष्ट कोटिके स्नेहमें ये दोनों ही भाव—जाड्य और अविवेक प्राय: आ जाते हैं। उदाहरणके रूपमें दो महान् प्रेमियोंके भावोंका मनन करें।

महान् सेवाव्रती श्रीलक्ष्मणजीके चरित्रका निरूपण करते हुए श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं।

सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि।
जिमि अबिवेकी पुरुष सरीरहि॥

(२। १४२)

अविवेकी पुरुष—अज्ञानी व्यक्ति शरीरको ही आत्मा मानकर अहर्निश-निरन्तर शरीरकी सेवामें ही व्यस्त रहता है। इसी प्रकार श्रीलक्ष्मणजी भी श्रीसीतारामके अतिरिक्त और किसीको स्मरण नहीं करते हैं। मन, कर्म और वचनसे श्रीसीतारामचरणोंकी ही सेवा करते रहते हैं। जिस प्रकार अविवेकी पुरुष अपने शरीरसे बढ़ कर किसीको महत्त्व नहीं देता है इसी प्रकार श्रीलक्ष्मणजी भी श्रीरामजीके अतिरिक्त भाई, माता, पिता और घरकी ओर स्वप्नमें भी चित्त नहीं करते हैं।

सेवहिं लखनु करम मन बानी।
जाइ न सीलु सनेहु बखानी॥
छिनु छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लखनु चितु बंधु मातु पितु गेहु॥

(२। १३९)

महर्षि श्रीभरद्वाजजी महान् स्नेही श्रीभरतसे स्वयं कहते हैं—हे भरत! श्रीरामजीका तुम पर कितना स्नेह है, इसका मर्म तो मैंने प्रयागमें श्रीरामजीके स्नान करनेके अवसर पर जाना था। श्री यमुनाजीका श्याम रङ्ग देखकर उनके स्मृतिपटल पर तुम्हारी श्यामल मूर्ति आ गयी—तुम्हारी स्मृति प्रबल हो गयी और वे 'हा भरत! हा भरत!' कहकर जलमें डूबने लगे। उस समय श्रीलक्ष्मणजीने बड़ी कठिनतासे उन्हें जलसे बाहर निकालकर प्रकृतिस्थ किया। हे रामप्रेम मूर्ति भरत! श्रीरामजी तुमको इतना स्नेह करते हैं, जितना जड़ नर सुखी जीवनको प्यार करता है। जिस प्रकार 'जड़ नर' सुखी जीवनके लिये सब कुछ छोड़ सकता है, हे भरत! उसी प्रकार श्रीरामजी तुम्हारे लिये सब कुछ त्याग सकते हैं यहाँ तककि पूज्य पिताके वचनको भी छोड़ सकते हैं। आगे चित्रकूटमें

श्रीरामजी कहेंगे।

राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी।
तनु परिहरेउ पेम पन लागी॥
तासु बचन मेटत मन सोचू।
तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा।
अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥
मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसंध रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु॥

(२। २६४)

अत्यन्त मर्मज्ञ महात्मा श्रीभरद्वाजजी श्रीभरतजीके प्रति श्रीरामजीके स्नेहका मर्म भलीभाँति समझ करके—उसका स्नेहिल अनुभव करके ही श्रीभरतसे कहते हैं।

जाना मरमु नहात प्रयागा।
मगन होहिं तुम्हरें अनुरागा॥
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर कें।
सुख जीवन जग जस जड़ नर कें॥

(२। २०८)

श्रीपार्वतीजीने सप्तर्षियोंके प्रश्नके उत्तरमें आरम्भमें ही इन दोनों—जड़ और अविवेक शब्दोंका प्रयोग करके सप्तर्षियोंको यह समझा दिया—मैं अपने प्राणाराध्य श्रीशङ्करजीकी प्राप्तिके लिये सब कुछ छोड़ सकती हूँ। जिस प्रकार अविवेकी मनुष्यको शरीर प्रिय है और जड़ व्यक्तिको सुखी जीवन प्रिय है उसी प्रकार मुझे मेरे जीवन सार सर्वस्व श्रीशङ्करजी प्रिय हैं।

परीक्षक सप्तर्षिगण इन वचनोंको सुन करके बड़े जोरसे हँसे—सातों मिलकर युगपत्—एक साथ हँसे, इसीलिये 'ऋषय' बहुबचन शब्दका प्रयोग किया है। सामान्य कोटिका स्नेह तो सम्मिलित हास्यसे ही—बहुत लोगोंकी सम्मिलित हँसीसे ही दुर्बल हो जाता है अथवा समाप्त हो जाता है। परन्तु सप्तर्षियोंकी सम्मिलित हँसीको सुन करके भी श्रीपार्वतीके मनमें न कोई सङ्कोच हुआ न दुर्बलता आयी और न ही कोई विकार आया अपितु वे तो मन्द-मन्द मुसकराती रहीं। यह देखकर सप्तर्षियोंने पार्वतीके पिताकी निन्दा की ***'गिरि संभव तव देह'।*** जब इसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ तब महर्षियोंने गुरुके उपदेशकी निन्दा आरम्भ की।

सुनत बचन बिहसे रिषय गिरिसंभव तव देह।
नारद कर उपदेसु सुनि कहहु बसेउ किसु गेह॥

यह दोहा ही सप्तर्षियोंकी परीक्षाका मुख्य अस्त्र है। इसकी ही व्याख्या आगेकी पङ्क्तियोंमें की गयी है। गुरुके उपदेशकी निन्दाका भी जब कोई प्रभाव नहीं पड़ा तब गुरुकी ही निन्दा करने लगे।

मन कपटी तन सज्जन चीन्हा।
आपु सरिस सबही चह कीन्हा॥

इसके पश्चात् इष्टकी निन्दा करने लगे।

निर्गुन निलज कुबेष कपाली।
अकुल अगेह दिगंबर ब्याली॥
कहहु कवन सुख अस बरु पाएँ।
भल भूलिहु ठग के बौराएँ॥

तत्पश्चात् सप्तर्षियोंने अत्यन्त प्रबल अस्त्रका प्रयोग किया कि शङ्करजीके साथ किसी स्त्रीका निर्वाह ही नहीं हो सकता।

अब सुख सोवत सोचु नहिं भीख मागि भव खाहिं।
सहज एकाकिन्ह के भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं॥

भाव कि जिसने सदा एकाकी निवास किया है, उसको किसीका साथ अच्छा नहीं लग सकता

है; फिर स्त्रीका निर्वाह तो हो ही नहीं सकता है।

तेन नार्याः कथं देवि निर्वाहः सम्भविष्यति।

(शिवपुराण)

इसके पश्चात् इष्ट परिवर्तनकी सलाह दी।

अजहूँ मानहु कहा हमारा।
हम तुम्ह कहुँ बरु नीक बिचारा॥

सप्तर्षियोंके बचन तो मात्र स्नेह परीक्षणके लिये थे, परन्तु भगवती पार्वतीने प्रत्युत्तरमें जो भी कहा है, वह साधकोंके लिये अत्यन्त प्रेरणाप्रद है। वे वचन श्रद्धासे ओतप्रोत हैं। उनके वचनोंके एक-एक शब्दोंमें श्रद्धाका पूर्णरूपेण परिपाक हुआ है। सप्तर्षियोंने कहा—

नारद कर उपदेसु सुनि कहहु बसेउ किसु गेह।

उसका उत्तर श्रीपार्वतीजी देती हैं—मेरे गुरुदेव श्रीनारदजी हैं। मनुष्योंके अज्ञानको ही 'नार' कहते हैं। अर्थात् भगवत् तत्त्वके परिज्ञानके बिना जिसकी निवृत्ति न हो उस अज्ञान को 'नार' कहते हैं। नारदीयपुराणमें कहा गया है—मनुष्योंके अन्धकारको श्रीनारदजी भगवच्चरित्र ज्ञापनके द्वारा सर्वथा निर्मूल—समूल नष्ट कर देते हैं।

गायन्नारायणकथां सदा मायाभयापहाम्।
नारदो नाशयन्नेति नृणामज्ञानजं तमः॥

(नारदीयपुराण)

श्रीपार्वतीजी कहती हैं—मेरे गुरुदेवने मेरे हृदयके समस्त अज्ञानान्धकारको उच्छिन्न कर दिया है—समूल नष्ट कर दिया है। एतावता उनके वचनोंमें मेरी पूर्ण श्रद्धा है। मैं उन वचनोंका परित्याग कभी नहीं कर सकती चाहे घर बसे या उजड़े, मुझे इसका डर नहीं है। गुरुदेवके वचनोंमें जिसका विश्वास नहीं है, उसको स्वप्नमें भी सुख और सिद्धि सुलभ नहीं हो सकती। एक बात साधकोंको स्मरण रखनी चाहिये। अपने गुरुको कभी छोटा नहीं समझना चाहिये। आपका कल्याण तो उन्हीं गुरुसे होगा। तुलसीपत्र या शालग्रामकी शिला छोटी हो या बड़ी दोनोंका महत्व बराबर है। रहूगणका कल्याण भगवान्‌के अवतार श्रीकपिल भगवान्‌से नहीं हुआ अपितु जड़भरतसे हुआ है।

नारद बचन न मैं परिहरऊँ।
बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ॥
गुर के बचन प्रतीति न जेही।
सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही॥

इष्ट परिवर्तनके वचनोंका प्रत्युत्तर देती हुई श्रीपार्वती कहती हैं—मेरा कोई दुराग्रह नहीं है, मैंने आपकी बात मान ली कि श्रीविष्णु भगवान् समग्र गुणोंके भवन हैं और श्रीशङ्करजी अवगुणोंके। परन्तु मेरा उत्तर यह है—जिसका जहाँ मन लग जाता है उसे वही मधुर प्रतीत होता है।

तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्।
महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम॥

श्रीगोस्वामीजी 'पार्वती मङ्गल'में इसी भावको पुष्ट करते हुए लिखते हैं।

साँच सनेह साँच रुचि जो हठि फेरइ।
सावन सरित सिंधु रुख सूप सों घेरइ॥
मनि बिनु फनि जल हीन मीन तनु त्यागइ।
सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ॥
कहुँ तिय होहिं सयानि सुनहिं सिख राउरि।
बौरेहि कें अनुराग भइउँ बड़ि बाउरि॥
दोष निधान इसानु सत्य सबु भाषेउ।
मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ॥

(श्रीपार्वतीमङ्गल ५९-६०, ६३-६४)

अर्थात् किसीके सच्चे स्नेह और सच्ची रुचिको जो हठपूर्वक परिवर्तित करना चाहता है, उसका वह प्रयास उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार कोई समुद्रकी ओर प्रवाहित होने वाली श्रावणकी नदीको सूपसे रोकनेकी चेष्टा करता है। जिस प्रकार मणिके बिना सर्प और जलके बिना मछली अपना शरीर त्याग देती है उसी प्रकार जो जिसके साथ स्नेह करता है वह क्या कभी उसके गुण दोषोंपर विचार किया करता है? कोई अत्यन्त चतुर स्त्री भले ही आपकी शिक्षा सुनले, परन्तु मैं तो अब उसी पागलके प्रेममें पड़कर पगली ही हो गयी हूँ। आपने सत्य ही कहा है कि श्रीशङ्करजीमें सब दोष ही दोष हैं, परन्तु विधाताने मेरे भाग्यमें जो लेख लिख दिया है उसे कौन मिटा सकता है?

साधकोंको श्रीपार्वतीजीके वचनोंसे यह शिक्षा लेनी चाहिये—इष्ट परिवर्तन, गुरुपरिवर्तन और साधन परिवर्तन नहीं करना चाहिये।

श्रीपार्वतीजीके वक्तव्यकी समाप्तिकी तीन पङ्क्तियाँ मेरी दृष्टिमें उपासकोंके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

जन्म कोटि लगि रगर हमारी।
बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू।
आपु कहहिं सत बार महेसू॥
मैं पा परउँ कहइ जगदंबा।
तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा॥

पहली पङ्क्तिमें निश्चयका स्वरूप निरूपित है, दूसरी पङ्क्तिमें इस तथ्यका प्रतिपादन किया गया है कि साधकको साधनाकालमें साध्यकी अपेक्षा साधनको ही विशेष महत्त्व देना चाहिये और तीसरी पङ्क्तिमें इस भावका प्रतिपादन किया गया है —गुरुकी निन्दा, इष्टकी निन्दा और साधनकी निन्दा करनेवालोंको हाथ जोड़ देना चाहिये।

परीक्षा पूर्ण हो गयी। परीक्षक असाधारण थे। विश्वके महान् मनीषी थे। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ ऐसे ऋषि थे। परन्तु परीक्षार्थी भी असाधारण हैं। समग्र संसारको बुद्धि प्रदान करने वाली शङ्करप्रिया भगवती भास्वती गिरिजेशनन्दिनी श्रीउमा ही परीक्षार्थी थीं। परीक्षक अभिभूत हो गये, प्रेम पराभूत हो गये।

देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी।
जय जय जगदंबिके भवानी॥

सप्तर्षियोंने श्रीशङ्करजीके पास जाकर श्रीगौरीजीकी सम्पूर्ण प्रेम गाथा श्रीगौरीनाथको सुनायी। सुनकर गौरीनाथ प्रेमविभोर हो गये।

बहुरि सप्तरिषि सिव पहिं जाई।
कथा उमा कै सकल सुनाई॥
भए मगन सिव सुनत सनेहा।
हरषि सप्तरिषि गवने गेहा॥

संसारको मनमें नहीं रखना चाहिये। मनमें तो श्रीरामजीको ही रखना चाहिये। संसारके साथ ऊपरसे व्यवहार करना चाहिये। मनका सम्बन्ध तो श्रीरामजीसे ही होना चाहिये।

मनु थिर करि तब संभु सुजाना।
लगे करन रघुनायक ध्याना॥

भगवान् रामका ध्यान करते-करते, उनके स्वरूपका चिन्तन करते-करते समाधि लग गयी।

उसी समय तारकासुर नामका एक भयङ्कर असुर उत्पन्न हो गया। वह बहुत बलवान् था अतः उसने भयङ्कर उत्पात किया। सारे लोकों

और लोकपालोंके ऊपर विजय प्राप्त कर ली। देवताओंने श्रीब्रह्मासे दु:ख निवेदन किया। श्रीब्रह्माने कहा—हे देवताओ! यह असुर तो श्रीशङ्करजीके पुत्रसे ही मरेगा। उनके भाव पुत्रसे नहीं मरेगा, शिष्य पुत्रसे नहीं मरेगा, गोद लिये हुए पुत्रसे नहीं मरेगा। यह असुर तो उनके औरस पुत्रसे मरेगा।

सब सन कहा बुझाइ बिधि दनुज निधन तब होइ।
संभु सुक्र संभूत सुत एहि जीतइ रन सोइ॥

यद्यपि श्रीशङ्करजीकी पत्नी सतीने पर्वतराज हिमालयके यहाँ पुन: जन्म धारण कर लिया है। श्रीपार्वतीजीने श्रीशङ्करजीकी प्राप्तिके लिये बड़ी कठिन तपस्या भी की है; परन्तु श्रीगौरीनाथ तो समाधि लगाकर बैठ गये हैं। अब तो आप लोग कामदेवको भेजें कि वह समाधिमें बाधा उत्पन्न करे। श्रीशङ्करके समाधिसे जगनेपर हम लोग जाकर प्रार्थना करके किसी भी प्रकार उन्हें विवाह करनेके लिये तैयार कर लेंगे।

पठवहु कामु जाइ सिव पाहीं।
करै छोभु संकर मन माहीं॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई।
करवाउब बिबाहु बरिआई॥

देवताओंकी प्रार्थनापर कामदेवने अपने प्रभावका विस्तार किया, समस्त संसारको अपने वशमें कर लिया।

तब आपन प्रभाउ बिस्तारा।
निज बस कीन्ह सकल संसारा॥

अपने साथियोंके साथ विवेक पलायन कर गया। ***'भागेउ बिबेकु सहाय सहित'।*** जड़ चेतन सब कामके वशमें हो गये। पुरुष संसारको स्त्रीमय और स्त्री संसारको पुरुषमय देखने लगीं।

अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं॥
धरी न काहूँ धीर सब के मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ॥

सन्तलोग कहते हैं इस दोहेका पूर्वार्ध लिखकर श्रीगोस्वामीजी सोचने लगे कि इस समय भी उत्तम कोटिके अमलात्मा महात्मा मुनीन्द्र परमहंस सब तो कामवश नहीं हुये होंगे, अभी तो कामदेव श्रीशङ्करजीके पास पहुँचा भी नहीं है फिर ***'सब के मन मनसिज हरे'*** यह किस प्रकार सम्भव है? इतना लिखकर गोस्वामीजी रात्रिमें विश्राम किये। प्रात:काल दैनिक कर्मसे निवृत्त होकर जब लिखने बैठे तब दोहेका उत्तरार्ध लिखा हुआ मिला ***'जे राखे रघुबीर.....'।।*** कामदेवने श्रीशङ्करजीको लक्ष्य करके शर सन्धान किया ***'सुमन चाप निज सर संधाने'*** परिणामस्वरूप श्रीशङ्करका मन क्षुभित हो गया। समाधि भङ्ग हो गयी।

इस प्रसङ्गमें प्राय: शङ्का होती है कि श्रीशङ्कर ईश्वर कोटिके हैं, उनकी समाधि कामके द्वारा किस प्रकार भङ्ग हो गयी? इसका उत्तर यह है—श्रीब्रह्माजीने कामदेवको वरदान दिया है कि मैं—ब्रह्मा, श्रीशङ्करजी और श्रीभगवान् विष्णु भी तुम्हारे बाणके वशमें हो जायेंगे।

अहं विष्णुर्हरश्चापि तवास्त्रवशवर्तिन:।
काम कुसुम धनु सायक लीन्हे।
सकल भुवन अपने बस कीन्हे॥

(१। २५६)

समाधि भङ्ग होनेके बाद श्रीशङ्करजीने नेत्र खोलकर सम्पूर्ण दिशाओंका अवलोकन किया। आम्रपल्लवमें छिपे हुए कामदेवको देखकर उनको महान् क्रोध हुआ, त्रैलोक्य प्रकम्पित हो उठा जब

श्रीशङ्करजीने अपना तीसरा नेत्र खोला तब उनकी उस दृष्टिके सामने काम टिक नहीं सका, वह सद्यः जलकर क्षार हो गया।

सौरभ पल्लव मदनु बिलोका।
भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका॥
तब सिवँ तीसर नयन उघारा।
चितवत कामु भयउ जरि छारा॥

संसारमें हाहाकार मच गया। साधक, सिद्ध, योगी निष्कण्टक हो गये। कामदेवकी पत्नी रति करुणक्रन्दन करती हुयी श्रीशङ्करके पास गयी।

जोगी अकंटक भए पति गति सुनत रति मुरुछित भई।
रोदति बदति बहु भाँति करुना करति संकर पहिं गई॥

कृपालु शङ्करने उसे आश्वस्त करते हुए कहा—आजसे तुम्हारे पतिका नाम 'अनङ्ग' होगा। उसके प्रभावमें कोई कमी नहीं होगी। उसका अस्तित्व समाप्त नहीं होगा। द्वापर युगमें जब भगवान् कृष्णचन्द्र आविर्भूत होंगे तब तुम्हारा पति उनके पुत्रके रूपमें जन्म धारण करेगा। तब श्रीकृष्ण पुत्र प्रद्युम्नसे—तुम्हारे पतिसे तुम्हारा मिलन होगा।

अब तें रति तव नाथ कर होइहि नामु अनंगु।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि सुनु निज मिलन प्रसंगु॥

जब जदुबंस कृष्न अवतारा।
होइहि हरन महा महिभारा॥
कृष्न तनय होइहि पति तोरा।
बचनु अन्यथा होइ न मोरा॥

इसके पश्चात् समस्त देवताओंके साथ श्रीब्रह्माजी श्रीशङ्करजीके पास गये और श्रीशङ्करजीसे प्रार्थना की—हे गौरीनाथ! सम्पूर्ण देवताओंकी अभिलाषा है कि हम अपनी आँखोंसे आपका विवाह देखें।

सकल सुरन्ह के हृदयँ अस संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार बिबाहु॥

श्रीब्रह्माने कहा—हे गौरीनाथ! भगवती गौरीने आपको प्राप्त करनेके लिये कठोर तप किया है। आप कृपापूर्वक उन्हें अङ्गीकार करें।

ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुन करके और अपने आराध्य श्रीरामजीकी आज्ञा समझ करके श्रीशङ्करने 'एवमस्तु' कह दिया।

सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी।
ऐसेइ होउ कहा सुखु मानी॥

भगवान् शङ्करकी स्वीकृति प्राप्त होते ही देवताओंने विजयके नगाड़े बजा दिये। श्रीशङ्करजीकी जय जय कार होने लगी। 'हर हर महादेव' की ध्वनिसे वातावरण गूँज उठा। जयध्वनि, दुन्दुभि ध्वनिके साथ पुष्पवृष्टि होने लगी।

तब देवन्ह दुंदुभीं बजाईं।
बरषि सुमन जय जय सुर साईं॥

श्रद्धा दो प्रकारकी होती है—सकाम और निष्काम। सकाम श्रद्धा कामना पूर्ति होनेके पश्चात् अथवा कामनापूर्ति न होनेपर भी नष्ट हो जाती है; परन्तु निष्काम श्रद्धा कभी नष्ट नहीं होती है। मदन दहनके अनन्तर श्रद्धा स्वरूपिणी श्रीपार्वतीजीके पास सप्तर्षिगण पुनः जाकर कहते हैं—उनके वचनोंको 'मधुर' और 'छल सानी' दो विशेषण देते हैं। भाव कि उनका हृदय शुद्ध है, पूज्यभाव है अतः मधुर वचन बोले, परन्तु विनोदके लिये वचन रचनायें छल हैं। वे कहते हैं—हे देवि! अब तो नारदका उपदेश और आपका प्रण दोनों असत्य हो गये; क्योंकि श्रीशङ्करने तो कामको ही जला दिया, विवाहका प्रयोजन तो 'धर्माविरुद्ध काम' और 'पुत्रोत्पत्ति' है। '**पुत्र प्रयोजना भार्या**'। जब काम ही नहीं तब विवाहसे लाभ ही क्या?

प्रथम गए जहँ रहीं भवानी।
बोले मधुर बचन छल सानी॥
कहा हमार न सुनेहु तब नारद कें उपदेस।
अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ कामु महेस॥

सप्तर्षियोंकी बात सुनकर श्रीपार्वतीजी मुसकराने लगीं। भाव कि आपको श्रीशङ्करजीके स्वरूपका ही ज्ञान नहीं है। आपकी दृष्टिमें श्रीशङ्करने अब कामको जलाया है, इसके पूर्व वे सकाम थे। हे मुनीश्वरों! आप सात-सात मनीषी मुनि जिस तत्त्वका साक्षात्कार नहीं कर पाये उस तत्त्वको मेरे गुरुदेवने पहले ही समझ लिया था। उन्होंने तो तपस्याके पूर्व ही कहा था '**जोगी जटिल अकाम मन**' और मैंने तो अपने प्रियतम श्रीशङ्करजीको 'अकाम अभोगी' ही आरम्भसे समझा है। 'अकाम अभोगी' को प्राप्त करनेके लिये ही मैंने तपस्या की है।

सुनि बोलीं मुसुकाइ भवानी।
उचित कहेहु मुनिबर बिग्यानी॥
तुम्हरें जान कामु अब जारा।
अब लगि संभु रहे सबिकारा॥
हमरे जान सदा सिव जोगी।
अज अनवद्य अकाम अभोगी॥
जौं मैं सिव सेये अस जानी।
प्रीति समेत कर्म मन बानी॥
तौं हमार पन सुनहु मुनीसा।
करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा॥

इस कामनारहित-निष्काम श्रद्धाको देखकर सप्तर्षिगण प्रसन्न हो गये। श्रद्धापूर्वक भगवती भास्वती भवानीको प्रणाम करके उनके पिता श्रीहिमाचलके पास चले गये।

अब इसके पश्चात् भगवान् भूतभावन भूतेश भोलेनाथका विवाह ग्यारह दोहोंमें वर्णित है।

श्रीशङ्करजीके दूल्हे रूपका श्रृंगार उनके गण कर रहे हैं। सर्पोंका मौर, कुण्डल, कङ्कन और यज्ञोपवीत धारण कराया गया। उनके मस्तकपर श्रीगङ्गाजी हैं—श्रीठाकुरजीका चरणामृत है, ललाटपर वक्रचन्द्र है। कण्ठका गरल—नीलिमा उनकी कृपालुताकी सूचिका है। हाथका त्रिशूल भक्तोंके सर्वविध शूलको नष्ट करनेवाला है। उनके हाथमें डमरू है जिसमें समस्त शास्त्र सन्निहित हैं।

बारात भी विचित्र है। उसमें भगवान् श्रीविष्णुके नेतृत्वमें समस्त देवता हैं और वीरभद्र, भृङ्गी आदि श्रीशङ्करजीके विशेष गणोंके नेतृत्वमें भूतोंकी टोली है, उनको देखनेसे ज्ञात होता है कि यह भगवान् भूतनाथकी बारात है। बीच-बीचमें भगवान् श्रीहरिके चित्ताकर्षक व्यङ्ग वचन वैवाहिक आनन्दका संवर्धन कर रहे हैं। भूतगण नाच-गाकर परस्पर आनन्दकी अनुभूति कर रहे हैं।

नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब।

सुसज्जित नगरके पास बारात पहुँच गयी, नाना प्रकारके वाहनोंको सजाकर अगवानी—स्वागत करनेके लिये लोग चल पड़े। देवताओंके समूहको देखकर प्रसन्न हो गये। श्रीहरिको देखकर अत्यन्त सुखी हो गये। परन्तु जब श्रीशङ्करजीका समाज देखने लगे तब लोगोंके वाहन भाग गये। कुछ धैर्यशाली लोग रह गये परन्तु बालक तो जान लेकर भाग गये।

धरि धीरजु तहँ रहे सयाने।
बालक सब लै जीव पराने॥

बालकोंने भयसे काँपते हुए प्रत्येक घरोंमें सब बातें बता दीं। सबको यथोचित स्थान दे दिया गया।

दिए सबहि जनवास सुहाए।

श्रीपार्वतीजीकी माता मैनाजी बड़े उत्साहसे हाथोंमें थाल लेकर परिछन करनेके लिये चलीं। 'परछन' एक वैवाहिक रीति है, जिसमें परिवारकी स्त्रियाँ जाकर दूल्हेकी आरती उतारती हैं और दही अक्षतका टीका लगाती हैं। परन्तु जब श्रीशङ्करजीके विकट वेषको देखा तब वे बिना परछन किये ही भाग करके घरमें घुस गयीं और श्रीशङ्करजी जनवासे चले गये।

मैनाँ सुभ आरती सँवारी।
संग सुमंगल गावहिं नारी॥
कंचन थार सोह बर पानी।
परिछन चली हरहिं हरषानी॥
विकट बेष रुद्रहिं जब देखा।
अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा॥
भागि भवन पैठीं अति त्रासा।
गए महेसु जहाँ जनवासा॥

इन पङ्क्तियोंमें श्रीशङ्करके तीन नाम आये हैं 'हर, रुद्र और महेश'। ये तीनों नाम प्रसङ्गानुकूल और भावगर्भित हैं।

श्रीमैनाजी अपनी प्रिय पुत्री पार्वतीको गोदमें बिठाकर विलाप करने लगीं। विलाप बहुत द्रावक है, माताओंके मधुर स्नेहका एवं घने वात्सल्यका परिचायक है।

कस कीन्ह बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहि सो बरबस बबूरहिं लागई॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं॥

माताका करुण विलाप सुनकर भगवती गौरीने उन्हें आश्वस्त किया है। उनकी वह वाणी पढ़ने योग्य है। बालिकाओंके मनन करने योग्य है। उस वाणीमें धैर्य है, विवेक है, विनय है, विचार है, अदोष दर्शन है, तितिक्षा है, कोमलता है और मधुरता है।

जननिहि बिकल बिलोकि भवानी।
बोली जुत बिबेक मृदु बानी॥
अस बिचारि सोचहिं मति माता।
सो न टरइ जो रचइ बिधाता॥
करम लिखा जौं बाउर नाहू।
तौ कत दोसु लगाइअ काहू॥
तुम्ह सन मिटहिं कि बिधि के अंका।
मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका॥
जनि लेहु मातु कलंकु करुना परिहरहु अवसर नहीं।
दुखु सुखु जो लिखा लिलार हमरें जाब जहँ पाउब तहीं॥

उसी समय सप्तर्षियोंके साथ देवर्षि नारदने आकर श्रीपार्वतीशङ्करके स्वरूप एवं उनके अनादि सम्बन्धको बताया। श्रीपार्वतीके पूर्वजन्मकी कथा भी सुनायी और यह भी कहा—

अस जानि संसय तजहु गिरिजा सर्बदा संकर प्रिया॥

श्रीनारदसे आश्वस्त होकर माता, पिता और सभी नरनारी प्रसन्न हो गये।

तब मयना हिमवंतु अनंदे।
पुनि पुनि पारबती पद बंदे॥
नारि पुरुष सिसु जुबा सयाने।
नगर लोग सब अति हरषाने॥

उसके बाद वैदिक पद्धतिसे श्रीशिव उमाका वैवाहिक कार्य विधिपूर्वक, आनन्दपूर्वक सम्पन्न हो गया।

इस विवाहमें विद्वानोंके मस्तिष्कमें भी प्रायः एक शङ्का उठती है कि अपने विवाहमें श्रीशिव उमाने गणेशपूजन कैसे किया? वे तो अभी उत्पन्न भी नहीं हुये। फिर पूजन किसका हुआ? इस विषयमें निवेदन है कि दोहाके उत्तरार्धमें ही

भविष्यद्रष्टा कविने इस प्रश्नका उत्तर दे दिया है। पूरा दोहा इस प्रकार है—

मुनि अनुसासन गन पतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जिय जानि॥

कुछ पदपर प्रतिष्ठित व्यक्ति परिवर्तनशील होते हैं। पद तो वही रहता है; परन्तु व्यक्ति परिवर्तित हो जाता है। जैसे एक कल्पमें चौदह मनु और इन्द्र आदि होते हैं। 'इन्द्र और मनु' पद तो वही रहता है; परन्तु उसपर बैठनेवाला व्यक्ति दूसरा हो जाता है। अर्थात् एक कल्पमें चौदह व्यक्ति इन्द्र और मनु आदि हुये। इसी प्रकार गणपति पद अनादि है। उस पदपर जो व्यक्ति रहता है वह प्रथम पूज्य होता है। गणेशपुराणमें कश्यप अदितिके पुत्र 'महोत्कट' और शिवपार्वतीके पुत्र 'मयूरेश' का गणपति होना वर्णित है। लिङ्गपुराणमें 'तण्डि' नामक ब्रह्मर्षिका एक बार, राजा त्रिधन्वाका एक बार, हिरण्याक्षके पुत्रका एक बार गणपति होना लिखा गया है। स्कन्दपुराणमें 'शिखण्डी' नामक शिवगणका आदिपूज्य गणपति होना वर्णित है। शिवपार्वतीके विवाहके समय 'करवीराक्ष' गणपति पदपर प्रतिष्ठित थे। उन्हींकी पूजा श्रीशिव उमाने की। वर्तमानकालमें श्रीरामनामके प्रभावसे प्रथम पूज्य गणपति श्रीशिव-पार्वतीके पुत्र गजानन हैं।

हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू।
सकल भुवन भरि रहा उछाहू॥

श्रीपार्वतीकी विदाकी करुणबेलामें उनकी माताने बड़ी भावपूर्ण प्रार्थनाकी है। उन्होंने कहा—हे नाथ! मेरी प्राणप्रिय पुत्रीको आप घरकी दासी बना लें। हे करुणामय! इसके अपराधोंको क्षमा करते रहियेगा। हे आशुतोष! हे अवढरदानी! मुझे कृपा करके यही वरदान दें।

नाथ उमा मम प्रान सम गृहकिंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु॥

इस प्रसङ्गमें 'पार्वती मङ्गल' की दो पङ्क्तियाँ अत्यन्त भावपूर्ण हैं।

गहि सिव पद कह सासु बिनय मृदु मानबि।
गौरि सजीवनि मूरि मोरि जियँ जानबि॥
भेंटि बिदा करि बहुरि भेंटि पहुँचावहिं।
हुँकरि हुँकरि सुलवाइ धेनु जनु धावहिं॥

(पार्वतीमङ्गल १४२-१४३)

भगवान् शङ्करने सबको स्नेहिल आश्वासन दिया और वहाँसे बिदा होकर कैलास आ गये। कुछ दिनके पश्चात् श्रीकार्तिकेयका जन्म हुआ। उनके छः मुख थे। सन्त लोग कहते हैं कि पाँच मुख पिता श्रीशङ्करके थे और एक मुख माता श्रीपार्वतीका। उन्होंने तारक नामके भयङ्कर असुरका विनाश कर दिया।

श्रीशङ्करपार्वतीके विवाहकी फलश्रुति श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं।

यह उमा संभु बिबाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं।
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्बदा सुखु पावहीं॥

एक बार भगवान् शङ्कर कैलास पर्वतपर वटवृक्षके नीचे पधारे। वृक्षको देखकर उन्हें बहुत सुख मिला। अपने हाथसे बाघम्बर बिछाकर सहज भावसे विराजमान हो गये।

निज कर डासि नागरिपु छाला।
बैठे सहजहिं संभु कृपाला॥

भगवत्तत्त्वके वक्ताको श्रीशङ्करजी अपने चरित्रसे उपदेश दे रहे हैं—वह अपने शरीरकी सेवा करानेकी अपेक्षा न करे। '**स्वयं दासास्तपस्विनः**' तपस्वीको अपना कार्य स्वयं करना चाहिये अतः अपने हाथसे आसन बिछाया। उपदेशकको अपने

चरित्रसे धर्म मार्गका उपदेश करना चाहिये **'धर्ममार्गं चरित्रेण'।**

पूजापाठमें, साधन नियममें और सन्ध्योपासनादि नित्यकर्ममें आसनका विशेष महत्त्व है। कुशासनपर बैठकर साधन करनेसे आयुकी वृद्धि होती है। मोक्षकामीको व्याघ्रासनपर, समस्त सिद्धिके लिये कृष्ण मृगचर्म और कम्बलासनका प्रयोग उचित है। सूती आसनसे दारिद्र्य, बिना आसनके भूमिपर बैठनेसे शोक और पाषाणपर बैठनेसे रोग होता है। काष्ठासनपर बैठकर पूजा आदि करनेसे समस्त परिश्रम व्यर्थ हो जाता है।

कुशासने भवेदायुः मोक्षः स्याद् व्याघ्रचर्मणि।
अजिने सर्वसिद्धिः स्यात् कम्बले सिद्धिरुत्तमा॥
वस्त्रासनेषु दारिद्र्यं धरण्यां शोक सम्भवः।
शिलायाञ्च भवेद् व्याधिः काष्ठे व्यर्थ परिश्रमः॥

(अगस्त्यसंहिता ३२। १२, १३)

आसन अपना होना चाहिये। अन्यत्र जाय तो अपना आसन लेकर जाना चाहिये। माला, ग्रन्थ और आसन यह सब अकारण जल्दी नहीं बदलना चाहिये। कुछ लोग तो गुरु ही बदल देते हैं। तलाकके जमानेमें कोई आश्चर्य नहीं है।

बैठे सोह कामरिपु कैसें।
धरें सरीरु सांतरसु जैसें॥

आज श्रीशङ्करजी कथावाचकके आसनपर बैठे हैं। कथावाचकमें जितने गुण होने चाहिये सब इनमें हैं। आसनशुद्धिके पश्चात् हृदयकी शुद्धि कर रहे हैं। कामसे—कामनासे हृदय अशुद्ध हो जाता है अतः 'कामरिपु' कहा **'वक्ता कार्योऽतिनिःस्पृहः'।**

भगवान् शङ्कर विराजमान हैं, अति प्रसन्न हैं और परमशान्त हैं। एतावता सुन्दर सुअवसर समझकर श्रीपार्वतीजी भी आ गयीं। श्रीशङ्करजीने उनका अति सम्मान करके उन्हें अपने वामभागमें बिठाया। आज लोकपावनी गङ्गा प्रवाहित होनेवाली है अतः श्रीउमाको सम्प्रति 'शैलकुमारी' नामसे अभिहित किया है। शैलकुमारीके मनमें रामकथारूपी शैलकुमारी—श्रीगङ्गाके प्रवाहित करनेकी इच्छा है। किंवा जिस प्रकार शैल—पर्वत परोपकारी होता है उसी प्रकार आज श्रीपार्वतीजी भी रामकथा सम्बन्धी प्रश्न करके जगत्का कल्याण करेंगी।

कथा जो सकल लोक हितकारी।
सोइ पूछन चह सैलकुमारी॥

श्रीपार्वतीजी कहती हैं—हे विश्वनाथ! हे मेरे नाथ! मुझे यह बतावें—जिनको मुनि अनादि ब्रह्म कहते हैं, जिनकी कीर्ति शेष, शारदा, वेद और पुराण गाते हैं और आप जिनका नाम अहर्निश—निरन्तर जपते रहते हैं, वे राम चक्रवर्त्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजीके पुत्र हैं अथवा अजन्मा, निर्गुण और अलख गतिवाले कोई और राम हैं? हे प्रभो! पूर्वजन्मकी भाँति सम्प्रति संशय मेरे मनमें नहीं है अपितु रामकथापर रुचि है। हे सुरनाथ! आप मुझे पवित्र रामकथा सुनावें।

तब कर अस बिमोह अब नाहीं।
रामकथा पर रुचि मन माहीं॥
कहहु पुनीत राम गुन गाथा।
भुजगराज भूषन सुरनाथा॥
बंदउँ पद धरि धरनि सिरु बिनय करउँ कर जोरि।
बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि॥

श्रीपार्वतीजीने श्रीरामकथा विषयक चौदह प्रश्न किये हैं। इन प्रश्नोंमें समस्त रामकथा ओतप्रोत है। प्रश्न कई प्रकारके होते हैं। सबसे अच्छा प्रश्न वह है—जिसे सुनकर हृदयमें श्रीहरिके

चरित्रोंका अवतरण हो जाय। श्रीमद्भागवतमें श्रीवसुदेवका प्रश्न श्रवण करके श्रीनारदजी कहते हैं।

त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
स्मारितो भगवानद्य देवो नारायणो मम॥

(श्रीमद्भागवतजी ११। २। १३)

अर्थात् हे वसुदेवजी! आपने प्रश्न करके मेरे परम प्रियतम परमाराध्य भगवान् श्रीहरिका स्मरण करा दिया है। श्रीकाकभुशुण्डिजी भी इसी प्रकार कहते हैं।

सुनि तव प्रस्न सप्रेम सुहाई।
बहुत जनम कै सुधि मोहि आई॥

(७। ९५)

पहले हृदयमें भगवच्चरित्र आते हैं, तदनन्तर मनमें प्रेम उत्पन्न होता है और प्रेमसे आराध्यका स्वरूप हृदयमें आता है। परिणामस्वरूप प्रेमी परमानन्द सुधा समुद्रमें लीन हो जाता है। प्रस्तुत प्रसङ्गमें इन भावोंका अनुसन्धान करें।

प्रस्न उमा कै सहज सुहाई।
छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥
हर हियँ रामचरित सब आए।
प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥
श्रीरघुनाथ रूप उर आवा।
परमानंद अमित सुख पावा॥

श्रीशङ्करजी ध्यानरस सुधासिन्धुमें दो दण्डतक मगन रहे—डूबे रहे, तत्पश्चात् वे अपने मनको हठात् ध्यानसे बाहर करके श्रीरामकथा कहने लगे।

मगन ध्यानरस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥

स्मरण रहे, प्रश्न करनेवालेका और कथा सुननेवालेका अतिशय महत्त्व है। यदि प्रश्न करनेवाला प्रेमी हो, श्रोता प्रेमी हो तो कथावाचकके मुखसे स्नेह निर्झर निर्झरित होने लगता है और यदि श्रोता सोनेवाला सामने बैठा हो तो आया हुआ स्नेहिल भाव भी तिरोहित हो जाता है। मैं तो कहा करता हूँ—

''अरसिकेषु कवित्त निवेदनं
शिरसि मालिख मालिख''।

सर्वप्रथम श्रीशङ्करजी अपने आराध्यको भावपूर्ण प्रणाम निवेदन करते हैं।

बंदउँ बालरूप सोइ रामू।
सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
मंगल भवन अमंगल हारी।
द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥
करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी।
हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥

श्रीशङ्करजीने सबसे पहले—अपनी कथाके प्रारम्भमें श्रोताका उपकार माना। श्रोताओंका बहुत बड़ा उपकार है-वे वक्ताओंको श्रीरामकथा कहनेका मङ्गलमय अवसर प्रदान करते हैं। श्रीशङ्करजी कहते हैं—आपने संसारको पवित्र करनेवाली मङ्गलमयी रामकथा मन्दाकिनीको प्रवाहित करनेका अवसर दिया है।

धन्य धन्य गिरिराजकुमारी।
तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥
पूँछेउ रघुपति कथा प्रसंगा।
सकल लोक जग पावनि गंगा॥

इस भूतलपर श्रीकृष्णकथारूपिणी गङ्गाकी धारा प्रवाहित करानेका श्रेय राजर्षि श्रीपरीक्षित्को है और श्रीरामकथा स्वरूपिणी कथारूपी गङ्गाको प्रवाहित करानेका श्रेय श्रीगिरीशनन्दिनी

गिरिजाको है।

श्रोताकी प्रशंसा करके श्रीशङ्करजीने थोड़ा सा अनुशासन भी किया—हे उमा! तुम्हारी एक बात मुझे नहीं अच्छी लगी। तुमने कहा—वे राम कोई और हैं जिनका यश वेद गाते हैं और मुनिलोग जिनका ध्यान करते हैं। इस प्रकार अधम मनुष्य कहते हैं।

कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच॥

स्मरण रखना, दशरथनन्दन श्रीराम ही पूर्णब्रह्म राम हैं। दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। तदनन्तर श्रीशङ्करजीने मानो पाँचों मुखोंसे श्रीरामचन्द्रजीके ब्रह्मत्वका प्रतिपादन किया है। श्रीशङ्करजीने कहा—

अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥

पुनः दूसरी बार बोले—

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ॥

तीसरी बार प्रतिपादन किया।

बिषय करन सुर जीव समेता।
सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई।
राम अनादि अवधपति सोई॥

चौथी बार पुनः निरूपण करते हैं।

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥
जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥

श्रुतियोंमें भी इसी प्रकार कहा गया है—ब्रह्म अपाणिपाद होकर भी सर्वत्र सम्पूर्ण वस्तुओंका ग्रहण करते हैं और वेगपूर्वक सर्वत्र गमन करते हैं। नेत्रके बिना ही देखते हैं, अकर्ण होकर भी सब सुनते हैं। वे जाननेयोग्य और जाननेमें आनेवाले समस्त पदार्थोंका परिज्ञान रखते हैं। उनका वेत्ता—जाननेवाला कोई नहीं है।

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३। १९)

श्रीगोस्वामीजीने वैराग्य-सन्दीपनीमें इसी विषयका इस प्रकार प्रतिपादन किया है—

सुनत लखत स्तुति नयन बिनु रसना बिनु रस लेत।
बास नासिका बिनु लहै परसै बिना निकेत॥

पाँचवी बार श्रीशङ्करजीने आर्द्रस्वरमें अपना सम्बन्ध व्यक्त करते हुये श्रीरामजीके ब्रह्मत्वका निरूपण किया है।

कासीं मरत जंतु अवलोकी।
जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी।
रघुबर सब उर अंतरजामी॥

श्रीशङ्करजीके इन वचनोंका विशेषण 'भ्रम भञ्जन' है। श्रीपार्वतीके समस्त कुतर्क समाप्त हो गये, श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम और विश्वास समुत्पन्न हो गया। दारुण असम्भावनाका अन्त हो गया।

सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना।
मिटि गै सब कुतरक कै रचना॥
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती।
दारुन असंभावना बीती॥

कुतर्क जब समाप्त हो जाता है तब रामकथा मधुर लगती है।

हरि हर पद रति मति न कुतरकी।
तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुबर की॥

(१। ९)

श्रीशङ्करजीकी कठोर वाणीरूप वज्रसे श्रीपार्वतीजीके हृदयका कुतर्क आदिका पहाड़ टूट गया और उसमेंसे मधुमयी, आनन्दमयी, रसमयी, प्रेमरसकी धारा समुच्छलित हो गयी। उस धारामें विषाद बह गया।

नाथ कृपा अब गयउ बिषादा।

श्रीगौरी पुनः प्रश्न कर रही हैं—हे नाथ! सच्चिदानन्द परब्रह्म सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी श्रीरामजीने मनुष्य शरीर किस कारणसे धारण किया? पहलेका ही प्रश्न अब दूसरे परिवेशमें आ गया।

नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू।
मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू॥

भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो गये। उन्होंने अनुभव किया—मेरा परिश्रम सफल हो गया। श्रीगौरीका हृदय एवं उनका भाव परिवर्तित हो गया—भगवद् रसमय हो गया। फिर तो श्रीगौरीनाथने श्रीगौरीकी प्रशंसा करके उत्तर देना आरम्भ किया।

उमा बचन सुनि परम बिनीता।
रामकथा पर प्रीति पुनीता॥
हियँ हरषे कामारि तब संकर सहज सुजान।
बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान॥

(नवाह्नपारायण, पहला विश्राम)

भगवान् श्रीशंकरने कहा—हे गिरिजे! श्रीहरिके अवतारका हेतु मात्र यही है इस प्रकार नहीं कहा जा सकता है।

हरि अवतार हेतु जेहि होई।
इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी।
मत हमार अस सुनहि सयानी॥

हे गिरिजे! सन्त, मुनि, वेद और पुराण अपनी बुद्धिके अनुसार जिस प्रकार कहते हैं उसी प्रकार मैं आपको सुना रहा हूँ। जब-जब धर्मकी हानि होती है, तब-तब प्रभु अवतार धारण करके धर्मकी हानि करनेवाले राक्षसोंका वध करके वैदिक धर्मोंकी मर्यादाका संरक्षण करते हैं।

जब जब होइ धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥

श्रीगीताजीमें श्रीकृष्णचन्द्रजीने भी यही कहा है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(श्रीगीताजी ४। ७, ८)

अर्थात् जब-जब यह देखनेमें आता है कि अधर्मने धर्मको आक्रान्त कर लिया है, तब-तब मैं धर्मनिष्ठाका पक्ष लेकर अवतरित होता हूँ। अधर्मकी सत्ताका नाश करता हूँ, दोषोंका नाम मिटा देता हूँ और साधु पुरुषोंके हाथोंमें सुखकी पताका खड़ी करता हूँ तथा उनकी प्रतिष्ठाकी

वृद्धि करता हूँ। मैं अविचारोंका अन्धकार नष्ट करता हूँ और विवेकका दीपक प्रज्वलित करता हूँ।

श्रीहरिके अवतारका यह भी एक कारण है; परन्तु यही कारण है ऐसा नहीं कहा जा सकता।

राम जनम के हेतु अनेका।
परम बिचित्र एक तें एका।

श्रीशङ्करजी कहते हैं हे गिरिजे! अब मैं आपको श्रीहरिके दो एक जन्मोंका कारण सुनाता हूँ।

श्रीहरिके द्वारपाल जय और विजय श्रीसनकादिकोंके श्रापसे तीन बार पृथ्वीपर आये। हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षके रूपमें, रावण और कुम्भकर्णके रूपमें, शिशुपाल और दन्तवक्त्रके रूपमें और इनके उद्धारके लिये श्रीहरिने भी चार अवतार धारण किये। वाराह, नृसिंह, राम और कृष्णके रूपमें।

एक बार जलन्धर नामका राक्षस रावण हुआ। उसके उद्धारके लिये भी रामावतार हुआ।

तहाँ जलंधर रावन भयऊ।
रन हति राम परम पद दयऊ॥

श्रीशङ्करजीने पुनः कहा—एक बार भगवान् विष्णुके गण—जय-विजय रावण और कुम्भकर्ण बने तब उनके उद्धारके लिये रामावतार हुआ। उसी तरह एक बार श्रीशिवजीके गण भी रावण और कुम्भकर्ण हुये तब भी उनके उद्धारके लिये रामावतार हुआ। इस कल्पमें श्रीनारदजीने भगवान् क्षीराब्धिनाथको श्राप दिया था एतावता श्रीहरि राम हुये।

इस चर्चाको सुन करके श्रीपार्वतीजी आश्चर्यचकित होकर कहने लगीं—हे भगवन्! श्रीनारदजी तो विष्णु भक्त हैं। एक भक्त अपने भगवान्‌को श्राप कैसे दे सकता है? फिर देवर्षि तो ज्ञानी हैं, ज्ञानीको क्रोध नहीं आना चाहिये; क्योंकि—

'क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान'

और बिना क्रोधके श्राप नहीं हो सकता है। एतावता श्रीनारदके श्रापकी बात समझमें नहीं आ रही है, इसलिये किस कारणसे मुनिने श्राप दिया? श्रीपार्वती यह पूछती हैं। अथवा, इसमें श्रीपार्वतीजीकी गुरुनिष्ठा झलकती है कि मेरे गुरुदेवसे अपराध नहीं हो सकता है, यदि उन्होंने श्राप दिया है तो इसमें श्रीहरिने ही अपराध किया होगा। एतावता दूसरा प्रश्न करती हैं कि श्रीरमापतिने क्या अपराध किया कि मेरे गुरुदेवको श्राप देनेके लिये विवश होना पड़ा? धन्य है गुरुनिष्ठा! धन्य है गुरुचरणोंमें विश्वास!

'तुम्ह ते अधिक गुरुहि जिय जानी' का सुन्दर उदाहरण है।

गिरिजा चकित भईं सुनि बानी।
नारद बिष्नुभगत पुनि ग्यानी॥
कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा।
का अपराध रमापति कीन्हा॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी।
मुनि मन मोह आचरज भारी॥

भगवान् गौरीनाथ श्रीगौरीजीकी बात सुनकर हँस पड़े। 'बिहसि' का भाव यह है—श्रीहरिको किसी अज्ञानीको ज्ञानी बनानेमें और किसी ज्ञानीको अज्ञानी बनानेमें कितना विलम्ब लगता है?

बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ॥

एक बार श्रीनारदजी परिभ्रमण करते हुए हिमालय पर्वतकी तलहटीमें पहुँच गये। वहाँ कल-कल निनाद करती हुयी श्रीगङ्गाजी वह रही थीं। पास ही में एक परम पवित्र गुफा थी। देवर्षि उस परम पवित्र आश्रमके सुरम्य सात्त्विक वातावरणसे प्रभावित हो गये। बैठकर ध्यान करने लगे। दक्षका उन्हें श्राप था—तुम लोक लोकान्तरमें भटकते रहो। तुम्हें विश्रामके लिये कोई स्थान

नहीं होगा '**तस्माल्लोकेषु ते मूढ न भवेद् भ्रमतः पदम्**'। श्रीनारदजी श्राप सुनकर प्रसन्न हो गये। उन्होंने श्रापको वरदान मान लिया। अच्छा है, आश्रम निर्माणके चक्करसे बच गये। हाँ, तो फिर वे एक जगह बैठकर ध्यान कैसे करने लगे? इसका उत्तर है ***'सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी'*** श्रीहरिके स्मरणसे समस्त बाधाओंकी निवृत्ति होकर सिद्धि प्राप्त हो जाती है ***'जो सुमिरत सिधि होइ'।*** श्रीनारदजीका मन तो सहज ही—बिना साधनके ही निर्मल था, एतावता समाधि लग गयी ***'सहज बिमल मन लागि समाधी'।***

एक कुत्ता था, वह कहींसे सूखी हड्डी पा गया, उसको चाटते-चाटते कुत्तेकी जीभ छिल गयी, उसमें रक्तस्राव होने लगा। अज्ञानी कुत्तेने सोचा कि मेरे परिश्रमसे सूखी हड्डीसे रस निकल आया। वह उसीमें, अपने रक्तके चाटनेमें सुख लेने लगा। उधरसे एक सिंह आ रहा था। कुत्ता जान लेकर और सूखी हड्डीको भी लेकर भगा। कुत्तेने सोचा—सम्प्रति सिंह मेरी रसीली हड्डी लेने आया है। कुत्ता सिंहके गुण और आहारसे अनभिज्ञ है। एतावता अपनी सूखी हड्डीको ही बहुत मानता है, अतः उसे जड़ कहा है।

सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जान जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज॥

देवराज इन्द्रने भी श्रीनारदजीकी समाधि नष्ट करनेके लिये पुष्पधन्वा कामको भेजा। कामदेव अपनी समस्त कलाका प्रदर्शन करके अपने साथियोंके साथ पराजित हो गया। श्रीगोस्वामीजीने एक अतिशय महत्त्वपूर्ण चौपाई इस प्रसङ्गमें लिखी है। वह साधकोंके लिये, भक्तोंके लिये अत्यन्त महत्त्वकी है।

सीम की चाँपि सकइ कोउ तासू।
बड़ रखवार रमापति जासू॥

अर्थात् रमारमण श्रीहरि जिसके सर्वविध रक्षक हैं उसकी सीमाका अतिक्रमण कौन कर सकता है? कामदेव मनसे पराजित होकर देवर्षिके श्रीचरणोंमें गिर पड़ा।

सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब कहि सुठि आरत बैन।

श्रीनारदजीके मनमें किञ्चिन्मात्र भी क्रोध नहीं हुआ। उन्होंने कामको भी मधुर वचनोंसे परितुष्ट कर दिया।

भयउ न नारद मन कछु रोषा।
कहि प्रिय बचन काम परितोषा॥

श्रीनारदजीने काम क्रोधादिको तो जीत लिया; परन्तु अहङ्कार आ गया।

जिता काम अहमिति मन माहीं।

कामदेवने देवराजकी सभामें जाकर समस्त चरित्र सुनाया। सबने आश्चर्य किया और मुनिकी प्रशंसा करके श्रीहरिको प्रणाम किया।

मुनि सुसीलता आपनि करनी।
सुरपति सभाँ जाइ सब बरनी॥
सुनि सब कें मन अचरजु आवा।
मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा॥

इसके पश्चात् श्रीनारदजी मनमें अहङ्कार लेकर श्रीशङ्करजीके पास गये। उनको समस्त काम चरित्र सुनाया। कल्याणकामी श्रीशङ्करजीने कहा—हे देवर्षे! जिस प्रकार आपने अभिमानपूर्वक मुझे सुनाया है, उस प्रकार श्रीहरिको न सुनाना।

तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ।
चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ॥

एक अत्यन्त मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण चौपाई पुनः आ रही है।

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई।
करै अन्यथा अस नहिं कोई॥

श्रीनारद ब्रह्मलोक चले गये।

एक दिन वीणा बजाते हरिगुण गाते श्रीनारद क्षीरसागर पहुँच गये। भगवान् श्रीनारायणने उनका हार्दिक स्वागत किया और कहा—हे देवर्षे! आज आपने बहुत दिनोंपर कृपा की, इतने दिनोंतक कहाँ रहे? श्रीनारदजीने कहा—हे स्वामिन्! मैं हिमालय पर्वतकी तलहटीमें गया, वहाँका सुरम्य सात्त्विक वातावरण देखकर मैंने ध्यान किया और वह ध्यान समाधिमें परिणत हो गया। मेरी उस समाधिसे भयभीत होकर देवराज इन्द्रने कामदेवको भेजा; परन्तु वह बिचारा मेरा क्या कर सकता था? अपने सहायकोंके साथ पराजित होकर मेरी शरणमें आ गया, मैंने उसको क्षमा कर दिया। इतने दिनोंतक न आनेका यही कारण है। श्रीनारदकी गर्वोक्ति सुनकर श्रीठाकुरजी उदास हो गये। धन्य है! ऐसा कृपालु स्वामी कहाँ मिलेगा! भीतरसे उदास होते हुए भी बाहरसे प्रसन्नताका अभिनय करते हुये श्रीहरिने कहा—हे देवर्षे! आपके तो स्मरणसे ही मोह, काम, मद और मान नष्ट हो जाते हैं, फिर आपकी समाधिको काम कैसे नष्ट कर सकता था?

रूख बदन करि बचन मृदु बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान॥

श्रीनारदजीने बड़े अभिमानसे कहा—सब आपकी कृपाका परिणाम है।

नारद कहेउ सहित अभिमाना।
कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥

अभिमानसहित न कहते तो इसी बातसे सब कुछ बन जाता। उस अभिमानको श्रीहरिने समझ लिया और निर्णय कर लिया कि इस अहङ्कार वृक्षको मैं शीघ्र ही उखाड़ डालूँगा। नारद मेरे सेवक हैं और मेरी प्रतिज्ञा है कि जिस किसी भी प्रकारसे हो सेवकका कल्याण करना। धन्य है! करुणामय प्रभुकी हितपूर्ण भावनाको। इसीलिये इस पङ्क्तिमें श्रीहरिको 'करुणानिधि' कहा है।

करुनानिधि मन दीख बिचारी।
उर अंकुरेउ गरब तरु भारी॥
बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी।
पन हमार सेवक हितकारी॥

श्रीनारदजी जब यहाँसे चले तब मार्गमें ही उन्होंने एक सुन्दर और बहुत बड़ा नगर देखा। उसका राजा शीलनिधि था। उसकी एक कुमारी कन्या थी, जिसका नाम विश्वमोहिनी था। उसका स्वयम्बर हो रहा था। श्रीनारदजीने कन्याके पिताके आग्रहपर कन्याकी हस्तरेखा देखीं तो मुग्ध हो गये। सोचने लगे—मुझे वही उपाय करना है जिससे कि राजकन्या मेरा वरण कर ले। इस समय मुझे अनोखा सौन्दर्य चाहिये, जिसको देखकर राजकुमारी प्रसन्न होकर मेरे गलेमें वरमाला डालकर मेरा पतिरूपमें वरण कर ले।

एहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल॥

फिर नारदजी सोचने लगे—संसारमें मेरे आराध्यसे अधिक सुन्दर कोई नहीं है। क्यों न मैं उन्हींसे उनकी सुन्दरता माँग लूँ। मेरा हितैषी भी उनसे अधिक और दूसरा कोई नहीं है।

हरि सन मागौं सुंदरताई।
होइहि जात गहरु अति भाई॥
मोरें हित हरि सम नहिं कोऊ।
ऐहि अवसर सहाय सोइ होऊ॥

मैं कहा करता हूँ—मनमें कभी विकृति उत्पन्न हो तो श्रीरामजीसे कहना चाहिये, बात बन जायगी। छिपाओगे तो बात बिगड़ जायगी।

श्रीनारदजीने विनयपूर्वक आवाहन किया, श्रीठाकुरजी पधार गये। तब श्रीनारदजीने विश्वमोहिनीके स्वयंवरकी सम्पूर्ण कथा और अपनी आसक्तिकी चर्चा ज्यों-की-त्यों सुना दी और अपने लिये श्रीहरिके रूपकी याचना भी कर ली। परन्तु उसके साथ एक आत्मनिवेदन भी किया।

जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा।
करहु सो बेगि दास मैं तोरा॥

कितना विश्वास है, श्रीनारदजीको कि श्रीहरि मेरा अनहित कभी नहीं कर सकते हैं; क्योंकि मैं इनका दास हूँ और ये दासके हितकारी हैं। इसी एक चौपाईसे श्रीनारदकी बिगड़ी बन गयी। बिगड़ी बनानेवाले तो एकमात्र श्रीरामजी ही हैं।

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहिं राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥

(श्रीदोहावली २२)

श्रीठाकुरजी सुनकर हँस पड़े। हँसनेका भाव कि मेरे नारदमें कितना कार्पण्य है, मेरे प्रति कितना विश्वास है। श्रीहरिने सद्यः रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा कर ली—बिगड़ी बनानेका निश्चय कर लिया।

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥

श्रीरामजीने श्रीनारदजीका हित सम्पादन करनेके लिये उन्हें बन्दर बना दिया। प्रभुने सोचा कि इस समय बन्दर बनानेमें ही इनका सब प्रकारसे हित है। इन्हें बन्दर तो बनना ही पड़ेगा। सोचना यह है कि सुन्दर बनाकर बन्दर बनाऊँ अथवा बन्दर बनाकर सुन्दर बनाऊँ। यदि आज मैं इन्हें सुन्दर बना देता हूँ तो ये जीवनभर बन्दर बने रहेंगे; क्योंकि सुन्दर बनानेपर विवाह हो जायेगा और ये स्वतः बन्दर बन जायेंगे।

नारि बिबस नर सकल गोसाईं।
नाचहिं नट मर्कट की नाईं॥

(श्रीरामचरितमानस ७। ९९)

और यदि आज इन्हें बन्दर बना देता हूँ तो ये जीवनपर्यन्त सुन्दर बने रहेंगे। सुन्दर तो श्रीहरिका भक्त ही होता है।

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा।
जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा॥
राम बिमुख लहि बिधि सम देही।
कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही॥

(७। ९६)

आज ये मेरे बन्दर बनेंगे, मेरे सङ्केतसे नृत्य करेंगे नहीं तो स्त्रीके बन्दर बनेंगे, वासनाके बन्दर बनेंगे, कामनाके बन्दर बनेंगे और स्त्रीके सङ्केतसे नाचेंगे, स्त्रीके सम्बन्धियोंके संकेतसे नाचेंगे। नहीं, नहीं मैं नारदको अपना ही बन्दर बनाऊँगा। मैं अपने नारदको दुनियाँका बन्दर नहीं बनने दूँगा। संसारके इशारेसे नहीं नाचने दूँगा।

मुनि हित कारन कृपानिधाना।
दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना॥
सो चरित्र लखि काहुँ न पावा।
नारद जानि सबहिं सिर नावा॥

वरमाला लेकर स्वयंवर भूमिमें राजकन्या आयी, उसने श्रीनारदके बानररूपको देखा और बहुत क्रुद्ध हुई। राजाके रूपमें स्वयंवरमें भगवान् भी पधारे। राजकन्याने उन्हींके गलेमें वरमाला पहना दी।

धरि नृपतनु तहँ गयउ कृपाला।
कुअँरि हरषि मेलेउ जयमाला॥
दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा।
नृपसमाज सब भयउ निरासा॥

उसी समाजमें दो रुद्रगण—शङ्करजीके गण बैठे थे। वे दोनों श्रीनारदजीकी हँसी उड़ा रहे थे। इस समय उन्होंने कहा—तनिक दर्पणमें अपना मुख तो देख लो। मुनिने किसी तालाबके जलमें अपना बानरका रूप देखा। अपना वेष देखकर उन्हें महान् क्रोध हुआ। उन्होंने दोनों रुद्रगणोंको हँसीका फल चखानेके लिये राक्षस होनेका श्राप दे दिया।

होहु निसाचर जाइ तुम्ह कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल बहुरि हँसेहु मुनि कोउ॥

इस प्रसङ्गमें एक शिक्षा है—दूसरोंको दर्पण मत दिखाओ अपितु स्वयं दर्पण देखो अर्थात् दूसरोंका दुर्गुण प्रकाशित करनेकी चेष्टा न करो, अपने दुर्गुणोंका अनुसंन्धान करो। दर्पण दिखानेवाला—दूसरोंका दुर्गुण प्रकाशित करनेवाला राक्षस हो जाता है।

श्रीनारदजी रुद्रगणोंको श्राप देकर परम क्रुद्ध होकर श्रीहरिके पास चले।

फरकत अधर कोप मन माहीं।
सपदि चले कमलापति पाहीं॥

श्रीहरिके पास पहुँचकर उनके लिये अपशब्दका प्रयोग करके उनको भी तीन शाप दे डाला। तुमने राजाके रूपमें हमें ठग लिया है अत: तुम राजाका ही शरीर धारण करो। तुमने मेरी बन्दरकी आकृति बना दी एतावता विपत्तिमें तुम्हारी बन्दर ही सहायता करें और तुमने मेरा अत्यन्त अपमान किया है एतावता तुम स्त्रीके विरहमें दु:खी होओ।

बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा।
सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा॥
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी।
करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी।
नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥

श्रीनारदका श्राप स्वीकार करके, 'मैंने एक भक्तको पतनसे बचा लिया।' इसलिये हृदयमें प्रसन्न होकरके प्रभुने श्रीनारदजीकी प्रार्थना की और अपनी मायाकी प्रबलताको आकर्षित कर लिया।

श्राप सीस धरि हरषि हियँ प्रभु बहु बिनती कीन्हि।
निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्हि॥

जब श्रीहरिने मायाका अपहरण कर लिया तब वहाँ मायाकी राजकुमारीका अदर्शन हो गया और श्रीलक्ष्मीजी भी दिखाई नहीं पड़ीं।

जब हरि माया दूरि निवारी।
नहिं तहँ रमा न राजकुमारी॥

जबतक माया है तबतक जीव संसारमें—प्रपञ्चमें—काम क्रोध आदिमें समय व्यतीत करता है। मायाके दूर होते ही वह मन, कर्म और वचनसे श्रीहरिकी शरणागति स्वीकार कर लेता है। *'अति सभीत'* से मन *'गहि चरना'* से कर्म और *'पाहि प्रनतारति हरना'* से वचनकी शरणागति स्वीकार की।

तब मुनि अति सभीत हरि चरना।
गहे पाहि प्रनतारति हरना॥

श्रीनारदमें स्वयं अपने शापको व्यर्थ करनेकी शक्ति नहीं है एतावता प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो! कृपा करके मेरा श्राप झूठा कर दें। दीनदयालु प्रभुने कहा कि मेरी अवतार धारण करनेकी इच्छा है; क्योंकि अवतार लिये बिना

रुद्रगणोंका उद्धार कैसे होगा? यह भाव *'दीनदयाला'* शब्दसे स्पष्ट किया है।

मृषा होउ मम श्राप कृपाला।
मम इच्छा कह दीनदयाला॥

श्रीहरि श्रीनारदको समझाकर अन्तर्धान हो गये। श्रीनारदजीको मार्गमें जाते हुए दोनों श्रीशङ्करजीके गण मिल गये, जिन्हें अभी-अभी श्रीनारदजीने राक्षस होनेका श्राप दिया था। उनकी प्रार्थनापर श्रीनारदने कहा—तुम्हारे उद्धारके लिये मेरे स्वामी स्वयं रामावतार धारण करेंगे।

श्रीगौरीनाथ कहते हैं—हे शैलकुमारी! श्रीनारदके श्रापके कारण श्रीहरिके रामावतारकी कथा मैंने कही। अब परात्पर परब्रह्मके रामावतार धारण करनेकी कथा सुनो। जिनको तुमने वनमें भाईके साथ सतीके रूपमें देखा था।

स्वायम्भू मनु और शतरूपाजीकी कथा सुनाते हैं। इन दोनोंका जीवन सुन्दर धर्माचरणसे सम्पन्न था। इनके दो पुत्र थे उत्तानपाद और प्रियव्रत। मनुजीके पौत्रका नाम ध्रुव था, ध्रुवको कौन नहीं जानता? मनुजीके दौहित्र साक्षात् भगवान्‌के अवतार कपिल भगवान् हुये। जो मनुपुत्री देवहूति और कर्दमऋषिके पुत्र थे। श्रीकपिलदेवजीने सांख्यशास्त्रका उद्धार किया।

श्रीमनुजीने आजन्म धर्माचरण किया, उनका परिवार भी बहुत अच्छा था, उनके परिवारमें भगवान्‌ने भी अवतार लिया और श्रेष्ठ भक्तने भी जन्म धारण किया, परन्तु मनुजीको मानसिक क्लेश है। तात्पर्यार्थ यह है—धर्माचरण और अच्छा परिवार चरम लक्ष्य नहीं है। चरम लक्ष्य तो भगवत् प्राप्ति है।

कामु-से रूप, प्रताप दिनेसु-से
सोमु-से सील, गनेसु-से माने।
हरिचंदु-से साँचे बड़े बिधि-से
मघवा-से महीप, बिषै-सुख साने॥
सुक-से मुनि, सारद-से बकता,
चिरजीवन लोमस ते अधिकाने।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी' जौ
पै राजिवलोचन रामु न जाने॥
झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर-
जरे, मद-अंबु चुचाते।
तीखे तुरंग मनोगति चंचल,
पौनके गौनहु ते बढ़ि जाते॥
भीतर चंद्रमुखी अवलोकति,
बाहर भूप खरे न समाते।
ऐसे भए तौ कहा, तुलसी-जो
पै जानकीनाथ के रंग न राते॥

(श्रीकवितावली ७। ४३, ४४)

श्रीगोस्वामीजी मनुके चरित्रसे उपदेश देते हैं—धर्माचरणसे राज्य और भोग आदिका सुख मिलता है; परन्तु वैराग्य और भक्ति नहीं मिलती। जबतक विषयोंसे—संसारसे वैराग्य और श्रीरामचरणोंमें भक्ति न हो तबतक जन्म सफल नहीं होता है।

होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन।
हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु॥

यदि स्वाभाविक वैराग्य न हो तो हठात् त्याग करना चाहिये। वह हठात् त्याग स्वयमेव वैराग्यके रूपमें परिणत हो जायगा।

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा।
नारि समेत गवन बन कीन्हा॥

साधन करनेकी—तपस्या करनेकी—आराधना

करनेकी शक्ति रहते ही गृहत्याग करना उचित है। श्रीरामचन्द्रजीके प्रायः सभी पूर्वजोंने वृद्धावस्थामें घर छोड़ दिया।

गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम्।

दो एक अपवाद भी संभव है। वन या तीर्थमें न जा सके तो घरमें ही मोहका परित्याग करके भजन करना चाहिये।

श्रीमनु महाराज नैमिषारण्य पहुँच गये। सर्वप्रथम दम्पतिने गोमतीमें स्नान किया।

पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा।
हरषि नहाने निरमल नीरा॥

किसी तीर्थमें जाकर सर्वप्रथम उस क्षेत्रकी विशेष नदीमें स्नान करना चाहिये। उस नदीमें स्नान करनेसे उस क्षेत्रमें रहनेकी योग्यता प्राप्त हो जाती है। वैजात्य नष्ट हो जाता है।

श्रीमनुशतरूपाकी दिनचर्या अनुकरणीय है। उसपर ध्यान देना चाहिये। तीर्थवास, फल-फूलका भोजन, वल्कल वस्त्रका परिधान। इससे शरीर दुर्बल हो गया, जो साधनमें सहायक होता है। कुछ समयतक निकटस्थ तीर्थोंका दर्शन करते रहे। सन्तोंके मुखसे पुराणोंकी कथाका भी किञ्चित्कालपर्यन्त श्रवण किया। इस प्रकार तपस्या करनेकी भूमिका तैयार हो गयी।

अब अनुरागपूर्वक द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करने लगे। द्वादशाक्षर मन्त्रके विषयमें सन्तोंके अनेक मत हैं। श्रीअवधके सिद्ध सन्त एवं महान् मनीषी पण्डित श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराजका मत है—श्रीनारदजीने ध्रुवजीको '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' यही मन्त्र प्रदान किया था। एतावता यही द्वादशाक्षर मन्त्र है।

जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज।
यं सप्तरात्रं प्रपठन् पुमान् पश्यति खेचरान्॥
'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'।
मन्त्रेणानेन देवस्य कुर्याद् द्रव्यमयीं बुधः।

(श्रीमद्भागवत ४। ८। ५३, ५४)

कुछ सन्त श्रीराम षडक्षरमन्त्र और श्रीसीता षडक्षर मन्त्रको मिलाकर द्वादशाक्षर मन्त्र मानते हैं। रामोपासक भक्त, सन्त और साधक प्रायः इस द्वादशाक्षर मन्त्रका नित्य जप करते हैं। आनन्द-रामायणके मनोहर काण्डमें श्रीरामजीके कई मन्त्रोंका अनुष्ठान बताया गया है। उसमें द्वादशाक्षर मन्त्र भी है '**श्रीसीतारामं वन्दे श्रीराजारामम्**' इसका माहात्म्य भी साथमें ही है।

द्वादशाक्षरमन्त्रोऽयं कीर्तनीयः सदा जनैः।
वीणावाद्यादिना पुण्यः सर्ववाञ्छितदायकः॥

(आनन्दरामायण मनोहरकाण्ड १५। १२९)

द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।
बासुदेव पद पंकरुह दंपति मन अति लाग॥

कुछ लोग इस दोहाके 'वासुदेव' शब्दको लेकर भ्रम उत्पन्न करते हैं—वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण ही मनुके उपास्य हैं। उनसे मेरा विनम्र निवेदन है—इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वसुदेवपुत्र होनेके कारण श्रीकृष्ण भी वासुदेव हैं; परन्तु वासुदेव शब्दका शास्त्रोंमें इस प्रकार भी अर्थ है कि जो आत्मारूपसे सर्वत्र निवास करते हैं, उन परमात्माको 'वासु' कहते हैं, 'वस' धातुसे बाहुलकात् उण् प्रत्यय करनेपर 'वासु' शब्द निष्पन्न होता है। जो आनन्दसे क्रीडा सम्पन्न करे उसे 'देव' कहते हैं। '**दिवु क्रीडायाम्**' धातुसे 'देव' शब्द निष्पन्न होता है। '**दीव्यति आनन्देन क्रीडतीति देवः**'। इस प्रकार 'वासु' और 'देव' दोनों शब्दोंका पृथक्-पृथक् अर्थ परमात्मा ही होता है। कर्मधारय समास करके 'वासुदेव' शब्द सिद्ध होता है। '**वासुश्चासौ देवश्चेति वासुदेवः**'।

इस वासुदेव शब्दका अर्थ इस प्रकार है—

सर्वाणि तत्र भूतानि वसन्ति परमात्मनि।
भूतेषु स च सर्वात्मा वासुदेवस्ततः स्मृतः॥

(विष्णुपुराण अंश ६ अ० ५)

इस प्रकार वासुदेव शब्दसे परब्रह्म, नारायण, विष्णु, राम और कृष्ण सबका ग्रहण सम्भव है।

जो विश्वके अणु-अणुमें निवास करे और उसके मुखमण्डलपर उदासी न हो, चमाचम चमकता रहे उसका नाम वासुदेव है। किं वा—समस्त संसार उसमें रहे और वह समस्त संसारमें रहे; परन्तु कोई आसक्ति न हो उसका खेलमात्र हो उसे वासुदेव कहते हैं।

प्रस्तुत प्रसङ्गमें वासुदेव शब्दसे भगवान् रामका ही ग्रहण उचित है। इसी प्रसङ्गमें आगे श्रीरामजीका नाम 'विश्ववास' कहेंगे।

बिस्वबास प्रगटे भगवाना।

आगे श्रीराम जन्मके प्रसङ्गमें भी कहेंगे—***'जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम।'*** इसलिये वासुदेव शब्दका अर्थ श्रीराम ही करना उचित है।

श्रीमनु और शतरूपा परम प्रभुकी प्राप्तिके लिये कठिन तपस्या करने लगे। उनकी कठिन तपस्याको देखकर श्रीब्रह्मा, श्रीविष्णु और श्रीशङ्कर उन्हें वर प्रदान करनेके लिये अनेक बार आये परन्तु ***'चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर।'*** भाव कि चातक निष्ठावाले श्रीमनु-शतरूपाने किसीसे वर याचना नहीं की और आँखें भी नहीं खोलीं। एक चरणका आश्रय लेकर खड़े-खड़े तपस्या करते रहे।

बिधि हरि हर तप देखि अपारा।
मनु समीप आए बहु बारा॥
मागहु बर बहु भाँति लोभाए।
परम धीर नहिं चलहिं चलाए॥

मनु महाराजकी पूर्ण चातक निष्ठा थी। चातक निष्ठाका वर्णन श्रीवाल्मीकिजीने इस प्रकार किया है—

लोचन चातक जिन्ह करि राखे।
रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी।
रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥

(२। १२८)

एक चरणका आश्रय लेकर राजा-रानी खड़े रहे। उनका रक्त-मांस सब सूख गया था। अस्थिमात्र अवशेष था, फिर भी मनमें व्यथा नहीं थी। उनका मन तो श्रीरामजीमें लगा था, एतावता व्यथाकी अनुभूति ही नहीं हुयी।

अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा।
तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा॥

श्रीमनुशतरूपाजीकी अनन्यतासे रीझ करके आकाशवाणी हुयी—***'मागु मागु'*** एक बार श्रीरामजीने कहा—'मागु' सद्यः करुणामयी नित्यकिशोरी श्रीसीताजीने कहा—'मागु'। अथवा—'नृप रानी' दो हैं एतावता दोनोंके लिये कहा—***'मागु मागु'।*** वाणी परम गम्भीर थी और कृपामृतसे परिपूर्ण थी। यह अमृत सामान्य अमृत नहीं था। मृतक शरीरमें भी प्राण-सञ्चार करनेवाला था। इस कृपामृतसानी वाणीके सुनते ही राजारानी हृष्ट-पुष्ट हो गये। उनका शरीर देदीप्यमान हो गया। वह वाणी स्नेहामृत और कृपामृतसे परिपूर्ण थी।

मागु मागु बरु भै नभ बानी।
परम गभीर कृपामृत सानी॥

मृतक जिआवनि गिरा सुहाई।
श्रवन रंध्र होइ उर जब आई॥
हृष्टपुष्ट तन भए सुहाए।
मानहुँ अबहिं भवन ते आए॥
श्रवन सुधा सम बचन सुनि पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दंडवत प्रेम न हृदयँ समात॥

श्रीमनु-शतरूपाने जान लिया—यह मेरे स्वामीकी वाणी है और साथमें करुणामयी श्रीसीताजीकी भी वाणी है। जान करके श्रीरामजीको सम्बोधन करते हैं *'सुनु सेवक सुरतरु'* और श्रीसीताजीको *'सेवक सुरधेनु'* से सम्बोधित करते हैं। किं वा श्रीमनुमहाराजने *'सेवक सुरतरु'* कहा और श्रीशतरूपाजीने *'सेवक सुरधेनु'* कहा। अब इनकी वर याचनापर ध्यान दें—

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू।
बिधि हरि हर बंदित पद रेनू॥
सेवत सुलभ सकल सुख दायक।
प्रनतपाल सचराचर नायक॥
जौं अनाथ हित हम पर नेहू।
तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू॥
जो सरूप बस सिव मन माहीं।
जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा।
सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन।
कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥

श्रीमनुजी कहते हैं—दर्शन देकर तुरन्त न चले जाना, तबतक मेरे सामने मन्द-मन्द हास्यच्छटा बिखेरते हुए खड़े रहना जबतक मैं आपको नेत्र भरकर देख न लूँ। क्या वर-याचना है! कितनी आत्मीयता है! कितना स्नेहोर्मिल भाव है!! धन्य है! जबतक मैं आपको नेत्रोंके द्वारा हृदयमें न बिठा लूँ तबतक खड़े रहना। श्रीवृन्दावन्दधामके भक्तलोग बड़े प्रेमसे कहते हैं—

आओ प्यारे मोहना नयन ढाँपि लेउँ तोहिं।
ना मै देखूँ और को ना देखन देउँ तोहिं॥

ये वचन मनु-शतरूपा दोनों कह रहे हैं।

दंपति बचन परम प्रिय लागे।
मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे॥

अथवा दिव्य एवं अनादि दम्पति श्रीसीतारामजीको श्रीमनुके वचन परम प्रिय लगे। मनुके वचनमें तीन विशेषण मननीय हैं। जिस प्रकार तीन विशेषण श्रीमनुके वचनमें हैं उसी प्रकार तीन विशेषण श्रीसरकारके भी हैं।

भगत बछल प्रभु कृपानिधाना।
बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥

श्रीठाकुरजीकी श्यामताके लिये भी तीन उपमान हैं।

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥

इस दोहामें तीन उपमान दिये हैं। ***नील सरोरुह, नीलमणि और नील नीरधर।*** श्रीरामजी नीलकमलके समान कोमल, सुगन्धित और तापहरण करनेवाले हैं। नीलमणिकी भाँति कान्तिमान् हैं—चमाचम चमक रहे हैं, आँखें ही नहीं ठहर रही हैं और अत्यन्त सुचिक्कण हैं। नीलमेघकी तरह गम्भीर हैं और जीवनदाता हैं। जिस प्रकार नील वारिधर वृष्टि करके संसारको सन्तृप्त कर देता है उसी तरह श्रीरामजी कृपादृष्टिकी वृष्टि करके श्रीमनुजीको कृतकृत्य कर रहे हैं—निहाल कर रहे हैं। *'कृपा बारिधर राम खरारी।'* इसके अनन्तर श्रीगोस्वामीजीने श्रीरामजीके मङ्गलमय, कोटि

कोटि कन्दर्पदर्पदलन, लोकाभिराम, लोचनाभिराम स्वरूपका विचित्र वर्णन किया है। श्रीरामजी एकाकी नहीं आये हैं। दर्शन करें, उनके वामभागमें करुणामयी जगज्जननी श्रीसीताजी भी हैं।

भृकुटि बिलास जासु जग होई।
राम बाम दिसि सीता सोई॥

श्रीसीतारामजीने वर माँगनेके लिये कहा—

बोले कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि।
मागहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि॥

'महादानि' का भाव—इसके पूर्व एक बार आकाशवाणीमें श्रीरामजीने वर माँगनेके लिये कहा था और मनुजीने वर याचना कर भी ली। पुनः माँगनेमें सङ्कोच न हो एतावता कहते हैं—मैं अति प्रसन्न हूँ इसलिये पुनः मागो। किं वा—दानी एक बार देकर सन्तुष्ट हो जाता है; परन्तु मैं महादानी हूँ मुझको बार-बार देकर भी सन्तोष नहीं होता है अतः पुनः माँगो। किं वा—यह श्रीरामजीका स्वभाव है कि देनेके पहले कह देते हैं। मुझे महादानी समझो, इसलिये कि याचकको सङ्कोच न हो और देनेके पश्चात् सङ्कुचित होते हैं ***'सकुच सहित हरि दीन्हीं।'***

श्रीमनुजीने कहा—हे भक्तवाञ्छाकल्पतरो! आप महादानी हैं; परन्तु मैं भी महादरिद्र हूँ। कल्पवृक्ष सब कुछ देनेमें परम समर्थ है; परन्तु दरिद्र बहुत माँगनेमें सङ्कुचित होता है। वह अपनेको उतना प्राप्त करनेका अधिकारी नहीं समझता है। एतावता उसे सन्देह रहता है मिले अथवा न मिले। किं वा—श्रीमनुजी ***'बहु संपति'*** अर्थात् श्रीरामजीको पुत्र रूपमें माँगना चाहते हैं अतः सङ्कोच हो रहा है। यह सुन करके उदारचक्रचूड़ामणि महादानी श्रीरामजीने पुनः कहा—हे परम तपस्वी! हे महाप्रेमी! हे महायाचक! तुम तो सचमुच ही महायाचक हो अर्थात् जो महान्‌को—श्रीरामजीको माँगना चाहता है वह महायाचक है। मेरा तुम्हारा जोड़ा बहुत अच्छा है। मैं महादानी हूँ और तुम महायाचक हो। अब सङ्कोचका परित्याग कर दो और मुझसे माँगो। तुम मेरे निजजन हो अतएव तुम्हारे लिये मेरे पास कोई पदार्थ अदेय नहीं है।

'सकुच बिहाइ मागु नृप मोही'।
मोरें नहिं अदेय कछु तोही॥
जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें।
अस बिस्वास तजहु जनि भोरें॥

मनुजीने श्रीभगवान्‌को अन्तर्यामी कहा था ***'सो तुम्ह जानहु अंतरजामी'*** एतावता परमोदार महादानी प्रभु कहते हैं ***'मागु नृप मोही'*** अर्थात् तुम मुझे ही माँग लो।

श्रीठाकुरजीके इस आश्वासनपर श्रीमनुजीने कहा—

दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥

श्रीरामजीके कहनेपर भी सहज स्वाभाविक सङ्कोच करके श्रीमनुने कहा—***'चाहउँ तुम्हहि समान सुत'*** अन्तमें पुनः सँभाला ***'प्रभु सन कवन दुराउ'।*** श्रीमनुके सङ्कोच करनेपर भी प्रभुने कहा—राजन्! मेरे समान तो कोई नहीं है।

अब जानी मैं श्री चतुराई।
भजी तुम्हहि सब देव बिहाई॥
जेहि समान अतिसय नहिं कोई।
ता कर सील कस न अस होई॥

(३। ६)

'न तस्य प्रतिमा अस्ति' एतावता मैं ही

आपका पुत्र बनूँगा।

प्रभुने सोचा—मनुने मनमें अभिलाषा की कि मैं स्वयं उनका पुत्र बनूँ और वचन से याचना की कि आपके समान पुत्र चाहता हूँ। प्रभु तो भक्तके मन, वचन दोनोंकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं। अतः मनुके मनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये श्रीरामके रूपमें स्वयं आये और सङ्कोचसे निकली वाणीको पूर्ण करनेके लिये अपने समान श्रीभरतजीको ले आये।

भरतु रामही की अनुहारी।
सहसा लखि न सकहिं नर नारी॥

(१। ३१०)

धन्य हो प्रभु! आपके अतिरिक्त और कौन स्वामी ऐसा हो सकता है जो सङ्कोचसे निकले हुये शब्दको भी महत्त्वपूर्ण समझकर उसे पूर्ण करे।

अस प्रभु छाड़ि भजहिं जे आना।
ते नर पसु बिनु पूँछ बिषाना॥

(५। ५०)

श्रीरामजीने देखा—शतरूपाजी करबद्ध होकर खड़ी हैं। उनसे प्रभुने कहा कि हे देवि! अपनी रुचिके अनुसार आप भी वरदान माँग लें।

सतरूपहि बिलोकि कर जोरें।
देबि मागु बरु जो रुचि तोरें॥

श्रीशतरूपाजीने कहा—हे नाथ! हे कृपालो! जो वरदान चतुर राजाने—मेरे पतिने माँगा है वह मुझे बहुत अच्छा लगा।

जो बरु नाथ चतुर नृप मागा।
सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा॥

इस पङ्क्तिका *'चतुर नृप'* शब्द अतिशय भावपूर्ण है।

याचना उस वस्तुकी की जाती है जो अपने पास न हो। मनुजीके पुत्र, पौत्र, दौहित्र आदि सब परिवार भरे हैं। प्रसङ्गके प्रारम्भमें श्रीगोस्वामीजीने भलीभाँति वर्णन किया है। श्रीमनु महाराजके सन्तानोंसे समस्त सृष्टि परिपूर्ण है। *'जिन्ह ते भै नरसृष्टि अनूपा।'* तो मनु महाराजने प्रभुसे पुत्र होनेकी प्रार्थना क्यों की? दूसरा एक प्रश्न और है कि मनु महाराज घरसे निकले हैं भक्तिकी कामनासे *'जनम गयउ हरिभगति बिनु'* और जब प्रभुको देखा तब अपनी चिर-अभिलषित भक्ति न माँग करके पुत्र बननेकी याचना क्यों की? (क) इसमें भाव यह है—महाराज मनुने जब श्रीरामचन्द्रजीके मङ्गलमय स्वरूपका दर्शन किया तब सोचने लगे—अहा! श्रीरामजी कितने सुन्दर हैं। ऐसा सौन्दर्य तो कभी सुना भी नहीं था, कभी अनुमान भी नहीं लगाया था। फिर सोचने लगे—मैंने हजारों वर्ष राज्य किया। एक वत्सल पिताकी भाँति जो खाया वह प्रजाको भी खिलाया। जो सुख मैंने लिया वह प्रजाको भी दिया परन्तु जो सुख आज मैं ले रहा हूँ, जिस परमानन्द सुधारसका आस्वादन मैं कर रहा हूँ वह मेरी प्रजाने नहीं किया। चतुर राजाने सोचा—यदि मैं इन्हें पुत्र बना लूँ तो मेरी अयोध्यामें रहनेवाली प्रजा—भविष्यकी प्रजा इस परमानन्दको भी प्राप्त कर लेगी। अतः श्रीरामजीसे पुत्र बननेकी याचना की। इसी आशयसे कहा—*'जो बरु नाथ चतुर नृप मागा'* (ख) 'भज सेवायाम्' धातुसे भक्ति शब्दकी निष्पत्ति होती है अतः 'भक्ति' शब्दका अर्थ है—सेवा करना। श्रीमनुने सोचा कि यदि ये मेरे पुत्र हो जायेंगे तो मैं इनकी मनोयोगपूर्वक अतिशय सेवा करूँगा। इनका अपलक दर्शन करता रहूँगा। जीवन भर भक्ति करूँगा। इस

भावनासे पुत्र होनेका वर माँगा। अतः श्रीशतरूपाजी कहती हैं ***'जो बरु नाथ चतुर नृप मागा।'*** (ग) मनु महाराजने जब श्रीसीतारामजीका दर्शन किया तब जन्म-जन्मका वात्सल्यभाव जग गया और सोचने लगे कि पुत्र तो मेरे अनेक हैं; परन्तु ऐसा पुत्र तो आजतक कभी नहीं देखा, यदि ये मेरे पुत्र हो जायँ तो मेरी तपस्या सफल हो जाय, अतः श्रीठाकुरजीसे पुत्र होनेका वर माँगा। इसीलिये कहा ***'चतुर नृप मागा'***। (घ) श्रीमनुने सोचा—मैंने एक धर्मशास्त्र लिखा है। उसका लिखना तभी सफल होगा जब लोग उसके अनुसार चलें—व्यवहार करें—आचरण करें। ऐसा तभी होगा जब कोई महापुरुष स्वयं आचरण करके दिखावे **'यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः'**। यदि परब्रह्म मेरे पुत्र हो जायेंगे तो उस धर्मशास्त्र—मनुस्मृतिके अनुसार आचरण करेंगे तो मेरा मनुस्मृतिका लिखना सफल हो जायेगा। इस आशयसे श्रीमनुने पुत्र होनेकी वर याचना की। श्रीमनुमहाराजके इस भावको शतरूपाजी समझ गयीं। अतः कहा ***'जो बरु नाथ चतुर नृप मागा'।*** श्रीशतरूपाजीने वर याचना की।

जे निज भगत नाथ तव अहहीं।
जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥
सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु॥

श्रीभगवान्‌ने उन्हें वर दिया।

मातु बिबेक अलौकिक तोरें।
कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें॥

श्रीशतरूपाजीकी वरयाचनाके अनन्तर श्रीमनुने एक भावपूर्ण वर याचना और भी की।

बंदि चरन मनु कहेउ बहोरी।
अवर एक बिनती प्रभु मोरी॥
सुत बिषइक तव पद रति होऊ।
मोहि बड़ मूढ कहै किन कोऊ॥
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना।
मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना॥

श्रीठाकुरजीने मनुको पुनः एवमस्तु कहकर श्रीमनु-शतरूपासे कहा—अब आप लोग मेरी आज्ञा मानकर देवेन्द्रकी राजधानी अमरावतीमें पधारकर वास करें। वहाँ विशाल सुख भोग करके कुछ समय व्यतीत होनेके पश्चात् आप श्रीअयोध्याजीके राजा दशरथ होंगे। तब मैं आपके पुत्रके रूपमें जन्म धारण करूँगा।

तहँ करि भोग बिसाल तात गएँ कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत॥

हे राजन्! मैं अपने अंशोंके साथ देह धारण करूँगा। संसारकी उत्पत्ति करनेवाली आदिशक्ति मेरी माया श्रीसीताजी भी अवतार धारण करेंगी। मैं आपकी अभिलाषा अवश्य पूर्ण करूँगा। यह मेरा प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है। इस प्रकार बार-बार कहकर उन्हें आश्वस्त करके उदार-शिरोमणि, भक्तवत्सल प्रभु अन्तर्धान हो गये।

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा।
सत्य सत्य पन सत्य हमारा॥
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना।
अंतरधान भए भगवाना॥

श्रीमनु और शतरूपाजीने कुछ दिन नैमिषारण्यमें निवास करके यथा समय देह त्याग करके स्वर्ग जाकरके अमरावतीमें निवास किया।

एक केकय देश था। वहाँके राजाका नाम सत्यकेतु था। उसके दो पुत्र थे—प्रतापभानु और अरिमर्दन। राजाने अपने बड़े पुत्रको राज्य दे

दिया। दोनों भाइयोंमें निश्छल स्नेह था।

श्रीरामचरितमानसके प्राचीन टीकाकार श्रीकरुणासिन्धुजी महाराज लिखते हैं—भानुप्रताप श्रीरामजीका सखा था उसका नाम प्रतापी था। इसके ऊपर श्रीरामजीकी बहुत कृपा थी। मनु-शतरूपाके वरदानके पश्चात् प्रभुने इसे आज्ञा दी—तुम प्रकृति मण्डलमें जाकर रहो। हम तुम्हारे साथ भविष्यमें रणक्रीड़ा करेंगे। प्रभुकी आज्ञा प्राप्त करके आदिकल्पके प्रथम सत्ययुगमें ही वह प्रतापी सखा प्रतापभानु राजा हुआ।

प्रतापी राघवः सखा भ्राता वै स हि रावणः।
राघवेण तदा साक्षात् साकेतादवतीर्यते॥

(शिवसंहिता)

प्रतापभानुके मन्त्रीका नाम धर्मरुचि था। वह शुक्राचार्यके समान नीतिज्ञ था। समय पाकर प्रतापभानुने विश्वविजय कर लिया।

सकल अवनि मंडल तेहि काला।
एक प्रतापभानु महिपाला॥

राजाका बल प्राप्त करके वसुन्धरा कामधेनुके समान हो गयी। वह समस्त शुभ कर्म स्वयं करता था।

जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
बार सहस्त्र सहस्त्र नृप किए सहित अनुराग॥

समस्त कर्म निष्कामभावसे करता था।

बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी।

एक बार राजा शिकार खेलने गया। उसने एक भयङ्कर शूकर देखा। उसको मारनेके लिये उसका पीछा किया। वास्तवमें यह शूकर कालकेतु नामका राक्षस था। इसके सौ पुत्र और दस भाइयोंको, जो देवताओंको, ब्राह्मणोंको और सन्तोंको दुःख देते थे राजाने समराङ्गणमें मार डाला था। वही दुष्ट आज राजासे बदला लेनेके लिये शूकर रूपमें आया था। वह अपनेको राजाके बाणोंसे बचाते, लुकते, छिपते एक घने जङ्गलमें राजाको ले गया। स्वयं एक पर्वतकी गुफामें प्रवेश कर गया। राजा उस घने और भयावने जङ्गलमें भटक गया। राजा और उनका घोड़ा दोनों भूख-प्याससे व्याकुल हो गये। खोजनेपर भी नदी और तालाब नहीं मिले।

खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत।
खोजत ब्याकुल सरित सर जल बिनु भयउ अचेत॥

जङ्गलमें भटकते हुये प्रतापभानुने एक आश्रम देखा। उस आश्रममें एक कपटी मुनि रहता था। वास्तवमें वह एक राजा था। प्रतापभानुके विश्वविजयकी यात्रामें यह उनसे पराजित हो गया था। उसी समयसे प्रतिशोधकी भावनासे जङ्गलमें रहने लग गया। राजाने उसे देखकर घोड़ेसे उतरकर सादर प्रणाम किया। उसने राजाको प्यासा समझकर साथमें जाकर सरोवर दिखा दिया। राजा घोड़ेके सहित स्नान एवं जलपान करके प्रसन्न हो गया। राजाको कपटी मुनि अपने आश्रममें ले आया। उसके परिचय पूछनेपर राजाने कहा—मैं राजा प्रतापभानुका मन्त्री हूँ, मृगया करते हुये जङ्गलमें भटक गया हूँ। परिणामस्वरूप आपका दुर्लभ दर्शन मिल गया। कपटी राजाने कहा—इस समय भयङ्कर अँधेरी रात है, गहन वन है, मार्ग अवरुद्ध है एतावता आजकी रात्रि यहीं व्यतीत करके प्रातःकाल चले जाना। राजाने उसकी बात मान ली और घोड़ेको पेड़से बाँधकर स्वयं कपटी मुनिके पास आकर बैठ गया। राजाके श्रद्धापूर्वक प्रश्न करनेपर उसने अपना नाम 'भिखारी' बताया। राजाने कहा—हे

महात्मन्! आपकी तरह सन्त अभिमान शून्य होकर कुबेष बनाकर अपनेको छिपाये रहते हैं। आप जो भी हों, हम आपके चरणोंमें प्रणाम करते हैं। आप मुझपर कृपा करिये। राजाकी अपने प्रति सहज प्रीति एवं प्रतीति देखकर कपटी मुनिने कहा—मुझे यहाँ रहते हुए बहुत दिन हो गये। अबतक मुझे कोई मिला नहीं और मैं किसीको अपना परिचय भी नहीं देता हूँ; क्योंकि तपस्यारूपी जङ्गलको लोकप्रतिष्ठारूपी अग्नि जलाकर स्वाहा कर देती है।

लोकमान्यता अनल सम कर तप कानन दाहु॥

साधकोंके लिये, सन्तोंके लिये यह पङ्क्ति बड़े कामकी है इसका मनन करना चाहिये। इसके पश्चात् एक सोरठा भी बहुत भाव गर्भित है।

तुलसी देखि सुबेषु भूलहिं मूढ़ न चतुर नर।
सुंदर केकिहि पेखु बचन सुधा सम असन अहि॥

कपटी मुनिने राजाको प्रभावित करनेके लिये अपना नाम 'एकतनु' बताया। पुनः राजाने प्रेमसे पूछा—आपके नामका क्या अर्थ है? तब उसने कहा—

आदिसृष्टि उपजी जबहिं तब उतपति भै मोरि।
नाम एकतनु हेतु तेहि देह न धरी बहोरि॥

राजाको आश्चर्यचकित देखकर उसने बात सँभाली।

जनि आचरजु करहु मन माहीं।
सुत तप तें दुर्लभ कछु नाहीं॥

इसके पश्चात् कपटी मुनिने अनेक प्रकारकी चर्चायें की। उसे सुनकर राजा उसके वशमें हो गया और अपना नाम बतानेका उपक्रम किया, तब उसने कहा—मैं जानता हूँ कि आपका नाम प्रतापभानु है। आपका कपट मुझे अच्छा लगा क्योंकि नीति यही है कि राजाको यत्र-तत्र अपना नाम नहीं बताना चाहिये। हे राजन्! मेरे मनमें आपके प्रति अत्यन्त ममता है एतावता आपकी जो इच्छा हो मुझसे माँग लें। राजाने वर याचना की।

जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ।
एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ॥

राजाका वचन सुनकर कपटी मुनिने कहा—ऐसा ही हो, हे राजन्! आपके चरणोंमें समस्त संसारको खानेवाला काल भी नतमस्तक होगा; परन्तु एक ब्राह्मण वंशको छोड़कर। ब्राह्मण तपस्वी होता है—तपस्याके बलपर बलवान् होता है। यदि आप ब्राह्मणोंको वशमें कर लें तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी आपके वशमें हो जायेंगे। राजाने कहा—कृपा करके यह भी बतावें कि ब्राह्मण किस प्रकार मेरे वशमें होंगे? कपटी मुनिने कहा—हे राजन्! ब्राह्मणोंको वशमें करनेकी एक युक्ति अति सुगम है; परन्तु उसमें एक कठिनाई है कि वह उपाय मेरे अधीन है। तुम्हारे नगरमें मेरा जाना नहीं हो सकता। मैं जबसे उत्पन्न हुआ हूँ तबसे आजतक किसीके घर और ग्राममें नहीं गया हूँ। आज यदि नहीं जाता हूँ तो तुम्हारा काम नष्ट हो जायगा। एतावता बड़ी दुविधामें फँस गया हूँ। राजाने प्रार्थना की—हे नाथ! बड़े लोग छोटोंपर स्नेह करते हैं। पर्वत अपने सिरोंपर सदा तिनके धारण करते हैं, अगाध समुद्रके मस्तकपर फेन बहा करता है और पृथ्वी अपने मस्तकपर निरन्तर धूलि धारण किये रहती है।

बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं।
गिरि निज सिरनि सदा तृन धरहीं॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू।
संतत धरनि धरत सिर रेनू॥

अस कहि गहे नरेस पद स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु सज्जन दीनदयाल॥

इस तुच्छके लिये *'कृपालु और दीनदयालु'* शब्द सुनकर सम्भवत: श्रीठाकुरजी भी हँसे होंगे कि अब यह नया भगवान् पैदा हो गया है। वास्तवमें राजा स्वार्थमें अन्धा हो गया है। इसी कारण उसका सर्वनाश होगा।

भानुप्रतापकी बात सुनकर कपटप्रवीण तपस्वी बोला—मैं तुम्हारा कार्य अवश्य करूँगा; परन्तु इतना स्मरण रखना कि योग, युक्ति, तप और मन्त्र गुप्त रखनेपर ही फलीभूत होते हैं। इसलिये मैं रसोई करूँ और तुम परसो लेकिन मुझे कोई जाने नहीं। इस पद्धतिसे जो-जो ब्राह्मण तुम्हारे यहाँ भोजन करेंगे वह तुम्हारे वशमें हो जायेंगे। उन ब्राह्मणोंके घरमें भी जो भोजन करेगा वह भी तुम्हारे वशमें हो जायगा। अब तुम अपने घर जाकर यही उपाय करो। एक वर्षके लिये सङ्कल्प कर लो, नित्य ही एक लाख ब्राह्मणोंके—नये ब्राह्मणोंके भोजन करानेका सङ्कल्प करो, मैं तुम्हारे पुरोहितका—गुरुका अपहरण करके एक वर्षपर्यन्त यहाँ रखूँगा और उसीके वेषमें मैं आऊँगा। तुम्हारा समस्त कार्य मैं सम्पन्न करूँगा। हे राजन्! अब रात बहुत बीत गयी है अत: तुम जाकर शयन करो। हमारी तुम्हारी भेंट आजके तीसरे दिन होगी। मैं अपनी तपस्याके प्रभावसे सोते-सोते ही घोड़ेके साथ तुमको तुम्हारे घर पहुँचा दूँगा। यह कहकर कपटी मुनि चला गया। राजा प्रतापभानु दिनमें अत्यन्त थक गया था अत: सो गया।

उसी समय कपटी मुनिके पास कालकेतु राक्षस आया। जिसने शूकर रूप धारण करके राजाको भ्रमित कर दिया था और यहाँतक ले आया था। कपटी राजा और कालकेतु राक्षस दोनों राजाके पुराने शत्रु थे। दोनोंने मन्त्रणा करके छलपूर्वक राजाके विनाश करनेका विचार कर लिया। तेजस्वी शत्रु एकाकी हो तब भी उसका विश्वास नहीं करना चाहिये। 'राहु' आज भी चन्द्रमा और सूर्यको कष्ट देता है।

रिपु तेजसी अकेल अपि लघु कर गनिअ न ताहु।
अजहुँ देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु॥

कालकेतुने कपटी राजासे कहा—कुलके समेत राजाका नाश करके चौथे दिन मैं यहीं आकर तुमसे मिलूँगा। इसके पश्चात् कालकेतुने मायाके द्वारा भानुप्रतापको सोते-सोते उसके महलमें उसकी पत्नीके पास सुला दिया। घोड़ेको हयशालामें बाँध दिया। राजाके पुरोहितका अपहरण करके उसे पर्वतकी कन्दरामें रख दिया और उसकी बुद्धिको भ्रमित कर दिया—विचारशक्तिसे रहित कर दिया।

राजा के उपरोहितहि हरि लै गयउ बहोरि।
लै राखेसि गिरि खोह महुँ मायाँ करि मति भोरि॥

स्वयं पुरोहितका रूप धारण करके उसकी शय्यापर सो गया। राजा प्रात:काल उठा अपनी स्त्रीके पास स्वयंको देखकर आश्चर्य हुआ; परन्तु मुनिकी महिमा समझकर और भी प्रभावित हो गया। समय जानकर पुरोहितके रूपमें कालकेतु राक्षस आया, उसने एकान्तमें राजाको सब समझा दिया। उसकी आज्ञासे भानुप्रतापने कुटुम्बसमेत एक लाख ब्राह्मणोंको भोजनके लिये निमन्त्रित कर दिया।

नृप हरषेउ पहिचानि गुरु भ्रम बस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस बर बिप्र कुटुंब समेत॥

कालकेतुने मायामय रसोई बनायी। समस्त व्यञ्जन राक्षसकी मायासे बने थे।

मायामय तेहिं कीन्हि रसोई।
बिंजन बहु गनि सकइ न कोई॥

इसीलिये कालकेतुके अन्तर्धान होनेपर सब व्यञ्जन भी अन्तर्धान हो जायेंगे।

तहँ न असन नहिं बिप्र सुआरा।
फिरेउ राउ मन सोच अपारा॥

वस्तुत: वहाँ कोई पदार्थ नहीं था। केवल अनेक जानवरोंके मांस थे और उनमें ब्राह्मणका भी मांस मिला था। भोजनके लिये निमन्त्रित ब्राह्मणोंको राजाने बुलाया। चरण धोकर सबको आदरपूर्वक बिठाया। राजा ज्यों ही परिवेषण करने लगा त्यों ही आकाशवाणी हुई—हे ब्राह्मणो! सावधान! आप लोग अपने-अपने घर जाओ। यह रसोई ब्राह्मणके मांसकी है। यह आकाशवाणी भी कालकेतु राक्षसकी है। ब्राह्मणोंने विना विचार किये श्राप दे दिया—अरे मूर्ख राजा! तू परिवारसहित हमारा धर्म नष्ट करनेके लिये ब्राह्मण-मांस परिवेषण कर रहा था। एतावता तुम अपने परिवारके सहित राक्षस हो जाओ।

बोले बिप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्हि बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार॥

यद्यपि इसके पश्चात् श्रेष्ठ आकाशवाणी भी हुई।

बिप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा।
नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा॥

राजा जब भण्डारमें गया तब वहाँ न भोजन पदार्थ ही थे और न ब्राह्मण रसोइया ही था।

कपटी राजाके प्रयाससे युद्ध आरम्भ हो गया और उस युद्धमें सपरिकर, सकुटुम्ब राजाका विनाश हो गया। ब्राह्मणका श्राप असत्य नहीं हो सकता था।

सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा।
बिप्रश्राप किमि होइ असाँचा॥

प्रतापभानुके चरित्रमें कुछ प्रश्न प्राय: लोग करते हैं। १-क्या उस समय लोग मांस खाते थे? इसका उत्तर इसी प्रसङ्गमें अभी-अभी दे चुका हूँ। वहाँ रसोई थी ही नहीं, कोई पाचक भी नहीं था सब राक्षसी माया थी, अत: मांस खानेका प्रश्न ही नहीं है। २-इतने धार्मिक राजाका पतन क्यों हुआ? इसका उत्तर यह है—उससे कई अपराध हो गये। (**क**) उसने अपने पुरोहित—गुरुकी दुर्दशा करायी। गुरुको पर्वतकी कन्दरामें बुद्धि भ्रष्ट करके रखा गया। गुरुके इस प्रकारके अपमान और क्लेशमें राजाकी भी सम्मति थी। (**ख**) जीवन भर निष्काम कर्म करनेवाला राजा कपटी मुनिके प्रसन्न होनेपर, प्रजाके लिये, समाजके लिये, परिवारके लिये, मोक्षके लिये और भगवत् प्राप्तिके लिये कुछ नहीं याचना करता, सब कुछ उसने अपने लिये ही माँगा। यह स्वार्थ ही उसके विनाशका कारण बना। (**ग**) उसने अपने मन्त्रीसे सलाह नहीं ली। यह राजधर्मके विपरीत है। यदि मन्त्रीसे प्रतापभानु इस नयी समस्यापर परामर्श करता तो सब ठीक हो जाता। (**घ**) वह स्वार्थमें अन्धा हो गया। ३-उसने बड़े बड़े यज्ञ आदि शुभ कर्म किये थे उसका फल व्यर्थ हो गया? धर्माचरण कभी निष्फल नहीं होता है। इन्द्रके अत्यन्त प्रयास करनेपर भी दितिके गर्भका समूल नाश नहीं हुआ, श्रीशुकदेवजी कहते हैं।

न ममार दितेर्गर्भः श्रीनिवासानुकम्पया।
बहुधा कुलिशक्षुण्णो द्रौण्यस्त्रेण यथा भवान्॥

(श्रीमद्भागवत ६। १८। ६५)

श्रीमद्भगवद्गीतामें भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इसी प्रकार कहा है।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता २। ४०)

प्रतापभानुके धर्माचरणका बड़ा सुन्दर फल मिला वह श्रीरामजीकी इच्छानुसार रावण बना। श्रीरामजीका प्रतिद्वन्द्वी साधारण नहीं होगा। यह तो पूर्वजन्ममें श्रीरामजीका सखा ही था। प्रभुकी इच्छानुसार ही यह प्रतापीसे प्रतापभानु और प्रतापभानुसे रावण बना। परमसमर्थ करुणामय श्रीरघुनन्दनके साथ रणक्रीड़ा करके पुनः साकेत चला गया। यह उसके धर्म-कर्मका ही फल उसको मिला।

अपने परिवार एवं परिकरोंके साथ प्रतापभानु रावणके रूपमें अवतरित हुआ।

'कहेसि बहुरि रावन अवतारा'

प्रतापभानु रावण, उसका छोटा भाई अरिमर्दन कुम्भकर्ण और मन्त्री धर्मरुचि विभीषणके रूपमें जन्म धारण किये। तीनों पुलस्त्यके पुत्र महर्षि विश्रवाके पुत्र हुये। ये तीनों गोकर्णक्षेत्रमें जाकर अनेक प्रकारकी तपस्या करने लगे।

कीन्ह बिबिध तप तीनिहुँ भाई।
परम उग्र नहिं बरनि सो जाई॥

तीनोंके सन्निकट श्रीब्रह्माजी वर प्रदान करनेके लिये गये और रावणसे कहा—मैं प्रसन्न हूँ, वर मागो। सुनकर रावणने कहा—हे जगदीश! इस सम्बोधनका भाव यह है कि आप जगत्के स्वामी हैं, हम आपकी सृष्टिमें किसीसे न मरें। श्रीब्रह्माने कहा—मृत्युलोकमें यह असम्भव है। सुनकर उसने कहा—वानर और मनुष्य दो जातिके अतिरिक्त किसीके मारनेसे न मरें।

हम काहू के मरहिं न मारें।
बानर मनुज जाति दुइ बारें॥

श्रीब्रह्माजी रावणसे एवमस्तु कहकर कुम्भकर्णके पास गये। श्रीब्रह्माजीने भगवती सरस्वतीके द्वारा उसकी बुद्धि फेर दी, तब उसने छः महीनेकी नींद माँग ली।

सारद प्रेरि तासु मति फेरी।
मागेसि नीद मास षट केरी॥

इसके बाद श्रीब्रह्माजी श्रीविभीषणके पास गये। उनसे कहा ***'पुत्र बर मागु'।*** रावण, कुम्भकर्णसे 'पुत्र' नहीं कहा, विभीषणसे कहा। भाव यह है कि यह भक्तिका वरदान लेकर, भक्त होकर, प्रभुकी प्राप्ति करके वंशका उद्धार कर देगा।

पुन्नामो नरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवः॥

(वायुपुराण)

श्रीविभीषणने लोकपितामह श्रीब्रह्माजीसे भगवच्चरणोंकी निर्मल भक्तिकी याचना की।

गए बिभीषन पास पुनि कहेहु पुत्र बर मागु।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु॥

'भगवंत पद' कहनेका अभिप्राय यह है—विभीषणने छः भग—ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इनको अपने वशमें कर लिया।

इस प्रसङ्गसे एक विशेष उपदेश लेना चाहिये। प्राप्त पदार्थका सदुपयोग करना चाहिये। मनुष्य शरीर बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है। यह प्रभुकी करुणासे समुपलब्ध होता है।

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(७। ४४)

इस दुर्लभ और भगवत् कृपासे उपलब्ध मनुष्य शरीरका सदुपयोग करना चाहिये। रावणादि तीनों भाइयोंने एक स्थानपर एक समयतक तपस्या की। परन्तु उसका सदुपयोग केवल विभीषणने किया। इसी वर-याचनाकी भाँति कोई रावणकी तरह जीना और खाना माँगता है, कोई कुम्भकर्णकी भाँति सोना माँगता है और कोई विभीषणकी भाँति करुणामय श्रीरामचन्द्रजीके निर्मल पदकमलोंका निर्मल, पावन अनुराग माँगता है। श्रीविभीषण धन्य हो गये, कृतार्थ हो गये।

दानवराज मयने अपनी पुत्री मन्दोदरीका रावणसे विवाह कर दिया। रावणने यथासमय अपने दोनों भाइयोंका भी विवाह कर दिया। यक्षोंको भगाकर रावणने लङ्कापर अधिकार कर लिया। एक बार कुबेरपर धावा बोलकर उनसे पुष्पकविमान जीत लिया।

एक बार कुबेर पर धावा।
पुष्पक जान जीति लै आवा॥

खेल ही खेलमें उसने कैलासपर्वत उठाकर, अपने बाहुबलको तौलकर, बहुत सुख प्राप्त किया।

कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाइ॥

रावणका भ्राता कुम्भकर्ण जिसका प्रतिद्वन्द्वी संसारमें उत्पन्न ही नहीं हुआ, वह मदिरा पीकर छः मास पर्यन्त सोता था। उसके जगनेपर त्रैलोक्य भयभीत हो जाता था। रावणका जेष्ठ पुत्र मेघनाद था। संसारके योद्धाओंमें उसकी प्रथम गणना होती थी।

बारिदनाद जेठ सुत तासू।
भट महुँ प्रथम लीक जग जासू॥

रावणके पास बड़े-बड़े मायावी, बलवान्, निर्दयी और अधर्मी वीर थे।

कुमुख अंकपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय॥
कामरूप जानहिं सब माया।
सपनेहुँ जिन्ह कें धरम न दाया॥

रावण अपने भाई, पुत्रों और सेवकोंके साथ त्रैलोक्यमें घूम-घूमकर धर्मका नाश करने लगा। ब्राह्मण-भोजन, मख, होम और श्राद्धका विनाश करने लगा। रणके मदमें उन्मत्त होकर समस्त संसारमें युद्ध करनेके लिये भागकर जाता था। उसे कोई युद्ध करनेयोग्य प्रतिद्वन्द्वी योद्धा नहीं मिलता था। देवताओंको गाली देकर—अपशब्द कहकर युद्धके लिये ललकारता था। सूर्य, चन्द्रमा, पवन, वरुण, कुबेर, यम और अग्नि इन समस्त लोकपालोंको वह सताने लगा।

पुनि पुनि सिंहनाद करि भारी।
देइ देवतन्ह गारि पचारी॥
रन मद मत्त फिरइ जग धावा।
प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा॥
रबि ससि पवन बरुन धनधारी।
अगिनि काल जम सब अधिकारी॥
किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा।
हठि सबही के पंथहि लागा॥

अपनी भुजाओंके बलसे उसने संसारको वशमें कर लिया, कोई स्वतन्त्र नहीं रह गया।

भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन राज करइ निज मंत्र॥

देव जच्छ गंधर्ब नर किंनर नाग कुमारि।
जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुंदर बर नारि॥

उसके पुत्र मेघनादने इन्द्र आदि समस्त देवताओंको जीत लिया। हर प्रकारसे धर्मका विनाश करने लगा। ब्राह्मण और गौ जिस नगर और ग्राममें होते थे उसमें आग लगा देता था। देवता, ब्राह्मण और गुरुओंका सम्मान समाप्त हो गया था। हरिभक्ति, यज्ञ, तप, ज्ञान, वेद और पुराणकी चर्चा कहीं सुननेमें नहीं आती थी। जो वेद-पुराणकी कथा कहते पाये जाते थे उन्हें देशसे निकाल दिया जाता था। इस प्रकार राक्षसोंकी अनीतिका वर्णन नहीं हो सकता।

अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।
तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना॥
बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥

गोस्वामीजी राक्षसोंकी पहचान बताते हैं—जो माता, पिता, देवताका आदर न करे और सन्तोंसे सेवा करावे वही व्यक्ति राक्षसके समान है।

मानहिं मातु पिता नहिं देवा।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी।
ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥

धर्मकी अत्यन्त हानि देखकर 'धरा' व्याकुल हो गयी। यहाँ 'धरा' शब्द साभिप्राय है। जो समस्त लोकोंको धारण करे उसका नाम 'धरा' है '**पृथ्वि त्वया धृता लोका।**' किं वा—जिसको भगवान् विष्णु धारण करें उसका नाम 'धरा' है '**देवि त्वं विष्णुना धृता**'। किं वा—जो समस्त संसारको धारण करे वह 'धरा है'—'**त्वं च धारय मां देवि**'। किं वा—जो सम्पूर्ण पदार्थोंको अपनेमें धारण करे उसको 'धरा' कहते हैं। श्रीमद्भागवतमें श्रीपृथु भगवान्‌से पृथ्वी कहती हैं—हे लोकपाल वीर! यदि आपको समस्त प्राणियोंके अभीष्ट एवं बलको समृद्ध करनेवाले अन्नकी आवश्यकता है तो आप मेरे अनुरूप वत्स, पात्र और दोग्धाकी व्यवस्था करिये। मैं उस वत्सके स्नेहसे पिन्हाकर दुग्धके रूपमें सभी अभीप्सित पदार्थ आपको दे दूँगी।

वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं वत्सला तव।
धोक्ष्ये क्षीरमयान् कामाननुरूपं च दोहनम्॥
दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन।
अन्नमीप्सितमूर्जस्वद् भगवान् वाञ्छते यदि॥

(श्रीमद्भागवत ४। १८। ९, १०)

किं बहुना—जिसपर भक्तिकी धारा, रामस्नेहकी सरसधारा सतत् प्रवाहित हो उसे 'धरा' कहते हैं। वह धरा व्याकुल हो गयीं।

परम सभीत धरा अकुलानी।

व्याकुल पृथ्वी धेनु-रूप धारण करके देवताओं और मुनियोंके समाजमें गयी। पृथ्वीने रो-रो करके सबके सामने अपना दुःख निवेदन किया। सबलोग मिलकर ब्रह्माके लोकमें गये। श्रीब्रह्माने सबको आश्वस्त किया।

धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरिपद सुमिरु।
जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन बिपति॥

सम्पूर्ण देवता, मुनीन्द्र, सिद्ध, ब्रह्मा और शङ्करजी सब बैठे थे। इनके मध्यमें एक प्रश्न है। प्रभुको कहाँ पावें? कहाँ जाकर अपनी स्थिति सुनावें?

बैठे सुर सब करहिं बिचारा।
कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥

आज प्राणीमात्रकी यही समस्या है, लोग

यह निर्णय नहीं कर पाते कि हम किस साधनसे भगवान्‌की प्राप्ति करें। सच तो यह है कि अधिकांश लोगोंको साध्य-साधनका ही ज्ञान नहीं है। इस प्रसङ्गके माध्यमसे लोग प्रेरणा लें। किसीने वैकुण्ठमें जानेके लिये कहा तो किसीने क्षीरसागरमें जाकर श्रीभगवान्‌से प्रार्थना करनेके लिये कहा।

पुर बैकुंठ जान कह कोई।
कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई॥

सबका प्रश्न था श्रीहरि कहाँ हैं? श्रीशङ्करजीने ठीक इसके विपरीत दूसरा प्रश्न कर दिया—***'कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।'*** अर्थात् श्रीशङ्करजी कहते हैं—श्रीहरि सर्वत्र समान रूपसे परिव्याप्त हैं, वे प्रेमसे प्रकट होते हैं। अन्यथा आपलोग बतावें—कौन सा ऐसा देश और काल है, कौन-सी ऐसी दिशा और विदिशा है, जहाँ भगवान् नहीं हैं? श्रीशङ्करजीके इस प्रश्नमें सबके प्रश्नोंका उत्तर सन्निहित है। श्रीशङ्करजीने और स्पष्ट किया—श्रीभगवान् समस्त जड़-चेतनमें परिव्याप्त होते हुए भी सबसे रहित हैं और उनकी कुत्रचिदपि आसक्ति नहीं है। वे प्रेमसे प्रकट होते हैं, जिस प्रकार अग्नि अव्यक्त रूपसे सर्वत्र व्याप्त है; परन्तु जहाँ अग्निके प्राकट्यके लिये अरणि-मन्थनादि साधन किये जाते हैं वहाँ अग्नि प्रकट होती है इसी प्रकार विश्वके अणु-अणुमें परिव्याप्त भगवान् भी प्रेमसे प्रकट होते हैं। श्रीशङ्करजीकी बात सबको भली प्रतीत हुई। सबने और ब्रह्माजीने शङ्करजीके कथनानुसार प्रेमसे भगवान्‌के आवाहन करनेका निश्चय किया।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं।
कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित बिरागी।
प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥
मोर बचन सब के मन माना।
साधु साधु करि ब्रह्म बखाना॥

श्रीब्रह्माजीका मन प्रेमानन्दसे परिपूर्ण हो गया, शरीर रोमाञ्च कण्टकित हो गया, उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे। फिर वे सावधान होकर मन और बुद्धिको स्थिर करके हाथ जोड़ करके स्तुति करने लगे।

सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मतिधीर॥

श्रीब्रह्माकी स्तुति चार छन्दोंमें है, बड़ी भावपूर्ण स्तुति है। इसमें सोलह पङ्क्तियाँ हैं, इसका भाव यह है कि हे प्रभो! आप अपनी सोलह कलाओंसे अवतार धारण करें।

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।

'जय' शब्दसे स्तुतिका आरम्भ किया। जिसका अर्थ है—आप सब प्रकारसे विजयी हों। **'जय'** भगवान्‌का नाम भी है।

'जयो जितारिः सर्वादिः शमनो भयभञ्जनः'

(आनन्दरामायण राज्यकाण्ड)

आगे श्रीब्रह्माजी स्तुतिका समापन करते हैं।

जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना।
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुन-मंदिर सुख-पुंजा।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा॥
जानि सभय सुरभूमि सुनि बचन समेत सनेह।
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥

शोक सन्देहको हरण करनेवाली श्रीभगवान्‌की दिव्य आकाशवाणी हुई। आकाशवाणीके आदि

और अन्तमें भगवान् सबको निर्भय करते हैं। आरम्भमें कहा *'जनि डरपहु'* और अन्तमें *'निर्भय होहु देव समुदाई।'* भाव कि श्रीहरि सबका क्लेश अपहरण करके निर्भयता प्रदान करना चाहते हैं। किं वा—श्रीरामजी सबको दैवी सम्पत्तिसे सम्पन्न करना चाहते हैं। दैवी सम्पत्तिके गुणोंमें सबसे पहला 'अभय' है **'अभयं सत्त्वसंशुद्धिः'**। आकाशवाणीके माध्यमसे श्रीहरिने कहा—मैं अंशोंके सहित कोशलपुरीमें श्रीदशरथजीके यहाँ अवतार धारण करूँगा। परमशक्तिके साथ अवतार लूँगा।

ते दसरथ कौसल्या रूपा।
कोसलपुरीं प्रगट नरभूपा॥
तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई।
रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥
नारद बचन सत्य सब करिहउँ।
परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई।
निर्भय होहु देव समुदाई॥

श्रीब्रह्माकी आज्ञासे देवता ऋक्ष, वानर और गोलांगूलका शरीर धारण करके भूमिपर विचरण करने लगे। श्रीब्रह्माजी तो जाम्बवान्के रूपमें पूर्वसेही उपस्थित थे। सूर्यके अंशसे श्रीसुग्रीवजी और श्रीशङ्करके अंशसे पवनसुत श्रीहनुमान्जी महाराजने अवतार धारण किया।

बनचर देह धरी छिति माहीं।
अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा।
हरि मारग चितवहिं मतिधीरा॥

इस प्रकार श्रीरामजीके मङ्गलमय अवतरणकी भूमिका पूर्ण हो गयी। अब श्रीरामजीके प्राकट्यकी कथा कहेंगे। उसके पूर्व श्रीरामकी जन्मभूमि और माता पिताका वर्णन करते हैं।

श्रीअयोध्याजीमें चक्रवर्ती नरेन्द्र महाराज श्रीदशरथजी निवास करते हैं। वे धर्मधुरन्धर, गुणनिधि और ज्ञानी थे, उनके हृदयमें श्रीभगवान् शार्ङ्गपाणिकी भक्ति थी। उनके श्रीकौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा ये तीन रानियाँ थीं। सब प्रिय थीं और पवित्र आचरणवाली थीं। पतिके अनुकूल थीं और श्रीहरिके श्रीचरणकमलोंमें उनका विनयसे युक्त दृढ़ अनुराग था। भाव कि उनका प्रेम उच्छृङ्खल नहीं था।

अवधपुरी रघुकुलमनि राऊ।
बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ॥
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी।
हृदयँ भगति मति सारँगपानी॥
कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल बिनीत॥

श्रीदशरथजीको श्रीअयोध्याका राज्य करते हुये साठ हजार वर्ष व्यतीत हो गये। एक बार श्रीदशरथजीके मनमें ग्लानि हुई कि मेरे पुत्र नहीं है।

एक बार भूपति मन माहीं।
भै गलानि मोरे सुत नाहीं॥

'मोरे सुत नाहीं' का भाव वंश चलानेवाला पुत्र नहीं है। आशय यह है—पुत्रका स्नेह देनेवाले, पुत्रकी भाँति सेवा करनेवाले तो अनेक लोग थे; परन्तु वंशप्रवर्तक कोई पुत्र नहीं था। अथवा पुत्र कई प्रकारके होते हैं—नाद पुत्र, भाव पुत्र और औरस पुत्र आदि। राजाके पास वंश चलानेवाला औरस पुत्र नहीं था। एतावता महाराज अत्यन्त दुःखी रहते थे। राजाने वसिष्ठ आश्रममें जाकर श्रीगुरुदेवसे अपने हृदयकी—वेदनाकी बात कही। श्रीवसिष्ठजी गुरु तो हैं ही पुरोहित भी

हैं। 'पुरोहित' उसे कहते हैं जो शिष्यके मङ्गलका पहलेसे ही ध्यान रखता है '**पुर आदौ एव हितं मङ्गलं यस्मात्**'। श्रीवसिष्ठजीके विषयमें श्रीभरत कहते हैं—

दलि दुख सजइ सकल कल्याना।
अस असीस राउरि जगु जाना॥
सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छेंकी।
सकइ को टारि टेक जो टेकी॥

(२। २५५)

अतः चक्रवर्तीजीने गुरुदेवसे अपने हृदयकी सारी बात कही। सुनते ही श्रीवसिष्ठजीने कहा—आप पुत्रके लिये चिन्ता न करें—धैर्य धारण करें। हे राजन्! आप एक पुत्रके लिये सन्तप्त हो रहे हैं, आपके चार पुत्र होंगे। वे चारों सामान्य नहीं होंगे। उनकी कीर्तिवैजयन्ती तीनों लोकमें फहर-फहर फहरायेगी, वे भगवान्‌की भाँति भक्तभयहारी होंगे।

धरहु धीर होइहहिं सुत चारी।
त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी॥

गुरुदेवने सद्यः कार्यारम्भ कर दिया। उन्होंने स्वयं श्रृङ्गीऋषिको बुलाकर पुत्रकामेष्टि यज्ञ सम्पन्न कराया।

सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा।
पुत्रकाम सुभ जग्य करावा॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें।
प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥
जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा।
सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥

अथर्ववेदके मन्त्रोंसे आहुतियाँ दी गयीं '**अथर्वशिरसिप्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः।**'

अग्निदेव हाथमें पायस लेकर प्रकट हो गये और बोले—इस हविके यथायोग्य भाग बनाकर वितरण कर दीजिये। इतना कहकर अग्निदेव अन्तर्धान हो गये।

यह हबि बाँटि देहु नृप जाई।
जथा जोग जेहि भाग बनाई॥
तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ।
परमानंद मगन नृप हरष न हृदय समाइ॥

इसी प्रसङ्गका वर्णन श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणमें नौ सर्गोंमें है और श्रीरामचरितमानसमें नौ पङ्क्तियोंमें है इतने संक्षिप्त वर्णनका आशय यह है—भक्तकवि और श्रीचक्रवर्तीजी दोनों चाहते हैं कि श्रीहरि शीघ्रसे शीघ्र धराधाममें पधारें।

राजा परमानन्दमें मग्न हो गये। अपनी कौसल्या आदि समस्त पत्नियोंको बुलाकर यथायोग्य हविका वितरण कर दिया। हविके वितरणमें विभिन्न रामायणोंमें विभिन्न प्रकारका वर्णन आया है। दास श्रीरामचरितमानसके अनुसार कह रहा है।

तबहिं रायँ प्रिय नारि बोलाईं।
कौसल्यादि तहाँ चलि आईं॥
अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा।
उभय भाग आधे कर कीन्हा॥
कैकेई कहँ नृप सो दयऊ।
रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ॥
कौसल्या कैकेई हाथ धरि।
दीन्ह सुमित्रहिं मन प्रसन्न करि॥

हविका आधा भाग—आठ आना श्रीकौसल्याजीको दिया। अवशिष्ट आठ आनेमें से चार-चार आनेके दो भाग हुये। इसमें एक भाग चार आनेका श्रीकैकेयीजीको दिया। इस प्रकार बड़े भागसे श्रीरामजी आये। कैकेयीवाले भागसे श्रीभरतजी आये। अब जो चतुर्थ भाग—चार

आनेवाला भाग अवशिष्ट है, उसमें दो भाग हुये दो-दो आनेके। इसमें से एक भाग पुन: श्रीकौसल्याजीके हाथमें रखा गया और दूसरा श्रीकैकेयीके हाथमें। अब इसके पश्चात् पहले श्रीकौसल्याके हाथमें रखा हुआ दो आनेवाला भाग उन्हींके हाथसे श्रीसुमित्राको मिला। इसी प्रकार श्रीकैकेयीके हाथसे भी दो आनेका भाग श्रीसुमित्राको मिला। पहले श्रीकौसल्याने दिया उसके पश्चात् श्रीकैकेयीने। परिणामस्वरूप श्रीकौसल्याने जो भाग दिया उससे श्रीलक्ष्मणजी उत्पन्न हुये, इसीलिये इन्हें 'रामानुज' कहते हैं। इसी आशयको लेकर श्रीरामजी ***'मिलै न जगत सहोदर भ्राता'*** कहेंगे। श्रीकैकेयीने जो भाग सुमित्राको दिया इससे श्रीशत्रुघ्नजीकी उत्पत्ति हुई। इसीलिये ये ***'भरत अनुगामी'*** हुये। बड़ा वैज्ञानिक वितरण है, इसको अच्छी तरह समझना चाहिये।

इस प्रकार हवि प्राप्त करके अपने पति श्रीदशरथजीकी आज्ञासे उसका विधिवत् उपयोग करके तीनों रानियाँ दोहदावस्था सम्पन्न हो गयीं—गर्भिणी हो गयीं। स्मरण रहे, यह गर्भाधान रजवीर्यसे रहित है, दिव्य है, चिन्मय है।

एहि बिधि गर्भसहित सब नारी।
भईं हृदयँ हरषित सुख भारी॥
जा दिन तें हरि गर्भहिं आए।
सकल लोक सुख संपति छाए॥

'हरि गर्भहिं आए' का भाव श्रीठाकुरजी किसीके गर्भमें नहीं आते हैं। ऐसे तो श्रीहरि सर्वत्र व्याप्त हैं। दुनियाके जर्रे-जर्रेमें—विश्वके अणु- अणुमें परमात्मा परिव्याप्त है; परन्तु किसीके गर्भमें नहीं आते हैं। इस प्रसङ्गमें 'हरि' शब्द अत्यन्त भावपूर्ण है। 'हरि' शब्दके अनेक अर्थ होते हैं। कपि, इन्द्र, अश्व, मेढक, सर्प आदि। इसी प्रकार हरिका अर्थ वायु भी होता है। वायु गर्भमें आकर गर्भकी प्रतीति कराता है।

'तस्या एवाष्टमो गर्भो वायुपूर्णो बभूव ह'

अर्थात् देवकीजीका आठवाँ गर्भ वायुसे पूर्ण हुआ अथवा जिस प्रकार वे सबके हृदयमें रहते हैं उसी प्रकार गर्भमें भी बसते हैं।

'प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥' (शुक्ल यजुर्वेद पुरुषसूक्त)

अर्थात् सर्वेश्वर ब्रह्म सबके अन्त:करणमें रहते हुए भी गर्भमें आता है और अनेक रूपोंमें जन्म लेता है। उसके जन्म लेनेके कारणको ज्ञानी लोग ही जानते हैं कि उसीमें समस्त ब्रह्माण्ड स्थित है फिर भी यह क्यों गर्भमें से जन्म लेता है।

मंदिर महँ सब राजहिं रानीं।
सोभा सील तेज की खानीं॥

इस पङ्क्तिका दो प्रकारसे अर्थ सम्भव है। पहला अर्थ—सब रानियाँ मन्दिरमें—राजमहलमें सुशोभित हो रही हैं, वे सब शोभा, शील और तेजकी खानि हैं। दूसरा अर्थ—खानिका अर्थ है उत्पादयित्री जननी अर्थात् क्रमसे श्रीकौसल्या, कैकेयी और सुमित्राजी शोभा, शील और तेजकी खानि हैं। श्रीकौसल्याजी शोभाकी खानि हैं—इनसे कोटि-कोटि कन्दर्पदर्पदलन भुवन विमोहनकरण लोकाभिराम परम अभिराम श्रीराम प्रादुर्भूत हुये हैं। श्रीरामजी त्रैलोक्यमें सबसे अधिक सुन्दर हैं। इनका दर्शन करके अमलात्मा वीतराग महात्मा मुनीन्द्र परमहंस भी मुग्ध हो जाते हैं।

पुनि चरननि मेले सुत चारी।
राम देखि मुनि देह बिसारी॥

भए मगन देखत मुख सोभा।
जनु चकोर पूरन ससि लोभा॥

(१। २०७)

बिस्वामित्रु मिले पुनि आई।
पद सरोज मेले दोउ भाई॥
रामु लखनु दसरथ के ढोटा।
दीन्हि असीस देखि भल जोटा॥
रामहि चितइ रहे थकि लोचन।
रूप अपार मार मद मोचन॥

(१। २६९)

शत्रुभी इनका दर्शन करके शस्त्रसे प्रहार करना भूल जाते हैं।

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी।
थकित भई रजनीचर धारी॥

(३। १८)

श्रीकैकेयीजी शीलकी खानि हैं, इनसे श्रीभरतजी उत्पन्न हुये हैं। श्रीभरतजीसे युद्धकी तैयारी करके आनेवाले श्रीनिषादकी स्थितिका वर्णन करते हैं।

देखि भरत कर सील सनेहू।
भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥
सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा।
भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा॥

(२। १९५)

श्रीसुमित्राजी तेजकी खानि हैं इनसे श्रीलक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न होते हैं। वे दोनों परम तेजस्वी हैं। श्रीजनकपुरके दूत चक्रवर्ती श्रीदशरथजीसे कहते हैं।

राजन रामु अतुलबल जैसें।
तेज निधान लखन पुनि तैसें॥
कंपहिं भूप बिलोकत जाकें।
जिमि गज हरि किसोर के ताकें॥
देव देखि तब बालक दोऊ।
अब न आँखि तर आवत कोऊ॥

(१। २९३)

श्रीशत्रुघ्नजीके नामकरण संस्कारमें श्रीगुरु वसिष्ठजी कहते हैं।

जाके सुमिरन तें रिपु नासा।
नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥

(१। १९७)

इस प्रकार तीनों महारानियाँ अपनी आभा-प्रभा कान्तिसे राजमन्दिरमें सुशोभित हैं।

देवता इव रेजुस्ताः स्वभासा राजमन्दिरे।

इस प्रकार धीरे-धीरे बारहवाँ महीना आ गया **'ऋतूनां षट् समत्ययुः'**।

जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥

समस्त ग्रह नक्षत्र अनुकूल हो गये। पंचाङ्ग शुद्धि हो गयी। अब तो मङ्गलमय श्रीरामजन्मकी कल्याणमयी आनन्दमयी बेला आ गयी। परात्पर परब्रह्म राजकुमारके रूपमें अवतार ले रहे हैं। ऋतुराज—वसन्त ऋतुमें श्रीरामजीका आविर्भाव हुआ है। मानो ऋतुराज राजकुमारके स्वागतके लिये पहलेसे पधार गये हैं। वसन्त ऋतुमें दो मास होते हैं चैत्र और वैसाख—मधु और माधव। श्रीरामजीका जन्म मधुमासमें—चैत्रमासमें होता है। चैत्रमासमें जन्म लेनेवाला बालक मधुभाषी होता है **'चैत्रे मधुरभाषी स्यात्'**। चैत्रमासमें भी शुक्लपक्ष है। शुक्लका अर्थ है समुज्ज्वल—विशद चरित्रवाला होता है।

श्रीरामजीकी जन्म तिथि नवमी है। एक सन्त कहते थे—एक बार साकेताधीश श्रीरामजी करुणामयी श्रीसीताजीके साथ विराजमान थे।

उसी समय एक दीन-हीन देवी आ गयी। प्रभुने पूछा—तुम कौन हो? उसने कहा—हे स्वामिन्! मैं नवमी तिथिकी अधिष्ठातृ देवी हूँ। प्रभुने पूछा—कैसे आयी हो? उसने कहा—हे सर्वान्तर्यामिन्! हे करुणासागर! हे अनाथनाथ! मेरी बड़ी दुर्दशा है। लोग रिक्ता कहकर मेरा अपमान करते हैं। मैं यात्रा आदि प्रशस्त कार्योंमें हटा दी जाती हूँ। प्रभुने पूछा—क्या तुम वास्तवमें रिक्ता हो? उसने कहा—हे दयामय! सच कहनेसे डर लग रहा है, कहीं आपके दरबारसे भी न निकाल दी जाऊँ; वास्तवमें मैं रिक्ता ही हूँ। मेरे पास कोई आता नहीं और मुझे कोई पूछता भी नहीं, निषेध-प्रतिषेध सभी करते हैं। प्रभु मन्द-मन्द मुसकरा पड़े और उसे आश्वस्त करते हुए बोले—हे नवमी देवि! चिन्ता मत करो अब तुम ठीक जगह आ गयी हो, यहाँसे निकाले जानेका भय नहीं है। यहाँ जो निष्कपट भावसे दीन होकर आता है उसे निकाला नहीं जाता अपितु अपनाया जाता है। जिसके पास कोई नहीं जाता है, जिसके पास कोई जानेकी इच्छा भी नहीं करता है उसके पास मैं जाता हूँ। जिसे कोई नहीं पूछता है उसे मैं पूछता हूँ। जिसे कोई नहीं अपनाता, जिसे सब भगा देते हैं, जिसका सब अपमान करते हैं, उसे मैं अपनाता हूँ—अपने हृदयसे लगा लेता हूँ।

करुणामय श्रीरघुनाथजीने श्रीकिशोरीजीकी ओर अर्थपूर्ण दृष्टिसे निहारा। नित्यकिशोरी श्रीसीताजीने नेत्रोंकी भाषामें उत्तर दे दिया। दोनों ठाकुरने—प्रिया-प्रियतमने सम्मिलित घोषणा कर दी—हे नवमि! जो रिक्ता है वही हम दोनोंको भाता है, जो समस्त आश्रयसे रिक्त है, कामनाओंसे रिक्त है, कपटसे रिक्त है और छल छिद्रसे रिक्त है, वही हम दोनोंको प्यारा है। हे रिक्ते! हम रिक्तमें ही निवास करते हैं। जो आकण्ठ कपट-छलसे परिपूर्ण है उससे हम दूर रहते हैं। तुम रिक्ता हो अतः मेरा आविर्भाव तुम्हींमें होगा। मैं नवमी तिथिमें ही जन्म लूँगा। श्रीकिशोरीजीने कहा—मेरे नाथ! जिसे आपने अपना लिया है उसी नवमीमें मैं भी जन्म लूँगी। दोनों ठाकुरका जन्म रिक्ता तिथिमें—नवमीमें ही होता है। श्रीरामनवमी और श्रीजानकीनवमी। नवमी निहाल हो गयी। अब कौन कहेगा मुझे रिक्ता? कहते हैं तो कहें, मैं तो आज भर गयी हूँ—परिपूर्ण हो गयी हूँ। मैं तो पूर्णासे भी अपनेको सौभाग्यशालिनी मानती हूँ। श्रीराम-सीताने मुझे स्वीकार कर लिया है। मैं उनके नामसे जुड़ गयी हूँ। निहाल हो गयी नवमी। ठाकुरजी आ गये नवमी तिथिमें।

भगवान्‌का जन्म नक्षत्र 'पुनर्वसु' है। भगवान्‌का एक नाम भी पुनर्वसु है।

'अनघो विजयो जेता विश्वयोनिर्पुनवसुः' पुनर्वसुका यह अर्थ है **'पुनः पुनः शरीरेषु वसतीति पुनर्वसुः श्रीहरिः'।** पुनर्वसुका यह भी अर्थ है कि जो लोगोंको पुनः बसावे—उजड़े हुयेको बसावे, अनाथको सनाथ करे, मेरे श्रीरामजीमें यह सब गुण सहज ही विद्यमान हैं।

श्रीरामजी मध्याह्न वेलामें अवतार लेते हैं। उस समय सूर्यका सर्वाधिक प्रकाश होता है। श्रीरामजीका प्रकाश त्रैलोक्यमें सर्वाधिक है। मध्याह्नका सूर्य सब प्रकाशोंका प्रकाशक है। श्रीरामजी सबको प्रकाशित करते हैं।

इस प्रकार योग, वार, लग्न, तिथि, नक्षत्र सब मङ्गलमय हो गये। सूर्य, मङ्गल, शनि, गुरु और शुक्र अपने-अपने उच्च स्थानमें विराजमान हो गये। शुभ लग्न—कर्क लग्न आ गया। लग्नमें चन्द्रमाके साथ वृहस्पति विराजमान हो गये।

भगवान्‌के मङ्गलमय प्राकट्यका समय जानकर श्रीब्रह्मादि देवता श्रीअयोध्याजीके आकाशपर आ गये। निर्मल आकाश देवताओंसे परिपूर्ण हो गया। गन्धर्व गुणगान करने लगे। नन्दनकाननके पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी। आकाशमें दुन्दुभियाँ गह-गह बजने लगीं। देवताओंके समूह स्तुति करके अपने अपने धाममें पहुँच गये तब श्रीरामजीका प्राकट्य हुआ।

अब एक प्रश्न सहज ही होता है—जिस दिन श्रीरामजीका जन्म होता है, उस दिन समस्त तीर्थ श्रीअयोध्याजीमें आ जाते हैं।

जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं।
तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं॥
असुर नाग खग नर मुनि देवा।
आइ करहिं रघुनायक सेवा॥

(१। ३४)

उस समय जो श्रीअयोध्याजीसे बाहर जाता है वह अभागा ही है। परन्तु देवताओंके समूह अपने-अपने धाम चले गये तब श्रीरामजीका प्राकट्य हुआ। इनको अभागा कहें या भाग्यवान्? इसका उत्तर यह है—देवताओंका वास्तविक स्थान तो श्रीरामजीका दिव्य, चिन्मय मङ्गलमय श्रीविग्रह ही है '**सर्वदेवमयो हरिः**'। सूर्यका स्थान नेत्र, चन्द्रमाका मन, शिवका अहङ्कार, ब्रह्माका बुद्धि, इन्द्रका हाथ, वायुका त्वचा, वरुणका जिह्वा और अग्निका मुख स्थान है। इस प्रकार श्रीरामजीके श्रीविग्रहमें जिस देवताका जिस अङ्गमें स्थान था वह वहाँ विराजमान हो गया। इसके पश्चात् विश्वरूप श्रीभगवान्‌का प्राकट्य हुआ। एतावता श्रीरामजीको 'जगनिवास' कहा गया है। अब तो देवता अभागे नहीं हैं, परम भाग्यवान् हैं। इस प्रकार मध्याह्नकी वेलामें नवमी तिथिको, चैत्रमासमें, वसन्तऋतुमें परात्पर पूर्ण-ब्रह्म भगवान् श्रीरामजीका मङ्गलमय प्राकट्य हो गया। चारों ओर जय-जयकार होने लगी। जयध्वनि, शङ्खध्वनि, वेदध्वनि, मङ्गलध्वनि, वाद्यध्वनि और दुन्दुभिध्वनिसे सारा वातावरण मङ्गलमय हो गया।

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥

माता कौसल्याने श्रीरामजीके अद्‌भुत रूपका दर्शन करके कहा—हे अनन्त! मैं आपकी किस प्रकार स्तुति करूँ? हे प्रभो! आपके रोम-रोममें अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। वही अनन्त प्रभु आप मेरे पेटमें निवास किये, यह तो हँसीकी बात है। यहाँ 'उर' शब्द 'पेट' का वाचक है। कौसल्यानन्द-संवर्धन श्रीरामचन्द्रजी अनेक प्रकारका चरित्र—लीला करना चाहते हैं। इसलिये जब माताको परस्वरूपका ज्ञान हो गया तब प्रभुने मुसकरा दिया। 'प्रभु' शब्दके प्रयोगमें यह भाव है कि सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। 'मुसुकाना' का भाव यह है कि श्रीहरिकी मुसकानमें मायाका निवास है ***'माया हास बाहु दिगपाला'*** **'हासो जनोन्मादकरी च माया।'** भगवान्‌के हँसते ही उनकी हँसीमें फँसकर ज्ञान तिरोहित हो जाता है। वही हुआ, माताका ज्ञान दूर हो गया। पुत्रका भाव जागृत हो गया। तब माताने कहा—हे तात! यह रूप छोड़ो। भाव कि मैंने जीवनभर इसी रूपकी आराधना की है, इस रूपका दर्शन मैंने अनेक बार किया है। हे पुत्र! इस समय इस रूपको छोड़ो। हे

विश्वात्मन्! अपने इस अलौकिक रूपका उपसंहार कीजिये और परमानन्द प्रदान करनेवाला परम कोमल बालक रूप धारण कीजिये। जिसके अत्यन्त सुख प्रदान करनेवाले आलिङ्गन और सम्भाषणादिसे मैं उत्कट अज्ञानान्धकारको पार कर जाऊँगी।

उपसंहर विश्वात्मन्नदोरूपमलौकिकम्।
दर्शयस्व महानन्द बालभावं सुकोमलम्॥
ललितालिङ्गनालापैस्तरिष्याम्युत्कटं तमः॥

(अध्यात्मरामायण १। ३। २९)

श्रीकौसल्याजी कहती हैं—हे प्रभो! इस समय श्रीअयोध्याका कण-कण, राजमहलका कोना-कोना, राजा और रानियाँ, दास और दासियाँ किसी सलोने बालककी मधुर रोदनध्वनि सुनना चाहते हैं। एतावता हे भक्तवत्सल! अब तो तुम रोवो, खूब रोवो, अपने रोनेके मधुर शब्दसे महलको परिपूर्ण कर दो। समस्त श्रीअवधको आनन्दित कर दो, प्रमुदित कर दो। जिसकी प्रतीक्षामें सब हैं। भक्तवत्सल श्रीरामजीने नन्हेंसे बालकके रूपमें मधुर स्वरसे रुदन आरम्भ कर दिया। स्मरण रहे, यह असाधारण बालक है। (क) '**बालः को ब्रह्मा अस्येति बालकः**' जिसके बालक श्रीब्रह्माजी भी हों उसे 'बालक' कहते हैं '**यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्**' इति श्रुतेः। (ख) '**बालानामज्ञानामपि कं सुखं यन्नामोच्चारणादिनेति बालकः**' अर्थात् जिनका नामोच्चारण आदि बालोंको—अज्ञानियोंको भी सुख प्रदान करता है, उन्हें 'बालक' कहते हैं। '**अज्ञानादपि यन्नाम स्मृतं सर्वार्थसाधकम्**' इति स्मृतेः। (ग) श्रीलक्ष्मणजीको धरणिकोषमें 'बाल' कहा गया है '**बालोऽज्ञे लक्ष्मणे शिशौ**' इति धरणिः। '**बालः लक्ष्मणः तेन कं सुखं यस्येति बालकः**' अर्थात् बालक हैं श्रीलक्ष्मणजी, उनके द्वारा जिन्हें सुख मिले वे प्रभु बालक हैं। (घ) '**के प्रलयजले बालो वटेषु शायीति बालकः**' अर्थात् जो प्रलयकालीन जलमें वटपत्रपर शयन करते हैं उनका नाम बालक है।

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

'ठाना' का भाव (क) अब मैंने रोना आरम्भ कर दिया, अब अयोध्याके समस्त नर नारी सन्तुष्ट हो जायँ। (ख) अब मेरा रोना श्रीअयोध्याजीके कण-कणमें, घर-घरमें श्रवण गोचर होगा *'सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी।'* (ग) हे माताजी! अब मैंने रोना आरम्भ कर दिया, जबतक संसारका रोना—क्लेश न समाप्त होगा तबतक मैं रोता ही रहूँगा। (घ) मैंने अपने समस्त भक्तोंकी आँखोंके आँसुओंको अपनी आखोंमें डालकर रोना आरम्भ कर दिया है, अब भक्त प्रसन्न हो जायँ। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—हे मेरे स्वामिन्! जब आपने रोना आरम्भ कर दिया तब हमारा क्लेश समाप्त हो गया। हम तो अब गाना आरम्भ कर रहे हैं *'यह चरित जे गावहिं।'*

सब आनन्द विभोर हैं। चारों ओर आनन्द ही आनन्द है। चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजी पुत्रका जन्म श्रवण करके ब्रह्मानन्दमें निमग्न हो गये।

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना।
मानहुँ ब्रह्मानन्द समाना॥

श्रीवसिष्ठजीका आदरपूर्वक आवाहन किया। श्रवण करते ही वे ब्राह्मणोंके साथ आ गये, विधिपूर्वक नान्दीमुख श्राद्ध और जातकर्म सम्पन्न

हुआ, ब्राह्मणोंको स्वर्ण, धेनु, वसन और मणि दानमें दिये गये। स्मरण रहे, नालोच्छेदनके पूर्व दानादि कर्म विहित हैं।

नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥

× × ×

'जातकरम करि, पूज्य पितर-सुर दिये महिदेवन दान॥'

(श्रीगीतावलीजी १। २)

यथासमय श्रीकैकेयी और सुमित्राजीने भी तीन सुन्दर पुत्रोंको जन्म दिया।

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ।
सुंदर सुत जनमत भैं ओऊ॥

क्या कहना है? अब तो चारों भाई आ गये। श्रीअयोध्याजीमें आनन्दका समुद्र समुच्छलित हो गया। चारों ओर आनन्द ही आनन्द भर गया। स्वर्गीय नन्दनकाननके पुष्पोंकी वृष्टि हो रही है। झुण्ड की झुण्ड देवियाँ मिलकर शृङ्गार करके राजमहलकी ओर दौड़ती चली जा रही हैं।

सुमनबृष्टि अकास तें होई।
ब्रह्मानंद मगन सब लोई॥
बृंद बृंद मिलि चलीं लोगाईं।
सहज सिंगार किएँ उठि धाईं॥

इसी प्रकार नन्दसूनु श्रीकृष्णचन्द्रके मङ्गलमय जन्मोत्सव पर बधाई देनेके लिये आभूषणोंसे आभूषित होकर सुन्दर वस्त्र पहनकर गोपियाँ चली जा रही हैं। उनकी चोटियोंसे पुष्पवर्षण हो रहा है। उनके कानोंके कुण्डल, पयोधर और हार हिल रहे हैं।

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्य-
श्चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः।
नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजु-
र्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः॥

(श्रीमद्भागवत १०। ५। ११)

आज श्रीअयोध्याजीका प्रत्येक घर सुसज्जित है। सब घरोंमें अलग अलग भी उत्सव हो रहा है।

गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुषमा कंद।
हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद॥

मधुर स्वरमें वेदध्वनि हो रही है।

भवन बेद धुनि अति मृदु बानी।

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं दिनके समय ही श्रीरामजीका दर्शन करनेके लिये, दर्शनका लोभ संवरण न करके, समयकी प्रतीक्षा किये बिना रात्रि देवी भी पधार गयी हैं।

प्रभुहि मिलन आई जनु राती।

भावुक कविने उत्प्रेक्षासे रात्रिका आगमन कहा है। भगवान् भुवनभास्कर मरीचिमाली श्रीसूर्यदेव अपने कुलमें ब्रह्मके अवतरणसे इतने प्रसन्न हो गये कि उनकी गति स्तम्भित हो गयी; परन्तु इस रहस्यको कोई समझ नहीं पाया। नभ-जल थलके लोग अर्थात् देवता, नाग और मुनि सभी महोत्सवमें सम्मिलित हुये।

कौतुक देखि पतंग भुलाना।
एक मास तेइँ जात न जाना॥
मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ॥
यह रहस्य काहूँ नहिं जाना।
दिनमनि चले करत गुनगाना॥
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा।
चले भवन बरनत निज भागा॥

भगवान् श्रीशङ्कर कहते हैं—

औरउ एक कहउँ निज चोरी।
सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥
काकभुसुंडि संग हम दोऊ।
मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ॥
परमानंद प्रेमसुख फूले।
बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले॥

श्रीगौरीनाथ कहते हैं—हे गिरिजे! श्रीसूर्य भगवान्‌की चोरी तुमने सुनी, उन्होंने समयकी चोरी की थी। अब हमारी भी चोरी सुनो, काकभुसुण्डि मेरे शिष्य हैं अत: मैं उनके साथ गया था। किं वा—बालचरित्रके, राजमहलके मार्गके और श्रीअयोध्याकी गलियोंके श्रीभुसुण्डि ज्ञाता हैं। और जानकारके साथ जानेमें अधिक सुख मिलता है अत: मैं उनके साथ गया। किं वा—हम दोनोंके इष्टदेव बालक राम हैं। जब इष्ट एक हों तो साथमें अधिक आनन्द आता है। एतावता हम दोनों गुरु शिष्य मनुष्यके रूपमें आनन्द विभोर होकर श्रीअयोध्याकी गलियोंमें घूम रहे थे। परमानन्द, प्रेम और सुखसे फूले नहीं समाते थे। एक पदमें इस चोरीके आनन्दका आस्वादन करें।

अवध आजु आगमी एकु आयो।
करतल निरखि कहत सब गुनगन बहुतन्ह परिचौ पायो॥ १॥
बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो।
सँग सुसिष्य, सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो॥ २॥
पायँ पखारि, पूजि दियो आसन असन-बसन पहिरायो।
मेले चरन चारु चार्‌यो सुत माथे हाथ दिवायो॥ ३॥
नखसिख बाल बिलोकि बिप्रतनु पुलक-नयन जल छायो।
लै लै गोद कमल-कर निरखत, उर प्रमोद न अमायो॥ ४॥
जनम प्रसंग कह्यो कौसिक मिस सीय-स्वयंबर गायो।
राम, भरत, रिपुदवन, लखनको जय सुख सुजस सुनायो॥ ५॥
तुलसिदास रनिवास रहसबस, भयो सबको मन भायो।
सनमान्यौ महिदेव असीसत सानँद सदन सिधायो॥

(श्रीगीतावलीजी १। १७)

सुखका समय व्यतीत होने लगा। रात और दिनका पता ही नहीं लगता था।

जात न जानिअ दिन अरु राती।

नामकरणका अवसर आ गया। चक्रवर्तीजीने गुरुदेव श्रीवसिष्ठका आवाहन किया। उनका विधिवत् षोडशोपचारसे पूजन किया और नामकरणके लिए प्रार्थना की।

करि पूजा भूपति अस भाषा।
धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा॥

गुरुदेव आनन्दविभोर हो गये। आज वे अपने पौरोहित्य कर्मसे पूर्ण सन्तुष्ट हैं। उस समयका दृश्य अत्यन्त मनोरम है। एक ऊँचा-सा आसन है, उस पर श्रीवसिष्ठ विराजमान हैं, उनके सामने नीचे चार आसन हैं। उस पर क्रमसे श्रीदशरथ, कौसल्या, कैकेयी और सुमित्राजी विराज रही हैं। चारोंकी स्नेहमयी गोदमें चार ललन हैं। जो श्रीवसिष्ठजीको टुकुर-टुकुर निहार रहे हैं। श्रीवसिष्ठजीकी आँखोंमें प्रेमाश्रु छलक पड़े। वे आज अपनेको कृतकृत्य अनुभव कर रहे हैं। वे सोचते हैं—आज मुझे वह सौभाग्य प्राप्त हो गया जिसकी मैं वर्षोंसे नहीं युगोंसे प्रतीक्षा कर रहा था। उन्हें स्मरण आ रहा था अतीतका वह चिरस्मरणीय दिन।

श्रीब्रह्माने श्रीवसिष्ठसे—अपने पुत्रसे कहा—हे वत्स! तुम सृष्टिका विस्तार करो। उत्तरमें श्रीवसिष्ठने बद्धाञ्जलि होकर निवेदन किया—हे पित: ! मैं अपने अग्रजोंका, सनकादिकोंका अनुगमन करना चाहता हूँ। उन महापुरुषोंने पथ प्रदर्शन कर

दिया है, दिशा निर्देश कर दिया है मेरे लिए चलना सुगम है। श्रीब्रह्मा ने कहा—हे वसिष्ठ! मैं तुम्हें भाग्यवान् बनाना चाहता हूँ, तुम सूर्यकुलका पौरोहित्य स्वीकार कर लो। श्रीवसिष्ठजीने विनम्रतापूर्वक प्रत्युत्तर दिया—हे वत्सल पितः! आपका वात्सल्य श्लाघ्य है; परन्तु मेरा मन चरम लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए ललच रहा है। हे ब्रह्मन्! मैं आपके द्वारा प्रदत्त देवदुर्लभ देहका उपयोग भजन करके प्रभु प्राप्तिके लिए करना चाहता हूँ। पुनः श्रीब्रह्माने कहा—हे पुत्र! इसी सूर्यकुलमें पूर्ण-ब्रह्म परमात्मा साकेताधीश श्रीरामचन्द्रजीका प्राकट्य होगा। उस समय उस ब्रह्मको शिष्यके रूपमें पाकर तुम कृतकृत्य हो जाओगे। बड़ी-बड़ी साधना करके मन और इन्द्रियोंको विषयरससे नीरस करके जिस ब्रह्मकी एक झलक परमहंस योगीजन कभी-कभी कर पाते हैं। जिनके दर्शनके लिए सनकादि, सिद्ध, सन्त ललचाते रहते हैं। वही सच्चिदानन्द घनश्याम राम इस धराधामपर अवतीर्ण होकरके सूर्यकुलमें जन्म लेकरके तुम्हारे शिष्यके रूपमें तुम्हारे सामने आसनपर बैठकरके श्यामपट्टपर '**अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्**' लिखेंगे और तुम उनका हाथ पकड़कर लिखवाओगे। सम्भव है कभी यह भी सौभाग्य मिल जाय कि वह सर्वान्तरात्मा-नन्हासा शिशु तुम्हारे श्मश्रुओंसे—सफेद दाढ़ीसे खेले, तुम्हारे मुखमें, नाकमें अपनी नन्हीं-नन्हीं अँगुलियाँ डालकर क्रीड़ा करे और अपने सुकोमल अँगुलि-दलोंके संस्पर्शसे तुम्हें निहाल कर दे। हे वसिष्ठ! अब तुम निर्णय करो कि तुम्हें सूर्यकुलका पौरोहित्य लेना है किंवा अग्रजोंका—सनकादिकोंका अनुसरण करना है।

श्रीवसिष्ठजीकी आँखोंसे अनवरत अश्रुवर्षण हो रहा है, मन गद्गद हो गया है, भविष्यके सौभाग्यकी कल्पना करके। उन्होंने स्खलिताक्षरोंमें—रुँधे हुए स्वरमें निवेदन किया—हे पितः! मुझे पौरोहित्य कर्म स्वीकार है। तबसे लेकर आज तक प्रतीक्षा कर रहे थे।

आज वह सौभाग्य मिल गया तो वे परम प्रसन्न हो गये '**वसिष्ठः परम प्रीतः**' वसिष्ठजी अपने पौरोहित्य कर्मके स्वीकार करनेसे आज परम सन्तुष्ट हैं।

श्रीदशरथजीके प्रेमाग्रहसे गुरुदेव श्रीवसिष्ठ नामकरण-संस्कार कर रहे हैं। श्रीरामका अनागत-भविष्य श्रीरामजीकी ही कृपासे महर्षिकी आँखोंके सामने प्रत्यक्षकी भाँति नर्तित हो उठा और वे कहने लगे—हे राजन्! जो आनन्दके समुद्र और सुखकी राशि हैं, जिस आनन्दसिन्धुके एक कणसे तीनों लोक सुखी होते हैं उनका नाम राम है। वे सुखके भवन और समस्त लोकोंको विश्राम देने वाले हैं।

जो आनंद सिंधु सुखरासी।
सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥
सो सुख धाम राम अस नामा।
अखिल लोक दायक बिश्रामा॥

नामीके तीन विशेषण है, 'आनंदसिंधु, सुखरासी और सुखधाम'। श्रीराम नाममें तीन मात्रायें हैं, तीनों सुखस्वरूप हैं। रकार 'आनंद सिंधु' है, अकार 'सुखरासी' है और मकार 'सुखधाम' है। किंवा—ज्ञानी, कर्मी और उपासक तीनोंके विचारसे तीन विशेषण दिये गये हैं।

बिस्व भरन पोषन कर जोई।
ताकर नाम भरत अस होई॥

जो अपने श्रीराम प्रेमके द्वारा संसारको भर देंगे—पूर्ण कर देंगे और परिपुष्ट कर देंगे उनका नाम भरत है।

जाके सुमिरन तें रिपु नासा।
नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥

हे दशरथजी! आपके छोटे बालकका नाम शत्रुघ्न है। इनके स्मरणमात्रसे ईर्ष्या, द्वेष और कामादि नित्य शत्रु नष्ट हो जायेंगे '**शत्रुघ्नो नित्य शत्रुघ्नः।**'

लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥

हे महीपति मुकुटमणे! गौरवर्णके शिशुका नाम लक्ष्मण है। इनकी नन्हीं-नन्हीं हथेलियोंकी रेखाएँ सूचित कर रही हैं कि ये अपने जीवन-सारसर्वस्व श्रीरामचन्द्रकी सर्वविध सेवा करेंगे, अतः संसारमें ये लक्ष्मण नामसे अभिहित किये जायेंगे। '**लक्ष्माणि परम मङ्गल श्रीराम सेवासूचक हस्तरेखादीनि यस्य सः लक्ष्मणः।**' श्रीलक्ष्मणके नामकरणमें चार विशेषण दिये गये हैं। इन चारोंका अनुसन्धान करना चाहिए।

चारों भाई चन्द्रमाकी कलाकी तरह उत्तरोत्तर विवर्धमान होने लगे। श्रीरामजी मुनियोंको उसी तरह अच्छे लगते हैं जिस तरह लोभीको धन। '***जन सर्वस***'—भक्तोंके श्रीरामजी जीवनसार सर्वस्व हैं। माता, पिता, स्वामी, सखा सब कुछ हैं। भक्तलोग श्रीरामजीके अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानते हैं।

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः
स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालुर्नान्यं
जाने नैव जाने न जाने॥

श्रीशङ्करजीके तो प्राण ही हैं।

मुनि धन जन सरबस सिव प्राना।
बाल केलि रस तेहि सुख माना॥

श्रीलक्ष्मण अत्यन्त छोटे थे तभीसे श्रीरामजीको अपना हितैषी और स्वामी मानकर उनके श्रीचरणोंमें प्रेम करते हैं।

बारेहि ते निज हित पति जानी।
लछिमन राम चरन रति मानी॥

इस चौपाईको समझनेके लिए श्रीवाल्मीकीय रामायणके चार श्लोकोंका अनुसन्धान करना चाहिए।

बाल्यात् प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्द्धनः॥
रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः।
सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः॥
लक्ष्मणो लक्ष्मिसम्पन्नो बहिःप्राण इवापरः।
न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः॥
मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति न हि तं विना।
यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः॥
अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन्।

(श्रीवाल्मीकीय रामायण १।१८)

श्रीलक्ष्मणको '**लक्ष्मिवर्द्धनः**' विशेषण दिया है, '**लक्ष्मीं वर्द्धयतीति लक्ष्मिवर्द्धनः।**' श्रीलक्ष्मणजी भगवत् कैङ्कर्यरूपी सम्पत्तिका नित्य अभिनव अभिवर्द्धन करते हैं। '**श्रीरामकैङ्कर्यसम्पत्तिवर्द्धकः**'। लक्ष्मिवर्द्धन श्रीलक्ष्मणजी बाल्यावस्थासे ही सुस्निग्ध थे—श्रीरामजीके प्रति असीम भक्तिसम्पन्न थे। समस्त लोकोंको आनन्द देने वाले लोकाभिराम श्रीरामजीका सब प्रकारसे प्रिय करते थे। आशय यह है—श्रीरामजी संसारकी सँभाल रखते थे और श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामजीकी सँभाल रखते थे। यही लक्ष्मणजीका जीवन दर्शन है। शरीरसे भी श्रीरामजीकी सेवामें लगे रहते थे। '**शरीर इत्युपलक्षणं त्रिविधकरणैरपि रामस्य सर्वप्रियकरः**' मन, वचन कर्मसे श्रीरामजीकी सर्वप्रकारेण सेवा करते थे।

श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके लिये बाहर विचरने वाले दूसरे प्राणके समान थे। यदि श्रीलक्ष्मणजीकी शैया—पर्यङ्क श्रीरामजीकी शैयाके पास नहीं होती थी अर्थात् अत्यन्त मिली हुई नहीं होती थी तो श्रीरामजी रात्रिमें बार-बार उठकर बैठ जाते थे। माताके पूछनेपर कहते थे—हे माँ! मुझे मेरे प्यारे लक्ष्मणके बिना नींद नहीं आती है, उसके बिना मुझे कुछ नहीं अच्छा लगता है। इसका भाव यह है—श्रीलक्ष्मणजी तो श्रीरामजीके प्राण थे, प्राणके बिना निद्राका आना सम्भव ही नहीं है। माता कौसल्या अपने लालको भोजन कराने के लिए सुन्दर, सुस्वादु, षड्रस परिपूर्ण भोजनका थाल सजाकर लातीं और कहतीं कि हे वत्स! हे लालजी! आरोगो—भोजन करो। परन्तु भातृवत्सल श्रीरामजी रुदन करते हुये कहते—हे माँ! लक्ष्मणके बिना मेरी भोजन करनेकी इच्छा नहीं होती है, उसके बिना मुझे किसी वस्तुमें स्वाद ही नहीं आता है। हे जननि! मैं अपने प्यारे लक्ष्मणके बिना भोजन नहीं कर सकता हूँ। भाव यह है कि श्रीलक्ष्मण ठाकुरजीकी दक्षिण भुजा हैं '**रामस्य दक्षिणो बाहुः**' दक्षिण भुजाके बिना कोई भोजन कर भी कैसे सकता है? जब श्रीरामजी घोड़े पर चढ़कर आखेट करनेके लिये जाते थे तब श्रीलक्ष्मणजी धनुष-बाण लेकर प्रभुके अत्यन्त सन्निकट रहकर उनकी सब प्रकारसे रक्षा करते थे, उनके पीछे पीछे चलते थे। यह श्रीराम-लक्ष्मणका पारस्परिक प्रेम है। श्रीभरत और शत्रुघ्नका भी आपसमें अतिशय स्नेह था। इन चारों भाइयोंका भ्रातृत्व सर्वदा अनुकरणीय था, अनुकरणीय है और अनुकरणीय रहेगा।

श्रीअध्यात्मरामायणमें बहुत सुन्दर लिखा है—पायस-यज्ञीय हविके अंशोंके अनुसार श्रीलक्ष्मण श्रीरामजीके साथ और श्रीशत्रुघ्न श्रीभरतजीके साथ रहते थे।

लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च।
द्वन्द्वी भूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारतः॥

(अध्यात्मरामायण १। ३। ४२)

माताओंके सौभाग्यका दर्शन करें।

कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना।
मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना॥
ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥

एकबार श्रीरामजीने कौसल्याजीका ज्ञान पुष्ट करनेके लिए एक ललित लीलाका दर्शन कराया। माताने श्रीरामजीको स्नान कराके शृङ्गार करके पालने पर पौढ़ा दिया। फिर अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरङ्गनाथकी पूजा करनेके लिये स्नानादि करके रसोई बनाकरके भगवान्को अर्पण किया। यहाँ अपने पुत्रको भोजन करते देखा। माता भयभीत होकर पालनेके पास गयी, वहाँ पर बालकको सोया हुआ देखा। बार-बार यहाँ-वहाँ दोनों स्थलों पर प्रभुको देखा। एक स्थलपर खाते हुए और एक स्थल पर सोते हुये देखा। माता व्याकुल हो गयी कि ये मेरे हैं या किसी और के हैं।

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा।
मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा॥

माताको व्याकुल देखकर प्रभु हँस पड़े और अपना अद्भुत रूप दिखाया।

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥

अन्तमें श्रीकौसल्याने प्रार्थना की—हे स्वामिन्! हमें तो वात्सल्य लीलाका ही आनन्द लेने दीजिए। अपनी यह ब्रह्मलीला अपनेमें ही रखिये।

बार बार कौसल्या बिनय करइ कर जोरि।
अब जनि कबहूँ ब्यापै प्रभु मोहि माया तोरि॥

इसके पश्चात् श्रीरामजीने अनेक प्रकारके बालचरित्र किये हैं।

बालचरित हरि बहुबिधि कीन्हा।
अति अनंद दासन्ह कहँ दीन्हा॥

माताओंने बाललीलाका अतिशय आनन्द लिया है। कभी माता श्रीरामजीको अपनी वात्सल्यमयी गोदमें लेकर सुन्दर सेजपर बैठी हैं। अपने नेत्रोंको चकोर बनाकर श्रीरामजीके मुखचन्द्रको निर्निमेष-टकटकी लगाकर देखती रहती हैं। कभी शैयापर लेटकर स्तनपान कराती हैं और कभी हृदयसे चिपका लेती हैं। श्रीब्रह्मा, शिव, मुनि और देवता छिप-छिपकर इस चरित्रका दर्शन करते हैं।

सुभग सेज सोभित कौसल्या रुचिर राम-सिसु गोद लिये।
बार-बार बिधुबदन बिलोकति लोचन चारु चकोर किये॥ १॥
कबहुँ पौढ़ि पयपान करावति, कबहूँ राखति लाइ हिये।
बालकेलि गावति हलरावति, पुलकित प्रेम-पियूष पिये॥ २॥
बिधि-महेस, मुनि-सुर सिहात सब, देखत अंबुद ओट दिये।
तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काहू तो पायो न बिये॥ ३॥

(श्रीगीतावलीजी १। ७)

कभी माता कहती है — हे मेरे छगन मगन, चारो भाई मिलकर मेरे आँगनमें कब खेलोगे, ठुमुक-ठुमुककर कब दौड़ोगे? अपनी तोतली वाणीसे मुझे माँ कहकर कब बुलाओगे?

ह्वै हौ लाल कबहिं बड़े बलि मैया।
छगन-मगन अँगना खेलिहौ मिलि, ठुमुक-ठुमुक कब धैहौ।
कलबल बचन तोतरे मंजुल कहि 'माँ' मोहिं बुलैहौ॥

(श्रीगीतावलीजी १। ८)

श्रीसुमित्राजी प्रेमसे पुलकित होकर चारों भाइयोंको हृदयसे लगाकर कहती हैं—

पगनि कब चलिहौ चारौ भैया?
प्रेम-पुलकि, उर लाइ सुवन, सब कहति सुमित्रा मैया॥

(श्रीगीतावलीजी १। ९)

श्रीरामजीके अनेक मङ्गलमय मधुर बालचरित्र भक्तोंके जन्म-जन्मकी अभिलाषाको पूर्ण करके उनके कल्याण करनेके लिये होते हैं। एक ऐसी ही बाललीलाका दर्शन करें।

श्रीकौसल्या मैया भावविह्वल स्वरमें कहती हैं—आज मेरे लालजी प्रातःकालसे ही उदास हैं। अच्छी तरह दुग्धपान भी नहीं कर रहे हैं।

आजु अनरसे हैं भोरके, पय पियत न नीके।

माता व्यग्र होकर कहती हैं—तत्काल ही कुलगुरु श्रीवसिष्ठजीको बुलाना चाहिये। वे अपने अमृतमय करकमलसे मेरे ललनका मस्तक स्पर्श करें। श्रीवसिष्ठने ज्यों ही सुना कि मेरे रामजी अनमने हैं, वे अविलम्ब भागकर आये। नृसिंहमन्त्र पढ़कर कुशसे झाड़-फूँक किया।

बेगि बोलि कुलगुरु छुऔ माथे हाथ अमीके।
सुनत आइ ऋषि कुस हरे नरसिंह मंत्र पढ़े, जो सुमिरत भय भीके॥

(श्रीगीतावलीजी १। १२)

महर्षि वसिष्ठने जब श्रीरामजीके मस्तकपर हाथ रखा, उसी समय श्रीरामजी प्रसन्न होकर किलकने लगे। श्रीरामजीने तो यह समस्त अभिनय—लीला इसीलिये किया था। श्रीरामजीकी इस महिमाको समझकर और उनकी प्रत्यक्ष लीलाका दर्शन करके श्रीवसिष्ठके नेत्र प्रेमाश्रुसे परिपूर्ण हो गये, शरीर पुलकित हो गया, उनके प्रत्येक रोम खड़े हो गये।

माथे हाथ ऋषि जब दियो राम किलकन लागे।
महिमा समुझि, लीला बिलोकि गुरु।
सजल नयन, तनु पुलक, रोम रोम जागे॥
लिये गोद, धाए गोदतें, मोद मुनि मन अनुरागे।

(श्रीगीतावलीजी १। १३)

परम भावुक हृदय गुरु वसिष्ठने लालजीको दूरसे देखा, झाड़ा दिया; परन्तु उनके हृदयमें भाव भरी वेदना उत्पन्न होगयी। वे अपने मनमें कहने लगे—हे लालजी! हे वत्स! कौसल्या परम सौभाग्यवती है, जिसकी गोदमें आप विराजमान हैं, आपके प्रत्येक अङ्गका संस्पर्श माताको प्राप्त हो रहा है। हे भक्तवत्सल! आपके समस्त अङ्गोंके स्पर्शजन्य आनन्दकी उपलब्धि क्या मुझे नहीं होगी? हे भक्तवाञ्छाकल्पतरो! मैं तो इसी आशामें जीवनका पल पल व्यतीत कर रहा हूँ। बस फिर क्या था। श्रीगुरुदेवका इस प्रकार वात्सल्यपूर्ण स्नेहिल भाव समझकर गुरुवत्सल श्रीरामजी माताकी गोद छोड़कर गुरुदेवकी भावभरी गोदमें आ गये। श्रीगुरुदेव धन्य होगये, कृतार्थ होगये, निहाल होगये। समस्त वातावरण स्नेहरस सुधासिंधुमें डूब गया।

पुत्रवत्सला श्रीकौसल्या कहती हैं—अरी कैकेयि! अरी सुमित्रे! देख तो जबसे मुनिवरने अपनी अमृतस्यन्दिनी कृपावलोकनिसे निहारा है तभीसे श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और रिपुदमनलाल चारो भैया आनन्दपूर्वक शयन कर रहे हैं।

अमिय-बिलोकनि करि कृपा मुनिबर जब जोए।
तबतें राम अरु भरत, लषन, रिपुदवन,
सुमुख सखि, सकल सुवन सुख सोए॥

(श्रीगीतावलीजी १। १४)

कभी कभी भक्तवत्सल भगवान् किसी भक्तकी स्मृतिमें विभोर हो जाते हैं, सोते नहीं हैं तब माँ कहती है—हे ललन! हे लोने! हे लेरुआ! हे भैया! वलैया लेती हूँ, अब निद्राकी वेला हो गयी है, चारो भैया सो जाओ।

ललन लोने लेरूआ, बलि मैया।
सुख सोइए नींद-बेरिया भई, चारु-चरित चाख्यो भैया॥ १॥
कहति मल्हाइ लाइ उर छिन-छिन, छगन छबीले छोटे छैया।
मोद-कंद कुल कुमुद-चंद्र मेरे रामचंद्र रघुरैया॥ २॥
रघुबर बालकेलि संतनकी सुभग सुभद सुरगैया।
तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सप्रेम घनी घैया॥ ३॥

(श्रीगीतावलीजी १। २०)

प्रातःकाल माँ बड़े स्नेहसे ठाकुरजीको जगाती है।

भोर भयो जागहु, रघुनंदन।
गत-व्यलीक भगतनि उर-चंदन॥ १॥
ससि करहीन, छीन दुति तारे।
तमचुर मुखर, सुनहु मेरे प्यारे॥ २॥
बिकसित कंज, कुमुद बिलखाने।
लै पराग रस मधुप उड़ाने॥ ३॥
अनुज सखा सब बोलनि आये।
बंदिन्ह अति पुनीत गुन गाये॥ ४॥
मनभावतो कलेऊ कीजै।
तुलसिदास कहँ जूँठनि दीजै॥ ५॥

(श्रीगीतावलीजी १। ३६)

श्रीचक्रवर्तीजी भोजन करते समय श्रीरामजीको बुलाते हैं।

भोक्ष्यमाणो दशरथो राममेहीतिचासकृत्।

(अध्यात्मरामायण १। ३। ४७)

परन्तु श्रीरामजी बालसमाजको छोड़कर नहीं आते हैं। 'बाल समाज' उपलक्षण है। 'बालसमाज' से श्रीहनुमान्‌जी और श्रीकाकभुसुण्डिजीका ग्रहण किया है। उनसे बड़ा प्रेम है इसलिए।

भोजन करत बोल जब राजा।
नहिं आवत तजि बाल समाजा॥

श्रीदशरथजीने श्रीकौसल्याका आश्रय लिया—हे देवि! मेरे रामलालको ले आवो। ज्ञानने भक्तिका सहारा लिया। ज्ञानने कहा—जब तक

तुम मुझे आश्रय नहीं दोगी तब तक लालजी मेरे पास नहीं आयेंगे। श्रीदशरथ ज्ञान हैं और कौसल्याजी भक्ति।

पंथ जात सोहहिं मतिधीरा।
ग्यान भगति जनु धरें सरीरा॥

(१। १४३)

कौसल्या जब बोलन जाई।
ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥

क्या शब्द रचना है ठुमुक-ठुमुक करके भागनेकी ध्वनि आ रहीहै।

ठुमुकि चलत रामचंद्र बाजत पैजनियाँ।
किलकत उठि चलत धाय परत भूमि अरबराय धाय मोद गोद लेत दसरथकी रनियाँ॥

फिर रामजी कृपा करके स्वयं आ गये ***'धूसर धूरि भरे तनु आए'।*** यहाँ तो मणिमय आँगन है, धूलि कहाँसे आ गयी? आज परम रामभक्त, महान् वैष्णव, श्रीरामदर्शनके रसिया गौरीनाथने श्रीरामदर्शनकी कामनासे अयोध्याजीमें आकर श्रीसरयूमें स्नान किया। आज भस्म नहीं लगाना है एतावता सरयूजीकी रजको अङ्गमें लगाया। श्रीसरयूजीसे कहा—हे सरयू मैया! आज मैंने आपकी गोदमें स्नान करके आपकी रजसे भी स्नान किया है। वरदान दो मेरे गोदमें रामजी आजायँ। श्रीसरयूजीने कहा—हे भालचन्द्र! श्रीरामचन्द्रकी आपपर महान् कृपा है। राजमहलके एक कोनेमें आगये। श्रीसरयूकृपासे लालजी भी आगये। निपट एकान्तमें भोलेबाबाने अपने जीवनधनको अपनी गोदमें ले लिया, हृदयसे लगा लिया। प्रभुके श्रीअङ्गमें श्रीसरयूकी धूलि लग गयी। उसी वेषमें दशरथजीकी गोदमें आ गये।

धूसर धूरि भरें तनु आए।
भूपति बिहसि गोद बैठाए॥

चक्रवर्तीजीकी गोदमें बैठकर भोजन तो कर रहे हैं, परन्तु स्वाद नहीं आरहा है, मन चञ्चल है। प्रभु सोचते हैं मेरे भाई और सखा अपनी अपनी माताओंके पास भोजन कर लेंगे, श्रीहनुमान्जी तो सम्मान्य अतिथि हैं, परन्तु मेरे काकभुसुण्डिको कौन भोजन देगा? वे भोजन करते भी तो नहीं हैं। वे तो मेरे अधरोच्छिष्टके ही भूखे हैं। मैं खाऊँ और मेरा नीलाचलका भक्त भूखा रहे, अतः भोजन करनेमें मन नहीं लग रहा है। जाना चाहते हैं; परन्तु किस मार्गसे जायँ इस ओर श्रीकौसल्या हैं और दूसरी ओर श्रीकैकेयी। श्रीकौसल्याजीने नहीं जाने दिया; परन्तु श्रीकैकेयीने साङ्केतिक भाषामें कहा—'अच्छा जाओ।' अवसर पाते ही भोजन लेकर भाग चले।

भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥

जब ब्रह्म अपनी मुट्ठीमें भरना चाहेगा तो कितना आयेगा, इसका अनुमान आप करें। श्रीरामजीने जो लिपटाया था वह आँगनमें डाल दिया। आगे श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं।

लरिकाईं जहँ तहँ फिरहिं तहँ तहँ संग उड़ाउँ।
जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ॥

(७। ७५)

इस प्रकार अनेक चरित्र करते हैं। कभी पूर्णिमाके चन्द्रमाको देखकर उसको लेनेका हठ करते हैं। मैया आँगनमें जलसे परिपूर्ण थाल रख देती हैं। धीरेसे चन्द्रमा उस थालमें आ जाता है निकटसे दर्शन करनेके लिये, प्रभु प्रसन्न हो जाते हैं। कभी अपना प्रतिविम्ब देखकर नाचते हैं तो

कभी अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर भयभीत हो जाते हैं। कभी ताली बजाकर अपना ही नाम लेकर नृत्य करते हुये सङ्कीर्तन करते हैं। सङ्कीर्तनमें इतना आनन्द आता है कि समस्त माताओंका हृदय आनन्दसे भर जाता है। कभी रूठकर, हठ करके किसी वस्तुको माँगते हैं और जो माँगते हैं उसे लेकर ही रहते हैं।

कबहूँ ससि मागत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइकै नाचत मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिकै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेसके बालक चारि सदा तुलसी-मन-मंदिरमें बिहरैं॥

(श्रीकवितावली १। ४)

कभी-कभी श्रीरामजी अपने सब भाइयों और सखाओंके साथ मिलकर अभिनय करते हैं।

बनत रमेश राम भरत महेश होत,
लछिमन शेष और सुरेश शत्रुशाल हैं।
सखन बनावैं हैं धनेश औ गणेश,
काहू रचत दिनेश काहू करैं निशिपाल हैं॥
काहू रूप साजैं कपि रीछ औ निषाद,
काहू निशचर बनावैं काहू काहू मुनि बाल हैं।
रसिक बिहारी इमि ठानि कै अनोखे ख्याल
सरयू के तीर खेलैं दशरथ लाल हैं॥

(रामरसायन)

श्रीरामजीके बालस्वरूपका दर्शन करें।

बर दंतकी पंगति कुंदकली
अधराधर-पल्लव खोलनकी।
चपला चमकैं घन बीच जगैं
छबि मोतिन माल अमोलनकी॥
घुँघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर
कुंडल लोल कपोलनकी।
नेवछावरि प्रान करै तुलसी
बलि जाउँ लला इन बोलनकी॥
पदकंजनि मंजु बनीं पनहीं
धनुहीं सर पंकज-पानि लिएँ।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं
सरजू-तट चौहट हाट हिएँ॥
तुलसी अस बालक सों नहिं नेहु
कहा जप जोग समाधि किएँ।
नर वे खर सूकर स्वान समान
कहौ जगमें फलु कौन जिएँ॥

(श्रीकवितावलीजी १। ५, ६)

धीरे-धीरे चारों भाई बड़े हो गये। चारोंका यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हो गया। गुरुदेव श्रीवसिष्ठके यहाँ अध्ययन करनेके लिये गये। थोड़े ही समय में विद्याविनयसम्पन्न हो गये।

गुरगृह गए पढ़न रघुराई।
अलप काल बिद्या सब आई॥

श्रीरामचन्द्रजी अपने व्यवहारसे समस्त अवधवासियोंके आँखोंके तारे और प्राणप्यारे बन गये।

कोसलपुरबासी नर नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहु ते प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल॥

श्रीरामजी धनुर्विद्याके अभ्यासके लिये अपने भाइयों और सखाओंके साथ आखेट करनेके लिये जाते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामभद्रजीकी दिनचर्या अति प्रशस्त और आदर्श है। प्रातःकाल उठते हैं, माता, पिता और गुरुको सविनय प्रणाम करते हैं।

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

भाइयोंके साथ नित्य सत्सङ्ग करते हैं—वेद पुराण श्रवण करते हैं ***'बेद पुरान सुनहिं मन***

लाई'। श्रवण करके मनन और निदिध्यासन भी करते हैं ***'आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई'।*** भोजन एकाकी नहीं करते हैं ***'अनुज सखा सँग भोजन करहीं।'*** पिताजीकी आज्ञासे राज्यकार्य भी करते हैं। एतावता श्रीचक्रवर्त्तीजीको अतिशय प्रसन्नता होती है। योग्य पुत्रकी सेवासे पिताको प्रसन्नता होती ही है।

आयसु मागि करहिं पुर काजा।
देखि चरित हरषइ मन राजा॥

श्रीविश्वामित्रजी सिद्धाश्रममें निवास करते हैं। उन्होंने यज्ञकी रक्षाके लिये श्रीअयोध्या जानेका विचार किया। वे मारीच आदि राक्षसोंके अत्याचारसे व्यथित थे अत: उनके विनाशके लिये श्रीराम-लक्ष्मणकी याचना करने के लिये श्रीअयोध्याजी आये। प्रत्यक्ष कारण तो यही प्रतीत होता है; परन्तु यह तो बहाना मात्र था। वास्तविक कारण तो श्रीराम-लक्ष्मणका दर्शन था।

एहूँ मिस देखौं पद जाई।
करि बिनती आनौं दोउ भाई॥
ग्यान बिराग सकल गुन अयना।
सो प्रभु मैं देखब भरि नयना॥

भाव कि अभीतक ध्यानमें देखते रहे; परन्तु अब ***'देखब भरि नयना'।*** इससे स्पष्ट हो गया कि प्रधान कार्य दोनों भाइयोंका दर्शन है, राक्षसोंका वध सामान्य है।

बहुबिधि करत मनोरथ जात लागि नहिं बार।
करि मज्जन सरऊ जल गए भूप दरबार॥

श्रीविश्वामित्रजीका मनोरथ अत्यन्त भावपूर्ण है। उस मनोरथमें राक्षसवधकी कामना नहीं है अपितु श्रीरामचन्द्र-मुखचन्द्र-सुधाके आस्वादनकी अभिलाषा है।

आजु सकल सुकृत फलु पाइहौं।
सुखकी सींव, अवधि आनँदकी अवध बिलोकि हौं पाइहौं॥ १॥
सुतनि सहित दसरथहि देखिहौं, प्रेम पुलकि उर लाइहौं।
रामचंद्र-मुखचंद्र-सुधा-छबि नयन-चकोरनि प्याइहौं॥ २॥
सादर समाचार नृप बुझिहैं, हौं सब कथा सुनाइहौं।
तुलसी ह्वै कृतकृत्य आश्रमहिं राम लषन लै आइहौं॥ ३॥

(श्रीगीतावलीजी १। ४८)

श्रीविश्वामित्रजीका श्रीदशरथजीने हार्दिक स्वागत किया। षोडशोपचारसे पूजन किया, भोजन कराया। फिर अपने प्रेमास्पद प्राणप्रिय पुत्रोंको—चारों भाइयोंको उनके चरणोंमें प्रणाम कराया। मुनिने जब श्रीरामचन्द्रजीको देखा तब वे श्रीरामचन्द्र मुखचन्द्रके लोभी चकोर बन गये। लोभी चकोर चन्द्रमाको पानेके लिये प्राण भी देता है।

पुनि चरननि मेले सुत चारी।
राम देखि मुनि देह बिसारी॥
भए मगन देखत मुख सोभा।
जनु चकोर पूरन ससि लोभा॥

श्रीचक्रवर्तीजीने कहा—हे महर्षे! आपके आगमनका क्या कारण है? आज्ञा दें, आज्ञापालनमें विलम्ब नहीं होगा।

केहि कारन आगमन तुम्हारा।
कहहु सो करत न लावउँ बारा॥

श्रीविश्वामित्रजीने तुरन्त कह दिया। हे राजन्! मैं अनाथ हो गया हूँ, मुझे सनाथ बना दो।

असुर समूह सतावहिं मोही।
मैं जाचन आयउँ नृप तोही॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा।
निसिचर बध मैं होब सनाथा॥

सुनकर राजाके मुखकी द्युति कुम्हला गयी, हृदय काँपने लगा। थोड़ा सँभालकर बोले—हे

विप्रदेव! आपने विचार कर नहीं माँगा। मैं अपना सर्वस्व आपको दे दूँगा; परन्तु रामको नहीं दूँगा।

मागहु भूमि धेनु धन कोसा।
सर्बस देउँ आजु सहरोसा॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं।
सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं॥
सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं।
राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥
ज्ञानी वर बानी वर मुनि मौन ध्यानी वर,
सोचि के सयानी बुद्धि काढिये कलाम को।
नाहीं ना निकारिहौं जो अंश रघुवंशिन को,
हुकुम न टारिहौं गुलाम बिन दाम को॥
बिन्दु कवि बारितर बाग बन वास लीजै,
सकल सुपास लीजै आप ही के काम को।
ग्राम लीजै ठाम लीजै राज धन-धाम लीजै,
काढ़ लीजै चाम पै न नाम लीजै रामको॥

इस प्रसङ्गका महर्षि वाल्मीकिने बहुत भावपूर्ण निरूपण किया है; परन्तु वहाँ श्रीविश्वामित्र अत्यन्त रुष्ट हो गये थे। श्रीरामचरितमानसमें मुनिको हार्दिक हर्ष हुआ।

सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी।
हृदयँ हरष माना मुनि ग्यानी॥

राजाके नकारात्मक वचनोंको सुनकर, उनका गाढ़ानुराग देखकर मुनि भीतरसे प्रसन्न हो रहे हैं—अहो! ये राजर्षि दशरथ कितने भाग्यशाली हैं, साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा इनके पुत्र हैं और उनपर यह अपना एकाधिपत्य स्वीकार कर रहे हैं। संसारके लिये तो धर्मका, कर्मका, भजनका, व्रतका, नियमका, सत्यका, माता-पिता और गुरुका परित्याग तो बहुत लोग कर देते हैं; परन्तु भगवान्‌के लिये कौन परित्याग करता है? इनके इस प्रेमका महत्त्व तो कोई स्नेही ही समझ सकता है *'हृदयँ हरष माना मुनि ग्यानी।'*

श्रीविश्वामित्र सोचने लगे—यह राजर्षि तो प्राण दे देंगे पर राम न देंगे। इनको विचलित करना भी अशक्य है। स्वर्गकी इन्हें अपेक्षा नहीं और नरकसे भय भी नहीं है।

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ।
नरक परौं बरु सुरपुर जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोही।
लोचन ओट रामु जनि होंही॥
(२। ४५)

शापका भी इन्हें तनिक भी डर नहीं प्रतीत होता है। श्रीरामके लिये सत्यका त्याग करनेमें भी इनको क्लेश नहीं है। फिर हमें प्रभुकी प्राप्ति कैसे हो? चारों ओरसे निराश मुनिके मनमें एक आशाकी किरण प्रकाशित हो गयी। उनकी आँखें छलछला आयीं, हृदय गद्‌गद हो गया। अब तो मेरी आशाके केन्द्रविन्दु केवल ब्रह्मर्षि वसिष्ठ हैं। श्रीवसिष्ठतो त्रिकालज्ञ हैं, मेरे कार्यकी महत्ताको भी समझते हैं, भावज्ञ हैं, मेरे हृदयके भावको भी समझते हैं, अतः मेरी सहायता अवश्य करेंगे। ये तो मेरे हृदयकी वाणी भी सुननेमें समर्थ हैं। बस, अब क्या था, राह मिल गयी, जहाँ चाह होती है वहाँ राह मिल ही जाती है। मन ही मन श्रीवसिष्ठ-शरणापन्न हो गये। श्रीविश्वामित्र मूक भाषामें—नेत्रोंकी भाषामें प्रार्थना करने लगे—हे महात्मन्! मैं आपसे लड़ता ही रहा, लड़कर ब्रह्मर्षि पदतक पहुँच गया और आपसे ब्रह्मर्षि कहला भी लिया; परन्तु हे ब्रह्मर्षे! हे रामगुरो! हे अप्रतिम भाग्यशालिन्! सब कुछ करनेके बाद भी मैं आपके चरणोंकी धूलितक भी नहीं पहुँच सका। श्रीभगवान्‌ने पहले

आपपर कृपा की है; हे सूर्यकुलके पुरोधा! आपकी कृपाके विना मैं भाग्यवान् नहीं बन सकता। प्रभुकी कृपा नहीं पा सकता। हे परब्रह्म शिक्षक! जो सौभाग्य आपको सहज ही मिल गया है, वह कुछ दिनके लिये हमें भी दानमें दे दें। हे धर्मात्मन्! सुन्दर फलका उपभोग एकाकी नहीं करना चाहिये, वितरण करके पाना चाहिये। हे ब्रह्मर्षे! आपकी कृपासे ही मुझे राम मिलेंगे मुझे आपकी सहायता अपेक्षित है। इस महाप्रेमी परम भावुक आपके शिष्य दशरथको डिगाना मेरे लिये कठिन कार्य है। इसे विचलित करना सरल नहीं है। इसकी 'ना' को 'हाँ' में परिवर्तित करना असम्भव है। यह जान दे देगा, मान दे देगा, आन बान दे देगा, ईमान दे देगा पर 'राम' नहीं देगा। संसारके अशेष सुकृतोंको दे देगा, राज्य वैभव दे देगा; परन्तु हे महर्षे! मुझे ज्ञात है, यह रघुनन्दनको नहीं देगा। इस प्रेमी राजाके वाक्य ही प्रमाण हैं ***'राम देत नहिं बनइ गोसाईं'।*** यह कार्य आप—केवल आप कर सकते हैं। हे ब्रह्मर्षे! आज मैं अपना सब कुछ हारकर आपके श्रीचरणोंमें शरणागत हूँ। '**त्राहि माम्! पाहि माम्! रक्ष माम्**' मुझे संसार नहीं चाहिये, उच्चतम पद भी नहीं चाहिये, मेरा सर्वस्व लेकर मुझे राम दे दो—बस केवल राम दे दो।

श्रीवसिष्ठका हृदय गद्गद हो गया। उन्होंने नेत्रोंकी भाषामें कहा—हे ब्रह्मर्षे! हे विश्वामित्र! आज आप सचमुच विश्वके मित्र बन गये, आज आपका नाम सार्थक हो गया। 'विश्व' नाम तो श्रीरामजीका ही है, उनके मित्र बन गये—अपने बन गये। उस दिन तो मैंने सङ्कोचमें ब्रह्मर्षि कहा था; परन्तु आज हृदयसे कह रहा हूँ—हे ब्रह्मर्षे! आज तुम ब्रह्मर्षि बन गये हो। सृष्टिके इतिहासमें अनुपम पुरुष बन गये हो।

इसके पश्चात् ब्रह्मर्षि वसिष्ठने वह उपदेश किया जिस उपदेशने श्रीदशरथजीका विचार ही पलट दिया। भावपूर्ण उपदेश है। आइये, इस उपदेशका रसास्वादन करें।

तेषां निग्रहणे शक्तः स्वयं च कुशिकात्मजः।
तव पुत्रहितार्थाय त्वामुपेत्याभियाचते॥

(श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण १। २१। २१)

श्रीवसिष्ठने कहा—हे राजेन्द्र! क्या आप समझते हैं कि मुनि मारीचके नाशके लिये आये हैं? ये कह तो यही रहे हैं; परन्तु आप इनकी शक्तिको समझें। जितने भी मारीचादि राक्षस हैं, मुनि उनका वध करनेमें स्वयं समर्थ हैं। फिर उनके यहाँ आनेका वास्तविक प्रयोजन क्या है? समर्थ होते हुए भी याचना क्यों कर रहे हैं? इसका उत्तर श्रीवसिष्ठजी देते हैं—श्रीविश्वामित्र कितने परोपकारी सन्त हैं कि अपना स्वाभिमान समाप्त करके '**त्वामुपेत्य**' आपके पास स्वयं आकर—बिना बुलाये आकर आपसे '**अभियाचते**', 'अभि' उपसर्ग लगाकर सूचित किया कि आपके 'न' करनेपर भी याचना कर रहे हैं। दूसरा भाव यह है कि जिन्होंने कभी याचना की ही नहीं वह आपसे याचना कर रहे हैं।

उपदेशके बीचमें ही श्रीविश्वामित्रजीने कहा—हे परमहितैषी महर्षे! मैं जिस पदार्थकी याचना करने आया हूँ, उस पदार्थकी शोभा झोली फैलाकर याचना करनेमें ही है। आज्ञा देकर प्राप्त करनेमें नहीं है। हे ब्रह्मर्षे! मैं संसार किं वा संसारी पदार्थ नहीं माँग रहा हूँ अपितु साक्षात् रामजीको माँग रहा हूँ। आपलोग उस धनके धनी

हैं, सुतराम् मेरा झोली फैलाकर माँगना सर्वथा समीचीन है।

श्रीवसिष्ठने पुनः कहा—हे राजन्! आपके पास स्वयं आकर आपके 'न' करनेपर भी झोली फैलाकर क्यों माँग रहे हैं? उत्तर है '**तव पुत्रहितार्थाय**' आपके पुत्रका हित सम्पादन करनेके लिये। दूसरोंके लिये अति दुर्लभ, अत्यन्त रहस्यमयी अनेक विद्याओंका प्रदानरूप हित करनेके लिये ही आपके पुत्रोंकी याचना कर रहे हैं। किं बहुना इनके आनेके पूर्व जिस कार्यके लिये हम सबलोग चिन्तित थे उस कार्यको भी सम्पन्न करके आपके पुत्रोंका हित सम्पादन करेंगे। आश्चर्य विस्फारित नेत्र राजाने धीरेसे पूछा—क्या ये विवाह करायेंगे? श्रीवसिष्ठजीने कहा—यही तो मैं कह रहा हूँ '**तव पुत्रहितार्थाय**' अर्थात् यह तो वास्तवमें श्रीरामसीताके सनातन सम्मिलनके—विवाहके परम पवित्र दिव्य माध्यम हैं। इन्होंने तो अपनी याचना की भूमिकामें ही कहा था '**श्रेयश्चास्मै प्रदास्यामि बहुरूपं न संशयः**'। तिलक टीकाकारने लिखा है '**अस्त्रदान विवाहादिरूपं बहुरूपम्**' अब तो श्रीवसिष्ठकी वाणी सुन करके राजाका मुखमण्डल प्रकाशित हो गया। उनकी अशेष आशङ्का आमूल नष्ट हो गयी।

तब बसिष्ट बहुबिधि समुझावा।
नृप संदेह नास कहँ पावा॥

उनकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं है। उन्होंने सद्यः श्रीरामलक्ष्मणका आवाहन किया और दोनोंको हृदयसे लगाकर अनेक प्रकारकी शिक्षा दी।

श्रीदशरथने स्नेहिल स्वरमें कहा—हे मुने! ये दोनों मेरे प्राण हैं। आजसे आप ही इनके पितृस्थानापन्न रक्षक हैं। यह कहकर राजाने श्रीविश्वामित्रके चरणोंमें अपने पुत्रोंको समर्पित कर दिया।

श्रीरामलक्ष्मणने माताओंके भवनोंमें जाकर उनको विनयपूर्वक प्रणाम करके वहाँसे प्रस्थान किया।

अति आदर दोउ तनय बोलाए।
हृदयँ लाइ बहु भाँति सिखाए॥
मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ।
तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥
सौंपे भूप रिषिहि सुत बहुबिधि देइ असीस।
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस॥

एक प्रश्न होता है कि माताओंने किस प्रकार प्रसन्नतासे विदा कर दिया? उत्तर यह है कि माताओंको तो पहलेसे ही ज्ञात था कि श्रीविश्वामित्रजी विवाहके लिये आये हैं। लगभग चौदह वर्ष पूर्व एक हस्तरेखाविद् योगी ज्योतिषीने भविष्यवाणी की थी।

जनम प्रसंग कह्यो कौसिक मिस सीय स्वयंवर गायो।

(श्रीगीतावलीरामायण १। १७)

पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन॥

श्रीराम-लक्ष्मण महर्षि विश्वामित्रके साथ चले जा रहे हैं। आज महर्षि स्वयंको अत्यन्त भाग्यशाली मान रहे हैं। वे अपने मनमें सोच रहे हैं—मेरे स्वामी अभी मात्र पन्द्रह वर्षके हैं, इन्होंने मेरे लिये माता पिताको छोड़ दिया, अपनी जन्मभूमि श्रीअयोध्याजीको भी छोड़ दिया। ये अपना सब कुछ छोड़कर मुझ अनाथ याचकको सनाथ करनेके लिये, मेरे साथ वनका कष्ट सहन करनेके लिये चल रहे हैं। मैं समझ गया—मेरे

प्रभु ब्रह्मण्यदेव हैं और परम भक्तवत्सल हैं।

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई।
बिश्वामित्र महानिधि पाई॥
प्रभु ब्रह्मन्यदेव मैं जाना।
मोहि निति पिता तजेउ भगवाना॥

इस प्रकार महर्षिके साथ श्रीराम-लक्ष्मण ताटका वनमें पहुँच गये। मुनिने श्रीरामसे कहा—हे रघुनन्दन! रावणकी आज्ञासे इस वनमें ताटका रहती है। इसने अनेक मनुष्यों और मुनि कुमारोंका भक्षण कर लिया है, इसलिये तुम इसे मार डालो।

राम राम महाबाहो ताटका नाम राक्षसी।
रावणस्य नियोगेन वसत्यस्मिन् महावने॥
तथा मनुष्या बहवो मुनिपुत्रा मृगास्तथा।
निहता भक्षिताश्चैव तस्मात् त्वं जहि सत्तम॥

(नृसिंहपुराण)

मुनिकी आज्ञा प्राप्त होते ही श्रीरामजीने धनुषको सज्ज करके ज्याघोष किया। धनुषकी प्रत्यञ्चापर टङ्कार दी। ज्याघोष सुनकर ताटका अपना हाथ उठाकर भयङ्कर गर्जना करती हुई क्रुद्ध होकर श्रीरामजीकी ओर वेगसे दौड़ी। श्रीरामजीने सोचा—यह स्त्री है, इसके मारनेसे पाप होगा। श्रीरामजीका मनोभाव समझकर महर्षिने तत्काल कहा—हे राम! इससे समस्त प्राणी व्याकुल हैं एतावता इसका वध पुण्यप्रद होगा।

अस्यास्तु निधनाद् राम जनाः सर्वे निराकुलाः।
भवन्ति सततं तस्मात् तस्याः पुण्यप्रदो वधः॥

(नृसिंहपुराण)

श्रीरामजीने **'गुरोराज्ञा गरीयसी'** समझकर एक बाणसे उसका प्राण अपहरण कर लिया। वह पृथ्वीपर गिरकर मर गयी। उसका उद्धार हो गया और जगन्मङ्गल हो गया।

चले जात मुनि दीन्हि देखाई।
सुनि ताड़का क्रोध कर धाई॥
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा।
दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥

एकहि बान—जब प्रभु रणक्रीडा करते हैं, तब अनेक बाणोंका प्रयोग करते हैं अन्यथा एक बाणसे ही बड़े-बड़े वीरोंका संहार कर देते हैं। बाली ऐसे महान् वीरको भी एक ही बाणसे मार दिया।

द्विः शरं नाभिसंधत्ते द्विः स्थापयति नाश्रितान्।
द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नाभिभाषते॥

(हनुमन्नाटक १। ४८)

अथवा—महर्षि विश्वामित्रको वात्सल्यके कारण कदाचित् सन्देह न हो जाय अतः एक बाणसे मारा।

पूर्णब्रह्मके दो अवतार हैं, श्रीराम और श्रीकृष्ण। दोनोंने अपनी अपनी भङ्गीसे—ढंगसे जगन्मङ्गल किया है। दोनोंके चरित्र अनूठे हैं। श्रीरामजीने भी सर्वप्रथम एक स्त्रीका ही उद्धार किया और श्रीकृष्णजीने भी। दोनोंका नाम तीन अक्षरका ही है। ताटका और पूतना दोनोंका शरीर छः कोसका है।

सेयं पन्थानमावृत्य वसत्यत्यर्धयोजने॥

(श्रीमद्वाल्मीकीये १। २४। २९)

पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान्।

(श्रीमद्भागवत १०। ६। १४)

आचार्योंने ताटका और पूतना—दोनोंको अविद्या एवं तामसी वृत्ति कहा है। दोनोंमें किञ्चित् अन्तर भी है। श्रीरामजीने पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें मारा और श्रीकृष्णजीने छः दिनकी अवस्थामें मारा।

श्रीरामजीने अपने ब्रह्मत्वका जीवनपर्यन्त सङ्गोपन किया है और श्रीकृष्णजीने आरम्भसे ही प्रकट कर दिया है। श्रीरामजीने ताटकाको आँखसे देखकर मारा है, परन्तु श्रीकृष्णने आँखोंको बन्द करके मारा है। एक परब्रह्म महापुरुष है तो दूसरा योगी है। महापुरुष आँखें खोलकर कार्य करते हैं और योगी आँखोंको सम्मीलित करके कार्य करता है। श्रीरामजीने किसीसे निर्दिष्ट और आदिष्ट होकर मारा है परन्तु श्रीकृष्णने स्वेच्छासे मारा है। एक मर्यादा पुरुषोत्तम हैं तो दूसरे लीला पुरुषोत्तम हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम तो किसीके निर्देशनमें ही कार्य करेंगे, परन्तु लीलाका क्षेत्र तो उससे भिन्न है। श्रीरामजी कहते हैं—हमें परस्त्रीका दर्शन और स्पर्श नहीं करना है। महर्षिकी आज्ञासे ही ताटका और अहल्याका दर्शन और स्पर्श करेंगे। श्रीकृष्णजी कहते हैं हमें तो सहस्रों मुनियों, देवियोंकी कामना—अभिलाषा पूर्ण करनी है। हम कब तक आदिष्ट होते रहेंगे, हम प्रेमाविष्ट होकर जगत्का मङ्गल करेंगे।

ताटका वधके पश्चात् श्रीविश्वामित्रजीने श्रीरघुनाथको अपना नाथ पहचानकर बला और अतिबला नामकी विद्या दी। इस विद्याके प्रभावसे भूख प्यास नहीं लगती है और शरीर बलवान् तथा तेजस्वी हो जाता है।

तब रिषि निज नाथहिं जियँ चीन्ही।
बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्ही॥
जाते लाग न छुधा पिपासा।
अतुलित बल तनु तेज प्रकासा॥

ताटका वनमें रात्रि व्यतीत करके, प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त होकर महर्षि विश्वामित्रने श्रीराघवेन्द्रको अनेक प्रकारके दिव्यास्त्र प्रदान किये। मुनिने कहा—हे रामभद्र! तुम्हारा कल्याण हो। आज मैं अपने सम्पूर्ण दिव्यास्त्र तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ।

तानि दिव्यानि भद्रं ते ददाम्यस्त्राणि सर्वशः।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण १। २७। ४)

महर्षिने श्रीरामभद्रको महान् दण्ड-चक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, वज्र, त्रिशूल, ब्रह्मास्त्र, ऐषिकास्त्र, धर्मपाश, कालपाश, वरुणपाश, तेजःप्रभ और मानवास्त्रशीतेषु आदि विविध महत्वपूर्ण अस्त्रग्रामोंको प्रदान किया। उन अस्त्रोंका प्रयोग बताया और संहार विधिका भी उपदेश दिया। वे सभी दिव्य अस्त्र चेतन थे। वे सब शस्त्रास्त्र सशरीर श्रीरामजीके पास आये और कहने लगे कि हमलोग आपके दास हैं।

ऊचुश्च मुदिता रामं सर्वे प्राञ्जलयस्तदा।
इमे च परमोदार किंकरास्तव राघव॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण १। २७। २५)

उदार चक्रचूडामणि श्रीरामजीने उनको स्वीकार करके अपने कल्याणमय करारविन्दोंसे उन दिव्यास्त्रोंका स्पर्श किया और कहा—आप लोग मेरे मनमें निवास करें। इस प्रकार समस्त शस्त्रास्त्र ग्रामोंको समर्पण करके ब्रह्मर्षि प्रभुको अपने आश्रम-सिद्धाश्रममें ले गये। मुनिने भक्तिप्रिय जानकर प्रभुको कन्द मूल फल भोजन प्रदान किया।

आयुध सर्ब समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि।
कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि॥

शुभ कार्यमें विलम्ब नहीं करना चाहिये, एतावता श्रीराघवेन्द्रने श्रीविश्वामित्रसे कहा—हे महर्षे! सम्प्रति श्रीमान् निर्भय होकर यज्ञ आरम्भ करें। यह सिद्धाश्रम आज सिद्धाश्रम हो।

हे मुने! यज्ञके बाधकोंका वध करनेके लिये हम कटिबद्ध हैं।

प्रात कहा मुनि सन रघुराई।
निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी।
आपु रहे मख कीं रखवारी॥

भारतीय संस्कृतिके सजग प्रहरी, यज्ञरक्षाके लिये कटिबद्ध यज्ञपुरुषकी बड़ी मनोरम झाँकी है। एक सुन्दर-सा यज्ञमण्डप है, उसके द्वारपर श्रीराम लक्ष्मणके रूपमें दो पहरेदार खड़े हैं, उनके हाथोंमें सज्ज धनुष हैं, उन धनुषोंपर बाण हैं, कमरमें वाणोंसे परिपूर्ण निषङ्ग हैं, कमर कसकर बाँधे हुये हैं। उन दोनों रक्षकोंकी दृष्टि पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे सभी दिशाओंमें लगी है। वे समाहित होकर सावधान नेत्रोंसे यज्ञमें बाधा करनेवाले राक्षसोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। यज्ञ मण्डपके भीतर मुनि लोग उच्च स्वरसे निर्भय होकर वैदिक मन्त्रोंसे आहुति दे रहे हैं। मुनियोंके सम्मिलित 'स्वाहा' शब्दको सुनकर भयङ्कर राक्षसोंको साथमें लेकर अपनी माताका प्रतिशोध लेनेके लिये और यज्ञको विध्वंस करनेके लिये मारीचने भयङ्कर आक्रमण किया। श्रीरामजीने भविष्यकी कथाको ध्यानमें रखकर उसे बिना फरका बाण मारकर समुद्रके उत्तरी तटपर पहुँचा दिया।

सुनि मारीच निसाचर कोही।
लै सहाय धावा मुनिद्रोही॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा।
सत जोजन गा सागर पारा॥

मारीचके पश्चात् श्रीरामजीने अग्नि बाणसे सुबाहुका वध कर दिया और श्रीलक्ष्मणजीने राक्षसोंकी सेनाका संहार कर दिया।

इस प्रकार छः दिन और छः रात्रि पर्यन्त अनवरत सावधान होकर द्वार पर खड़े हैं। कितना मङ्गलमय स्वरूप है। इन यज्ञरक्षकोंके श्रीचरणोंमें प्रणाम है '**अनिद्रं षडहोरात्रं तपोवनमरक्षताम्।**'

यज्ञ पूर्ण होगया। ठाकुरजीकी इस प्रथम विजयसे प्रसन्न होकर समस्त देवता, मुनि स्तुति करने लगे।

मारि असुर द्विज निर्भयकारी।
अस्तुति करहिं देव मुनि झारी॥

यज्ञके पूर्ण होनेपर किञ्चित् दिवसपर्यन्त श्रीरामजी सिद्धाश्रममें निवास करके सत्सङ्ग करते रहे।

एक दिन श्रीविश्वामित्रजीने कहा—हे रघुनन्दन! यह ब्राह्मणोंका यज्ञ तो तुम्हारी कृपासे पूर्ण हो गया। एक क्षत्रियोंका यज्ञ बहुत दिनोंसे चल रहा है; परन्तु अभी पूर्ण नहीं हुआ है। उसका नाम 'धनुष-यज्ञ' है। यदि आप उसमें पधारें तो वह यज्ञ भी निश्चित् पूर्ण हो जायगा और आपकी कीर्ति त्रिभुवनमें फैल जायगी। हे वत्स! आपके साथ मेरा भी नाम अमर हो जायगा।

धनुषजग्य सुनि रघुकुल नाथा।
हरषि चले मुनिबर के साथा॥

अनेक महर्षियोंके साथ श्रीराम-लक्ष्मणने जनकपुरके लिये प्रस्थान किया।

मार्गमें एक शिला देखकर करुणामय श्रीरामजीने करुणा करनेके लिये मुनिका आश्रय लिया। हे महर्षे! यह शिला कैसी है? इसको देखकर मेरा मन दुःखित हो रहा है। श्रीविश्वामित्रने प्रसन्न होकर अहल्याका जन्म, कर्म, उत्थान, पतन सब कुछ सुनाया और श्रीरामजीसे कहा—हे कृपापाथनाथ!

हे रघुनाथ! हे अनाथनाथ! सम्प्रति अहल्याका हृदय परम शुद्ध हो गया है। यह इतने वर्षोंसे आपके आगमनकी प्रतीक्षा कर रही है। इसके मनमें कोई भौतिक कामना नहीं है। इसके मनमें मात्र आपके चरण रजकी प्राप्तिकी ही अभिलाषा है। हे रघुवीर! इसकी अभिलाषा पूर्ण करें।

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर॥

जीवाचार्य श्रीलक्ष्मणजी भी प्रसन्न हो गये। मेरी और अहल्याकी एक ही अभिलाषा है। यह भी चरण रज चाहती है और मैं भी चरण रजकी ही आकाङ्क्षा करता हूँ।

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा।
सब तजि करौं चरन रज सेवा॥

(३। १४)

प्रभुने अपने मनमें सोचा कि अब तो इसका उद्धार करना ही होगा।

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥

'तप पुंज सही' का भाव यह है कि आज तो अहल्याका प्राकट्य श्रीहरिके चरणरजसे हुआ है, एतावता यह पतित पावनी श्रीगङ्गाजीके समान है। अहल्याजीकी स्तुति अत्यन्त भावपूर्ण है, उन्होंने जो वरदान मागा है, उसका अनुशीलन करें।

बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना॥

श्रीगौतमजी प्रतीक्षा कर रहे थे, वह उनके साथ चली गयीं।

जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पतिलोक अनंद भरी।
संस्तूय रघुनाथं सा पत्या सह गता पुनः।

(सत्योपाख्यान)

रामके प्रसाद गुरु गौतम खसम भये
रावरेहु सतानंद पूत भये मायके।

(श्रीगीतावलीजी १। ६७। ३)

तुलसी जिन्हकी धूरि परसि अहल्यातरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो सो लेवाइ कै।

(श्रीकवितावलीरामायण २। ९)

श्रीजनकपुरके मार्गमें श्रीगङ्गाजीकी कथा सुनकर, स्नान करके, ब्राह्मणोंको दान देकर जनकपुरके लिये प्रस्थान किया। शीघ्र ही श्रीजनकपुर पहुँच गये। नगरके बाहर एक अनुपम आमकी बाग थी। श्रीविश्वामित्रने कहा—हे रघुनन्दन! मुझे यह बाग बहुत अच्छी लगी है, अतः यहीं विश्राम करिये। कृपामय श्रीरामजीने उत्तरमें कहा—***'भलेहि नाथ'*** इस वचनसे प्रभुकी गुरुनिष्ठा घोषित हो रही है। धन्य है प्रभुका चरित्र और उनकी गुरुनिष्ठा। राजमहलके निवास करनेवाले राजकुमार चक्रवर्त्तीजीके आँखोंके तारे कौसल्यानन्द-संवर्द्धन दशरथनन्दन श्रीरामजी—महलके रहनेवाले श्रीरामजी, राजमहलसे मुनियोंके आश्रममें आये और सम्प्रति नगरके बाहर बागमें आ गये; परन्तु श्रीरामजी तीनों ही स्थानोंमें प्रसन्न हैं। अमराई—आमकी बागमें सब लोग ठहर गये।

देखि अनूप एक अँवराई।
सब सुपास सब भाँति सुहाई॥
कौसिक कहेउ मोर मनु माना।
इहाँ रहिअ रघुबीर सुजाना॥
भलेहिं नाथ कहि कृपानिकेता।
उतरे तहँ मुनि बृंद समेता॥

श्रीगुरुदेवने कहा—हे वत्स! पूजनके पुष्पके लिये पुष्पवाटिका देख आओ। श्रीरामजी पुष्पवाटिका खोजने और देखने चले गये।

किसी सूत्रसे समाचार प्राप्त करके मिथिलेश श्रीजनकजी श्रीविश्वामित्रजीका स्वागत और दर्शन करनेके लिये अपने मन्त्री और पुरोहित आदिके साथ श्रीविश्वामित्रजीके पास आये।

बिस्वामित्र महामुनि आए।
समाचार मिथिलापति पाए॥
संग सचिव सुचि भूरि भट भुसुर बर गुर ग्याति।
चले मिलन मुनिनायकहि मुदित राउ एहि भाँति॥

राजाने मुनिको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। मुनिने बार-बार स्नेहसे कुशल प्रश्न करके अपने पास बिठा लिया। जब सब लोग विराजमान हो गये उसी समय श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाई पधारे, वे गुरुदेवकी आज्ञानुसार पुष्पवाटिका देखने गये थे।

तेहि अवसर आए दोउ भाई।
गए रहे देखन फुलवाई॥

श्रीरामजीके अलौकिक तेजको देखकर सब लोग उठकर खड़े हो गये। इसीलिये तो महर्षिने पुष्पवाटिका देखने भेजा था।

उठे सकल जब रघुपति आए।
बिस्वामित्र निकट बैठाए॥

भुवनविमोहन लोकाभिराम श्रीरामजीका दर्शन करके सब लोग सुखी हो गये।

भए सब सुखी देखि दोउ भ्राता।

श्रीजनकजी मधुर मनोहर मूर्त्तिका दर्शन करके विशेष विदेह हो गये।

मूरति मधुर मनोहर देखी।
भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥

अर्थात् अबतक ब्रह्मसुखमें विदेह रहते थे, सम्प्रति श्रीरामदर्शनजन्यसुखसे विशेष विदेह हो गये; क्योंकि ब्रह्मसुखसे श्रीरामजीके दर्शनका आनन्द अनन्त गुणा है।

अवलोकि रामहि अनुभवत मनु ब्रह्म सुख सौगुन दिए।
देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ।
बँधेउ सनेह बिदेह बिराग बिरागेउ॥

(जानकीमङ्गल २५, २६)

राघव किशोर चित चोरको बिलोकत ही,
बार बार मचलि मचलि मन रहिगो।
थकत न लोचन सँकोचहु न सोचे कछु,
जग ताप मोचन प्रताप दाप दहिगो॥
नेही राग रङ्गते विरागी आजु लौं जो हतो,
सोई अनायास अनुराग पन्थ गहिगो।
बिन्दु कवि प्रेमानन्द सिन्धु बीच बूड़ि बूड़ि,
नृपति विदेहजीको ब्रह्मानन्द बहिगो॥

राजर्षि जनकने जब श्रीराम-लक्ष्मणकी मधुर मनोहारिणी जोड़ीको देखा, उनके अस्त्र-शस्त्र, बलिष्ठ व्यक्तित्व और अनुपम सौन्दर्यमाधुर्यका दर्शन किया तो प्रेमविभोर हो गये। उनके जन्म-जन्मके संस्कार—स्नेहिल संस्कार जागृत हो गये। श्रीराम-लक्ष्मणके प्रति उनका सहजवात्सल्य भाव मुखरित हो गया—स्नेहोर्मिल हो गया। उन्होंने स्नेहोर्मिल स्वरमें पूछा—हे महर्षे! देवतुल्य पराक्रमी ये दोनों कुमार कौन हैं? इनकी गति मत्तगजेन्द्रकी भाँति है, ये अपने मनोहर स्वरूपसे कोटि-कोटि कन्दर्प दर्पको विखण्डित कर रहे हैं। ये किसके पुत्र हैं? हे महर्षे! मैं तत्त्वतः इनका परिचय जानना और सुनना चाहता हूँ। श्रीजनकने कहा—हे महामुने! मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि ब्रह्म ही दो वेष धारण करके आ गया है।

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा।
उभय वेष धरि की सोइ आवा॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा।
थकित होत जिमि चंद चकोरा॥

केहि सुकृती के कुँवर कहिय मुनिनायक।
गौर स्याम छबि धाम धरे धनु सायक॥
विषय विमुख मन मोर सेइ परमारथ।
इन्हहिं देखि भयो मगन जानि बड़ स्वारथ॥

(जानकीमंगल २७, २८)

श्रीविश्वामित्रजीने कहा—हे राजर्षे! ये दोनों चक्रवर्त्ती नरेन्द्र अयोध्यानरेश महाराज दशरथके पुत्र हैं। ये मेरे यज्ञकी रक्षाके लिए पधारे हैं। सम्प्रति ताटका और सुबाहु आदिका संहार करके, मेरे यज्ञको सफल करके अहल्योद्धार करके आपके धनुषके सम्बन्धमें जाननेके लिये यहाँ आये हैं।

रघुकुल मनि दसरथ के जाए।
मम हित लागि नरेस पठाए॥
रामु लखनु दोउ बंधुबर रूप सील बल धाम।
मख राखेउ सबु साखि जगु जिते असुर संग्राम॥

श्रीरामजीके स्वरूपपर विमुग्ध विदेहराजने सबको लेकर नगरमें आकर *'सुन्दर सदन'* में निवास दिया। सब प्रकारकी व्यवस्था करके, महर्षिका विधिवत् पूजन करके, पादसंवाहनादि सेवा करके राजर्षि अपने घर चले गये।

सुंदर सदनु सुखद सब काला।
तहाँ बास लै दीन्ह भुआला॥
करि पूजा सब बिधि सेवकाई।
गयउ राउ गृह बिदा कराई॥

महर्षिके साथ श्रीरामजी भोजन और विश्राम करके जब बैठे तब एक प्रहर दिन शेष था।

रिषयसंग रघुबंसमनि करि भोजन बिश्रामु।
बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जामु॥

श्रीलक्ष्मणजीके मनमें जनकपुर देखनेकी विशेष लालसा है; परन्तु श्रीरामजीसे डर लगता है और मुनिका सङ्कोच है, अतः प्रकट नहीं कहते हैं। अन्तर्यामी भक्तवत्सल श्रीरामजीने अपने अनुजके मनकी बात जान ली, उनके हृदयमें भक्तवत्सलता उमड़ आयी। श्रीरामजीकी ही प्रेरणासे मुनिने पूछा—हे वत्स! क्या कहना चाहते हो? श्रीरामजीने कहा—हे नाथ! भैया लक्ष्मण जनकपुर नगर देखना चाहते हैं; परन्तु आपके सङ्कोच एवं भयसे मुखसे नहीं कहते हैं। हे प्रभो! यदि आज्ञा दें तो मैं लक्ष्मणको नगर दिखाकर शीघ्र ले आऊँ।

नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं।
प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं।
नगर देखाइ तुरत ले आवौं॥

आशय यह है—लक्ष्मण मुझको छोड़कर अकेले कहीं नहीं गये एतावता मेरा साथमें जाना आवश्यक है। किं वा—लक्ष्मण बालक है कहीं विलम्ब न कर दे एतावता मेरा साथमें जाना आवश्यक है। महर्षिने सद्यः आज्ञा दे दी।

जाइ देखि आवहु नगर सुख निधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ॥

श्रीरामजीने नगर दिखानेकी आज्ञा माँगी, परन्तु मुनिने दोनों भाइयोंको नगर देखनेकी आज्ञा दी। साथमें एक आज्ञा और भी दी—हे रघुनन्दन! समस्त नगरवासी—आबालवनितावृद्ध तुम्हारे मङ्गलमय, मनोहर, मधुर स्वरूपका दर्शन करना चाहते हैं। उनके नेत्रोंको सफल करके आना अर्थात् यदि आनेमें किञ्चित् विलम्ब भी हो जाय तो भी चिन्ता नहीं करना। भावुक कवि भी लिखते हैं।

मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता।
चले लोक लोचन सुख दाता॥

आशय यह है—यह यात्रा ही समस्त प्राणियोंको सुख देनेके लिये है। 'लोक' का अर्थ प्राणी भी होता है '**लोकस्तु भुवने जने**'।

नगरदर्शनके प्रसङ्गके आरम्भमें ही भक्त कविने अपने स्वामीका अनूठा शृङ्गार किया है—उनके मनोहर स्वरूपका सुन्दर वर्णन किया है। आठ पङ्क्तियोंमें सजाया है। इसके पश्चात् छः दोहोंमें नगर दर्शनका प्रसङ्ग है। 'राजराजेन्द्र श्रीदशरथ-राजकुमार नगर देखने आये हैं' यह समाचार सुनकर नगरके नर-नारी, घरमें बिना ताला लगाये और जो कार्य कर रहे थे उसको अधूरा छोड़कर श्रीरामजीका दर्शन करने के लिए दौड़े।

देखन नगरु भूपसुत आए।
समाचार पुरबासिन्ह पाए॥
धाए धाम काम सब त्यागी।
मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥

जिस निधिको मनु-शतरूपाने तेईस हजार वर्षकी कठिन तपस्या करके प्राप्त किया और महान् स्वाभिमानी, महान् मुनि, महान् तपस्वी श्रीविस्वामित्र महान् याचक बन कर—माँगकर जिस निधिको पाये। उसी निधिको लूटनेके लिए जनकपुरके नर-नारी दौड़े। जो युवतियाँ घरके बाहर नहीं निकल सकीं वे अपने-अपने घरके झरोखोंमेंसे श्रीराम-दर्शन कर रही हैं।

जुबती भवन झरोखन्हि लागीं।
निरखहिं राम रूप अनुरागीं॥

इस प्रसङ्गमें सखियोंका अतिशय सुन्दर संवाद है। उस मधुर प्रसङ्गको प्रणाम करके अन्तिम दोहाकी व्याख्या नहीं अपितु पाठ करके सुना रहा हूँ।

हियँ हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद॥

(क) सखियोंने श्रीरामजीका स्वागत करनेके लिए पुष्पवर्षण किया। (ख) श्रीरामजी के श्रीचरणकमलोंको अतिशय सुकोमल जानकर मार्गको पुष्पमय बना रही हैं (ग) श्रीरामजी शान्तिपूर्वक अचञ्चल दृष्टिसे नगर एवं नगरकी रचना देखते चले जा रहे हैं। ऊपर दृष्टिपात नहीं कर रहे हैं अतः ऊपर अट्टालिकाकी सखियाँ जो नीचे आने में असमर्थ हैं वे श्रीरामदर्शनकी कामनासे पुष्पवर्षण करके मानो सरकारसे प्रार्थना करती हैं कि हे सलोने राजकुमार! नेत्र उठाकर अपनी कृपापूर्ण चितवनिसे हम अबलाओंको भी कृतार्थ करें। (घ) श्रीरामजीके अलौकिक सौन्दर्यको देखकर अपने सु+मन अर्थात् अपने स्नेहोच्छलित निष्कपट सुन्दर मनको ही न्यौछावर कर रही हैं। महात्मा श्रीरसिकबिहारीजीने सखियोंके प्रसङ्गमें बड़ी सुन्दर-सुन्दर उद्भावनायें की हैं, भावुक सज्जन अपने भावानुसार आनन्द लें।

नृपति किशोर श्याम गौर द्वै अनूप रूप
पुर अवलोकिबेको आये हें बजार में।
छायो शोर भारी चहुँ ओर नर नारी भीर
सुरति न काहू देह गेह की सम्हार में॥
रसिक बिहारी वर वाम जे सुधाम सबैं
आईं धाय आँगन अटारी कोऊ द्वार में।
फिरें फिरकीसी भौन थिरकी रहें ना नेक
कोऊ खिरकी में कोऊ हिरकी किवाँर में॥
अवधबिहारी धनुधारी सुखकारी त्यागि,
आँखैं अब और को न-आदर विशेखैंगी।
शम्भु विधि विष्णुजीसे अधिक स्वरूपवान,
कौन दूसरा है समता में जिसे लेखैंगी॥

बिन्दु कवि मृदुता मधुरता मनोहरता,
परख चुकी हैं बार बार क्या परखैंगी।
आली सुधा प्यालीसी निराली मतवाली छबि
देखी है जो आज कभी देखी है न देखैंगी॥

श्रीसूरदासजी महाराजने इन सखियोंके रामदर्शनके प्रसङ्ग में कहा है—

देखन मन्दिर आनि चढ़ी।
रघुपति पूरन चन्द्र विलोकत मानों उदधि तरंग बढ़ी॥
पिय दरसन प्यासी अति आतुर निसि बासर गुन गान रढ़ी।
तजि कुल कानि पीय मुख निरखत सीस नाइ आसीस पढ़ी॥
भई देह जो खेह करमबस ज्यों तट गंगा अनल दढ़ी।
सूरदास प्रभु दृष्टि सुधा निधि मानो फेरि बनाइ गढ़ी॥

(सूररामायण)

नगर दर्शन प्रसङ्गका प्रारम्भ बालकोंसे होता है। सुन्दर सदनके द्वारसे निकलते ही श्रीरामजीको बालकवृन्द मिले। श्रीजनकनगरमें सर्वप्रथम कोई ज्ञानी नहीं मिला, कोई कर्मकाण्डी नहीं मिला, कोई योगी नहीं मिला, कोई ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध और वयोवृद्ध भी नहीं मिला अपितु निर्मल मन, प्रेम परिपूर्ण हृदय, अल्पवयस्क बालकोंका समूह मिला।

बालक बृंद देखि अति सोभा।
लगे संग लोचन मनु लोभा॥

नगर दर्शन प्रसङ्गका समापन भी बालकोंकी विदाईसे ही होता है। पुरबालकोंका प्रसङ्ग अतिशय भावपूर्ण हैं, स्नेहरससे परिपूरित है। बालकगण पारस्परिक वार्तालापमें कहते हैं—हे भैया! इन दोनों राजकुमारोंके जनकपुरमें आनेका क्या कारण सम्भव है।

कोउ, बाल बालसो कहें हैं हम ऐसी सुनी
वीरता बढ़ाय चाप तोरिबे सिधाये हैं।
कोऊ कहें कौतुक बिलोकिवे पधारे दोऊ,
कोउ कहें कौशिक भुराय इन लाये हैं॥
कोऊ कहें हेरत बटोही पुर कोऊ कहें
रसिक बिहारी आज भूपति बुलाये हैं॥
कोऊ कहे जानैं हम सत्य सो बखानैं सुनो,
जनकललीके व्याहिबेको इत आयें हैं।

(रामरसायन)

बालक अपने मृदुल वचनोंसे श्रीरामजीको नगरकी रचना दिखाते हैं। इसी बहाने प्रभुके दिव्य रसमय विग्रहका स्पर्श भी करते हैं, उनसे लिपट जाते हैं और प्रेमसे पुलकित हो जाते हैं। प्रत्येक बालक जिधर चाहता है उधर ही प्रेम पराधीन श्रीरामजी चले जाते हैं। जितने बालक हैं उतने ही श्रीरामजी हैं, भक्तवत्सल प्रभु किसीकी बातका अनादर नहीं करते हैं।

निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई।
सहित सनेह जाहिं दोउ भाई॥

जब प्रभु उनसे अलग होने लगे तब वे भावविह्वल हो गये। प्रभुने कहा—हे भैया! हमें तो अपने गुरुदेवका भय है अतः हमें शीघ्र जाना होगा। क्या तुम्हें अपने माता-पिताका भय नहीं है? बालकोंने कहा—हे राजकुमार! भय तो हमें भी है; परन्तु हम मार खा लेंगे, डाँट सहलेंगे, सारा संसार छोड़ देंगे किन्तु आपको नहीं छोड़ेंगे। हम तो आजसे आपके मित्र हैं, आप हमारे सर्वस्व हैं। क्या आप हमें अपने घर ले चलेंगे? हे मित्र! अब तो आपके अतिरिक्त हमें कुछ नहीं अच्छा लगता है।

कोऊ बाल बोले लाल अब ना तजेंगे तुम्हें
कोऊ कहें यार सँग ते तौ नहिं टारौगे।
कोऊ कहें मीत प्रीतिकरि मिलि रहिहैं सदा

कोऊ कहें श्याम कबौं रोष तौं न धारौगे॥
रसिक बिहारी कहें कोऊ तौ बनैगी बात
जो पै कहूँकाहू कुछ दोष ना निहारोगे॥

(रामरसायन)

प्रेमप्रिय रघुनन्दनने कोमल, मधुर और सुन्दर वाणी कहकर बालकोंको विदा कर दिया। यद्यपि उनकी इच्छा प्रभुसे अलग होने की नहीं थी। श्रीरामजीको छोड़कर कौन मन्दभाग्य जाना चाहेगा।

कहि बातें मृदु मधुर सुहाईं।
किए बिदा बालक बरिआईं॥

श्रीराम-लक्ष्मण नगर दर्शन करके लोगोंको सनाथ करके डरते-डरते श्रीगुरुदेवके निकट आये। गुरुचरणकमलोंमें विनम्र प्रणाम करके उनकी आज्ञा प्राप्त करके बैठ गये।

सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ।
गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ॥

उत्तम शिष्य उठना, बैठना, भोजन, शयन प्रत्येक कार्य गुरु आज्ञासे ही करता है। सन्ध्याकालकी सन्ध्याका समय जानकर गुरुदेवने सन्ध्या करनेकी आज्ञा दी। आज्ञा प्राप्त करके सभीने सन्ध्यावन्दन किया।

निसि प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा।
सबहीं संध्याबंदनु कीन्हा॥

प्रत्येक गुरुको शिष्योंको सन्ध्या करनेका उपदेश करना चाहिये और उन्हें सन्ध्योपासनामें प्रवृत्त करना चाहिये। अपने अपने अधिकारानुसार सन्ध्या सबको करनी चाहिए। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामजी सन्ध्या नित्य करते हैं। इसके पश्चात् कथा-वार्ता होने लगी। तदनन्तर श्रीविश्वामित्रजीने शयन किया। श्रीराम-लक्ष्मण उनका पाद-संवाहन करने लगे। गुरुदेवके बार-बार आज्ञा देनेपर श्रीरामजीने शयन किया। श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामजीके श्रीचरणोंकी सेवा करने लगे। जीवाचार्य श्रीलक्ष्मणकी बड़ी भावपूर्ण सेवा है। चार बातें कहीं हैं। हृदयमें चरणोंको लगाये हैं मानो यह कह रहे हैं कि मेरे हृदयाराध्य तो ये श्रीचरण ही हैं। दूसरी बात—'सभय' अर्थात् डरते-डरते सेवा कर रहे हैं कि इतने सुकोमल श्रीचरण हैं मेरे हाथोंसे कहीं कष्ट न हो जाय। तीसरी बात—'सप्रेम' अर्थात् यह व्यावहारिक सेवा नहीं है। चौथी बात—***'परम सचु पाएँ'***—परमानन्द प्राप्त कर रहे हैं। बड़ी प्रसन्नता है कि श्रीअयोध्याजीमें इस सेवामें और लोग भी भाग लेते हैं, यहाँ तो सम्पूर्ण सेवाका आनन्द मुझ भाग्यवान्‌को ही मिल रहा है।

चापत चरन लखनु उर लाएँ।
सभय सप्रेम परम सचु पाएँ॥

श्रीरामजीके बार बार आज्ञा प्रदान करने पर पौढ़ गये। सेवाधर्मके आचार्यने समस्त संसारको अपने आचरणके द्वारा सेवाधर्मका उपदेश दिया है। उठनेमें विपरीत क्रम है। पहले श्रीलक्ष्मणजी उठे तदनन्तर श्रीरामजी उठे उसके पश्चात् गुरुदेव उठे। यह भी उपदेश है कि सेवकको स्वामीके पहले उठना चाहिये। स्वामीकी सेवा स्नान करके ही करनी चाहिये।

उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥

दोनों भाई प्रातःकालीन कृत्यसे-सन्ध्योपासनादि कर्मसे निवृत्त होकर गुरुदेवसे आज्ञा लेकर गुरुदेवकी पूजाके लिये पुष्प लेने हेतु चले। श्रीजनककी पुष्पवाटिकाका बहुत सुन्दर वर्णन है।

समय जानि गुरु आयसु पाई।
लेन प्रसून चले दोउ भाई॥

भूप बागु बर देखेउ जाई।
जहँ बसंत रितु रही लोभाई॥

वसन्त ऋतु उपलक्षण है—प्रिया प्रियतमका आज प्रथम सम्मिलन है। इस रसमयी लीलाका दर्शन करनेके लिए शरद् ऋतुमें ही समस्त ऋतुओंका समावेश हो गया है।

इस वाटिकामें केवल पाँच पक्षियोंका वर्णन है। चातक, कोकिल, कीर, चकोर और मोर। भक्त भी पाँच प्रकारके होते हैं —आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, ज्ञानी और प्रेमी। त्रैलोक्यके समस्त भक्तोंका इन्हीं पाँचोंमें अन्तर्भाव है। भाव यह है—आज श्रीराम और श्रीसीताजीका—अनादि दम्पतिका लीला-क्षेत्रमें प्रथम सरस मिलन है। इस लीलाका दर्शन करनेके लिये लोक लोकान्तरके भक्त पक्षियोंके रूपमें आ गये हैं। आर्त आदि चार भक्त मुखसे बात भी करते हैं; परन्तु प्रेमीके पास बोलनेकी शक्ति ही नहीं है। प्रियतमके स्मरणमें उसका सतत कण्ठावरोध रहता है। प्रेमी तो नाच-नाचकर ही अपने प्रियतमको रिझा लेता है।

चातक कोकिल कीर चकोरा।
कूजत बिहग नटत कल मोरा॥

श्रीवृन्दावनधाममें ठाकुरजीकी रासलीलाका दर्शन करने के लए सब भक्त गोपी बनकर आते हैं। यहाँ वाटिका है अत: सब भक्त पक्षीके रूपमें आये हैं। श्रीवृन्दावनकी रासलीलामें और श्रीजनकपुरकी फुलवारी-लीलामें बहुत साम्य है। इसका किसी रसिक सन्तसे श्रवण करना चाहिये। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम मालियोंसे पूछकर प्रसन्न होकर तुलसीदल और पुष्प लेने लगे।

चहुँ दिसि चितइ पूँछि मालीगन।
लगे लेन दल फूल मुदित मन॥

उसी समय माता श्रीसुनयनाजीकी आज्ञासे गिरिजा पूजनके लिये भगवती भास्वती मिथिलेश-नन्दिनी श्रीसीताजी पुष्पवाटिकामें पधार गयीं। एक सखी पुष्पवाटिकाका निरीक्षण करनेके लिये कि यहाँ कोई पुरुष तो नहीं आया है पुष्पवाटिकामें देखने गयी। उसी समय उसने श्रीराम-लक्ष्मणका मनोहर दर्शन किया। दर्शन करते ही उसमें प्रेमरसका सञ्चार हो गया। उसका जन्म-जन्मान्तरका प्रेम जागृत हो गया। वह किसी प्रकार गिरते-पड़ते श्रीसीताजीके पास आयी। उसकी आँखोंसे प्रेमाश्रु बह रहे थे, शरीर रोमाञ्चकण्टकित था। सखियाँ पूछती हैं —हे सखि! तुम्हारी प्रसन्नताका क्या कारण है? उसने स्खलिताक्षरोंमें कहा—

देखन बागु कुअँर दुइ आए।
बय किसोर सब भाँति सुहाए॥
स्याम गौर किमि कहौं बखानी।
गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

दूसरी सखी ने कहा—हे राजकिशोरीजी! मैं समझ गयी ये वही राजकुमार हैं, जो कल श्रीविश्वामित्रके साथ आये हैं। जिन्होंने अपनी रूप-माधुरीसे जनकपुरके समस्त नर-नारियोंको अपने वशमें कर लिया है। यत्र-तत्र-सर्वत्र सबलोग उन्हींकी शोभाका वर्णन कर रहे हैं। उन्हें अवश्य देखना चाहिये, वे दर्शनीय हैं।

बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू।
अवसि देखिअहिं देखन जोगू॥

इस सखीकी बात श्रीसीताजीको बहुत अच्छी लगी। श्रीरामजीके दर्शन करनेके लिये उनके नेत्र अकुला उठे।

तासु बचन अति सियहि सोहाने।
दरस लागि लोचन अकुलाने॥

बानी नेह सानी सुख दानी मन मानी बहु,
प्रीति सरसानी सुनि रूपकी निकाईको।
संगलै सहेली अलबेली जो नवेली सबै,
देखन चली हैं घनश्याम रघुराईको॥
जनक दुलारी सुकुमारी मोद भारी हिये
रसिक बिहारी सो निहारी चहुँ घाईको।
निरखत झाँकी छबि बाँकी देह थाकी सिया
प्रेम मद छाकी लखि लालकी लुनाईको॥

उसी समय श्रीसीताजीको देवर्षि नारदजीका वचन स्मरण आ गया—श्रीनारदजीने कहा था कि मैं श्रीरामजीकी भामिनी बनूँगी—वे मेरे प्राणप्रिय पति होंगे।

सुन्दरी सुरी औ नरी किन्नरी अनूप सदा
इनकी सुतीय सबै रहिहैं अनुगामिनी।
देव द्विज वृन्द सन्त सुख सरसैहैं भक्ति
भुक्ति मुक्ति पैहैं गुण गैहैं दिन यामिनी॥
रसिक बिहारी हीय मोद उमगैहैं यश
प्रभुता बढ़ैहैं औ कहिहैं रामभामिनी।
धर्म निरबैहैं पतिव्रतहिं दिढैहैं सत्य
कन्त प्रिय हैहैं तिहुँ लोकन की स्वामिनी॥
सुनि भूपति नारद वचन बोले हिय हुलसाय।
सुखी रहे सन्तत सुता मुनि तव कृपा प्रभाव॥

(राम रसायन)

श्रीनारदजीके इस वचनका स्मरण करके श्रीसीताजीके मनमें पुनीत प्रीति समुत्पन्न हो गयी।

सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत॥

जब श्रीसीताजी श्रीरामजीके दर्शनके लिये चलीं तो उनके आभूषणोंकी ध्वनिसे आकर्षित होकर श्रीरामजीने कहा—हे लक्ष्मण! मानो कामदेवने विश्वके विजयका सङ्कल्प करके दुन्दुभि ध्वनि की है इतना कहकर जब श्रीसीताजीकी ओर देखा तब श्रीरामजी निमेषोन्मेष वर्जित अपलक नेत्रोंसे चकोरकी तरह श्रीसीताजीका मुखचन्द्र देखने लगे। उनके नेत्र स्थिर हो गये। गोस्वामीजी बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा कर रहे हैं—श्रीजनकजीके पूर्व पुरुष महाराज निमि थे। उन्होंने देवताओंसे वरदान माँगा था—'**मा भून्मे देहबन्धनम्**' अतः उन्हें प्राणीमात्रके पलकोंपर निवास दिया गया। इसीलिये 'निमेष' कहते हैं। श्रीसीताजी निमि कुलकी पुत्री हैं और श्रीरामजी जामाता हैं। दोनों आज परस्पर एक दूसरेका प्रेम पुरस्सर अवलोकन कर रहे हैं। एतावता निमि सङ्कुचित हो गये। इसलिये नेत्र अचञ्चल हो गये। अपनी पुत्री और जामाताका स्नेहिलभाव नहीं देखना चाहिये। परन्तु यह केवल उत्प्रेक्षा मात्र है।

भए बिलोचन चारु अचंचल।
मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥

नित्यकिशोरी श्रीमिथिलेशनन्दिनीकी दिव्य शोभाका वर्णन करते हुये श्रीरामजीने श्रीलक्ष्मणसे कहा।

बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि।

इस पङ्क्तिका '***सुचि मन***' शब्द श्रीराम और लक्ष्मण दोनोंका ही विशेषण है, '**काकाक्षिगोलकन्याय**' से। लक्ष्मणजीका मन श्रीरामजीके प्रति तो पवित्र ही है, श्रीसीताजीके प्रति भी उनका आज मातृभाव निश्चित हो गया।

महाकवि जयदेवने '**प्रसन्नराघवम्**' में लिखा है—श्रीसीताजीने श्रीलक्ष्मणको देखकर कहा कि हे सखि! यह गौर वर्णका कुमार कौन है? इसके नेत्र विकार रहित हैं। इसको देखकर मेरा चित्त जैसे अपने वात्सल्यभाजन अनुज

पुत्रादिमें होता है उसी प्रकार स्नेहसे प्रक्षालित हो रहा है। हे सखि! इस कुमारको देखकर मुझे उर्मिलाका स्मरण हो रहा है अर्थात् यह उसके योग्य वर है। इस प्रकार श्रीसीताने अपने मनमें श्रीलक्ष्मणको अपना पुत्र और उर्मिलाका पति निश्चय कर लिया।

हला! कोऽयं कनकवर्णः शिखण्डिपिच्छ-मण्डितकर्णपूरो मुग्धत्वविमुक्तलोचनविकारः कुमारो दृश्यते? इमं पश्यन्त्या मम निज वत्स इव वात्सल्य-प्रक्षालितं हृदयं वर्त्तते। हला! इमं कुमारं विलोकयन्त्या मम वत्सोर्मिला चित्तमारोहति। (प्रसन्नराघवम्)।

श्रीलक्ष्मणजीने भी अपने मनमें कहा—ये कौन हैं? इनमें मेरी चित्तवृत्ति माता सुमित्राकी भाँति बहुत समयतक प्रवृत्ति रहती है।

अये! केयं? अस्यां सुमित्रायामिव मे सुचिरप्रवृत्ता चित्तवृत्तिः।

माता पुत्रका भाव प्रथम दर्शनमें ही सुदृढ़ हो गया।

इस प्रकार श्रीलक्ष्मणजी *'शुचि मन'* हैं। श्रीरामजी शुचि मनसे—पवित्र मनसे श्रीलक्ष्मणसे कहते हैं—हे सुमित्रानन्दवर्द्धन! रघुवंशियोंका सहज स्वभाव है कि उनका मन कुमार्गपर कभी नहीं चलता है। मुझे अपने मनपर पूर्ण विश्वास है कि उसने स्वप्नमें भी परस्त्रीको नहीं देखा। इसका आशय यह है कि जिन्हें देखकर मेरा मन अनुरक्त हो गया है वे मेरी ही पत्नी हैं। इनके उपर किसी अन्यका अधिकार नहीं है। यह पुष्पवाटिकाके सरस प्रसङ्गमें श्रीरामजीका शुचि मनत्व है।

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ।
मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी।
जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी॥

इसके बाद श्रीरामजीने श्रीलक्ष्मणको दो पङ्क्तियोंमें उपदेश दिया है। पुष्पवाटिकामें दिया हुआ श्रीरामजीका यह उपदेश भविष्यमें श्रीरामराज्यकी आधारभित्ति हो जायगा।

इसके पश्चात् श्रीकिशोरीजीका श्रीरामदर्शन करना लिखते हैं।

देखि रूप लोचन ललचाने।
हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥
थके नयन रघुपति छबि देखें।
पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें॥
अधिक सनेहँ देह भै भोरी।
सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥

पहले दर्शनमें श्रीरामजीको चकोर कहा था और सीताजीके मुखको चन्द्रमा। सम्प्रति श्रीमैथिली चकोरी हैं और श्रीरामजी चन्द्रमा। भाव यह है कि दोनोंका स्नेह समान है, एकाङ्गी नहीं है, *'परस्पर दोउ चकोर दोउ चन्दा'* परन्तु एक अन्तर ध्यान देने योग्य है—श्रीरामचन्द्रके मुखको शरद् ऋतुका चन्द्रमा कहा है।

'सरद ससिहि जनु चितव चकोरी' और श्रीसीताजीके मुखको केवल चन्द्रमा कहा है *'सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।'* इसका यह आशय नहीं है कि श्रीसीताजीकी अपेक्षा श्रीरामजी अधिक सुन्दर हैं। इस अन्तरमें भारतीय ललनाका महत्त्व सन्निहित है। श्रीसीताजी अपनी सखियोंसे भी अपना मनोभाव छिपाती हैं। श्रीरामजी अपने अनुजसे भी अपना मनोभाव व्यक्त करते हैं। श्रीसीताजी अपनी मातासे डर रही हैं *'भयउ बिलंबु मातु भय मानी'।* श्रीरामजीने पितृस्थानापन्न श्रीविश्वामित्रजीसे निर्भयतापूर्वक सब

बात कह दी। श्रीसीताजीने प्रार्थना करके पार्वतीजीसे अपनी अभिलाषाको मुखसे नहीं प्रगट किया ***'कीन्हेउँ प्रगट न कारण तेहीं'।*** श्रीरामजीने अपने गुरुदेवसे समस्त वृत्त निवेदन कर दिया।

राम कहा सब कौसिक पाहीं।

आशय यह है कि श्रीरामजीका मुख शरद् ऋतुका निरभ्र चन्द्रमा है, वहाँ मेघका व्यवधान नहीं है। इसके विपरीत भारतीय संस्कृतिकी आराध्या ललनाशिरोमणि श्रीसीताजीके मुखचन्द्रपर सङ्कोचके मेघका, लज्जाके मेघका, भयके मेघका और मनोभावके छिपानेके मेघका आवरण है। ये आवरण स्त्रियोंके आभूषण हैं। शशि और शरद्-शशिका अन्तर करके मर्यादावादी महाकविने श्रीसीताजीके मङ्गलमय चरित्रका उत्कर्ष प्रकट कर दिया है।

श्रीसीताजीने अपलक—एकटक श्रीरामजीको निहारकर नेत्रोंके मार्गसे भगवान्‌को हृदयमें लाकर पलक कपाट बन्द कर लिया। वृन्दावनके भक्तलोग एक दोहा कहते हैं—

आओ प्यारे मोहना पलक ढाँपि लेउँ तोहिं।
ना मैं देखूँ और को ना देखन देउँ तोहिं॥

इसके पश्चात् बहुत मनोरम प्रसङ्ग है—सरकार लताभवनसे प्रकट हो गये। ऐसा प्रतीत होता है मानो दो निर्मल चन्द्रमा मेघके आवरणको अलग करके निकले हों। यह पुष्पवाटिकाका चन्द्रोदय है। वृन्दावनकी रासलीलामें भी चन्द्रोदय है।

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं
प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्
प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः॥

(श्रीमद्भागवत १०। २९। २)

वहाँ प्राकृत चन्द्रोदय है, यहाँ अप्राकृत चन्द्रोदय है। वहाँ सकलङ्क चन्द्रमाका उदय है, यहाँ निर्मल निष्कलङ्क चन्द्रमाका उदय है। वहाँ एक चन्द्रमाका उदय है, यहाँ दो चन्द्रमाका उदय है। वहाँ रात्रिमें चन्द्रोदय है, जो स्वाभाविक है, यहाँ प्रातःकालकी वेलामें चन्द्रोदय है, जो विशेष है।

लताभवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ॥

इस प्रसङ्गमें सरकारके स्वरूप-सौन्दर्यका अतिशय मनोहर वर्णन है। इस रूप वर्णनमें कई विशेषतायें हैं, जो अन्यत्र नहीं हैं। जैसे (क) ठाकुरजीने मयूरपङ्ख धारण किया है।

मोर पंख सिर सोहत नीके।

मैंने प्रसङ्गके आरम्भमें निवेदन किया था कि प्रेमी भक्त मयूरके रूपमें नृत्य कर रहे हैं। नृत्यके समय उनका पङ्ख गिर गया, प्रभु भावविभोर हो गये। श्रीलक्ष्मणने लताकी ओटमें ले जाकर अपने स्वामीका शृङ्गार किया, उस मोर पङ्खको रुचिर चौतनीमें लगा दिया।

(ख) दूसरी विशेषता इस सौन्दर्य वर्णनमें यह है कि श्रीरामजीके मस्तकपर 'श्रम विन्दु' है।

भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए।

(ग) तीसरी विशेषता है कि सरकारके करकमलमें सुमनका दोना है।

सुमन समेत बाम कर दोना।
सावँर कुअँर सखी सुठि लोना।

श्रीकिशोरीजीने सरकारकी इस मनोहारिणी शोभाको अच्छी तरह देखा—जी भरकर देखा—चरणोंसे मस्तकपर्यन्त एक-एक अङ्गको भलीभाँति निहारा ***'नख सिख देखि राम कै सोभा'।*** शोभा देखकर लौट पड़ीं। परन्तु मन नहीं भरा, अब पुनः लौटें कैसे? तब स्नेहमयी जनकदुलारी मृग, पक्षी और वृक्षोंको देखनेके व्याजसे बारम्बार लौट-

लौटकर अपने प्राणप्रियतम घनश्याम रामकी छविका अवलोकन करती हैं।

देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि॥

अन्तमें विवश होकर श्यामलमूर्तिको हृदयमें रखकर प्रस्थान कर रही हैं।

जानि कठिन सिवचाप बिसूरति।
चली राखि उर स्यामल मूरति॥

प्रभुने भी जब श्रीसीताको जाते हुए जाना तब अपने सुन्दर चित्तपटलपर परम प्रेमकी कोमल स्याही बनाकर उन्हें चित्राङ्कन कर लिया।

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही।
चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही॥

श्रीसीताजी गिरिजापूजन करके उनका मङ्गलमय आशीर्वाद प्राप्त करके, प्रसन्नतापूर्वक माताके पास चली गयीं।

इधर श्रीरामजी अनुजके साथ श्रीविश्वामित्रके पास आये। गुरुदेवने पूछा—हे रघुनन्दन! इतना विलम्ब क्यों हो गया? श्रीरामजीने समस्त वृत्त निवेदन कर दिया—हे स्वामिन्! मैं पुष्पचयन कर रहा था उसी समय जनकाधिराजतनया वहाँ आ गयीं। उन्हें देखकर मेरा मन अनुरक्त हो गया, इसीलिये विलम्ब हो गया

राम कहा सबु कौसिक पाहीं।
सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं॥

पुष्प प्राप्त करके महर्षिने देवार्चन किया। तदनन्तर दोनों भाइयोंको आशीर्वाद दिया।

सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे।
रामु लखनु सुनि भए सुखारे॥

इस प्रसङ्गसे शिक्षा लेनी चाहिये कि अपने गुरुदेवसे कुछ छिपाना नहीं चाहिये। उनसे छल कपट भी नहीं करना चाहिये। श्रीरामजीने सब कुछ निवेदन कर दिया, परिणामस्वरूप उन्हें सफलता मिली। इस प्रसङ्गमें सन्तोंके लिये भी शिक्षा है—अपने बलसे अभिमानपूर्वक आशीर्वाद नहीं देना चाहिये। श्रीविश्वामित्रकी तरह सिद्ध सन्तने देवार्चन करके आशीर्वाद दिया।

सायङ्काल गुरुदेवसे आज्ञा लेकर दोनों भाई सन्ध्या करनेके लिये चले। सन्ध्यावन्दनके पश्चात् पूर्व दिशामें चन्द्रोदय हो गया। श्रीसीताजीके मुखचन्द्रका स्मरण हो गया, सुख मिला। फिर कहते हैं—यह सीताजीके मुखकी भाँति नहीं है। इस चन्द्रमामें अनेकों दोष हैं। श्रीसीताजीका मुख सर्वथा निर्दोष है। एतावता समता करनेमें दोष है।

तू तो है प्रकाशमान केवल जहान ही में,
वाकी ज्योति चौदहों भुवन में जगति है।
तेरी चाँदनी सो चौगुनी चमकदार वाकी,
चन्द्रिका त्रिलोक अन्धकारको ठगति है॥
तेरी गति शून्य नभ मण्डल ही लों किन्तु,
जन मानस गगन मध्य वाकी बड़ी गति है।
बिन्दु कवि सीताके मुखारविन्द सागरमें,
इन्दु तेरी शोभा एक बिन्दु सी लगति है॥

बैदेही मुख पटतर दीन्हें।
होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हे॥

रात्रि अधिक व्यतीत हो गयी है, यह जानकर गुरुदेवके पास चले।

बिगत निसा रघुनायक जागे।

निशा तीन प्रहरकी होती है। इसीलिये रात्रिका एक नाम 'त्रियामा' भी है। निशा व्यतीत होनेपर सज्जन लोग जगकर उपासना करते हैं।

रात्रिके प्रथम प्रहरमें सभी जगते हैं, दूसरे

प्रहरमें भोगी जगते हैं, तीसरे प्रहरमें चोर आदि दुष्ट कर्मी जगते हैं और चौथे प्रहरमें निशा व्यतीत होनेपर योगीलोग जगते हैं।

पहले पहरा सब कोइ जागै दूसरे जागै भोगी।
तिसरे पहरा चोरवा जागै चौथे जागैं योगी॥

श्रीरामजीने ब्रह्ममुहूर्तमें उठकर श्रीलक्ष्मणको देखा। उनका तो नियम है कि वह स्वामीसे पहले उठ जाते हैं। श्रीरघुनन्दनने कहा—हे लक्ष्मण! देखो, अरुणोदय हो गया। अरुणोदय सूर्योदयसे चार घड़ी पूर्व होता है। इस समय श्रीलक्ष्मणने अपने बोलनेका सुन्दर अवसर समझा—आज प्रभुको धनुष तोड़ना है, एतावता अरुणोदयके व्याजसे प्रभुके प्रतापका वर्णन करना चाहिये।

बोले लखनु जोरि जुग पानी।
प्रभु प्रभाउ सूचक मृदु बानी॥

श्रीलक्ष्मणने कहा—हे वीरेन्द्र-मुकुटमणे! अरुणोदय होते ही कुमुद मुरझा गये, तारागणोंका प्रकाश मलीन हो गया। इसी प्रकार आपका आगमन सुनकर राजालोग बलहीन हो गये।

अरुनोदय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन॥

श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामजीके प्रतापरूपी रविका वर्णन करते हैं—हे प्रभो! आपके भुजाओंके बलकी महिमा उदयाचलकी घाटी है, जो सूर्यरूप प्रतापको प्रकट करेगी। सूर्य प्रातःकाल उदय होते हैं और आज प्रातःकालसे ही धनुष यज्ञ है, आज ही धनुष टूटेगा।

तब भुज बल महिमा उदघाटी।
प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी॥

नित्यकर्मसे निवृत्त होकर दोनों भ्राता महर्षि विश्वामित्रके चरणोंमें प्रणाम करके बैठे ही थे कि उसी समय श्रीजनकजीके द्वारा प्रेषित श्रीसतानन्दजी पधारे। उन्होंने श्रीजनककी प्रार्थना—स्वयंवरमें चलनेकी प्रार्थना सुनायी। श्रीविश्वामित्रजी प्रसन्न हो गये। दोनों भाइयोंको बुलाया। दोनों भाई आकर श्रीसतानन्दजीको प्रणाम करके अपने गुरुदेवके पास बैठ गये।

सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहिं जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बोलाइ॥

(नवाह्नपारायण, दूसरा विश्राम)

श्रीविश्वामित्रने कहा—चलो सीता स्वयंवर देख आवें। देखें ईश्वर किसको बड़ाई देते हैं। सुनकर श्रीलक्ष्मणने तत्काल उत्तर दिया—बड़ाई प्राप्त करनेवालेको तो आपने पहले ही आशीर्वाद दे दिया है। एतावता जिसपर आपकी कृपा होगी वही कीर्ति प्राप्त करेगा।

सीय स्वयंबरु देखिअ जाई।
ईसु काहि धौं देइ बड़ाई॥
लखन कहा जस भाजनु सोई।
नाथ कृपा तव जापर होई॥

महर्षि विश्वामित्रजीके साथ श्रीराम लक्ष्मण धनुषयज्ञशाला देखने चले। उनके साथमें अनेक महात्मा हैं।

पुनि मुनिबृंद समेत कृपाला।
देखन चले धनुष मखसाला॥

श्रीठाकुरजीका आगमन सुनकर आबाल-वनितावृद्ध सब आ गये। भारी भीड़ देखकर श्रीजनकने अपने विश्वस्त सेवकोंको आदेश दिया कि सबको उचित आसन दो। सेवकोंने कोमल और विनीत वचन कहकर सबको यथास्थानपर बैठा दिया।

कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह बैठारे नर नारि।

उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि॥

श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाई राजसमाजमें ऐसे सुशोभित हो रहे हैं जैसे तारागणोंके बीचमें युगल पूर्णचन्द्र विराजमान हों।

राज समाज बिराजत रूरे।
उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे॥

उस समय जिनकी जिस प्रकारकी भावना थी, उन्होंने अपने भावनाके अनुकूल ही प्रभुकी मङ्गलमयी मूर्तिका दर्शन किया।

जिन्ह कें रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

रणधीर राजाओंने वीररसके रूपमें देखा। कुटिल राजागण प्रभुको देखकर डर गये, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो अति भयानक मूर्ति हो। जो राक्षस छलसे राजाके वेषमें बैठे थे उन्होंने प्रभुको साक्षात् कालके रूपमें देखा। स्त्रियाँ प्रसन्न होकर अपनी-अपनी रुचिके अनुसार दर्शन कर रही हैं। विद्वानोंने विराट् स्वरूपमें दर्शन किया। योगियोंने परमतत्त्वके रूपमें देखा। श्रीजनकके कुटुम्बियोंने अपने सगे सम्बन्धीके रूपमें देखा।

अपनी रानियोंके सहित श्रीजनकने शिशुके रूपमें देखा। भाव यह है कि अब उनके मनमें श्रीरामजीका ब्रह्मरूप और वीररूप नहीं रहा। इसीलिये श्रीरामकी उपस्थितिमें भी आगे उनके मुखसे निकलेगा—*'बीर बिहीन मही मैं जानी।'*

सहित बिदेह बिलोकहिं रानी।
सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥

श्रीहरिके भक्तोंने श्रीठाकुरजीको अपने-अपने इष्टदेवके रूपमें—श्रीनारायण, वामन, वासुदेव और नृसिंहादिके रूपमें देखा। श्रीसीताजी जिस भावसे देख रही हैं वह वर्णनातीत है। इसी प्रकारका वर्णन जब नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र कंसकी रङ्गशालामें पधारे, तब भी है।

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः॥

(श्रीमद्भागवत १०। ४३। १७)

इस प्रसङ्गका समापन करते हुये श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं—जिसका जिस प्रकारका भाव था उसने श्रीरामजीको उसी भावके अनुसार देखा।

ऐहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ।
तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ॥

इस प्रसङ्गके आरम्भ और उपसंहार दोनोंमें स्पष्ट किया गया है कि सरकारका दर्शन भावनाके अनुसार होता है। भक्तोंकी भावनाके अनुसार ही प्रभु स्वरूप धारण करते हैं। श्रीब्रह्माजी भगवान्‌की स्तुति करते हुए कहते हैं—हे नाथ! आपको प्राप्त करनेका मार्ग केवल आपकी मङ्गलमयी कथाका श्रवण ही है। आप मनुष्योंके हृदयकमलमें विराजते हैं; परन्तु वासनामलीन हृदयमें नहीं रहते हैं। आप तो परिशुद्ध हृदयकमलमें निवास करते हैं। प्रश्न है—हृदय परिशुद्ध कैसे हो? इसका उत्तर है भावभक्तिके द्वारा। अर्थात् भावभक्तिके द्वारा परिशुद्ध हृदयकमलमें आप विराजते हो। हे महनीयकीर्ते! आपके भीगे हुये भक्तलोग जिस-जिस भावनासे आपका चिन्तन करते हैं, उन भक्तजनोंपर अनुकम्पा करनेके लिये आप वही-वही रूप धारण करते हैं। भक्त यदि चाहता है कि आप हमें रोते हुये दर्शन दें तो आप रुदन करने लगते हैं। आपका प्रत्येक चरित्र और स्वरूप भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये होता है।

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद् यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति,
तद् तद्वपुः प्रणयसे तदनुग्रहाय॥

(श्रीमद्भागवत ३। ९। ११)

इस प्रसङ्गमें एक बहुत सुन्दर दोहा है।

राजत राज समाज महुँ कोसल राज किसोर।
सुंदर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर॥

कोसलराजकिशोर विलक्षण चोर हैं। चोरी हो जानेपर व्यक्तिको कष्ट होता है; परन्तु इस चोरीमें धनीको अतिशय आनन्द मिलता है। दूसरा भाव—चोरकी प्रशस्ति यह है कि ***'आँखोंका काजल चुरा ले'*** श्रीरामजी तो उससे कहीं बढ़कर हैं, ये तो काजलकी कौन कहे आँखोंको ही चुरा लेते हैं। तीसरा भाव यह है—चोर अपनेको छिपानेकी कोशिश करता है और यह तो प्रकट होनेका प्रयत्न करते हैं। चौथा भाव यह है—चोर रातमें छिपकर चोरी करता है; परन्तु श्रीरामजी तो राजसमाजमें लाखोंके बीचमें बैठकर, आँखोंमें आँख डालकर चोरी करते हैं।

मन धन चोरत राघवा नयन नयन सों जोर।

श्रीजनकजी महाराज दोनों भाइयोंको देखकर परम प्रसन्न हो गये। श्रीविश्वामित्रजीके चरणोंमें प्रणाम करके उन्हें स्वयंवरकी रचना दिखा रहे हैं। श्रीविश्वामित्र रचनाविशेषज्ञ हैं, एतावता उनको रचना देखनेके लिये ही निमन्त्रित किया है। रचना देखकर महर्षिने कहा—हे राजन्! स्वयंवरकी रचना बहुत सुन्दर है। यह रचना इसलिये सुन्दर है कि इसके द्वारा आपकी अभिलाषा पूर्ण होगी—श्रीरामजी आपके अपने हो जायेंगे। महर्षिकी वाणी सुनकर राजा प्रमुदित हो गये और उनकी वाणीका गूढार्थ समझ करके उन्हें महासुखकी प्राप्ति हुई।

भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ।
राजाँ मुदित महासुख लहेऊ॥

सब मञ्चोंसे ऊँचा, सुन्दर, स्वच्छ और लम्बा चौड़ा एक मञ्च था। श्रीजनकने मुनिके साथ दोनों भाइयोंको उसपर बैठाया।

सब मंचन्ह तें मंचु एक सुंदर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल॥

यह मञ्च इनके लिये पहलेसे ही आरक्षित था। अन्य सब लोगोंको सेवकों, मन्त्रियों आदिने बैठाया था परन्तु इनको राजाने स्वयं ही आदरपूर्वक बैठाया।

इसके बाद साधु राजाओं और दुष्ट राजाओंका संवाद है। साधु राजाओंने कहा—तुमलोग मातासे—जगन्मातासे विवाह करनेकी इच्छा न करो। इन दोनोंको—श्रीसीतारामको माता-पिता समझकर नेत्र भरकर दर्शन कर लो।

सिख हमारि सुनि परम पुनीता।
जगदंबा जानहु जियँ सीता॥
जगत पिता रघुपतिहिं बिचारी।
भरि लोचन छबि लेहु निहारी॥

सुन्दर अवसर जानकर श्रीजनकने श्रीसीताजीको रङ्गभूमिमें आनेकी आज्ञा दी। सुन्दर और चतुर सखियाँ श्रीसीताजीको आदरपूर्वक लेकर चलीं।

जानि सुअवसर सीय तब पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखीं सुंदर सकल सादर चलीं लवाइ॥

जब श्रीसीताजी रङ्गभूमिमें पधारीं तब उनको देखकर सभी नर नारी मोहित हो गये।

रंगभूमि जब सिय पगु धारी।
देखि रूप मोहे नर नारी॥

इस चौपाईमें लोग प्रश्न करते हैं—उत्तरकाण्डमें एक चौपाई है—

मोह न नारि नारि कें रूपा।

पन्नगारि यह रीति अनूपा॥

(७। ११६)

जब स्त्रीके रूपको देखकर स्त्री मोहित नहीं होती है तब प्रस्तुत प्रसङ्गमें स्त्रियोंका मोहित होना कैसे लिखे? इस प्रश्नका उत्तर मनीषियोंने अपनी अपनी भङ्गीसे किया है। उन सबका लिखना यहाँ सम्भव नहीं है। अपने श्रीमहाराजजीके दो एक विचारोंका वर्णन करूँगा। उत्तरकाण्डके प्रसङ्गपर विचार करें। श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं—माया और भक्ति दोनों श्रीठाकुरजीकी स्त्रियाँ हैं।

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ।
नारि बर्ग जानइ सब कोऊ॥

(७। ११६)

इन दोनोंका परस्परमें सापत्न सम्बन्ध है। इन दोनों सपत्नियोंमें मायाका प्रभाव भक्तिपर नहीं पड़ता; क्योंकि दो सपत्नियोंमें प्रबल वही होती है, जो पतिप्राणा होती है। भक्ति पतिप्राणा है।

पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी।
माया खलु नर्तकी बिचारी॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया।
ताते तेहि डरपति अति माया॥

(७। ११६)

इस प्रकार माया और भक्ति दोनों नारियाँ तो हैं; परन्तु सपत्नी हैं। काकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे पन्नगारि! यह अनूप रीति है—एक नारी (सपत्नी) दूसरी नारी (सपत्नी) के रूपसे कभी मोहित नहीं होती है। प्रस्तुत प्रसङ्गमें श्रीसीताजीकी कोई सपत्नी नहीं है एतावता यह प्रश्न ही व्यर्थ है। यदि हठसे कोई प्रश्न करे तो उत्तर यह भी हो सकता है—कोई भी नियम होता है तो उसका अपवाद भी होता है, अतः अपवादस्वरूप श्रीजानकीजीको देखकर स्त्रियाँ भी मोहित हो गयीं। बालकाण्डमें विश्वमोहिनीके रूपको देखकर श्रीलक्ष्मीका विमोहित होना लिखा है।

बिस्वमोहिनी तासु कुमारी।
श्री बिमोह जिसु रूपु निहारी॥

(१। १३०)

किं वा—हमने लोकमें भी देखा है कि माता अपनी पुत्रीको और अग्रजा अपनी अनुजाको देखकर मुग्ध होती है, अतः श्रीजानकीजीको देखकर सब मोहित हो गये तो क्या आश्चर्य है? किं वा—अन्यत्र भी लेख है कि श्रीसीताजीको देखकर नर-नारी मोहित हो गये।

रूप-दीपिका निहारि मृग-मृगी नर-नारि
बिथके बिलोचन निमेषै बिसराइकै।

(श्रीगीतावलीजी १। ८४। ६)

यं यं विलोकते सीता स्वभावात् पुरुषं स्त्रियम्।
अमज्जतानन्दह्रदे स्वभाग्यं मन्यतेऽधिकम्॥

(सत्योपाख्यान २। २०)

श्रीसीताजी जब जयमाला लेकर रङ्गभूमिमें पधारीं तब सर्वत्र जय जयकार होने लगी, देवताओंने दुन्दुभियाँ बजायीं और पुष्पवर्षण किया तथा अप्सरायें नृत्य करने लगीं।

सीताजी चकितचित्त हैं; क्योंकि वे अपने चितचोर दशरथराजकिशोरका दर्शन करना चाहती हैं। देखनेके लिये जब नेत्रोंसे खोजने लगीं तब जिस-जिस राजाकी ओर दृष्टि गयी वह मोहवश हो गया। श्रीमैथिलीने जब महर्षिके पास विराजमान दोनों भाइयोंको देखा तब उनके नेत्र अपनी निधि पाकरके ललककर जा लगे—निमेषोन्मेषवर्जित अपलकनेत्रोंसे अपने प्राणाराध्यको निहारने लगीं;

परन्तु गुरुजनोंकी लज्जासे और बड़ा समाज देखकर सङ्कुचित होकर अपना मनोभाव छिपाकर नेत्रोंके मार्गसे अपने हृदयाराध्यको हृदयमें लाकर सखियोंकी ओर निहारने लगीं।

पानि सरोज सोह जयमाला।
अवचट चितए सकल भुआला॥
सीय चकित चित रामहि चाहा।
भए मोहबस सब नरनाहा॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई।
लगे ललकि लोचन निधि पाई॥
गुरुजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि॥

श्रीसीताजी और श्रीरामजीको देखकर मिथिलाके नरनारी अपने मनमें प्रार्थना करते हैं—हे ब्रह्मा! हमारे राजा जनककी जड़ता—मूर्खताको शीघ्र ही हर लो और हमारी ऐसी सुन्दर बुद्धि उन्हें दे दो कि बिना विचारके प्रणका परित्याग करके श्रीसीतारामका वैदिक लौकिक रीतिसे विवाह कर दें।

कोउ कहैं हित ह्वै एहि अवसर भूपहिं कोउ नहीं समुझावै।
काह करै नरनाह वृथा जिहिते सबके उर दाह बढावै॥
हैं करकोमल राघवके यह शंकर चाप कठोर लखावै।
क्यों रसिकेश गहैं मिथिलेश के हीय दयाहु को लेश न आवै॥
कोउ कहैं इत होत अनीति लखौ न अबै चलिये निज गेहू।
कोउ कहैं नृप बावरो है तब तो सब भाषत नाम विदेहू॥

(रामरसायन)

सबके मनमें केवल एक लालसा है कि साँवला वर श्रीमैथिलीके योग्य है।

एहिं लालसाँ मगन सब लोगू।
बरु साँवरो जानकी जोगू॥
सिया सोनेकी अँगूठी राम नीलम नगीना हैं।

उसी समय श्रीजनकजीकी आज्ञासे वन्दियोंने राजसमाजमें श्रीमिथिलेशके प्रणकी घोषणा कर दी।

सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा।
राज समाज आजु जोइ तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही।
बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही॥

श्रीहनुमन्नाटकमें स्वयं श्रीजनकजी अपने प्रणकी घोषणा करते हैं—हे क्षत्रिय राजाओ! मेरी प्रतिज्ञा सुनिये। इस शिव धनुषको, जिसपर रावणके बाहुबलकी परीक्षा हो चुकी है, जो झुका देगा, त्रिभुवन विजयलक्ष्मीके साथ-साथ श्रीसीताकी प्राप्ति उसे होगी।

शृणुत जनककल्पाः क्षत्रियाः शुल्कमेते
दशवदनभुजानां कुण्ठितायत्रशक्तिः।
नमयति धनुरैशं यस्तदारोपणेन
त्रिभुवनजयलक्ष्मीर्जानकी तस्य दाराः॥

(श्रीहनुमन्नाटक १। १८)

प्रण सुनते ही धनुष तोड़नेवालोंकी भीड़ बढ़ गयी। सब सोचते हैं हम पहले तोड़ेंगे।

तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठइ न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट बाहुबलु अधिकु अधिकु गरुआइ॥

परन्तु जो विचारवान् राजा थे वे धनुषके पास नहीं गये, वे तो पहले ही कह चुके हैं।

सीय बिआहबि राम गरब दूरि करि नृपन्ह के।
जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बाँकुरे॥

(१। २४५)

जब कोई भी राजा धनुषको टस-से-मस न कर सका तब अन्तमें दस हजार राजा एक ही बार उठाने लगे, परन्तु धनुषको डिगा नहीं सके।

भूप सहस दस एकहि बारा।

लगे उठावन टरइ न टारा॥

धनुष टूट जायगा तो किससे विवाह होगा? इस प्रश्नपर राजाओंने विचार ही नहीं किया; क्योंकि मूढ़ हैं—विवेकरहित हैं। किं वा—सत्योपाख्यानमें वर्णन है—सब राजाओंने पहले निश्चित कर लिया कि धनुष टूटनेपर सङ्ग्राम होगा, उसमें जो राजा सबको जीत लेगा वह श्रीसीतासे विवाह करेगा। अथवा कुछ लोग यह भी कहते हैं कि राजाओंने निश्चय कर लिया कि धनुष टूटनेपर स्वयंवर हो जायगा। श्रीसीताजी जिसको वरण करेंगी वह विवाह करेगा। अथवा कुछ लोग 'सहस' और 'दस' से दो राजाओंका ग्रहण करते हैं। सहसबाहु और दसकण्ठका उठाना कहते हैं। वे दोनों मनुष्य वेषमें हैं, अतः कविने भी उनका नाम स्पष्ट न लिखकर सङ्केतमात्र किया है। एक और प्रश्न किया जाता है कि दस हजार राजाओंने धनुषको किस प्रकार पकड़ा? इसका उत्तर यह है—यह दिव्य धनुष है इसमें घटने, बढ़ने, छोटा, बड़ा, हलका और भारी होनेकी शक्ति है। श्रीगीतावली रामायणमें लिखा है—जब श्रीरामजीने धनुषकी प्रदक्षिणा की तब यह धनुष सद्यः सहमकर अत्यन्त लघु हो गया जैसे कि जड़ीको देख करके महासर्प व्याकुलतापूर्वक सिकुड़ जाता है—लघु हो जाता है।

दाहिनो दियो पिनाकु, सहमि भयो मनाकु,
महाब्याल बिकल बिलोकि जनु जरी है।

(श्रीगीतावलीजी १। ९२। ३)

श्रीवामन भगवान्‌को यज्ञोपवीतके समय वनस्पति सोमने दण्ड दिया था। बलिकी यज्ञशालामें श्रीवामन भगवान् वही दण्ड आदि लेकर गये थे।

'छत्रं सदण्डं सजलं कमण्डलुं विवेश विभ्रद्धयमेधवाटम्'

बलिसे दान लेते समय एवं शरीर बढ़ाते समय भी दण्ड हाथमें था। अतः वह भी साथ-साथ बढ़ा था। आशय यह है कि भगवान्‌के अपनानेपर जड़ काष्ठका दण्ड भी बढ़ गया।

बड़ो गहे ते होत बड़ ज्यों बामन कर दंड।
श्रीप्रभु के सँग सों बढ़ो गयो अखिल ब्रह्मांड॥

(श्रीदोहावलीजी ५३२)

इसी प्रकार इस धनुषमें भी राजाओंके हाथ लगते गये और यह बढ़ता गया। इस प्रसङ्गकी दो चौपाइयाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

डगइ न संभु सरासनु कैसें।
कामी बचन सती मनु जैसें॥
सब नृप भए जोगु उपहासी।
जैसे बिनु बिराग संन्यासी॥

जैसे सतीका मन अचल है, उसी प्रकार धनुष भी अचल है। सती स्त्रीका मन अपने पतिमें रहता है, कामियोंके वचनोंका उसपर प्रभाव नहीं पड़ता, उसी प्रकार धनुष राजाओंके प्रयत्नपूर्वक उठानेपर भी नहीं उठा।

जेहि पिनाक बिनु नाक किए नृप, सबहि विषाद बढ़ायो।
सोइ प्रभु कर परसत टूट्यो, जनु हुतो पुरारि पढ़ायो॥

(श्रीगीतावलीजी १। ९३। २)

बाणस्य बाहुशिखरैः परिपीड्यमानं
नेदं धनुश्चलति किञ्चिदपीन्दुमौलेः।
कामातुरस्य वचसामिव संविधानै-
रभ्यर्थितं प्रकृतिचारुमनः सतीनाम्॥

(प्रसन्नराघवम् १। ५६)

दूसरी चौपाईका भाव यह है कि जिस प्रकार बिना वैराग्यका संन्यासी उपहास योग्य हो जाता है उसी प्रकार धनुष उठानेका प्रयत्न करनेवाले सब राजा उपहासके योग्य हो गये।

तब लगि योगी जगतगुरु जब लगि रहे निरास।
जब आशा मनमें जगी, जग गुरु योगी दास॥

जब कोई राजा धनुषको टस-से-मस नहीं कर सका—डिगा नहीं सका तब श्रीजनकजी बोले। इनके वचनको *'रोष जनु साने'* कहा है। इतने महान् ज्ञानीको क्रोध असम्भव है, इसलिये 'जनु' उत्प्रेक्षा की है। उत्प्रेक्षाका भाव यह है—श्रीजनकके मनमें क्रोध नहीं है, वास्तवमें परिताप है। श्रीजनकने कहा।

दीप दीप के भूपति नाना।
आए सुनि हम जो पनु ठाना॥

द्वीप-द्वीपके अनेक राजा मेरा प्रण सुनकर आये हैं। भाव यह है कि मैंने निमन्त्रण नहीं भेजा था, स्वयं ही आये हैं; परन्तु कोई धनुषको तिलभर भूमि भी न छुड़ा सका। अब कोई रुष्ट न हो, मैंने जान लिया कि पृथ्वी वीरोंसे विहीन हो गयी।

अब जनि कोउ माखै भट मानी।
बीर बिहीन मही मैं जानी॥

अब आप लोग यह आशा छोड़ दीजिये कि मैं अपनी पुत्रीका जयमाल स्वयंवर कराऊँगा। अपने-अपने घर पधारो। विधाताने मेरी पुत्रीका विवाह लिखा ही नहीं है। यदि मैं सीताके विवाहके लिये प्रण छोड़ दूँ तो मेरा सुकृत नष्ट हो जायगा। उसी सुकृतने मुझे सीता ऐसी पुत्री दी है।

जनक सुकृत मूरति बैदेही।
दसरथ सुकृत रामु धरे देही॥

(१। ३१०)

श्रीजनकने निर्णय कर लिया—मेरी पुत्री कुमारी भले ही रह जाय; परन्तु मैं प्रणका परित्याग नहीं करूँगा।

तजहु आस निज निज गृह जाहू।
लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥
सुकृत जाइ जौं पनु परिहरऊँ।
कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ॥

श्रीजनकके वचनोंको सुनकर समस्त नरनारी श्रीजानकीको देखकर दुःखी हो गये; परन्तु श्रीलक्ष्मणको क्रोध आ गया। एक पङ्क्तिमें क्रोधका स्वरूप दिखाया है—भौहें टेढी हो गयीं, ओष्ठ फड़कने लगे, नेत्र रक्त हो गये।

माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहें।
रदपट फरकत नयन रिसौंहें॥

श्रीलक्ष्मणका क्रोध अकारण नहीं है, सकारण है। अभी दो दिन पूर्व मेरे गुरुदेवने श्रीरामजीका वीरतापूर्ण परिचय दिया है।

रामु लखनु दोउ बंधुबर रूप सील बल धाम।
मख राखेउ सबु साखि जगु जिते असुर संग्राम॥

(१। २१६)

इस समाजमें वे सर्वसमर्थ रघुकुलशिरोमणि श्रीरामजी विद्यमान हैं। उन्होंने धनुषको तोड़नेका अभी किञ्चिन्मात्र भी प्रयास नहीं किया है। फिर श्रीजनकजीने यह कैसे कह दिया।

बीर बिहीन मही मैं जानी।

श्रीलक्ष्मणजीके क्रोधका प्रबल कारण यही है। आगे चलकर श्रीजनकजी भी अनुभव करेंगे *'जनक सकुचाने'*।

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई।
तेहिं समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी।
बिद्यमान रघुकुल मनि जानी॥

श्रीलक्ष्मणने कहा—श्रीजनकने तीन बातें कही हैं।

रहउ चढ़ाउब तोरब भाई।
तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई॥

अर्थात् कोई चढ़ा नहीं सका, कोई उठा नहीं सका और कोई तोड़ नहीं सका। मैं तीनोंका उत्तर देता हूँ। धनुषको उठानेकी चर्चा छोड़ें, मैं तो समस्त ब्रह्माण्डको गेंदकी भाँति उठा सकता हूँ और उसको कच्चे घड़ेकी भाँति फोड़ सकता हूँ।

जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं।
कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी।
सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी॥

'काचे घट जिमि' का भाव यह है कि कच्चा घड़ा फूटकर तुरन्त जुड़ भी जाता है अर्थात् मैं अपने स्वामीकी आज्ञासे इस ब्रह्माण्डको नष्ट भी कर सकता हूँ और सद्यः उसका निर्माण भी कर सकता हूँ। श्रीहनुमान्‌जीने बड़ी सशक्त वाणीमें इस भावका प्रतिपादन किया है।

सर्वांल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान्।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ५१। ४९)

चढ़ानेका उत्तर देते हैं—

कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं।
जोजन सत प्रमान लै धावौं॥

तोड़नेका उत्तर देते हैं—

तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ॥

श्रीलक्ष्मणजीके वचनोंकी प्रतिक्रियाका वर्णन चार पङ्क्तियोंमें है।

लखन सकोप बचन जे बोले।
डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सकल लोग सब भूप डेराने।
सिय हियँ हरषु जनकु सकुचाने॥
गुर रघुपति सब मुनि मन माहीं।
मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं॥
सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे।
प्रेम समेत निकट बैठारे॥

बड़ी महत्त्वपूर्ण पङ्क्तियाँ हैं। श्रीजनक सङ्कुचित हो गये—हा हन्त! मुझसे अपराध हो गया; महर्षि विश्वामित्रने तो इनका पूर्ण परिचय दिया था। परन्तु मैं तो श्रीरामचन्द्रजीके शिशु रूपका अनुसन्धान करने लगा था और इन्हें मात्र बालक समझकर सब भूल गया था। श्रीसीताजीके हर्षकी व्याख्या विलक्षण है। श्रीरामचन्द्रजीका तो वात्सल्यके आवेशमें कण्ठावरोध हो गया, अतः सङ्केतसे मना किया और स्नेहपूर्वक अपने पास बैठा लिया।

महर्षि विश्वामित्रने अभीतक धनुष तोड़नेकी आज्ञा नहीं दी थी। उसका कारण यह था कि वे नहीं चाहते थे कि मेरा राम धनुष तोड़नेके लिये सामान्य राजाओंकी भाँति राजाओंकी पङ्क्तिमें खड़ा हो। अब कोई नहीं है, श्रीराम स्वतन्त्ररूपसे जाकर धनुष तोड़ेंगे। दूसरा कारण यह था कि मेरे रामके लिये धनुष तोड़नेका प्रयोजन अभी नहीं तैयार हुआ था। अब तैयार हो गया। राजर्षि जनक अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ हैं; परन्तु पुत्रीके विवाह न होनेका परिताप तो उनके मनमें है ही। महर्षिने आज्ञा दी—हे रघुनन्दन! तुम्हें सीताके लिये धनुष नहीं तोड़ना है, विजयके लिये भी नहीं तोड़ना है और कमनीय कीर्तिके लिये भी नहीं तोड़ना है। हे मर्यादा पुरुषोत्तम! हे रामभद्र! तुम्हें तो श्रीजनकके परितापको नष्ट करनेके लिये तोड़ना है।

उठहु राम भंजहु भवचापा।
मेटहु तात जनक परितापा॥

हे रघुनन्दन! संसारमें यह मर्यादा स्थापित कर दो जो व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहता है—अटल रहता है, विचलित नहीं होता है उसकी प्रतिज्ञाको श्रीराम पूर्ण करते हैं और उसके सन्तापका भी अपनोदन करते हैं।

उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचनभृंग॥

मञ्चरूपी उदयाचल पर्वतपर बालसूर्यके रूपमें श्रीरामका समुदय हुआ। सन्तकमल विकसित हो गये और उनके नेत्रभ्रमर हर्षित हो गये। इसके पूर्व श्रीरामजीके आगमनको 'अरुणोदय' कह चुके हैं। ***'अरुनोदय सकुचे कुमुद'***। अब राजसमाजमें ***'बाल पतंग'*** का उदय हुआ है। जनकपुरमें एक सूर्य पहलेसे ही है।

जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा।
बचन किरन मुनि कमल बिकासा॥

(२। २७७)

सूर्य भी कभी-कभी बादलोंसे आच्छादित हो जाता है। सम्प्रति जनकका ज्ञानसूर्य इसी स्थितिमें है। एक सूर्य भविष्यमें भी आनेवाले हैं।

तेहि अवसर सुनि सिव धनु भंगा।
आयउ भृगुकुल कमल पतंगा॥

ये ग्रीष्मऋतुके अपराह्णकालीन सूर्य हैं और श्रीरामजी शरद्कालीन बाल सूर्य हैं। बालसूर्यके उदयकी लोग प्रतीक्षा करते हैं। सूर्यार्घ्यके द्वारा प्रतिबन्धक राक्षसोंका विनाश करके बालपतङ्गके उदयकी कामना करते हैं। समस्त सन्तलोग, जनकपुरके नर-नारी श्रीराम बालपतङ्गके उदयकी प्रतीक्षामें थे। महर्षि विश्वामित्रने यह कार्य कर दिया। श्रीरामजीने अनुरागके साथ श्रीविश्वामित्रके चरणोंमें वन्दना की और मुनियोंसे आज्ञा लेकर स्वाभाविक गतिसे चल रहे हैं—मत्त गजेन्द्रकी भाँति झूमते हुये चल रहे हैं।

गुरु पद बंदि सहित अनुरागा।
राम मुनिन्ह सन आयसु मागा॥
सहजहिं चले सकल जग स्वामी।
मत्त मंजु बर कुंजर गामी॥

इसके पूर्व जब प्रभु मञ्चपर खड़े हुये थे तब गोस्वामीजीने लिखा था—

ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ।
ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ॥

इनके उठनेमें, चलनेमें गाम्भीर्य है, धैर्य है इसके विपरीत राजाओंके उठने, चलनेके वर्णनपर ध्यान दें।

परिकर बाँधि उठे अकुलाई।
चले इष्टदेवन्ह सिर नाई॥

कितना अन्तर है।

जनकपुरके नर-नारियोंने अपने जीवनभरकी उपासनाका पुण्य समर्पित कर दिया और एकमात्र याचना उनकी यह है—

बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे।
जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥
तौ सिवधनु मृनाल की नाईं।
तोरहुँ रामु गनेस गोसाईं॥

श्रीसीताजीकी माता सुनयनाजीने श्रीरामजीको वात्सल्य प्रेमसे देखा तो उनके मनमें सन्देह हो गया कि ये परम सुकुमार बालक धनुष किस प्रकार तोड़ेंगे? उनकी चतुर सखीने अकाट्य तर्कके द्वारा श्रीरामके तेजका प्रतिपादन करके कहा—हे रानी! श्रीरामजी अवश्य धनुष तोड़ेंगे। तेजस्वीको कभी छोटा नहीं समझना चाहिये। सखीकी बात सुनकर माताजीको विश्वास हो

गया। *'सखी बचन सुनि भै परतीती।'* श्रीमिथिलेशनन्दिनी सीताजी श्रीरामचन्द्रके सौकुमार्यका अनुमान करके व्याकुल हो गयीं। वे श्रीशङ्कर, पार्वती, गणेश, सूर्य और भगवान्‌से प्रार्थना करती हैं कि धनुषके भारीपनको कम कर दीजिये।

देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर॥
मन अकुलानी सिया सुमिरि पिताको प्रण
अति सुकुमार घनश्याम राम जाने हैं।
निपट कठोर शम्भु चाप लखि भारी घनों
के ते भूप थाके बीर परम सयाने हैं॥
अधिक अधीर भई हीय ना धरै है धीर
दरशन हेतु युग नयन अकुलाने हैं।
रसिक बिहारी दृग चंचल अचंचल भे
मानो जाल बीच नवमीन उरझाने हैं॥
येहो शम्भु परम कृपालु हौं निहोरौं तुम्हें
माँगौं मनभायो वरदान यह पाऊँ मैं।
दीजै ह्वै प्रसन्न अतिदाता फल चार के हौ
जाते गौरि संयुत तिहारो गुण गाऊँ मैं॥
कै तो तात त्यागैं प्रण कै तो मृदु होवैं चाप
तबै साँवरेको जयमाला पहिराऊँ मैं।
रसिक बिहारी व्याहि आनंद उमंग रंग
राम घनश्याम संग अवध सिधाऊँ मैं॥

(रामरसायन)

जब श्रीरामजी अत्यन्त निकट आ गये तब उनकी शोभाको भलीभाँति देखकर—भर आँख देखकर श्रीजानकीजीको उनके परम सौकुमार्यका अनुभव होने लगा। उस समय पिताके प्रणका स्मरण आ गया और कहने लगीं—हा हन्त! हे पिताजी! आपने दारुण प्रतिज्ञा कर ली है।

नीकें निरखि नयन भरि सोभा।
पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा॥
अहह तात दारुनि हठ ठानी।
समुझत नहिं कछु लाभु न हानी॥
कमठपृष्ठकठोरमिदं धनुर्मधुरमूर्त्तिरसौ रघुनन्दनः।
कथमधिज्यमनेन विधीयतामहह तात पणस्तव दारुणः॥

(हनुमन्नाटकम् १। ९)

जब श्रीरामजी और निकट आ गये तब उनके सौकुमार्य और सौन्दर्यको देखकर श्रीमैथिली और व्याकुल हो गयीं। श्रीसीता अत्यन्त व्याकुल होकर कहने लगीं—हे विधातः! मैं कैसे धैर्य रखूँ? शिरीष पुष्पकणकी भाँति श्रीरामजी कोमल हैं, उनसे यह वज्रकी तरह कठोर धनुष उठवाया जा रहा है। सारी सभाकी बुद्धि बावली हो गयी है, अब तो हे शिवधनुष पिनाक! मुझे तुम्हारा सहारा है। तुमने तो पहले भी उपकार किया है, जब राजालोग हाथ लगाते थे तब तुम भारी हो जाते थे।

मनहुँ पाइ भट बाहुबल अधिक अधिक गरुआइ।

जब तुम लोगोंकी भुजाओंका बल लेकर भारी हो सकते हो तो अपनी कठोरता लोगोंपर डालकर हलके भी हो सकते हो। तुम परम सुकुमार राजकुमारको देखकर उनके अनुसार—जितना वे उठा सकें उतने हलके हो जाओ।

बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा।
सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा॥
सकल सभा कै मति भै भोरी।
अब मोहि संभुचाप गति तोरी॥
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी।
होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी॥

श्रीसीताजीने श्रीरामजीकी ओर देखकर शरीरके द्वारा प्रेमपन ठान लिया। भाव यह है कि शरीर

मेरे आराध्य श्रीरामजीका होकर रहेगा या रहेगा ही नहीं। करुणामय श्रीरामजीने श्रीसीताजीका मनोभाव जान लिया। श्रीरामजीका स्वभाव है कि भक्तोंकी व्यथाको शीघ्र समझ लेते हैं।

करुनामय रघुनाथ गोसाँई।
बेगि पाइअहिं पीर पराई॥

(२। ८५)

करुणामय श्रीरामजीने श्रीसीताजीको देखकर और धनुषको देखकर आश्वासन दिया कि मैं शीघ्र ही धनुषको तोड़ डालूँगा।

प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना।
कृपानिधान राम सबु जाना॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें।
चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसें॥

श्रीलक्ष्मणजीने श्रीरामजीका दर्शन करके समझ लिया कि अब प्रभु धनुष तोड़ना चाहते हैं अतः उन्होंने दिग्गजों, कच्छप, शेष और वाराह सबको सावधान किया—आपलोग पृथिवीको धैर्यपूर्वक धारण किये रहो, जिससे पृथ्वी हिलने न पावे।

लखन लखेउ रघुबंस मनि ताकेउ हर कोदंडु।
पुलकि गात बोले बचन चरन चापि ब्रह्मांडु॥
दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला।
धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥
रामु चहहिं संकर धनु तोरा।
होहु सजग सुनि आयसु मोरा॥

श्रीरामजीने सब लोगोंकी ओर देखा, सब चित्रमें लिखे हुयेकी तरह निर्निमेष श्रीरामजीकी ओर देख रहे थे। कृपासागर श्रीरामजीने श्रीसीताको देखकर अनुमान किया कि वे विशेष व्याकुल हैं।

राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि॥

श्रीगुरुदेवको मनमें प्रणाम करके श्रीराघवने लाघवपूर्वक धनुषको उठा लिया।

गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा।
अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा॥

श्रीराघवका लाघव यह था कि किसीने उन्हें लेते, चढ़ाते और खींचते हुए नहीं देखा।

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े।
काहुँ न लखा देख सबु ठाढें॥

श्रीरामजीने धनुषको मध्यसे तोड़ डाला।

तेहि छन राम मध्य धनु तोरा।
भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥

आरोपयित्वा मौर्वीं च पूरयामास तद्धनुः।
तद् बभञ्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशाः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण १। ६७। १७)

धनुषकी भयङ्कर कठोर ध्वनिसे सब लोक भर गये। सूर्यके घोड़ोंने मार्ग छोड़ दिया। दिग्गज चिग्घाड़ने लगे, धरती डोलने लगी, शेष, वाराह और कच्छप कलमला उठे। देवता, राक्षस और मुनि कानोंपर हाथ रखकर व्याकुल होकर विचारने लगे। श्रीरामजीने धनुषको तोड़ डाला, तब सब 'श्रीरामजीकी जय' बोलने लगे।

भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

श्रीकवितावली रामायणमें भी धनुषके टूटेनेकी ध्वनिका अद्‌भुत वर्णन है। उसके अनुसार तो रावण भी उपस्थित था वह मुखके बल गिरने लगा था।

डिगति उर्वि, अति गुर्वि, सर्ब पब्बै समुद्र-सर।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल चराचर॥

दिग्गयंद लरखरत परत दसकंधु मुख्ख भर।
सुर-बिमान हिमभानु भानु संघटत परसपर॥
चौंके बिरंचि संकर सहित कोलु कमठु अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मंड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिवधनु दल्यौ॥

(श्रीकवितावली १। ११)

श्रीहनुमन्नाटकमें भी बड़ा अद्‌भुत वर्णन है। समाधिमें स्थित शिवका मस्तक हिल गया।

त्रुट्यद्धीमधनुःकठोरनिनदस्तन्नाकरोद्विस्मयं,
त्रस्यद्वाजिरवेरमार्गगमनं शंभोः शिरःकम्पनम्।
दिग्दन्तिस्खलनं कुलाद्रिचलनं सप्तार्णवोन्मेलनं,
वैदेहीमदनं मदान्धदमनं त्रैलोक्यसम्मोहनम्॥

(श्रीहनुमन्नाटकम् १। २६)

श्रीप्रसन्नराघवनाटकमें शङ्करकोदण्डखण्डन ध्वनिका निरूपण करते हुये महाकवि जयदेव लिखते हैं—ध्वनिको सुनकर भगवान् विष्णुकी निद्रा भी भङ्ग हो गयी।

भिन्दन्निद्रां मुरारेः सकलभुजभृतां म्लानयञ् शौर्यदर्पं,
छिन्दन् दिक्कुम्भिकर्णाञ्चलचलनकलां कम्पयन् कूर्मराजम्।
आर्यश्लाघागभीरः प्रलयजलधरध्वानधिक्कारधीर
ष्टाङ्कारः कृष्यमाणत्रिपुरहर धनुर्भङ्ग भूराविरस्ति॥

(प्रसन्नराघवम् ३। ४५)

आनन्दरामायणमें लिखा है कि धनुष टूटनेसे बड़ा घनघोर शब्द हुआ। समस्त गगनमण्डल गूँज उठा। धरती काँप उठी। भगवान् शङ्कर कहते हैं—हे पार्वति! तुम भी भयके कारण हमसे चिपट गयीं। आगे शङ्करजी कहते हैं रावण चुपचाप लज्जासे सिर नीचा किये हुये बिना लाँग लगाये मुकुटरहित हो घबराहटके साथ शीघ्र ही मिथिलापुरीसे निकलकर लङ्काको भाग गया। वहाँ क्षणभर भी नहीं ठहरा। श्रीरामने धनुषको तोड़ डाला, यह देखकर स्त्रियाँ जय-जयकार करने लगीं और तालियाँ बजाने लगीं। श्रीसीताजीके शरीरमें आनन्दके कारण रोमाञ्च हो आया। उत्कण्ठापूर्वक निर्निमेष होकर कमलनयनोंसे श्रीरामको निहारने लगीं।

चापभङ्गान्महानादस्तदाऽभूद्‌गगनाङ्गणे ।
चकंपे धरणी त्वं चालिङ्गयन्मां भयाद् दृढम्॥
स्त्रियो गवाक्षरंध्रैश्च रामं पुष्पैरवाकिरन्।
तदा स रावणस्तूष्णीं लज्जयाऽऽनतमस्तकः॥
मुकुटैरपि हीनश्च मुक्तकच्छोऽतिविह्वलः।
सभायां न क्षणं तस्थौ तूर्णं लंकापुरीं ययौ॥
रामेण भग्नं तच्चापं दृष्ट्वा नार्यो मुदान्विताः।
चक्रुर्जयस्वनैर्घोषान्करैश्च करतालिकाः॥
सीताऽपि मुदिता जाता हर्षरोमाञ्च निर्भरा।
अनिमेषा कञ्जनेत्रा राममुत्कण्ठिता ह्यभूत्॥

(आनन्दरामायण सारकाण्ड तृतीय सर्ग)

अध्यात्मरामायणमें भी इसी प्रकारका वर्णन है।

दिशश्च विदिशश्चैव स्वर्गं मर्त्यं रसातलम्।
तदद्भुतमभूत्तत्र देवानां दिवि पश्यताम्॥

(अध्यात्मरामायण १। ६। २६)

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है—धनुष टूटते समय वज्रपातके समान महान् शब्द हुआ। ऐसा ज्ञात होता था मानो पर्वत बीचसे विदीर्ण हो गया। उस समय भूकम्प आ गया। मुनिश्रेष्ठ श्रीविश्वामित्र, श्रीजनक और श्रीराम लक्ष्मणको छोड़कर शेष जितने लोग वहाँ खड़े थे, वे सब धनुष टूटनेके भयङ्कर शब्दसे मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

तस्य शब्दो महानासीन्निर्घातसमनिःस्वनः।
भूमिकम्पश्च सुमहान् पर्वतस्येव दीर्यतः॥
निपेतुश्च नराः सर्वे तेन शब्देन मोहिताः।
वर्जयित्वा मुनिवरं राजानं तौ च राघवौ॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण १। ६७। १८, १९)

महाकवि भोजराज लिखते हैं—श्रीरामके खींचनेसे शिवचाप भग्न हो गया। उसकी ध्वनि अभिमानी राजाओंके यशरूप हंसोंके लिये मेघ शब्द बन गयी। जैसे मेघ शब्दसे हंस छिप जाते हैं उसी तरह धनुषके भग्न होनेकी ध्वनिसे दृप्त—घमण्डी राजाओंके यश तिरोहित हो गये। श्रीरामकी विजयलक्ष्मीके प्रथम समागमरूप माङ्गलिक कार्यमें पुण्याहवाचनका शब्दसा बन गया और श्रीसीताके सङ्कल्पात्मक विवाहमें मङ्गलवाद्यका कार्य किया।

रामाकर्षणभग्नकार्मुकभुवा ध्वानेन रोदोरुधा,
दृप्तक्षत्रयशः सितच्छदकुले जीमूतनादायितम्।
वीरश्रीप्रथमप्रवेशसमये पुण्याहघोषायितं,
सीतायाः किल मानसे परिणये माङ्गल्यतूर्यायितम्॥

(चम्पूरामायण १। १०४)

महात्मा श्रीरसिकबिहारीजी बहुत सुन्दर भाव व्यक्त करते हैं कि शङ्करका धनुष लज्जाके कारण अपने आप टुकड़े-टुकड़े हो गया।

सुनिकै उदंड बल प्रथमै कोदंड दुरि
जायकै लजाय सो मँजूषा माहिं सो गयो।
रसिकबिहारी तऊ अवधिबिहारी ताहि
हठ कै उठायो मान ताको सब खो गयो॥
शंभु धनु हीय हो गरूर गरुताको भूर
चूर धूर ह्वै सो सूरताको नूर धो गयो।
सोई हूक लूककी भभूक फूक फाटो हीय
याही ते पिनाक आप टूक टूक हो गयो॥

महाकवि श्रीतुलसीदासजीने श्रीगीतावली रामायणमें धनुर्भङ्गका बहुत सुन्दर चित्रण किया है।

गहि करतल मुनि-पुलक सहित, कौतुकहि, उठाइ लियो।
नृपगन-मुखन समेत नमित करि सजि सुख सबहि जियो॥
आकरष्यो सिय-मन समेत हरि, हरष्यो जनक-हियो।
भंज्यो भृगुपति, गरब सहित, तिहुँ लोक-बिमोह कियो॥
भयो कठिन कोदंड-कोलाहल प्रलय-पयोद समान।
चौंके सिव, बिरंचि, दिसिनायक, रहे मूँदि कर कान॥
सावधान ह्वै चढ़े बिमाननि चले बजाइ निसान।
उमगि चल्यौ आनंद नगर, नभ जयधुनि, मंगलगान॥

(श्रीगीतावलीजी १। ९०)

धनुष टूटनेसे चारों ओर आनन्द छा गया। श्रीविश्वामित्र, श्रीजनक, श्रीसुनयना, श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजीके सुखका गोस्वामीजीने बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया है।

श्रीसतानन्दजीकी आज्ञासे श्रीसीताजीने श्रीरामजीके पास गमन किया। उनके साथमें सुन्दर और चतुर सखियाँ मङ्गलाचारके गीत गा रही हैं; श्रीसीता बालमरालीकी गतिसे धीरे-धीरे चल रही हैं। श्रीसीताजीके श्रीअङ्गोंमें अपार शोभा है।

सतानंद तब आयसु दीन्हा।
सीता गमनु राम पहिं कीन्हा॥
संग सखीं सुंदर चतुर गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल मराल गति सुषमा अंग अपार॥

श्रीसीताजी हाथोंमें सुन्दर जयमाला लेकर श्रीरामजीके पास पहुँच गयीं। श्रीरामजीकी छवि देखकर चित्र लिखी-सी रह गयीं।

जाइ समीप राम छबि देखी।
रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी॥

श्रीसीताजीकी चतुर सखियोंने नेत्रोंकी भाषामें समझाकर कहा—हे किशोरीजू! आप यह सुहावनी जयमाला अपने प्रियतमको पहना दो।

चतुर सखीं लखि कहा बुझाई।
पहिरावहु जयमाल सुहाई॥

सखियोंकी बात सुनकर राजकिशोरी श्रीसीताने दोनों हाथोंसे माला उठायी; परन्तु

प्रेम बिबस पहिराइ न जाई।

श्रीसीताजीने सोचा—माला पहनानेके पश्चात् सखियाँ कहेंगी कि अब चलो, तो इतने सन्निकटसे जो परम प्रियतमकी मङ्गलमयी छविका दर्शन हो रहा है वह समाप्त हो जायगा अत: ***'प्रेम बिबस पहिराइ न जाई।'*** अथवा श्रीसीताजीने अपने जीवनधन श्रीरामजीसे मान कर लिया। मूक भाषामें—नेत्रोंकी भाषामें कहा—हे स्वामिन्! आपने धनुष तोड़नेके लिये अति विलम्ब किया, किसी प्रकार उठे भी तो बहुत धीरे-धीरे झूमते हुये चलकर धनुषके पास आये। उस समय धनुष तोड़नेके लिये उठना और चलना तो आपके आधीन था। आप स्वतन्त्र थे, उसमें आपने विलम्ब किया। अब जयमाला पहनाना मेरे हाथमें है, एतावता अब आप भी किञ्चित् प्रतीक्षा करो। अत:

प्रेमबिबस पहिराइ न जाई।

जिस भाँति मुझको ललचना पड़ा है आज,
उसी भाँति अब आपको भी ललचाऊँगी।
जैसा था गुमान आपको कमान खींचनमें,
वैसी ही सुजान! स्वाभिमानता दिखाऊँगी॥
अधिक बिलम्ब से उठी थी जो विरह ज्वाल,
शीतल सनेह विन्दु से उसे बुझाऊँगी।
नाथ तरसाया चाप तोड़नेमें आपने तो
मैं भी जयमाल छोड़ने में तरसाऊँगी॥

किं वा—श्रीसीताजी छोटी हैं और श्रीरामजी लम्बे हैं। श्रीरामजीके झुके बिना माला कैसे पहनायी जाय? इधर प्रभु कहते हैं कि मैं तो नहीं झुकूँगा। सखियोंके सामने बड़ी समस्या है। सखियोंने युक्ति निकाली—गीत गाना आरम्भ कर दिया। वह गीत भी रटा हुआ नहीं था अपितु परम सुन्दर श्रीरामजीकी छविको देखकर गीतकी रचना कर रही थीं और उसी सद्य: रचित गीतको गा रही थीं। ***'गावहिं छबि अवलोकि'*** एक-एक अङ्गका वर्णन करती हैं—हे रघुनन्दन! आप परम सुन्दर हैं। आपका वक्ष:स्थल विशाल है, जानुपर्यन्त लम्बिनी आपकी भुजायें हैं, आपका समुन्नत ललाट है, विद्रुमकी भाँति आपके लाल लाल ओष्ठ हैं, तोतेकी तरह आपकी नासिका है, आपके नेत्र कमलकी तरह स्निग्ध और विशाल हैं और आपका श्रीविग्रह इतना लम्बा है कि हमारी किशोरी सरकारके हाथ जयमाला पहनानेके लिये नहीं पहुँच रहे हैं। अत: श्रीचरणोंमें प्रार्थनापूर्वक विनम्र निवेदन है कि आप थोड़ा-सा झुककर जयमाला धारण कर लो। यह उपाय भी व्यर्थ हो गया, सरकार नहीं झुके। तब सखियोंने कहा—हे रघुनन्दन! आप सुन्दर हैं, कामाभिराम हैं, लोकाभिराम हैं। आपने हमारे नगरके समग्र नर नारियोंको अपनी रूपमाधुरीसे मुग्ध कर लिया है, अपने वशमें कर लिया है; परन्तु हे सरकार! अब अपने सौन्दर्यपर अधिक गर्व न करो। आपसे सुन्दर तो हमारी श्रीकिशोरीजी हैं। आप तनिक अपना रूप देखो तो सही। कहाँ देखूँ? सखियोंने कहा—सरकार यह विदेहनगर है, यहाँका सब कुछ विलक्षण है। आप अपना रूप हमारी किशोरी सरकारकी परछाहींमें देखिये। प्रभुने सोचा—परिछाहीमें कैसे रूप दीखता होगा। सखियोंने फिर कहा कि हे सरकार! आप आश्चर्य न करें, तनिक परिछाहीपर दृष्टि डालें।

गरब करहु रघुनंदन जनि मन माँह।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह॥

(श्रीबरवै रामायण १७)

सखियोंने गीतके चक्करमें परब्रह्मको डाल दिया। प्रभुने स्वरूप देखनेके लिये जब परछाहींमें देखनेके लिये मस्तक झुकाया, उसी समय

सिय जयमाल राम उर मेली।

किं वा—गीत गाकर श्रीकिशोरीजीसे कहा—श्रीरामजीके गलेमें माला पहनाओ, सुनकर श्रीकिशोरीजीने रामजीके गलेमें माला डाल दी।

गावहिं छबि अवलोकि सहेली।
सियँ जयमाल राम उर मेली॥

भगवती भास्वती श्रीमिथलेशनन्दिनीने विजयश्री संवलित जयमाला पहना दी। श्रीराघवेन्द्र सरकारके हृदयमें विराजमान जयमालाको देखकर देवता नन्दनकाननके पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। जनकनगर और आकाशमें दुन्दुभि ध्वनि होने लगी। देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग और मुनीन्द्र जय-जयकार करके आशीर्वाद दे रहे हैं। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। बार-बार पुष्पाञ्जलि हो रही है। यत्र-तत्र ब्राह्मणलोग वेदध्वनि कर रहे हैं। बन्दी यशका वर्णन कर रहे हैं।

रघुबर उर जयमाल देखि देव बरिसहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रबि कुमुदगन॥

पुर अरु ब्योम बाजने बाजे।
खल भए मलिन साधु सब राजे॥
सुर किंनर नर नाग मुनीसा।
जय जय जय कहि देहिं असीसा॥
नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटीं।
बार बार कुसुमांजलि छूटीं॥
जहँ तहँ बिप्र बेदधुनि करहीं।
बंदी बिरिदावलि उच्चरहीं॥

श्रीदेवतीर्थस्वामी लिखते हैं कि—

आँई पाँच कुमारी राम बरन।
लज्जा कीरति प्रीति दीनता जनक नंदिनी ठानि परन।
रूपवती सिय रूपवंत के पहिराई जयमाल गरन॥
बिना रूपकी चारिउ कन्या कोपि चलीं तेहि चारि ढरन।
मानी राजन लाज बेरेसि हठि कीरति चली दिगंत तरन॥
प्रीति जनकपुर रही दीनता परसुरामको चहत धरन।
राम सिया संयोग सनातन नयो नहीं संयोग करन॥
देव बधूटी नाचहिं गावहिं नौबति लागी झमकि झरन।
सिया राम उर मेली हर्षित जै माला॥
दूब सुमन महुबन से गाँथी लाल पाट रागन से नाथी।
जोबन मन यामे है साथी कीरति संग सहेली॥
माला जनु बाला॥
तन सो दूब सुमन सो मन है महुआ को फल आतम धन है।
तन मन धन इनको अरपन है देखत छबि अलबेली॥
मन भा मतवाला॥
या गरहीसे लागि रहौंगी सुख दुखकों सम जानि सहौंगी।
नहि दूसर अवलंब गहौंगी कबहुँ न रहौं अकेली॥
जस रस रस बाला॥
यह जैमाल सरूप सोहायो महादेव तंत्रन में गायो।
मालन को बहु भेद बतायो रहे आप रस झेली॥
हर सबसे आला॥

त्रैलोक्यमें श्रीरामजीके धनुष तोड़नेका और श्रीसीताजीके विवाहका यश परिव्याप्त हो गया।

महि पाताल नाक जसु ब्यापा।
राम बरी सिय भंजेउ चापा॥

'राम बरी सिय भंजेउ चापा' का दो प्रकारसे अर्थ किया जाता है। श्रीअयोध्यावाले अर्थ करते हैं—***'राम बरी सिय, भंजेउ चापा'*** अर्थात् श्रीरामने धनुषको तोड़कर श्रीसीताजीका वरण किया—उनसे विवाह किया। मिथिलापक्षवाले कहते हैं—***'राम बरी, सिय भंजेउ चापा'*** अर्थात् श्रीरामजीने विवाह तो किया; परन्तु धनुषको श्रीसीताजीने

तोड़ा। इस भावकी पुष्टिमें एक पद कहते हैं।

परि परि पाय जाय गिरिजा निहोरी नित्य
शंकर मनाये पूजे गणपति भावसे।
दीने दान विविध विधान जप कीने बहु
नेम व्रत लीने सिय सहित उछावसे॥
रसिक बिहारी मिथलेशकी दुलारी दृढ़
प्रीति उर धारी अवधेश सुत चावसे।
जनक किशोरी के प्रताप ते पिनाक टूटो
टूटो है न जानौ रामबलके प्रभावसे॥

(राम रसायन)

श्रीसीताजीकी माता सुनयनाजी आनन्दके उमँगसे भाव भरी वाणीमें कहती हैं।

इत सिय मात प्रमोद युत कही नीर भरि नैन।
भंज्यो राजकुमार धनु क्यों भाषौ यह बैन॥
कहति सखीसों सिय माय हुलसाय हीय
हेली हौं भई हौं अति चकित निहारिकै।
रसिक बिहारी भूरि भारी हो पिनाक जाहि
निरखि अपार वीर बैठे बल हारिकै॥
भंज्यो ताहि बाल रघुलाल हौं न मानौं यह
बात इकआई उर भाषौं सो विचारिकै।
मेरी जान काम राम रूप धरि आयो आज
शंभु धनु तोर्‌यो बैर पाछिलो सम्हारिकै॥

(राम रसायन)

कोई सखी कहती है कि मिथिला निवासियों की हायसे धनुष जल गया।

राम कर कोमल कठोर शंभु चाप हेरी
मिथिला निवासिनके सोच हिय भरिगो।
निपट हिरासलैं उसांस सब भाषी यह
रसिक बिहारी कौन भूप मौन धरिगो॥
जीरन भयो पै तऊ आजलौं कराल भारी
ये ते द्योस माही धनु गरिगो न सरिगो।
एकै बार ऐसी परी आय सबही की धाय
लाय लागी हायकी पिनाक याते जरिगो॥

(राम रसायन)

इस प्रकार मिथिलावासियोंकी श्रीरामजीके प्रति बड़ी सुकोमल भावना है इसीलिये धनुषके टूटने पर भी उनके मनमें विश्वास नहीं होता कि धनुषको श्रीरामजीने अपने बाहुबलसे तोड़ा है, अत: अनेक प्रकारकी कल्पनायें करते हैं। श्रीसीताजीको देखकर दुष्ट राजागण गाल बजाने लगे—केवल धनुष तोड़नेसे काम नहीं बनेगा, हमारे जीवित रहते हुए देखते हैं कि सीताजीसे कौन विवाह कर सकता है? दोनों राजकुमारोंको बन्दी बना लो, यदि इनकी जनक कोई सहायता करता है तो भाई के समेत उसको भी समराङ्गणमें जीत लो। इसके उत्तरमें नौ पङ्क्तियोंमें साधु राजाओंका बहुत सुन्दर वक्तव्य है। सारा वातावरण अशान्त हो गया। श्रीसीताजीको सखियाँ सुनयनाजीके पास ले गयीं। श्रीरामजी गुरुदेवके पास सहज भावसे चले गये, उनके मनमें इस अशान्त वातावरणका कोई प्रभाव नहीं है। हाँ, राजाओंकी बात सुनकर श्रीलक्ष्मणजी इधर-उधर देखते हैं। अर्थात् जिधरसे शब्द आते हैं उधर ही देखते हैं। उनके नेत्र रक्त हो गये, भृकुटी बङ्क हो गयी। जिस प्रकार सिंह किशोरके मनमें मतवाले हाथियोंको देखकर उत्सव होता है उसी प्रकार श्रीलक्ष्मण दुष्ट राजाओंकी ओर क्रोधसे देख रहे हैं।

भूप बचन सुनि इत उत तकहीं।
लखनु राम डर बोलि न सकहीं॥
अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहुँ मत्त गजगन निरखि सिंघकिसोरहिं चोप॥

उसी समय धनुषका टूटना सुनकर

श्रीपरशुरामजी आ गये।

तेहिं अवसर सुनि सिव धनु भंगा।
आयउ भृगुकुल कमल पतंगा॥

श्रीपरशुरामजीके आनेसे एक महायुद्ध—श्रीलक्ष्मण और दुष्ट राजाओंका युद्ध होते-होते बच गया अन्यथा माङ्गलिक वेलामें अमङ्गलकी आशङ्का हो गयी थी। श्रीपरशुरामजीके आते ही राजाओंकी वाणी बन्द हो गयी। सब राजा अपने-अपने बापका नाम लेकर मुनिके चरणोंमें प्रणाम करने लगे।

श्रीपरशुरामजीका आगमन सकारण है, अकारण नहीं है। श्रीपरशुरामजी अपना कर्तव्य निर्णय करके आये हैं कि जिसने श्रीशङ्करजीके धनुषको तोड़ा है उसकी भुजाओंको मैं काटूँगा। इसीलिये श्रीसीताजी और श्रीरामजीको छोड़कर किसीको आशीर्वाद नहीं दिया। श्रीजनकजीने आकर प्रणाम किया और श्रीसीतासे प्रणाम करवाया। स्त्री अवध्य होती है अतः इन्हें आशीर्वाद दिया। आशीर्वचन सुनकर सखियाँ प्रसन्न हो गयीं कि सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद मिल गया अतः अब ये श्रीरामजीके ऊपर प्रहार नहीं करेंगे, उनका अमङ्गल नहीं करेंगे।

जनक बहोरि आइ सिरु नावा।
सीय बोलाइ प्रनामु करावा॥
आसिष दीन्हि सखीं हरषानीं।
निज समाज लै गईं सयानीं॥

महर्षि विश्वामित्रजी स्वयं आकर श्रीपरशुरामजीसे मिले। दोनों भाइयोंको भी उनके चरणोंमें प्रणाम करवाके परिचय दिया।

बिस्वामित्रु मिले पुनि आई।
पद सरोज मेले दोउ भाई॥
राम लखनु दसरथ के ढोटा।
दीन्हि असीस देखि भल जोटा॥

'देखि भल जोटा' का भाव यह है कि—इनके ऊपर मेरा अस्त्र नहीं उठ सकता अतः आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद देनेके पश्चात् वे केवल श्रीरामजीको देखने लगे। उनके नेत्र स्तम्भित हो गये। वे अपने मनमें सोचने लगे—अहो! इनका सौन्दर्य कन्दर्पदर्पहारक है। इनका बाहुविक्रम त्रिपुरारि शङ्करसे अधिक प्रतीत होता है। इनका बालभाव शिव भालस्थ बालचन्द्रसे भी उत्कर्षका आश्रय कर रहा है। इस कारणसे यह पुरस्थ बालक मूर्त्तिमान् शृङ्गार, वीर और अद्भुत तीनों रसोंसे निर्मित है क्या?

सौन्दर्यं मदनादपि प्रथयति प्रौढिप्रकर्षं पुरां,
भेत्तारं मदनारिमप्यधरयत्युद्दामदोः क्रीडितम्।
मुग्धत्वं मदनारि मौलिशशिनोऽप्युत्कर्षमालम्बते,
मूर्त्तैस्तत् किमसौ रसैर्विरचितः शृङ्गार वीराद्भुतैः॥

(श्रीप्रसन्नराघवम् ४। १४)

रामहि चितइ रहे थकि लोचन।
रूप अपार मार मद मोचन॥

धीरे धीरे यह माधुर्यभाव और शान्तभाव तिरोहित हो गया। उसके स्थानपर रौद्र रस आ गया। श्रीपरशुरामने जनकसे पूछा—आज असाधारण जन सम्मर्द—भीड़ क्यों है? श्रीजनकने सब कारण सुना दिया। सुनकर उन्होंने दूसरी ओर देखा तो वहाँ पिनाक धनुषके टुकड़े भूमिपर पड़े थे। अब तो श्रीपरशुराम अत्यन्त क्रोधसे कठोर वचन बोले।

अति रिस बोले बचन कठोरा।
कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा॥

यहाँ 'जड़' शब्द जनक, धनुष और तोड़नेवाला

इन तीनोंका विशेषण हो सकता है। श्रीजनकजी जैसे ज्ञानयोगीकी स्थिति अति विचित्र है।

अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं।

यहाँ श्रीजनकका वात्सल्य भाव प्रबल हो गया कि यदि मैं धनुष तोड़नेवालेका नाम बताता हूँ तो मेरे परम वात्सल्यभाजन श्रीराममलाका इनके द्वारा अनर्थ सम्भव है, किंबहुना विवाहमें अमङ्गल हो जायगा, अत: उत्तर नहीं दिया। समस्त समाज भयग्रस्त हो गया। देवता, मुनि, नाग और नगरके नर-नारी सभी शोक कर रहे हैं, सभी चिन्तित हैं और सबके मनमें बहुत डर है। श्रीसुनयनाजी पश्चात्ताप कर रही हैं—ब्रह्माने बनी हुयी बात नष्ट कर दी। श्रीपरशुरामजीका स्वभाव श्रवण करके श्रीसीताजीका आधा निमेषका समय कल्पके समान व्यतीत होने लगा।

सुर मुनि नाग नगर नर नारी।
सोचहिं सकल त्रास उर भारी॥
मन पछिताति सीय महतारी।
बिधि अब सँवरी बात बिगारी॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता।
अरध निमेष कलप सम बीता॥

परमधीर गम्भीर श्रीरामजीने सबको भयभीत देखा और श्रीजानकीजीको भी भयभीत देखा तब हर्ष-विषादरहित श्रीरघुवीर बोले।

सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु।
हृदयँ न हरषु बिषादु कछु बोले श्रीरघुबीरु॥

प्रसङ्गके आरम्भमें 'श्रीरघुबीर' लिखकर यह सूचित किया कि इस प्रसङ्गमें 'श्री' अर्थात् यश:श्री और शोभा श्रीरामजीकी ही रहेगी। श्रीरघुवीरने कहा—हे नाथ! आपका प्रश्न है, धनुष किसने तोड़ा? इसका उत्तर है कि हे स्वामिन्! धनुषका तोड़नेवाला आपका कोई दास ही है। आपकी क्या आज्ञा है? आप मुझसे क्यों नहीं कहते हैं? इस चौपाईमें ही श्रीरामजीने श्रीपरशुरामजीको अपने और उनके स्वरूपको समझानेका प्रयास किया है; परन्तु उनकी बुद्धिपर अज्ञानका आवरण है, एतावता समझ नहीं पाये।

श्रीलक्ष्मणजी बड़ी बारीकीसे परिस्थितिका अध्ययन कर रहे हैं। समस्त समाजको त्रस्त देखा; परन्तु श्रीलक्ष्मण नहीं बोले। श्रीलक्ष्मणजीका जीवन-दर्शन यह है कि सारे संसारकी चिन्ता श्रीरामजी करें और उनकी चिन्ता मैं करूँ। उनके प्रति किये गये अनुचित व्यवहारको मैं नहीं सह सकता हूँ। उसके लिये मैं किसीका भी सामना करनेके लिये प्रस्तुत हूँ, चाहे वह पिता, भ्राता तथा कोई भी क्यों न हो? श्रीलक्ष्मणजी देख रहे हैं कि प्रभुकी विनम्र वाणीका क्या प्रभाव पड़ता है। उस विनम्र वाणीको सुनकर जब श्रीपरशुरामजीने कहा—

सुनहु राम जेहि सिवधनु तोरा।
सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥

हे राम! जिसने श्रीशङ्करजीके धनुषको तोड़ा है, वह सहस्रबाहुके समान मेरा शत्रु है, मेरा दास नहीं है। जब श्रीरामजीके दास्यभावको—उनके समर्पणको श्रीपरशुरामने अस्वीकार कर दिया। तब श्रीलक्ष्मणजीने उनका उत्तर देना आरम्भ कर दिया। इस प्रसङ्गमें श्रीलक्ष्मणजीके वाणीकी यही व्याख्या है। श्रीलक्ष्मण परशुराम संवादको इसी दृष्टिकोणसे विचारना चाहिये।

श्रीराम-लक्ष्मण-परशुराम संवाद अट्ठारह दोहोंमें है और श्रीमद्भगवद्गीता भी अट्ठारह अध्यायोंमें है। अट्ठारह अध्यायकी गीतामें जो कार्य भगवान् श्रीकृष्णने किया वही कार्य भगवान् श्रीरामने

अट्ठारह दोहोंमें किया है। गीतामें एक क्षत्रिय जो स्वधर्मका परित्याग करके परधर्म स्वीकार करना चाह रहा था उसको स्वधर्ममें लगाया। श्रीअर्जुनका स्वधर्म था—धर्मकी रक्षाके लिये, अधर्मियोंका नाश करनेके लिये युद्ध करना। महाभारतमें देवी कुन्तीने कहा था कि क्षत्राणी अन्यायके विरुद्ध समराङ्गणमें लड़नेके लिये पुत्र उत्पन्न करती है।

यदर्थे क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः।

यह क्षत्रियका स्वधर्म है। अर्जुन उसका परित्याग करके ब्राह्मणोंकी भाँति युद्धसे विरत हो रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने समझाया कि यह तुम्हारा धर्म नहीं है। अच्छी तरहसे अनुष्ठान किये हुये परधर्मसे अपना गुणरहित भी धर्म श्रेष्ठ है। अपने धर्ममें मरना भी श्रेष्ठ है; परन्तु परधर्म भयावह है।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ३। ३५)

और अन्तमें अपना धर्म समझकर अपने धर्ममें आरूढ़ हो गये। श्रीअर्जुन कहते हैं—हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह विनष्ट हो गया है और मैंने स्मृति भी प्राप्त कर ली है। अब मैं सन्देहरहित होकर स्थित हूँ। आपके बचनोंका परिपालन अवश्य करूँगा।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १८। ७३)

श्रीरामजीने भी श्रीपरशुरामजीको समझानेका प्रयास किया कि आप ब्राह्मण हैं और मैं क्षत्रिय हूँ, आप मुझसे बहुत बड़े हैं।

देव एकु गुन धनुष हमारें।
नव गुन परम पुनीत तुम्हारें॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे।
छमहु बिप्र अपराध हमारे॥

हे देव! हमारे तो एक ही गुण धनुष है और आपके परम पुनीत नौ गुण हैं। आशय यह है कि हमारे पास एक धनुर्विद्या और आपके—ब्राह्मणोंके नौ गुण हैं।

ऋजुस्तपस्वी सन्तुष्टः शुचिर्दान्तो जितेन्द्रियः।
दाता विद्वान् दयालुश्च ब्राह्मणो नवभिर्गुणैः॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने ब्राह्मणोंके गुणोंका वर्णन करते हुये कहा है।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १८। ४२)

इस चौपाईमें 'हमारे और तुम्हारे' का भाव यह है—सबको अपना अपना धर्म पालन करना चाहिये। हमारा—क्षत्रियोंका एक गुण है उसे हम धारण किये हैं और तुम्हारे—ब्राह्मणोंके नौ गुण हैं पर उन्हें आप छोड़े हैं। आपमें उन सबका अभाव प्रत्यक्ष दृश्यमान है। किं वा—आपके पास एक गुणवाला हमारा शार्ङ्गधनुष है सो हमें 'देव' और हमारे पास जो परम पुनीत नौ गुण हैं उन्हें आप ले लो। आगे इसी वाक्यको मानकर शार्ङ्गधनुष दे देंगे और नौ बार 'जय जय' बोलकर नौ गुण स्वीकार कर लेंगे।

इतना कहनेपर भी श्रीपरशुरामकी बुद्धिका आवरण नहीं हटा। उन्होंने पुनः कहा—तुम मुझे मात्र ब्राह्मण समझते हो। मैं जैसा ब्राह्मण हूँ, तुम्हें सुनाता हूँ। तुम मेरे धनुषको स्रुवा, बाणोंको आहुति और मेरे प्रचण्ड क्रोधको प्रचण्ड अग्नि समझो, चतुरङ्गिणी सेना ही सुन्दर समिधा है। सहस्रबाहुकी तरह बड़े-बड़े राजा बलिपशु हुये

और मैंने इसी फरसेसे काटकर बलि प्रदान किया है, ऐसे करोड़ों समरयज्ञ मैंने किये हैं। श्रीपरशुरामजी पुनः कहते हैं—मेरे प्रभावका तुमको ज्ञान नहीं है। तुम मात्र ब्राह्मण समझकर मेरा अपमान करते हुए बोल रहे हो। धनुष तोड़नेसे तुम्हारा अभिमान बहुत बढ़ गया है। ऐसा अहङ्कार है मानो विश्वविजय कर लिया हो।

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही।
मैं जस बिप्र सुनावउँ तोही॥
चाप स्त्रुवा सर आहुति जानू।
कोपु मोर अति घोर कृसानू॥
समिधि सेन चतुरंग सुहाई।
महा महीप भए पसु आई॥
मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हें।
समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे॥
मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें।
बोलसि निदरि बिप्र के भोरें॥
भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा।
अहमिति मनहुँ जीति जगु ठाढ़ा॥

अन्तिम दो पङ्क्तियाँ श्रीरामजीके लिये असह्य हो गयीं। प्रभुने उनका उत्तर अपने सहज भावसे हटकर दिया है। हे मुने! आप विचार कर बोलिये। आपका क्रोध बहुत बड़ा है और मेरी चूक बहुत छोटी है। मेरे लक्ष्मणने ठीक ही कहा था *'छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू'* पुराना धनुष स्पर्श करते ही टूट गया। अभिमान करनेका कोई कारण ही नहीं है। हे भृगुनाथ! यदि हम सत्य ही ब्राह्मण कहकर निरादर करते हैं, तो यह सत्य सुनिये, फिर संसारमें ऐसा कौन योद्धा है जिसे हम भयके कारण मस्तक झुकायें? देवता, दनुज, राजा या और बहुतसे योद्धा, वे चाहे समबली हों चाहें अधिक बली हों, यदि युद्धमें हमें कोई भी ललकारे तो हम उससे सुखपूर्वक लड़ेंगे, चाहे काल ही क्यों न हो।

राम कहा मुनि कहहु बिचारी।
रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी॥
छुअतहिं टूट पिनाक पुराना।
मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥
जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभटु जेहि भय बस नावहिं माथ॥
देव दनुज भूपति भट नाना।
समबल अधिक होउ बलवाना॥
जौं रन हमहिं पचारै कोऊ।
लरहिं सुखेन कालु किन होऊ॥

हे महर्षे! यदि कोई हमें ललकारता है तो युद्ध करना हमारा स्वधर्म है। विना प्रयत्नके अपने आप प्राप्त हुए ऐसे बाधारहित निरतिशय सुखके साधनभूत इस युद्धको भाग्यशाली क्षत्रिय ही प्राप्त करते हैं।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्॥
(श्रीमद्भगवद्गीता २। ३२)

यह हमारा स्वधर्म है; परन्तु आपका स्वधर्म युद्ध नहीं है। ब्राह्मणवंशकी तो ऐसी प्रभुता है कि जो आपसे डरता है वह सबसे निर्भय हो जाता है।

बिप्रबंस कै असि प्रभुताई।
अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥

श्रीठाकुरजीके कहनेका आशय यह है कि स्वधर्मपर रहनेसे ही ब्राह्मणकी प्रतिष्ठा है। क्षात्र-धर्म उसके लिये परधर्म है।

प्रभुकी वाणीका यह प्रभाव हुआ कि श्रीपरशुरामजीकी बुद्धिका आवरण समाप्त हो

गया। उन्होंने कहा—हे रघुनन्दन राम! यह भगवान् श्रीविष्णुका शार्ङ्गधनुष लेकर आकर्षित करें, जिससे मेरा सन्देह अपगत हो जाय।

सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के।
उघरे पटल परसुधर मति के॥
राम रमापति कर धनु लेहू।
खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ।
परसुराम मन बिसमय भयऊ॥

धनुषको देते ही, उसके साथ स्वयं ही श्रीपरशुरामका वैष्णव तेज निकलकर श्रीरामचन्द्रजीके मुखमें प्रवेश कर गया।

ततः परशुरामस्य देहान्निष्क्रम्य वैष्णवम्।
पश्यतां सर्वदेवानां तेजो राममुखे विशन्॥

(नृसिंहपुराण)

श्रीपरशुरामजीने कहा—हे ककुत्स्थकुलभूषण! आपके वैष्णव धनुष चढ़ानेसे मुझे असन्दिग्ध—निश्चय हो गया कि आप मधुहन्ता माधव हैं। हे सीतानाथ! मैं अपनी हार पर लज्जित नहीं हूँ। मुझे किसी 'ऐरे गैरे नत्थू खैरे पचकल्यानी'ने नहीं हराया है अपितु त्रैलोक्याधीश्वर परमात्मा श्रीरामने मुझे पराजित किया है।

न चेयं तव काकुत्स्थ व्रीडा भवितुमर्हति।
त्वया त्रैलोक्यनाथेन यदहं विमुखीकृतः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण १। ७६। १९)

हे रघुनन्दन राम! आपके द्वारा पराजित होनेमें तो विजय छिपी हुई है। मैं हारकर भी जीत गया हूँ। मुझे अपनी पराजयपर गर्व है। अब मैं अपने स्वधर्म—ब्राह्मणधर्मका अनुष्ठान करूँगा। आपकी जय हो! जय हो! जय हो!

कहि जय जय जय रघुकुलकेतू।
भृगुपति गए बनहि तप हेतू॥

श्रीपरशुरामजीके जाते ही चारों ओर आनन्द छा गया। दुन्दुभियाँ बजने लगीं, सुमनवृष्टि होने लगी, सुन्दरियाँ कलगान करने लगीं। श्रीजनक तो इतने सुखी हुये कि मानो जन्म-जन्मके दरिद्रने निधि प्राप्त कर ली हो। श्रीमिथिलेशनन्दिनी ऐसे आह्लादित हो गयीं, जैसे चन्द्रमाके उदयसे चकोर कुमारी प्रसन्न होती है।

सुखु बिदेह कर बरनि न जाई।
जन्मदरिद्र मनहुँ निधि पाई॥
बिगत त्रास भइ सीय सुखारी।
जनु बिधु उदयँ चकोरकुमारी॥

श्रीजनकजीने महर्षि विश्वामित्रके चरणोंमें प्रणाम करके पूछा—अब मैं क्या करूँ? मुनिने कहा—विवाह तो धनुषके आधीन था एतावता धनुष टूटते ही विवाह हो गया। त्रैलोक्यमें सबको ज्ञात हो गया। फिर भी कुलकी मर्यादाके अनुसार, वैदिक विधिसे विवाह सम्पन्न करो। श्रीदशरथजीको बुलानेके लिये श्रीअयोध्याजी दूत भेजो।

टूटतहीं धनु भयउ बिबाहू।
सुर नर नाग बिदित सब काहू॥
तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुर बेद बिदित आचारु॥
दूत अवधपुर पठवहु जाई।
आनहिं नृप दसरथहि बोलाई॥

श्रीजनकजीने सद्यः दूत भेज दिये। मण्डप-रचनाका कार्य भी आरम्भ हो गया। मण्डपरचना करनेवालोंने जगत्स्रस्टा ब्रह्माजीकी वन्दना करके मण्डपरचनाका कार्य आरम्भ किया। स्वर्णमय केलेके खम्भोंका निर्माण किया। हरित मणियोंका—पन्नोंका पत्र और फल तथा पद्मराग—माणिक्यका

कदली पुष्प बनाया गया।

बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा।
बिरचे कनक कदलि के खंभा॥
हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल॥

इधर श्रीजनकजीके दूत श्रीअयोध्याजी पहुँच गये।

पहुँचे दूत राम पुर पावन।
हरषे नगर बिलोकि सुहावन॥

समाचार पाकर चक्रवर्तीजीने तत्काल दूतोंको सभामें बुलाया। स्वयं राजाने उठकर पत्रिका लेकर हृदयसे लगायी। उस समयकी उनकी स्थितिका वर्णन भावुक कविने किया है।

बारि बिलोचन बाँचत पाती।
पुलक गात आई भरि छाती॥

पत्रिका स्वयं राजाने पढ़ी। सुनकर सारी सभा हर्षित हो गयी। उसी समय भरत और शत्रुघ्न आ गये। उन्होंने बड़े स्नेहसे पूछा—हे तात! यह पत्रिका कहाँसे आयी है।

कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ अहहिं कहहु केहि देस।
सुनि सनेह साने बचन बाची बहुरि नरेस॥

चक्रवर्तीजीने दूतोंको अपने पास बिठाकर मधुर और मनोहर बचनोंका उच्चारण किया—हे भैया! मेरे दोनों लाल कुशलसे तो हैं? मैं उनका अभिज्ञान बताता हूँ। एक श्यामल वर्णके हैं दूसरे गौर वर्णके। हाथोंमें धनुष तथा तरकस धारण किये हैं। उनकी किशोरावस्था है, श्रीविश्वामित्रजी उनके साथ हैं। यदि तुम उन्हें पहचानते हो तो उनके स्वभावका वर्णन करो। अन्य अभिज्ञान तो किसी अन्यमें भी हो सकते हैं परन्तु मेरे रामके तरह स्वभाव किसीका नहीं हो सकता है।

भैया कहहु कुसल दोउ बारे।
तुम्ह नीकें निज नयन निहारे॥
स्यामल गौर धरे धनु भाथा।
बय किसोर कौसिक मुनि साथा॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ।
प्रेम बिबस पुनि पुनि कह राऊ॥

दूतोंने कहा—हे महीपतिमुकुटमणे! आपकी भाँति धन्य—भाग्यशाली त्रैलोक्यमें कोई नहीं है। हे राजन्! धनुषयज्ञमें संसारके बड़े-बड़े वीर आये थे। परन्तु शिवधनुषको कोई टस-से-मस नहीं कर सका। तीनों लोकोंमें जो वीरताके अभिमानी थे, शिवधनुषने सबकी शक्ति तोड़ दी। रावण और बाणासुर ऐसे वीर भी पराजित हो गये। उसी सभामें श्रीरामजीने बिना प्रयासके धनुष तोड़ डाला।

तहाँ राम रघुबंस मनि सुनिअ महा महिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गज पंकज नाल॥

हे राजेन्द्र! आपके दोनों बालक अनोखे हैं। उनको देखनेके पश्चात् अब हमारी दृष्टिमें दूसरा कोई नहीं आता है।

राजन रामु अतुलबल जैसें।
तेज निधान लखन पुनि तैसें॥
कंपहिं भूप बिलोकत जाकें।
जिमि गज हरि किसोर के ताकें॥
देव देखि तव बालक दोऊ।
अब न आँखि तर आवत कोऊ॥

श्रीचक्रवर्त्तीजी प्रसन्न होकर दूतोंको न्योछावर देने लगे तब दूतोंने कहा—हे महाराज! आप अनीति कर रहे हैं। सीता मेरी पुत्री है अतः मैं आपसे कुछ भी कैसे ले सकता हूँ। दूतोंकी बात सबको अच्छी लगी।

तब राजाने गुरुदेव श्रीवसिष्ठजीको पत्रिका

दी और दूतोंको बुलाकर उनके द्वारा सब कथा सुनवायी। श्रीवसिष्ठजी प्रसन्न हो गये और आज्ञा दी—डंका बजाकर बारात सजावो, आपका सब समय कल्याण होगा।

तुम्ह कहुँ सर्ब काल कल्याना।
सजहु बरात बजाइ निसाना॥

दूतोंके आवासकी व्यवस्था करके दशरथजी महलमें गये। समस्त रानियोंको बुलाकर सब कथा सुनायी, रानियाँ प्रेमसे प्रफुल्लित होकर ऐसी सुशोभित हो रही हैं जैसे मयूरी बादलोंकी गरज सुनकर प्रफुल्लित होती हैं।

प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी।
मनहुँ सिखिनि सुनि बारिद बानी॥

भिक्षुओंको बुलाकर अनेक प्रकारका न्योछावर दिया गया। वे आशीर्वाद देते हैं—चक्रवर्त्ती नरेन्द्रके चारों पुत्र चिरञ्जीवी हों।

जाचक लिए हँकारि दीन्हि निछावरि कोटि बिधि।
चिरु जीवहुँ सुत चारि चक्रवर्ति दसरत्थ के॥

समस्त नगरमें समाचार फैल गया। घर घरमें उत्सव होने लगे। अनेक प्रकारके वाद्य सुवादित होने लगे। बन्दी लोग विरुदावली पढ़ रहे हैं, ब्राह्मण वेद-ध्वनि कर रहे हैं। सुन्दरियाँ श्रीसीता और श्रीरामका नाम ले-लेकर मङ्गल गीत गा रही हैं। उत्साह बहुत है, भवन बहुत छोटा है अत: भवनसे आनन्दकी सरिता बह चली। जहाँ देवचक्रचूड़ामणि श्रीरामचन्द्रने अवतार लिया है उस दशरथभवनकी शोभाका वर्णन करनेमें किसकी सामर्थ्य है?

गावहिं सुंदरि मंगल गीता।
लै लै नामु रामु अरु सीता॥
बहुत उछाहु भवनु अति थोरा।
मानहुँ उमगि चला चहुँ ओरा॥
सोभा दसरथ भवन कइ को कबि बरनै पार।
जहाँ सकल सुर सीस मनि राम लीन्ह अवतार॥

श्रीदशरथजीने श्रीभरतको बुलाकर कहा—रामजीकी बारात चलना है, शीघ्रता करो। घोड़े, हाथी और रथकी सज्जा करो। श्रीभरत-शत्रुघ्नने घुड़शालके अध्यक्षको बुलाकर घोड़ोंको सजानेकी आज्ञा दी। उन्होंने प्रेमपूर्वक और शीघ्रतासे आज्ञाका पालन कर दिया। उन घोड़ोंपर श्रीभरतके समवयस्क राजकुमार सवार हो गये।

छरे छबीले छयल सब सूर सुजान नबीन।
जुग पदचर असवार प्रति जे असिकला प्रबीन॥

हाथी सज गये, घोड़े सज गये, रथ सज गये। ब्राह्मणलोग सवारियोंपर चढ़-चढ़कर बारातके लिये प्रस्थान कर रहे हैं।

तिन्ह चढ़ि चले बिप्रबर बृंदा।
जनु तनु धरें सकल श्रुति छंदा॥

मागध, सूत, बन्दी सब यथायोग्य बाहनोंपर चढ़कर चले। खच्चर, ऊँट और बैल अनेक प्रकारकी सामग्रियोंको लादकर चले। सुमन्त्रजी दो रथ सजाकर ले आये। दोनोंमें अलग-अलग साज सज्जा थी। एक रथपर चक्रवर्त्तीजीने स्वयं श्रीवसिष्ठजीको चढ़ाया। दूसरे रथपर श्रीदशरथजी श्रीशङ्कर, गुरुदेव और गौरीगणेशका स्मरण करके स्वयं चढ़े।

तेहिं रथ रुचिर बसिष्ठ कहुँ हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु॥

वैदिक विधि और कुल रीतिके अनुसार सब कार्य सम्पन्न करके, श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके, गुरुदेवकी आज्ञा प्राप्त करके, शङ्ख बजा करके चक्रवर्त्तीजीने प्रस्थान किया।

सुमिरि रामु गुर आयसु पाई।
चले महीपति संख बजाई॥

बारातको देखकर देवता प्रसन्न हो गये और मङ्गलदायक पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। सबके मनमें अपार हर्ष है, सबके शरीर रोमाञ्च-कण्टकित हैं। सबके मनमें एक—केवल एक लालसा है कि श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंको कब देखेंगे। वह दिन, वह क्षण, वह घड़ी कब आवेगी जब हम अपने प्रेमास्पदका दर्शन करेंगे।

सब कें उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर।
कबहिं देखिबे नयन भरि रामु लखनु दोउ बीर॥

'वीर' शब्दका अर्थ भाई तो होता ही है; परन्तु पराक्रमी भी होता है। आज पुरवासी कहते हैं—मेरे राम-लक्ष्मण त्रैलोक्यके सबसे महान् वीर हैं। श्रीरामजीके सखा एवं अन्य राजकुमार मृदङ्गकी ध्वनिपर घोड़ोंको नचा रहे हैं।

तुरग नचावहिं कुअँर बर अकनि मृदंग निसान।
नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान॥

सुन्दर शकुन होने लगे। नीलकण्ठ बाईं ओर चारा ले रहे हैं। सुन्दर क्षेत्रमें दाहिनी ओर काक सुशोभित हो रहा है। नेवला भी अपनेको भाग्यवान् बनानेके लिये आ गया। शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु बहने लगी। सिरपर जलका घड़ा और गोदमें बालक लेकर सौभाग्यवती स्त्री आ गयी। लोमड़ी भी बार-बार आ रही है। गौ माता सामने अपने वत्सको दूध पिलाती हुई दर्शन दे रही हैं। मृगोंकी माला—समूह बायीं ओरसे दाहिनी ओर आ गयी। क्षेमकरी और श्यामा भी दिखाई दे रही हैं। सामने कोई दही लेकर आ गया। एक मल्लाह मछली लेकर आ गया। दो चतुर ब्राह्मण हाथमें सद्ग्रन्थ लेकर सामने पधार गये। अपनेको भाग्यवान् बनानेके लिये सब शकुन एक बार ही आ गये।

मंगलमय कल्यानमय अभिमत फल दातार।
जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक बार॥

जहाँपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी तरह वर और जनकनन्दिनी मैथिलीकी भाँति दुलहिन हैं तथा श्रीजनकजी और दशरथजीकी भाँति समधी हैं; इस प्रकारका विवाह श्रवण करके समग्र शकुन नर्तित हो उठे और सोचने लगे कि आज श्रीब्रह्माने हमको सत्य कर दिया।

राम सरिस बरु दुलहिनि सीता।
समधी दसरथु जनकु पुनीता॥
सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे।
अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥

इधर श्रीजनकजीकी भी स्वागतकी पूरी तैयारी है। नदियोंपर पुल बनवा दिये। बीच बीचमें विश्राम करनेके लिये सुन्दर निवासस्थान बनवा दिये। वहाँपर भोजन, बिस्तर और वस्त्रोंकी व्यवस्था हो गयी। बारातियोंके बाजे बजने लग गये। चक्रवर्त्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजीकी ओरसे बाजा सुनकर श्रेष्ठ बारातको आती हुई जानकर हाथी, रथ, पैदल और घोड़े सजाकर जनकपुरके लोग बारातकी अगवानी करनेके लिये—स्वागत करनेके लिये चल पड़े।

आवत जानि बरात बर सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अगवान॥

अनेक प्रकारकी वस्तु लेकर स्वागत करनेके लिये राजाने विश्वस्त लोगोंको भेजा। आभूषण, वस्त्र, मूल्यवान् रत्न, अनेक प्रकारकी सवारियाँ लेकर आये। काँवरोंमें भरकर दही चिउड़ा भी प्रभूत मात्रामें आया। बारातियोंने अगवानोंको साज सज्जाके

साथ देखकर प्रसन्न होकर डङ्का बजा दिया।

आज आनन्दके दो समुद्र मर्यादा छोड़कर जनकपुरमें मिल रहे हैं। दोनों ओरका विशाल जनसम्मर्द ही आनन्द समुद्र है। देव सुन्दरियाँ नन्दनकाननका पुष्प वर्षाती हुईं कलगान कर रही हैं और देवता प्रमुदित होकर दुन्दुभि ध्वनि कर रहे हैं। स्वागतके अनन्तर बारातियोंके ठहरनेके लिये सुन्दर जनवासा दिया गया। उस जनवासेमें सबको सब प्रकारका सुपास था—सुविधा थी।

अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा।
जहँ सब कहुँ सब भाँति सुपासा॥

जगद्धात्री पराशक्ति, भगवती, भास्वती, करुणामयी जनकनन्दिनीने श्रीरामचन्द्रजीकी बारात हमारे नगरमें आ रही है, जब यह जाना तब अपनी कुछ महिमा प्रकट करके दिखायी। 'कुछ' का भाव कि इनकी महिमा अपार है।

लोकप होहिं बिलोकत तोरें।
तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें॥

(२। १०३)

अपार महिमासे किञ्चित् प्रकट करके दिखायी।

हृदयमें स्मरण करके समस्त सिद्धियोंको बुलाया और राजा दशरथका आतिथ्य—स्वागत करनेके लिये उनको भेज दिया। श्रीसीताकी आज्ञासे समस्त सिद्धियाँ जनवासेमें गयीं।

जानी सियँ बरात पुर आई।
कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं।
भूप पहुनई करन पठाईं॥
सिधि सब सिय आयसु अकनि गईं जहाँ जनवास।
लिएँ संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास॥

जनवासेमें देवदुर्लभ भोग सामग्री उपस्थित हो गयी। इस ऐश्वर्यका भेद कोई नहीं जान पाया। सब लोग जनकजीकी ही बड़ाई कर रहे हैं।

बिभव भेद कछु कोउ न जाना।
सकल जनक कर करहिं बखाना॥

इस ऐश्वर्यका रहस्य अर्थात् सीताजीकी महिमा जानकर और उनका प्रेम पहचानकर रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी अतिशय प्रसन्न हो गये कि मेरे परिवारको, अयोध्यावासियोंको और बारातको सुख देनेके लिये श्रीजानकीजीने अपनी महिमाका प्रयोग किया है।

सिय महिमा रघुनायक जानी।
हरषे हृदयँ हेतु पहिचानी॥

श्रीरामलक्ष्मणने जब सुना कि मेरे पूज्य पिताजी आये हैं तब उनके हृदयमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी। श्रीरामजी अति सङ्कोची हैं। श्रीविश्वामित्रसे सङ्कोचके कारण अपने हृदयकी बात नहीं कर पा रहे हैं। परन्तु पिताके दर्शनकी महती लालसा उनके मनमें है।

पितु आगमनु सुनत दोउ भाई।
हृदयँ न अति आनंदु अमाई॥
सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं।
पितु दरसन लालचु मन माहीं॥

श्रीरामजीका विनम्र स्वभाव देखकर महर्षिको परम सन्तोष है कि इन्होंने हमारा कितना सम्मान किया है। श्रीराम-लक्ष्मणको महर्षिने हृदयसे लगा लिया उनके शरीरमें पुलकावली छा गयी, उनकी आँखोंमें जल भर आया। कुएँके पास प्यासा जाता ही है; परन्तु आज तो सरोवर प्यासेके पास जा रहा है।

चले जहाँ दसरथु जनवासे।
मनहुँ सरोबर तकेउ पिआसे॥

चक्रवर्त्तीजीने श्रीविश्वामित्रजीको प्रणाम किया।

श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंने अपने पिताजीके चरणोंमें युगपत्—एक साथ दण्डवत् किया। श्रीदशरथजीने दोनों भाइयोंको उठाकर हृदयसे लगा लिया। वियोगजन्य दुःख समाप्त हो गया। मानों मृतक शरीरको प्राण मिल गया हो। राजाके रामजी प्राण हैं *'मेरे प्राननाथ सुत दोऊ'*। इनके बिना राजा मृतककी भाँति थे। आज मृतक शरीरको प्राण मिल गया। जब श्रीरामचन्द्रजी वनसे अयोध्या आये उस समय श्रीशुकदेवजीने कहा—जैसे मृतक शरीरमें प्राणोंका सञ्चार हो जाता है, उसी प्रकार मातायें अपने पुत्रोंके आगमनसे प्रसन्न हो गयीं। माताने श्रीरामलक्ष्मणको अपनी गोदमें बिठाकर आँसुओंसे उनका अभिषेक किया। माताओंका सारा शोक समाप्त हो गया।

पुत्रान् स्वमातरस्तास्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः।
आरोप्याङ्केऽभिषिञ्चन्त्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः॥

(श्रीमद्भागवत ९। १०। ४८)

ठीक यही भाव प्रस्तुत प्रसङ्गमें है।

सुत हियँ लाइ दुसह दुख मेटे।
मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे॥

दोनों भाइयोंने श्रीवसिष्ठजीको दण्डवत् किया और ब्राह्मणोंको प्रणाम किया। श्रीभरतशत्रुघ्नने भी श्रीरामजीके चरणोंमें प्रणाम किया। श्रीरामजीने दोनोंको हृदयसे लगा लिया। मर्यादा पुरुषोत्तम, भक्तवत्सल, परमकृपालु, अत्यन्त विनम्र श्रीरामजी सभीसे यथायोग्य मिले। प्रभुको देखकर सभीके सन्तप्त नेत्र एवं हृदय शीतल हो गये।

पुरजन परिजन जातिजन जाचक मंत्री मीत।
मिले जथा बिधि सबहि प्रभु परम कृपाल बिनीत॥

रामहि देखि बरात जुड़ानी।
प्रीति की रीति न जाति बखानी॥

बारात लग्नसे पहले ही आ गयी है एतावता मिथिलामें बड़ी प्रसन्नता है। सड़कपर, घरमें विवाहकी ही चर्चा है। सखियाँ आपसमें स्नेहिल चर्चा करती हैं, जनकजी बार-बार श्रीसीताको बुलायेंगे और ये दोनों भाई श्रीसीताकी विदाई कराने आयेंगे। समस्त पुरवासी इनका दर्शन करके सुखी होंगे। एक सखीने कहा—श्रीराम लक्ष्मणकी ही भाँति श्रीदशरथजीके पास दो भाइयोंका एक जोड़ा और भी है, उनका नाम भरत और शत्रुघ्न है। श्रीभरतजी ठीक श्रीरामजीकी ही तरह हैं। कोई उनको सहसा पहचान नहीं सकता है।

भरतु रामही की अनुहारी।
सहसा लखि न सकहिं नर नारी॥

जनकपुरकी समस्त स्त्रियाँ अपना अञ्चल पसारकर ब्रह्माजीसे याचना करती हैं—इन चारों भाइयोंका विवाह जनकपुरमें ही हो और हमें माङ्गलिक गीत गानेका अवसर मिले।

उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कबि कोबिद कहैं।
बल बिनय बिद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहैं॥
पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं॥
कहहिं परसपर नारि बारि बिलोचन पुलक तन।
सखि सबु करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ॥

कुछ दिनके बाद विवाहका समय आ गया। अगहन मास—पहले वर्षके आरम्भका मास अगहन ही था। इसको 'आग्रहायण' भी कहते हैं। अत्यन्त पवित्रमास है, मासोंमें सर्वोत्तम है **'मासानां मार्गशीर्षोऽहं'** यह मास भगवान्का स्वरूप है। ब्रह्माजीने स्वयं लग्न विचारकर अपने भक्त पुत्र देवर्षि नारदसे कहा—हे पुत्र! जनकपुर जावो, इस लग्न पत्रिकाको जनकजीको दे देना। श्रीनारद ब्रह्माजीकी बात सुनकर प्रसन्न हो गये। उनको तो

भगवद्दर्शनका और उत्सवमें सम्मिलित होनेका सुन्दर सुयोग मिल गया। विशेषता यह थी कि ब्रह्माकी सोधी लग्नपत्रिका और श्रीजनकके ज्योतिर्विदोंकी लग्न पत्रिका एक थी।

मंगल मूल लगन दिनु आवा।
हिम रितु अगहनु मासु सुहावा॥
ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू।
लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू॥
पठै दीन्हि नारद सन सोई।
गनी जनक के गनकन्ह जोई॥
सुनी सकल लोगन्ह यह बाता।
कहहिं जोतिषी आहिं बिधाता॥

मङ्गलमयी लग्नकी वेला आ गयी। शङ्खध्वनि, मृदङ्गध्वनि, वेदध्वनि, जयध्वनि होने लगी। मन्त्रीलोग श्रीचक्रवर्त्ती नरेन्द्र दशरथजीको बुलानेके लिये जनवासे गये। जनवासेमें जाकर विनयपूर्वक बोले—हे राजन्! सम्प्रति वैवाहिक वेला आ गयी है, अब आप पधारिये। यह सुनते ही जनवासेके नगाड़े बजने लगे। श्रीवसिष्ठसे पूछ करके, कुलरीति सम्पन्न करके मुनियों और साधुओंके साथ चक्रवर्त्तीजीने प्रस्थान किया।

भयउ समउ अब धारिअ पाऊ।
यह सुनि परा निसानहिं घाऊ॥
गुरहि पूछि करि कुल बिधि राजा।
चले संग मुनि साधु समाजा॥

देवताओंने फूल वर्षाकर नगाड़े बजाये। शिव ब्रह्मा आदि देवता विमानोंपर चढ़कर श्रीरामविवाहका दर्शन करनेके लिये जनकपुर आ गये।

सिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा।
चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा॥
प्रेम पुलक तन हृदयँ उछाहू।
चले बिलोकन राम बिआहू॥

जनकपुरका वैभव देखकर सब देवताओंको आश्चर्य हुआ। ब्रह्मा तो अपने आठ विस्फारित नेत्रोंसे देखकर महान् आश्चर्य कर रहे हैं—यहाँ तो मेरी कुछ करनी ही दृष्टिगोचर नहीं हो रही है। यहाँकी प्रत्येक वस्तु वितान आदि सब अप्राकृत हैं। इनको कौन रच गया? वास्तविकता यह है कि यहाँ पर आज सब करनी उद्भवस्थिति संहारकारिणी श्रीसीताजीकी करनी है। यह उनकी किञ्चिन्मात्र महिमा है एतावता अप्राकृत है। इसलिये ब्रह्माका विशेष आश्चर्यचकित होना स्वाभाविक है।

बिधिहि भयउ आचरजु बिसेषी।
निज करनी कछु कतहुँ न देखी॥

श्रीशङ्करजीने सोचा—ब्रह्मादि देवता आश्चर्य ही करते रह जायेंगे, अतः उन्होंने समझाया। मर्यादा पालनके लिये श्रीब्रह्माका नाम नहीं लिया। देवताओंके बहाने उन्हें समझाया कि यह विवाह हमारे सबके माता पिताका विवाह है। यह विवाह अनादि है। इस समय यहाँका वैभव भी अनादि है। परब्रह्म परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीने कृपा करके हम लोगोंको इस अलौकिक और अनादि विवाहके दर्शन करनेका अवसर दिया है। यहाँ आपलोगोंकी रचना कैसे हो सकती है? समय न नष्ट करिये। वैवाहिक दर्शनका आनन्द लीजिये।

सिवँ समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु।
हृदयँ बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिआहु॥

उसी समय देवताओंने देखा कि श्रीदशरथजी चारों पुत्रोंके साथ जा रहे हैं। श्रीरामजीको देखकर तो वे अति हर्षित हो गये। देवता लोग

श्रीदशरथजीके भाग्यकी सराहना करते हुये पुष्पवृष्टि करने लगे।

सोहत साथ सुभग सुत चारी।
जनु अपबरग सकल तनुधारी॥
मरकत कनक बरन बर जोरी।
देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी॥
पुनि रामहि बिलोकि हियँ हरषे।
नृपहि सराहि सुमन तिन्ह बरषे॥

वास्तवमें तो श्रीपार्वती-शङ्कर आनन्द नहीं—परमानन्द ले रहे हैं। नखसे शिखापर्यन्त—आपादमस्तक सुन्दर श्रीरामचन्द्रजीके रूपको बार बार देखते हैं। एक बार देखनेसे तृप्ति नहीं होती है। वास्तवमें जो इन्हें आजन्म देखेंगे उनकी भी तृप्ति नहीं होगी।

जनम अवधि हम रूप निहारेल।
नयन न तिरपित भेल॥

(विद्यापति)

अतः शङ्कर-पार्वती बार-बार देखते हैं। श्रीपार्वती-शङ्करका शरीर पुलकित हो गया। उनकी आखोंमें प्रेमाश्रुजल भरे हुये हैं।

राम रूपु नख सिख सुभग बारहिं बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि॥

सभी भाई घोड़े पर सवार हैं। रामजीके घोड़ेकी गति तो आज श्रीगरुड़की गतिको लज्जित कर रही है।

जेहि तुरंग पर रामु बिराजे।
गति बिलोकि खगनायकु लाजे॥

एक सन्त कहते हैं—यह घोड़ा ही प्राकृत नहीं है। श्रीरामजीकी बारातका दर्शन करनेके लिये और श्रीशङ्करजीकी दृष्टिसे बचनेके लिये कामदेव ही घोड़ेके रूपमें आ गया है अर्थात् विना शरीरका काम श्रीरामके घोड़ेमें प्रविष्ट हो गया।

जनु बाजि बेषु बनाइ मनसिजु राम हित अति सोहई।
आपनें बय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई॥
जगमगत जीनु जराव जोति सुमोति मन मानिक लगे।
किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नर मुनि ठगे॥

श्रीरामजीका प्रिय बननेके लिये अपने मनकी सत्ताको समाप्त करना होगा। आज इस घोड़ेने भगवान्‌की इच्छामें अपने मनको लीन कर दिया है। जिस प्रकार वे चलाना चाहते हैं, उसी प्रकार चलता है। जिस प्रकार वे नचाना चाहते हैं, उसी प्रकार नाचता है। इसका अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। प्रभुने शोभाके लिये लगाम हाथमें अवश्य लिया है; परन्तु आवश्यकता नहीं है। यह घोड़ा तो श्रीरामजीके मनके अनुसार स्वयं ही कार्य कर रहा है।

प्रभु मनसहिं लयलीन मनु चलत बाजि छबि पाव।
भूषित उड़गन तड़ित घनु जनु बर बरहि नचाव॥

विवाहके पूर्व जो कामको अधिकृत कर लेता है, वही विवाहका सच्चा अधिकारी है। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—यह घोड़ा असाधारण है। इसका वर्णन करनेमें वक्ताओंमें श्रेष्ठ श्रीसरस्वतीजी भी असमर्थ हैं।

जेहिं बर बाजि रामु असवारा।
तेहि सारदउ न बरनै पारा॥

देवता लोग श्रीरामजीके वरवेषका दर्शन कर रहे हैं। सर्वप्रथम श्रीशङ्करजीके दर्शनका वर्णन करते हैं। श्रीशङ्करजी रामरूप, रामनाम, रामलीला और रामधामके महान् रसज्ञ—रसिया हैं। इनके एक मुखमें तीन नेत्र हैं '**वन्दे सूर्यशशाङ्क वह्निनेत्रम्**' और पाँच वक्त्र—मुख हैं '**पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्**' इस प्रकार पञ्चदश नेत्र हैं। आज ये अपने सभी

नेत्रोंसे अनुरक्त होकर दर्शन कर रहे हैं।

श्रीशङ्करजीके तीसरे नेत्रके सामने यदि काम आता है तो भस्म हो जाता है, परन्तु यदि श्रीरामजी दर्शनके विषय होते हैं तो वह नेत्र स्नेहिल हो जाता है। कामको देखनेमें रक्त होता है और श्रीरामको देखनेमें अनुरक्त होता है।

संकर राम रूप अनुरागे।
नयन पंचदस अतिप्रिय लागे॥

श्रीलक्ष्मीजीके साथ भगवान् श्रीविष्णुजी भी दर्शन करके मुग्ध हो गये।

हरि हित सहित रामु जब जोहे।
रमा समेत रमापति मोहे॥

ब्रह्माजी भी देखकर प्रसन्न हो गये; परन्तु आठ नेत्र ही जानकर पछताने लगे।

निरखि राम छबि बिधि हरषाने।
आठइ नयन जानि पछिताने॥

श्रीकार्तिकेय अति उत्साहपूर्वक बारह नेत्रोंसे दर्शन कर रहे हैं। वे सोचते हैं—पिताजीसे तो मेरे नेत्र कम हैं; परन्तु बाबाजीसे तो डेवढ़े नेत्र हैं।

सुर सेनप उर बहुत उछाहू।
बिधि ते डेवढ़ लोचन लाहू॥

देवराज इन्द्र श्रीरामजीका दर्शन हजार नेत्रोंसे कर रहे हैं। वे सोचते हैं—सन्तोंकी कृपा तो अच्छी होती ही है; परन्तु उनका क्रोध, उनकी मार और उनका श्राप भी कल्याणमय है।

रामहि चितव सुरेस सुजाना।
गौतम श्रापु परम हित माना॥

श्रीजनकपुरमें रनिवासका वर्णन बहुत सुन्दर है। उन रानियोंके समाजमें शची, सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती भी श्रेष्ठ स्त्रीका कपट वेष बनाकर मिल गयीं। वे प्रत्येक कार्यमें सहयोग कर रही हैं।

सची सारदा रमा भवानी।
जे सुरतिय सुचि सहज सयानी॥
कपट नारि बर बेष बनाई।
मिलीं सकल रनिवासहिं जाई॥

सब देवियाँ कलगान करती हुयी परिछन करनेके लिये चलीं। वर वेषमें श्रीरामजीके कोमल कान्त श्रीविग्रहका दर्शन सब अपनी अपनी भङ्गी—दृष्टिसे कर रही हैं। श्रीरामजीके दूलह वेषका दर्शन करके श्रीसीताजीकी माता सुनयनाको जितना सुख मिला उसका वर्णन हजारों शारदा और हजारों शेष सौ कल्पतक नहीं कर सकते। परिछन करते समय प्रेमाश्रु निकलना चाहते हैं; परन्तु माताजी अमङ्गलके भयसे उन्हें रोककर प्रसन्नतापूर्वक परिछन कर रही हैं।

जो सुख भा सिय मातु मन देखि राम बर बेषु।
सो न सकहिं कहि कलप सत सहस सारदा सेषु॥

नयन नीरु हटि मंगल जानी।
परिछनि करहिं मुदित मन रानी॥

देवतालोग पुष्पवर्षण कर रहे हैं। ब्राह्मण शान्ति पाठ कर रहे हैं।

समयँ समयँ सुर बरषहिं फूला।
सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला॥

इस प्रकार श्रीरामजी दूलह वेषमें मण्डपमें पधार गये। उनको अर्घ्य देकर आसनपर बिठाया गया।

एहि बिधि रामु मंडपहिं आए।
अरघु देइ आसन बैठाए॥

श्रीब्रह्मा, शङ्कर, विष्णु, इन्द्र आदि दिक्पाल और सूर्य आदि सब ब्राह्मणका वेष बनाकर श्रीरामविवाहका आनन्द ले रहे हैं।

बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ।
जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ॥
कपट बिप्र बर बेष बनाएँ।
कौतुक देखहिं अति सचु पाएँ॥

श्रीजनक और श्रीदशरथ दोनों समधियोंका अपूर्व मिलन देखकर देवता भी अनुरक्त हो गये। पुष्पवर्षण करके दोनोंकी कीर्ति गाने लगे।

सामध देखि देव अनुरागे।
सुमन बरषि जसु गावन लागे॥
जगु बिरंचि उपजावा जब तें।
देखे सुने ब्याह बहु तब तें॥
सकल भाँति सम साजु समाजू।
सम समधी देखे हम आजू॥

श्रीजनकने कुलदेवकी भाँति श्रीवसिष्ठ और विश्वामित्रकी पूजा की। इसके अतिरिक्त वामदेव आदि ऋषियोंका पूजन करके आशीर्वाद प्राप्त किया।

मंडपु बिलोकि बिचित्र रचनाँ रुचिरताँ मुनि मन हरे।
निज पानि जनक सुजान सब कहुँ आनि सिंघासन धरे॥
कुल इष्ट सरिस बसिष्ट पूजे बिनय करि आसिष लही।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही॥
बामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस।
दिए दिब्य आसन सबहि सब सन लही असीस॥

श्रीजनकने चक्रवर्त्ती नरेन्द्र कोसलाधीशकी पूजा ईश्वरके समान की।

बहुरि कीन्हि कोसलपति पूजा।
जानि ईस सम भाउ न दूजा॥

विशेषता यह है कि श्रीजनकजीने समस्त बरातियोंकी पूजा समधीके समान की। दान, मान, विनय और सुन्दर वाणीसे सम्पूर्ण बारातका सन्मान किया।

पूजे भूपति सकल बराती।
समधी सम सादर सब भाँती॥
सकल बरात जनक सनमानी।
दान मान बिनती बर बानी॥

सर्वज्ञ शिरोमणि, सर्वान्तर्यामी, मर्यादापुरुष, श्रीरामचन्द्रजीने कपट विप्रके वेषमें उपस्थित देवताओंको पहचान लिया और उनकी मानसिक पूजा करके उन्हें मानसिक आसन दिये। श्रीरामजीका शील स्वभाव देखकर समस्त देवता मनमें प्रमुदित हो गये। भुवन विमोहन, कामाभिराम, श्रीरामके मुखरूपी चन्द्रमाकी छबिको सभीके सुन्दर नेत्ररूपी चकोर आदर, स्नेह और आनन्दपूर्वक पान कर रहे हैं।

सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए।
अवलोकि सीलु सुभाउ प्रभुको बिबुध मन प्रमुदित भए॥
रामचंद्र मुख चंद्र छबि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर॥

कन्यादानकी मङ्गलमयी वेला देखकर श्रीवसिष्ठजीने श्रीशतानन्दसे कहा कि अब आप जाकर कन्याको शीघ्र ले आइये।

समउ बिलोकि बसिष्ठ बोलाए।
सादर सतानंदु सुनि आए॥
बेगि कुअँरि अब आनहु जाई।
चले मुदित मन आयसु पाई॥

सखियाँ श्रीमिथिलेशनन्दिनीका शृङ्गार करके, मङ्गल सामग्री सजाकर, कन्याके हाथमें सिन्दूरका पात्र, अक्षत, पुष्प, द्रव्य रखकर प्रसन्नतापूर्वक मण्डपमें लिवा चलीं।

सीय सँवारि समाजु बनाई।
मुदित मंडपहिं चलीं लवाई॥

रूपकी राशि और कुलसे, चरित्रसे, स्वभाव

आदि सब प्रकारसे पवित्र श्रीसीताको बारातियोंने मन ही मन प्रणाम किया। श्रीरामचन्द्रको देखकर, जोड़ीको अच्छी समझकर सभी पूर्णकाम हो गये। श्रीदशरथको, कौसल्यादि माताओंको सर्वदा आशङ्का रहती थी कि मेरे पुत्र बहुत सुन्दर हैं, इनके योग्य पुत्रवधू मिलेगी क्या? सम्भवत: यही भावना भाइयोंकी भी हो। आज श्रीसीताजीके अलौकिक एवं पवित्र रूपको देखकर सबलोग आनन्द विभोर हो गये। इसी समय देवता श्रीसीताजीको प्रणाम करके फूल वर्षाने लगे। मुनिलोग मन्त्रोंसे आशीर्वाद देने लगे।

आवत दीखि बरातिन्ह सीता।
रूप रासि सब भाँति पुनीता॥
सबहि मनहिं मन किए प्रनामा।
देखि राम भए पूरनकामा॥
हरषे दसरथ सुतन्ह समेता।
कहि न जाइ उर आनँदु जेता॥
सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला।
मुनि असीस धुनि मंगल मूला॥

इस प्रकार आनन्दके वातावरणमें श्रीमिथिलेश राजकिशोरी मण्डपमें आयीं। श्रेष्ठ मुनियोंने शान्ति पाठ किया।

एहि बिधि सीय मंडपहिं आई।
प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई॥

गुरुदेवने कुलाचार सम्पन्न किया। वेदपाठी ब्राह्मणलोग प्रसन्नतापूर्वक वर-कन्यासे गौरीगणेशका पूजन करा रहे हैं।

आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित बिप्र पुजावहीं।

श्रीरामजीके कुलके आदि पुरुष भगवान् सूर्यदेव प्रेमपूर्वक अपने कुलकी समस्त रीतियोंका स्वयं निर्देश करते हैं और उनका श्रद्धापूर्वक पालन हो रहा है। इस प्रकार देवताओंकी पूजा सम्पन्न कराके श्रीजनकनन्दिनीको सुन्दर सिंहासन दिया गया। श्रीसीताजीको श्रीसतानन्दजीने और श्रीरामजीको श्रीवसिष्ठजीने एक दूसरेको देखनेकी आज्ञा दी। वैवाहिक पद्धतिका यह एक अङ्ग है। बड़ी मनोवैज्ञानिक पद्धति है। गुरुओंकी आज्ञासे दोनोंने एक दूसरेका अत्यन्त स्नेहपूर्वक अवलोकन किया। इसके पश्चात् हवन हुआ। हवनके समय अग्निदेव शरीर धारण करके आनन्दपूर्वक आहुतियाँ स्वीकार कर रहे हैं। चारों वेद विप्रका वेष धारण करके, वैवाहिक विधियोंका स्वयं निर्देश करते हैं।

कुल रीति प्रीति समेत रबि कहि देत सबु सादर कियो।
एहि भाँति देव पुजाइ सीतहि सुभग सिंघासनु दियो॥
सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेमु काहु न लखि परै।
मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कबि कैसें करै॥
होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेहिं।
बिप्र बेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं॥

समय जानकर मुनियोंकी आज्ञासे श्रीजनकजीकी पत्नी सुनयनाजी आयीं। वे जनकजीके बाईं ओर सुशोभित हो रही हैं।

समउ जानि मुनिबरन्ह बोलाईं।
सुनत सुआसिनि सादर ल्याईं॥
जनक बाम दिसि सोह सुनयना।
हिमगिरि संग बनी जनु मयना॥

पवित्र, सुगन्धित और माङ्गलिक जलसे परिपूर्ण स्वर्णकलश, मणियोंकी उत्तम कोपर—परात श्रीजनकसुनयनाने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथोंसे श्रीरामजीके आगे रखा। मुनि सस्वर वेदपाठ कर रहे हैं। सुन्दर अवसर समझकर आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। वरके रूपमें श्रीरामचन्द्रजीको

देखकर दम्पति—राजारानी प्रेमविभोर हो गये और चरण पखारने लगे।

कनक कलस मनि कोपर रूरे।
सुचि सुगंध मंगल जल पूरे॥
निज कर मुदित रायँ अरु रानी।
धरे राम के आगें आनी॥
पढ़हिं बेद मुनि मंगल बानी।
गगन सुमन झरि अवसरु जानी॥
बरु बिलोकि दंपति अनुरागे।
पाय पुनीत पखारन लागे॥

इस समय दुन्दुभिध्वनि और जयध्वनि होने लगी।

ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहैं।

दोनों कुलोंके गुरु बर और कन्याकी हथेलियोंको मिलाकर शाखोच्चार करने लगे। पिता, पितामह और प्रपितामह इन तीनोंका नामोच्चारण शाखोच्चारमें किया जाता है। पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न देखकर ब्रह्मादि देवता, मनुष्य और मुनि सब आनन्दसे परिपूर्ण हो गये। सुखके मूल दूलहको देखकर दम्पति—श्रीजनक सुनयनाका शरीर पुलकित हो गया, उनके हृदयमें आनन्द उमड़ आया। राजाओंमें आभूषणस्वरूप श्रीजनकने लोक और वेदकी रीति सम्पन्न करके कन्यादान कर दिया।

बर कुअँरि करतल जोरि साखोचारु दोउ कुलगुर करैं।
भयो पानिगहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आँनद भरैं॥
सुखमूल दूलहु देखि दंपति पुलक तन हुलस्यो हियो।
करि लोक बेद बिधानु कन्यादानु नृपभूषन कियो॥

कन्यादानका प्रसङ्ग महर्षि श्रीवाल्मीकिने भी बहुत सुन्दर लिखा है। उसकी एक झाँकीको झाँकनेका आनन्द लें। श्रीजनकने गद्‌गद होकर कहा—हे कौसल्यानन्दसंवर्द्धन! हे दशरथनन्दन श्रीराम! आपका सर्वविध कल्याण हो। यह मेरी लाड़िली पुत्री सीता तुम्हारी सहधर्मिणीके रूपमें उपस्थित है। इसे स्वीकार करो—इसका पाणिग्रहण करो। यह परम पतिव्रता और महान् सौभाग्यशालिनी है। हे रघुनन्दन! यह मेरी प्राणाधिका स्नेहमयी पुत्री छायाकी भाँति सदा तुम्हारे पीछे-पीछे चलनेवाली होगी।

ततः सीतां समानीय सर्वाभरणभूषिताम्।
समक्षमग्नेः संस्थाप्य राघवाभिमुखेतदा॥
अब्रवीज्जनको राजा कौसल्यानन्दवर्धनम्।
इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव॥
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृह्णीष्व पाणिना।
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण १। ७३। २५-२७)

इयं सीता—हे दशरथनन्दन! जिस सीताके लिये सिद्धाश्रमसे लेकर मिथिलापर्यन्त आप कौतूहलसे युक्त थे कि सीता कैसी होगी? वह सीता। अथवा—हे रघुनन्दन! जिस सीताके लिये आप सिद्धाश्रमसे लेकर मिथिलापर्यन्त पैदल चलकर आये, वह आपकी तपस्याका फल प्रदान करनेवाली सीता। अथवा—हे अचिन्त्यस्वरूप श्रीरामजी! सर्वदा आपके साथ रहनेवाली, अभिन्न एवं अनपायिनी सीता, जो लीलाक्षेत्रमें अवतरित होकर मेरे पास रहकर मुझे भाग्यवान् बना रही थी, वही आपकी परब्रह्ममहिषी सीता। हे अभिरामराम! जो सीता बड़े लाड़ प्यारसे पली है, जिसे यहाँके नरनारीकी तो चर्चा ही क्या है पशु पक्षी भी प्यार करते हैं, वही एक प्रियदर्शना, प्रियदर्शनी, प्रियभाषिणी, महाभागा सुनयनाकी आँखोंकी पुत्तलिका सीता।

मम सुता—आचार प्रधान जनककुलमें समुत्पन्न

श्रीसीताके आभिजात्यके विषयमें आपको कुछ जानना नहीं है।

सहधर्मचरी—'समानो धर्मः सहधर्मः तं चरतीति सहधर्मचरी' अर्थात् हे धर्मविग्रह श्रीराम! हे शरणागतवत्सल! यह आपके अनुकूल शरणागत रक्षयित्री है। इसकी शरणमें जो भी आता है उसे यह निर्भय कर देती है, उसके अपराधोंको भूलकर भी स्मरण नहीं करती है। इस प्रकार आपके अनुकूल धर्माचरण करनेवाली है।

भद्रं ते—हे रामभद्र! मेरी सीता अतिशय शुभ लक्षणवाली है, इससे विवाह होनेपर आपको सर्वविध मङ्गल प्राप्त होंगे तथा जीवनके हर क्षेत्रमें कल्याण होगा। अथवा—वर-वधूका यथाशास्त्र यथायोग्य जोड़ा बहुत कम मिल पाता है। हे सीतानाथ! सीताका और आपका यह युगल अनोखा युगल है। इसके पूर्व न कभी ऐसी अनुरूप वरवधूकी जोड़ी किसीने देखी है और न आगे देखनेकी सम्भावना है। एतावता इस अनोखी जोड़ीको देखकर कहीं किसीकी नज़र न लग जाय—टोना न लग जाय, इसलिये हम आशीर्वाद देते हैं कि आपका सर्वदा कल्याण हो। **'अनुरूप वधूवरयोः संयोगे दृष्टिदोषो भविष्यतीति मङ्गलमाशास्ते भद्रं ते।'** इस प्रकार स्नेहके वातावरणमें श्रीजनकजीने कन्यादान किया—अपनी सुखसे पली हुयी आँखोंकी पुत्तलिका लाड़ली मैथिलीको श्रीरामजीके हाथोंमें समर्पण कर दिया। कन्यादानके पश्चात् श्रीजनक अपने जामाता श्रीरामसे कुछ कहना चाहते थे; परन्तु कण्ठ आर्द्र हो गया। वे मुखसे कुछ बोल ही नहीं सके, उनको अपने शरीरका अध्यास नहीं रहा। आज एक नये विदेहका वर्णन करते हैं। अबतक तो ये ब्रह्मानन्दमें विदेह रहते थे; परन्तु आज श्रीरामजीकी मनोहारिणी साँवली मूर्त्तिने श्रीविदेहको विदेह किया है।

क्यों करै बिनय बिदेहु कियो बिदेहु मूरति सावँरीं।
करि होमु बिधिवत गाँठि जोरी होन लागीं भावँरी॥

विधिवत् देवताओंका होम करके, श्रीरामजीके पीताम्बरके एक कोनेसे श्रीजानकीजीकी चूनरीका एक छोर बाँध दिया गया—ग्रन्थि बन्धन हो गया।

मंगलमय दोउ, अंग मनोहर, ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी।
कनककलस कहँ देत भाँवरी, निरखि रूप सारद भइ भोरी॥

(श्रीगीतावलीरामायण १। १०५। ३)

ग्रन्थिबन्धनके पश्चात् भाँवरें होने लगीं।

कुअँरु कुअँरि कल भावँरि देहीं।
नयन लाभु सब सादर लेहीं॥

इसके पश्चात् सिन्दूर दान हो रहा है। दो पङ्क्तियोंमें बड़ा भावपूर्ण वर्णन है—मानों कमलमें अच्छी तरह लाल पराग भरकर अमृतके लोभसे साँप चन्द्रमाको अलङ्कृत कर रहा है।

राम सीय सिर सेंदुर देहीं।
सोभा कहि न जाति बिधि केहीं॥
अरुन पराग जलजु भरि नीकें।
ससिहि भूष अहि लोभ अमी कें॥

अरुण पराग सिन्दूर है, कमल श्रीरामजीका हाथ है और चन्द्रमा श्रीमैथिलीका ललाट है। भूषित करना माँग भरना है। सर्प श्रीरामजीकी भुजा है, अमृत सुहाग है। चन्द्रमाको देखकर कमल सम्पुटित हो जाता है इसी प्रकार सिन्दूर भरनेमें पाँचों अँगुलियाँ भी सम्पुटित हो जाती हैं।

पहले श्रीकिशोरीजी दाहिनी ओर बैठी थीं, सिन्दूरदानके समय वामभागमें बिठा दी गयी थीं। अब गुरुदेवकी आज्ञासे एक आसनपर श्रीसीता

रामजी विराजमान हो गये। श्रीसीताजी दाहिनी ओर हैं।

बहुरि बसिष्ठ दीन्हि अनुसासन।
बरु दुलहिनि बैठे एक आसन॥

इस प्रकार श्रीरामविवाह सम्पन्न हो गया।

भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा।

श्रीमाण्डवी और श्रुतिकीर्तिके विवाहकी भूमिका श्रीवसिष्ठ और श्रीविश्वामित्रने पहलेही निश्चित कर ली थी। श्रीवाल्मीकीयरामायणके अनुसार श्रीलक्ष्मणजीके लिये श्रीउर्मिलाकी याचना तो श्रीजनकजीने की थी।

ब्रह्मर्षि श्रीवसिष्ठ सहित महामुनि विश्वामित्रने एक प्रस्ताव किया।

तमुक्तवन्तं वैदेहं विश्वामित्रो महामुनिः।
उवाच वचनं वीरं वसिष्ठसहितो नृपम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण १। ७२। १)

हे राजन्! यह सम्बन्ध सर्वथा एक दूसरेके योग्य है। रूप-सम्पत्तिकी दृष्टिसे भी समान योग्यताका है; क्योंकि उर्मिलासहित श्रीसीताजी श्रीराम और लक्ष्मणके अनुरूप हैं।

सदृशो धर्मसम्बन्धः सदृशो रूपसम्पदा।
रामलक्ष्मणयो राजन् सीता चोर्मिलया सह॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण १। ७२। ३)

हे नरश्रेष्ठ! इसके अनन्तर हमें और भी कुछ कहना है; आपलोग मेरी बात सुनें। आपके अनुज कुशध्वजकी दो कन्यायें हैं, जो इस भूमण्डलमें अनुपम सुन्दरी हैं। हे राजन्! मैं आपकी उन दोनों कन्याओंका कुमार भरत और शत्रुघ्नके लिये पत्नीत्वेन वरण करता हूँ।

मुनियोंके इस आनन्दमय प्रस्तावसे सर्वत्र आनन्द छा गया। यह प्रस्ताव सभीको अच्छा लगा। जिसने सुना उसीने सराहा। श्रीजनकने गद्गद होकर बद्धाञ्जलि होकर दोनों मुनिवरोंसे कहा **'जनकः प्राञ्जलिर्वाक्यमुवाच मुनिपुङ्गवौ'।** हे मुनिश्रेष्ठों! आपके इस सहृदयतापूर्ण प्रस्तावसे आज हमारा कुल धन्य हो गया। आपका कल्याण हो। आप जैसा कहते हैं, ऐसा ही हो। श्रीभरत और शत्रुघ्न इन दोनों कन्याओंको अपनी-अपनी धर्मपत्नीके रूपमें स्वीकार करें।

इस प्रसङ्गसे यह सिद्ध होता है कि उस समय गुरुजनोंका कितना समादर था। उनकी आज्ञाको कोई टाल नहीं सकता था और गुरुजन अपना कितना अधिकार समझते थे। श्रीदशरथ और जनकसे पूछनेकी भी आवश्यकता नहीं अनुभव की। श्रीविश्वामित्र और श्रीवसिष्ठने आपसमें परामर्श किया और निश्चय कर लिया, घोषणा भी हो गयी। धन्य है! इसे गुरुमहिमा कहें या शिष्यमहिमा? गुरुओंका कितना महत्त्वपूर्ण हितचिन्तन है, साथ ही शिष्योंका कितना महत्त्वपूर्ण समर्पण है।

तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै।
मांडवी श्रुतकीरति उरमिला कुअँरि लईं हँकारि कै॥
कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई॥
जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै।
सो तनय दीन्हीं ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै॥
जेहि नामु श्रुतकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी॥

जिस विधिसे श्रीरामजीका विवाह हुआ, उसी विधिसे तीनों भाइयोंका विवाह सम्पन्न हो गया।

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी।
सकल कुअँर ब्याहे तेहिं करनी॥

श्रीजनकजीने बड़ी उदारतापूर्वक दहेज दिया और चक्रवर्त्तीजीने बड़ी उदारतापूर्वक स्वीकार करके याचकोंसे कहा—'जिसकी जो इच्छा हो ले लो।' उनके लेनेसे जो बच गया वह जनवासेमें आ गया। दोनों सम्बन्धियोंकी उदारता आदर्श है। इसमें त्यागकी भावना है।

दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा।
उबरा सो जनवासेहिं आवा॥

फिर श्रीजनकजी अपने भाई कुशध्वजके साथ कोसलनरेश श्रीदशरथजीकी स्नेहपूर्वक स्तुति करते हैं—हे राजन्! आपके सम्बन्धसे हम कृतार्थ हो गये। आज हम सब प्रकारसे बड़े हो गये। संसारमें हमारा सम्मान बढ़ गया। हे अयोध्यानाथ! हमलोग बिना मोलके आपके हाथ बिक गये हैं। हे कोसलराज! हमारी चारों पुत्रियोंको अपनी टहलनी मानकर उनका पालन पोषण नित्य नवीन करुणा करके करियेगा। श्रीदशरथजीने भी उनकी महती प्रशस्ति की—हे मिथिलानरेश! हमने सुना है कि प्रतिग्रह दाताके अधीन होता है।

प्रतिग्रहो दातृवशः श्रुतमेतन्मया पुरा।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण १। ६९। १४)

श्रीअयोध्यामें आपकी पुत्रियाँ टहलनी बनकर नहीं रहेंगी अपितु राजरानी बनकर रहेंगी। हमारे आँखोंकी पुतली बनकर रहेंगी।

कर जोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों॥
संबंध राजन रावरें हम बड़े अब सब बिधि भए।
एहि राज साज समेत सेवक जानिबे बिनु गथ लए॥
ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुना नई।
अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीट्यो कई॥
पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमान निधि समधी किए।
कहि जाति नहिं बिनती परस्पर प्रेम परिपूरन हिए॥

विवाह सम्पन्न होनेपर श्रीदशरथजी जनवासेको चले। देवतागण फूल बरसा रहे हैं। दुन्दुभिध्वनि, जयध्वनि और वेदध्वनि हो रही है। आकाश और नगर दोनोंमें प्रभूत आनन्द सम्पन्न हो रहा है। श्रीमुनीश्वरकी आज्ञा प्राप्त करके सखियाँ मङ्गलगान करती हुईं चारों दुलहिनोंके साथ चारों दुलहोंको लेकर कोहबरके लिये चली।

बृंदारका गन सुमन बरिसहिं राउ जनवासेहि चले।
दुंदुभी जय धुनि बेद धुनि नभ नगर कौतूहल भले॥
तब सखीं मंगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै॥

कोहबरका प्रसङ्ग रसिकोंका प्राण है, रसिक सज्जनोंने इस प्रसङ्गका अनेक प्रकारसे सङ्कीर्तन किया है। इस प्रसङ्गका आरम्भ श्रीकिशोरीजीके ***'प्रेम पिआसे नैन'*** से आरम्भ होता है।

पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचति मनु सकुचै न।
हरत मनोहर मीन छबि प्रेम पिआसे नैन॥

श्रीसीताजी बार-बार अपने प्राणप्रियतम श्रीरामको निहारती हैं और सकुचा जाती हैं, परन्तु उनका स्नेही मन सङ्कुचित नहीं होता है। उनके प्रेमके प्यासे नयन सुन्दर मछलियोंकी छबिका अपहरण कर रहे हैं। जिस प्रकार मछली जलमें स्थिर नहीं रहती है, उसी भाँति श्रीकिशोरीजीके नेत्र भी स्थिर नहीं हैं।

प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।

(१। २५८)

जिस प्रकार मछली जलके लिये व्याकुल रहती है उसी प्रकार श्रीसीताके नेत्र भी श्रीराम दर्शनके लिये व्याकुल रहते हैं। श्रीरामजीकी उपस्थितिमें भी नेत्रोंको प्रेम प्यासे कहा गया है,

इसका आशय यह है—सङ्कोचके कारण प्यास नहीं बुझ पाती है।

श्रीभरतजीने भी कहा है—

महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम पिआसे नैन॥

(२। २६०)

दोनोंमें बहुत साम्य है। श्रीभरतका भी पुनीत प्रेम है *'प्रीति पुनीत भरत कै देखी'* और श्रीसीताजीका भी प्रेम पुनीत है *'उपजी प्रीति पुनीत'*। इस दृष्टिसे इस प्रसङ्गका मनन करना चाहिये।

कोहबर प्रसङ्गके आरम्भमें दस पङ्क्तियोंमें परम सुन्दर दूल्हारामजीकी छबिका अनोखा वर्णन है। इस वर्णनमें सर्वप्रथम 'जावकजुत' श्रीचरणोंका वर्णन है।

जावक जुत पद कमल सुहाए।
मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए॥

इस यावकका—महावरका अत्यन्त सौभाग्य है कि यह दूलह सरकारके श्रीचरणोंमें लिपटा हुआ है। एक सन्त कहते थे कि हमें तो सरकार अपने श्रीचरणोंका यावक बना दें। इस वर्णनके अन्तमें मस्तकके 'मौर' का वर्णन है। इस प्रकार आपाद मस्तकका वर्णन हो गया। आदि-अन्त दोनोंमें—श्रीचरण और मस्तकमें वैवाहिक शृङ्गारका वर्णन है। मध्यमें पीत धौत वस्त्र, पीत यज्ञोपवीत और पीत उपरनाकी रचना भी मनोहर है। कोहबरमें अनेक प्रकारकी रसमयी लीलायें हैं। सखियाँ मङ्गलगान करती हुई लौकिक रीति करती हैं। एक दीपकमें घी भरकर उसमें अलग अलग दो बत्तियाँ रख देती हैं और कहती हैं—हे सरकार! इन दोनों बत्तियोंको मिला दें, यदि ये ठीक से मिल गयीं तो आप और सीताजी जीवन पर्यन्त मिलकर रहेंगे। प्रभुने बड़े प्यारसे दोनों बत्ती मिला दीं। इस रीतिको 'वर्तिका मेलन' कहते हैं।

कोहबरहिं आने कुअँर कुअँरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागीं करन मंगल गाइ कै॥

इसके पश्चात् 'लहकौर' का प्रसङ्ग आता है। यह भी एक रीति है। कोहबरमें दुलहा और दुलहिन एक दूसरेके मुखमें कौर—कवल डालते हैं। श्रीपार्वतीजी श्रीरामजीका हाथ पकड़कर श्रीसीताजीके मुखके पास ले जाती हैं। इसी प्रकार श्रीसरस्वतीजी श्रीसीताजीका हाथ पकड़कर श्रीरामजीके मुखके पास ले जाती हैं। इस प्रकार एक दूसरेको दही, बतासा, घी, चीनी आदि खिलाते हैं। वहाँ बैठी हुई सखियाँ आनन्द लेती हैं।

लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहैं।
रनिवासु हास बिलास रस बस जन्म को फलु सब लहैं॥

इस लहकौर प्रसङ्गमें एक लीला अतिशय भावपूर्ण है—श्रीसरस्वतीजी श्रीकिशोरीजीसे कहती हैं—हाथ उठावो और श्रीरामजीके मुखमें दही बतासा डाल दो। परन्तु उस समय श्रीसीताजी अपने हाथकी आरसीकी मणिमें अपने प्राण प्रियतम प्राणाराध्य जीवनसारसर्वस्व श्रीरामजीकी छबि निहार रही हैं। अतः दर्शनमें वियोग होनेके भयसे न तो भुजवल्ली हटाती हैं और न दृष्टि हटाती हैं। एक पलका वियोग नहीं करती हैं।

निज पानि मनि महुँ देखिअति मूरति सुरूपनिधान की।
चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी॥

श्रीगोस्वामीजीने श्रीकवितावली रामायणमें भी इस भावका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

दूलह श्रीरघुनाथु बने दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं।

गावति गीत सबै मिलि सुंदरि बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं॥
रामको रूपु निहारति जानकी कंकन के नगकी परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारत नाहीं॥

(श्रीकवितावलीरामायण १। १७)

रसिक सन्त श्रीरसिकबिहारीजीने कोहबरके प्रसङ्गमें श्रीसिद्धि और श्रीरामजीका संवाद अतिशय भावपूर्ण कई पदोंमें गाया है। उनमेंसे चार पद, दो सिद्धिजीके और दो श्रीरामजीके हैं। इनका रसास्वादन करें।

सरस सनेह सने मधुर सुधासे वैन
मंद मुसक्याय फेरि कबधौं सुनावोगे।
रसिक विहारी बलिहारी या तिहारी छबि
मंजु मन हारी फेरि कब दरशावोगे॥
रूपकी उपासी हमैं दासी जानि खासी लाल
यौं ही फेरि कबधौं अनंद उर छावोगे।
ये हो श्याम सुन्दर सुजान प्राणप्यारे छैल
सांची कहौ फेरि मिथिला में कब आवोगे॥
ताछिन बोली एक तिय सुनौ छबीले लाल।
यह अधार है प्राणकी प्रिया जानकी बाल॥
है सबको अति नेह सिया महँ सो रसिकेश विलंब न लैयो।
बारहिं बार बुलावहिंगे इहि ते मिथिलेश ललीहिं पठैयो॥
फेरि हिये हुलसाय लला मिथिला पुरबासिनको सुख दैयो।
राजकिशोर सदा तुमहीं इत सीतहि आप लिवावन ऐयो॥
सत्य सनेह सने सुनि बैन कहै अनुराग भरी वर नारी।
देखि दशा तिनकी रघुनंद पगे दुहुँ नैन भरे सुख बारी॥
धीरज दै तिन श्याम कही रसिकेश रहौं सब भाँति सुखारी।
ज्यों तुम मोहिं धरो उरमें तिमि हौं सबही अपने हिय धारी॥
आवहिंगे हम बार घनी मिथिला रसिकेश लहैं सुख भारी।
ऐसो सनेहको ठौर न और कहूँ जगमाहँ रुचै जहँ गारी॥
सत्य विचार करौ अपने अपने उर जानति हौ गति सारी।
होय कोऊ नरनारी सदा तिहि लागत है ससुरार पियारी॥

(राम रसायन)

इस प्रकार आनन्दके वातावरणमें कोहबरका प्रसङ्ग पूर्ण होता है। सखियाँ चारों दुलहों और चारों दुलहिनियोंको लेकर जनवासे चलीं।

बर कुअँरि सुंदर सकल सखीं लवाइ जनवासेहि चलीं।

अपनी-अपनी बहुओंके साथ चारों कुमार पिताजीके पास आये। जनवासेमें मङ्गल और आनन्द परिव्याप्त हो गया।

सहित बधूटिन्ह कुअँर सब तब आए पितु पास।
सोभा मंगल मोद भरि उमगेउ जनु जनवास॥

श्रीजनकजीके यहाँ अनेक प्रकारकी रसोई तैयार हो गयी। अनेक प्रकारके पक्वान्न बने। भक्ष्य, भोज्य, चोष्य और लेह्य चार प्रकारके अनेक ब्यञ्जन बने। श्रीजनकजीने भोजनके लिये बरातियोंका आवाहन किया। सब लोग चल पड़े। पुत्रोंके साथ श्रीदशरथजी भी चले। श्रीजनकने सबका चरण पखारकर यथायोग्य पीढोंपर बैठाया। श्रीअयोध्यानाथके चरणोंका प्रक्षालन श्रीजनकने स्वयं किया।

धोए जनक अवधपति चरना।
सीलु सनेहु जाइ नहिं बरना॥

'सीलु सनेह' का भाव कि लक्ष्मीनिधिजी जलपात्रसे सुगन्धित और थोड़ा गर्म जल डाल रहे हैं, श्रीजनक स्नेह गद्गद होकर चरणोंको धोकर अपने वस्त्रसे पोंछे। इसके पश्चात् श्रीशङ्करजीके हृदयकमलमें निवास करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंको धोया। श्रीरामजीकी तरह अन्य तीनों भाइयोंके भी चरण धोये। सबको उचित आसन श्रीजनकने दिये। पत्तलें परोसी गयीं। व्यञ्जन तो बहुत हैं; परन्तु सबसे पहले चतुर और विनम्र पाचकोंने दाल भातका परिवेषण किया। दाल भातमें सुन्दर गौका घृत डाला गया। यहाँ 'सुरभि' शब्द का प्रयोग है। इस शब्दका

सुगन्धित और गौ दोनों अर्थ होता है। भोजन सुन्दर स्वादिष्ट और पवित्र था। क्षणभरमें ही सबके सामने परस दिया गया।

सूपोदन सुरभी सरपि सुंदर स्वादु पुनीत।
छन महुँ सब कें परुसि गे चतुर सुआर बिनीत॥

सब लोग पञ्च कवल करके भोजन करने लगे। पञ्च कवलकी पद्धति यह है कि भोजन करनेके पूर्व आचमन करके '**प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा**' और **समानाय स्वाहा**—इन मन्त्रोंका उच्चारण करते हुये पहले पाँच ग्रासोंको अपने मुखमें डाले। पुन: आचमन करके तब भोजन आरम्भ करे। पञ्च कवलकी और भी पद्धतियाँ हैं।

'पंच कवल करि जेवन लागे।'

भोजन करते समय जनकपुरकी देवियाँ पुरुष और स्त्रियोंके नाम ले-लेकर मधुरध्वनिसे गाली गा रही हैं। गाली समयपर अच्छी लग रही है।

सुनकर श्रीदशरथजी समाजके सहित प्रसन्न हो रहे हैं। एक रसिक कविके शब्दोंमें उस समयकी एक झाँकीका अवलोकन करें। एक मिथिलानी दूसरीसे कहती है।

राजकी बात सुनों सजनी,
मण्डप में भयौ इक कौतुक भारी।
जेंमन बैठे जभी वर चार,
सब नारि चढ़ीं मिथिलेश अटारी॥
देखत राम को रूप अनूप,
विमोह गईं सब गावनिहारी।
भूल गईं अवधेश को नाम,
अरु देन लगीं मिथिलेशहि गारी॥
समय सुहावनि गारि बिराजा।
हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥

इस प्रकार सब लोगोंने मुख धोकर पान खाकर जनवासेके लिये प्रस्थान किया।

प्रात:काल संध्या आदि कर्म करके श्रीदशरथजी गुरु वसिष्ठजीके पास गये। उनके चरणोंमें प्रणाम और पूजन करके अमृतस्यन्दिनी वाणी बोले। हे मुनिश्रेष्ठ! आज मैं आपकी कृपासे पूर्णकाम हो गया।

करि प्रनामु पूजा कर जोरी।
बोले गिरा अमिअँ जनु बोरी॥
तुम्हरी कृपाँ सुनहु मुनिराजा।
भयउँ आजु मैं पूरनकाजा॥

हे महात्मन्! अब आप सब ब्राह्मणोंको बुलाकर सब तरहसे अलंकृत गायें दीजिये। श्रीवसिष्ठजीने आदरपूर्वक मुनिगणोंको बुलवा भेजा। अच्छे-अच्छे मुनि आ गये।

बामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि।
आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि॥

सब लोगोंको राजाने दण्डवत् प्रणाम किया और स्नेहपूर्वक पूजन करके सब प्रकारसे अलंकृत गायें प्रसन्न होकर भूदेव ब्राह्मणोंको दीं।

सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं।
मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं॥

गौ देकर अनेक प्रकारसे विनती की। उन्होंने आशीर्वाद दिया। प्रतिग्रह और लोकमान्यता तपस्यारूपी जङ्गलको भस्म कर देती है। यह ज्ञात होनेपर भी देवर्षि नारदकी भाँति अनेक महाभागवतोंने 'श्रीरामके विवाहका अङ्गभूत प्रतिग्रह है।' यह समझकर स्वीकार कर लिया। गोदानके पश्चात् याचकोंको बुलाकर उनकी रुचिके अनुसार स्वर्ण, वस्त्र, मणि, अश्व, हाथी और रथ दिये। वे गुणानुवाद गाते और 'सूर्यकुलके स्वामीकी जय हो, जय हो, जय हो' कहते हुये चले गये।

चले पढ़त गावत गुन गाथा।

जय जय जय दिनकर कुल नाथा॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके विवाहका महोत्सव सम्पन्न हो गया।

श्रीदशरथजी श्रीविश्वामित्रके चरणोंमें बार बार प्रणाम करके कहते हैं—हे मुनिश्रेष्ठ! यह सब आनन्द आपकी कृपा कटाक्षका प्रसाद है।

बार बार कौसिक चरन सीसु नाइ कह राउ।
यह सबु सुखु मुनिराज तव कृपा कटाच्छ पसाउ॥

श्रीदशरथजी नित्य उठकर विदेहराजसे विदाई माँगते हैं। श्रीजनकजी अपने हार्दिक अनुरागसे उन्हें नित्य ही रोक लेते हैं।

दिन उठि बिदा अवधपति मागा।
राखहिं जनकु सहित अनुरागा॥

नगरमें नित्य अभिनव आनन्दका उत्सव होता है। श्रीदशरथजीका जाना किसीको अच्छा नहीं लगता। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये।

बहुत दिवस बीते एहि भाँती।
जनु सनेह रजु बँधे बराती॥

केवल श्रीदशरथ एवं उनका परिवार ही नहीं अपितु समस्त बराती श्रीविदेहके स्नेहरज्जु बन्धनमें बँध गये हैं। संसारमें बहुतसे बन्धन होते हैं; परन्तु स्नेह-रज्जुका बन्धन तो अत्यन्त दृढ़ बन्धन होता है। काष्ठ भेदनकी शक्तिवाला भ्रमर कमलकोषका भेदन नहीं करता अपितु उसीमें बन्द पड़ा रहता है।

बन्धनानि किल सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृत बन्धनमन्यत्।
दारुभेद निपुणोऽपि षडङ्घ्रिर्निष्क्रियो भवति पङ्कजकोषे॥

चक्रवर्त्तीजीने महर्षि विश्वामित्रजीसे स्नेहपूर्वक कहा—हे महर्षे! हम श्रीजनकके स्नेहाग्रहको टाल नहीं पा रहे हैं; परन्तु अब हमें श्रीअयोध्या जाना चाहिये। आप सहायता करें। श्रीविश्वामित्र और श्रीसतानन्दने श्रीजनकको समझाया कि अब आप उन्हें जानेकी आज्ञा दे दें। सुनते ही श्रीजनकने भीगी वाणीमें 'जो आज्ञा' कहकर मन्त्रियोंको बुलाकर कहा—अयोध्यानाथ श्रीअयोध्या जाना चाहते हैं। रनिवासमें सूचना कर दें। यह सुनकर मन्त्री, ब्राह्मण, सभासद और स्वयं राजा स्नेहार्द्र हो गये।

अवधनाथु चाहत चलन भीतर करहु जनाउ।
भए प्रेमबस सचिव सुनि बिप्र सभासद राउ॥

मिथिलाके नर-नारी यह समाचार सुनकर व्याकुल हो गये। आते समय जहाँ-जहाँ बरातियोंने पड़ाव किया था, वहाँ-वहाँ सीधा—चावल आटा आदि, अनेक प्रकारके मेवे, पक्वान्न आदि अनेक बैलों और कहारोंपर लाद-लादकर भेज दिया। अनेक प्रकारके दहेजका सामान सजाकर श्रीजनकने अवधपुर भेज दिया।

दाइज अमित न सकिअ कहि दीन्ह बिदेहँ बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि॥
सबु समाजु एहि भाँति बनाई।
जनक अवधपुर दीन्ह पठाई॥

'बारात चली जायगी' यह सुनकर रानियाँ व्याकुल हो गयीं। जिस प्रकार मछलियाँ थोड़े जलमें व्याकुल हो जाती हैं कि यह जल सूख गया तो क्या होगा।

चलिहि बरात सुनत सब रानीं।
बिकल मीनगन जनु लघु पानीं॥

श्रीसीताजीको बार-बार गोदमें लेती हैं और उन्हें आशीर्वाद तथा शिक्षा देती हैं—हे पुत्रि! तुम अपने पतिको सदा प्यारी होवो, तुम्हारा सोहाग अचल हो। हे सीते! अपनी सास, श्वसुर और गुरुकी सेवा करना। तुम्हारे पति बड़े सङ्कोची हैं अतः उनका रुख देखकर उनकी आज्ञाका पालन करना।

पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं।
देइ असीस सिखावनु देहीं॥
होएहु संतत पियहि पिआरी।
चिरु अहिबात असीस हमारी॥
सासु ससुर गुर सेवा करेहू।
पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू॥

इसी समय भाइयोंके सहित श्रीरामजी विदा करानेके लिये श्रीजनकके महलमें चले।

तेहि अवसर भाइन्ह सहित रामु भानु कुल केतु।
चले जनक मंदिर मुदित बिदा करावन हेतु॥

चारों भाइयोंका दर्शन करनेके लिये मिथिलानगरके नर-नारी दौड़ पड़े। कोई कहता है—आज ये चलना चाहते हैं। श्रीविदेहने विदाईकी समग्र सामग्री तैयार कर ली है। आज इन चारों राजकुमारोंके मनोहर रूपको नेत्र भरकर देख लो।

कोउ कह चलन चहत हहिं आजू।
कीन्ह बिदेह बिदा कर साजू॥
लेहु नयन भरि रूप निहारी।
प्रिय पाहुने भूप सुत चारी॥

सब रानियाँ श्रीरामकी छवि देखकर अतिशय अनुराग ग्रस्त हो गयीं। वे बार-बार चरण पकड़ती हैं।

देखि राम छबि अति अनुरागीं।
प्रेमबिबस पुनि पुनि पद लागीं॥
रही न लाज प्रीति उर छाई।
सहज सनेहु बरनि किमि जाई॥

'रही न लाज' पहले अति अनुरागीं तत्पश्चात् प्रेमविवश हो गयीं। उसके बाद शरीरके वस्त्रतककी सँभाल नहीं रही। प्रीतिको नदी कहा जाता है। नदीके प्रवाहमें सब कुछ बह जाता है।

उर कछु प्रथम बासना रही।
प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥
(५। ४९)

श्रीविभीषणजी कहते हैं—हे प्रभो! मेरे मनमें पहले कुछ कामना थी; परन्तु आपके श्रीचरणोंकी प्रीति सरितामें बह गयी। उसी प्रकार यहाँ राम प्रीतिसरिताके प्रवाहमें लज्जा और नियम बह गये। यह अत्यन्त प्रेमका लक्षण है।

सब भाइयोंको उबटन लगाकर स्नान कराया और अत्यन्त प्रेमसे षट्रस भोजन कराया।

भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए।
छरस असन अति हेतु जेवाँए॥

श्रीरामजीने कहा—हे माताजी! मेरे पिताजी श्रीअयोध्या जाना चाहते हैं। समधीको समधी विदा करता है और जामाताको सास विदा करती है, अतएव हमें पिताजीने आपके पास भेजा है। हे माताजी! हम लोगोंको प्रसन्न मनसे जानेकी आज्ञा दीजिये। हमें अपना बालक जानकर नित्य स्नेह करती रहियेगा।

राउ अवधपुर चहत सिधाए।
बिदा होन हम इहाँ पठाए॥
मातु मुदित मन आयसु देहू।
बालक जानि करब नित नेहू॥

श्रीरामके वचनोंको सुनते ही सारी रानियाँ व्याकुल हो गयीं। स्नेहके कारण उनका कण्ठावरोध हो गया, अत: वे कुछ बोल नहीं सकीं। अपनी चारों पुत्रियोंको हृदयसे लगाकर उनके पतियोंको समर्पित कर दिया। श्रीसुनयनाजी हाथ जोड़कर बार-बार कहती हैं—हे सुजान शिरोमणे! हे तात! आपको तो सब ज्ञात है। मेरी सीता समस्त परिवारको, पुरवासियोंको, मुझको तथा अपने पिताको प्राणके समान प्रिय है। हे रघुनन्दन! सीताका स्नेह और शील समझकर इसे आप

अपनी किङ्करीके रूपमें मानियेगा।

करि बिनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै।
बलि जाउँ तात सुजान तुम्ह कहुँ बिदित गति सब की अहै॥
परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानिबी।
तुलसीस सीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी॥
यह मैथिली जोति जिया की मेरी,
हे कुमार हिया सों भुलाइयो ना।
मिथिलापति भौन दिया सी रही,
मति याकी अबोध खिझाइयो ना॥
सखियान के साथहु बिन्दु लला,
अँखियान ते ओट पठाइयो ना।
रघुनन्दन प्राण पियारे कबौ,
अनजान सिया पै रिसाइयो ना॥

रघुनन्दन श्रीरामजीने अपनी सास श्रीसुनयनाका अनेक प्रकारसे सन्मान करके उन्हें समझाया। पुनः हाथ जोड़करके जानेकी आज्ञा माँगी। पुनः-पुनः प्रणाम करके, आशीर्वाद प्राप्त करके महलसे प्रस्थान किये।

श्रीसीताजीकी विदाईका अत्यन्त करुण प्रसङ्ग है। श्रीसुनयनाजी पुत्रियोंको बुलाकर उनसे बार बार भेंट करती हैं। उनको पहुँचाकर उनसे पुनः मिलती हैं। बार-बार रोककर मिलती हैं, उन्हें छोड़ना ही नहीं चाहती हैं। सखियोंने उन्हें बलपूर्वक अलग किया, जिस प्रकार सद्यःप्रसूता धेनुसे उसकी बालिकाको अलग किया जाता है। वे दोनों हृदयसे अलग नहीं होना चाहतीं।

पहुँचावहिं फिरि मिलहिं बहोरी।
बढ़ी परस्पर प्रीति न थोरी॥
पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई।
बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई॥

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—ऐसा ज्ञात होता है कि विदेहनगरमें करुणा और विरहने डेरा डाल दिया है।

प्रेम बिबस नर नारि सब सखिन्ह सहित रनिवासु।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर करुनाँ बिरहँ निवासु॥

'निवास' का भाव कि अब यहाँसे आजीवन नहीं जायेगा। वास्तवमें तो करुणा और विरह ही प्रेमीका सर्वस्व है।

तोता और मैना भी व्याकुल होकर कह रहे हैं—वैदेही कहाँ हैं? इन पक्षियोंको श्रीसीताजीने स्वर्णके पिंजरोंमें रखकर पढ़ाया है। ***'कहाँ वैदेही'*** का भाव यह है कि श्रीसीताको बुलावो हम पूछेंगे कि हमें इतने प्यारसे क्यों रखा था? अब हमें कौन इतना प्यार करेगा?

सुक सारिका जानकी ज्याए।
कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए॥
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही।
सुनि धीरजु परिहरइ न केही॥

उसी समय अपने अनुज कुशध्वजके साथ श्रीजनकजी भी आ गये। उनकी आँखोंमें प्रेमके आँसू उमड़ आये। श्रीजनकको देखकर श्रीसीताजी स्नेहार्द्र होकर दौड़ीं। श्रीजनकने अश्रुवर्षण करते हुये अपनी प्राणप्रिय पुत्रीको हृदयसे लगा लिया। दोनों सिसक-सिसककर रोने लगे। यह द्रावक दृश्य देखकर सारा समाज सिसक पड़ा। श्रीजनकका ज्ञान भी आज सिसक-सिसककर श्रीसीताराम प्रेममें परिवर्तित हो गया। आज श्रीजनक ज्ञानी नहीं हैं अपितु प्रेमी हैं।

बंधु समेत जनक तब आए।
प्रेम उमगि लोचन जल छाए॥
सीय बिलोकि धीरता भागी।
रहे कहावत परम बिरागी॥
लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी।
मिटी महामरजाद ग्यान की॥
देखत ही सिय मूरतिको,

निज अंग विफूरति खोवन लागे।
मंत्री सबै मन मौन धरे,
मिथिलेश कै सूरति जोवन लागे॥
मानो बिराग की राख महीप दृग,
जलि बिंदु सो धोवन लागे।
ज्ञान की तो मरजाद मिटी,
कहि जानकी जानकी रोवन लागे॥

श्रीजनकजीने सुन्दर विदाई की लग्न वेला जानकर पालकी सजाकर उसमें आवश्यकताकी समग्र सामग्री रखकर मँगवायीं। परिवारके लोगोंको विरह-व्यथासे अत्यन्त व्यथित देखकर श्रीजनकने पुत्रियोंको पालकियोंपर स्वयं चढ़ाया।

प्रेमबिबस परिवारु सबु जानि सुलगन नरेस।
कुअँरि चढ़ाईं पालकिन्ह सुमिरे सिद्धि गनेस॥

चक्रवर्त्ती राजेन्द्र श्रीदशरथने ब्राह्मणोंका दान मानसे सन्मान करके, श्रीगणेशजीका स्मरण करके प्रस्थान किया। मङ्गलोंके मूल अनेक प्रकारके शकुन हुये। देवतालोग फूल वर्षाने लगे। अप्सरायें गीत गाने लगीं। जनक नगरमें सबको स्नेहमें—श्रीसीताविरोगमें डुबा हुआ देखकर देवतालोग मङ्गल कार्य कर रहे हैं। श्रीदशरथजीने डङ्का बजाकर प्रमुदित होकर श्रीअयोध्याजीके लिये प्रस्थान किया।

सुमिरि गजानन कीन्ह पयाना।
मंगलमूल सगुन भए नाना॥
सुर प्रसून बरषहिं हरषि करहिं अपछरा गान।
चले अवधपति अवधपुर मुदित बजाइ निसान॥

श्रीदशरथजीने विनय करके सबको लौटा दिया; परन्तु बार-बार कहनेपर भी अतिशय स्नेहके कारण श्रीजनकजी नहीं लौटना चाहते हैं।

बहुरि बहुरि कोसलपति कहहीं।
जनकु प्रेमबस फिरै न चहहीं॥

बहुत दूर चले गये। चक्रवर्त्तीजी रथसे उतरकर खड़े हो गये। उस समय उनके नेत्रोंसे गङ्गा, यमुनाकी धारा बह चली।

राउ बहोरि उतरि भए ठाढ़े।
प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े॥

श्रीजनकजीने हाथ जोड़कर स्नेहामृतमें डूबे हुये वचन कहे—हे राजन्! आपकी विनती करनेके लिये मेरे शब्दोंमें सामर्थ्य नहीं है। हे चक्रवर्त्ती नरेश! हे महाराज! आपने सब प्रकारसे मुझे बड़ाई दी है।

करौं कवन बिधि बिनय बनाई।
महाराज मोहि दीन्हि बड़ाई॥

श्रीजनकजी श्रीवसिष्ठ प्रमुख सभी मुनियोंको प्रणाम करके अपने जामाताओंसे मिले। श्रीजनकजीने श्रीरामजीकी अतिशय भावपूर्ण और गम्भीर स्तुति की है। बारह पङ्क्तियोंमें स्तुति है। मैं तो अन्तिम दो पङ्क्तियोंका पाठ करके समयाभावके कारण इस स्तुतिको प्रणाम करूँगा।

श्रीजनकजी कहते हैं—हे रघुनन्दन! आपने मुझे युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तर और प्रलय प्रलयान्तर तकके लिये अमर कर दिया। हे स्वामिन्! मेरे भाग्यका वर्णन और आपकी गुणावलियोंका वर्णन ये दोनों अनन्त हैं। दोनोंका अन्त कोई नहीं प्राप्त कर सकता है। हे भक्तवत्सल! यदि मैं कुछ भी कह रहा हूँ तो एक बल है कि आप तनिकसे सुठि—निष्कपट स्नेहसे रीझ जाते हैं—प्रसन्न हो जाते हैं। हे प्रभो! आप मेरे जामाता हैं एतावता हमें कुछ देना चाहिये; परन्तु मैं आपको कुछ भी नहीं दे पाया। इसके विपरीत आपसे एक बार नहीं बार-बार एक ही बर माँग रहा हूँ कि मेरा मन आपके चरणोंको भूलकर भी न छोड़े।

मोर भाग्य राउर गुन गाथा।
कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥
मैं कछु कहउँ एक बल मोरें।
तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरें॥
बार बार मागउँ कर जोरें।
मनु परिहरै चरन जनि भोरें॥

श्रीरामजीने श्रीविदेहराजका अपने पिता श्रीदशरथ, श्रीवसिष्ठ और श्रीविश्वामित्रके समान आदर किया।

करि बर बिनय ससुर सनमाने।
पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने॥

श्रीजनकजीने श्रीभरत-लक्ष्मण और रिपुदमनलालजीसे मिलकर उन्हें प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दिया। तीनों भाई श्रीरामजीके साथ चले। श्रीजनकजी महर्षि विश्वामित्रसे मिलकर उन्हें प्रणाम करके, कृतज्ञता ज्ञापन करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करके अपने नगर चले गये।

बारात नगाड़ा बजाकर श्रीअयोध्याजीके लिये चल पड़ी। मार्गमें ग्रामके नर-नारी श्रीरामजीका दर्शन करके नेत्र प्राप्त करनेका फल प्राप्त करके सुखी हो जाते हैं। बीच-बीचमें विश्राम करते हुये मार्गमें लोगोंको सुख देती हुई बारात शुभ दिनमें श्रीअयोध्याजीके सन्निकट पहुँच गयी।

बीच बीच बर बास करि मग लोगन्ह सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत॥

अभी बारात नगरके बाहर ही है। नगाड़े बजने लगे। शङ्ख, ढोल, भेरी, झाँझ, वीणा, सहनाई आदि सुवाद्य सुवादित हो रहे हैं। घोड़े हिनहिना रहे हैं, हाथी चिग्घाड़ रहे हैं। इन शब्दोंको श्रवण करके अयोध्यावासियोंने समझ लिया कि बारात आ गयी। उनका शरीर पुलकित और मन प्रमुदित हो गया।

पुर जन आवत अकनि बराता।
मुदित सकल पुलकावलि गाता॥

सबने अपने-अपने सुन्दर भवन सजा लिये। समस्त श्रीअयोध्याजी सज गयीं। श्रीकौसल्या आदि श्रीरामकी मातायें प्रेमके विशेष वशमें हो गयीं। उन्होंने ब्राह्मणोंको प्रभूत दान दिया। श्रीगणेशजीका पूजन किया। जिस प्रकार कोई परम दरिद्र अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष पदार्थ पाकर सुखी होता है उसी प्रकार मातायें परम प्रमुदित हैं।

दिए दान बिप्रन्ह बिपुल पूजि गनेस पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु पाइ पदारथ चारि॥

मातायें परिछनकी सामग्री स्वर्णथालमें लेकर प्रसन्न होकर परिछन करने चलीं।

कनक थार भरि मंगलन्हि कमल करिन्ह लिएँ मात।
चलीं मुदित परिछनि करन पुलक पल्लवित गात॥

अभीतक लोग नगरके बाहर थे, जब श्रीवसिष्ठजीने मुहूर्त्त जानकर आज्ञा दी तब रघुकुलमणिने नगर प्रवेश किया।

समउ जानि गुर आयसु दीन्हा।
पुर प्रबेसु रघुकुलमनि कीन्हा॥

श्रीगुरुदेवकी आज्ञासेही नगरसे बाहर गये थे।

सुमिरि रामु गुर आयसु पाई।
चले महीपति संख बजाई॥

(१। ३०२। ३)

और गुरुदेवकी आज्ञासे ही अब नगरमें प्रवेश कर रहे हैं। यह गुरुनिष्ठा है। इस प्रकार सबको आनन्द देते हुये श्रीदशरथजी पुत्रों और बहुओंके साथ राजद्वारपर आये। मातायें परिछन कर रही हैं।

एहि बिधि सबही देत सुखु आए राजदुआर।
मुदित मातु परिछनि करहिं बधुन्ह समेत कुमार॥

मातायें बहुओंके सहित पुत्रोंका परिछन

करके घरमें लिवा चलीं।

निगम नीति कुल रीति करि अरघ पाँवड़े देत।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत॥

सुन्दर चार सिंहासनोंपर चारों युगलको बिठाया। उनका श्रीलक्ष्मी-नारायण भावसे पूजन करके आरती उतारीं *'बारहिं बार आरती करहीं।'*

समस्त मातायें प्रमोदसे परिपूर्ण इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं मानों योगीने परम तत्त्व प्राप्त कर लिया। जन्मके रोगीको अमृत मिलनेसे, जन्मके दरिद्रको स्पर्शमणि मिलनेसे, अन्धेको नेत्रोंका लाभ होनेसे, गूँगेको मुखमें सरस्वती—वाणीके आजानेसे और शूरको समराङ्गणमें विजय पानेसे जो सुख मिलता है; उससे अनन्त गुणा सुख श्रीकौसल्या आदि माताओंको मिल रहा है; क्योंकि रघुकुलके चन्द्रमा अपने भाइयोंके साथ विवाह करके घर आ गये हैं।

पावा परम तत्त्व जनु जोगीं।
अमृतु लहेउ जनु संतत रोगीं॥
जनम रंक जनु पारस पावा।
अंधहि लोचन लाभु सुहावा॥
मूक बदन जनु सारद छाई।
मानहुँ समर सूर जय पाई॥
एहि सुख ते सत कोटि गुन पावहिं मातु अनंदु।
भाइन्ह सहित बिआहि घर आए रघुकुलचंदु॥

मातायें लौकिक रीति करती हैं और दूलह दुलहिनें सङ्कोच करती हैं। इस मोद, विनोदको देखकर श्रीरामजी अपने मनमें मुस्कराते हैं।

लोक रीति जननीं करहिं बर दुलहिनि सकुचाहिं।
मोदु बिनोदु बिलोकि बड़ रामु मनहि मुसुकाहिं॥

प्रत्येक घरमें इष्टदेवका भवन अलग होता है। वर-वधूको सर्वप्रथम इष्टदेवके घरमें ले जाते हैं, वहाँपर देवताओंका पूजन करवाके प्रणाम करवाते हैं। इसके बाद लोकरीति होती है। उसी समय मुख दिखाई—वधूके मुख देखनेकी क्रिया होती है। वैसे तो घर आनेके पूर्व ही माताओंने चारों बहुओंका मुख देख लिया है। बहुओंके सहित चारों पुत्रोंको देखकर मातायें परमानन्दमें निमग्न हो गयीं। एक बार देखनेसे तृप्ति नहीं होती है एतावता श्रीसीतारामजीकी शोभाको बार-बार देखती हैं और अपने जीवनको सफल मानकर प्रमुदित होती हैं।

बधुन्ह समेत देखि सुत चारी।
परमानंद मगन महतारी॥
पुनि पुनि सीय राम छबि देखी।
मुदित सफल जग जीवन लेखी॥

एक सन्त बड़े सुन्दर और स्नेहिल भङ्गीसे 'मुख दिखाई' प्रसङ्गका चित्रण करते थे। जब श्रीसीता आदि बहुओंका मुख श्रीकौसल्यादि माताओंने देखा, तब सबके प्रेमाश्रु छलक आये। श्रीकौसल्याने कहा—मेरी चारों बहुएँ बहुत सुन्दर हैं, सभी बहुओंको अनेक प्रकारके उपहार दिये। श्रीकैकेयी और सुमित्रा आदि माताओंने भी चारों बहुओंको विविध प्रकारकी मूल्यवान् वस्तुएँ मुख दिखाई में दीं। परन्तु श्रीसीताजीको कुछ अधिक मिला। श्रीकौसल्याने कहा—हे पुत्रि! जिस रामको मैंने बड़ी तपस्यासे, आराधनासे, यज्ञ यागादिसे तथा बड़ी कठिनतासे पाया है, उस रामको मैं तुझे समर्पित कर रही हूँ। मेरे राम-रत्नको सँभालकर रखना। श्रीकैकेयीने कहा—हे जनकनन्दिनि! मैं सोचती थी कि मेरे चारों पुत्र बहुत सुन्दर हैं, इनके योग्य बहुएँ मिलेंगी अथवा नहीं? परन्तु मेरा सौभाग्य है कि मेरी चारों बहुएँ बहुत सुन्दर हैं। परन्तु जिस प्रकार मेरा राम सर्वाधिक सुन्दर है उसी प्रकार तुम भी सर्वाधिक सुन्दरी हो। हे

मैथिलि! तुम तो मेरे रामसे भी अधिक सुन्दर हो। मैंने अपने रामके लिये एक दिव्य भवनका निर्माण कराया है, वह अपूर्व महल है, सब प्रकारकी साज सज्जासे परिपूर्ण है। हे सीते! मैं तुम्हारी मुख दिखाईमें वह अनोखा कनक भवन तुम्हें समर्पण कर रही हूँ। उसमें दोनों प्रियाप्रियतम विहार करो। श्रीसुमित्राने गद्‌गद कण्ठसे कहा— हे रामवल्लभे! तुम्हारे जैसा सौन्दर्यपूर्ण मुख मैंने अद्यावधि नहीं देखा है। इस मुख सन्दर्शनमें श्रीकौसल्याजीने अपना धर्मात्मा पुत्र तुम्हें दे दिया, श्रीकैकेयीजीने अपूर्व कनकभवन दे दिया। हे लाड़िली! मैं तो अकिञ्चन हूँ, तुम्हारे मुखके अनुरूप देनेके लिये मेरे पास कुछ नहीं है। सोचती हूँ मैं तुम्हें क्या दूँ? हे पुत्रि! बारह मास गर्भमें रखकर जिन बालकोंको मैंने जन्म दिया है, उन्हें श्रीराम और भरतके चरणोंमें मैंने पहलेही समर्पित कर दिया है। वे सेवक तो श्रीरामके हैं, लेकिन उनकी माँ मैं ही हूँ। हे जनकनन्दिनि! आज मैं लक्ष्मण परसे मातृत्वका अधिकार समाप्त करती हूँ। लक्ष्मण ऐसे सुयोग्य पुत्रको, बलिदानी पुत्रको हे परमसुशीले! मैं आज तुम्हारी गोदमें समर्पण कर रही हूँ। इसीलिये माता सुमित्राने वनवासके प्रसङ्गमें श्रीलक्ष्मणसे कहा है।

तात तुम्हारि मातु बैदेही।

रामको शरीर है जो नील मेघके समान,
जनकललीकी प्रभा शुद्ध बिजली सी है।
राम अङ्गको है रङ्ग जमुन तरङ्ग सम,
तामें जानकी हमारी प्रेम मछली सी है॥
बिन्दु कवि शङ्करजटाकी भाँति रामरूप,
सीय सुघराई सुरसरिता ढली सी है।
उपमा मिली है भली राम हैं भ्रमर श्याम,
मैथिली अलीरी स्वर्ण पङ्कज कली सी है॥

इसके अनन्तर और भी लौकिक वैदिक रीतिसे समस्त कार्य सम्पन्न हुये। श्रीदशरथजीने विश्वामित्रजीकी अनेक प्रकारसे पूजा की। रानियोंके सहित उनके चरणोंकी धूलिको मस्तकपर धारण किया। अपने राजमहलमें भीतर उनको श्रेष्ठ स्थान दिया। जिससे राजा और रानियाँ भलीभाँति सेवा कर सकें।

भीतर भवन दीन्ह बर बासू।
मन जोगवत रह नृपु रनिवासू॥

श्रीगुरुवसिष्ठके चरणकमलोंकी भी पूजा की और अतिशय प्रेमसे उनकी विनती की। चारों बहुओंके साथ चारों कुमारोंने और रानियोंके सहित राजाने श्रीगुरुदेवके चरणोंमें बार-बार वन्दना की। श्रीवसिष्ठने आशीर्वाद दिया।

पूजे गुर पद कमल बहोरी।
कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी॥
बधुन्ह समेत कुमार सब रानिन्ह सहित महीसु।
पुनि पुनि बंदत गुर चरन देत असीस मुनीसु॥

राजाने उन्हें सब कुछ समर्पण कर दिया परन्तु मुनिने केवल अपना नेग माँग लिया और अनेक प्रकारसे आशीर्वाद दिया।

नेगु मागि मुनिनायक लीन्हा।
आसिरबादु बहुत बिधि दीन्हा॥

श्रीसीतारामजीको अपने हृदयमें धारण करके गुरुदेव वसिष्ठजी प्रसन्न होकर अपने स्थानको गये।

उर धरि रामहि सीय समेता।
हरषि कीन्ह गुर गवनु निकेता॥

उपासकोंको इस पङ्क्तिका विशेष रूपसे मनन करना चाहिये। देवतालोग श्रीरामविवाहका दर्शन करने आये थे, वे अबतक साथ-साथ रहे। विवाहोत्सवकी प्रशंसा करते हुये पुष्पवर्षण करने

लगे। वे डङ्का बजाकर सुख प्राप्त करके अपने अपने नगरके लिये प्रस्थान कर गये। मार्गमें भगवान् श्रीरामकी कल्याणी कीर्तिका वर्णन करते हुये उनके हृदयमें प्रेम समाता नहीं है।

देव देखि रघुबीर बिबाहू।
बरषि प्रसून प्रसंसि उछाहू॥
चले निसान बजाइ सुर निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परसपर राम जसु प्रेम न हृदयँ समाइ॥

चक्रवर्त्ती नरेन्द्र श्रीदसरथने अपने अत्यन्त वात्सल्य भावसे पुत्रोंको गोदमें ले लिया। राजाको अतिशय सुख मिला। फिर पुत्रवधुओंको वात्सल्य प्रेमसे अपनी गोदमें बैठाकर बार बार उनका दुलार किया।

जहँ रनिवासु तहाँ पगु धारे।
सहित बहूटिन्ह कुअँर निहारे॥
लिए गोद करि मोद समेता।
को कहि सकइ भयउ सुखु जेता॥
बधू सप्रेम गोद बैठारीं।
बार बार हियँ हरषि दुलारीं॥

भाव कि बहुओंको परायापन न अनुभव हो। किंवा उन्हें पिताका स्नेह प्रदान किया।

श्रीदशरथजीने कौसल्यादि रानियोंको बुलाकर कहा—मेरी बहुएँ अभी छोटी-छोटी बालिकायें हैं, अपना घर छोड़कर आयी हैं। जैसे पलकें आँखोंकी रक्षा करती हैं और उन्हें सुख पहुँचाती हैं, विश्राम देती हैं; उसी प्रकार आपलोग भी इनकी रक्षा करना और सुख देना। बालक थके हुये हैं, उन्हें नींद आ रही है अतः शयन कराओ। इस प्रकार कहकर श्रीरामजीके चरणोंमें चित्त लगाकर विश्राम गृहमें चले गये।

बधू लरिकनीं पर घर आईं।
राखेहु नयन पलक की नाईं॥
लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ।
अस कहि गे बिश्रामगृहँ राम चरन चितु लाइ॥

श्रीरामजी अपने भाइयोंको शयन करनेकी आज्ञा देकर स्वयं शयनगृहमें गये। श्रीरामजीके साँवले कोमल सुन्दर श्रीअङ्गोंको देखकर मातायें अतिशय वात्सल्य भावसे पूछती हैं—हे तात! तुमने रास्तेमें जाते हुये भयङ्कर ताटकाको कैसे मारा? मारीच और सुबाहुको कैसे मारा? इस प्रकार अनेकों प्रश्न पूछकर स्वयं ही उत्तर देती हैं कि तुम्हारे सभी कर्म मनुष्यकी शक्तिके बाहर हैं, यह सब कार्य श्रीविश्वामित्रकी कृपासे ही सम्पन्न हुये हैं।

सकल अमानुष करम तुम्हारे।
केवल कौसिक कृपाँ सुधारे॥

आगे माता कौसल्याजी भक्तिमयी वाणीमें कहती हैं—हे तात! तुम्हारा चन्द्रमुख अवलोकन करके हमारा जन्म धारण करना सफल हो गया। हे लालजी! तुम्हारे मुखचन्द्रके दर्शनके विना जो दिन व्यतीत हुये हैं, उनको ब्रह्मा हमारी आयुकी गणनामें न लावें।

भावुक भक्त श्रीविल्वमङ्गल कहते हैं—हे अनाथबन्धो! हे करुणासागर! हे हरे! आप ही बताइये कि आपके मुखचन्द्रके दर्शन किये बिना ये निस्सार दिन रात और अभागे घड़ी पल हा हन्त! किस प्रकार व्यतीत करूँ।

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि हरे त्वदालोकनमन्तरेण।
अनाथबन्धो करुणैकसिन्धो हा हन्त हा हन्त कथं नयामि॥

(श्रीकृष्णकर्णामृतम् ४१)

श्रीचैतन्य महाप्रभु भी कहते हैं—हे गोविन्द! आपके दर्शनके विना हृदयमें आग जल रही है, वर्षाकी धाराकी भाँति नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित है, फिर भी आग बुझती नहीं और अधिक

दहकती जा रही है, एक-एक निमिष मेरा युगके समान व्यतीत हो रहा है, सारा संसार शून्यकी भाँति प्रतीत हो रहा है।

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्दविरहेण मे॥

(चैतन्यमहाप्रभु शिक्षाष्टक)

श्रीराधाजी विरह सन्तापसे सन्तप्त होकर कहती हैं—हे प्रियतम! तुम्हारे दर्शनके विना एक एक क्षणका समय युगके समान प्रतीत होता है।

त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।

श्रीठाकुरजीने अत्यन्त विनीत एवं श्रेष्ठ वचन कहकर माताओंको सन्तुष्ट कर दिया और शम्भु, गुरु और विप्रोंके चरणोंका स्मरण करके शयन किये।

राम प्रतोषीं मातु सब कहि बिनीत बर बैन।
सुमिरि संभु गुर बिप्र पद किए नीदबस नैन॥

प्रात:कालकी पवित्र वेलामें प्रभु जग गये। मुर्गे सुन्दर बोलने लगे।

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे।
अरुनचूड़ बर बोलन लागे॥

सहज पवित्र चारों भाइयोंने सब शौचादिसे निवृत्त होकर परम पावनी श्रीसरयूमें स्नान किया। प्रात:कालीन सन्ध्यावन्दनादि करके पिताजीके पास आये।

कीन्हि सौच सब सहज सुचि सरित पुनीत नहाइ।
प्रातक्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ॥

नवाह्नपारायण तृतीय विश्राम

पिताजीने उनको देखते ही हृदयसे लगा लिया। वे आज्ञा पाकर प्रसन्न होकर बैठ गये। श्रीरामजीको देखकर समस्त सभा शीतल हो गयी—उनका वियोगजन्य सन्ताप समाप्त हो गया।

भूप बिलोकि लिए उर लाई।
बैठे हरषि रजायसु पाई॥
देखि रामु सब सभा जुड़ानी।
लोचन लाभ अवधि अनुमानी॥

तदनन्तर सभामें महर्षि वसिष्ठ और श्रीविश्वामित्रजी पधारे। उन्हें राजाने प्रणाम करके सुन्दर आसनपर बिठाया। पुत्रोंके सहित पूजा करके दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीरामजीको देखकर दोनों गुरु अनुराग मुग्ध हो गये।

पुनि बसिष्टु मुनि कौसिकु आए।
सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए॥
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे।
निरखि रामु दोउ गुर अनुरागे॥

कथा तो रोज ही होती है; परन्तु आज श्रीवसिष्ठने श्रीविश्वामित्रकी करनीको मुदित होकर अनेक प्रकारसे वर्णन किया। श्रीवामदेवजीने उस कथाका समर्थन किया। यह कथा बड़ी विलक्षण थी। श्रीवसिष्ठकी तरह वक्ता और श्रीअयोध्याजीके गणमान्य श्रोता तथा विशेष विशेषता यह थी कि श्रीराम-लक्ष्मणके मनमें कथाके प्रति विशेष उत्साह था।

सुनि आनंदु भयउ सब काहू।
राम लखन उर अधिक उछाहू॥

सुन्दर दिन विचारकर सुन्दर कङ्कण खोले गये। मङ्गल, मोद और विनोद बहुत हुआ।

सुदिन सोधि कल कंकन छोरे।
मंगल मोद बिनोद न थोरे॥

सरसों, चोकर, हल्दी आदि रखकर एक छोटी-सी पोटली बनाई जाती है। उसे दूल्हा दूलहिनके हाथमें किसी सूत्रसे बाँधा जाता है। इसे कङ्कण कहते हैं। यह माङ्गलिक माना

गया है। उसको शुभ मूहुर्तमें हाथसे निकाला जाता है। यह भी विवाहका एक अङ्ग है। उस दिन भी सखियाँ अत्यन्त विनोद करती हैं। रसिक सन्तोंने इसको अपनी-अपनी दृष्टिसे वर्णन किया है।

बोली एक नारी सुनौ अवध विहारी
यह शंभु धनु है न जाहि वेगै गहि तोरौगे।
रसिक विहारी हौं तिहारी चतुराई तब
जानोंगी सुकंकनकी गांठ जब छोरौगे॥
ताछिन छबीली एक दूजी हँसि बोली श्याम
आज धीरताई वीरताई सब भोरौगे।
तुम पै न तौ लों कबौं छूटि है छबीले छैल
जौ लों नाहिं जनकसुताको कर जोरौगे॥
पुनि एक वाम यौं कही हो अभिराम श्याम
कौशिक कृपा ते यश भारी बहु लूटो है।
नृपति कुमार हौ सदा ते सुकुमार फेरि
खायो तिय जूठो तब और बल खूटो है॥
हम अबला पै रावरे ते सबला हैं तऊ
जानो पुरुषारथ तिहारो सब झूठो है।
रसिकविहारी शंभु चाप किमि टूटो कहौ
तुम पै अबैलों नेक कंकन न छूटो है॥

(रामरसायन)

महर्षि विश्वामित्र नित्य चलना चाहते हैं; परन्तु श्रीरामजीके स्नेह और विनम्रताके कारण रह जाते हैं।

बिस्वामित्रु चलन नित चहहीं।
राम सप्रेम बिनय बर रहहीं॥

श्रीदशरथजीने कहा—हे रामभद्र! आज महर्षि जाना चाहते हैं। श्रीरामजीने कहा—आजका दिन तो अच्छा नहीं है। महर्षिने कहा—अच्छा, कल चले जायँगे। इस दिन जब पुनः प्रस्थानका विचार किया तब प्रभुने बड़े स्नेहसे कहा—गुरुदेव क्या हम आपको अच्छे नहीं लगते हैं? महर्षिने कहा—लालजी! तुम तो हमें प्राणोंसे भी प्यारे लगते हो। श्रीरामजीके आग्रहपर उस दिन भी रुक गये। दूसरे दिन मुनिने कहा—वत्स! हम तपस्वी हैं, अब हमें तपस्या करनी है। श्रीरामजीने कहा—हे स्वामिन्! आपको तपस्या हमसे अधिक अच्छी लगती है? आप तपस्याके द्वारा कौन सी निधि प्राप्त करना चाहते हैं? आपके पास किस निधिकी कमी है? महर्षिने कहा—हे पुत्र! यह प्रश्न अत्यन्त जटिल है। तुमको प्राप्त करनेके बाद फिर क्या पाना शेष रहता है? महर्षि उस दिन भी नहीं गये। दूसरे दिन जब जानेके लिये प्रस्तुत हुये तब प्रभुने स्खलिताक्षरोंमें स्नेहार्द्र होकर कहा—आप कल चले जाइयेगा। महर्षिकी भी आँखें वरष पड़ीं। सारा समाज विह्वल हो गया। उस दिन भी महर्षि नहीं जा सके। एक दिन वह भी आ गया—वियोगका दिन आ गया। आज महर्षिकी यात्रा निश्चित हो गयी। चक्रवर्त्तीजीने कहा—हे नाथ! समस्त सम्पत्ति आपकी है। मैं पुत्रों और स्त्रियोंके साथ आपका सेवक हूँ। हे मुने! बालकोंपर सदा स्नेह करते रहियेगा। सबलोगोंने महर्षिके चरणोंमें वन्दना की। सब लोग सिसक सिसककर रो पड़े। महर्षिकी विदाईमें गङ्गा-यमुनाकी धारा बह चली।

मागत बिदा राउ अनुरागे।
सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी।
मैं सेवकु समेत सुत नारी॥
करब सदा लरिकन्ह पर छोहू।
दरसनु देत रहब मुनि मोहू॥

अस कहि राउ सहित सुत रानी।
परेउ चरन मुख आव न बानी॥

महर्षिने प्रस्थान किया। कुछ दूरतक भाइयोंके साथ श्रीरामजी पहुँचाने गये। आज्ञा पाकर प्रभु भारी मनसे लौट आये।

एक दिन महर्षि विश्वामित्र श्रीरामजीके दर्शनकी उत्कट उत्कण्ठा लेकर श्रीअवध आये थे ***'सो प्रभु मैं देखब भरि नयना।'*** और आज मन ही मन श्रीरामरूपका स्मरण करते हुये चले जा रहे हैं। 'रामरूप' की बहुत विस्तृत व्याख्या है। सम्प्रति महर्षिकी आँखोंके सामने चलचित्रकी भाँति श्रीरामजीके अनेक रूप आ रहे हैं। श्रीरामजी माता-पिताको छोड़कर मेरे साथ पैदल चल रहे हैं—यह एक रामरूप है जिसका महर्षि स्मरण कर रहे हैं। श्रीविश्वामित्रजीके साथ श्रीराम-लक्ष्मणका अनोखा शृङ्गार है। शिरपर नवीन पल्लवसहित फूल और मोर पङ्ख शिरमें बालोंके बीचमें सुशोभित है, उनके वेषकी सुन्दरता किस प्रकार वर्णन करूँ? मानो त्रिभुवनकी सुन्दरता ही मूर्त्तिमती होकर दो भागोंमें विभक्त हो गयी है।

पल्लव, पंख, सुमन सिर सोहत क्यों कहौं बेष लुनाई?
मनु मूरति धरि उभय भाग भइ त्रिभुवन सुंदरताई॥

(श्रीगीतावलीजी १। ५२। ४)

श्रीरामजीका यह भी रूप महर्षि स्मरण कर रहे हैं। महर्षिको सुख देनेके लिये—उनको वात्सल्य रसका आनन्द देनेके लिये, दोनों भाई छोटी अवस्था होनेके कारण चञ्चलता करते हुये सरोवरोंमें प्रवेश करते, शिलाओंपर चढ़कर पक्षी, मृग और बनकी सुन्दरता निहारते हैं। उस समय मुनि वात्सल्यभावके कारण भययुक्त और प्रेम पुलकित होकर उन्हें बार-बार बुलाते हैं—वत्स रामलाल! आ जाओ तालाबमें जल गहरा है। आज महर्षि मार्गमें जाते हुये श्रीरामजीके इस स्वरूपका स्मरण कर रहे हैं।

पैठत सरनि, सिलनि चढ़ि चितवत, खग-मृग-बन रुचिराई।
सादर सभय सप्रेम पुलकि मुनि पुनि-पुनि लेत बुलाई॥

(श्रीगीतावलीजी १। ५२। ५)

श्रीदशरथजीकी भक्ति, विवाह और उत्साह तथा आनन्दको श्रीविश्वामित्रजी मन-ही-मन सराहते हुये जा रहे हैं।

राम रूपु भूपति भगति ब्याहु उछाहु अनंदु।
जात सराहत मनहिं मन मुदित गाधिकुलचंदु॥

श्रीअयोध्यामें यत्र-तत्र-सर्वत्र श्रीरामचन्द्रजीके विवाहकी गाथायें गायी जा रही हैं।

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—मैंने अपनी वाणीको पावन करनेके लिये श्रीरामकी कीर्तिका बखान किया है। अन्यथा श्रीरामजीका चरित्र अपार समुद्र है, किस कविने उसका पार पाया है?

सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु॥

इस प्रकार बालकाण्डको पूर्ण करके कथा अयोध्याकाण्डमें प्रविष्ट हो रही है।

(बालकाण्ड समाप्त)

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीरामचरितमानस
कथा-सुधा-सागर
अयोध्याकाण्ड

श्रीअयोध्याकाण्डके प्रारम्भमें श्रीगोस्वामीजी भगवान् श्रीगौरीनाथकी वन्दना करते हैं—

वामाङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः पातु माम्॥

जिनकी बायीं गोदमें श्रीगिरिजाजी, मस्तकपर देवनदी श्रीगङ्गाजी, भालपर बाल चन्द्रमा, गलेमें गरल और वक्षस्थलपर सर्पराज सुशोभित हैं। वे विभूति विभूषित, महादेवजी, सर्वेश्वर, संहारकर्ता, सर्वव्यापक, कल्याणमय श्रीशङ्करजी हमारी रक्षा करें।

'यस्याङ्के' और 'वामाङ्के' दोनों पाठ प्राचीन हैं। मेरे गुरुदेव 'वामाङ्के' पाठ को विशेष महत्त्व देते थे। पत्नीको बायीं गोदमें बैठनेका अधिकार है। दायीं गोदमें पुत्री, पुत्रबधू एवं अन्यका अधिकार है *'बधू सप्रेम गोद बैठारी।'* इस प्रकार गोदमें बैठा देखकर ही धर्मशास्त्रोंका जानकार समझ लेता है कि यह कौन है? श्रीगोस्वामीजीकी भावना यह है—हे गौरीनाथ! माता अन्नपूर्णा आपकी गोदमें रहती हैं और श्रीगङ्गाजी मस्तकपर विराजमान हैं। अतः क्षुधा पिपासासे आप बड़ी सरलतासे मेरी सहायता कर लेंगे। श्रीमद्भागवतमें श्रीकपिल भगवान् कहते हैं—

यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन
मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत्।
(श्रीमद्भागवत ३। २८। २२)

श्रीहरिके श्रीचरणोंके प्रक्षालनसे देवापगा श्रीगङ्गा प्रकट हुईं। जिनको मस्तकपर धारण करनेके कारण ही श्रीशिवजी शिव हो गये। अर्थात् मङ्गलरूप जगद्वन्द्य महादेवजी भी शिव हो गये—अतिशय पुण्यभाजनीभूत हो गये। **'शिवः मङ्गलरूपो जगद्वन्द्यो महादेवोऽपि शिवोऽतिशयित पुण्यभाजनी भूतोऽभूत्'।** यह भाव 'देवापगामस्तके' का है। 'शर्व' नामसे श्रीशङ्करजी और श्रीविष्णु भगवान् दोनों अभिहित किये जाते हैं। विष्णुसहस्रनाममें भी श्रीहरिका नाम 'शर्वः' आया है। **'सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुः'** जब 'शर्व' का प्रयोग श्रीशङ्करके लिये होगा तब अर्थ होगा **'शृणाति सर्वाः प्रजाः संहरति प्रलये इति शर्वः'** अर्थात् जो प्रलयकालमें सृष्टिका संहार करते हैं वे श्रीशङ्करजी 'शर्व' पद वाच्य हैं। जब 'शर्व' शब्दका प्रयोग श्रीहरिके लिये होगा तब अर्थ होगा **'शृणाति संहारयति भक्तानां पापानीति शर्वः'** अर्थात् जो अपने भक्तोंके समस्त पापोंका नाश कर देते हैं वह प्रभु 'शर्व' पद वाच्य होते हैं। इस प्रकारके शङ्कर हमारी रक्षा करें।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥

श्रीरामजीकी मुखाम्बुजश्रीकी वन्दना करते हैं। श्रीरघुनन्दनके मुखकमलकी जो शोभा राज्याभिषेकके समाचारसे प्रफुल्लित नहीं हुयी और वनवासके दुःखसे म्लान नहीं हुयी, वह मुखाम्बुजश्री मेरे लिये मञ्जुल मङ्गल प्रदान करनेवाली होवे। इस श्लोककी व्याख्या ही श्रीअयोध्याकाण्डमें श्रीरामचरित्र है। माता कौसल्या

श्रीभरतसे कहती हैं—

पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर॥
(२। १६५)

श्रीगोस्वामीजीकी मञ्जुल मङ्गलकी अभिलाषा है; परन्तु मञ्जुल मङ्गल सदा देनेमें कौन समर्थ है? श्रीरामचन्द्रजीका सान्निध्य तो उन्हींकी कृपासे उपलब्ध होता है। वे साधन साध्य तो नहीं हैं **'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः'** जिसपर वे कृपा करते हैं उसे ही प्राप्त होते हैं। परन्तु वे कभी नरनाटक करके श्रीजानकीजीके लिये विलाप करेंगे और कभी समुद्रपर रोष करेंगे। ऐसी स्थितिमें उनकी नाट्यलीला कहीं चित्तमें विक्षेप न करे? अतः जो सदा एक रस रहे वही उस मञ्जुल मङ्गलको सदा दे सकेगा। श्रीराघवेन्द्र सरकारकी मुखश्री कभी म्लान नहीं होती है और न उत्फुल्ल ही, सदा एक रस रहती है। मुख मनुष्यके हृदयका दर्पण है। कोई भाव हृदयमें है अथवा केवल उसका नाट्य हो रहा है। इसकी सूचना मुखश्री ठीक-ठीक दे देगी। श्रीरामचन्द्रजी नाट्य तो चाहे जो भी करेंगे; परन्तु हैं तो वे एकरस आनन्दघन। उनकी मुखश्री भला उस नाट्यमें क्यों भाग लेगी? वह तो श्रीरामजीके सच्चे स्वरूपके अनुसार ही रहेगी। अतः श्रीगोस्वामीजी उसी नित्य, एकरस मुखश्रीका आश्रय सदा मञ्जुल मङ्गलके लिये ले रहे हैं।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

जिनके श्रीअङ्ग नील सरोरुहके समान श्यामल, कोमल हैं। करुणामयी श्रीमैथिली जिनके वाम भागमें विराजमान हैं। जिनके हाथोंमें महासायक और सुन्दर धनुष है। उन रघुवंशनाथ श्रीरामजीको मैं नमन करता हूँ।

(क) इस श्लोक में श्रीगोस्वामीजीने बालक रूप, युगल स्वरूप, वीर स्वरूप और शान्त स्वरूपका अनुसन्धान किया है। (ख) इस श्लोकमें समस्त रामायणी कथा सूत्र रूपमें वर्णित है। भक्तोंको यह श्लोक परम प्रिय है।

'महासायक' यह श्रीरामजीका बाण असाधारण है। प्रभुके निषङ्गमें सामान्य बाण रहते ही नहीं हैं। श्रीरामजीका निषङ्ग अक्षय है। श्रीरामजीके बाण प्रयुक्त होनेपर नष्ट नहीं होते हैं। वे कभी निष्फल नहीं होते हैं—अमोघ होते हैं। कोई भी दिव्यास्त्र उन्हें काट नहीं सकता है। वे लक्ष्य वेध करके—अपना काम करके पुनः त्रोणमें प्रविष्ट हो जाते हैं।

श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि॥

श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं—श्रीगुरुदेवके चरण सरोजकी रजसे अपने मन मुकुरको निर्मल करके श्रीरघुबरके निर्मल यशका वर्णन करता हूँ, जो यश चारों फलोंको देनेवाला है। इस दोहाका भाव यह है कि मनरूपी दर्पणको निर्मल करो। जब तक मन निर्मल नहीं होगा तबतक प्रभु नहीं मिलेंगे, उनकी कथा भी नहीं मिलेगी। श्रीरामजीको अशुद्ध मन नहीं अच्छा लगता है। मनको दर्पण कहा गया है। शीशा धूलसे ही गन्दा होता है और धूलसे ही साफ भी होता है। इसी प्रकार हृदय दर्पण भौतिक कामनाओंकी—वासनाओंकी धूलिसे मलिन हो जाता है—अपवित्र हो जाता है; परन्तु वह वासना मलिन मनरूपी दर्पण श्रीगुरुदेवकी चरणरजसे शुद्ध हो जाता है—स्वच्छ हो जाता

है—निर्मल हो जाता है। श्रीठाकुरजीके दर्शनके लिये दो बातें आवश्यक हैं—मनरूपी दर्पण और ज्ञान वैराग्यरूपी नेत्र निर्मल हों; अन्यथा हरिदर्शन नहीं होगा।

मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना।
राम रूप देखहिं किमि दीना॥

(१। ११५)

'गुरु चरन सरोज रज' एक ऐसी दिव्य औषधि है जिसके द्वारा नेत्र और मन दोनोंके मलका अपाकरण हो जायगा और दोनों ही निर्मल हो जायेंगे। फिर श्रीरामजीका मङ्गलमय दर्शन सम्भव है। श्रीगोस्वामीजीका संसार पर बड़ा उपकार है। उन्होंने श्रीरामदर्शनका साधन लोगोंको कण्ठस्थ करा दिया। यह दोहा किसको नहीं याद होगा? ***श्रीगुरु चरन सरोज रज..... ॥*** इस दोहेके विषयमें एक दूसरा प्रश्न और भी लोग करते हैं—जब बालकाण्डमें तेरह पङ्क्तियोंमें गुरु वन्दना अनेक प्रकारसे हो गयी थी तब पुनः अयोध्याकाण्डमें वन्दनाका क्या कारण है? इसका उत्तर मनीषी सन्तोंने इस प्रकार दिया है—श्रीअयोध्याकाण्ड भरत चरित्र है। भक्त कविने अन्य चरित्रोंकी अपेक्षा भरत चरित्रको विस्तारसे लिखा है। श्रीगोस्वामीजी विचार करने लगे—भरत चरित्र गम्भीर है, गूढ़ है, वर्णनातीत है। इसका वर्णन तो भगवान् श्रीराम भी नहीं कर सकते हैं।

भरत अमित महिमा सुनु रानी।
जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥

(२। २८९)

गुरुदेव श्रीवसिष्ठके मतिकी गति भी असमर्थ अबलाकी भाँति हो जाती है।

भरत महा महिमा जलरासी।
मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥

(२। २५७)

श्रीजनकजी देवी सुनयनासे कहते हैं—हे सुनयने! सावधान होकर भरतकी कथा सुनो।

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि।
भरत कथा भव बंध बिमोचनि॥

(२। २८८)

कहनेसे पहले श्रीजनकजी अपनी योग्यता बताते हैं—धर्मनीतिकी व्याख्या यथामति मैं कर सकता हूँ। राजनीतिका भी हमें ज्ञान है, ब्रह्म विचारमें भी मेरी बुद्धिकी गति है।

धरम राजनय ब्रह्मबिचारू।
इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥

(२। २८८)

योग्यता बतानेका आशय यह है—कथा हर एकसे नहीं सुननी चाहिये। ऐरे गैरे नत्थू खैरे पचकल्यानीकी कथा कभी-कभी मनमें भ्रम उत्पन्न कर देती है। अपने गुरुप्रदत्त साधनके अनुकूल जो कथा हो उसका श्रवण करना चाहिये। साधनके प्रतिकूल कथा श्रीकाकभुशुण्डिजीने नहीं सुनी। महाराज पृथुराज कथाके बड़े रसिया हैं। उन्होंने कथा सुननेके लिये दस हजार कानोंकी याचना की थी। वे कहते हैं—हे प्रभो! मुझे तो उस मोक्षकी भी आवश्यकता नहीं है जिसमें **'महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युत'** आपके श्रीचरण-कमलोंका कीर्तिरूप मकरन्द—परमानन्द जनक कथा रूपरस न हो। एतावता मुझे तो आप दस हजार कान दे दो—दस हजार कानोंका सामर्थ्य मेरे दो ही कानोंमें दे दें। ताकि मैं निरन्तर आपकी लीलाको सुनता ही रहूँ।

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचि
न्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो
विधत्स्वकर्णायुतमेष मे वरः॥

(श्रीमद्भागवत ४। २०। २४)

'महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतः' का भाव यह है—महत्तम लोग अपने हृदयमें आस्वादन करके अतिशय आनन्दसे उसका वर्णन करते हैं। महान् लोगोंके आस्वादनसे उस चरित्रमें अति मधुरता आ जाती है। जिस प्रकार श्रीशुकमुखविगलित कथामृतमें अनोखा ही स्वाद है। मीठा से मीठा जल भी यदि क्षारभूमिमें—खारी भूमिमें प्रविष्ट हो जाय तो खारा हो जाता है—अपेय हो जाता है। इसी प्रकार अभक्तके मुखसे निकली हुयी भगवत् कथाका परम मधुर गुण भी बहुत रोचक नहीं होता है।

महत्तमानाम् अन्तर्हृदयात् मुखद्वारा च्युतः अन्तर्हृदयेनास्वाद्य आनन्दोद्रेकात् कीर्त्यमानः इत्यर्थः। शुकमुखादमृतद्रवसंयुतमितिवन् महदास्वाद्यत्वे सति तस्यातिमाधुर्यमुदयते इति भावः। मधुरमपि जलं क्षारभूमिप्रविष्टं यथा विरसी भवति तथैवा वैष्णवमुखनिर्गतो भगवद्गुणोऽपि नातिरोचकः।

कहनेका आशय मात्र इतना है कि महत्तमके मुखसे कथा सुननेका आनन्द विलक्षण है। अतः श्रीजनक कहते हैं कि पहले मेरी योग्यता सुनो।

धरम राजनय ब्रह्मबिचारू।
इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥

श्रीजनकजी कहते हैं कि ऐसी मेरी बुद्धि भी भरत महिमाका वर्णन करना तो दूर छल करके उसकी छायाका भी स्पर्श नहीं कर पाती।

श्रीगोस्वामीजीने सोचा कि जिस भरतचरित्रका वर्णन शारदा, शेष, गणेश, गुरु वसिष्ठ, श्रीजनक महाराज ऐसे महान् लोगोंको भी अगम है। ऐसे चरित्रके वर्णनका सामर्थ्य हमें प्राप्त हो इसके लिये श्रीअयोध्याकाण्डमें गुरुचरण रजकी वन्दना पुनः की गयी। इसीलिये 'रघुबर' शब्दका प्रयोग किया गया है। 'रघुबर' शब्दमें श्रीराम और भरत दोनोंका बोध हो जाता है। इतना ही नहीं किन्तु चारों भाइयोंको 'रघुबर' कह सकते हैं।

श्रीरामचन्द्रजी विवाह करके श्रीअयोध्याजीमें आ गये हैं। श्रीअयोध्यामें नित्य अभिनव मङ्गल होते हैं, आनन्दोत्सव होते हैं।

जब तें रामु ब्याहि घर आए।
नित नव मंगल मोद बधाए॥

चारों भाई शील, रूप और गुणके धाम हैं; परन्तु श्रीरामजीमें ये गुण विशेष हैं।

चारिउ सील रूप गुन धामा।
तदपि अधिक सुखसागर रामा॥

(१। १९८)

श्रीरामजीके रूप, गुण, शील और स्वभावको स्वयं देखकरके और लोगोंसे सुनकरके श्रीदशरथजीके मनमें महान् आनन्द होता है।

राम रूप गुन सीलु सुभाऊ।
प्रमुदित होइ देखि सुन राऊ॥

समस्त पुरवासी, वेदोंके ज्ञाता, वयोवृद्ध, विद्यावृद्ध, अनुभववृद्ध, मन्त्रीगण श्रीरामजीकी मुहुर्मुहुः प्रशंसा करते हैं।

भगवन् राममखिलाः प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः।
पौराश्च निगमा वृद्धा मन्त्रिणश्च विशेषतः॥

(अध्यात्मरामायण २। २। २)

सबके मनकी आन्तरिक अभिलाषा है—राजा श्रीरामजीको युवराज पदपर अभिषिक्त

कर दें।

सब कें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु।
आप अछत जुबराज पद रामहि देउ नरेसु॥

एक दिन चक्रवर्त्तीजी राजसभामें विराजमान थे। उन्होंने सहजभावसे हाथमें दर्पण लेकर अपना मुख देखकर मुकुटको सीधा किया। कानोंके पास बाल सफेद हो गये थे, मानो वृद्धावस्था उपदेश कर रही है—हे राजन्! श्रीरामको युवराज पद देकर जीवन और जन्मका लाभ क्यों नहीं ले लेते?

रायँ सुभायँ मुकुरु कर लीन्हा।
बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा॥
श्रवन समीप भए सित केसा।
मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा॥
नृप जुबराजु राम कहुँ देहू।
जीवन जनम लाहु किन लेहू॥

श्रीवाल्मीकिजीने लिखा है—श्रीदशरथजीने रामरूप दर्पण देखा। श्रीदशरथजीने अपने लाड़ले पुत्रको भुजाओंसे खींचकर हृदयसे लगा लिया। आसनपर बिठाकर श्रीरामका स्वरूप टुकुर-टुकुर निहारने लगे। जैसे अपने ही अलंकृत वेषको दर्पणमें प्रतिबिम्बित देखकर व्यक्तिको सुख मिलता है, सन्तोष मिलता है, उसी प्रकार अपने प्रिय पुत्रको देखकर राजा परम सन्तुष्ट हुये।

तं पश्यमानो नृपतिस्तुतोष प्रियमात्मजम्॥
अलंकृतमिवात्मानमादर्शतलसंस्थितम् ।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ३। ३७-३८)

अत्यन्त भावपूर्ण श्लोक है। इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामजीके मुख, नासिका, चरण आदि सभी अङ्ग पिताके समान थे '**आदर्शतल-संस्थितमित्यनेन रामस्य मुखनासिकाचरणादि सर्वावयवेन पितृसमरूपत्वमावेदितम्**' (श्रीभूषण टीका) दूसरा भाव यह है कि राजा अपने पुत्रको बार-बार देखते हैं; परन्तु सन्तृप्त नहीं होते हैं। दर्पणको हम अपना हितैषी मानते हैं, हितैषी वह है जो चाटुकारिता न करे—मिथ्या श्लाघा न करे। गुण और अवगुण सब सच-सच बता दे। दर्पण सब सच बता देता है—तुम काले हो, गोरे हो, काने हो, नाक टेढ़ी है, आखें टेढ़ी हैं, नयन सुन्दर हैं, काजल मुखपर लगा है आदि आदि। श्रीचक्रवर्त्तीजी आज अपना परम हितैषी समझकर श्रीरामको अपना सर्वस्व समर्पण कर रहे हैं। इस प्रसङ्गमें श्रीराम ही दर्पण हैं। अथवा राज्यसभामें दर्पण लेकर मुख देखनेका कोई प्रयोजन नहीं है, यह समय तो सभाके कार्यका है। इससे जान पड़ता है कि यह केवल श्रीरामजीकी इच्छासे ही हुआ है। अत: *'सुभायँ'* शब्द दिया है। **(काशी निवासी पं० श्रीरामकुमारजी महाराज)** अथवा मन ही दर्पण है, दर्पणने—मनने प्रेरणा दी कि अब श्रीराम योग्य हो गये हैं एतावता उन्हें राज्य दे दो।

सित केसा—श्रीशंकराचार्यजीने सितकेशको मृत्युकी दूती कहा है, जो श्वेत केशोंके रूपमें व्यक्तिके कानोंके निकट आकर त्याग और भक्तिका उपदेश देती है।

कृतान्तस्य दूती जरा कर्णमूले
समागत्य लोकाः शृणुध्वं शृणुध्वम्।
परस्त्री परद्रव्य हिंसास्त्यजध्वं
भजध्वं रमानाथ पादारविन्दम्॥

श्रीगोस्वामीजी का भी भाव यही है, परन्तु उन्होंने दूतीके स्थानमें दूत कहा है। वे उसे 'जरठपन' लिखते हैं; परन्तु गोस्वामीजीका यह जरठपन केवल परस्त्री परद्रव्य ही नहीं अपितु

अपने द्रव्यके त्यागका भी सन्देश देता है। राजाको जरठपनसे यही उपदेश मिला था। राजाने उस उपदेशको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। श्रीकालीदासने भी लिखा है।

तं कर्णमूलमागत्य रामे श्रीर्न्यस्यतामिति।
कैकेयीशङ्कयेवाह पलितच्छद्मना जरा॥

(रघुवंशमहाकाव्यम् १२। २)

पके हुये बालोंके बहानेसे वृद्धावस्थाने कानतक आकर 'श्रीरामको राज्यलक्ष्मी दे दो' इस प्रकार कहा—कर्णप्रान्तमें पके हुये बालोंको देखकर अपनी वृद्धावस्था जानकर श्रीदशरथने श्रीरामको राज्यलक्ष्मी देना चाहा। श्रीदशरथजीका जरठपन धन्य है जिसने श्रीरामजीके प्रति समर्पणकी प्रेरणा प्रदान की।

राजाने अपने मनकी बात श्रीगुरुवसिष्ठको उनके आश्रममें जाकर सुना दी और यह भी कहा—हे नाथ! मेरे राम सबको प्रिय हैं यह सब आपके श्रीचरणोंकी कृपा है।

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं।
ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥

'बिभव' शब्दका बड़ा व्यापक अर्थ है। **'विभवस्य भावः वैभवम्।'** रूप वैभव, विद्या वैभव, भक्ति वैभव आदि। भक्तोंका अनुपम वैभव तो भक्ति ही है। समस्त वैभवोंमें श्रेष्ठ वैभव भक्ति है। रावणके द्वारा अपमानित होकर जब श्रीविभीषणजी श्रीरामजीकी शरणमें जानेके लिये प्रस्थित हुये तब भक्तहृदय श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं। ***'भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा'*** यह कौन सा वैभव था जिससे रावण रहित हो गया? रावणका सबसे बड़ा सौभाग्य यही था कि श्रीविभीषण उसके अनुज थे। अनुजके रूपमें उसने महान् सन्त प्राप्त किया था। जिनका दर्शन उसको प्रतिदिन होता था ***'संत दरस जिमि पातक टरई।'*** न चाहनेपर भी इनका सत्सङ्ग उसको सहज सुलभ था। लङ्कामें श्रीविभीषणके रहनेपर श्रीरामजीकी नित्य आराधना होती थी। हरि मन्दिर था, तुलसी वन भी था। श्रीविभीषणके लङ्का परित्याग करने कारण यह वैभव उसका समाप्त हो गया। अतः लिखते हैं।

भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा।

इस वैभवके रहते समस्त वैभव सुरक्षित थे।

किन्नरगण श्रीनृसिंह भगवान्से याचना करते हैं—**'नरसिंह नाथ विभवायनोभव'** भले ही सांसारिक वैभवसे हीन हो; परन्तु यदि भक्ति वैभव उसके पास है तो वह भक्तिवैभवसम्पन्न पुरुष निर्धन होनेपर भी धन्य है; क्योंकि इस भक्तिकी डोरीसे बँधकर तो साक्षात् श्रीहरि भी अपना परमधाम छोड़कर उसके हृदयमें आकर निवास कर लेते हैं।

सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या
निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका।
हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः॥

(श्रीभागवतमाहात्म्य ३। ७३)

यह अनोखा वैभव भी श्रीगुरुचरणरेणुकीकृपासे ही सम्भव है।

राजाने कहा—हे गुरुदेव! आपके पावन चरणरेणुकी पूजा करके मेरी सारी इच्छायें परिपूर्ण हो गयी हैं। अब तो एक अभिलाषा मेरे मनमें है कि श्रीरामजीको युवराज बना दें।

नाथ रामु करिअहिं जुबराजू।
कहिअ कृपा करि करिअ समाजू॥

श्रीवसिष्ठजीने कहा—हे राजन्! विलम्ब न

करें, शीघ्र सब सामान सजाइये। जब श्रीराम युवराज होंगे, तभी सुदिन सुमङ्गल होगा।

बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिन सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु॥

× × ×

नृप कर जोरि कह्यो गुर पाहीं।
तुम्हरी कृपा असीस, नाथ! मेरी सबै महेस निबाहीं॥
राम होहिं जुबराज जियत मेरे, यह लालच मन माहीं।
बहुरि मोहिं जियबे, मरिबेकी चित चिंता कछु नाहीं॥
महाराज, भलो काज बिचार्‌यो, बेगि बिलंब न कीजै।
बिधि दाहिनो होइ तौ सब मिलि जनम-लाहु लुटि लीजै॥

(श्रीगीतावलीजी २। १)

राजाने प्रसन्न होकर श्रीगुरुचरणोंमें प्रणाम करके राजमहलमें आकर सेवकों और मन्त्री सुमन्त्रको बुलवाया। उनके आनेपर सब वृत्तान्त सुनाकर सबसे कहा—यदि आप पञ्चोंको मेरी राय अच्छी लगे तो प्रसन्न होकर श्रीरामजीकी राजतिलक कीजिये।

जौं पाँचहि मत लागै नीका।
करहु हरषि हियँ रामहि टीका॥

इस पंक्तिके एक-एक शब्दोंमें राजाका विचार नैपुण्य है। मन्त्री तो पहले से ही चाहते थे जिस प्रकार श्रीवसिष्ठजीकी आज्ञासे राजा प्रसन्न हुये थे। उसी प्रकार राजाके वचनसे मन्त्री लोग भी प्रसन्न हो गये। बीज पृथ्वीमें गुप्त रहता है, जल पड़नेसे वह प्रकट होता है। इनके हृदयमें भी मनोरथ गुप्त था, राजाके वचनरूपी जलको पाकर प्रकट हो गया।

मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी।
अभिमत बिरवँ परेउ जनु पानी॥

श्रीचक्रवर्त्तीजीके वचनोंका वहाँ विराजमान राजाओंने, ऋषियोंने एवं सभी वर्गके लोगोंने उसी प्रकार अभिनन्दन किया जैसे मयूर केकारव करते हुए पङ्खको फैलाए हुए वर्षा करनेवाले महामेघका अभिनन्दन करते हैं।

इति ब्रुवन्तं मुदिताः प्रत्यनन्दन् नृपा नृपम्।
वृष्टिमन्तं महामेघं नर्दन्त इव बर्हिणः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २। १७)

मन्त्री लोग हाथ जोड़कर विनती करते हैं—हे जगत्पते! आप दीर्घजीवी हों। आपका यह विचार समस्त संसारका मङ्गल करेगा। हे अयोध्यानाथ! अब इस कार्यको शीघ्र सम्पन्न कीजिये।

बिनती सचिव करहिं कर जोरी।
जिअहु जगतपति बरिस करोरी॥
जग मंगल भल काजु बिचारा।
बेगिअ नाथ न लाइअ बारा॥
नृपहि मोदु सुनि सचिव सुभाषा।
बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा॥

मन्त्रियोंकी सुन्दर बात सुनकर राजा प्रसन्न हो गये। मानों बढ़ती हुई लताको सुन्दर डालीका आश्रय मिल गया। इस ***'सुभाषा'*** की व्याख्या महर्षि श्रीवाल्मीकिने विस्तारसे और सुन्दर ढंगसे लिखी है। उसका अति संक्षेपमें आस्वादन करें। मन्त्रीलोग कहते हैं—हे राजेन्द्र! श्रीरामजी सत्यपरायण, सत्यप्रतिज्ञ, सत्यसङ्कल्प और सत्पुरुष हैं। वे मृदुभाषी, ऋतभाषी, मितभाषी, हितभाषी, सत्यभाषी, प्रियभाषी, और अपूर्वभाषी हैं। वे बहुश्रुत विद्वानों, ज्ञानवृद्धों, साधनवृद्धों, तपवृद्धों, वयोवृद्धों और ब्राह्मणोंके उपासक हैं।

बहुश्रुतानां वृद्धानां ब्राह्मणानामुपासिता।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २। ३३)

हे चक्रवर्त्ती नरेन्द्र! इस पृथ्वीकी तो बात ही क्या है, आपके पुत्र श्रीराम सम्पूर्ण त्रैलोक्यकी रक्षा कर सकते हैं। उनका क्रोध और उनकी प्रसन्नता कभी व्यर्थ नहीं होती है।

शक्तस्त्रैलोक्यमप्येष भोक्तुं किं नु महीमिमाम्।
नास्य क्रोधः प्रसादश्च निरर्थोऽस्ति कदाचन॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २। ४५)

हे नाथ! हमारी माताएँ, बहनें और पुत्रियाँ जब प्रातःकाल, सायंकाल ईश्वराराधन करती हैं, तब हे स्वामिन्! वे अञ्चल पसारकर बस एक ही प्रार्थना करती हैं कि श्रीरामजी हमारे शीघ्र राजा हों। हे रघुकुलतिलक! अब आप सबकी अभिलाषाओंको पूर्ण करें।

स्त्रियो वृद्धास्तरुण्यश्च सायं प्रातः समाहिताः।
सर्वा देवान् नमस्यन्ति रामस्यार्थे मनस्विनः॥
तेषां तद् याचितं देव त्वत्प्रसादात्समृद्ध्यताम्।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २। ५२)

राजाने अति प्रसन्न होकर कहा—श्रीरामके राज्याभिषेकके लिये मेरे गुरुदेवकी जो आज्ञा हो उसका सद्यः पालन करें।

कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ।
राम राज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ॥

श्रीवसिष्ठजीने प्रसन्नतापूर्वक कोमलवाणीमें समग्र सामग्रियोंका नाम बताया।

हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी।
आनहु सकल सुतीरथ पानी॥

इस प्रकार श्रीवसिष्ठजीने जिसको जो भी आज्ञा दी उसने वह कार्य झटसे कर डाला।

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा।
सो तेहिं काजु प्रथम जनु कीन्हा॥

राजा दशरथजी ब्राह्मण, साधु और देवताओंकी पूजा कर रहे हैं। श्रीरामजीके लिये माङ्गलिक अनुष्ठान कर रहे हैं। धन्य है, श्रीदशरथजीका वात्सल्य! जो समस्त संसारका मङ्गल विधान करते हैं, जिनका नाम, रूप, लीला और धाम सब मङ्गलमय है। उसके मङ्गलके लिए राजा माङ्गलिक कार्य कर रहे हैं।

श्रीरामजीके अभिषेकका समाचार नगरमें फैल गया—श्रीअयोध्याके नर-नारी प्रसन्न हो गये।

रामराजु अभिषेकु सुनि हियँ हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि॥

श्रीदशरथजीने श्रीवसिष्ठसे प्रार्थना की—हे गुरुदेव! रामको भी उनके अभिषेकका समाचार बता दें और उनको क्या करना है, किन नियमोंका पालन करना है यह भी समझा दें। श्रीवाल्मीकीय रामायणमें श्रीदशरथजीने श्रीरामसे स्वयं कहा है।

गुरुदेवका आगमन सुनकर श्रीरामजी शीघ्रतासे द्वारपर आकर आदरपूर्वक प्रणाम करके अर्घ्य देकर घरमें ले गए। षोडशोपचारसे पूजन किया। श्रीसीताजीके साथ पुनः प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले—हे स्वामिन्! सेवकके घरमें स्वामीका पधारना समस्त मङ्गलोंका कारण है।

गुर आगमनु सुनत रघुनाथा।
द्वार आइ पद नायउ माथा॥
सादर अरघ देइ घर आने।
सोरह भाँति पूजि सनमाने॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी।
बोले रामु कमल कर जोरी॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू।
मंगल मूल अमंगल दमनू॥

श्रीरामजीकी बात सुनकर श्रीवसिष्ठजीका

मन आनन्दसे भर गया। उन्होंने कहा—हे रघुनन्दन तुम्हारे पिता तुमको कल युवराज पद देना चाहते हैं। इसलिए उसके पूर्वके समस्त नियमोंका तुम्हें पालन करना चाहिए। क्या-क्या नियम हैं यह सब सिखाये। गुरुदेवके जानेके पश्चात् श्रीरामजीके मनमें विस्मय हुआ।

गुरु सिख देइ राम पहिं गयऊ।
राम हृदयँ अस बिसमउ भयऊ॥

हम चारों भाइयोंके समस्त कार्य और संस्कार एक साथ सम्पन्न हुए; परन्तु राज्य और सबको न मिलकर मुझे ही मिल रहा है। किं वा—राज्यके अधिकारी भरत हैं, उनको न मिलकर राज्य मुझे मिल रहा है। यद्वा—इस समय मेरा भरत यहाँ उपस्थित नहीं है, उसके आगमनकी प्रतीक्षा न करके मुझे राज्य मिल रहा है। अत: श्रीरामके मनमें विस्मय हुआ।

प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई।
हरउ भगत मन कै कुटिलाई॥

श्रीरामचन्द्रजी भाइयोंकी चिन्ता कर ही रहे थे कि उसी समय श्रीलक्ष्मणजी आ गये। वे श्रीरामके राज्यतिलकके समाचारसे आनन्द और श्रीरामप्रेममें मग्न थे। प्रभुने प्रिय वचन कहकर उनका आदर सत्कार किया।

तेहि अवसर आए लखन मगन प्रेम आनंद।
सनमाने प्रिय बचन कहि रघुकुल कैरव चंद॥

प्रिय वचनसे किस प्रकार सन्मान किया। यह प्रसङ्ग श्रीवाल्मीकिजीने लिखा है। अत: वहाँसे उस प्रसङ्गका आनन्द लें। श्रीरामने विनीत भावसे बद्धाञ्जलि श्रीलक्ष्मणको देखकर मुस्कराते हुये—अपने अधरोष्ठोंपर किञ्चित् हास्यच्छटा बिखरते हुये कहा—हे सुमित्रानन्दसंवर्द्धन! तुम मेरे साथ रहकर इस भूमण्डलके राज्यका तथा मेरी अन्तरात्मा—मनका भी पालन करो। तुम तो मेरे दूसरे प्राण हो। यह राज्यलक्ष्मी तुम्हींको प्राप्त हो रही है। हे वत्स लक्ष्मण! तुम राज्यके उत्तम फलोंको—अत्यन्त दान देनेसे समुत्पन्न यश आदिको और अभिलषित पदार्थोंको प्राप्त करो। हे भ्रात:! तुम्हारे लिये ही मैं इस जीवन और राज्यकी अभिलाषा करता हूँ।

प्राञ्जलिं प्रह्वमासीनमभिवीक्ष्य स्मयन्निव॥
लक्ष्मणेमां मया सार्द्धं प्रशाधि त्वं वसुन्धराम्।
द्वितीयं मेऽन्तरात्मनं त्वामियं श्रीरुपस्थिता॥
सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च।
जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ४। ४२-४४)

श्रीराघवेन्द्रके ये वचन श्रीलक्ष्मणके प्रति अतिशय स्नेहके द्योतक हैं। अनुजके प्रति किस प्रकारका हार्दिक व्यवहार होना चाहिये इसका आदर्श है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृतिमें श्रीराम-लक्ष्मणकी जोड़ी आज भी प्राणकी तरह विराजमान है।

उपमा राम लखन की प्रीतिहिं क्यों दीजे क्षीरे नीरे।

श्रीअयोध्याके नर-नारियोंकी केवल एक अभिलाषा थी—वह घड़ी शीघ्र आ जाय, जब श्रीसीतारामचन्द्रजी स्वर्ण सिंहासनपर विराजमान हों।

हाट बाट घर गलीं अथाईं।
कहहिं परसपर लोग लोगाईं॥
कालि लगन भलि केतिक बारा।
पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा॥
कनक सिंघासन सीय समेता।
बैठेहिं रामु होइ चित चेता॥

सकल कहहिं कब होइहि काली।

महर्षि वाल्मीकिजीने भी इसी प्रकार वर्णन किया है। समस्त अयोध्यामें श्रीरामजीके अभिषेकका समाचार परिव्याप्त हो गया। आज श्रीअयोध्याके लोग महलों और घरोंमें नहीं थे। सड़कोंपर आ गये थे। श्रीअयोध्याके राजपथपर आनन्द समुद्र उद्वेलित हो रहा था। जनसमूह एक दूसरेसे टकरा रहे थे, वही आनन्द समुद्रकी चञ्चल लहरें थीं। उनके मिलनेपर जो हर्षध्वनि हो रही थी—आनन्दोद्रेक हो रहा था वही समुद्रकी गम्भीर गर्जना थी।

जनवृन्दोर्मिसंघर्षहर्षस्वनवृतस्तदा ।
बभूव राजमार्गस्य सागरस्येव निःस्वनः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ५। १७)

आबालवनिता वृद्ध अयोध्यानिलय—अयोध्यावासीजनोंके मनमें इस समय सोनेकी इच्छा नहीं थी, खानेकी इच्छा नहीं थी, पीनेकी इच्छा नहीं थी, व्यवहारकी इच्छा नहीं थी, पढ़ने और पढ़ानेकी इच्छा नहीं थी और बात करनेकी भी इच्छा नहीं थी, उनके मनमें तो केवल दो अभिलाषायें थीं, वह मङ्गलमय सुप्रभात—सूर्योदय कब होगा और श्रीरामराज्याभिषेक किस मुहूर्त्तमें होगा?

तदा ह्ययोध्यानिलयः सस्त्रीबालाकुलो जनः।
रामाभिषेकमाकाङ्क्षन्नाकाङ्क्षन्नुदयं रवेः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ५। १९)

श्रीअयोध्याके नर-नारी आनन्दमें डूबे हुये हैं; परन्तु चोरको चाँदनी रात अच्छी नहीं लगती है। श्रीरामजी चन्द्रमा हैं, राज्यतिलक चाँदनी रात है और देवता चोर हैं।

..... ।
बिघन मनावहिं देव कुचाली॥
तिन्हहिं सुहाइ न अवध बधावा।
चोरहि चंदिनि राति न भावा॥

देवताओंने श्रीसरस्वतीजीसे प्रार्थना की—हे माताजी! हमारी विपत्तिमें सहायता कीजिये। आप वही उपाय करें जिससे श्रीरामजी राज्याभिषेक छोड़कर वन चले जायँ। यद्यपि श्रीसरस्वतीका हृदय तो स्वीकार नहीं करता था; परन्तु इस कार्यसे जनमङ्गल होगा यह सोचकर श्रीसरस्वतीजी दुसह दुःख देनेवाली ग्रहदशाकी भाँति दशरथ नगरमें आईं। श्रीरामकी स्नेहमयी जननी श्रीकैकेयीको छोड़कर उन्होंने अपने कार्यके लिये मन्थराका चयन किया। श्रीअवधमें सब सुजातीय हैं।

मनिगन पुर नर नारि सुजाती।
सुचि अमोल सुंदर सब भाँती॥

(२। १)

सुन्दर जाति उसीकी है जो श्रीरामजीके अनुरागमें डूबा हो किं वा जिसका श्रीरामसे साजात्य सम्बन्ध हो। श्रीअयोध्याके आबालवनितावृद्ध सब रामानुरागी थे। केवल एक कुजाति थी जो दुष्ट बुद्धिकी थी। उसका भाव भी दुष्ट था अतः वह रामानुरागिणी भी नहीं थी।

'करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती।'

मन्थरा कैकेयीकी मूर्ख दासी थी। सरस्वतीजी उसीको अपयशकी पिटारी बनाकर उसकी बुद्धि फेरकर चली गयीं।

नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥

मन्थराने देखा—सारी अयोध्या सजी हुयी है, मङ्गलवाद्य सुवादित हो रहे हैं। उसने जब श्रीरामजीके राज्यतिलककी बात सुनी तब उसका हृदय सन्तप्त हो गया।

पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू।
राम तिलक सुनि भा उर दाहू॥

वह सीधे श्रीकैकेयीके पास गयी। श्रीकैकेयीने उससे पूछा—अरी! आज तू उदास क्यों है? अनमनी क्यों है? वह उत्तर नहीं देती, गहरी साँस ले रही है और पूछनेपर लम्बे-लम्बे आँसू ढुलकाने लगी। श्रीकैकेयीने पुनः कहा—ऐसा ज्ञात होता है कि आज तुझे लक्ष्मणने शिक्षा दी है।

हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें।
दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें॥

यह श्रीरामजीका विरोध तो प्रायः करती थी। कभी-कभी श्रीलक्ष्मणजीसे सहा न जाता तो थोड़ा सा दण्ड दे देते थे। इतना कहनेपर भी वह नहीं बोली, श्वाँस इस प्रकार छोड़ रही है जैसे काली नागिन फुफकार रही हो। बार-बार प्रश्न करनेपर भी उत्तर नहीं देती है, लम्बे-लम्बे आँसू गिराती है और कभी-कभी नागिनकी भाँति उच्छ्वास ले रही है। उसकी इस क्रियाका श्रीकैकेयीपर सद्यः प्रभाव पड़ा। उसने सोचा कि श्रीअयोध्यामें कोई अत्यन्त भयावह घटना घट गयी है, अनर्थ अवश्य हो गया है। जिसको यह कह नहीं पा रही है। तब कैकेयीने भयविह्वल स्वरमें पूछा।

सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु।
लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु॥

श्रीकैकेयीका प्रश्न बड़ा मनोवैज्ञानिक है। अनर्थकी स्थितिमें सबसे पहले सबसे प्रिय व्यक्तिका स्मरण होता है; क्योंकि स्नेह अनिष्टा शङ्की होता है। श्रीकैकेयीको सर्वाधिक प्रिय श्रीराम हैं एतावता उसने सबसे पहले अपने परम प्रिय पुत्र रामकी कुशल पूछी, उसके बाद पति दशरथकी। सुनकर कुबरीके हृदयमें बड़ी व्यथा हुयी। उसने कहा—आज रामके अतिरिक्त और किसकी कुशल हो सकती है जिन्हें राजा युवराज पदपर अभिषिक्त कर रहे हैं।

रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू।
जेहि जनेसु देइ जुबराजू॥

आज कौसल्याका भाग्य अनुकूल है। सम्प्रति उनके हृदयमें महान् गर्व है। तुम स्वयं जाकर सब शोभा—कौसल्याजीकी शोभा, तिलककी साज-सज्जा, राज्याभिषेक महोत्सवकी प्रस्तुति सब अपनी आँखोंसे देख लो। मेरा मन तो उसे देखकर क्षुब्ध हो गया है।

देखहु कस न जाइ सब सोभा।
जो अवलोकि मोर मनु छोभा॥

तुम्हारा पुत्र तो परदेशमें है, उसकी तुम्हें कोई चिन्ता नहीं है। राजाकी कपटभरी चतुरताको तुम समझ नहीं पाती हो; क्योंकि तुम बहुत भोली हो। मन्थराकी बातें सुनते ही कैकेयीजी उसपर क्रुद्ध हो गईं और बोलीं—अब तू चूप हो जा। अरी घरफोरी! यदि तूने इस प्रकार फिर कहा तो मैं तेरी जीभ पकड़कर निकलवा लूँगी।

पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी।
तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी॥

सत्योपाख्यानमें भी कैकेयीने मन्थरासे इसी प्रकार कहा है—तेरे कर्मोंसे परिज्ञात होता है कि तू किसी दैत्यकी कन्या है। मेरे रामके विषयमें तेरी ऐसी बुद्धि है तब तो तेरी जिह्वा निकाल देनी चाहिए और हे पापिनि! तेरी आँख भी निकाल लेनी चाहिए तथा नाक भी काट लेनी चाहिए। ऐसा ज्ञात होता है कि यह तेरा कूबड़ नहीं है पापका भण्डारघर है।

कर्मणा त्वां च जानामि दैत्यकन्यां च मन्थरा।
ईदृशी यदि रामे च बुद्धिस्तव समागता।
जिह्वायाश्छेदनं चैव कर्त्तव्यं तव पापिनी॥
नेत्रयोः पातनं चैव नासिकाया विशेषतः।
अयं पापसमूहस्ते वक्ररूपेण वर्तते॥

इतना कहकर फिर श्रीकैकेयीने कहा—

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरतमातु मुसुकानि॥

इतना कहते-कहते भरतकी माता कैकेयी मुस्करा पड़ीं। यदि कैकेयी इतना कहनेके पश्चात् उसी स्वरूपमें रहतीं तो सम्भवतः मन्थराको अपने अस्त्रके प्रयोग करनेका अवसर ही न मिलता। परन्तु कैकेयीने हँसकर अपनी बातकी गम्भीरता समाप्त कर दी। **'हँसा तो फँसा'** यह कहावत प्राचीन और प्रसिद्ध है। कैकेयीजीकी इस मुस्कराहटने मन्थराका मनोबल बढ़ा दिया। कैकेयीजी केवल हँसी ही नहीं अपितु मन्थराको प्रियवादिनी कहकर उसको और बोलनेका अवसर दे दिया।

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही।
सपनेहुँ तो पर कोपु न मोही॥

वास्तवमें श्रीकैकेयी अत्यन्त सरल थीं और मन्थरापर उनका अधिक ममत्व था। क्योंकि वह उनके पीहर की थी।

ज्ञातिदासी यतो जाता कैकेय्या तु सहोषिता॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ७)

पद्मपुराणमें भी कहा है कि देवताओंने सोचा—श्रीसीताजीके लङ्कामें गये बिना रावण वध असम्भव है। इसलिए देवताओंने रावणका वध सम्पन्न करानेके लिए एक अप्सराको भेजा। वही अप्सरा कुब्जा मन्थरा है। उसीको केकय नरेशने अपनी पुत्री कैकेयीके पास दासत्वके लिए दिया था।

मन्थरानाम कार्यार्थमप्सरा प्रेषिता सुरैः।
दासी काचन कैकेय्यै दत्ता केकय भूभृता॥

(पद्मपुराण)

परन्तु श्रीकैकेयीजीका श्रीरामके प्रति ममत्व कम नहीं था अपितु अत्यधिक था। श्रीकैकेयीने कहा—मन्थरे! यदि सचमुच कल मेरे रामका राज्याभिषेक है तो तू जो तुझे अच्छा लगे माँग ले। इसमें भाव यह है कि इस समाचारकी तुलना किसी सामान्य उपहारसे नहीं की जा सकती। मन्थरे! तू नहीं जानती कि मेरे रामको समस्त माताएँ कौसल्याजीके समान ही प्रिय हैं। श्रीरामजीका यह माताओंसे कृत्रिम स्नेह नहीं है अपितु सहज है। फिर मुझपर तो कौसल्यासे भी अधिक स्नेह है। मैंने इसकी परीक्षा करके जान लिया है। मैं तो ब्रह्मासे याचना करती हूँ—मेरे इस जन्ममें जो न्यूनता है वह भविष्यमें पूर्ण हो जाय। अर्थात् अगले जन्ममें श्रीसीता-राम मेरे पूत पतोहू—पुत्र और पुत्रबधू हों। मेरा राम तो मुझे प्राणोंसे भी प्यारा है। उसके तिलकसे तेरे मनमें दुःख क्यों हो गया? मुझे सब कारण सत्य-सत्य बता।

राम तिलकु जौं साँचेहुँ काली।
देउँ मागु मन भावत आली॥
कौसल्या सम सब महतारी।
रामहि सहज सुभायँ पिआरी॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी।
मैं करि प्रीति परीछा देखी॥
जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू।
होहुँ राम सिय पूत पतोहू॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें।
तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें॥

भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ॥

श्रीकैकेयीजीका श्रीरामजीके प्रति कितना सुन्दर, सहज और स्नेहिल भाव है; परन्तु मन्थराने सब नष्ट कर दिया। उसने बलपूर्वक कहा—यदि कल श्रीरामचन्द्रका तिलक हो गया तो आपके ऊपर विपत्ति ही विपत्ति है।

रामहि तिलक कालि जौं भयऊ।
तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ॥

मन्थराने इसके पश्चात् अपने असत्य और कपटके प्रधान अस्त्रका प्रयोग किया। जिसने श्रीकैकेयीके स्नेहिल हृदयका परिवर्तन कर दिया। वह कहती है—

जौं सुत सहित करहु सेवकाई।
तौ घर रहहु न आन उपाई॥

श्रीवाल्मीकीय रामायणमें इस पंक्तिकी व्याख्या श्रवण करें। मन्थराने कहा—रानी अब इस महलको आँख भरकर देख लो, अब इसमें रहने नहीं पाओगी। अब तो तुम्हें दासियोंके घरमें ही रहना पड़ेगा और अपने पुत्रके सहित नीच सेवा करनी पड़ेगी।

एवं च त्वं सहास्माभिस्तस्याः प्रेष्या भविष्यसि।
पुत्रश्च तव रामस्य प्रेष्यत्वं हि गमिष्यति॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ८। ११)

इसके बाद मन्थराने ऐसा अस्त्र छोड़ा कि कैकेयीजी भलीभाँति परिवर्तित हो गईं। मन्थराने कहा—हे कैकयनन्दिनि! रामके राजा होनेके बाद रामका पुत्र राजा होगा। भरतको उसके साथ बैठनेका भी भाग्य नहीं मिलेगा। वे तो राज्य परम्परासे ही अलग हो जायेंगे।

भविता राघवो राजा राघवस्य च यः सुतः।
राजवंशात्तु भरतः कैकेयि परिहास्यते॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ८। २२)

हे कैकेयि! निष्कण्टक राज्य मिलनेके पश्चात् राम कण्टकस्वरूप भरतको देश निकाला दे देंगे अथवा परलोकमें पहुँचा देंगे—वध करवा देंगे।

ध्रुवं तु भरतं रामः प्राप्य राज्यमकण्टकम्।
देशान्तरं नाययिता लोकान्तरमथापि वा॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ८। २७)

कैकयनन्दिनीने जब यह कटुवाणी सुनी तब वे सहमकर सूख गईं। उनके शरीरमें पसीना आ गया। वह कदली वृक्षकी भाँति काँपने लगीं।

कैकयसुता सुनत कटु बानी।
कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी।
..... ॥

अब तो कैकयीकी वाणी ही परिवर्तित हो गयी। वह अनेक प्रकारके दीन वचन कहने लगी। श्रीकैकेयी और मन्थराका यह संवाद कपट छलकी वार्तासे किस प्रकार हृदय परिवर्तित होता है इसका विशेष उदाहरण है। श्रीकैकेयीको बहुत दुःखी देखकर मन्थराने कहा हे रानी! मैं जानती हूँ कि राजाका आप पर महान स्नेह है, आप उनकी प्राणप्रिया पत्नी हैं। आपके लिए तो वे आगमें भी प्रविष्ट हो सकते हैं।

दयिता त्वं सदा भर्तुरत्र मे नास्ति संशयः।
त्वत्कृते च महाराजो विशेदपि हुताशनम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ९। २४)

हे रानी! महाराज आपकी बातका अतिक्रमण नहीं कर सकते हैं। आप अपने सौभाग्यबलका स्मरण करो।

न ह्यतिक्रमितुं शक्तस्तव वाक्यं महीपतिः।
मन्दस्वभावे बुध्यस्व सौभाग्यबलमात्मनः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ९। २६)

यदि आप कहें तो मैं एक उपाय बताऊँ।

भामिनि करहु त कहौं उपाऊ।
है तुम्हरीं सेवा बस राऊ॥

सुनते ही कैकेयीने कहा—

परउँ कूप तुअ बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि॥

मन्थराने जान लिया कि अब रानी उसके वशमें हो गयी। मेरी बातका जादू उसपर असर कर गया तब ***'कपट छुरी उर पाहन टेई।'***

मन्थराने कहा—पुरानी बात है कि देवासुर संग्राममें असुरोंसे श्रीदशरथजीने बड़ा भयङ्कर संग्राम किया था। असुरोंने अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करके श्रीदशरथजीके शरीरको घायल कर दिया। हे देवि! राजाकी चेतना लुप्त सी हो गयी। उस समय सारथ्य करती हुई आपने दूसरी जगह ले जाकर उनकी रक्षा की। वहाँ भी राक्षसोंने आक्रमण कर दिया तब आपने अपने पतिको संग्राम भूमिसे हटाकर उनकी रक्षा की। स्वस्थ होनेपर सन्तुष्ट होकर राजाने आपको दो वरदान देनेके लिये कहा, उस समय आपने कहा—जब मेरी इच्छा होगी तब उन वरोंकी याचना कर लूँगी। मैं उस कथासे अनभिज्ञ थी। आपने ही मुझे बताया था। आपके स्नेहके कारण उस बातको मैंने आजतक मनमें धारण कर रखा है। हे रानी! उन वरोंके प्रभावसे आप श्रीरामके राज्याभिषेकको पलट सकती हैं। सम्प्रति आप उन दोनों वरोंको अपने पतिसे माँग लें। एक वरसे अपने पुत्र भरतका राज्याभिषेक और दूसरे वरसे रामका चौदह वर्षके लिए वनवास माँग लें।

तत्राकरोन्महायुद्धं राजा दशरथस्तदा।
असुरैश्च महाबाहुः शस्त्रैश्च शकलीकृतः॥
अपवाह्य त्वया देवि संग्रामान्नष्टचेतनाः।
तत्रापि विक्षता शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया॥
तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौ वरौ शुभदर्शने।
स त्वयोक्तः पतिर्देवि यदेच्छेयं तदा वरम्॥
गृह्णीयां तु तदा भर्तस्तथेत्युक्तं महात्मना।
अनभिज्ञा ह्यहं देवि त्वयैव कथितं पुरा॥
कथैषा तव तु स्नेहान्मनसा धार्यते मया।
रामाभिषेकसम्भारान्निगृह्य विनिवर्तय॥
तौ च याचस्व भर्तारं भरतस्याभिषेचनम्।
प्रव्राजनं च रामस्य वर्षाणि च चतुर्दश॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ९। १५-२०)

कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं।
स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥
दुइ बरदान भूप सन थाती।
मागहु आजु जुड़ावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहि बनबासू।
देहु लेहु सब सवति हुलासू॥

लेकिन सावधान! वरदान तभी माँगना जब राजा अपने प्यारे पुत्र रामकी कसम खा लें। नहीं तो सब काम नष्ट हो जायेगा।

भूपति राम सपथ जब करई।
तब मागेहु जेहिं बचनु न टरई॥
होइ अकाजु आजु निसि बीतें।
बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें॥

मन्थराने कहा—हे देवि! समस्त कार्य आज ही रात्रिमें सम्पन्न होना चाहिए।

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी।
बार बार बड़ि बुद्धि बखानी॥

श्रीकैकेयीने कहा—हे मन्थरे! यह तेरा कूबड़ नहीं है, यह तो अनेक प्रकारकी मायाका समूह है। इसमें तेरी मतियाँ, राजनीति तथा नाना प्रकारकी माया—शाम्बरीमाया आदि निवास करती हैं।

मतयः क्षत्रविद्याश्च मायाश्चात्र वसन्ति ते।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ९। ४७)

'**मतयः**' बहुवचनका आशय '**मतिस्मृतिबुद्धयः**' अर्थात् मति शब्दसे स्मृति, मति, बुद्धि और प्रज्ञा सबका ग्रहण है। अतीतकी बातमें जो बुद्धिका प्रयोग है उसे 'स्मृति' कहते हैं, भविष्यकी बातमें बुद्धिके प्रयोगको 'मति' कहते हैं, तात्कालिक प्रयोगको 'बुद्धि' कहते हैं और त्रैकालिकी बुद्धिको 'प्रज्ञा' कहते हैं।

स्मृतिर्व्यतीत विषयामतिरागामिगोचरा।
बुद्धिस्तात्कालिकी ज्ञेया प्रज्ञा त्रैकालिकी स्मृता॥

तोहि सम हित न मोर संसारा।
बहे जात कइ भइसि अधारा॥
जौं बिधि पुरब मनोरथु काली।
करौं तोहि चख पूतरि आली॥

श्रीकैकेयी कहती हैं—तुम मेरी परम हितैषी हो। मैं सौतोंके छलके प्रवाहमें बही जा रही थी, तुमने मुझे सहारा दे दिया। यदि ब्रह्मा कल मेरा मनोरथ पूर्ण कर दें तो हे आली! मैं तुमको अपने आँखकी पुत्तलिका बनाऊँगी। इसी प्रकार महर्षि वाल्मीकिजीने भी कहा है—

श्रीकैकेयी कहती हैं—हे सुन्दरि! जब राम वन चले जायेंगे और भरत राजा हो जायेंगे तो मैं तेरे इस सुन्दर कूबड़की पूजा करूँगी। इसपर कपूर, केशर, कस्तूरी आदि अष्टगन्ध सुगन्धित चन्दन लगाऊँगी और अग्निपरितप्त विशुद्ध स्वर्णकी माला धारण कराऊँगी।

अभिषिक्ते च भरते राघवे च वनं गते।
जात्येन च सुवर्णेन सुनिष्टप्तेन सुन्दरि॥
लब्धार्था च प्रतीता च लेपयिष्यामि ते स्थगु।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ९। ४८-४९)

बहु बिधि चेरिहि आदरु देई।
कोपभवन गवनी कैकई॥

इस प्रकार दासी मन्थराको अनेक प्रकारसे सम्मानित करके कैकेयी क्रोधागारमें—कोपभवनमें चली गयी। राजाओंके यहाँ जैसे पूजाका घर होता था, मिलनेका घर होता था उसी प्रकार कोप भवन भी होता था। इसके अनन्तर कुबरीने रानीको फिर समझाया, जिससे वह पतिके स्नेहिल भावनाके प्रवाहमें बह न जाय। उसने अतिशय कोमलको अतिशय कठोर बना दिया। भक्त कविने इस प्रसङ्गमें एक पंक्तिका उल्लेख किया है जो अत्यन्त मननीय है, उसपर विचार करना चाहिए—

को न कुसंगति पाइ नसाइ।
रहइ न नीच मतें चतुराई॥

कितनी शीघ्रतासे संक्रामक रोगकी तरह कुसङ्गका प्रभाव होता है। अभी अभी तो वह श्रीरामको प्राणसे भी अधिक प्यार करती थी, '***प्रान ते अधिक रामु प्रिय मोरें***' कहती थीं; परन्तु कठिन कुसङ्गके संक्रामक रोगसे—छूतके रोगसे वह सबसे विपरीत हो गयी। उसकी दृष्टिमें श्रीदशरथजी, श्रीरामजी, श्रीवसिष्ठजी, श्रीसुमन्त्रजी आदि किसीका महत्व नहीं रहा। फिर श्रीकौसल्याजी आदि तो सपत्नी ही हैं। इस प्रसङ्गसे शिक्षा मिलती है '**दुःसङ्गः सर्वथा त्याज्यः।**'

भगवान् श्रीरामके बाल सखा आते हैं। श्रीरामजी उनका अत्यन्त स्नेहिल सम्मान करते हैं। यह प्रसङ्ग अत्यन्त भावपूर्ण और प्रेरक है। इस प्रसङ्ग की दो

पंक्तियोंको मनन करना चाहिए—

को रघुबीर सरिस संसारा।
सीलु सनेहु निबाहनिहारा॥
जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं।
तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू।
होउ नात यह ओर निबाहू॥

इधर श्री दशरथजी मन्त्री आदिको श्रीरामके राज्याभिषेक सम्बन्धी समस्त कार्योंकी आज्ञा देकर सबको यथा समय उपस्थित होनेके लिए कहकर स्वयं रनिवासमें गये। चक्रवर्तीजीने सोचा—मैं भी किसी विशेष व्यक्तिको यह प्रिय समाचार सुनाऊँ।

प्रियार्हो प्रियमाख्यातुं विवेशान्तःपुरे वशी।
स कैकेय्या गृहं श्रेष्ठं प्रविवेश महायशाः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १०। ११)

साँझ समय सानन्द नृपु गयउ कैकई गेहँ।
गवनु निठुरता निकट किय जनु धरि देह सनेहँ॥

चक्रवर्तीजीने प्रहरीसे सब समाचार जानकरके क्रोधागार—कोपभवनमें जाकर कैकेयीको देखा; कैकेयीकी विचित्र दशा देखकर महाराजके मनमें दारुण दुःख हुआ।

सभय नरेसु प्रिया पहिं गयऊ।
देखि दसा दुखु दारुन भयऊ॥

राजाने श्रीकैकेयीको प्रसन्न करनेके लिए अनेक प्रकारकी मीठी-मीठी बातें कीं; परन्तु वह उठीं नहीं। अन्तमें सरल हृदय राजाने अपने प्राणप्रिय पुत्र श्रीरामजीकी शपथ कर ली।

जौं कछु कहौं कपटु करि तोही।
भामिनि राम सपथ सत मोही॥
बिहसि मागु मनभावति बाता।
भूषन सजहि मनोहर गाता॥

अब तो श्रीकैकेयीने प्रसन्न होकर अपने क्रोधका परित्याग कर दिया।

यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि बिहसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किरातिनि फंद॥

राजाका हृदय नवनीतकी तरह कोमल और बालककी तरह सरल है। उन्होंने कहा—भामिनि! तुम्हारे मनकी बात हो रही है अर्थात् तुम्हारा प्रिय पुत्र राम युवराज बन रहा है।

भामिनि भयउ तोर मन भावा।
घर घर नगर अनंद बधावा॥
रामहिं देउँ कालि जुबराजू।
सजहि सुलोचनि मंगल साजू॥

इससे स्पष्ट है कि कैकेयीजी भी श्रीरामजीका राज्यतिलक चाहती थीं और उन्होंने इसके लिए पहले श्रीदशरथसे प्रार्थना भी की थी; परन्तु आज तो उनका हृदय विपरीत दिशामें परिवर्तित हो गया था।

लखहिं न भूप कपट चतुराई।
कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई॥

श्रीगोस्वामीजीने *'कोटि कुटिल मनि गुरू'* की उपाधि मन्थराके लिए उचित ही दी है। भारतसम्राट्की पट्टमहिषी, धर्ममूर्ति श्रीभरतकी जननी, श्रीरामकी वात्सल्यमयी माता, केकय नरेशकी पुत्री, राजनीति और युद्धकलामें प्रवीण कैकेयीको जो इतना अधिक प्रभावित कर ले, वह वास्तवमें *'कोटि कुटिल मनि गुरू'* ही है। श्रीकैकेयीने कहा—आप माँगनेके लिए तो कहते हैं; परन्तु कभी देते लेते नहीं। आपने पहले दो वरदान देनेके लिए कहा था; परन्तु आज उनके पानेमें भी हमें संशय है।

मागु मागु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु॥

सुनकर श्रीराजाने कहा—हमें मिथ्या दोष मत दो, दो के स्थानपर चार वर ले लो—

झूठेहुँ हमहिं दोसु जनि देहू।
दुइ कै चारि मागि मकु लेहू॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥

अपनी बातको सुदृढ़ कराके तब उसने वर याचना की—

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का।
देहु एक बर भरतहिं टीका॥
मागउँ दूसर बर कर जोरी।
पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥
तापस बेष बिसेषि उदासी।
चौदह बरिस रामु बनवासी॥

हे प्राणपते! मेरे पुत्र भरतको राज्य दें और श्रीरामको चौदह वर्षका वनवास। सुनते ही राजाके मनमें महान् शोक हुआ।

माथे हाथ मूदि दोउ लोचन।
तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन॥

हा हन्त! यह क्या हो गया? मैंने तो अपने प्राणप्रिय पुत्र श्रीरामकी शपथ भी कर ली है। हा हन्त! मैं तो स्त्रीका विश्वास करके मारा गया।

कवने अवसर का भयउ गयउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास॥

राजाने अपनी छाती कड़ी करके कहा—मेरे लिए भरत और राममें कोई अन्तर नहीं है। कल ही—प्रात:काल ही भरतको बुलानेके लिए दूत भेजूँगा। भरत, शत्रुघ्न सुनते ही आ जायेंगे और भरतको मैं डंका बजाकर राज्य दे दूँगा। मेरे रामको राज्यका किञ्चिन्मात्र भी लालच नहीं है और भरतके प्रति उनका अति स्नेह है।

मोरें भरतु रामु दुइ आँखी।
सत्य कहउँ करि संकरु साखी॥
अवसि दूत मैं पठइब प्राता।
ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता॥
सुदिन सोधि सबु साजु सजाई।
देउँ भरत कहुँ राजु बजाई॥
लोभु न रामहिं राजु कर बहुत भरत पर प्रीति।

हे कैकेयि! मेरे रामको संसार साधु कहता है। संसारमें प्राय: घरकी निन्दा स्त्रियोंसे और उपजीवी नौकरोंसे ही फैलती है। यही दो वर्ग झूठी सच्ची निन्दा करते हैं। मेरे यहाँ हजारों स्त्रियाँ और भृत्य सेवामें लगे हैं; परन्तु आजतक किसीने श्रीरामका परिवाद या अपवाद नहीं किया है।

बहूनां स्त्रीसहस्राणां बहूनां चोपजीविनाम्।
परिवादोऽपवादो वा राघवे नोपपद्यते॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १२। २७)

तुम भी उनकी अत्यन्त श्लाघा करती थीं। अपने पुत्र भरतसे भी उनको अधिक प्रेम करती थीं। मेरे रामका स्वभाव तो शत्रुके लिए भी अनुकूल है। वह माताके प्रतिकूल आचरण क्यों करेगा?

जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला।
सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला॥

हे कैकेयि! मछली चाहे जलसे अलग होकर जीती रहे, सर्प मणिके बिना दु:खी होकर जीता रहे परन्तु मैं रामके बिना जीवन धारण नहीं कर सकता।

जिऐ मीन बरु बारि बिहीना।
मनि बिनु फनिकु जिऐ दु:ख दीना॥

कहउँ सुभाउ न छलु मन माहीं।
जीवनु मोर राम बिनु नाहीं॥

हे कैकेयिनन्दिनि! इस संसारका सूर्यके विना टिकना सम्भव हो सकता है, पानी विना धान पैदा हो सकता है; परन्तु अपने प्राणाधार रघुनन्दनके विना मैं नहीं जी सकता हूँ। हे पापनिश्चये! तेरे चरणोंपर मैं अपना सिर रख रहा हूँ, तू अपने पापपूर्ण निश्चयका त्याग कर दे।

तिष्ठेल्लोको विना सूर्यं सस्यं वा सलिलं विना॥
न तु रामं विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम्।
तदलं त्यज्यतामेष निश्चयः पापनिश्चये॥
अपि ते चरणौ मूर्ध्ना स्पृशाम्येष प्रसीद मे।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १२। १३-१५)

इस सरल और स्नेहमय वचनोंका कैकेयी पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। उसने अत्यन्त क्रूर शब्दोंमें कहा—

कहइ करहु किन कोटि उपाया।
इहाँ न लागिहि राउरि माया॥

कैकेयीने अपना कठोर निर्णय व्याकुल श्रीमहाराज दशरथको पुनः सुनाया—

होत प्रातु मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिय मन माहिं॥

महर्षि श्रीवाल्मीकिने भी लिखा है—कैकेयी कहती हैं कि हे मानवेन्द्र! मैं अपने भरतकी तथा अपनी शपथ करके कहती हूँ कि रामके निर्वासनके अतिरिक्त किसी कार्यसे मैं सन्तुष्ट नहीं हो सकती हूँ।

भरतेनात्मना चाहं शपे ते मनुजाधिप।
यथा नान्येन तुष्येयमृते रामविवासनात्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १२। ४९)

इसके बाद भी श्रीरामके वत्सल पिताने एक और उपाय किया—कैकेयीके चरण पकड़कर बिठाकर प्रार्थना की कि सूर्यकुलरूपी वृक्षका छेदन करनेके लिए कुल्हाड़ी न बन। यदि मुझे मारना ही चाहती है—मेरी मृत्यु ही तुझे अभीष्ट है तो मेरा मस्तक माँगले, मैं सर काटकर दे दूँगा; परन्तु रामके विरहमें मुझे न मार। जिस किसी प्रकारसे रामको रख ले अन्यथा यावज्जीवन तेरा हृदय जलता रहेगा।

गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी।
जनि दिनकर कुल होसि कुठारी॥
मागु माथ अबहीं देउँ तोही।
राम बिरहँ जनि मारसि मोही॥
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती।
नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती॥

महाराजने यह भी कहा—मेरे भरतको मैं भली भाँति जानता हूँ, वह कभी भूलकर भी राजपद नहीं चाहता है।

चहत न भरत भूपतहि भोरें।
बिधि बस कुमति बसी जिय तोरें॥

श्रीवाल्मीकिजीने भी कहा है—हे कैकेयि! अपने अग्रज रामके बिना भरत कथमपि राज्य स्वीकार नहीं करेंगे; क्योंकि धर्मपालनमें रामसे भरत बलवत्तर हैं। आशय यह है कि यदि तू चाहती है कि भरत राज्य करें तो इसके लिए भी रामकी आवश्यकता है। भरत राज्य करें और राम मुझ वृद्धके समीप रहकर मेरी सेवा करें। इससे तेरा मनोरथ सिद्ध हो जायेगा, अन्यथा तेरा इष्ट सिद्ध नहीं होगा।

न कथञ्चिदृते रामाद् भरतो राज्यमावसेत्॥
रामादपि हि तं मन्ये धर्मतो बलवत्तरम्।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १२। ६१-६२)

श्रीचक्रवर्तीने श्रीभरतचरितका अत्यन्त सूक्ष्म तथा सङ्क्षिप्त चित्रण किया है। श्रीदशरथजीने कहा—अब तू मेरे सामनेसे हट जा, अपना यह अशुभ मुख मुझे न दिखा और जबतक मैं जीवित रहूँ, पुनः कुछ न कहना।

अब तोहि नीक लाग करु सोई।
लोचन ओट बैठु मुहु गोई॥
जब लगि जिऔं कहउँ कर जोरी।
तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी॥

श्रीदशरथजीने अनेकों प्रकारसे समझाकर कहा कि तू क्यों सर्वनाश कर रही है, भूमिपर गिर पड़े। कपट करनेमें चतुर कैकेयी कुछ बोलती नहीं है। मानों मौन होकर श्मशानमें बैठकर प्रेत सिद्ध कर रही है।

परेउ राउ कहि कोटि बिधि काहे करसि निदानु।
कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु॥

श्रीदशरथजी 'राम राम' रट रहे हैं। जिस प्रकार पक्षी बिना पंखके व्याकुल हो जाता है, मृतप्राय हो जाता है, उसी प्रकार राजा भी व्याकुल हैं। इस प्रकार विलाप करते-करते प्रातःकाल हो गया। आज सबको बड़ा आश्चर्य है कि राजा तो नित्य रात्रिके अन्तिम प्रहरमें—ब्रह्ममुहूर्तमें जग जाते थे; परन्तु आज इस उत्साह और मङ्गलकी वेलामें वे क्यों नहीं जगे।

पछिले पहर भूपु नित जागा।
आजु हमहिं बड़ अचरजु लागा॥

महलके भीतर—रनिवासमें सबका प्रवेश नहीं हो सकता है एतावता मन्त्री सुमन्त्रको भेजा गया। वहाँकी परिस्थितिसे सुमन्त्रके मनमें अनिष्टकी आशङ्का हो गयी ***'देखि भयावन जात डेराहीं'***। कैकेयीके महलमें जाकर अपने प्रियमित्र, अपने स्वामी को देखकर भावी अनर्थकी आशङ्कासे कुछ पूछ नहीं पा रहे हैं। उनके मनमें ऊहापोह है। उनको ऐसा प्रतीत हो रहा है—महारानीने अवश्य ही कोई अनर्थ किया है। उनके मनमें जिज्ञासा थी कि क्या हुआ है? कैकेयी स्पष्ट असत्यका आश्रय लेकर बोलीं। आज कैकेयीके लिए श्रीगोस्वामीजीने नौ अक्षरोंका नाम दिया है ***'असुभ भरी सुभ छूछी'*** जो कुछ बोलेगी वह अशुभ है, असत्य है, उससे परिपूर्ण है और जो शुभ है—श्रीरामके राज्याभिषेकका उत्साह, उससे छूछी—खाली हैं। इसी प्रकार नौ अक्षरोंका नाम इसके पूर्व मन्थराके लिए आया है ***'कोटि कुटिल मन गुरू'***। कैकेयीने कहा—महाराजको रात्रिमें निद्रा नहीं आयी। कारण तो जगदीश्वरको ही ज्ञात होगा। रात्रिभर वे राम-राम रटते रहे। पूछनेपर उन्होंने मर्म—रहस्य नहीं बताया। अब आप सर्वप्रथम रामको बुलाकर लाइए और तब आकर समाचार पूछिएगा।

परी न राजहि नींद निसि हेतु जान जगदीसु।
रामु-रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु॥

आनहु रामहि बेगि बोलाई।
समाचार तब पूँछेहु आई॥

कैकेयीजी सुमन्त्रके सामने वास्तविक बात नहीं कहती हैं, उनके मनमें भय था कि यह अनुभवी राजनीतिज्ञ सुनकर उनकी योजना विनष्ट करनेका प्रयास करेंगे। वातावरणकी प्रतिकूलताके कारण सुमन्त्र भी कुछ कर सकने में स्वयंको असमर्थ पाते हैं। परन्तु सुमन्त्रजीने अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक उत्तर दिया—हे भामिनि! मेरे जानेके लिए आपकी—केवल आपकी आज्ञा अपर्याप्त है। मैं अपने स्वामीकी आज्ञाके विना

नहीं जा सकता हूँ। निर्भीकता, स्वामीकी आज्ञाका पालन, कठिन समयमें सर्वस्व समर्पणकी भावना और मित्र तथा मन्त्रीके कर्तव्योंका पालन सुमन्त्रके चरित्रकी विशेषताएँ हैं।

अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १४। ६४)

श्रीदशरथने सुनकर कहा—हे सुमन्त्र! मैं रामचन्द्रके दिव्य मुखचन्द्रका दर्शन करना चाहता हूँ। '**सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि।**' वाल्मीकिजीका यह वर्णन श्रीगोस्वामीजीने एक पंक्तिमें लिखा है।

चलेउ सुमंतु राय रुख जानी।
लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी॥

तत्काल जाकर श्रीसुमन्त्र श्रीरामजीको महलसे बुला लाते हैं—

राम सुमंत्रहि आवत देखा।
आदरु कीन्ह पिता सम लेखा॥
निरखि बदनु कहि भूप रजाई।
रघुकुल दीपहि चलेउ लेवाई॥

श्रीकैकेयीके महलमें जाकर अपने पिताकी व्याकुल दशा देखकर श्रीरामजीको आश्चर्य हो रहा था कि उनके अगाध धैर्यशाली पिताजी आज पराजित प्रतीत हो रहे थे। म्लानता और दीनता उनकी प्रत्येक क्रियामें परिलक्षित हो रही थी। उन्हें देखकर प्रतीत होता था कि जैसे सिंहिनीके समक्ष वृद्ध गजराज आँखें मूँदकर सहम गया हो। उनकी श्रीहीनताको देखकर ऐसा लग रहा था कि जैसे सर्पसे मणि छीन ली गयी हो। कैकेयी मूर्तिमती मृत्युके समान महाराजके समीप बैठी हुई थी। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे मृत्यु स्वयं समयकी गणना करती हुई प्राण ले जानेकी प्रतीक्षा कर रही हो।

जाइ दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुँ बृद्ध गजराजु॥
सूखहिं अधर जरइ सबु अंगू।
मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू॥
सरुष समीप दीखि कैकेयी।
मानहुँ मीचु घरीं गनि लेई॥

श्रीरामजी करुणामय हैं। उनका स्वभाव अत्यन्त कोमल है, उनके जीवनका यह प्रथम कटु अनुभव था। इस प्रकारके दुःख देखनेका तो प्रश्न ही क्या था। उन्हें तो दुःख सुनने का अवसर भी कभी नहीं प्राप्त हुआ था।

करुनामय मृदु राम सुभाऊ।
प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ॥

श्रीरामचन्द्रजीने परिस्थितिकी गम्भीरताको समझ करके धैर्य धारण करके मीठी वाणीमें महतारी से—अपनी माँ से पूछा—

तदपि धीर धरि समउ बिचारी।
पूँछी मधुर बचन महतारी॥

श्रीरामजी पिताकी दीन दशा देखकर स्वयं भी दीनभावसे कैकयी मातासे बोले—हे माता! मेरे पिताजी क्यों नहीं बोल रहे हैं? इनके मनमें कौन-सा दारुण दुःख है? क्या मुझसे कोई अक्षम्य अपराध हो गया है? हे देवि! मेरे पिताजीके मनमें इतना सन्ताप क्यों है? इनको इस प्रकार मैंने कभी नहीं देखा।

एतदाचक्ष्व मे देवि तत्त्वेन परिपृच्छतः।
किंनिमित्तमपूर्वोऽयं विकारो मनुजाधिपे॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १८। १८)

मोहि कहु मातु तात दुख कारन।
करिअ जतन जेहिं होइ निवारन॥

कैकेयीजीने कठोरतापूर्वक अपने वरप्राप्तिकी

कथा, दोनों वरदान माँगनेकी बात और राजाके दुःखी होनेका कारण सुना दिया और यह भी कहा—हे राम! तुम नरेन्द्रकी आज्ञा-पालन करो और इनके सत्यकी रक्षा करो तथा इनके सङ्कटको दूर करो।

एतत् कुरु नरेन्द्रस्य वचनं रघुनन्दन।
सत्येन महता राम तारयस्व नरेश्वरम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १८। ४०)

श्रीरामने माता कैकेयीके मुखसे सब प्रसङ्ग अच्छी तरह श्रवण किया। यह निश्चय हो गया कि अब मुझे श्रीअयोध्याका युवराज पद नहीं मिलेगा अपितु मुझे आज ही तापस वेषमें चौदह वर्षके लिए वनमें जाना पड़ेगा। अपेक्षित सुख नहीं मिल पाया और अनपेक्षित दुःख आ गया। इस परिस्थितिमें मर्यादापुरूष परमधीर गम्भीर श्रीरामजीकी मुखश्रीका दर्शन करें। श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं कि —

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू।
राम सहज आनंद निधानू॥

सूर्यका स्वभाव ही है मुस्कराना—प्रकाश बिखेरना। इसके पूर्व श्रीगोस्वामीजीने श्रीरामको 'दीपक' और 'मणि' कहा है—***'रघुकुल दीपहिं चलेउ लेवाई'*** ***'जाइ दीख रघुबंसमनि'।*** जब दुःखकी कल्पना भी नहीं थी तब 'दीपक' कहा। दीपकमें प्रकाश कम होता है। दीपककी हवासे बुझनेकी आशङ्का रहती है। तीसरी बात यह है कि दिनमें दीपकका प्रकाश नहीं होता है और चौथी बात यह है कि दीपकमें बाह्य उपकरणोंकी आवश्यकता होती है—तेल, घी, रूई, पात्र, अग्नि और जलाने वाला। इनमें एक वस्तुकी भी कमी होनेसे दीपक नहीं जल सकता है।

जब श्रीरामजीने श्रीदशरथजीकी स्थितिको देखा तो यह निश्चय हो गया कि अब आज तो युवराज बनना असम्भव है; तब श्रीरामजीको 'मणि' कहा, दीपकसे मणिका प्रकाश अधिक होता है। दीपककी भाँति मणिमें बाह्य उपकरणोंकी आवश्यकता नहीं होती है। मणि रात्रि और दिन दोनोंमें प्रकाशित रहती है।

परम प्रकास रूप दिन राती।
नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥

(७। १२०)

और जब यह निर्णय हो गया कि अब राज्य तो होगा ही नहीं अपितु वन जाना होगा तब 'भानु' कह दिया ***'मन मुसुकाइ भानुकुल भानू'।*** सूर्यका भी प्रकाश समय सापेक्ष है, सायंकाल सूर्यका प्रकाश मन्द हो जाता है, इसलिए कहते हैं ***'भानुकुल भानू'।*** भाव यह है कि यह तो सूर्यके भी प्रकाशक सूर्य हैं। श्रीरामजीने कहा—हे मातः! आपने भाग्यवान् बननेका अवसर मुझे प्रदान करके बड़ी कृपा की है।

बोले बचन बिगत सब दूषन।
मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन॥
सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी।
जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा।
दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

इस सन्दर्भमें भोजराज महाकविने अपने ग्रन्थ चम्पू रामायणमें लिखा है कि श्रीरामजी कहते हैं—हे माँ! वनप्रान्तमें केवल अपनी देहकी रक्षा करनेका कार्य मुझे दिया गया है और समग्र वसुन्धराके पालनका भार भरतके सिरपर डाल दिया गया है। यदि यहाँपर हम दोनोंके कार्योंकी

सुकरताका विचार किया जाय तो लोग तुमको रामके प्रति पक्षपात करनेका दोष देंगे।

वनभुवि तनुमात्रत्राणमाज्ञापितं मे,
सकल भुवनभारः स्थापितो वत्समूर्ध्नि।
तदिह सुकरतायामावयोस्तर्कितायां,
मयि पतति गरीयानम्ब ते पक्षपातः॥

(चम्पूरामायण २। २)

श्रीरामने कहा हे मातः! इस वनगमनमें तो कई लाभ प्राप्त होंगे।

मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥
भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू।
बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा।
प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा॥

हे मातः! पिताजीको अत्यन्त व्याकुल देखकर मुझे महान् क्लेश है कि इस थोड़ी-सी बातके लिए मेरे पिताजीको इतना महान् कष्ट है। हे माँ! मुझे विश्वास नहीं होता है। मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि मुझसे कोई अक्षम्य अपराध हो गया है, इसीलिये पिताजी मुझसे बात भी नहीं कर रहे हैं। आपको मेरी सौगन्ध है कि आप मुझे सब बात स्पष्ट बता दें।

अंब एक दुखु मोहि बिसेषी।
निपट बिकल नरनायकु देखी॥
थोरिहिं बात पितहि दुख भारी।
होति प्रतीति न मोहि महतारी॥
राउ धीर गुन उदधि अगाधू।
भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू॥
जातें मोहि न कहत कछु राऊ।
मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥

माता कैकेयीने कहा—हे पुत्र! तुम अपराधी नहीं हो सकते हो।

तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता।
जननी जनक बंधु सुखदाता॥

धन्य है! श्रीरामको वन देनेवाली कैकेयी अपने कानोंसे यह नहीं सुन सकीं कि रामजी अपराधी हैं। इसके पश्चात् श्रीरामजीके पिता चक्रवर्त्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजी अपने मनमें भगवान् भोलेनाथ महादेवजीसे कहते हैं—हे सदाशिव! मेरी प्रार्थना सुनिये। आप आशुतोष और अवढरदानी हैं एतावता अपना दीन सेवक जानकर मेरे क्लेशका अपहरण कर लीजिये। आप सबके हृदयमें प्रेरक रूपसे निवास करते हैं। आप मेरे रामको ऐसी बुद्धि दें कि वह मेरे वचनको न मानकर मेरा शील स्नेह छोड़कर वन न जायँ अपितु घरमें ही रहें। संसारमें मेरा अपयश हो और सुयश नष्ट हो जाय, चाहे मैं नरकमें गिरूँ किं वा स्वर्गमें जाऊँ तथा अनेक प्रकारके दुःख मुझसे सहन करा लें; परन्तु हे गौरीनाथ! मेरा राम मेरी आँखोंसे ओझल न हो।

सुमिरि महेसहिं कहइ निहोरी।
बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी।
आरति हरहु दीन जनु जानी॥
तुम्ह प्रेरक सब के हृदयँ सो मति रामहि देहु।
बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु॥
अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ।
नरक परौं बरु सुरपुरु जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावहु मोही।
लोचन ओट रामु जनि होंही॥

श्रीरामचन्द्रजीने अपने पिता श्रीदशरथसे कहा—हे पिताजी! इस माङ्गलिक बेलामें प्रेमाधीन होकर

सोच करना छोड़ दीजिये और प्रसन्नतापूर्वक मुझे आज्ञा दीजिये। इतना कहते-कहते प्रभु सर्वाङ्गपुलकित हो गये।

मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात॥

श्रीरामचन्द्रजीने श्रीकैकेयीसे कहा—हे मातः! मैं अपने पिताजीकी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये जटा और चीर धारण करके आपकी इच्छानुसार वनमें रहनेके लिये श्रीअयोध्याजीसे अविलम्ब चला जाऊँगा।

एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहं त्वितः।
जटाचीरधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १९। २)

श्रीरामने कहा—हे मात! मुझे दुःख है कि पिताजीने स्वयं मुझसे क्यों नहीं कहा और हे जननि! आपकी गोदमें मैं सत्ताईस वर्षपर्यन्त रहा; परन्तु आप भी अपने रामको नहीं समझ पायीं। आपने पिताजीको क्यों कष्ट दिया? यदि आप स्वयं कहतीं तो भी मैं अपने लाड़ले, दुलारे, भावते भाई भरतके लिये राज्यको, सीताको, अपने प्रियप्राणोंको तथा अपने सर्वस्व—समस्त धनको हँसते-हँसते दे सकता था।

अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदितः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १९ ७)

अब मैं पूज्य माता श्रीकौसल्यजीके चरणोंमें आज्ञा लेने जाता हूँ। उनसे आज्ञा ले और पूज्य पिताजीको प्रणाम करके आज ही विशाल दण्डक काननकी यात्रा करूँगा।

बिदा मातु सन आवउँ मागी।
चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी॥

श्रीरामके वनगमनकी चर्चा—अत्यन्त अप्रिय चर्चा समस्त अयोध्यामें बड़ी शीघ्रतासे व्याप्त हो गयी, जैसे डंक मारते ही बीछीका जहर समस्त शरीरमें व्याप्त हो जाता है।

नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी।
छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥

श्रीअयोध्यावासियोंके मुख सूख गये, उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी और शोक उनके हृदयमें समाता नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि करुणरसकी सेनाने नगाड़ा बजाकर श्रीअवधपर आक्रमण कर दिया हो।

मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ॥

लोगोंने कहा—ब्रह्माने क्या सुनाकर क्या सुना दिया और क्या दिखाकर अब वह क्या दिखाना चाहता है।

का सुनाइ बिधि काह सुनावा।
का देखाइ चह काह देखावा॥

एक नागरिकने कहा—राजाने अच्छा नहीं किया, मन्दबुद्धि कैकेयीको विचारकर वरदान नहीं दिया। एकने कहा—इसमें भरतजीकी राय ज्ञात होती है। एकने कहा—यह बात असत्य है। इस प्रकार कहनेसे तुम्हारे समस्त पुण्य नष्ट हो जायँगे। श्रीभरतजीको श्रीरामजी प्राणोंसे भी प्यारे हैं। चन्द्रमा चाहे शीतल किरणोंकी बजाय अग्निके जाज्वल्यमान कणोंकी वर्षा करने लगे और अमृत चाहे विषके समान हो जाय; परन्तु श्रीभरत श्रीरामके प्रतिकूल कभी स्वप्नमें भी नहीं हो सकते।

सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे।
रामु भरत कहुँ प्रानपिआरे॥

चन्दु चवै बरु अनल कन सुधा होइ विषतूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु भरतु राम प्रतिकूल॥

ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ, कुलकी सम्मान्य वृद्धायें और जो कैकेयीको परम प्रिय थीं उन्होंने कैकेयीको अनेक प्रकारकी शिक्षा दी और यह भी कहा—क्या सीताजी अपने पतिका साथ छोड़ेंगी? क्या लक्ष्मण श्रीरामके बिना घरमें रहेंगे? क्या श्रीभरत श्रीअयोध्यामें श्रीरामके विना राज्य करेंगे? और क्या राजा अपने प्रिय पुत्र श्रीरामके विना जीवन धारण करेंगे?

सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु कि रहिहहिं धाम।
राजु कि भूँजब भरत पुर नृपु कि जिइहि बिनु राम॥

आगे बड़ी सशक्त वाणीमें ये देवियाँ कैकेयीको शिक्षा दे रही हैं।

जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही॥
जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चन्द बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौं जियँ भामिनी॥
सखिन्ह सिखावनु दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइँ कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी॥

श्रीअयोध्याके सभी नर-नारी अतिशय विषाद कर रहे हैं। श्रीरामजी अपनी स्नेहमयी जननीके पास गये।

अति बिषाद बस लोग लोगाईं।
गए मातु पहिं रामु गोसाईं॥

उस समय श्रीगोस्वामीजी श्रीरामके आनन्दका वर्णन बड़े भावपूर्ण शब्दोंमें कर रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजीका मन नवीन हाथीके समान है और राजतिलक उस हाथीके बाँधनेकी काँटेदार लोहेकी बेड़ीके समान है। 'वन जाना है' यह सुनकर स्वयंको बन्धनसे छूटा समझकर उनके हृदयमें आनन्द बढ़ गया है।

नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान॥

इस प्रसङ्गमें महर्षि वाल्मीकिने दो श्लोकोंमें श्रीरामजीकी मुखच्छवि और उनके निर्विकार चित्तका बड़ा भावपूर्वक वर्णन किया है—श्रीरामचन्द्रजीके दिव्य, निर्मल, निष्कलङ्क मुखचन्द्रकी शोभामें राज्याभिषेकके नष्ट होनेसे किं वा वनगमनसे कोई अन्तर नहीं पड़ा। श्रीरामकी सहज कान्तिसे—अविनाशी कान्तिसे उनकी मुखश्री सुशोभित है।

न चास्य महतीं लक्ष्मीं राज्यनाशोऽपकर्षति।
लोककान्तस्य कान्तत्वाच्छीतरश्मेरिवक्षयः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १९। ३२)

श्रीरामायण शिरोमणि टीकाकारने '**लोक-कान्तस्य कान्तत्वात्**' इस पदका अपूर्व रसास्वादन किया है 'लोकक' कहते हैं, लोकमें रहनेवालोंको, उनका अन्त करनेवाला जो काल है उसके भी श्रीरामजी कान्त हैं, अतः कालजन्य कोई भी कारण उनकी मुखच्छविको मलिन नहीं कर सकता है। '**लोककान्तस्य लोककानां भुवनजनानां अन्तस्य कालस्यकान्तत्वात् स्वामित्वात्।**' अथवा लोकोंके कान्त—नियामक जो ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर हैं, उनके भी कान्त—नियामक श्रीरामजी हैं, एतावता इनकी मुखश्रीमें अन्तर नहीं आया '**लोककान्तस्य ब्रह्मादि त्रयस्य कान्तत्वान्नियामकत्वात्।**' अथवा लोककान्त अर्थात् समस्त शोभाओंके स्वामी श्रीरामजी हैं, भाव कि समस्त शोभाओंको भी सुशोभित करनेवाले हैं, सुतराम् उनकी शोभामें कमी होनेका प्रश्न ही नहीं है। '**लोककान्तस्य सकलशोभायाः कान्तत्वात्**'—'**सकल शोभा हेतुत्वादित्यर्थः**' श्रीरामजीकी मुखश्री

अम्लान है यह कहकर महर्षि कहते हैं कि श्रीठाकुरजीके मनमें कभी किसी प्रकारका विकार नहीं उत्पन्न हुआ।

न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १९। ३३)

श्रीरामजी वन गमनके लिये प्रस्तुत हैं और समस्त वसुन्धराका—पृथ्वीका प्राप्त राज्य त्याग रहे हैं; फिर भी उनके मनमें, जिसको मानापमानमें कोई अन्तर ज्ञात नहीं होता है उस परम योगीश्वरकी भाँति कोई विकार नहीं हुआ। किं वा समस्त लोकोंके ऊर्ध्ववती साकेतलोकमें नित्य विहार करनेवाले साकेताधीशके मनमें किसी भी प्रकारकी चित्तविक्रिया—राज्यनाश, वनगमन, पिता-माता आदिके वियोगसे होनेवाली चित्तविकृति परिलक्षित नहीं हुयी।

श्रीरामजीने वात्सल्यमयी माताके पास जाकर उनके चरणोंमें प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम किया।

रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा।
मुदित मातु पद नायउ माथा॥

'रघुकुलतिलक' कहनेका भाव यह है—सोलह शृङ्गार कहे गये हैं, उनमें एक शृङ्गार तिलक भी है। अर्थात् श्रीरामजी रघुकुलके तिलक हैं—आभूषण हैं। इस प्रसङ्गके आरम्भमें जब श्रीसुमन्त्रजी श्रीरामजीको श्रीदशरथजीके पास लानेके लिये गये हैं तब वहाँ कहा है।

'गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका'। जैसे तिलकसे मुखमण्डलकी शोभा होती है उसी प्रकार सूर्यकुलकी शोभा श्रीरामजी हैं। 'दिनकर कुल' कहनेका भाव यह है कि यह कुल स्वयं सुशोभित है, परन्तु श्रीरामजी इस कुलको भी सुशोभित करनेवाले हैं।

'जोरि दोउ हाथा' हाथ जोड़कर प्रणाम करनेसे श्रीरामजी स्वयं प्रसन्न होते हैं।

भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै।
ततकाल तुलसीदास जीवन-जनमको फल पाइहै॥

(श्रीविनयपत्रिकाजी १३५। ५)

'अञ्जलिः परमा मुद्रा क्षिप्रं देवप्रसादिनी॥'

इसलिये प्रभुने स्वयं भी बद्धाञ्जलि होकर अपनी माताके चरणोंमें प्रणाम किया।

'मुदित' का भाव यह है कि श्रीठाकुरजीके मनमें पृथ्वीका राज्य छोड़नेमें और चौदह वर्षके लिए वनमें प्रस्थान करनेमें किञ्चिन्मात्र भी अप्रसन्नता नहीं हुई। इस प्रसङ्गमें महर्षि श्रीवाल्मीकिजीने भी श्रीरामजीकी प्रसन्नताका बहुत सुन्दर निरूपण किया है। जो श्रीमान् मनुष्य सदा सत्यवादी श्रीमान् रामजीके अत्यन्त सन्निकट रहा करते थे, उन्होंने भी उनके मुखपर कभी कोई विकार नहीं देखा। श्रीरामजी अपने मनको, इन्द्रियोंको और अन्तःकरणको अपने वशमें रखते थे इसीलिये उन्हें 'आत्मवान्' कहते थे। आत्मवान्, महाबाहु श्रीरामजीने अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता उसी तरह नहीं छोड़ी थी जिस प्रकार शरद्कालका उद्दीप्त किरणोंवाला चन्द्रमा अपने सहज तेजका परित्याग नहीं करता है।

सर्वोऽप्यभिजनः श्रीमाञ्श्रीमतः सत्यवादिनः।
नालक्षयत रामस्य कंचिदाकारमानने॥
उचितं च महाबाहुर्न जहौ हर्षमात्मवान्।
शारदः समुदीर्णांशुश्चन्द्रस्तेज इवात्मजम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १९। ३६-३७)

महायशस्वी धर्मात्मा श्रीराम अपनी सहज मधुर वाणीसे सब लोगोंका सम्मान करते हुये अब वात्सल्यमयी माताके पास गये।

वाचा मधुरया रामः सर्वं सम्मानयञ्जनम्।
मातुः समीपं धर्मात्मा प्रविवेश महायशाः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १९। ३८)

अत्यन्त आनन्दसे भरे हुए माताके उस भवनमें प्रवेश करके लौकिक दृष्टिसे अपने अभीष्ट अर्थका विनाश हुआ देखकर भी हितैषी सुहृदोंके प्राणोंपर सङ्कट आ जानेकी आशङ्कासे श्रीरामने यहाँ अपने मुखपर कोई विकार नहीं प्रकट होने दिया।

प्रविश्य वेश्मातिभृशं मुदा युतं
समीक्ष्य तां चार्थविपत्तिमागताम्।
न चैव रामोऽत्र जगाम विक्रियां
सुहृज्जनस्यात्मविपत्तिशङ्कया ॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १९। ४०)

श्रीकौसल्याजी प्रभुको आशीर्वाद देकर बार-बार श्रीरामजीका मुख चूमकर उन्हें गोदमें बैठाकर हृदयसे लगाती हैं। उस समय उनके स्तनोंसे प्रेमरस निर्मल दुग्धके रूपमें समुच्छलित हो गया।

बार बार मुख चुंबति माता।
नयन नेह जलु पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए।
स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए॥

भावुक और भक्त कविका कितना अनूठा वर्णन है। वात्सल्य रसका कितना सजीव वर्णन है। धन्य है! माताजी पूछती हैं—मेरे लाल! तुम्हारे राज्यलग्नकी मङ्गलमयी बेला कब है? हे पुत्र! उस लग्नकी प्रतीक्षा श्रीअयोध्याके नर-नारी उसी प्रकार कर रहे हैं जिस प्रकार प्यासे चातक और चातकी शरद् ऋतुके स्वाति नक्षत्रकी वृष्टिकी प्रतीक्षा करते हैं।

जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित वृष्टि सरद रितु स्वाति॥

इस दोहेके मनन करनेसे कई प्रकारकी शङ्काओंका समाधान स्वयं ही हो जाता है।

माँ कहती है—हे रामलालजी! तुम स्नान करके कुछ मधुर—मीठा खा लो। हे भैया! मैं बलैया जाती हूँ। बहुत विलम्ब हो गया है कुछ खाकर ही पिताके पास जाना।

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू।
जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥
पितु समीप तब जाएहु भैआ।
भइ बड़ि बार जाइ बलि मैआ॥

श्रीरामजीके सामने—स्नेहाधीन श्रीरामजीके सामने आज बहुत बड़ी समस्या है। एक ओर वात्सल्यमयी जननीका प्रेमभरा निमन्त्रण और ठीक उसके विपरीत दूसरी ओर माता कैकेयीकी कठोर आज्ञा।

होत प्रात मुनि वेष धरि जौ न राम बन जाहिं।

'**जटाचीरधरो भव**'। श्रीरामजीकी इस ऊहापोहकी स्थितिका भावपूर्ण चित्रण श्रीगोस्वामीजीने किया है।

मातु बचन सुनि अति अनुकूला।
जनु सनेह सुरतरु के फूला॥
सुख मकरंद भरे श्रियमूला।
निरखि राम मनु भवँरु न भूला॥

श्रीरामजीने कहा—हे वात्सल्यमयी जननि! मेरे पिताजीने मुझको जङ्गलका राज्य दे दिया है, उस वनमें मेरा बहुत आवश्यक कार्य है। हे मातः! आप मुदित मनसे मुझे वन जानेकी आज्ञा प्रदान करें, जिससे मेरी यात्रामें आनन्दमङ्गल हो। हे जननि! पूज्य पिताजीने बहुत उचित

और मर्यादापूर्ण विभाजन किया है। वनका राज्य विशाल होता है और नगरका राज्य छोटा होता है। एतावता मुझे बड़ा समझकर वनका राज्य दिया गया है और मेरे प्यारे भैया भरतको छोटा समझकर उसे नगरका छोटा राज्य दिया गया है।

पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू।
जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥
आयसु देहि मुदित मन माता।
जेहिं मुद मंगल कानन जाता॥

यद्यपि वचनरचनानागर श्रीरामजीने कठोर सत्यको बहुत मधुर बनाकर कहा है फिर भी माता सुनकर कटी हुई कदलीकी भाँति भूमिपर धड़ामसे गिर पड़ीं। श्रीरामजीने अचेत माताको हाथसे आश्रय देकर उठाया।

तामदुःखोचितां दृष्ट्वा पतितां कदलीमिव।
रामस्तूत्थापयामास मातरं गतचेतसम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २०। ३३)

श्रीरामकी वात्सल्यमयी जननी उठकर अनेक प्रकार विलाप करने लगीं। हे राम! यदि मैं वन्ध्या होती तो आज मुझे यह दुःख सुनने और देखनेका अवसर नहीं मिलता। केवल एक बार यही क्लेश होता कि मैं वन्ध्या हूँ—पुत्रहीना हूँ।

एक एव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानसः।
अप्रजास्मीति संतापो न ह्यन्यः पुत्र विद्यते॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २०। १३७)

श्रीकौसल्याने कहा—हे लालजी! तुम वैकुण्ठके वैभव सुखको छोड़कर इस मृत्युलोकमें क्यों आये? मृत्युलोकमें आना ही यदि तुम्हारा अभीष्ट था तो इस दशरथके भवनमें क्यों आए? यदि दशरथके भवनमें ही आना था तो हे वत्स! केकयनरेशनन्दिनीको छोड़कर मुझ पापिनीको तुमने माँ क्यों बनाया? हे रघुनन्दन! आज यदि तुम मेरे पुत्र न होते तो मेरे लाल! तुम्हें वन जाना न पड़ता।

वैकुण्ठवैभवसुखं परिहाय वत्स
स त्वं वृथा दशरथालयमागतोऽसि।
अत्रापि केकयनरेन्द्रसुतांविहाय
मां पापिनीं कथमहोजननीमकार्षीत्॥

श्रीकौसल्याने पूछा हे तात! राज्य देनेके लिये कहकर किस अपराधसे वन जानेके लिये तुम्हारे पिताने कहा? मुझे इसका कारण सुनाओ। भानुवंशको दग्ध करनेके लिये कौन अग्नि हो गया? श्रीरामजीका रुख देखकर मन्त्रीके पुत्रने समझाकर सब कारण बता दिया।

राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा।
कहेउ जान बन केहिं अपराधा॥
तात सुनावहु मोहि निदानू।
को दिनकर कुल भयउ कृसानू॥
निरखि राम रुख सचिवसुत कारनु कहेउ बुझाइ।

श्रीगोस्वामीजीने श्रीकौसल्या माताके उदात्त चरित्रका अद्वितीय चित्रण किया है। माता कौसल्या धैर्य धारण करके सोचती हैं—श्रीराम और भरतमें क्या अन्तर है? मेरे लिये दोनों बराबर हैं। दोनों ही मेरे पुत्र हैं। श्रीकौसल्या माताका यह पहला वचन है—हे रघुनन्दन! मैं बलिहारी जाती हूँ। हे लालजी! तुमने अच्छा किया। पिताकी आज्ञाका पालन करना सब धर्मोंमें श्रेष्ठ है। हे पुत्र! तुमको राजाने राज्य देनेको कहकर वनवास दे दिया, मेरे मनमें इसका किञ्चिन्मात्र भी क्लेश नहीं है। हे वत्स! मुझे इस बातका क्लेश अवश्य है कि तुम्हारे वियोगमें भरतको, राजाको और प्रजाको

प्रचण्ड क्लेश होगा। इनमें भी सबसे अधिक क्लेश कैकेयीके पुत्र भरतको ही होगा।

बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी।
रामु भरतु दोउ सुत सम जानी॥
सरल सुभाउ राम महतारी।
बोली बचन धीर धरि भारी॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका।
पितु आयसु सब धरमक टीका॥
राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु॥

हे लालजी! जहाँ तुम जा रहे हो, वह वन अतिशय भाग्यवान् है और जिसको तुम छोड़ रहे हो, वह अवध नगर अभागा है।

बड़भागी बनु अवध अभागी।
जो रघुबंसतिलक तुम्ह त्यागी॥

इसके बाद माताने भगवान्‌का मङ्गल किया है—हे गोसाईं! समग्र देवता और समस्त पितृगण तुम्हारी उसी प्रकार रक्षा करें जैसे आँखोंकी रक्षा पलकें करती हैं।

देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं।
राखहुँ पलक नयन की नाईं॥

श्रीवाल्मीकीयरामायणमें माता कौसल्याका अति विस्तृत, भावपूर्ण और प्रशस्त मङ्गलाचरण है। उसका अत्यन्त संक्षेपमें वर्णन सुनें। अमृतोत्पत्तिके समय इन्द्रके लिये माता अदितिने जो मङ्गलमय आशीर्वाद दिया है, वही मङ्गल तुम्हारे लिए सुलभ हो।

अमृतोत्पादने दैत्यान् घ्नतो वज्रधरस्य यत्।
अदितिर्मङ्गलं प्रादात् तत् ते भवतु मङ्गलम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २५। ३४)

हे रघुनन्दन! तीन चरणोंको बढ़ाते हुए अनुपम तेजस्वी भगवान् वामनके लिये जो मङ्गलाशंसा की गयी थी वही मङ्गल तुम्हारे लिए भी प्राप्त हो।

त्रिविक्रमान् प्रक्रमतो विष्णोरतुलतेजसः।
यदासीन्मङ्गलं राम तत् ते भवतु मङ्गलम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २५। ३५)

हे महाबाहो! ऋषि, समुद्र, द्वीप, वेद, समस्त लोक और पूर्वादि दिशाएँ तुम्हारे लिए मङ्गलमय हों। हे रघुकुलसिंह! तुम जिस धर्मका सदा सहर्ष पालन करते हो वह धर्म तुम्हारी रक्षा करे।

यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २५। ३)

हे लालजी! परम बुद्धिमान् ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने तुम्हारी सेवासे और भक्तिसे प्रसन्न होकर तुम्हें जो शस्त्रास्त्र प्रदान किये हैं, वे शस्त्र तुम्हारी रक्षा करें—तुम्हारे काम आवें और तुम सद्‌गुणोंसे प्रकाशित होओ।

यानि दत्तानि तेऽस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता।
तानि त्वामभिरक्षन्तु गुणैः समुदितं सदा॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २५। ५)

हे रघुनन्दन! भयङ्कर जङ्गली हाथी, सिंह, व्याघ्र, रीछ और विशाल सींगवाले भैंसे आदि जङ्गली पशु तुम्हारे लिए रौद्र न होकर सौम्य हो जायँ।

महाद्विपाश्च सिंहाश्च व्याघ्रा ऋक्षाश्च दंष्ट्रिणः।
महिषाः शृङ्गिणो रौद्रा न ते द्रुह्यन्ति पुत्रक॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २५। १९)

हे श्रीरामजी! समस्त लोकोंके स्वामी, चतुर्मुख ब्रह्माजी, संसारके कारण परब्रह्म तथा अनेकों देवर्षि, ब्रह्मर्षि, महर्षि तथा देवता वनवासके समय तुम्हारी रक्षा करें।

सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा भूतकर्तृ तथर्षयः।
ये च शेषाः सुरास्ते तु रक्षन्तु वनवासिनम्।
(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २५। २५)

भगवान् स्कन्ददेव, सोम, बृहस्पति, सप्तर्षिगण और नारद ये सभी सब ओरसे तुम्हारी रक्षा करें।

स्कन्दश्च भगवान् देवः सोमश्च सबृहस्पतिः।
सप्तर्षयो नारदश्च ते त्वां रक्षन्तु सर्वतः॥
(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २५। ११)

हे लालजी! मैंने अनेक देवताओंकी आराधना की है। समय-समयपर मेरे द्वारा अनेक महर्षियोंका सम्मान हुआ है। मैंने साँपोंकी पूजा की है, उन्हें दूध पिलाया है। हे रघुनन्दन! मैंने आजतक जितने पुण्यकर्म किये हैं, वे मेरे समस्त पुण्यकर्म तुम्हारा अनुगमन करें और तुम्हारा मङ्गल करते रहें।

मयार्चिता देवगणाः शिवादयो
महर्षयो भूतगणाः सुरोरगाः।
अभिप्रयातस्य वनं चिराय ते
हितानि काङ्क्षन्तु दिशश्च राघव॥
(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २५। ४५)

इस तरह कौसल्या माताने अपने वात्सल्य भाजन श्रीरामका विशाल मङ्गल किया।

श्रीरामजी और श्रीकौसल्याजीकी विदाईका एक पद बड़ा भावपूर्ण है—

माको नहीं कछु रोष हिये,
पुर के सब लोग जो दोष धरेंगे।
कैकेयी को न कछू अपराध,
लिखे विधि अंक न टारे न टरेंगे॥
विन्दु यही एक साँसति है,
कछु और अनर्थ के बज्र परेंगे।
लाल तिहारे सिधारत ही,
महिपालहू मोहि अनाथ करेंगे॥

श्रीरामजीका श्रीविग्रह लम्बा है, उनकी अपेक्षा माताजी छोटी हैं, अतः श्रीरामजीके मस्तकको झुकाकर यशस्विनी माताने उसे सूँघा और पुत्रको अपने हृदयमें लगाकर स्खलिताक्षरोंमें कहा—जाओ पुत्र! सुखपूर्वक वन जाओ, तुम्हारे समस्त मनोरथ सफल हों।

आनम्य मूर्ध्नि चाघ्राय परिष्वज्य यशस्विनी।
अवदत्पुत्रमिष्टार्थो गच्छ राम यथासुखम्॥
(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २५। ४०)

जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ।
करि अनाथ जन परिजन गाऊँ॥

वात्सल्यमयी जननी माता कौसल्या अनेक प्रकारका विलाप करके अपने प्रियतम पुत्रके चरणोंमें लिपट गयीं। आर्द्रहृदय श्रीरामजीने अपनी माँको उठाकर हृदयसे लगा लिया और कोमल वचनोंसे समझाया।

बहुविधि बिलपि चरन लपटानी।
परम अभागिनि आपुहि जानी॥
राम उठाइ मातु उर लाई।
कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई॥

उसी समय आकुल-व्याकुल श्रीसीताजी वहाँ आ गयीं। उन्होंने अपने सासके चरणोंमें वन्दना की। सासने कोमल वाणीसे आशीर्वाद दिया। वे श्रीसीताजीका सहज सौकुमार्य देखकर और उनके मनोभावोंको समझकर अत्यन्त व्याकुल हो गयीं।

दीन्हि असीस सासु मृदु बानी।
अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥

श्रीकौसल्याजीने श्रीरामजीसे कहा—हे रघुनन्दन! मैंने जनकराजकिशोरी श्रीसीताको नेत्रोंकी पुतली बनाकर प्रेम बढ़ाया है और अपना प्राण

श्रीसीतामें ही लगा रखा है।

नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई।
राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥

हे सीतापते! सञ्जीवनी जड़ीकी भाँति मैं सीताकी रक्षा करती हूँ। दीपकी बत्तीतक टारनेके लिए मैंने कभी नहीं कहा।

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा।
सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ।
दीप बाति नहिं टारन कहऊँ॥

इसपर यह शङ्का होती है कि श्रीअयोध्याजीमें तो घर-घरमें मणियोंके दीपक शोभा पाते थे।

बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं।
गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं॥

(७। २७)

फिर दीपककी बत्ती हटाना कैसे बनता है? इसके उत्तरमें महामहोपाध्याय महामानसी श्रीशिवलालजी पाठकने एक कथाका सङ्केत अपने 'मानस अभिप्राय दीपक' नामक ग्रन्थमें किया है।

शम्बर कृत उत्पात लखि नारद कहेउ पठाइ।
सिय कर कमलन्हि वर्तिका दीपक मध्य नटाइ॥

शम्बर नामका राक्षस जो रावणकी मौसीका बेटा था, वह अयोध्याजीमें पत्थरकी वर्षा करके उत्पात करता था। उसके उत्पातसे समस्त अयोध्यावासी व्याकुल थे। उनके दु:खको देखकर श्रीनारदजीने कहला भेजा कि यज्ञ करनेसे उत्पात शमन होगा। उस यज्ञमें दीपककी बत्तीको जानकीजी टार दें तो यज्ञकी विधि पूर्ण होगी। तब श्रीवसिष्ठजीने श्रीदशरथजीके राजसदनके विशाल प्राङ्गणमें अनुष्ठान करना प्रारम्भ किया। उसी समय श्रीनारदजीने पुन: समझाकर कहा कि इस अनुष्ठानमें जो मध्यका अखण्ड दीपक है उसका निर्वापण यदि श्रीसीताजी कर दें तो तत्काल वह राक्षस मर जाय। राजा प्रजापर इतनी घोर विपत्ति होते हुये भी परम वात्सल्यमयी श्रीकौसल्याने श्रीसीताजीसे नहीं कहा कि तुम दीप निर्वाणार्थ इसकी बाती टारो। इसी आशयसे माताजी कहती हैं ***'दीप बाति नहिं टारन कहऊँ'।***

अथवा—यद्यपि श्रीरामके समयमें श्रीअयोध्यामें मणियोंका बाहुल्य होनेके कारण प्रकाशके लिये दीपककी आवश्यकता नहीं होती थी; परन्तु धार्मिक अनुष्ठानके लिये तो दीपक जलाना आवश्यक ही होता था। कितने धार्मिक कार्य ऐसे होते हैं जिसमें घरके मुख्य लोग ही दीपक जलाते हैं। उस समय भी श्रीसीताको दीपककी बत्ती टारनेके लिये नहीं कहा। इसी आशयसे माताने कहा—***'दीप बाति नहिं टारन कहऊँ'।*** अथवा धर्मशास्त्रमें लिखा है कि सायंकालकी वेलामें गृहस्थको दीपक जलाना चाहिये। पुरुषोंका दीपनिर्वापण दोषयुक्त बताया गया है और दीपनिर्वापण कार्य बत्ती टारे विना हो नहीं सकता। यह कार्य कुलकी ललनाओंको ही करना चाहिये, पुरुषको कभी नहीं करना चाहिये; क्योंकि पुरुषके दीपनिर्वापणसे वंशका नाश होता है। पुरुषको दीप नहीं बुझाना चाहिये और स्त्रीको कूष्माण्डच्छेदन—कोंहड़ा नहीं काटना चाहिये।

दीपनिर्वापणात्पुंसः कूष्माण्डच्छेदनात्स्त्रियः।
अचिरेणैव कालेन वंशनाशो भवेद्ध्रुवम्॥

(शार्ङ्गधरपद्धति)

कूष्माण्डघातिका या स्त्री दीपनिर्वाणकःपुमान्।
सप्त जन्म भवेद् रोगी दरिद्रो जन्म जन्मनि॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्म खण्ड)

श्रीकौसल्याजीने कहा—हे रघुनन्दन! जिसको मैंने इतने प्यारसे पाला है, लाड़ लड़ाया है, वह सीता वनमें जाना चाहती है उसके लिये क्या आज्ञा है?

सोइ सिय चलन चहति बन साथा।
आयसु काह होइ रघुनाथा॥

हे राम! कोल किरातकी कन्यायें वनमें रहनेके योग्य हैं और तपस्वियोंकी पत्नियाँ वनके योग्य हैं, जिन्होंने तपस्याके लिये समस्त भोगोंका परित्याग कर दिया है। हे रघुनन्दन! जो चित्र चित्रित वानरको देखकर भी डर जाती है वह मेरी सहज भीरु दुलारी सीता वनमें कैसे रहेगी? मानससरके विकसित कमलके वनोंमें विचरनेवाली हंसकुमारी क्या गड़हेमें रहने योग्य है?

सिय बन बसिहि तात केहि भाँती।
चित्रलिखित कपि देखि डेराती॥
सुरसर सुभग बनज बन चारी।
डाबर जोगु कि हंस कुमारी॥

हे रघुनन्दन! यदि लाड़िली सीता घरमें रह जाय तो मुझे बहुत अवलम्ब हो जायगा।

जौं सिय भवन रहै कह अंबा।
मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने आजतक अपनी माताके सामने श्रीसीताजीसे कभी बात नहीं की थी; परन्तु आज असमय समझकर सङ्कोचसे बोले—सबसे पहले श्रीसीताजीको 'राजकुमारि' सम्बोधनसे सम्बोधित किया। इसमें भाव यह है—अभी-अभी माताजीने कहा है—

कै तापस तिय कानन जोगू।
जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥

इसको सुनकर श्रीसीताजी सोचने लगीं मेरे पति भी तो आज तापस हैं, और मैं इनकी पत्नी हूँ, एतावता 'तापसतिय' तो मैं भी हूँ इसलिये मैं वनमें जाने योग्य हूँ। प्रकारान्तरसे माँने मुझे आज्ञा दे दी है। इस प्रकार श्रीसीताजी सोच रही थीं। अन्तर्यामी प्रभुने इसीलिये कहा कि तुम राजकुमारी हो।

मातु समीप कहत सकुचाहीं।
बोले समउ समुझि मन माहीं॥
राजकुमारि सिखावनु सुनहू।
आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहू॥

हे सीते! मेरी मातायें मुझसे बहुत स्नेह करती हैं, अतः इनके मनमें जब मेरी स्मृति प्रबल हो जाय और ये उस स्नेहमें व्याकुल हो जायँ, स्नेहस्मृतिकी प्रबलताके कारण जब इनकी बुद्धि भोरी हो जाय, हे सुन्दरि! तब-तब तुम अपनी कोमल वाणीसे पुरानी कथायें कह-कहकर इनको समझाना।

जब जब मातु करिहिं सुधि मोरी।
होइहि प्रेम बिकल मति भोरी॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी।
सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी॥
कहउँ सुभायँ सपथ सत मोही।
सुमुखि मातु हित राखउँ तोही॥

हे सुमुखि! मैं सैकड़ों शपथ करके सहज भावसे कहता हूँ कि मैं तुम्हें केवल अपनी माँके लिये घरपर रखता हूँ। श्रीरामजीने वनके अनेक कष्टोंका वर्णन करके कहा—हे सीते! तुम जंगलमें जानेयोग्य नहीं हो। हे मृगलोचनि! वनके भयावह दृश्योंके स्मरण आनेमात्रसे बड़े-बड़े धीरपुरुष भी भयग्रस्त हो जाते हैं फिर तुम तो स्वभावसे ही भीरु—डरपोक हो। हे हंसगवनि! तुम वनमें जाने

एवं रहनेयोग्य नहीं हो। तुम्हारी वनयात्राकी बात सुनकर सबलोग मुझे अपयश देंगे। मानसरोवरके अमृतोपम जलसे परिपुष्ट हुयी हंसिनी क्या क्षारसमुद्रमें जीवन धारण कर सकती है? हे जनकनन्दिनि! अभिनव आम्रके वनमें विहार करनेवाली कोकिल क्या करीलके काँटेदार जंगलमें सुशोभित हो सकती है? हे विधुवदनि! इस प्रकार हृदयमें विचारकर तुम माँके पास घर ही पर रहो। वनमें बड़े भयावह कष्ट हैं। हे मैथिलि! सहज हितैषी गुरु और स्वामीकी शिक्षाको किं वा आज्ञाको जो आदरपूर्वक नहीं मानते, वे भविष्यमें बहुत पश्चात्ताप करते हैं और उनके हितकी हानि अवश्य हो जाती है।

डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ।
मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ॥
हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू।
सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू॥
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली।
जिअइ कि लवन पयोधि मराली॥
नव रसाल बन बिहरनसीला।
सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदयँ बिचारी।
चंदबदनि दुखु कानन भारी॥
सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि॥

इस प्रसङ्गमें श्रीगीतावली रामायणका यह पद मनन करने योग्य है।

रहहु भवन हमरे कहे, कामिनि।
सादर सासु-चरन सेवहु नित, जो तुम्हरे अति हित गृह-स्वामिनि॥
राजकुमारि! कठिन कंटक मग, क्यों चलिहौ मृदु पद गजगामिनि।
दुसह बात बरषा हिम आतप कैसे सहिहौ अगनित दिन जामिनि॥
हौं पुनि पितु-अग्या प्रमान करि ऐहौं बेगि सुनहु दुति-दामिनि।
तुलसिदास प्रभु बिरह बचन सुनि सहि न सकी मुरछित भइ भामिनि॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। ५)

अपने प्राण प्रियतम श्रीरामके कोमल तथा मनोहर वचनोंको सुन करके, वियोगकी कल्पना करके श्रीसीताजीकी आँखोंमें आँसू भर आये। भगवती उर्विजा मैथिलीने हृदयमें धैर्य धारण करके अपनी सास श्रीकौसल्याजीको प्रणाम करके कहा—हे देवि! मैं आपके सामने अति धृष्टता करती हूँ, उसे आप क्षमा करें। मुझे मेरे प्राणेश्वरने वही शिक्षा दी है कि जिससे मेरा परम हित हो।

लागि सासु पग कह कर जोरी।
छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई।
जेहि बिधि मोर परम हित होई॥

फिर भावावेशमें श्रीसीताजीने श्रीरामजीसे कहा—हे प्राणनाथ! हे करुणाधाम! हे शरीर और स्वभावसे परम सुन्दर! हे समस्त सुखोंके देनेवाले! हे सुजानशिरोमणे! हे रघुकुलरूपी कुमुदके खिलानेवाले चन्द्रमा! आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिए नरकके समान है।

प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥

हे सुजान शिरोमणे! आप मुझे अपने साथ ले चलिए, यहाँ न छोड़िये। मैं अधिक क्या विनती करूँ, आप करुणामय और अन्तर्यामी हैं। इन दोनों विशेषणोंका भाव यह है—मेरे अन्तःकरणके समस्त भावोंको समझ करके आप मुझपर करुणा करके अपने श्रीचरणोंकी सेवा करनेका अवसर प्रदान करें।

अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि।
लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी।
करुनामय उर अंजरजामी॥

श्रीवाल्मीकीयरामायणमें भी इसी प्रकार भगवती श्रीसीताने विनती की है। वे कहती हैं—हे ककुत्स्थकुलभूषण! मैं आपकी भक्त हूँ और आप भक्तवत्सल हैं। मैं पतिव्रता हूँ और आप ही मेरे सर्वस्व हैं, मैं दीना हूँ और आप दीनदयालु हैं। मैं सुख-दुःखमें समान भावसे रहूँगी और आपके सुख-दुःखमें साथ दूँगी। अतः आप मुझे अपने साथ ले चलें।

भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयोः।
नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदुःखिनीम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २९। ३०)

हे स्वामी! आप सोचते होंगे कि स्त्रियोंको माँका घर—नैहर बड़ा प्यारा लगता है। माता पिता स्त्रियोंको बहुत याद आते हैं, यह जङ्गलमें हा माता, हा पिता, हा मिथिला कहकर व्याकुल होगी तो मैं क्या करूँगा? हे प्राणनाथ! मैं आपके श्रीचरणोंमें निवेदन करती हूँ कि वनमें कभी भी अपने माता-पिताको अथवा राजमहलको स्मरण नहीं करूँगी।

न मातुर्न पितुस्तत्र स्मरिष्यामि न वेश्मनः।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ३०। १६)

हे स्वामिन्! आपके श्रीचरणकमलोंका दर्शन करके तो जीवनके सारे श्रम नष्ट हो जाते हैं। फिर मुझे श्रम क्यों होगा? हे नाथ! यहाँ तो आपके श्रीचरणोंका वियोग भी हो जाता है वहाँ तो अनुपल अनुक्षण दर्शन होंगे।

छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी।
रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी॥

हे मेरे हृदयाराध्य! मैं जङ्गलमें केवल पत्नी भावसे आपके साथ रहनेके लिये नहीं चलना चाहती हूँ, केवल पत्नीधर्मका पालन करनेके लिये भी नहीं चलना चाहती हूँ, मैं घरके दुःखोंसे घबड़ा करके नहीं चलना चाहती हूँ। हे प्राणेश्वर! मैं तो आपके श्रीचरणकमलोंकी सेवा करनेके लिये चलना चाहती हूँ। हे स्वामिन्! हे प्रियतम! वनमें अपने प्रियतमकी सब प्रकारसे सेवा करूँगी। मार्गजन्य समस्त श्रमोंका मैं अपनोदन करूँगी। श्रीसीताजी श्रीवैष्णवोंकी परमाचार्य हैं। वे तो प्राणीमात्रको भगवच्चरणकैंकर्य्यका प्रशिक्षण करती हैं।

सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं।
मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥

श्रीगीतावली रामायणमें ***'सकल भाँति'*** सेवाकी बहुत सुन्दर व्याख्या है।

कृपानिधान सुजान प्रानपति संग बिपिन ह्वै आवोंगी।
गृहतें कोटि-गुनित सुख मारग चलत साथ सचु पावोंगी॥
थाके चरनकमल चापौंगी, श्रम भए बाउ डोलावोंगी।
नयन-चकोरनि मुख-मयंक-छबि सादर पान करावोंगी॥
जौ हठि नाथ राखिहौ मो कहँ, तो सँग प्रान पठावोंगी।
तुलसिदास प्रभु बिनु जीवत रहि क्यों फिरि बदन देखावोंगी?॥

(श्रीगीतावलीरामायण)

हे स्वामिन्! मार्गमें किसी वृक्षके नीचे बैठकर प्रसन्नतापूर्वक अपने अञ्चलपटसे आपको वायु करूँगी। हे प्रभो! मैंने जब आपका सर्वप्रथम दर्शन किया था तब आपके मुखमंडलपर श्रमबिन्दु सुशोभित हो रहे थे। बारह वर्ष व्यतीत हो गए, वह झाँकी झाँकनेका, भर आँख देखनेका कभी सौभाग्य नहीं मिला। अब वनमें मार्गजन्य श्रमके

कारण जब आपके दिव्य श्यामल मुखारविन्दपर श्वेत श्रमबिन्दु झलकेंगे तो गङ्गा-यमुनाको सङ्गमायित देख करके अर्थात् श्याम कपोलरूप यमुनापर श्वेद बिन्दु रूपी गङ्गाको देखकर मैं इतनी मुदित हो जाऊँगी कि दु:ख भी दु:खी होकर भाग जायेगा।

पाय पखारि बैठि तरु छाहीं।
करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं॥
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें।
कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें॥

हे स्वामिन्! मैं आपके श्रीचरणोंकी सेवा सीमित कालपर्यन्त—घण्टा दो घण्टा नहीं करूँगी अपितु सम्पूर्ण रात्रिपर्यन्त सेवा करती ही रहूँगी। रात्रिमें शयन करनेकी शैय्या भी मैं अपने हाथसे तैयार करूँगी।

सम महि तृन तरुपल्लव डासी।
पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥

हे प्रभो! मैं आपके साथ सोनेके लिये नहीं चल रही हूँ, अपितु जगनेके लिये चल रही हूँ। हे प्राणवल्लभ, मेरी समझमें आपकी एक बात नहीं आयी, जो आपने यह कहा कि मैं वनके योग्य नहीं हूँ। हे मेरे आराध्य! आपने मुझे इतना तुच्छ समझ लिया कि आप वनमें रहेंगे और मैं नगरमें रहकर सुखोपभोग करूँगी। हे मेरे परम सुकुमार राजकुमार! जब मैं आपका पादसंवाहन करती हूँ तो उस समय आपके श्रीचरणकमलोंकी कोमलताका अनुभव करती हूँ कि इन चरणकमलोंकी कोमलताके सामने मेरे हाथ अति कठोर हैं। हे कोमलचरण रघुनन्दन, आप वनमें पैदल चलेंगे और मैं महलोंमें बैठकर अपने सौकुमार्यकी रक्षा करूँगी? असम्भव है। हे प्राणेश्वर! मैं आपके आगे-आगे चलूँगी और आपके मार्गमें आनेवाले कुश तथा कण्टकोंको अपने चरणोंसे रौंदती हुयी आपके गन्तव्य पथका—चलने योग्य मार्गका निर्माण करूँगी।

यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्गन्ती कुशकण्टकान्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २७। ७)

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू।
तुम्हहिं उचित तप मो कहुँ भोगू॥

अपनी प्रार्थनाका समापन करती हुई श्रीमिथिलेशनन्दिनीने बड़े भावपूर्ण शब्दोंमें अपने हृदयकी अभिव्यक्ति की है।

ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान॥

अन्तमें श्रीसीताजीके स्नेहिल प्रेमाग्रहके कारण स्नेहप्रिय श्रीरघुनन्दन उन्हें आज्ञा देनेके लिये विवश हो गये। प्रभुने कहा—

कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा।
परिहरि सोचु चलहु बन साथा॥

प्रिय वचनोंसे प्रियाजीको समझाकर सरकारने माता कौसल्याके चरणोंकी वन्दना करके आशीर्वाद प्राप्त किया।

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई।
लगे मातु पद आसिष पाई॥

स्नेहमयी जननीने गद्गद कण्ठसे कहा—हे पुत्र! शीघ्र आकर प्रजाके दु:खकी निवृत्ति करना। यह कठोर हृदयवाली जननी तुम्हें भूल न जाय। अब इस मनोहर युगल जोड़ीको कब देखूँगी? कभी बच्छ कहकर, कभी लाल कहकर, कभी रघुपति कहकर, कभी तात कहकर हे तात! तुम्हें दुलारकर और अपने हृदयमें लगाकर, मुदित होकर तुम्हारा यह मङ्गलमय श्रीविग्रह

कब देखूँगी?

बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहउँ गात॥
राम हौं कौन जतन घर रहिहौं।
बार बार भरि अंक गोद लै ललन कौनसों कहिहौं॥
इहि आँगन बिहरत मेरे बारे! तुम जो संग सिसु लीन्हे।
कैसे प्रान रहत सुमिरन सुत बहु बिनोद तुम कीन्हे॥
जिन्ह श्रवननि कल बचन तिहारे सुनि सुनि हौं अनुरागी।
तिन्ह श्रवननि बनगवन सुनति हौं मोतें कौन अभागी?॥
जुग सम निमिष जाहिं रघुनन्दन बदनकमल बिनु देखे।
जौ तनु रहै बरष बीते बलि कहा प्रीति इहि लेखे?॥
तुलसीदास प्रेमबस श्रीहरि देखि बिकल महतारी।
गदगद कंठ, नयन जल, फिरि-फिरि आवन कह्यो मुरारी॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। ४)

श्रीसीताजीने अपनी सासको प्रणाम करके कहा—हे माँ! मैं अत्यन्त अभागिनी हूँ। आजतक मैंने आपकी कोई सेवा नहीं की अपितु मेरे न चाहनेपर भी आप अपने वत्सल स्नेहके कारण मेरी ही सेवा करती रहीं। सोचा था कि अब हठात् सेवा नहीं लूँगी अपितु रात दिन आपकी सेवा करूँगी, परन्तु दैवने वनवास दे दिया, मेरे मनकी मनमें ही रह गयी।

तब जानकी सासु पग लागी।
सुनिअ माय मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा।
मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥

श्रीकौसल्याजीने अपनी लाड़िली पूत्रवधू श्रीसीताजीको बार-बार हृदयसे लगाया और धैर्य धारण करके शिक्षा एवं आशीर्वाद दिया कि जबतक गङ्गाजी और यमुनाजीमें जलकी धारा बहे तबतक तुम्हारा सुहाग अचल रहे।

बारहिं बार लाइ उर लीन्हीं।
धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही॥
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा।
जब लगि गंग यमुन जल धारा॥

श्रीसीतारामजीने माता कौसल्याके महलसे प्रस्थान किया।

किसीसे श्रीलक्ष्मणने सब समाचार सुना। सुनते ही श्रीलक्ष्मण व्याकुल हो गये। वे सोचने लगे कि इतनी बड़ी घटना घट गयी, मुझे पता ही नहीं। मैं श्रीरामजीका अभिन्न अङ्ग हूँ, मुझे सूचित किये बिना मेरे स्वामी श्रीसीताजीके साथ वन जा रहे हैं। इससे श्रीलक्ष्मणके मनमें आशङ्का हो गयी कि क्या मेरे आराध्य मुझे छोड़कर चले जायँगे? इस कल्पनासे ही वे व्याकुल हो गये। प्रेमके आठ सात्त्विक भाव हैं, उनमें सात भावोंकी अभिव्यक्ति श्रीलक्ष्मणमें स्पष्ट हैं।

समाचार जब लछिमन पाए।
ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा।
गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े।
मीनु दीनु जनु जल तें काढ़े॥

श्रीगोस्वामीजी श्रीलक्ष्मणके स्नेहका वर्णन उत्प्रेक्षासे करते हैं। ***'मीन दीन जनु जल ते काढ़े'।*** श्रीरामजीने अपने अनुजको देखा और यह अनुभव किया कि यह तो शरीर, पत्नी तथा अन्य समस्त सम्बन्धोंको समाप्त करके मेरे साथ वनमें जानेके लिये प्रस्तुत है।

राम बिलोकि बंधु कर जोरें।
देह गेह सब सन तृनु तोरें॥

श्रीगीतावली रामायणमें गोस्वामीजीने

लिखा है *'प्रान कृपान बीर-सी छोरे'* अर्थात् वीर जिस प्रकार म्यानसे तलवार निकालकर प्रस्तुत रहते हैं उसी प्रकार श्रीलक्ष्मण प्राणार्पणके लिये प्रस्तुत हैं।

ठाढ़े हैं लखन कमल करजोरे।
उर धकधकी, न कहत कछु सकुचनि प्रभु परिहरत सबनि तृन तोरे?
कृपासिन्धु अवलोकि बंधु तन, प्रान, कृपान बीर-सी छोरे।

भगवान् श्रीरामने कहा—हे तात! परिणाम मङ्गलमय है, यह समझकर स्नेहके कारण अधीर न होवो। हे भैया! घरमें भरत और शत्रुघ्न भी नहीं हैं, हमारे पिता वृद्ध हैं और उनके मनमें मेरा दुःख है; इस परिस्थितिमें मैं तुमको साथ लेकर वन जाऊँ तो श्रीअयोध्याजी अनाथ हो जायँगी।

भवन भरतु रिपुसूदन नाहीं।
राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं॥
मैं बन जाउँ तुम्हहिं लेइ साथा।
होइ सबहिं बिधि अवध अनाथा॥

इसलिये घरमें रहकर माता-पिताकी सेवा करना यह धर्म है और प्रजाका पालन करो यह राजनीति है। तुम्हें धर्म और नीतिका पालन करना चाहिये। श्रीरामजीका उपदेश श्रवण करके श्रीलक्ष्मण व्याकुल हो गये। वे अपने प्रभुके चरणोंको पकड़कर बोले—हे मेरे सर्वस्व! मैं दास हूँ, और आप स्वामी हैं, आप मुझे छोड़ देंगे तो मेरा क्या वश है?

उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ॥

हे प्रभो! मैं तो आपके स्नेहमें पला हुआ बालक हूँ। क्या हंस मन्दराचल किं वा सुमेरु पर्वतको उठा सकता है? मैं गुरु, पिता, माता किसीको नहीं जानता हूँ। मैं सहजभावसे कहता हूँ, आप मेरा विश्वास करें। जहाँतक संसारमें स्नेह, सम्बन्ध, प्रीति और प्रतीति है हे दीनबन्धो! हे अन्तर्यामिन्! मेरे सब कुछ एकमात्र आप ही हैं।

मैं सिसु प्रभु सनेंह प्रतिपाला।
मंदरु मेरु कि लेहिं मराला॥
गुर पितु मातु न जानउँ काहू।
कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई।
प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी।
दीनबंधु उर अंतरजामी॥

हे स्वामिन्! आप मुझे अपने साथ वनमें ले चलिये, मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। आप सर्वज्ञ शिरोमणि हैं, आपको ज्ञात है कि लक्ष्मण मेरे विना नहीं रह सकता है और हे भक्तवत्सल! मुझे भी ज्ञात है कि आप मेरे बिना नहीं रह सकते हैं। जो मुझ भाग्यवान्के बिना मखमली शैय्यापर सो नहीं सकते हैं, वह कृपालु स्वामी चौदह वर्ष-पर्यन्त मेरे बिना वनमें कैसे रह लेंगे? इसलिये हे कृपासागर! बहाना बनाकर मुझे रोकिये मत, स्वयं दुःख सहिये मत और मुझे प्राण देनेके लिये विवश करिये मत। श्रीरामके पास कोई प्रत्युत्तर नहीं था। कृपालु प्रभुने आज्ञा प्रदान कर दी। हे सुमित्रानन्दन! माता सुमित्राजीके पास जाकर विदा माँगो। विदा माँगनेमें लोकमर्यादाकी रक्षा है। माताका उपदेश और आज्ञा साधनपथको प्रशस्त करेगी। *'जाई'* का भाव कि तुम्हीं जाओ, श्रीरामजी स्वयं नहीं गये। जानेपर यदि माताने कह दिया न जाओ तो समस्या उत्पन्न हो जायगी; क्योंकि उनका स्थान बहुत ऊँचा है। वे माँ भी हैं

और विमाता भी हैं। *'आवहु बेगि'* श्रीकैकेयीके वचनानुसार हमें पहले ही विलम्ब हो गया है। दूसरा भाव यह है कि कोई यह न कहे कि श्रीरामसे घर ही नहीं छोड़ा जा रहा है।

मागहु बिदा मातु सन जाई।
आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भए सुनि रघुबर बानी।
भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥

श्रीरामजीकी भक्तिके समान कोई लाभ नहीं है *'लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा।'* श्रीरामवियोगके समान कोई हानि नहीं है।

श्रीलक्ष्मणजीने जाकर माता सुमित्राके चरणोंमें शरीरसे प्रणाम किया; परन्तु उनका मन तो श्रीरामजीके साथ है।

जाइ जननि पग नायउ माथा।
मनु रघुनंदन जानकि साथा॥

माता सुमित्राने श्रीलक्ष्मणको उदास देखकर कारण पूछा। श्रीलक्ष्मणने वर याचनासे लेकर अबतकका समस्त वृत्तान्त सुना दिया। सुनकर माँको महान् क्लेश हुआ और उन्होंने कहा *'पापिनि दीन्ह कुदाउ'।* श्रीलक्ष्मणने कहा—प्रभुने आज्ञा लेनेके लिये मुझे आपके पास भेजा है। श्रीगोस्वामीजीने श्रीसुमित्राजीके लिए *'सहज सुहृद'* विशेषण दिया है। बड़ा स्वाभाविक और प्रासङ्गिक विशेषण है। *'सहज सुहृद'* वही है जो श्रीरामभक्तिका मार्ग बतावे। श्रीसुमित्राजीको श्रीरामका साथ छोड़कर सम्प्रति लक्ष्मणका यहाँ आना भला नहीं प्रतीत हुआ। माताका सबसे पहला वाक्य है **'तुम्हारी माँ सीता हैं।'** भाव कि जब श्रीरामने मातासे आज्ञा माँगनके लिये कहा, तब तुम्हें सीताजीसे आज्ञा माँगना था।

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी।
सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही।
पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू।
तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥

यदि श्रीसीता-रामजी वन जा रहे हैं तो अयोध्याजीमें तुम्हारा कुछ कार्य नहीं है।

जौं पै सीय रामु बन जाहीं।
अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥

श्रीलक्ष्मणका श्रीसीताके रहते हुए श्रीसुमित्राको माता समझना और उनके मुखका उदास होना, इन दोनों कार्योंने माताके मनमें सन्देहकी सृष्टि कर दी कि यह सच्चा रामभक्त है अथवा नहीं? इसका परिणाम यह हुआ कि श्रीलक्ष्मणको माताने हृदयसे नहीं लगाया। माताने स्पष्ट कह दिया।

पुत्रवती जुबती जग सोई।
रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी।
राम बिमुख सुत तें हित जानी॥

श्रीगीतावली रामायणमें यह भाव और स्पष्ट हो जाता है।

जाइ चरन गहि आयसु जाँची, जननि कहति बहुँभाँति निहोरे।
सिय-रघुबर-सेवा सुचि ह्वैहौ, तौ जानिहौं, सही सुत मोरे॥
कीजहु इहै बिचार निरंतर, राम समीप सुकृत नहिं थोरे।

(श्रीगीतावलीरामायण २। ११)

श्रीगोस्वामीजीने श्रीकवितावली रामायणमें भी भक्तपुत्रसे ही माँका पुत्रवती होना कहा है।

तिन्ह तें खर, सूकर स्वान भले, जड़ता बस ते न कहैं कछु वै।
'तुलसी' जेहि रामसो नेहु नहीं सो सही पसु पूँछ, विषान न द्वै॥
जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै।

जरि जाउ सो जीवनु जानकीनाथ, जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै॥

(श्रीकवितावलीरामायण ७। ४०)

माताजी कहती हैं—हे लक्ष्मण! श्रीरामजी तुम्हारे ही भाग्यसे वन जा रहे हैं और कोई कारण नहीं है।

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं।
दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

महर्षि वाल्मीकिने भी लिखा है—अहो लक्ष्मण! तुम भी कृतकृत्य हो गये; क्योंकि तुम सदा प्रियवादी देवतुल्य भ्राताकी वनमें सेवा करोगे। तुम्हारी यह बुद्धि महान् है। तुम्हारा यह महान् सौभाग्य है कि तुम श्रीरामका अनुगमन कर रहे हो।

अहो लक्ष्मण सिद्धार्थः सततं प्रियवादिनम्।
भ्रातरं देवसंकाशं यस्त्वं परिचरिष्यसि॥
महत्येषा हि ते बुद्धिरेष चाभ्युदयो महान्।
एष स्वर्गस्य मार्गश्च यदेनमनुगच्छसि॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ४०। २५, २६)

श्रीसुमित्राने श्रीलक्ष्मणको बहुत सुन्दर उपदेश दिया है, शिक्षा दी है, आज्ञा दी है और आशीर्वाद दिया है।

उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी प्रभुहिं सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥

यह सब उपदेश भक्तोंके मनन करने योग्य है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि माताजीने कहा—हे लक्ष्मण! तुम वही करना जिससे श्रीरामजीको वनमें क्लेश न हो। धन्य है जननी! भारतीय संस्कृतिके इतिहासमें ऐसी जननी दुर्लभ है। धन्य हैं सुमित्रा! और धन्य हैं श्रीलक्ष्मण।

श्रीलक्ष्मणजी माताकी आज्ञा प्राप्त करके श्रीसीता-रामजीके पास आ गये। श्रीलक्ष्मणजी और श्रीसीताजीके साथ श्रीरामचन्द्रजी अपने पिताके पास आ गये। श्रीदशरथजी तीनोंको वन जानेके लिये प्रस्तुत देखकर व्याकुल हो जाते हैं। स्नेहके कारण उन्हें बार-बार हृदयसे लगा लेते हैं। कुछ बोल नहीं पा रहे हैं, शोकजन्यदारुण दाहसे हृदय जल रहा है।

सीय सहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह बस राउ लेउ उर लाइ॥
सकइ न बोलि बिकल नरनाहू।
सोक जनित उर दारुन दाहू॥

श्रीरामजीने अपने पिताजीसे वन जानेकी आज्ञा माँगी—हे पितः! मुझे क्षमा करें। मैंने सीता और लक्ष्मणको अनेक प्रकारसे रोकनेका प्रयास किया; परन्तु ये रुके नहीं। मुझे विवश होकर इन्हें वन गमनकी आज्ञा देनी पड़ी। हे राजन्! अब आप हमें आशीर्वाद प्रदान करें और वन यात्राके लिये आज्ञा दें।

नाइ सीसु पद अति अनुरागा।
उठि रघुबीर बिदा तब मागा॥

श्रीदशरथजीने कहा—हे तात! मैं तो तुम्हें पुत्र मानता हूँ, मानता रहूँगा; परन्तु बड़े-बड़े मननशील महात्मा तुमको चराचरका नायक कहते हैं। तुम्हारे नायकत्वमें यह कैसा अन्याय हो रहा है?

औरु करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु॥

जो अपराध करै उसको दण्ड अवश्य मिलना चाहिये। श्रेष्ठ नायकका यही लक्षण है। पुत्रवत्सल पिताने श्रीरामको रखनेके लिये अनेक उपाय किये; परन्तु श्रीरामने उनको अस्वीकार

कर दिया; क्योंकि वे धर्मधुरन्धर हैं, धैर्यशाली और सयाने हैं।

रायँ राम राखन हित लागी।
बहुत उपाय किए छलु त्यागी॥
लखी राम रुख रहत न जाने।
धरम धुरंधर धीर सयाने॥

बहुत उपायोंमें एक यह भी उपाय है जिसका वर्णन श्रीवाल्मीकिजीने किया है—श्रीदशरथजीने कहा कि हे रघुनन्दन! मैं तो कैकेयीके वरदानके कारण मोहग्रस्त हो गया हूँ। यह ठीक है कि मैं सूर्यकुलमें कलङ्क नहीं बनना चाहता, यह भी ठीक है कि मैं प्रतिज्ञा करके तुमको बलात् रोकना भी नहीं चाहता, यह भी ठीक है कि सूर्यकुलकी कीर्ति पताकाको ऊँचा ले जाना चाहता हूँ, उसको धूल धूसरित नहीं देखना चाहता; परन्तु यह भी ठीक है कि हे रामचन्द्र! तुम मुझे बन्धनमें डालकर राज्यका उपभोग कर सकते हो। उस बन्धनमें मुझे सुख ही मिलेगा।

अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः।
अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ३४। २६)

उसी समय श्रीकैकेयी मुनियोंके वस्त्राभूषण और पात्र ले आयीं।

मुनि पट भूषन भाजन आनी।
आगें धरि बोली मृदु बानी॥

मातृभक्त श्रीरामजीने माताका प्रसाद समझकर धारण कर लिया।

रामु तुरत मुनि बेषु बनाई।
चले जनक जननिहि सिरु नाई॥
सजि बनु साजु समाजु सबु बनिता बंधु समेत।
बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत॥

इस प्रसङ्गमें श्रीकवितावली रामायणके दो पद ध्यान देने योग्य हैं—

कीरके कागर ज्यों नृपचीर,
बिभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगवासके रूख ज्यों,
पंथके साथ ज्यों लोग-लोगाई॥
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया, मनो
धर्मु क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन रामु चले तजि
बापको राजु बटाउ कीं नाई॥
कागर कीर ज्यों भूषनचीर
सरीरु लस्यों तजि नीरु ज्यों काई।
मातु-पिता प्रिय लोग सबै
सनमानि सुभायँ सनेह सगाई॥
संग सुभामिनि भाइ भलो, दिन द्वै
जनु औध हुते पहुनाईं।
राजिवलोचन रामु चले तजि
बापको राजु बटाउ कीं नाईं॥

(श्रीकवितावली रामायण २। १-२)

श्रीगीतावलीरामायणके एक पदमें श्रीदशरथ और श्रीरामकी विदाईका अत्यन्त करुण चित्रण है।

मोको बिधुबदन बिलोकन दीजै।
राम लखन मेरी यहैं भेंट, बलि, जाउ, जहाँ मोहि मिलि लीजै॥
सुनि पितु-बचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हें।
अजहुँ अवनि बिदरत दरार मिस सो अवसर सुधि कीन्हें॥
पुनि सिर नाइ गवन कियो प्रभु, मुरछित भयो भूप न जाग्यो।
करम-चोर नृप-पथिक मारि मानो राम-रतन लै भाग्यो॥
तुलसी रबिकुल-रबि रथ चढ़ि चले तकि दिसि दखिन सुहाई।
लोग नलिन भए मलिन अवध-सर बिरह विषम हिम पाई॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। १२)

श्रीरामजी दशरथ भवनसे निकलकर श्रीवसिष्ठजीके द्वारपर खड़े हो गये। वहाँ उन्होंने विरहाग्निदग्ध नर-नारियोंको देखा।

निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े।
देखे लोग बिरह दव दाढ़े॥

श्रीरामजीने ब्राह्मणोंको बुलाकर श्रीगुरुदेवसे प्रार्थना की कि इन्हें चौदह वर्षके लिये भोजनकी सामग्री दिला दें। भगवान्‌के निज महलके दास और दासियाँ अनेक थीं। वे सब बड़े अनुशिष्ट और अनुशासित थे परन्तु आज सब प्रेमाविष्ट हैं। श्रीरामजीके पीछे-पीछे चल रहे हैं। मुखसे बोलनेका साहस नहीं हो रहा है; परन्तु मनमें प्रार्थना कर रहे हैं—हे प्रभो! हम वनमें गुजारा कर लेंगे, भूखे रह लेंगे, कड़वे फलोंको खाकर जीवन धारण कर लेंगे; लेकिन हे स्वामिन्! हमें सेवासे अलग न करें। कुछ कह नहीं पा रहे हैं। श्रीरामजी जब श्रीवसिष्ठके द्वारपर पहुँचे और इन्हें बुलाया तब इनके मनमें एक आशाकी किरण जगी कि क्या हमें साथ चलनेकी आज्ञा देंगे। दौड़कर श्रीरामजीके पास आये। श्रीरामजीने कहा—हे गुरुदेव! ये मेरे निज सेवक हैं—ये मेरे निज दास और दासियाँ हैं। मैंने इनको कभी दास नहीं समझा और सीताने कभी दासी नहीं समझा। हम दोनों इनको पुत्र और पुत्री समझकर इनके साथ व्यवहार करते रहे हैं। हे गुरुदेव! सम्प्रति पिताजीके मनमें मेरी वियोग व्यथा है, भरत और शत्रुघ्न घरमें नहीं हैं, लक्ष्मण और सीता मेरे साथ जा रहे हैं और मातायें भी व्याकुल हैं। एकमात्र श्रीअयोध्याके कर्णधार आप ही हैं एतावता आपके श्रीचरणोंमें मेरी प्रार्थना है कि इन दास-दासियोंको कभी कष्ट न होने पावे। आप माता-पिताकी तरह इनकी सँभाल रखियेगा। हे गुरुदेव! इन्हें आपके चरणोंमें समर्पित कर रहा हूँ।

दासीं दास बोलाइ बहोरी।
गुरहिं सौंपि बोले कर जोरी॥
सब कै सार सँभार गोसाईं।
करबि जनक जननी की नाईं॥

मैं कहा करता हूँ—जो ठाकुरजीके दास और दासी बन जाते हैं, उनकी सार-सँभार श्रीरामजी पिता और माताकी तरह करते रहते हैं। चक्रवर्ती श्रीदशरथजी श्रीसुमन्त्रसे कहते हैं—हा हन्त! मेरा राम चला गया, अब मेरे प्राण क्यों नहीं जा रहे हैं इससे अधिक बलवती और कौन व्यथा होगी, जिस दुःखको पाकर प्राण शरीरका परित्याग करेंगे।

रामु चले बन प्रान न जाहीं।
केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥
एहि तें कवन ब्यथा बलवाना।
जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना॥

श्रीदशरथजीने कहा—हे सखा! आज तुम स्वयं रथ ले जाओ। दोनों कुमार अति सुकुमार हैं और जनकनन्दिनी अत्यन्त सुकुमारी हैं। उन्हें रथमें चढ़ाकर चार दिनके पश्चात् वन दिखाकर लौट आना।

पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू।
लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू॥
सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ दिखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि॥

हे सखे! श्रीराम दोनों भाई परम धीर, सत्य सन्ध और दृढव्रत हैं अतः यदि वे न लौटें तो अनेक उपाय करके मेरी पुत्री सीताको लौटा लाना। यदि वे आ जायँगी तो मेरे प्राणोंको जीनेका अवलम्ब मिल जायगा।

एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा।
फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥

श्रीपिताजीकी आज्ञा सुनाकर प्रार्थना करके श्रीसुमन्त्रने श्रीरामजीको रथपर चढ़ाया। श्रीसीताजीके साथ दोनों भाई रथपर चढ़कर हृदयमें श्रीअयोध्याजीको प्रणाम करके चले।

तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए।
करि बिनती रथ रामु चढ़ाए॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई।
चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई॥

श्रीअवधके नर, नारी, पशु, वृक्ष, लतायें, हाथी, घोड़े, चातक, मोर, कोयल, चकवा, तोता, मैना, सारस, हंस, चकोर ये सब श्रीरामजीके वियोगमें व्याकुल हैं।

सहि न सके रघुबर बिरहागी।
चले लोग सब ब्याकुल भागी॥

श्रीअयोध्याजीमें कितना महान् करुण क्रन्दन हो रहा है, इसे आप सोचें। सब नहीं रो रहे हैं नगर रो रहा है, पुरी रो रही है। मात्र चेतन ही नहीं रो रहे हैं अपितु जड़ भी रो रहे हैं। केवल पशु नहीं रो रहे हैं, पक्षी भी रो रहे हैं। श्रीअयोध्याके वियोगी नर-नारियोंको, पशु-पक्षियोंको, जड़ चेतनको और इनके वियोगको मैं प्रणाम करता हूँ। सब लोगोंने अपने मनमें विचार किया कि श्रीराम-लक्ष्मण-सीताके बिना सुख नहीं है। सब लोग अपने देव दुर्लभ सुखदायी घरोंको छोड़कर श्रीरामजीके साथ हो लिये। बालक वृद्ध भी घर छोड़कर श्रीरामजीके साथ चल पड़े। आबाल वृद्ध सब लोग अत्यन्त पीड़ित होकर श्रीरामजीके ही पीछे दौड़े। जैसे आतपक्लान्त प्राणी पानीकी ओर भागते हैं।

ततः सबालवृद्धा सा पुरी परमपीडिता।
राममेवाभिदुद्राव घर्मार्तः सलिलं यथा॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ४०। २०)

बालक बृद्ध बिहाय गृहँ लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ॥

भगवान् श्रीरामका रात्रिमें दर्शन करनेके लिये, किं वा रात्रिमें कुछ सन्देश देनेके लिये, किंवा श्रीअयोध्याजीकी सीमापर प्रभुका पूजन करनेके लिये, किं वा श्रीरामके पीछे दौड़नेवाले महान् प्रेमी पुरवासियोंको विश्रान्ति देनेके लिये प्रभुकी यात्राको रोकती हुयी तमसा नदी आ गयी।

ददृशे तमसा तत्र वारयन्तीव राघवम्।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ४५। ३२)

श्रीरामजीने अपनी प्रजाको प्रेमाधीन देखा—दिनभर मेरे रथके साथ दौड़ते हुये आकर थक गये हैं। रात्रिके नीरव वातावरणमें तमसाके तटपर थककर सो रहे हैं। वृक्षोंकी जड़ोंका उपधान—तकिया बनाकर सो रहे हैं। इनकी यह स्थिति देखकर प्रभुके दयालु हृदयमें महान् क्लेश हुआ। करुणामय श्रीरघुनाथजी दूसरोंके दुःखको शीघ्र समझ लेते हैं और उनके दुःखसे स्वयं दुःखी हो जाते हैं।

रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी।
सदय हृदयँ दुखु भयउ बिसेषी॥
करुनामय रघुनाथ गोसाई।
बेगि पाइअहिं पीर पराई॥

श्रीरामके समझानेपर भी लोग लौटनेको प्रस्तुत नहीं हुये तब दो प्रहर रात्रिके व्यतीत होनेपर करुणासागर श्रीरामजीने मन्त्री सुमन्त्रसे कहा—मेरे इन सर्वस्व त्यागी भक्तोंको देखिये इन्हें

केवल मेरी चाह है, कोई भी बाधा इनके निश्चयको परिवर्तित नहीं कर सकती है। ये अपने घर, पत्नी आदिका ममत्व समाप्त करके आये हैं। हे सुमन्त्रजी! आप यह प्रयत्न करें कि मेरे इन प्रेमियोंको अनाथकी भाँति इस प्रकार पुनः न सोना पड़े। आप रथका इस तरह सञ्चालन करें कि जगनेपर रथके पहियोंकी लीकके सहारे ये हमारा पता न लगा सकें।

खोज मारि रथु हाँकहु ताता।
आन उपायँ बनिहि नहिं बाता॥

रथ चलानेकी कलामें परम प्रवीण सुमन्त्रजीने अपने स्वामीकी आज्ञाका यथावत् पालन किया। रथारूढ़ होकर श्रीरामने पुनः प्रस्थान किया।

राम लखन सिय जान चढ़ि संभु चरन सिरु नाइ।
सचिवँ चलायउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ॥

प्रातःकाल जगनेपर श्रीअयोध्यावासियोंने जब अपने जीवनसारसर्वस्व श्रीरामजीको नहीं देखा तब वे अचेत हो गये। वियोग शोकसे व्याकुल होकर निश्चेष्ट हो गये। आँखोंमें आँसू बहाते हुये खोजा; परन्तु खोजनेके लिये प्रभुने कोई आधार ही नहीं छोड़ा था।

रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं।
राम राम कहि चहु दिसि धावहिं॥

सब स्नेह व्याकुल स्वरमें कहते हैं—हा हन्त! हम सो गये, हमारे आराध्य चले गये। बैरिनि नींदने हमें धोखा दे दिया। इसे धिक्कार है, इस नींदने प्राणप्रियतमसे विछोह करा दिया। हम महाबाहु विशाल वक्षःस्थलवाले अपने आराध्यके दर्शनसे वञ्चित हो गये।

जो सो जाता है उसे ठाकुरजी छोड़ देते हैं, जागनेवालोंको साथमें रखते हैं। श्रीलक्ष्मणजी और श्रीसीताजी साथमें हैं तथा अन्य लोगोंको छोड़कर चले गये। इस प्रसङ्गपर गम्भीरतासे विचार करना चाहिये। किसी जागनेवालेका साथ करके ये सोनेवाले भी पुनः श्रीरामजीके पास पहुँच जायँगे। जागनेवालेको प्रभु प्रायः नहीं छोड़ते हैं।

समस्त अयोध्यावासी एक दूसरेको उपदेश देते हैं—श्रीरामजीने हमारे दुःखका अनुमान करके हमें छोड़ दिया। हे भैया! हमसे तो मछली अच्छी है। रामके विना जीवनको धिक्कार है।

एकहिं एक देहिं उपदेसू।
तजे राम हम जानि कलेसू॥
निंदहिं आपु सराहहिं मीना।
धिग जीवनु रघुबीर बिहीना॥

इस प्रकार करुणक्रन्दन करते हुये सब पुरवासी श्रीअयोध्या आ गये। अब चौदह वर्ष बीतनेपर ही श्रीराम मिलेंगे, इस आशासे सब जीवित हैं। श्रीरामदर्शनके लिये अयोध्याके नर नारी नियम और व्रत करने लगे।

विषम बियोगु न जाइ बखाना।
अवधि आस सब राखहिं प्राना॥
राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि॥

श्रीरामजी शृङ्गवेरपुर पहुँच गये। वहाँपर सर्वप्रथम प्रभुने पतित पावनी श्रीगङ्गाजीका दर्शन किया। प्रभुने अनेक प्रकारकी कथायें कहकर श्रीगङ्गाजीकी महिमाका वर्णन किया।

सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई।
बिबुध नदी महिमा अधिकाई॥

परमात्मा श्रीरामने श्रीगङ्गामें स्नान किया, जिससे मार्गजन्य श्रम निवृत्त हो गया। पावन जलपान करके मन प्रसन्न हो गया।

मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ।
सुचि जल पिअत मुदित मन भयऊ॥

जब निषादराज गुहने श्रीरामजीके आनेका समाचार सुना तब वे अपने स्वजनोंके साथ भेंट सामग्री लेकर आये। राजा, वैद्य और गुरुके दर्शन खाली हाथ नहीं करना चाहिये। **'रिक्तपाणिर्नपश्येत राजानं भिषजं गुरुम्'।**

श्रीनिषाद श्रीरामजीके आगे भेंट सामग्री रखकर दण्डवत् करके निमेषोन्मेषवर्जित अपलक नेत्रोंसे श्रीरामजीको निहारने लगे।

करि दंडवत भेंट धरि आगें।
प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागें॥

श्रीठाकुरजीने उन्हें अपने पास बिठाकर कुशल प्रश्न किया।

संपृष्टकुशलो रामं गुहः प्राञ्जलिरब्रवीत्।
धन्योऽहमद्य मे जन्म नैषादं लोकपावन॥

(अध्यात्मरामायण २। ५। ६४)

श्रीनिषादराज सर्वस्व समर्पणपूर्वक श्रीरामकी शरणमें आये। श्रीनिषादने कहा—हे देव! मेरी धरणी, धन और धाम आपका है। हे स्वामिन्! राजाके महलमें सेवा करनेवाले सेवक भी उसी महलमें रहते हैं। एतावता आजसे मैं अपने परिवार सहित नीच सेवकके रूपमें आपके श्रीचरणोंमें निवास करूँगा। अब आप कृपा करके नगरमें राजा बनकर पधारें।

देव धरनि धनु धामु तुम्हारा।
मैं जनु नीचु सहित परिवारा॥
कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना।
मोहि दीन्ह पितु आयसु आना॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे सखे! मैं जानता हूँ कि तुमने व्यवहारसे नहीं कहा है अपितु सत्य कहा है, प्रेमसे कहा है। भगवान् श्रीरामके श्रीचरणोंमें जो अपनेको सेवकके रूपमें समर्पण करता है, वे उसे तत्काल अपना मित्र बना लेते हैं। यह रामदरबारकी अनुपम विशेषता है। प्रभुने कहा—हे मित्र! मेरे पिताजीने मुझको कुछ और ही आज्ञा दी है। तदनुसार मुझे चौदह वर्षपर्यन्त मुनियोंका व्रत और वेष धारण करके, मुनियोंकी भाँति आहार करते हुए वनमें निवास करना है। ग्राम और नगरमें रहना मेरे लिए उचित नहीं है। यह सुनकर निषादराजको महान् क्लेश हुआ।

बरष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारु।
ग्राम बासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु॥

अनेक जन्मोंमें किए हुए पुण्यबलसे जो श्रीराम देखे जा सकते हैं उन श्रीरामको सामने देखकर तथा कैकेयीकी वरयाचना द्वारा प्राप्त उनकी मुनिवृत्तिको सुनकर निषादराजके मनमें जो उत्कट हर्ष तथा शोक उत्पन्न हुए उनसे उदित शीत तथा अशीत गुणयुक्त अश्रुप्रवाहोंसे निषादराजका मुख भर गया। अर्थात् श्रीरामचन्द्रके दर्शन करके उनको महान् आनन्द हुआ जिससे शीतल आनन्दाश्रु एवं उनकी मुनिवृत्ति सुनकर उन्हें जो महान् शोक हुआ उससे गरम दुःखाश्रु निकलकर मुखको व्याप्त कर लिया।

दृष्ट्वा राममनेकजन्मरचितैर्दृश्यं शुभैः कर्मभिः,
श्रुत्वा मातृवरद्वयादुपगतां वृत्तिं च वैखानसीम्।
अत्युज्जृम्भित हर्षशोक जनितैर्वाष्पैर्निषादाधिपः,
शीताशीतगुणान्वितैरविरलैः सम्पृक्तवक्त्रोऽभवत्॥

(चम्पूरामायण २। ४८)

इसके बाद नगरके बाहर शिंशपा वृक्षके नीचे कुश और नवीन कोमल पत्तोंसे युक्त सुन्दर साथरी बिछायी। रामजीने सन्ध्या करके सबके

साथ कन्दमूल फल खा करके शयन किया। श्रीलक्ष्मण नित्यकी भाँति उनका पादसंवाहन करने लगे।

सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि पाय पलोटत भाइ॥

श्रीरामको सोता हुआ जानकर श्रीलक्ष्मणजी उठे। आज श्रीरामजीको शीघ्र नींद आ गयी अत: प्रभुने नित्यकी भाँति श्रीलक्ष्मणसे सोनेके लिए नहीं कहा। परन्तु मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी आदर्श दिनचर्यामें नींदके कारण अन्तर पड़ गया यह उचित नहीं प्रतीत होता है। वास्तवमें आज श्रीरामजी सो नहीं रहे हैं अपितु नेत्र बंद करके आँसुओंको छिपानेका प्रयास कर रहे हैं। प्रभु सोचते हैं कि आज ही नहीं अपितु मेघनाद वध पर्यन्त मैं अपने दुलारे लक्ष्मणको सोनेके लिए नहीं कह पाऊँगा। अब मेरा लक्ष्मण इतने दिनोंतक जागता ही रहेगा, यदि यह सो जाएगा तो संसारका प्रबल प्रतापी पापी मर नहीं सकेगा। इसलिए भक्तवत्सल करुणामय प्रभु जान बूझकर आँखोंको बन्द करके अपनी हार्दिक वेदनाको छिपानेका प्रयास कर रहे हैं।

श्रीलक्ष्मणजी धनुष सज्ज करके वीरासनसे बैठकर पहरा देने लगे। गुहने विश्वस्त प्रहरियोंको बुलाकर प्रीतिपूर्वक उन्हें स्थान-स्थानपर नियुक्त कर दिया और स्वयं कमरमें तरकश बाँधकर धनुष-बाण सज्ज करके श्रीलक्ष्मणके पास जाकर बैठ गये।

प्रभुको कुशकी साथरीपर सोते हुए देखकर निषादके हृदयमें विषाद उत्पन्न हो गया। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंसे जल बहने लगा। उन्होंने आर्द्र स्वरमें श्रीलक्ष्मणसे कहा।

उठे लखनु प्रभु सोवत जानी।
कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी॥
कछुक दूरि सजि बान सरासन।
जागन लगे बैठि बीरासन॥
गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती।
ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती॥
आपु लखन पहिं बैठेउ जाई।
कटि भाथी सर चाप चढ़ाई॥
सोवत प्रभुहि निहारि निषादू।
भयउ प्रेम बस हृदयँ बिषादू॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई।
बचन सप्रेम लखन सन कहई॥

श्रीनिषाद कहते हैं—माता, पिता, परिजन, पुरजन, सखा, दास और दासियाँ जिनका प्राणकी भाँति संरक्षण करते हैं, आज वे ही श्रीरामचन्द्रजी और श्रीसीताजी पृथ्वीपर शयन कर रहे हैं।

मातु पिता परिजन पुरबासी।
सखा सुसील दास अरु दासी॥
जोगवहिं जिन्हहि प्रान की नाईं।
महि सोवत तेइ राम गोसाईं॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ।
ससुर सुरेस सखा रघुराऊ॥
रामचंदु पति सो बैदेही।
सोवत महि बिधि बाम न केही॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू।
करम प्रधान सत्य कह लोगू॥

मन्दबुद्धि कैकेयीने कठिन कुटिलताकी, जिसने श्रीसीता-रामजीको सुखके समय दु:ख दिया।

कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहिं रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह॥

जीवाचार्य श्रीलक्ष्मणने एक जीवमें—निषादमें तत्वत्रयका अभाव देखकर मधुर और मीठी वाणीमें ज्ञान, वैराग्य और भक्तिरसका उपदेश दिया।

भयउ बिषादु निषादहि भारी।
राम सीय महि सयन निहारी॥
बोले लखन मधुर मृदु बानी।
ग्यान बिराग भगति रस सानी॥

श्रीलक्ष्मणजीके इस उपदेशको 'लक्ष्मण गीता' कहते हैं। गीताके उपदेशके पहले 'विषाद योग' होता है। यहाँपर निषादको विषाद हुआ है। निषादने कहा—श्रीरामजीको कैकेयीने दुःख दिया। इसीका खण्डन करते हुए श्रीलक्ष्मणने कहा—हे भैया! कोई किसीको सुख-दुःख नहीं दे सकता, सब अपने किए हुए कर्मोंका फल भोगते हैं।

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

श्रीअध्यात्मरामायणमें भी इसी प्रकार कहा गया है—सुख और दुःखका देनेवाला कोई और नहीं है; 'कोई अन्य सुख दुःख देता है' यह समझना कुबुद्धि है। 'मैं करता हूँ' यह व्यर्थका अभिमान है; क्योंकि लोग अपने-अपने कर्मोंके सूत्रमें बँधे हुए हैं।

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता,
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः,
स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥

(श्रीअध्यात्मरामायण २। ६। ६)

स्मरण रहे, ***'निज कृत करम भोग सबु'*** श्रीलक्ष्मणजीने यह जीवोंके लिए कहा है, श्रीरामजीके लिए नहीं। वे तो साक्षात् परब्रह्म हैं। इसी प्रसङ्गमें आगे कहेंगे ***'राम ब्रह्म परमारथ रूपा'।*** ज्ञान सूर्यके अभावमें मोह रात्रि होती है। मोह रात्रिमें सब सो रहे हैं और जाग्रतरूप अनेक प्रकारका स्वप्न देखते हैं। मोहरूपी रात्रिमें योगी लोग जागते हैं इसी प्रकार श्रीगीताजीमें भी कहा है जो आत्म विषयक बुद्धि समस्त प्राणियोंके लिये रात्रि—रात्रिकी भाँति प्रकाशसे रहित है, उस आत्म विषयक बुद्धिमें निर्मल मनवाला इन्द्रिय संयमी पुरुष जागता है—आत्मसाक्षात्कार करता रहता है। शब्दादि विषयोंमें लगी हुई जिस बुद्धिमें समस्त प्राणी जागते—सावधान रहते हैं, वह शब्दादि विषयोंमें लगी हुई बुद्धि आत्माका साक्षात् कर लेनेवाले मुनिके लिये रात्रिकी भाँति प्रकाश रहित होती है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

(श्रीगीता २। ६९)

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥
एहिं जग जामिन जागहिं जोगी।
परमारथी प्रपंच बियोगी॥

अब जगे हुए साधकका लक्षण बताते हैं—जबतक चित्तमें विषय विलासका राग है तबतक मोह निद्रा बनी हुई है। जब शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन विषयोंके विलाससे वैराग्य हो जाय, तब समझो कि इस मोह रात्रिसे जीव जग गया।

जानिअ तबहिं जीव जग जागा।
जब सब बिषय बिलास बिरागा॥

यहाँतक ज्ञान और वैराग्यका संक्षिप्त निरूपण किया अब भक्तिकी बात कहते हैं। विवेक होनेपर मोह भ्रमकी निवृत्ति हो जाती है तब श्रीरामचरणोंमें प्रेम उत्पन्न होता है।

मोह गये बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग।

मनसा वाचा कर्मणा श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम होना ही परम परमार्थ है।

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा।
तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथु एहू।
मन क्रम बचन राम पद नेहू॥

अब श्रीरामजीके स्वरूपका वर्णन करते हैं।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा।
अबिगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल बिकार रहित गत भेदा।
कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥
भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल॥

इस प्रकार मोहका परित्याग करके श्रीसीतारामजीके चरणोंमें प्रेम करो। इस लक्ष्मण गीताका तात्पर्य भगवच्चरणानुराग ही है। तीन बार चरण प्रेमके लिये कहा है।

तब रघुनाथ चरन अनुरागा,
मन क्रम बचन रामपद नेहू,
सिय रघुबीर चरन रत होहू।

इस प्रकार ज्ञान वैराग्य और भक्तिकी चर्चामें रात्रि व्यतीत हो गयी। भिनसार—प्रात:काल हो गया। भगवान् श्रीराम जग गये।

कहत राम गुन भा भिनुसारा।
जागे जग मंगल सुखदारा॥

'शौच' बारह प्रकारके धर्मशास्त्रोंमें वर्णित है। श्रीरामजीने समस्त शौच करके, स्नान और सन्ध्या करके श्रीनिषादसे कहा—हे सखे! हमें वटवृक्षका दूध चाहिये।

सकल सौच करि राम नहावा।
सुचि सुजान बट छीर मंगावा॥

निषादराजने सद्य: वटक्षीर लाकर श्रीरामजीको दे दिया। श्रीरामने वटक्षीरसे अपनी और लक्ष्मणकी जटायें बनायीं। महाबाहु नरशार्दूल श्रीरघुनन्दन देखते-देखते जटाधारी हो गये। इस प्रसङ्गसे शिक्षा लेनी चाहिये कि वेषका भी महत्त्व होता है। जटाका भी महत्त्व होता है, कण्ठी, तिलकका भी महत्त्व होता है। भारतीय संस्कृतिके आराध्य श्रीराम-लक्ष्मणने आज स्वयं जटा बना करके वेषका महत्त्व बढ़ा दिया है।

श्रीराम-लक्ष्मणकी अलकावलियोंका स्थान जटामण्डलने ले लिया। वटके दूधका उपयोग देखकर श्रीसुमन्त्र निषाद आदि सभी रामभक्त व्याकुल होकर रो पड़े।

अनुज सहित सिर जटा बनाए।
देखि सुमन्त्र नयन जल छाए॥

निषादजीने जब अपने लाये हुये वटक्षीरका उपयोग देखा तब उनका हृदय चीत्कार कर उठा। हा हन्त! यह कार्य मुझे ही करना था। श्रीरामजीने श्रीअयोध्यासे निकलकर दो रात्रि व्यतीत करके तीसरे दिन प्रात:काल जटाओंका निर्माण किया। करुणामय श्रीरामजीने सोचा कि यदि श्रीअयोध्याजीमें जटा बनायेंगे तो चार दिनके बाद जानेवाले पिताजी उन जटाओंको देखकर व्याकुल होकर आज ही चले जायेंगे। हृदयपर वज्र रखकर।

'जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ' की आज्ञा देनेवाली जननी कौसल्याका भी धीरज डोल जायगा। सम्भव है मेरे लिये वनवासकी वर

याचना करनेवाली कैकेयीका भी हृदय डगमगा जाय। एतावता श्रीरामजीने शृङ्गवेरपुरमें जटाओंका निर्माण किया। वहाँपर उस समय एक ऐसे महान् प्रेमी उपस्थित थे जो श्रीरामजीको पुत्रकी भाँति प्यार करते थे और श्रीरामजी जिन्हें पिताके समान आदर देते थे। उन्होंने जब इस करुण दृश्यको देखा तब उनकी आँखें छलछला आयीं वे बालककी तरह फफक-फफककर रो पड़े। चक्रवर्त्तीजीका सन्देश सुनाते-सुनाते श्रीसुमन्त्रजी सरकारके चरणोंमें गिरकर बालककी भाँति करुणक्रन्दन करने लगे।

नृप अस कहेउ गोसाइँ जस कहइ करौं बलि सोइ।
करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ॥

श्रीसुमन्त्रने करुण स्वरमें कहा—हे तात! श्रीअयोध्याजीको अनाथ होनेसे बचा लो, चक्रवर्त्तीजीको बचा लो। यदि आप श्रीअवध नहीं चलेंगे तो महाराज श्री नहीं रहेंगे और श्रीअयोध्याजी अनाथ हो जायँगी। करुण क्रन्दन करते हुये पितृकल्प श्रीसुमन्त्रको श्रीरामजीने बहुत प्रकारसे समझाया—शिवि, दधीचि, राजा हरिश्चन्द्रने धर्मके लिये अनेकों प्रकारके कष्टोंको सहन किया है। आज मैंने उसी धर्मको सुलभतासे पा लिया है। मेरी माँने भी कहा था ***'पितु आयसु सब धरमक टीका।'*** हे धर्मज्ञ! उसके त्यागनेसे तीनों लोकोंमें अपकीर्ति होगी। सम्भावित पुरुषकी अपकीर्ति भी अनेकों मृत्युके समान दाहक होती है, अत: हे तात! हमें जाने दो। मेरे पिताजीके चरणोंको पकड़कर हमारा कोटिश: अभिवादन कहियेगा और कहियेगा कि मेरी किसी प्रकारकी चिन्ता न करें।

पितु पद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि।
चिंता कवनिहु बात कै तात करिअ जनि मोरि॥

श्रीलक्ष्मणजी पिताजीके प्रति कुछ अनुचित कह गये। प्रभुने श्रीसुमन्त्रको बार-बार अपनी शपथ देकरके कहा कि आप लक्ष्मणका सन्देश पिताजीसे न कहना।

पुनि कछु लखन कही कटु बानी।
प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी॥
सकुचि राम निज सपथ देवाई।
लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई॥

श्रीसुमन्त्रजीने श्रीजनकनन्दिनीजीके लिये श्रीदशरथजीका सन्देश सुनाया। श्रीरामजीने भी श्रीसीताजीको लौटनेकी शिक्षा दी। सुनकर श्रीसीताजीने अपने प्राणाराध्य श्रीरामजीसे कहा—हे प्राणेश्वर! हे परम सनेही! मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनिये। हे प्रभो! आप करुणामय और परम विवेकी हैं। एतावता विचार करें। शरीरको छोड़कर छाया अलग कैसे रोकी जा सकती है? सूर्यकी प्रभा सूर्यका परित्याग करके कहाँ जा सकती है? और चन्द्रमाकी चाँदनी चन्द्रमाको छोड़कर कहाँ जा सकती है?

प्रभु करुनामय परम बिबेकी।
तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई।
कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई॥

इसके पश्चात् श्रीसीताजीने सुमन्त्रजीसे कहा—हे पितृकल्प! आप मेरे पिता और श्वसुरके समान हितैषी हैं। मैं आपके वचनोंका प्रत्याख्यान कर रही हूँ—प्रत्युत्तर दे रही हूँ यह महान् अनुचित है; परन्तु हे तात! मैं आज आर्त्त होकर ही आपके सम्मुख हुयी हूँ, आप अनुचित न मानियेगा। आर्यपुत्रके श्रीचरणकमलोंके विना इस संसारमें जहाँतक सम्बन्ध हैं मेरे लिये सभी व्यर्थ हैं।

तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी।
उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी॥
आरति बस सनमुख भइउँ बिलगु न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात॥

श्रीसुमन्त्रजीकी स्थितिका चित्रण करते हुये भक्त कवि लिखते हैं—श्रीसुमन्त्र श्रीसीताजीकी शीतल वाणी सुन करके इस प्रकार व्याकुल हो गये जैसे सर्प मणिके खो जानेपर व्याकुल हो जाता है। उन्हें नेत्रोंसे कुछ सूझता नहीं, कानोंसे सुनायी नहीं देता है। वे अत्यन्त व्याकुल हो गये। कुछ कह नहीं सकते हैं।

सुनि सुमंत्रु सिय सीतलि बानी।
भयउ बिकल जनु फनि मनि हानी॥
नयन सूझ नहिं सुनइ न काना।
कहि न सकइ कछु अति अकुलाना॥

यहाँ श्रीराम नेत्र, श्रीलक्ष्मण कान और श्रीसीता वाणी हैं। इन तीनोंकी हानि हुयी। श्रीरामजीने अनेक प्रकारसे श्रीसुमन्त्रको समझाया फिर भी उनकी छाती ठण्ढी न हुयी।

राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती।
तदपि होति नहिं सीतलि छाती॥

जब श्रीसुमन्त्रने देखा कि श्रीरामजी नहीं लौटेंगे तब उन्होंने श्रीरामजीके साथ वनमें चलनेके अनेक प्रयत्न किये, परन्तु श्रीरामचन्द्रजीने सबका उचित उत्तर दिया।

श्रीसुमन्त्रने कहा—हे अनघ! सम्प्रति मैं आपको छोड़कर श्रीअयोध्या लौटकर नहीं जा सकूँगा। अतएव मुझे भी वनमें चलनेकी ही आज्ञा दें।

तन्न शक्ष्याम्यहं गन्तुमयोध्यां त्वदृतेऽनघ।
वनवासानुयानाय मामनुज्ञातुमर्हसि॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ५२। ४८)

हे प्रभो! मैं वनमें निवास करके अपने समस्त शरीरसे आपकी सेवा करूँगा और इस सुखके आगे श्रीअयोध्या तथा देवलोकका भी सर्वथा परित्याग कर दूँगा।

तव शुश्रूषणं मूर्ध्ना करिष्यामि वने वसन्।
अयोध्यां देवलोकं वा सर्वथा प्रजहाम्यहम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ५२। ५४)

श्रीरामचन्द्रजीने सुमन्त्रजीके वचनोंका उत्तर दिया—आप स्वामीके प्रति स्नेह रखनेवाले हैं। मुझमें जो आपकी महान् भक्ति है, उसे मैं जानता हूँ; फिर भी आपको यहाँसे जिस कार्यके लिये भेज रहा हूँ उसे सुनिये। जब आप यहाँसे नगरको लौट जायँगे तब मेरी छोटी माता कैकेयीको यह विश्वास हो जायगा कि राम वनको चले गये।

जानामि परमां भक्तिमहं ते भर्तृवत्सल।
शृणु चापि यदर्थं त्वां प्रेषयामि पुरीमितः॥
नगरीं त्वां गतं दृष्ट्वा जननी मे यवीयसी।
कैकेयी प्रत्ययं गच्छेदिति रामो वनं गतः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ५२। ६०, ६१)

जतन अनेक साथ हित कीन्हे।
उचित उतर रघुनन्दन दीन्हे॥

श्रीसुमन्त्रजी सोचते हैं—श्रीरामजीकी आज्ञाका तिरस्कार नहीं किया जा सकता। कर्मकी कठिन गति समझकर श्रीसुमन्त्रजीने श्रीराम-लक्ष्मण और श्रीसीताके चरणोंमें सिर नवाकर वैसे ही लौटनेका विचार किया जैसे व्यवसायी वैश्य अपना मूलधन नष्ट करके घर लौटता है।

मेटि जाइ नहिं राम रजाई।
कठिन करमगति कछु न बसाई॥
राम लखन सिय पद सिरु नाई।
फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई॥

श्रीसुमन्त्रजीने पुनः श्रीरामजीसे कहा—हे प्रभो! ये आपके भक्त घोड़े आपके बिना श्रीअयोध्या कैसे जायँगे? हे स्वामिन्! मैं आपके बिना अयोध्या लौटकर नहीं जाऊँगा। हमें भी अपने साथ वनमें चलनेकी अनुमति करिये।

कथं रथं त्वया हीनं प्रवाह्यन्ति हयोत्तमाः॥
तन्न शक्ष्याम्यहं गन्तुमयोध्यां त्वदृतेऽनघ।
वनवासानुयानाय मामनुज्ञातुमर्हसि॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ५२। ४७, ४८)

हे भृत्यवत्सल! आप मेरे स्वामीके पुत्र हैं, आपका मार्ग ही मेरा उचित मार्ग है। मैं आपका भक्त हूँ, आपका सेवक हूँ, मैंने सेवककी मर्यादाका कभी परित्याग नहीं किया है, एतावता आप मेरा परित्याग न करें।

भृत्यवत्सल तिष्ठन्तं भर्तृपुत्रगते पथि।
भक्तं भृत्यं स्थितं स्थित्या न मा त्वं हातुमर्हसि॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ५२। ५८)

श्रीरामने सुमन्त्रजीको पुनः समझाया और कहा—आप मेरा तथा अपने महाराजका प्रिय करनेके लिये श्रीअवधपुरी पधारें।

मम प्रियार्थं राज्ञश्च सुमन्त्र त्वं पुरीं व्रज।

हे तात! आपके समान इक्ष्वाकु वंशियोंका सुहृद् और कोई नहीं हो सकता है। मेरे पिताजी जिस प्रकार मेरा शोक न करें, आप वही उपाय करें। मेरे माता पिताके श्रीचरणोंमें श्रीसीता लक्ष्मणसहित मेरा प्रणाम कहिएगा। इस प्रकार और भी अनेक प्रकारके सन्देश देकर विलपते हुए, कलपते हुए, अश्रुवर्षण करते हुए मन्त्री सुमन्त्रको श्रीरघुनन्दनने विदा कर दिया।

बरबस राम सुमंत्रु पठाए।
सुरसरि तीर आपु तब आए॥

इसके आगे प्रेमी केवटका प्रसङ्ग तीन दोहोंमें है। यह प्रसङ्ग

'अरथ अमित अति आखर थोरे'

वाला प्रसङ्ग है। यह प्रसङ्ग भक्तोंका, रामायणियोंका और मनीषियोंका कण्ठहार है।

मागी नाव न केवटु आना—जिन उदार चक्रचूड़ामणि महादानी श्रीराम भगवान्‌से सारा संसार माँगता है, श्रीब्रह्मा, श्रीशंकर, इन्द्र आदि सभी देवता माँगते हैं। बड़े-बड़े महात्माजी माँगते हैं। वही आज केवटसे माँग रहे हैं। श्रीगोस्वामीजी श्रीकवितावली रामायणमें लिखते हैं—

नाम अजामिल-से खल कोटि
अपार नदीं भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरें गिरि मेरु सिलाकन
होत, अजाखुर बारिधि बाढ़े॥
तुलसी जेहि के पद पंकज तें
प्रगटी तटिनी, जो हरै अघ गाढ़े।
ते प्रभु या सरिता तरिबे कहुँ
मागत नाव करारें ह्वै ठाढे॥

(श्रीकवितावलीरामायण २। ५)

भैया देहु नाव तो उतरि जाऊँ पार,
सरकार जनि जाहु रुकि जाहु अब याँही पै।
रवि ताप बढ़िहैं कठिन करि दैहैं मग,
करहु व्यतीत प्यास छप्पर की छाँही पै॥
बिहसि बिहसि बार बार माँगैं नाव,
केवट न आवै ठाढ़ो बाँस धरि बाँही पै।
कोटि कोटि ब्रह्मसुख होत बलिहार,
रघुनंदनके माँगिबे पै केवट की नाँही पै॥

अनंत ब्रह्माण्डाधिनायक सरकार केवटसे याचना कर रहे हैं, यह दयालुताकी पराकाष्ठा है। और एक केवट स्पष्ट नकार रहा है, यह उसकी

ढिठाईकी पराकाष्ठा है। ठाकुरजी अपने भक्तोंका इतना सम्मान करते हैं, लाड़ करते हैं कि भक्त प्रेमीसे प्रियतम बन जाता है और वह भगवान्‌से मान करने लगता है और भगवान् उसको मनाते हैं। यही मान लीला केवटके प्रसङ्गमें दिखाई पड़ती है। किसी भक्तने कहा है—

इस तरफ ख्वाहिश है दुनियाँ भर के शाहंशाह की,
उस तरफ साफ इन्कार है इक मस्त लापरवाह की।
प्रेमके झगड़ेमें चलती है ये कोशिशें चाह की।
दीन वत्सलकी दया हो ज़िद रहे मल्लाह की॥
देखिये किसकी विजय हो और किसकी हार हो।
दोनों मल्लाहों में पहले किसकी किश्ती पार हो॥

प्रेमी अपने प्रियतमका दर्शन करना चाहता है, उनके मुखचन्द्रसे निर्झरित वचनामृतका आस्वादन करना चाहता है, इसके लिए वह अनेकों बहाने करता है। आज महान् प्रेमी केवट सोचता है कि नाव ले आनेमें जितना विलम्ब होगा उतना ही आनंद आयेगा अत:

'मागी नाव न केवटु आना।'

कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना—बड़े-बड़े लोग श्रीठाकुरजीका मर्म नहीं जानते हैं।

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे।
बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा।
औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनंदन।
जानहिं भगत भगत उर चंदन॥

(२। १२७)

ध्यानद्वारा शंभुने बिचारा जिन्हें बार-बार,
पाकर न मर्म बोले क्लिष्ट मानता हूँ मैं।
जिनके लिए विरंचि ने भी पुकारा यही,
पाता हूँ न मर्म सर्व सृष्टि छानता हूँ मैं॥
सार वेदशास्त्र का प्रमाण कहता है जिन्हें,
नेति नेति मर्म आपका बखानता हूँ मैं।
प्यारा भक्त बिचारा कहता है उन्हें,
हे प्रभु तुम्हारा सारा मर्म जानता हूँ मैं॥

विगत रात्रिमें केवटने श्रीलक्ष्मणजीका उपदेश सुना था कि श्रीरामजी पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं और उनके श्रीचरणोंकी उपासना ही परम पुरुषार्थ है। यद्यपि यह उपदेश निषादराजके लिए दिया गया था। केवट कहता है कि उन्होंने उसे उपदेश जाना या नहीं जाना मैं नहीं जानता; परन्तु यह निश्चय जानिए कि मैं जान गया।

'कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना'।

श्रीरामजी अत्यन्त करुण वातावरणसे निकलकर आये हैं। फफक-फफककर रोते हुए प्रेमी सुमन्त्रजीको बरबस विदा करके आये हैं। प्रभुके भी श्याम कपोलोंपर आँसू बहकर सूखे हुए हैं। भक्तके दु:खसे दु:खी होना तो करुणामय श्रीरामजीका स्वभाव ही है। केवटने जब देखा कि श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और श्रीसीताजी तीनों ही उदास हैं। केवटने मनमें निश्चय कर लिया कि मेरे जीवनकी सबसे बड़ी साधना यही है कि मेरे घाटपर श्रीरामजी उदास आए हैं और यहाँसे हँसकर जायें। आये हुए अतिथिको उदास भेजना भी नहीं चाहिए। फिर जीवनमें ये अद्वितीय अतिथि आज ही मिले हैं। बड़े-बड़े अमलात्मा, वीतराग महात्मा परमहंस महामुनीन्द्र जिनकी एक झलक पानेके लिये तरसते रहते हैं। आज मैं इन्हें अपने हृदय मन्दिरमें विराजमान कर लूँ, जाने फिर जीवनमें मिलें या न मिलें। परन्तु उदास श्रीरामजीको, रोते हुए श्रीरामजीको हृदयमें नहीं

बसाऊँगा। इन्हें प्रसन्न करना है, हँसाना है। इसलिए केवटका यह सब नाटक है। इसीलिये कहता है

'तुम्हार मरमु मैं जाना'। केवटने कहा—हे नाथ! आपके श्रीचरणकमलोंकी धूलिके लिए सब कहते हैं कि यह मनुष्य बनानेकी कोई जड़ी है। हे प्रभो! आपके चरणोंके स्पर्श होते ही शिला सुन्दरी स्त्री हो गयी। मेरी नाव तो काष्ठकी है। काष्ठ पत्थरसे तो कठोर होता नहीं। मेरी नाव भी मुनिकी स्त्री हो जायेगी और उड़ जाएगी तो मैं लुट जाऊँगा। मैं तो इसी नावसे अपने समस्त परिवारका पालन पोषण करता हूँ, दूसरा धन्धा जानता ही नहीं। हे प्रभो! यदि आप अवश्य ही मेरी नावसे पार जाना चाहते हैं तो मुझे पहले अपने चरणकमलोंको पखारनेकी आज्ञा दें।

चरन कमल रज कहुँ सबु कहई।
मानुष करनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई।
पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई।
बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥
एहिं प्रतिपालउँ सब परिवारू।
नहिं जानउँ कछु अउर कबारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू।
मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥

इसी प्रकारका वर्णन श्रीअध्यात्मरामायणमें भी है।

क्षालयामि तव पादपङ्कजं
नाथदारुदृषदोः किमन्तरम्।
मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते
पादयोरिति कथा प्रथीयसी॥
पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा
पश्चात्परं तीरमहं नयामि।
नोचेत्तरी सद् युवती मलेन
स्याच्चेद्विभो विद्धि कुटुम्बहानिः॥

(अध्यात्मरामायण १। ६। ३-४)

आनन्दरामायणमें भी कहा है—केवट कहता है कि मेरी एक स्त्री है मैं दूसरी स्त्री लेकर क्या करूँगा।

अस्ति मे गृहिणी गेहे किं करोम्यपरां स्त्रियम्।

यदि श्रीरामजी यह कहें कि गौतम पत्नी शापसे शिला हुई थी अतः वह ज्यों की त्यों हो गई। इसका उत्तर वह देता है कि कौन जाने यह भी शापसे लकड़ी हुई हो। श्रीगोस्वामीजीने कवितावली रामायणमें भी कई पदोंमें केवटके प्रसङ्गका रसास्वादन किया है।

एहि घाटतें थोरिक दूरि अहै
कटि लौं जलु थाह देखाइहौं जू।
परसें पगधूरि तरै तरनी
घरनी घर क्यों समझाइहौं जू॥
तुलसी अवलंबु न और कछू
लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू।
बरु मारिए मोहि, बिना पग धोएँ
हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥

केवट कहता है यदि आप चरण नहीं धुलाना चाहते तो नावके लिए ही क्यों अड़ रहे हैं। आइए हम आपको सहज उपाय बताएँ। रज भी बच जायेगी, आसानीसे पार भी उतर जायेंगे, न मुझे कोई अड़चन पड़ेगी न आपको सङ्कोच होगा। गर्मीके दिन हैं, यहाँसे थोड़ी दूरपर पैदल घाट है, जहाँसे लोग पैदल ही पार चले जाते हैं वहाँ जल भी अधिक नहीं है कमर तक है। आप

अकेले डर रहे हों तो चलिए थोड़ी दूर तक मैं आपको थाह दिखाऊँगा। फिर मैं यदि नावपर आपको बिठा भी लूँ और मान लीजिए कि नाव गायब हो जाय, तो मैं फिर भी सन्तोष कर लूँगा; परन्तु घर जाकर स्त्रीको किस प्रकार समझाऊँगा, क्योंकि एक तो स्त्री है, दूसरे केवटकी स्त्री, तीसरे सत्सङ्गमें भी नहीं रही, भला उसको कौन समझायेगा? वह समझ भी जाय तो और सहारा भी कोई नहीं है, यह छोटे-छोटे बच्चे किस प्रकार जीवित रहेंगे? हाँ, यह अवश्य है कि आपको क्रोध आ रहा होगा। इतना ही कह सकता हूँ कि मुझे प्राणदण्ड दे दें, मैं मरनेको प्रस्तुत हूँ; क्योंकि मैं अकेले ही मरूँगा परिवार तो बच जायेगा। हे प्रभो! नावपर बिना चरण धोए नहीं चढ़ाऊँगा। इसपर जब प्रभु कुछ नहीं बोले तब फिर कहता है—विचार करिए मेरा परिवार भी बड़ा है, बच्चे भी छोटे-छोटे हैं, कोई दूसरा धन्धा भी नहीं है, कोई वेद तो पढ़ नहीं सकते हैं। मेरा समस्त परिवार इसीके आश्रित है। हे राजाजी! मैं धनहीन और दरिद्र हूँ, दूसरी नौका भी कहाँसे बनवाऊँगा? यदि गौतमकी स्त्रीके समान मेरी यह नाव भी तर गयी तो हे प्रभो! जातिका निषाद होकर मैं आपसे झगड़ा भी नहीं कर सकूँगा। इसलिए हे नाथ! हे तुलसीश राम! आपसे मैं सत्य कहता हूँ कि बिना चरण धोये आपको नावपर नहीं चढ़ाऊँगा।

पात भरी सहरी, सकल-सुत बारे, बारे
केवट की जाति, कछु बेद न पढ़ाइहौं।
सबु परिवारु मेरो याहि लागि, राजा जू,
हौं दीन बित्तहीन, कैसें दूसरी गढ़ाइहौं॥
गौतमकी घरनी ज्यौं तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषादु ह्वै के बादु न बढ़ाइहौं।
तुलसीके ईस राम, रावरे सों साँची कहौं,
बिना पग धोएँ नाथ, नाव न चढ़ाइहौं॥

केवट पुनः कहता है—हे नाथ! चरणकमल धोकर ही नावपर चढ़ाऊँगा। आपसे उतराई नहीं चाहता। हे राम! मुझे आपकी कसम है और आपके पिता श्रीदशरथजीकी शपथ है। मैं सत्य कह रहा हूँ। चाहे श्रीलक्ष्मणजी मुझे अपने बाणसे मार ही डालें; परन्तु जबतक आपके श्रीचरणोंको नहीं धो लूँगा तबतक हे तुलसीश! हे कृपालो! मैं पार नहीं उतारूँगा।

पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं॥
बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥

इस छन्दमें 'चढ़ाइ' का अर्थ मेरे श्रीमहाराजजी करते हैं। जब केवटने देखा कि अब सरकार कहने ही वाले हैं कि चरण धो ले, तब केवटका लोभ बढ़ गया, उसके मनमें आया कि इनका सर्वाङ्ग कितना मनोहर है, यदि मैं एक बार भी इनको हृदयसे लगा पाऊँ तो मेरा जन्म सफल हो जाय। तब उसने कहा—हे करुणावरुणालय! केवल चरण धुलानेमात्रसे काम नहीं चलेगा। चरण धोनेके बाद यदि आपने भूमिपर चरण रख दिया तो धूलि तो फिर लग जायेगी। सारी महत्ता तो चरण रज की है।

रावरे दोष न पायनको
पगधूरिको भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहनु काठको
कोमल है, जलु खाइ रहा है॥
पावन पाय पखारि कै नाव
चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है।

तुलसी सुनि केवटके बर बैन
हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है॥

इसलिए मैं चरण धोकर आपको अपनी गोदमें लेकर नावपर चढ़ाऊँगा। ***'पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव'*** बस इतना ही चाहता हूँ और कुछ नहीं चाहता, उतराई भी नहीं चाहता हूँ। अथवा जो कुछ लूँगा इस पार ही लूँगा, उसपार कुछ भी न लूँगा। केवटके प्रेमसे लपेटे हुये अटपटे वचनोंको सुनकर करुणाधाम श्रीरामचन्द्रजी श्रीजानकी और श्रीलक्ष्मणजीकी ओर देखकर विहँसे।

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन॥

'बिहसे करुना ऐन' यह एक अनोखी बात थी। इस प्रकारके उन्मुक्त हास्यका दर्शन इसके पहले न कभी श्रीअयोध्यामें दिखायी पड़ा और न श्रीजनकपुरमें। श्रीरामजी सबको मुक्त करते हैं; परन्तु मर्यादाके कारागारसे प्रभुकी हँसीको उन्मुक्त करनेवाला यह केवट कितना महान् है। प्रभु श्रीलक्ष्मणजीकी ओर देखकर हँसे—हे लक्ष्मण! तुमको इसपर कोप नहीं करना चाहिये। हे भैया! यह बाणका अधिकारी नहीं है। इसकी वाणीपर ध्यान मत दो अपितु इसके मनपर ध्यान दो। स्नेहीका मन देखा जाता है, उसकी वाणी और उसका व्यवहार आदि कुछ नहीं देखा जाता। हे सुमित्रानन्दन! इसके ऊपर प्रसन्न होकर इस प्रसन्नताके वातावरणका, स्नेहिल वातावरणका आनन्द लो। श्रीसीताजीसे हँसकर श्रीसीतारमण कहते हैं—हे मिथिलेशराजकिशोरी! देखो, इसकी भावना और आपकी भावना मिल गयी। यह भी अहल्याकी गतिका स्मरण करके चरणोंका प्रक्षालन नहीं करना चाहता और आपने भी अहल्याकी गतिका स्मरण करके चरण स्पर्श नहीं किया था।

गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥
(१। २६५)

कृपापाथनाथ श्रीरामजी मुस्कराकर बोले—हे भैया! तुम वही कर लो जिससे तुम्हारी नाव न जाय। इसी नावसे तो तुम्हें सब कुछ मिल रहा है, इसलिये इसकी रक्षा अवश्य करो। साधनकी रक्षा तो करनी ही चाहिये। केवटने कहा—हे कृपालो! हम पढ़े लिखे नहीं हैं, हम ***'सोइ करु'*** का अर्थ नहीं समझ पाये। हमारी तो प्रार्थना है ***'मोहि पद पदुम पखारन कहहू।'*** श्रीठाकुरजीने पुनः कहा—अच्छा भैया! पद पखार लो।

बेगि आनु जल पाय पखारू।
होत बिलंबु उतारहि पारू॥

इस प्रसङ्गमें श्रीगोस्वामीजी भावगद्गद होकर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत कर रहे हैं।

जासु नाम सुमिरत एक बारा।
उतरहिं नर भवसिन्धु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा।
जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा॥

अब तो केवटकी बन गयी। वह प्रभुकी आज्ञा पाकर कठौतेमें जल भरकर ले आया। अत्यन्त आनन्द और प्रेममें उमँगकर श्रीरामजीके श्रीचरणकमलोंका प्रक्षालन करने लगा। उस समयके आनन्दका चित्रण श्रीगोस्वामीजी एक पदमें करते हैं। प्रभुका रुख देखकर केवटने अपने बालकों और पत्नीको बुलवाया। वे सब वन्दना करके चारों ओरसे घेरकर बैठ गये। पुनः छोटेसे काठके कठौतेमें गङ्गाजीका जल लाया और चरण

धोकर उस पावन जलको बार-बार पीने लगा। उसके भाग्यकी सराहना देवतालोग करने लगे। सस्नेह पुष्पवर्षण करके जय-जयकार करने लगे। केवटके बाल बच्चोंकी अनेक प्रकारकी स्नेहमयी भोलीभाली—छलप्रपञ्चसे रहित बातोंको सुनकर प्रेमप्रिय श्रीरामजी श्रीजानकी और श्रीलक्ष्मणकी ओर देख देखकर स्नेहपूर्वक हास्यच्छटा बिखेर रहे हैं।

प्रभु रुख पाइ कै, बोलाइ बालक घरनिहि,
बंदि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि घेरि।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजूको,
धोइ पाय पीअत पुनीत बारि फेरि फेरि॥
तुलसी सराहैं ताको भागु सानुराग सुर,
बरषैं सुमनु जय जय कहैं टेरि टेरि।
बिबिध सनेहसानी बानी असयानी सुनि,
हँसैं राघौ जानकी लखन तन हेरि हेरि॥

समस्त देवतालोग केवटके इस सौभाग्यका दर्शन विमानोंपर बैठकर कर रहे हैं।

करमें सुधारे जात हिय बिच धारे जात,
हीनता बिचारे जात दीनता उचारे जात।
सिसकि सम्हारे जात तन मन हारे जात,
पानही उतारे जात जाति कुल तारे जात॥
विन्दु रज तारे जात जातके किनारे जात,
रेखाहू उभारे जात दुबकि दुलारे जात।
चूमि चुचुकारे जात निहुरि निहारे जात,
नैन नीर ढारे जात चरन पखारे जात॥

जब यह चरणप्रक्षालन करने लगा तब देवतालोग नन्दन काननके फूल बरसाने लगे और सब एक स्वरमें कहने लगे।

एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं।

इस प्रकार चरणोंका प्रक्षालन करके केवटने सपरिवार चरणामृत लिया। इस पुण्यके कारण उसने अपने पितरोंको भवसागरसे पार कर दिया। फिर मुदित होकर श्रीरामजीको गङ्गाके उस पार ले गया।

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥

निषादराज और श्रीलक्ष्मणजीके साथ श्रीसीतारामजी नावसे उतरकर श्रीगङ्गाजीकी रेतमें खड़े हो गये। तब केवटने उतरकर दण्डवत् किया। प्रभुको सङ्कोच हुआ कि मैंने इसको कुछ नहीं दिया।

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि रेता।
सीय रामु गुह लखन समेता॥

श्रीसीताजी अपने पतिके हृदयकी विशालताको जानती हैं—उनकी उदारताको जानती हैं कि यदि ये कुछ न दे पायेंगे तो स्वयंको ही समर्पित कर देंगे। एतावता उन्होंने अविलम्ब मुदित मनसे अपनी मणिजटित मुद्रिका अँगुलीसे निकाल ली। कृपालु श्रीरामचन्द्रजीने केवटसे कहा—हे भैया! नावकी उतराई ले लो। सुनकर केवट व्याकुल हो गया और प्रभुके श्रीचरणोंको पकड़ लिया।

पिय हिय की सिय जाननिहारी।
मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपालु लेहि उतराई।
केवट चरन गहे अकुलाई॥

केवटके अकुलाकर चरण पकड़नेका भाव यह है—(क) मैंने श्रीरामजी और श्रीदशरथजीकी शपथ कर ली है कि उतराई नहीं लूँगा और प्रभु मुझे उतराई दे रहे हैं। इनके वचनोंका प्रत्याख्यान कैसे करूँ? यह सोचकर व्याकुल होकर चरणोंपर गिर पड़ा। (ख) आज मेरे सामने मुझे उतराई देनेके लिये मुद्रिका उतारनेके कारण मेरी माँका

हाथ खाली हो गया। हा हन्त! मैं कितना मन्दभाग्य हूँ कि मेरे कारण मेरी माँको हाथ खाली करना पड़ा, अत:

'केवट चरन गहे अकुलाई।' केवटने व्याकुल हृदय और रुँधे हुये कण्ठसे भीगी हुयी वाणीमें कहा—

नाथ आजु मैं काह न पावा।
मिटे दोष दुख दारिद दावा॥

दाता और गृहीताका इतना सुन्दर जोड़ा दुर्लभ है। दाता कहते हैं ***'एहि नहिं कछु दीन्हा'*** और गृहीताके शब्द हैं ***'आजु मैं काह न पावा'।*** इस संसारमें लेना-देना तो होता ही रहता है। दान देकर दातृत्वका अहङ्कार वृद्धिंगत हो जाता है और लेनेवाला लेकर भी दीन बना रहता है—अतृप्त बना रहता है। दान देकर दाता सोचता है मैंने बहुत कुछ दिया और गृहीता सोचता है कि क्या दिया? हमें तो अभी और भी चाहिये। हमारी आवश्यकताकी पूर्ति तो किञ्चिन्मात्र भी नहीं हुयी।

केवटने व्याकुल हृदय और उच्छ्वसित कण्ठसे आर्द्रवाणीमें कहा—

नाथ आजु मैं काह न पावा।
मिटे दोष दुख दारिद दावा॥

हे नाथ! आज मैंने क्या नहीं पा लिया। हे पतितपावन! मैं पतितपावनी श्रीगङ्गाके तटका मल्लाह हूँ। मेरे पूर्वजोंने भी यही कार्य किया था; परन्तु मेरे पूर्वजोंका भवसागरसे पार जाना निश्चित नहीं था और न यही निश्चित था कि मैं भवसागरसे पार हो जाऊँगा। हे करुणामय रघुनन्दन! आज निश्चय हो गया है कि मेरे पूर्वज भवसागरसे पार हो गये और मैं भी भवसागरसे पार हो जाऊँगा। एतावता मेरे और मेरे पूर्वजोंके जन्म जन्मान्तरके दोष समाप्त हो गये। हे स्वामिन्! आज मैंने आपको पार उतारकर, आपकी सेवा करके समग्र सम्पत्ति प्राप्त कर ली। इन चरणोंको पाकर अर्थकी उपलब्धिमें क्या सन्देह है? अत: मेरी जन्म-जन्मान्तरकी दरिद्रता भी समाप्त हो गयी। हे रघुनन्दन! जब आप मेरे घाटपर आये थे तब मैंने आपको उदास देखा था। आपके श्यामल कपोलपर मोटे-मोटे भक्तवियोगके आँसू बहकर सूख गये थे। आपके अरुणिम नेत्र आपकी हार्दिक व्यथाकी अभिव्यक्ति कर रहे थे। हे स्वामिन्! आपकी इस स्थितिको देखकर मेरे मनमें महान् क्लेश था कि मेरे जीवनाराध्य मेरे घाटपर उदास मुखमण्डल लेकर आये हैं। मैंने अपनी हठीली बातोंसे, हँसानेवाली बातोंसे, ग्राम्य परिवेशमें लिपटी हुयी अटपटी बातोंसे आपको प्रसन्न करनेका—हँसानेका प्रयास किया। हे भक्तवाञ्छाकल्पतरो! आप मेरे मनोभावको समझकर मेरे दु:खको नष्ट करनेके लिये प्रसन्न हो गये। आपने उन्मुक्त हँसी हँसकर मेरे समस्त क्लेशोंका अपनोदन कर दिया। इस प्रकार मेरा दोष, दु:ख और दारिद्र्य आपके द्वारा समाप्त हो गया। एतावता मैंने सब कुछ प्राप्त कर लिया। अब मुझे कुछ देकर मजदूर मत बनाइये। आज मैं आपको पाकर मजदूर नहीं हूँ, शाहन्शाह हूँ।

चाह गयी चिन्ता मिटी मनवा वेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिये ते नर शाहन्शाह॥

धन्य है केवट! धन्य है केवटका सौभाग्य! केवटकी निष्काम भावनासे भावित होकर अनन्त ब्रह्माण्डाधिनायक परात्पर परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी उसके वशमें हो गये। केवट बड़ी मस्तीमें प्रभुसे कहता है—

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें।
दीनदयाल अनुग्रह तोरें॥

हाँ, अगर आपको देना ही अभीष्ट है तो अभी नहीं। जब आप लौटें तो मुझको उतराई नहीं अपना प्रसाद दे दीजियेगा।

फिरती बार मोहि जो देबा।
सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा॥

'प्रसाद' से क्या उपलब्धि होती है इसपर ध्यान दें। श्रीकाकभुशुण्डिजी बड़े अनुभवी शब्दोंमें कहते हैं—

अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥

(७। ८४। क)

उदारशिरोमणि श्रीरामजी कोई कार्य भविष्यपर नहीं छोड़ते। प्रभुने केवटको तत्काल अनुपम वरदान देकर विदा कर दिया।

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥

श्रीगङ्गाजीके उसपार पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीने स्नान करके पार्थिवार्चन किया। श्रीसीताजीने भी श्रीगङ्गाजीसे प्रार्थना की—हे गङ्गामैया! मेरा मनोरथ पूर्ण करें। वनसे अपने पति और देवरके साथ सकुशल लौटकर आपकी पूजा करूँगी।

पति देवर सँग कुसल बहोरी।
आइ करौं जेहिं पूजा तोरी॥

श्रीगङ्गाजीने आशीर्वाद दिया—आप श्रीराम लक्ष्मणके सहित सकुशल श्रीअवध लौटो, आपके समस्त मनोरथ पूर्ण हों। आप तीनोंकी कीर्ति संसारमें फैल जायेगी।

प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मनकामना सुजसु रहिहि जग छाइ॥

निषादराज गुहने श्रीरामजीके साथ रहनेकी प्रार्थना की—हे रघुनन्दन! मुझे चार दिनकी सेवाके लिए आज्ञा दें। चार दिनके बाद मैं लौट आऊँगा। सुजानशिरोमणि श्रीरामजी हृदयकी बात जानते हैं अतएव निषादराजका सहज स्नेह देखकर उनको साथमें ले लिया। जिससे गुहराज परम प्रसन्न हुए।

सहज सनेह राम लखि तासू।
संग लीन्ह गुह हृदयँ हुलासू॥

अध्यात्मरामायणमें तो श्रीगुहने कहा है कि यदि मुझे साथ चलनेकी आज्ञा नहीं मिलेगी तो मैं प्राण विसर्जन कर दूँगा।

गुहोऽपि राघवं प्राह गमिष्यामि त्वया सह।
अनुज्ञां देहि राजेन्द्र नोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम्॥

(अध्यात्मरामायण २। ६। २४)

श्रीगणेशजी और शंकरजीका स्मरण करके, श्रीगङ्गाजीको प्रणाम करके सखा, श्रीलक्ष्मण और श्रीसीताजीके साथ प्रभुने प्रस्थान किया। उस दिन रात्रिमें एक वृक्षके नीचे विश्राम किया। श्रीलक्ष्मण और निषादने वहाँ सब व्यवस्था की।

तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ॥
तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू।
लखन सखाँ सब कीन्ह सुपासू॥

श्रीरामजीने प्रातःकालीन कृत्यसे निवृत्त होकरके वहाँसे चलकर तीर्थराज प्रयागका दर्शन किया। प्रभुने तीर्थराज प्रयागका महत्व श्रीमुखसे वर्णन करके श्रीसीता, लक्ष्मण तथा निषादराजको सुनाया।

कहि सिय लखनहि सखहि सुनाई।
श्रीमुख तीरथराज बड़ाई॥

इस प्रकार वन, बागको देखते हुये श्रीरामजीने

श्रीत्रिवेणीका दर्शन किया, जिनके स्मरणमात्रसे समस्त मङ्गल सुलभ हो जाते हैं।

एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी।
सुमिरत सकल सुमंगल देनी॥

फिर आनन्दपूर्वक त्रिवेणीमें स्नान करके पार्थिवार्चन किया और विधिपूर्वक तीर्थके देवताओंका पूजन किया। प्रयागके तीर्थ देवताओंके नाम इस प्रकार हैं।

त्रिवेणीं माधवं सोमं भरद्वाजञ्च वासुकिम्।
वन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयागं तीर्थनायकम्॥

इसके पश्चात् भगवान् श्रीरामजी महर्षि भरद्वाजके पास गये और उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। मुनिने प्रभुको अपने हृदयसे लगा लिया।

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए।
करत दंडवत मुनि उर लाए॥

महर्षि भरद्वाजने प्रभुको आर्शीवाद दिया। मुनिने यह अनुभव किया कि हमारे जन्म जन्मान्तरके समस्त सुकृतोंका ब्रह्माने श्रीरामदर्शनके रूपमें फल दे दिया। यह अनुभव करके महर्षिके हृदयमें महान् आनन्द हुआ।

दीन्हि असीस मुनीस उर अति अनंदु अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल मनहुँ किए बिधि आनि॥

महर्षिने कन्दमूल फल आदिसे भगवान्का स्वागत किया और वर-याचना की।

अब करि कृपा देहु बर एहू।
निज पद सरसिज सहज सनेहू॥

'अब' का भाव कि आजतक मैंने जो कुछ शुभ कार्य किये थे उनका फल आपका दर्शन मिल गया। अब तो आप कृपा करके अपने श्रीचरणोंका सहज स्नेह दें। श्रीमहर्षिने भक्तितत्वका निरूपण करते हुए प्रभुसे कहा—हे स्वामिन्! जबतक जीव मन, वचन और कर्मसे छलका परित्याग करके आपका जन—दास नहीं हो जाता तबतक अनेकों उपाय करनेसे भी स्वप्नमें भी सुख नहीं मिलता।

करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार॥

श्रीरामजीने भरद्वाज आश्रममें रात्रि व्यतीत करके प्रातःकाल प्रयागमें स्नान करके मुनिको प्रणाम करके श्रीसीतालक्ष्मण और निषादके साथ प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान किया।

राम कीन्ह बिश्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिरु नाइ॥

प्रस्थान करते समय श्रीरामजीने श्रीभरद्वाज मुनिसे कहा—हे नाथ! आप निर्देश करें कि हम किस मार्गसे जायँ। महर्षिने हँसकर कहा—आपके लिए सभी मार्ग सुगम हैं।

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं।
नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं॥
मुनि मन बिहसि राम सन कहहीं।
सुगम सकल मग तुम्ह कहुँ अहहीं॥

महर्षिने श्रीरामजीके साथ जानेके लिये शिष्योंको बुलाया। मुनिकी आज्ञा सुनकर प्रसन्नतापूर्वक पचास शिष्य आये। मुनिने उनमेंसे चार शिष्योंको साथमें दे दिया। जिन्होंने अनेक जन्मोंमें समस्त पुण्य कर्म किए थे।

मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे।
जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे॥

चार ही शिष्य क्यों दिए? इस प्रश्नका उत्तर सन्तोंने अनेक प्रकारसे दिया है—(क) श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और निषाद चार लोग हैं अतः चार वटु दिये। (ख) अट्ठारह पुराण, अट्ठारह

उपपुराण, छः शास्त्र, चार वेद और चार उपवेद ये पचासों रूप धारण करके आए; परन्तु मुनिने चार वटु अर्थात् चारों वेदोंको साथमें दे दिया। भाव कि इन्हींके अनुसार चलें। किंवा इनकी मर्यादाका पालन और संरक्षण करें *'श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह'।* (ग) मार्गमें चार साथी होने चाहिए। '**एकस्तपो द्विरध्यायीत्रिभिर्गीतं चतुष्पथः**'। एतावता चार वटु दिये। श्रीरामजी महर्षि भरद्वाजसे आज्ञा माँगकर प्रसन्नतापूर्वक चले। जब श्रीयमुनाजीके तटपर पहुँचे तब चारों वटुओंको विनयपूर्वक विदा कर दिया। वे अपने 'कुछ देर तक श्रीरामजीके साथ रहेंगे' इस मनोरथको पूर्ण करके लौट आये। श्रीरामजीने यमुना पार होकर श्रीयमुनाजीके जलमें स्नान किया, जो जल श्रीरामजीके शरीरके समान श्याम वर्णका था।

बिदा किए बटु बिनय करि फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम॥

श्रीयमुनाजीके पार जानेके साधनका महर्षि वाल्मीकिने सुन्दर वर्णन किया है—श्रीरामजीने यमुना तटपर पहुँचकर कई प्रकारकी लकड़ियोंसे एक बेड़ाका निर्माण किया। श्रीकिशोरीजीके बैठनेके लिये उस बेड़ेमें श्रीलक्ष्मणने सुखद आसनका निर्माण किया।

ततो वैतसशाखाश्च जम्बुशाखाश्च वीर्यवान्।
चकार लक्ष्मणश्छित्वा सीतायाः सुखमासनम्॥

(श्रीवाल्मीकिरामायण २। ५५। १५)

श्रीसीताजी सकुचाती हुई बेड़ेपर बैठ गयीं। दोनों भाई पैदल ही बेड़ेको पकड़कर खेने लगे। इस प्रकार तीनोंने तरङ्गमालिनी श्रीयमुनाका सन्तरण किया। '**सन्तेरुर्यमुनां नदीम्।**'

श्रीयमुनाजीके किनारे रहनेवाले लोग प्रभुका आगमन सुनकर अपना-अपना कार्य विस्मृत करके प्रभुका दर्शन करनेके लिये दौड़ पड़े। श्रीराम-सीता-लक्ष्मणके सौन्दर्यको देखकर अपने भाग्यकी बड़ाई करते हैं।

सुनत तीरबासी नर नारी।
धाए निज निज काज बिसारी॥
लखन राम सिय सुंदरताई।
देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥
नीके कै निकाई देखि, जनम सफल लेखि,
हम-सी भूरि-भागिनि नभ न छोनी।
तुलसी-स्वामी-स्वामिनि जोहे मोही हैं भामिनि,
सोभा-सुधा पिए करि अँखिया दोनी॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। २२। २)

अर्थात् श्रीरामजीके सौन्दर्यको देखकर रास्तेमें ग्रामीण स्त्रियाँ कहती हैं—इनकी सुन्दरताको भलीभाँति निहारकर अपना जन्म सफल समझो। हमारे समान बड़भागिनी स्त्रियाँ स्वर्ग और भूतलमें कहीं भी नहीं हैं। श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—स्वामी स्वामिनीजीको देखकर ग्रामोंकी स्त्रियाँ उनकी सौन्दर्यसुधाको नेत्ररूप दोनोंसे पीकर मोहित हो रही हैं।

मनोहरता के मानो ऐन।
स्यामल-गौर-किसोर पथिक दोउ, सुमुखि! निरखु भरि नैन॥
बीच बधू बिधुबदन बिराजति, उपमा कहुँ कोऊ है न।
मानहु रति ऋतुनाथ सहित मुनिवेष बनाए है मैन॥
किधौं सिंगार-सुषमा-सुप्रेम मिलि चले जग -चित-बित लैन।
अद्‌भुत त्रयी किधौं पठई है बिधि मग-लोगन्हि सुख दैन॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। २४)

हे सखि! थोड़ा नेत्र भरके देख लो, ये दोनों श्याम-गौर किशोर पथिक तो मानों सौन्दर्यके घर ही हैं। इनके बीचमें एक विधुवदनी वधू विराज

रही है, वह उपमारहित है। ऐसा प्रतीत होता है कि रति और वसन्तके सहित कामदेव ही मुनिका वेष बनाये हुये हों। किं वा शृङ्गार, सुन्दरता और सुन्दर प्रेम ही परस्परमें मिलकर संसारका चित्तवित्त अपहरण करनेके लिये तो नहीं चले। अथवा विधाताने अद्‌भुत त्रयी—वशीकरण, आकर्षण और मोहनीको ही मार्गमें रहनेवाले लोगोंको सुख देनेके लिये भेजा है।

उनमें जो चतुर वयोवृद्ध लोग थे उन्होंने युक्तिसे श्रीरामजीको पहचान लिया। उन्होंने वनवासका प्रसङ्ग सबको सुनाया। सुन करके सब नर-नारी दुःखी हो गये। सब पछताते हैं और कहते हैं—रानी और राजाने अच्छा नहीं किया।

जे तिन्ह महुँ बयबिरिध सयाने।
तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने॥
सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई।
बनहिं चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं।
रानी रायँ कीन्ह भल नाहीं॥

जब ये नर-नारी आपसमें श्रीरामविषयक चर्चा कर रहे थे उसीसमय एक तपस्वी आया जो अमित तेजस्वी, लघुवयस्क और सुन्दर था। उसकी गति कवि नहीं जानते। किं वा वह कवि था जो अपना परिचय नहीं देना चाहता। वह वैरागी वेषमें था। मन, वचन, कर्मसे श्रीरामानुरागी था। अपने इष्टदेवको पहचानकर वह सजलनयन हो गया, उसका शरीर पुलकित हो गया, उसने श्रीरामजीको साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। श्रीरामजीने रोमाञ्चित होकर उसको हृदयसे लगा लिया। मानो कोई रङ्क मनुष्य स्पर्शमणि पा गया हो। देखनेवाले कहते हैं—ऐसा ज्ञात होता है कि मूर्त्तिमान् प्रेम और परमार्थ मिल रहे हैं। फिर उसने श्रीलक्ष्मणजीके चरणोंमें प्रणाम किया। उन्होंने स्नेहसे उमँगकर उसको उठा लिया। फिर उसने श्रीसीताजीकी चरणरजको मस्तकपर धारण किया। माता श्रीसीताने उसको शिशु जानकर आशीर्वाद दिया। निषादराजने उसको दण्डवत् किया। श्रीरामस्नेही जानकर वह निषादसे आनन्दित होकर मिला। वह तपस्वी अपने नेत्रपुटकसे श्रीरामसौन्दर्य सुधाका आस्वादन करने लगा और ऐसा प्रमुदित हुआ जैसे कोई क्षुधापीड़ित व्यक्ति सुन्दर भोजन पाकर प्रमुदित होता है।

तेहि अवसर एक तापसु आवा।
तेजपुंज लघुबयस सुहावा॥
कबि अलखित गति बेषु बिरागी।
मन क्रम बचन राम अनुरागी॥
सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि॥
राम सप्रेम पुलकि उर लावा।
परम रंक जनु पारसु पावा॥
मनहुँ प्रेम परमारथु दोऊ।
मिलत धरें तन कह सबु कोऊ॥
बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा।
लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा।
जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा॥
कीन्ह निषाद दंडवत तेही।
मिलेउ मुदित लखि राम सनेही॥
पिअत नयन पुट रूपु पियूषा।
मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥

इस तापस प्रकरणको लेकर लोगोंकी विविध शङ्कायें होती हैं। कुछ लोगोंने तो इस प्रकरणको

क्षेपक ही घोषित कर दिया है। मेरा इस प्रसङ्गमें अपना कोई स्वतन्त्र विचार नहीं है। मेरे सम्मान्य विचारकोंने, जिनमें पूज्यपाद श्रीमान राजहंस पण्डित विजयानन्दजी त्रिपाठी प्रमुख हैं, इन्होंने जो विचार अभिव्यक्त किये हैं वह मुझे मान्य हैं। मुझे उसमें सन्तोष हो गया एतावता मैंने इस प्रसङ्गपर कुछ अभिनव विचार नहीं किया। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकी जन्मभूमि किं वा कर्मभूमि राजापुर है। किसी भी प्रकार गोस्वामीजीका राजापुरसे सम्बन्ध अवश्य है। उनके जीवनका कुछ काल राजापुरमें अवश्य व्यतीत हुआ है अतः श्रीरामजी जब प्रयागसे चलकर श्रीवाल्मीकिजीके आश्रमकी ओर प्रस्थान करते हैं उस समय गोस्वामीजीके हृदयमें यह भावना जाग उठती है कि अहा! मेरे गांवके निकटसे ही श्रीरामजी निकले होंगे तथा अन्य ग्रामवासियोंकी भाँति मेरे गाँवके लोग भी गाँवसे निकलकर श्रीरामदर्शन करने आये होंगे। यदि मैं उस समय होता तो प्रभुके दर्शन करता। यह भावना आते ही उनके नेत्र बन्द हो गये अर्थात् अपनी जन्मभूमिके निकट अपने इष्टदेवका आना वर्णन करते-करते भावावेशमें कविके लिये भूत वर्तमानमें परिणत हो गया और वे अपने इष्टदेवके चरणोंमें गिर पड़े। उस समय जो घटना हुयी उनकी लेखनी उसीको लिखती चली गयी अथवा श्रीहनुमान्‌जीने उनकी दशाका चित्रण अपनी लेखनीसे कर दिया यही भाव प्रायः विद्वानोंको मान्य है।

जो लोग अग्नि, शङ्कर, हनुमान्, चित्रकूट, प्रेम और रावण वधका सङ्कल्प आदि बतलाते हैं, ठीक हैं। मैं उनकी भावनाके बारेमें कुछ नहीं कहना चाहता; परन्तु मेरी धारणा तो असन्दिग्ध है कि यह तपस्वी श्रीगोस्वामीजीके अतिरिक्त और कोई हो ही नहीं सकता।

श्रीरामजीके वनमार्गमें एक स्त्री कहती है—हे सखि! वे पिता माता कैसे हैं? जिन्होंने इतने सुन्दर सुकुमार बालकोंको वनमें भेज दिया?

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे।
जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥
राम लखन सिय रूपु निहारी।
होहिं सनेह बिकल नर नारी॥

श्रीगोस्वामीजी श्रीकवितावली रामायणमें भी अतिशय भावनापूर्ण शब्दोंमें लिखते हैं—

रानी मैं जानी अयानी महा, पबि-पाहनहू तें कठोर हियो है।
राजहुँ काजु अकाजु न जान्यो, कह्यो तियको जेहिं कान कियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ए, बिछुरें कैसे प्रीतम लोगु जियो है।
आँखिन में सखि! राखिबे जोगु, इन्हैं किमि कै बनबासु दियो है॥
साँवरे-गोरे सलोने सुभायँ, मनोहरताँ जिति मैनु लियो है।
बान-कमान, निषंग कसें, सिर सोहैं जटा, मुनिबेषु कियो है॥
संग लिएं बिधुबैनी बधू, रति को जेहि रंचक रूपु दियो है।
पायन तौ पनहीं न, पयादेहि क्यों चलिहैं, सकुचात हियो है॥

(श्रीकवितावलीरामायण २। २०, १९)

इसके बाद श्रीरामजीने सखा निषादराजको अनेक प्रकारसे शिक्षा दी। श्रीरामजीकी आज्ञाको आदरपूर्वक स्वीकार करके वे शृङ्गवेरपुर चले गये।

तब रघुबीर अनेक बिधि सखहिं सिखावनु दीन्ह।
राम रजायसु सीस धरि भवन गवनु तेइँ कीन्ह॥

अध्यात्मरामायणमें भी भगवान् श्रीरामने उनको समझाकर विदा किया है।

श्रुत्वा नैषादिवचनं श्रीरामस्तमथाब्रवीत्।
चतुर्दश समाः स्थित्वा दण्डके पुनरप्यहम्॥
आयास्याम्युदितं सत्यं नासत्यं रामभाषितम्।
इत्युक्त्वालिङ्ग्य तं भक्तं समाश्वास्य पुनः पुनः॥

निवर्तयामास गुहं सोऽपि कृच्छ्राद्ययौ गृहम्॥

(श्रीअध्यात्मरामायण २। ६। २५-२७)

निषादके वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने उनसे कहा—मैं चौदह वर्ष दण्डकारण्यमें रहकर यहाँ फिर आऊँगा। मैं जो कुछ कहता हूँ सत्य ही कहता हूँ। रामकी बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती। इस प्रकार कहकर श्रीरामजीने भक्त गुहको आश्वासन देकर उसको बार-बार गले लगाकर विदा किया। फिर भी निषादराज गुह बड़ी कठिनतासे घर लौटे।

निषादराजको लौटाकर श्रीसीताजी, श्रीराम और श्रीलक्ष्मणने हाथ जोड़कर श्रीयमुनाजीको प्रणाम किया और श्रीयमुनाजीका महत्त्व वर्णन करते हुये आगे चले।

पुनि सियँ राम लखन कर जोरी।
जमुनहिं कीन्ह प्रनामु बहोरी॥

श्रीरामजीको मार्गमें अनेक पथिक मिलते हैं। उनमें एक ज्योतिषीजी—सामुद्रिक शास्त्रके ज्ञाता मिले। उन्होंने कहा—आपके समस्त अङ्गोंमें राजचिन्ह देखकर हमारे मनमें बड़ा सोच होता है; क्योंकि लक्षणोंके अनुसार आपको भूमण्डलका सम्राट् होना चाहिये परन्तु आप वनमें पैदल चल रहे हैं, इसलिये हमारी समझमें ज्योतिष शास्त्र झूठा है।

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता।
कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता॥
राज लखन सब अंग तुम्हारे।
देखि सोचु अति हृदय हमारें॥
मारग चलहु पयादेहि पाएँ।
ज्योतिषु झूठ हमारें भाएँ॥

जहाँ-जहाँ श्रीरामजीके चरण चले जाते हैं, उसके समान इन्द्रकी पुरी अमरावती नगरी नहीं है।

जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं।
तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥
पुन्यपुंज मग निकट निवासी।
तिन्हहि सराहहिं सुरपुरबासी॥

श्रीरामजी जिस मार्गसे जाते हैं, उसके निकट रहनेवाले लोग अतिशय पुण्यात्मा हैं। स्वर्गमें रहनेवाले देवता भी उनकी श्लाघा करते हैं; क्योंकि वे नेत्र भरकर श्रीसीता-लक्ष्मणके सहित घनश्याम श्रीरामका दर्शन करते हैं।

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहि।
सीता लखन सहित घनस्यामहि॥

कविवर भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने 'घनश्याम' की व्याख्या करते हुये एक भावपूर्ण पद लिखा है—

याहीं सो घनश्याम कहावत।
द्रवत दीन दुर्दशा विलोकत करुणा रस बरषावत॥
भींगे रहत सदा हिय रस सों जन मन ताप जुड़ावत।
हरीचन्द से चातक जनके जिय की प्यास बुझावत॥

जिन तालाबों और नदियोंमें श्रीरामजी स्नान करते हैं उनकी देवसर, मानससर, नारायणसर आदि और देव नदियाँ प्रशंसा करती हैं। जिस वृक्षके नीचे प्रभु बैठते हैं, उसकी बड़ाई कल्पवृक्ष करते हैं।

जे सर सरित राम अवगाहहिं।
तिन्हहि देव सर सरित सराहहिं॥
जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई।
करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥

श्रीरामजीकी यात्रामें बादल छाया करते हैं; क्योंकि वैशाखके महीनेमें धूप कड़ी होती है। मार्गको कोमल बनानेके लिये देवतालोग पुष्पवर्षण

करते हैं। श्रीरामजी पर्वत, वन, पक्षी और मृगोंको देखते हुये मार्गमें चले जा रहे हैं।

छाँह करहिं घन बिबुधगन बरसहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहग मृग रामु चले मग जाहिं॥

वनके मार्गमें एक-से-एक उच्चकोटिके स्नेही, सेवक, भक्त मिलते हैं। सबके प्रेम अनूठे हैं। एक-एकको बुलाकर शिक्षा देते हैं—इसी समय आकरके नेत्रोंका लाभ तो ले लो। यदि ये चले जायेंगे तो जीवनभर पछताना पड़ेगा। कोई श्रीरामजीका दर्शन करके इतने अनुरागी हो गये कि प्रभुका दर्शन करते हुए साथमें चले जा रहे हैं। ये कभी दायें चलते हैं तो कभी बायें चलते हैं और कभी दर्शनके लोभसे उल्टे चले जा रहे हैं। जिस प्रकार दर्शनमें व्यवधान न पड़े उस प्रकार जा रहे हैं। कोई नेत्र मार्गसे लोकाभिराम श्रीरामकी छविको हृदयमें बसा करके शरीर, मन और श्रेष्ठ वाणीसे शिथिल हो जाते हैं। एक वटवृक्षकी घनी छाया देखकर कोमल-कोमल तृण और पत्ते बिछाकर प्रभुसे कहते हैं—आपलोग चलते-चलते थक गये होंगे। थोड़ी देर यहाँ रुक करके मार्गजन्य श्रमका अपनोदन कर लें। फिर चाहे अभी चले जाइएगा चाहे रात्रि विश्राम करके प्रातःकाल चले जाइएगा। एक कलशमें जल भरकर लाते हैं और कोमल वाणीसे कहते हैं कि हे नाथ! बहुत प्यासे हैं जल पी लीजिए।

एकन्ह एक बोलि सिख देहीं।
लोचन लाहु लेहु छन एहीं॥
रामहि देखि एक अनुरागे।
चितवत चले जाहिं सँग लागे॥
एक नयन मग छबि उर आनी।
होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥
एक देखि बट छाँह भलि डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु गवनब अबहिं कि प्रात॥
एक कलसभरि आनहिं पानी।
अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी॥

इस प्रसङ्गमें अनेक सन्तोंके अनेक भाव हैं। पूज्यचरण काशीनिवासी पं० श्रीरामकुमारजी महाराजका भाव है कि यहाँ चारों प्रकारके भक्त इन ग्रामवासियोंमें दिखाये हैं।

(१) ***'एकन्ह एक बोलि सिख देहीं'*** यह 'जिज्ञासु भक्त' हैं। इन्होंने शिक्षा दी कि परम तत्व ये ही हैं, शीघ्र दर्शन कर लो। (२) ***'रामहि देखि एक अनुरागे'*** ये 'आर्तभक्त' हैं। (३) ***'एक नयन मग छबि उर आनी'*** ये प्रभुको परमधन मानकर हृदयमें धर लेते हैं, एतावता 'अर्थार्थी भक्त' हैं। (४) ***'एक देखि बट छाँह....प्रात'*** और ***'एक कलस भरि....बानी'*** वटछाया मानो रत्नमन्दिर है, वहाँ तृण पत्ररूपी आसन बिछाया। ये ज्ञानी भक्त हैं। ज्ञानी परिकरोंमें हैं, अतः इनके प्रकरणमें आसन हुआ। इन चारों भक्तोंको गिनाकर अब पाँचवे प्रेमीभक्तके लिए कहा—जो जल भरकर लाये ये प्रेमी पञ्चम भक्त हैं। पूज्य चरण मानस राजहंस पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठीका भाव है—सरकारका आगमन सुनकर ग्रामके लोगोंका देखनेके लिए आना कहा।

सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी।
चलहिं तुरत गृहकाजु बिसारी॥

बाल-वृद्ध कहनेके बाद नर-नारी कहनेका भाव युवक-युवती हैं। इस प्रकार इस भाँति चार प्रकारके लोगोंका आना कहा। रूप देखकर सबकी क्या दशा हुई इसका वर्णन करके अब पृथक् उनकी क्रिया कहते हैं। (१) बालक तो

'चितवत चले जाहिं सँग लागे।' (२) वृद्ध—*'होहिं सिथिल तन मन बर बानी।'* (३) युवक—*'एक देखि बट छाँह.....प्रात'।* (४) युवती—*'एक कलस भरि.....मृदु बानी।'* इन भक्तोंका स्नेह देखकर करुणामयी जगज्जननी भगवती भास्वती श्रीमिथिलेशनन्दिनीका हृदय आर्द्र हो गया। उन्होंने अपनेको सरकारके सामने श्रमित होनेका अनुभव कराया। प्रभु उन्हें श्रमित जान करके घड़ी भरके लिए वटवृक्षकी सघन छायामें ठहर गये।

जानी श्रमित सीय मन माहीं।
घरिक बिलंबु कीन्ह बट छाहीं॥

समस्त भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण होगयीं। सबका श्रम सफल होगया। धन्य है! स्वामी स्वामिनीकी कृपालुताको।

ग्रामकी स्त्रियाँ श्रीसीताजीके पास जाती हैं, अतिशय प्रेम, सङ्कोच, विनम्रता, क्षमायाचनापूर्वक पूछती हैं—हे राजकुमारीजी! हमारी धृष्टताको क्षमा करिएगा। हमको गाँवकी गँवारी जानकर हमारी बातका बुरा न मानिएगा। ये दोनों राजकुमार सहज सलोने हैं, मरकतमणि—पन्ना और स्वर्णने कान्ति इन्हींसे पाई है। ये साँवले और गोरे हैं। इनकी किशोरावस्था है, ये दोनों ही अतिशय मनोहर हैं और शोभाधाम हैं। शरद-ऋतुकी पूर्णिमाके समान इनके मुख हैं और शरद्ऋतुके कमलके समान इनकी बड़ी-बड़ी तापापहारक सुस्निग्ध आँखें हैं। अनन्तकन्दर्पदर्पको दलन करनेवाले ये दोनों हे सुमुखि! तुम्हारे कौन हैं?

स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी।
बिलगु न मानब जानि गवाँरी॥
राजकुअँर दोउ सहज सलोने।
इन्ह तें लही दुति मरकत सोने॥
स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुषमा ऐन।
सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन॥

(नवाह्न पारायण चौथा विश्राम)

कोटि मनोज लजावनिहारे।
सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥

श्रीसीताजीके सामने समस्या है। श्रीलक्ष्मणजीके सामने अपने पतिका परिचय देनेमें श्रीसीताको स्वाभाविक सङ्कोच है। फिर सोचकर उन्होंने पहले श्रीलक्ष्मणका परिचय दे दिया—ये जो सहज स्वभाव, सुन्दर और गौरवर्ण हैं इनका नाम लक्ष्मण है, ये मेरे देवर हैं।

सहज सुभाय सुभग तन गोरे।
नामु लखनु लघु देवर मोरे॥

श्रीलक्ष्मणके प्रथम परिचयका आशय यह है कि छोटेका देवर सम्बन्ध जब इन्हें ज्ञात हो जाएगा तब ये स्वयं समझलेंगी कि बड़े, इनके पति हैं; तब मुझे श्रीरामजीका परिचय नहीं देना पड़ेगा। किंवा—सूचीकटाहन्यायेन पहले श्रीलक्ष्मणका परिचय दिया है। ये भावुक, स्नेही ग्रामवधूटियाँ तो सब पहलेसे ही जानती हैं। वे तो श्रीसीताजीकी वाणीका श्रवण करना चाहती हैं, एतावता उन्होंने पुनः पूछ लिया कि हे सुमुखि! गोरे तो आपके देवर हैं फिर साँवले आपके कौन हैं?

सीस जटा, उर-बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी-सी भौंहें।
तून सरासन-बान धरें तुलसी बन-मारगमें सुठि सोहैं॥
सादर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं।
पूँछति ग्रामबधू सिय सों, कहौ साँवरे-से सखि! रावरे को हैं॥

(श्रीकवितावलीरामायण २। २१)

अब तो श्रीसीताजी परिचय देनेके लिये विवश होगयीं फिर भी उन्होंने वाणीसे परिचय नहीं दिया अपितु नेत्रोंके द्वारा सङ्केतसे पूर्ण

परिचय दे दिया।

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी।
पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि।
निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि॥
भईं मुदित सब ग्रामबधूटीं।
रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं॥
सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने सयानी हैं जानकीं जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन, तिन्हैं समुझाइ कछू, मुसुकाइ चली॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचनलाहु अलीं।
अनुराग-तड़ागमें भानु उदैं बिगसी मनो मंजुल कंजकलीं॥

(श्रीकवितावलीरामायण २। २२)

इस प्रसङ्गका एक श्लोक श्रीहनुमन्नाटकमें भी है, जिसका भाव है कि ग्राम बधूटियाँ पूछती हैं—हे आर्ये! नीलकमलके समान वर्णवाले तुम्हारे कौन हैं? इस प्रकार मार्गमें पथिकोंकी स्त्रियोंसे पूछी हुई हँसनेसे प्रफुल्लगण्डस्थलवाले और लज्जासे चञ्चल नेत्रयुक्त मुखको नीचेकी ओर करती हुई श्रीजानकीजीने मानो स्पष्ट ही श्रीरामको अपना पति कह दिया। अर्थात् उनका प्रश्न सुनकर लज्जासे मुख नीचे करके जब कुछ उत्तर न दिया तो स्पष्ट हो गया कि ये इनके पति हैं।

पथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना
कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति।
स्मितविकसितगण्डं व्रीडविभ्रान्तनेत्रं
मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता॥

(श्रीहनुमन्नाटक ३। १५)

ग्रामवधूटियाँ प्रसन्न हो गयीं, कृतकृत्य हो गयीं—निहाल हो गयीं, मानो कङ्गालोंने धनकी राशि लूट ली हो। वे श्रीसीताजीके चरणोंमें प्रणाम करके आशिष देती हैं—जबतक शेषके मस्तकपर वसुन्धरा रहे तबतक तुम्हारा सौभाग्य अचल रहे।

अति सप्रेम सिय पाँय परि बहुबिधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस॥

इस प्रकार मार्गके चरित्रमें अनेक स्नेहिल प्रसङ्ग हैं। इन मार्गवासियोंका हृदय कितना भावुक है, इनके आँखोंमें बार-बार आँसू आ जाते हैं, इनके स्वर भीग जाते हैं—कण्ठ आर्द्र होजाता है, यह सोचकर कि ये कठिन मार्गमें कैसे चलेंगे? इनका अत्यन्त सुकुमार शरीर है। इसे श्रीरामजीके मनोहर सौन्दर्यका जादू कहें या इनकी भावुकता? यह एक गम्भीर प्रश्न है।

एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर॥
बनिता बनी स्यामल गौरके बीच,
बिलोकहु, री सखि! मोहि-सी ह्वै।
मगजोगु न कोमल, क्यों चलिहै,
सकुचाति मही पदपंकज छ्वै॥
तुलसी सुनि ग्रामबधू बिथकीं,
पुलकीं तन, औ चले लोचन च्वै।
सब भाँति मनोहर मोहनरूप
अनूप हैं भूपके बालक द्वै॥

(श्रीकवितावलीरामायण २। १८)

एक सखी कहती है यदि जगदीशने इनको बनवास दिया तो मार्गको पुष्पमय क्यों नहीं बना दिया? हे सखि! यदि ब्रह्मासे माँगे मिले तो इन आँखोंमें इन्हें रख लूँ; क्योंकि आँखें ही इनके लिये सर्वोत्तम स्थान हैं।

मनमें बिठा लें तो महान है चलायमान,
झूमता झूठे जगप्रेमके हिलोरों में।
मुख में सरस्वती के कारण बसेंगे नहीं,
क्योंकि उसने ही डाला वनके झकोरों में॥

विन्दु कवि एक ही है सुखद निवासगृह,
तीनों ही सुपास कर लेंगे दृग कोरों में।
पूतरीमें रामलाल सीपीमें लखनलाल,
लाड़ली जी लाल लाल डोरों के हिंडोरों में॥

श्रीरामजीके चितचोर कमनीय किशोररूपको देखकर तृप्ति नहीं होती है। एक सखी ठाकुरजीका दर्शन कर रही थी, ठाकुरजी चले गये। तब वह व्याकुल होकर दूसरी सखीसे कहने लगी।

धरि धीर कहैं, चलु देखिय जाइ,
जहाँ सजनी! रजनी रहिहैं।
कहिहै जगु पोच, न सोचु कछू,
फलु लोचन आपन तौ लहिहैं॥
सुखु पाइहैं कान सुनें बतियाँ कल,
आपुस में कछु पै कहिहैं।
तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं,
पुलकीं लखि रामु हिये महि हैं॥

(श्रीकवितावलीरामायण २। २३)

श्रीराम-सीता-लक्ष्मणके चलनेके क्रमपर ध्यान दें—आगे श्रीरामजी हैं, पीछे श्रीलक्ष्मणजी सुशोभित हैं, तापसवेषमें विराज रहे हैं। दोनोंके मध्यमें श्रीजानकीजी किस प्रकार शोभित हो रही हैं। जिस प्रकार ब्रह्म और जीवके मध्यमें माया ***'मुनि बेष किये किधौं ब्रह्म जीव माय है।'***

आगें रामु लखनु बने पाछें।
तापस बेष बिराजत काछें॥
उभय बीच सिय सोहति कैसें।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसें॥

नर नाट्यके माधुर्यकी दृष्टिसे उपमा दी गयी है, अन्यथा यह यथार्थ ही है कि श्रीरामजी ब्रह्म हैं, श्रीलक्ष्मणजी नित्य शुद्ध जीव और श्रीसीताजी ब्रह्मकी अभिन्न शक्ति चिद्रूपा एवं कृपारूपिणी हैं।

कृपारूपिणि कल्याणि राम प्रेयसि जानकि।
कारुण्यपूर्णनयने कृपादृष्ट्यावलोकय॥

(श्रीसीतोपनिषद्)

ब्रह्मके पीछे कृपाशक्ति और उसके पीछे जीव, तब उस जीवका ब्रह्मके द्वारा उद्धार करनेसे इस मायाकी शोभा है। अलौकिक शोभाके लिये अलौकिक दृष्टान्त दिया है।

अपने आराध्य स्वामीके चरणचिन्होंके बीच-बीचमें श्रीसीताजी अपना चरण रखती हैं और मार्गमें सभीत होकर चलती हैं कि मेरे पतिके चरणचिन्होंपर मेरे चरण न पड़ जायँ। श्रीसीताजी और श्रीरामजी दोनोंके चरणचिन्होंको बचाते हुये उन्हें दाहिने रखकर श्रीलक्ष्मण चलते हैं। यह उपासनाका सिद्धान्त है।

ग्रामके नर-नारी श्रीराम-लक्ष्मण और श्रीसीताजीके चलनेकी रीति देखकर और उनकी प्रीति पहचानकर, प्रेमके वशीभूत हो, स्नेहसुधामें डुबोकर अपनी-अपनी बुद्धिसे ये मनोहर और मृदुल बचन कह रहे हैं—देखो! यह बहू न जाने क्या समझकर श्यामल कुमारके चरणचिन्होंको बचाकर चरण रखती है और ये गौर कुमार मनमें अत्यन्त महिमा मानकर दोनोंहीके चरण कमलोंके चिन्होंको सँभालते हुये चलते हैं।

रीति चलिबे की चाहि, प्रीति पहिचानिकै।
आपनी आपनी कहैं, प्रेम-परबस अहैं,
मंजु मृदु बचन सनेह-सुधा सानिकै॥
साँवरे कुँवरके बराइकै चरनके चिन्ह,
बधू पग धरति कहा धौं जिय जानिकै।
जुगल कमल-पद-अंक जोगवत जात,
गोरे गात कुँवर महिमा महा मानिकै॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। ३१)

श्रीरामचन्द्रजीकी कामचित्तापहारिणी मनोहर छविका अवलोकन करके पशु-पक्षी भी प्रेमानन्दमें मगन हो जाते हैं। उनके चित्तोंको बटोही श्रीरामने चुरा लिया है।

खग मृग मगन देखि छबि होहीं।
लिए चोरि चित राम बटोहीं॥

ऐसा कहकर ग्रामकी बालायें भगवान्‌की रूपराशिमें डूब गयीं तथा उनकी बातें सुनकर नव-युवतियाँ थकीसी रह गयीं। भौंरे, मृग और पक्षिगण तो प्रभुको निहारते हुये उन्हींके सँग हो लिये। तुलसीदास कहते हैं—उनके शरीरकी दशा तथा वेदोंके लिये भी अगम्य प्रेमरसका मैं कैसे वर्णन करूँ? उनके मनरूप वस्त्र प्रभुके अतिरुचिर रूपरंगमें रँग गये।

यौं कहि भईं मगन बाल बिथकीं सुनि जुबति जाल,
चितवत चले जात संग, मधुप-मृग-बिहंग।
बरनों किमि तिनकी दसहि, निगम-अगम-प्रेम रसहि,
तुलसी मन-बसन रँगे रुचिर रूपरंग॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। १७। ३)

प्यारे पथिक श्रीसीताजीके सहित श्रीराम लक्ष्मणको जिन-जिन लोगोंने देखा, उन्होंने संसारका जन्म-मृत्युरूपी भटकनेका भयानक मार्ग बिना ही परिश्रम सानन्द तै कर लिया अर्थात् वे आवागमनके चक्रसे सहज ही छूटकर मुक्त हो गये। आज भी जिनके हृदयमें स्वप्नमें भी कभी श्रीलक्ष्मण, सीता, राम तीनों बटोही आ बसें, तो वह भी श्रीरामजीके परम धामके उस मार्गको उपलब्ध कर लेगा जिस मार्गको कभी कोई विरले ही मुनि पाते हैं।

जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ।
भव मगु अगमु अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ॥
अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ।
बसहुँ लखनु सिय रामु बटाऊ॥
राम धाम पथ पाइहि सोई।
जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई॥

करुणाधाम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने जान लिया कि परम सुकुमारी श्रीसीताजी थक गयी हैं। तब वटवृक्ष एवं शीतल जल देखकर, वहाँ कन्दमूल फल खाकर रात्रिमें निवास करके प्रातःकाल स्नान करके श्रीरघुनन्दनजीने प्रस्थान किया।

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी।
देखि निकट बटु सीतल पानी॥
तहँ बसि कन्द मूल फल खाई।
प्रात नहाइ चले रघुराई॥

श्रीसीताजी परम सुकुमारी हैं, उनका प्रभुके साथ चलना, उनकी अनूठी निष्ठा एवं उनके अनुपम प्रेमका द्योतक है। विभिन्न-विभिन्न मनीषियोंने अपनी-अपनी भावनाके अनुसार विविध ग्रन्थोंमें विविध प्रकारसे चित्रण किया है। समयाभाव है, फिर भी किञ्चिन्मात्र शब्दचित्र प्रस्तुत करनेका प्रयास कर रहा हूँ।

(१) वनमार्गमें श्रीसीताजीको पैदल चलते देखकर पथिक स्त्रियाँ रो पड़ीं। उन्होंने अश्रुपरिपूर्ण आँखोंसे श्रीकिशोरीजीका दर्शन किया और उन्हें स्नेहमयी वाणीमें शिक्षा देती हुयीं बोलीं—हे जनकाधिराजतनये! आपके मङ्गलमय सुकुमार श्रीचरणकमल नवनीतकी भाँति अत्यन्त सुकोमल हैं और यह वनप्रान्तकी भूमि कठोर है—कुश कण्टकमयी है। अपरञ्च धूप भी प्रचण्ड है। अतः आप श्रीचरणोंकी रक्षाकेलिये पदत्राण और कठोर घामसे बचनेके लिये शिरस्त्राण बनवा लें।

घुसृणमसृणपादा गम्यते भूः सदर्भा
विरचय शिवजातं मूर्ध्नि घर्मः कठोरः।
इति ह जनकपुत्री लोचनैरश्रुगर्भैः
पथि पथिकवधूर्भिर्वीक्षिता शिक्षिता च॥

(श्रीहनुमन्नाटक ३। १६)

(२) वनमें चलते समय श्रीसीताजीके सौकुमार्यका दर्शन करके श्रीरामजी भावविह्वल होकर भूदेवीसे प्रार्थना करने लगे कि हे जीवमात्रकी रक्षा करनेवाली भूदेवि! यह भूमिजा सीता लाल-लाल दलोंवाली कमलिनीके समान कोमल चरणोंवाली जानकी भूमिकी कठोरताके कारण एक-एक पदविन्यासपर ठोकरें खाती चल रही हैं। अतः आप अपनी पुत्रीके चरण रखनेके स्थानमें अपनी कठिनताका परित्याग कर दें। भाव कि हमारे चरणविन्यासस्थलमें आप जैसी हैं वैसी ही रहें परन्तु श्रीसीतापादविन्यासस्थलमें अपने सुकोमल स्वरूपको धारण कर लें।

अरुणदलनलिन्या स्निग्धपादारविन्दा
कठिनतनुधरण्यां यात्यकस्मात्स्खलन्ती।
अवनि तव सुतेयं पादविन्यासदेशे-
त्यज निजकठिनत्वं जानकी यात्यरण्यम्॥

(श्रीहनुमन्नाटक ३। १४)

(३) शिरीष पुष्पके समान कोमलांगी—सुकुमार अंगोंवाली श्रीसीताने श्रीतीर्थराजप्रयागकी आसन्नवर्ती भूमिमें शीघ्रतासे तीन चार पग चलकर ही इस प्रकार बार-बार कहकर कि हे प्राणेश्वर अब और कितना चलना है? श्रीरामचन्द्रजीकी आँखोंमें आँसुओंका प्रथम अवतार कराया अर्थात् प्रभुकी आँखोंमें यात्राके बाद आज सर्वप्रथम आँसू आये।

सद्यः पुरीपरिसरेषु शिरीषमृद्वी
गत्वा जवात्रिचतुराणि पदानि सीता।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद्ब्रुवाणा
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्॥

(श्रीहनुमन्नाटक ३। १२)

इसी प्रकारका भावपूर्ण चित्रण भक्तकवि श्रीगोस्वामीजीने भी श्रीकवितावली रामायणमें किया है। परन्तु श्रीगोस्वामीजीके चित्रणमें श्रीसीताजीके सौकुमार्यका चित्रण कुछ अधिक भावपूर्ण है।

पुर तें निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दए मगमें डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनीं जलकी, पुट सूखि गए मधुराधर वै॥
फिरि बूझति हैं, चलनों अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै?
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥

(श्रीकवितावलीरामायण २। ११)

'श्रीरामचन्द्रजीकी आँखोंसे अश्रुपात होने लगा' इसका सुन्दर साहित्यिक वर्णन सुनें।

जनकतनयाहस्तन्यस्तैर्मृदुर्नवपल्लवैः
शिशिरमसृणस्तत्कालं यः समेति समीरणः।
प्रशममनुना स्वेदोद्भूतं जगाम कपोलयोः
सलिलमनयोः शोकोद्भूतं शशाम न नेत्रयोः॥

(प्रसन्नराघवनाटक ५। ३०)

श्रीसीताजीके हाथमें रखे गये नूतन किसलयोंसे उस समय शीतल और कोमल जो वायु निकलती थी उससे श्रीराम और लक्ष्मणके कपोलोंमें स्वेदसे समुत्पन्न जल तो सूख जाता था, परन्तु उन दोनोंके नेत्रोंमें श्रीसीताजीकी दुःखद स्थितिको देखकर जो जल उत्पन्न होता था—आँसू आते थे वह जल नहीं सूखता था।

भगवान् श्रीराम श्रीसीता और लक्ष्मणके साथ सुन्दर वन, सरोवर और पर्वतोंका अवलोकन करते हुए महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें आये। वहाँपर मनुष्यकी बात कौन कहे खग और मृग भी स्वाभाविक वैर छोड़कर आनन्दसे कोलाहल

कर रहे हैं। इतना पवित्र और सुन्दर आश्रम है कि राजीवनयनके भी नयनोंको आनन्द मिला। श्रीरघुनाथजीका आगमन सुनकर मुनि उनका स्वागत करनेके लिये आगे आ गये।

खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं।
बिरहित बैर मुदित मन चरहीं॥
सुचि सुंदर आश्रमु निरखि हरषे राजिवनेन।
सुनि रघुबर आगमनु मुनि आगें आयउ लेन॥

प्रभुने मुनिको दण्डवत् किया। मुनिने आशीर्वाद दिया। महर्षि बहुत दिनोंसे श्रीरामकी प्रतीक्षा कर रहे थे अतः आज श्रीरामकी छविको देखकर उनके नेत्र शीतल हो गये। आदरपूर्वक आश्रममें लाकर प्राणप्रिय अतिथिको मधुर कन्दमूल फल दिये। प्रभुने श्रीसीता और सुमित्रानन्दनके साथ उन्हें खाया। तब मुनिने सुंदर आसन दिया। आजतक जिनका मनसे ध्यान कर रहे थे उन्हीं मङ्गलमूर्ति श्रीरामजीको नेत्रोंसे निहारकर महर्षिका मन अतिशय आनन्दसे परिपूर्ण हो गया।

बालमीकि मन आनँदु भारी।
मंगल मूरति नयन निहारी॥

श्रीराघवेन्द्र प्रभुने हाथ जोड़कर कहा—हे मुनिनाथ! आप त्रिकालदर्शी और सर्वदर्शी हैं, यह विश्व आपके हाथमें बदरीफलकी भाँति है; उसे जिधर से चाहें उधरसे अनायासेन सब कुछ देख सकते हैं। भाव कि आपसे कुछ छिपा नहीं है। श्रीकैकेयीने जिस-जिस प्रकार वनवास दिया था, प्रभुने महर्षिसे सब कथाका विस्तारसे वर्णन किया।

तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनिनाथा।
बिस्व बदर जिमि तुम्हरें हाथा॥
अस कहि प्रभु सब कथा बखानी।
जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी॥

प्रभुने कहा महर्षे! मुझे तो परम पुरुषार्थ मिल गया। मेरे परिवारमें विभाजन हुआ। उसमें विभाज्य वस्तु चारों पुरुषार्थ थे। पूज्य पिताके हिस्सेमें धर्म गया; क्योंकि उनके सत्यकी रक्षा हुई, ***'धरम न दूसर सत्य समाना।'*** मेरी माताके हिस्सेमें काम गया; क्योंकि मेरी माताकी कामना थी कि मैं जङ्गल जाऊँ, उनकी यही वर याचना थी। अर्थ राज्यके रूपमें श्रीभरतके हिस्सेमें गया, वे उसे स्वीकार करें या न करें। चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष है, वह सत्सङ्गतिमें है।

'सतसंगति संसृति कर अंता।' वह मेरे हिस्सेमें आ गया। इस दोहेमें चारों पुरुषार्थोंका निरूपण है, आप ध्यानसे श्रवण करें।

तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ।
मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु सबु मम पुन्य प्रभाउ॥

भगवान् श्रीरामने महर्षिसे कहा—हे कृपालो! अब हमको वह स्थान बतावें, जहाँ हम श्रीसीता और लक्ष्मणके सहित जाकर तृण और पत्तोंकी रुचिर कुटी बनाकर कुछ कालपर्यन्त निवास करें।

अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ।
सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला।
बासु करौं कछु काल कृपाला॥

महर्षिने कहा—हे राम! मैं तुम्हारा स्वरूप जानता हूँ।

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥
राम सरुप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥

श्रीअयोध्याकाण्डमें मात्र यही एक छन्द है जिसमें श्रीगोस्वामीजीने (तुलसी) शब्द नहीं दिया है। इस प्रकार उन्होंने स्वयंको श्रीवाल्मीकिका अवतार सिद्ध किया है। श्रीगीतावलीसे भी इस बातकी पुष्टि होती है *'जन्म जन्म जानकीनाथके गुन गन विमल तुलसिदास गाये'* जब स्वयं वाल्मीकिरूपसे कह रहे हैं तब नामकी आवश्यकता नहीं है। इसके बाद महर्षिने भगवान्‌के स्वरूपका बहुत सुन्दर वर्णन किया है। फिर श्रीराम-लक्ष्मण-सीताके रहनेके लिए चौदह स्थानोंका बहुत सुन्दर वर्णन किया है। ये चौदह स्थान चतुर्दशधा भक्ति ही है। कई प्रकारकी भक्तियोंका निरूपण श्रीरामचरितमानसमें तथा अन्यान्य ग्रन्थोंमें है। उसमें यह भी चौदह प्रकारके भक्तिका प्रसङ्ग है। इसकी व्याख्याके लिए तो स्वतन्त्र ग्रन्थकी आवश्यकता है। सम्प्रति कुछ भक्तोंका निरूपण करके मैं इस प्रसङ्गको प्रणाम करूँगा।

सुनहु राम अब कहउँ निकेता।
जहाँ बसहु सिय लखन समेता॥

पहला स्थान कथाके श्रोताओंका है। जिनके श्रवण समुद्रके समान हैं जो आपकी कथारूपी सुन्दर नदियोंसे निरन्तर भरते रहते हैं; परन्तु कभी सन्तृप्त नहीं होते हैं। उनके हृदय आपके लिए सुन्दर घर हैं।

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे।
तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरें॥

दूसरा स्थान रूपोपासकोंका है। जिन्होंने अपने नेत्रोंको चातक बना लिया है। जो आपके दर्शनरूपी मेघकी अभिलाषा करते रहते हैं। ऋद्धि, सिद्धि, सम्पत्तिरूपिणी नदियोंका निरादर करके आपके स्वरूप दर्शनरूपी बिन्दुमात्र जलसे सुखी हो जाते हैं। उनके हृदय आपके लिए सुखदायक घर हैं। हे रघुनाथजी! आप श्रीलक्ष्मण और श्रीसीतासहित उस घरमें निवास करिये।

लोचन चातक जिन्ह करि राखे।
रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी।
रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक।
बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥

तीसरा स्थान गुण सङ्कीर्तन करनेवालोंका है आपके यशरूपी निर्मल मानस सरोवरमें जिसकी जिह्वा—वाणी हंसिनीरूप होकर आपके गुणगणरूपी मोतीको चुगती है। हे राम! आप उसके हृदयमें निवास करें।

जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु॥

चौदहवाँ स्थान निष्काम प्रेमियोंका है। जिसे किसी भी परिस्थितिमें किसीसे कुछ भी न चाहिए, जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है। हे रघुनन्दन! आप उसके मनमें निरन्तर निवास करिये, वह आपका निज महल है।

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥

इस प्रकार केवल चार स्थानोंका केवल मूल पाठ करके समयाभावके कारण मैं इस अतिशय भावपूर्ण और उपयोगी प्रसङ्गको प्रणाम करके आगे चल रहा हूँ।

इसके बाद महर्षिने चित्रकूट और श्रीमन्दाकिनीके माहात्म्यका वर्णन करके श्रीरामजीको

चित्रकूटमें रहनेके लिये कहा। मुनिने यह भी कहा कि हे रघुनन्दन! श्रीअत्रि आदि मुनिपुङ्गव वहाँ निवास करते हैं, योग और जप करते हैं, तथा तपस्यासे अपने शरीरको कसते हैं। हे राम! चलिए सबके परिश्रमको सफल करिये और गिरिश्रेष्ठ श्रीचित्रकूटको भी महत्व प्रदान करिये।

अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं।
करहिं जोग जप तप तन कसहीं॥
चलहु सफल श्रम सब कर करहू।
राम देहु गौरव गिरिबरहू॥

दोनों भाइयोंने आकर श्रीमन्दाकिनीजीमें स्नान किया। देवतालोग विश्वकर्माको साथमें लेकर कोलभीलोंके वेषमें आये। उन्होंने एक छोटी और एक बड़ी दो सुन्दर पर्णशालाएं बना दीं। भगवान् श्रीराम, श्रीसीता और लक्ष्मणके साथ सुन्दर घास पत्तोंके घरमें शोभायमान हैं। मानों कामदेव मुनिका वेष धारण करके रति और वसन्त ऋतुके साथ स्वयं सुशोभित हो।

लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनि बेष जनु रति रितुराज समेत॥

इसके पश्चात् श्रीठाकुरजीका दर्शन करनेके लिये देवता, नाग, किन्नर, दिक्पाल आये। श्रीरामजीने सबको प्रणाम किया। देवताओंने पुष्पवृष्टि करके कहा—आपको प्रसन्न देखकर हम आज सनाथ हो गये। तदनन्तर प्रार्थना करके अपना दु:सह दु:ख सुनाया। प्रभुने उन्हें आश्वस्त किया, अत: वे लोग प्रसन्न होकर अपने-अपने घर चले गये।

बरषि सुमन कह देव समाजू।
नाथ सनाथ भए हम आजू॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाए।
हरषित निज निज सदन सिधाए॥

'श्रीठाकुरजी अब यहाँ रहेंगे' यह सुनकर चित्रकूटके मुनि लोग आये। प्रभुने सबको दण्डवत् किया। मुनियोंने श्रीरामजीको हृदयमें लगाकर सफलताका आशीर्वाद दिया। श्रीराम-सीता लक्ष्मणका दर्शन करके मुनियोंने अपने-अपने साधनोंको सफल माना।

सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं।
साधन सकल सफल करि लेखहिं॥

श्रीरामजीके आनेका समाचार सुन करके कोल-किरात प्रसन्न हो गये, मानों उन्हें घर बैठे नवों निधियाँ मिल गईं। वे दोनोंमें कन्द मूल फल भर-भर चले, मानों रङ्क—जन्मभरके दरिद्र सोना लूटने चले हों।

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई।
हरषे जनु नव निधि घर आई॥
कन्द मूल फल भरि भरि दोना।
चले रंक जनु लूटन सोना॥

श्रीरामजीने सबका प्रिय वचनोंसे सम्मान किया। वे हाथ जोड़कर कहते हैं—हे नाथ! आजतक हमारे मनने किसीको नाथ नहीं माना था। हम लूट खसोट करके अपना जीवन व्यतीत करते थे। आपको देख करके ही हमारी दुष्प्रवृत्तियोंका नाश हो गया। हमारे मनमें आज सर्वप्रथम सुन्दर वृत्ति जागृत हो गयी। अबतक हम अनाथ थे आपके श्रीचरणोंका दर्शन प्राप्त करके सनाथ हो गये। हे कोसलनाथ! आप कोसलदेशका राज्य छोड़कर हमें सनाथ करनेके लिये, हम अभागोंको भाग्यवान् बनानेके लिये चित्रकूट पधारे हैं।

अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय।
भाग हमारें आगमनु राउर कोसलराय॥

हे अयोध्यानाथ! हाथी, सिंह, सर्प और

व्याघ्रसे बचाकर हम आपकी सब प्रकारसे सेवा करेंगे। हे प्रभो! यहाँके बीहड़ वन, पहाड़, गुफायें और खोह सब हमारे पग-पग देखे हुये हैं। हम उन स्थानोंमें आपको शिकार खेलायेंगे और तालाब, झरने आदि भी दिखायेंगे। हम अपने परिवारके सहित आपके सेवक हैं। हे नाथ! हमें आज्ञा देनेमें आप संकोच न करियेगा।

हम सब भाँति करब सेवकाई।
करि केहरि अहि बाघ बराई॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा।
सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥
तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब।
सर निरझर जलठाउँ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता।
नाथ न सकुचब आयसु देता॥

श्रीगोस्वामीजी बड़े भावपूर्ण शब्दोंमें कहते हैं—

बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन॥

जो वेदोंके वचन और मुनियोंके मनको भी अगम हैं, वे करुणाके धाम प्रभु श्रीरामचन्द्रजी किरातोंके वचन इस तरह सुन रहे हैं, जैसे वत्सल पिता अपने बच्चोंकी भोली-भाली वाणी सुनता है।

श्रीरामचरितमानसकी अत्यन्त प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण पंक्ति, देवताओंके आनेके प्रसंगमें नहीं आयी, अभी-अभी मुनिलोग आये थे उनके प्रसङ्गमें भी नहीं आयी। सम्प्रति इन कोल किरातोंके प्रसङ्गमें आ रही है।

रामहि केवल प्रेमु पिआरा।
जानि लेउ जो जाननिहारा॥

अर्थात् श्रीरामजीको केवल प्रेम प्यारा है, केवल ज्ञान नहीं प्यारा है, केवल योग नहीं प्यारा है, केवल प्रेम प्यारा है। अथवा ज्ञान आदि अन्तरायसे रहित केवल प्रेम प्यारा है। कोल किरात तो श्रीठाकुरजीको छोड़कर घर भी नहीं जाना चाहते हैं; परन्तु श्रीरामजीने उन्हें स्नेहपूर्ण, कोमल और मधुर वचन कहकर विदा कर दिया। वे प्रणाम करके श्रीरामजीका गुण कहते-सुनते अपने घर चले गये।

बिदा किए सिर नाइ सिधाए।
प्रभु गुन कहत सुनत घर आए॥

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि सारे किरात और किरातिनियाँ साधु हो गये। श्रीरामजीके दर्शनसे उनके मनका समग्र कालुष्य समाप्त हो गया।

भये सब साधु किरात-किरातिनि,
राम-दरस मिटि गइ कलुषाई।

(श्रीगीतावलीरामायण २। ४६। ६)

जबसे श्रीराघवेन्द्र प्रभु श्रीचित्रकूटमें पधारे हैं तबसे वन मङ्गलदायक हो गया। मङ्गलमय तो पहलेसे ही था अब प्राणीमात्रके लिये मङ्गल देनेवाला हो गया।

जब तें आइ रहे रघुनायकु।
तब तें भयउ बनु मंगलदायकु॥

श्रीगोस्वामीजीने श्रीगीतावली रामायणमें चित्रकूटका बहुत सुन्दर वर्णन किया है—

आइ रहे जब तें दोउ भाई।
तबतें चित्रकूट-कानन-छबि दिन दिन अधिक अधिक अधिकाई॥
सीता-राम-लखन-पद-अंकित अवनि सोहावनि बरनि न जाई।
मन्दाकिनि मज्जत अवलोकत त्रिबिध पाप-त्रयताप नसाई॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। ४६। १, २)

श्रीगङ्गाजी, सरस्वती, यमुना, नर्मदा, गोदावरी

और सभी सरोवर, समुद्र, नदियाँ और नद श्रीमन्दाकिनीजीकी श्लाघा करते हैं।

सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या।
मेकलसुता गोदावरि धन्या॥
सब सर सिन्धु नदीं नद नाना।
मन्दाकिनि कर करहिं बखाना॥

उदयाचल, अस्ताचल, कैलाश, मन्दराचल, सुमेरुपर्वत और हिमाचल आदि पर्वत श्रीचित्रकूटकी कीर्तिका वर्णन करते हैं। विन्ध्याचल पर्वतको महान् आनन्द है; क्योंकि चित्रकूट इसीकी शाखा है, कामता इसकी कन्या हैं।

उदय अस्त गिरि अरु कैलासू।
मन्दर मेरु सकल सुरबासू॥
सैल हिमाचल आदिक जेते।
चित्रकूट जसु गावहिं तेते॥
बिंधि मुदित मन सुखु न समाई।
श्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई॥

श्रीलक्ष्मणजी मनसा, वाचा, कर्मणा श्रीरामजीकी सेवा करते हैं। अपने ऊपर श्रीसीतारामके स्नेहका अनुभव करके वे स्वप्नमें भी भाई, माता, पिता और घरका स्मरण नहीं करते हैं।

सेवहिं लखनु करम मन बानी।
जाइ न सीलु सनेहु बखानी॥
छिनु छिनु लखि सिय रामपद जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लखन चितु बन्धु मातु पितु गेहु॥

श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजीको जिस प्रकार सुख मिले श्रीरघुनाथजी वही करते और कहते हैं।

सीय लखन जेहि बिधि सुखु लहहीं।
सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥

श्रीरामजी समय-समयपर श्रीअयोध्याजीका स्मरण करके करुणार्द्र—विह्वल हो जाते हैं उनकी आँखोंमें आँसू भर आते हैं। माता-पिताका स्नेह परिजनोंका शील और भरतजीकी सेवाका स्मरण करके करुणासागर प्रभु दुखी हो जाते हैं। प्रभुकी यह स्थिति देखकर श्रीसीतालक्ष्मण और भी व्याकुल हो जाते हैं।

जब जब रामु अवध सुधि करहीं।
तब तब बारि बिलोचन भरहीं॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई।
भरत सनेहु सीलु सेवकाई॥
कृपासिन्धु प्रभु होहिं दुखारी।
धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी॥
लखि सिय लखनु बिकल होइ जाहीं।
जिमि पुरुषहिं अनुसर परिछाहीं॥

श्रीराम, सीता, लक्ष्मणजीकी कैसे रक्षा करते हैं जैसे नेत्रोंकी पलकें गोलकोंकी रक्षा करती हैं। श्रीलक्ष्मणजी श्रीसीतारामजीकी सेवा उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार अविवेकी पुरुष शरीरकी सेवा करता है।

जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसें।
पलक बिलोचन गोलक जैसें॥
सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि।
जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहिं॥

इसमें स्वामी और सेवकके पारस्परिक प्रेमका भावपूर्ण निरूपण है। श्रीलक्ष्मण और श्रीसीताजीके साथ श्रीरामजी चित्रकूटकी पर्णकुटीमें ऐसे सुशोभित हो रहे हैं जैसे जयन्त और शचीके साथ देवराज इन्द्र अमरावती नगरीमें सुशोभित रहते हैं। कुछ रसिक सन्तोंका इस प्रसङ्गमें यह भी भाव है कि गुप्तरीतिसे सखियोंके साथ लीला विहार भी जना दिया है।

एतत्ते कथितं विप्र माहात्म्यं पाप नाशनम्।
अग्रे रामरहस्यं च गोपनीयं सदा बुधैः॥

आगे फिर कहते हैं—

सिंहासने समासीनो ध्यायेन्निर्मल चेतसः।
तत्र श्रीरामचन्द्रोऽसौ सीतया सहितः सुधीः॥
विमलादि सखी युक्तो योगिनां योग सिद्धिदः॥

इत्यादि। (बृहद् रामायण चित्रकूट माहात्म्य)

नित्य विहार गुप्त है, इसीसे इन्द्रकी उपमा दी और सबके देखनेमें तो मुनिवेषसे पर्णशालामें बैठे हैं।

रामु लखन सीता सहित सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयन्त समेत॥

श्रीरामजीको चित्रकूट धाममें सुखपूर्वक निवास करने दीजिये। अब आइये हम लोग श्रीसुमन्त्रजीके साथ श्रीअयोध्याधाम चलें।

कहेउँ राम बन गवनु सुहावा।
सुनहु सुमन्त्र अवध जिमि आवा॥

श्रीनिषादराजजी चौथे दिन जब प्रभुके पाससे आये, तब उन्होंने सुमन्त्रजीको रथके साथ देखा। उनकी दशा देखकर निषादको महान् विषाद हुआ। श्रीरामजीके वियोगमें घोड़ोंकी दशाका वर्णन करते हैं—घोड़े दक्षिण दिशामें देखकर हिनहिनाते हैं—करुणक्रन्दन करते हैं कि हे यमराज मेरे प्रियतम श्रीरामका वियोग हो गया है, आप हमें दक्षिण दिशामें अपने पास क्यों नहीं बुला लेते? अथवा—दक्षिण दिशामें देखकर कहते हैं—हे प्रभो! आप हमें छोड़कर क्यों चले गये? यदि आपको जाना ही अभीष्ट था तो हमें यहाँ क्यों छोड़ गये? अथवा—दक्षिण दिशामें देखकर अपने भावकी अभिव्यक्ति करते हैं—हे प्रभो! जब आप आवेंगे तभी हमलोग श्रीअयोध्याजी जायेंगे। घोड़े ऐसे व्याकुल हैं जैसे बिना पंखके पक्षी व्याकुल हो जाते हैं। न घास चरते हैं, न पानी पीते हैं। उनके नेत्रोंसे आँसू गिरते चले जा रहे हैं। श्रीरामके घोड़ोंको देखकर सब निषाद व्याकुल हो गये।

देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं।
जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं॥
नहि तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भए निषाद सब रघुबर बाजि निहारि॥

श्रीवाल्मीकिजीने लिखा है कि सुमन्त्रने लौटकर श्रीदशरथजीसे कहा—हे नाथ! मेरी तो बात ही न पूछें, लौटते समय मेरे घोड़े भी गरम गरम आँसू बहा रहे थे। वे श्रीरामके वियोगमें व्याकुल थे।

ममत्वश्चा निवृत्तस्य न प्रावर्तन्त वर्त्मनि।
उष्णमश्रु विमुञ्चन्तो रामे सम्प्रस्थिते वनम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ५९। १)

वात्सल्यमयी माता श्रीकौसल्याने भी श्रीरामजीके घोड़ोंके वियोगका वर्णन किया है।

राघव एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहि सिधावौ॥
जे पय प्याइ, पोखि कर पंकज बार बार चुचुकारे।
क्यों जीवहिं मेरे राम लाड़िले! ते अब निपट बिसारे॥
भरत सौगुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहु कमल हिम मारे॥
सुनहु पथिक! जो राम मिलहिं बन कहियो मातु सँदेसो।
तुलसी मोहि और सबहिनतें इन्हको बड़ो अँदेसो॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। ८७)

मन्त्री सुमन्त्र और घोड़ोंकी विरही दशा देखकर निषाद विषादके वशमें हो गये। उन्होंने चार सेवकोंको साथमें देकर सुमन्त्रजीको विदा

कर दिया।

भयउ निषादु बिषादबस देखत सचिव तुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब दिए सारथी संग॥

तीन दोहोंमें—अट्ठाईस पंक्तियोंमें श्रीसुमन्त्रके 'पछितावा' का अत्यन्त भावपूर्ण एवं करुण वर्णन भक्तकविने किया है। श्रीसुमन्त्र सोचते हैं—हा हन्त! मेरे प्राणप्रियतम श्रीरामरूपी जलके बिछुड़ते ही मेरा हृदय कीचड़की भाँति फटा नहीं; अतएव मैं जानता हूँ कि विधाताने नरकका दु:ख भोगनेके लिए मुझे यह 'यातना शरीर' दिया है।

हृदय न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीरु॥

इस प्रकार पछतावा करते-करते तमसा नदीके तटपर रथ आगया। साथके निषाद लोग मन्त्रीको इस दशामें छोड़कर जाना नहीं चाहते थे; परन्तु श्रीसुमन्त्रने उनको विनती करके लौटा दिया। नगरमें प्रवेश करनेमें श्रीसुमन्त्रको सङ्कोच होरहा है, मानों गुरु, ब्राह्मण और गऊको मार डाला है। यहाँ श्रीराम गुरु, श्रीलक्ष्मणजी ब्राह्मण और श्रीसीताजी गौ स्थानापन्न हैं। नगरके बाहर वृक्षके नीचे बैठकर दिन व्यतीत करके सन्ध्याके समय अँधेरेमें श्रीअयोध्यामें प्रवेश करके, रथको दरवाजेपर रखकर महलमें प्रविष्ट हो गये।

अवध प्रबेसु कीन्ह अँधियारें।
पैठ भवन रथु राखि दुआरे॥

श्रीसुमन्त्रके आते ही सारी अयोध्या व्याकुल हो गयी। लोगोंकी आशाकलिकापर तुषारापात हो गया। मन्त्रीकी दशा अति शोचनीय थी। उन्हें कानोंसे सुनाई नहीं पड़ता, आँखोंसे दीखता नहीं है। वे बार बार जिस किसीसे पूछते हैं—मेरे महाराज कहाँ हैं? उनकी व्याकुलता देखकर दासियाँ उन्हें श्रीकौसल्याजीके महलमें ले गयीं।

सुनइ न श्रवन नयन नहिं सूझा।
कहहु कहाँ नृपु तेहि तेहि बूझा॥
दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई।
कौसल्या गृहँ गईं लवाई॥

श्रीसुमन्त्रने श्रीदशरथजीको दण्डवत् प्रणाम किया। राजाने उनको हृदयमें लगाकर पूछा—हे सखा! हे मेरे स्नेही! श्रीरामजीकी कुशल सुनाओ? श्रीराम, लक्ष्मण, सीता कहाँ हैं? उनको लौटा लाये अथवा वे वन चले गये? अपने मित्रका प्रश्न सुनकर श्रीसुमन्त्रजीकी आँखोंमें आँसू आ गये।

राम कुसल कहु सखा सनेही।
कहँ रघुनाथु लखनु बैदेही॥
आने फेरि कि बनहि सिधाए।
सुनत सचिव लोचन जल छाए॥

शोकमें व्याकुल होकर राजा बार-बार पूछते हैं—श्रीसीताराम-लक्ष्मणका सन्देश सुनाओ। श्रीरामका रूप, गुण, शील और स्वभाव स्मरण करके महाराज सोचते हैं—हा हन्त! हमने राज्य सुनाकर वनवास दे दिया। सुनकर उनके मनमें न हर्ष हुआ न विषाद। ऐसे आज्ञाकारी पुत्रके वियोग होते ही मेरे प्राण क्यों नहीं निकल गये? मेरे समान महान् पापी कौन होगा?

सोक बिकल पुनि पूँछ नरेसू।
कहु सिय राम लखन संदेसू॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ।
सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥
राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू।
सुनि मन भयउ न हरषु हराँसू॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना।

को पापी बड़ मोहि समाना॥
मुएहु न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ।
नारिबस न बिचारि कीन्हौं काज, सोचत राउ॥
तिलकको बोल्यो, दिये बन, चौगुनो चित चाउ।
हृदय दाड़िम ज्यों न बिदर्‌यो समुझि सील-सुभाउ॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। ५७। १, २)

श्रीगीतावलीके एक दूसरे पदमें भावुक महाकविने श्रीदशरथजीके करुणापूर्ण हृदयका एवं उनके पश्चात्तापका बड़ा सजीव चित्रण किया है।

करत राउ मन मों अनुमान।
सोक, बिकल, मुख बचन न आवै बिछुरे कृपानिधान॥
राज देन कहि बोलि नारि, बस मैं जो कह्यो बन जान।
आपसु सिर धरि चले हरषि हिय कानन भवन समान॥
ऐसे सुत के बिरह अवधि लौं जौ राखौं यह प्रान।
तौ मिटि जाइ प्रीतिकी परमिति, अजस सुनौं निज कान॥
राम गए अजहूँ हौं जीवत, समुझत हिय अकुलान।
तुलसिदास तनु तजि रघुपति हित कियो प्रेम परवान॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। ५९)

चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजी बार-बार मन्त्रीसे पूछते हैं—हे सुमन्त्र! मेरे अतिशयप्रिय पुत्रोंका सन्देश सुनाओ।

पुनि पुनि पूँछत मंत्रिहि राऊ।
प्रियतम सुअन सँदेस सुनाऊ॥

श्रीसुमन्त्रजीने धैर्य धारण करके कोमल वाणीसे अपने महाराज श्रीदशरथको अनेक प्रकारसे धैर्य देकर श्रीरामजीकी यात्राका समस्त वृत्तान्त सुनाया। श्रीरामजीका सन्देश सुनाते हुए कहा—हे राजेन्द्र! आपके प्राणप्रिय पुत्र श्रीरामने कहा है—हे पिता! आपकी अनुकम्पासे मैं वनमें सब प्रकारसे सुखी रहूँगा। आपकी आज्ञाका पालन करके आपके श्रीचरणोंका दर्शन करनेके लिए कुशलपूर्वक लौट आऊँगा। मेरी माताओंकी वन्दना करके कहना कि आपलोग सब प्रकारसे वही उपाय करें जिससे महाराज सुखी रहें।

तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं॥
जननीं सकल परितोषि परि परि पायँ करि बिनती घनी।
तुलसी करहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसल धनी॥

चक्रवर्त्तीजीने पूछा—मेरे लक्ष्मणने क्या कहा? श्रीसुमन्त्रजीने कहा—राजेन्द्र! श्रीलक्ष्मणने कुछ कठोर वचन कहे। हे स्वामिन्! श्रीरामजीने लक्ष्मणको बरजकर मुझसे निहोरा किया और बार-बार अपनी शपथ दिलायी कि मैं लक्ष्मणका सन्देश आपको न सुनाऊँ।

लखन कहे कछु बचन कठोरा।
बरजि राम पुनि मोहि निहोरा॥
बार बार निज सपथ देवाई।
कहबि न तात लखन लरिकाई॥

हे राजेन्द्र! मुझे प्रभुने शपथ दिलाई है; परन्तु मैं आपका सेवक हूँ, क्या मैं वह सन्देश सुनाऊँ? श्रीदशरथजीने सुमन्त्रसे कहा—मेरे सखा! श्रीरामकी शपथ कभी मत तोड़ना। लक्ष्मण मेरा ही पुत्र है,वह बड़ा विनयी है, आज्ञापालक है अत: उसने क्या कठोर वचन कहा होगा यह मैं भलीभाँति जानता हूँ। हे मित्र! मेरी मृत्यु थोड़ी आसान हो गयी। मुझे यह भरोसा हो गया कि मेरे रामके साथ एक ऐसा बलिदानी सेवक है जो श्रीरामजीके लिए अपने पिताका भी वध कर सकता है। मेरा लक्ष्मण धन्य हो गया। इसके पश्चात् श्रीसुमन्त्रने कहा—हे राजेन्द्र! इस प्रकार रघुकुलतिलक चले गए और मैं छातीपर वज्र रखकर खड़ा खड़ा उनका वनगमन देखता रहा।

रघुकुलतिलक चले एहि भाँती।
देखउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती॥

महाराज पृथ्वीपर गिर पड़े। उनके हृदयमें भयङ्कर दाह उत्पन्न हो गया।

सूत बचन सुनतहिं नरनाहू।
परेउ धरनि उर दारुन दाहू॥

श्रीकौसल्याजी राजाको म्लान देख—अत्यन्त दुःखी देखकर अपने हृदयमें जान गयीं कि अब सूर्यकुलका सूर्य अस्त हो गया।

कौसल्याँ नृपु दीख मलाना।
रबिकुल रबि अँथयउ जियँ जाना॥

श्रीरामकी माताने धैर्य धारण करके समयानुकूल वचन कहा—हे नाथ! आप अपने मनमें समझकर विचार करें। श्रीरामका वियोग अपार समुद्र है, अवध जहाज है उसपर प्रिय परिवार सब पथिक समाज चढ़े हुए हैं। उस जहाजके कर्णधार आप हैं। आप धैर्य धारण करेंगे तो सब पार हो जायेंगे अन्यथा समस्त परिवारके लोग डूब जायेंगे। हे प्रियतम! मेरी विनय सुनकर यदि आप धैर्य धारण करेंगे तो श्रीराम-लक्ष्मण और श्रीसीता पुनः मिल जायेंगे। इस कौसल्याजीके प्रबोधनमें 'साङ्गरूपक' अलङ्कार है।

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू।
राम बियोग पयोधि अपारू॥
करन-धार तुम्ह अवध जहाजू।
चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥
धीरजु धरिअ त पाइअ पारू।
नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू॥
जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी।
राम लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥

अपनी प्यारी पत्नी श्रीकौसल्याजीकी कोमल वाणी सुनकर राजाने आँखें खोलकर देखा। मानों तड़फती हुई दीन मछलीको किसीने शीतल जलसे सींच दिया हो।

प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल बारि॥

राजाको अन्धे तपस्वीकी—श्रवणकुमारके पिताके श्रापकी स्मृति आगयी, उन्होंने श्रीकौसल्याको पूरी कथा सुनायी। इस कथाका वर्णन श्रीवाल्मीकीयरामायणमें भी श्रीमहाराजने सुनाया है। हे कौसल्ये! मैं तुम्हें आज अपने दुष्कर्मकी कहानी सुना रहा हूँ। तुम्हारे विवाहके पहलेकी बात है। मेरी ख्याति थी कि मैं शब्दवेधी बाण चलाता हूँ '**कुमारः शब्दवेधीति।**'

एक दिन सरयू नदीके किनारे मुझे सहसा पानीमें घड़ा भरनेका गुड़ गुड़ शब्द सुनाई पड़ा। मैंने हाथीके जल पीनेकी आवाज समझकर शब्दवेधी बाणका प्रयोग कर दिया। बाणके लगते ही एक तपस्वी चीत्कार करके गिर पड़ा। जब मैं उसके पास पहुँचा तब उस म्रियमाण तपस्वीने कहा—हे राजन्! आपने एक ही बाणसे तीनको मार डाला। मेरा तो मर्म विदीर्ण ही कर दिया साथ ही मेरे असहाय अन्धे, वृद्ध, प्यासे माता-पिता भी प्यासे ही मर जायँगे। उन्हींके पीनेके लिये मैं जल भर रहा था।

एकेन खलु बाणेन मर्मण्यभिहते मयि॥
द्वावन्धौ निहतौ वृद्धौ माता जनयिता च मे।
तौ नूनं दुर्बलावन्धौ मत्प्रतीक्षौ पिपासितौ॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ६३। ३९)

हे कौसल्ये! उस तपस्वीकुमारने मेरी व्यथा कम कर दी; परन्तु मैं उसकी व्यथा कम नहीं कर सका। मैं व्यथित था कि मुझसे ब्रह्महत्या हो गयी; परन्तु उस मुनिकुमारने कहा—हे राजन्! मैं

ब्राह्मण नहीं हूँ, अत: आप दु:खी न हों।

ब्रह्महत्याकृतं तापं हृदयादपनीयताम्।
न द्विजातिरहं राजन् मा भूत् ते मनसो व्यथा॥

(श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण २। ६३। ५०)

हे कौसल्ये! उसके माता-पिताने मुझे शाप दिया—हे राजन्! सम्प्रति पुत्रवियोगसे जैसे हम मर रहे हैं उसी प्रकार तुम भी पुत्रशोकसे ही कालके ग्रास बनोगे।

पुत्रव्यसनजं दु:खं यदेतन्मम साम्प्रतम्।
एवं त्वं पुत्रशोकेन राजन् कालं करिष्यसि॥

(श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण २। ६४। ५४)

मुझे शाप देकर वे दोनों पुत्रवियोगमें मर गये। इस इतिहासका वर्णन करते-करते श्रीदशरथजी व्याकुल हो गये।

तापस अंध साप सुधि आई।
कौसल्यहि सब कथा सुनाई॥
भयउ बिकल बरनत इतिहासा।
राम रहित धिग जीवन आसा॥

हा रघुकुलको आनन्द देनेवाले मेरे प्राणप्यारे राम! तुम्हारे बिना जीते हुये मुझे बहुत दिन बीत गये। हा सीते! हा लक्ष्मण! हा रघुबर! हा पिताके चित्तरूपी चातकके प्रेमी मेघ!

हा रघुनन्दन प्रान पिरीते।
तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते॥
हा जानकी लखन हा रघुबर।
हा पितु हित चित चातक जलधर॥

इसके पश्चात् छ: बार 'राम' कहकर श्रीरामके वियोग-दुखमें शरीर त्यागकर श्रीदशरथजी सुरधाम चले गये।

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम॥

महर्षि श्रीवाल्मीकिने श्रीदशरथजीके प्राण त्यागके समय बड़े सुन्दर और भावपूर्ण शब्दोंका प्रयोग किया है।

गतेऽर्धरात्रे भृश दु:खपीडितस्तदा जहौ प्राणमुदारदर्शन:।

(२। ६४। १७८)

अन्तिम पंक्तिमें चक्रवर्त्ती नरेन्द्र महाराज श्रीदशरथके मित्र आदिकवि महर्षि वाल्मीकि अपनी भावाञ्जलि—शब्द पुष्पाञ्जलि समर्पण कर रहे हैं। श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं—हे मित्र! हे श्रीरामके वात्सल्यमयपित:! हे भारतीय संस्कृतिके स्तम्भ! मैं आपके चरित्रोंको छ: अक्षरोंमें गुम्फित कर रहा हूँ। '**उदार दर्शन:**' जिससे देखा जाय उसे दर्शन कहते हैं। '**दृश्यते अनेनेति दर्शनम्**'। महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं—जिस समय महाप्रेमी महाराज महाप्रयाण कर रहे थे, उस समय उनकी भावमयी आँखोंके सामने साक्षात् श्रीसीता-रामजी उदार भावसे मन्द-मन्द मुस्कराते हुये दर्शन दे रहे थे। एक साधारण भक्तकी भी कामना पूर्ण होती है। फिर श्रीदशरथ तो महाभाग्यवान् महाभागवत हैं। जिन्होंने अपनी गोदमें पूर्णब्रह्म परमात्माको नन्हेंसे शिशुके रूपमें खेलाया और खिलाया हो, उन्हें अन्तमें अपने आराध्य प्रेमास्पद श्रीरामके दर्शन नहीं हुये हों यह असम्भव है। इसलिये वे 'उदारदर्शन' हैं अर्थात् उदार आँखोंवाले हैं। किं वा उनकी आँखोंको उदारचक्रचूडामणि श्रीरामने कृतार्थ किया है। श्रीवाल्मीकि लिखते हैं—हे उदारदर्शन! हम आपको 'उदारदर्शन' कहकर अपनी शब्द कुसुमाञ्जलि समर्पण कर रहे हैं। दूसरा भाव यह है कि किसी अलभ्य वस्तुको प्राप्त करके अपनी इच्छा तो सभी पूर्ण कर लेते हैं; परन्तु जो उदारतापूर्वक दूसरोंको भी उस

पदार्थका वितरण करे वही उदार है। हे भाग्यवान् चक्रवर्ती नरेन्द्र! आपने पूर्णब्रह्मको अपने पुत्रके रूपमें पाया और उनको आपने जगन्मङ्गल करनेके लिये जंगलमें भेज दिया, अत: आप 'उदारदर्शन' हैं। तीसरा भाव यह है कि उदार कहते हैं **'उत् उर्ध्वं आ समन्तात् राति ददातीति उदार:'** जो अपनी शक्तिसे ऊपर दे, देते-देते स्वयंकी चिन्ता न करे उसे उदार कहते हैं। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—हे मेरे मित्र! हे उदारदर्शन! आपने श्रीरामका दर्शन संसारको सुलभ कर दिया। संसारका मङ्गल करनेके लिये उन्हें जङ्गलमें भेज दिया और स्वयं अपना शरीर ही समाप्त कर दिया, एतावता मैं आपका मित्र वाल्मीकि आपके श्रीचरणोंमें शब्द कुसुमाञ्जलि समर्पण कर रहा हूँ— **'तदा जहौ प्राणमुदार दर्शन:'**। किसीका जीवन तो दु:खसे परिपूर्ण होता है; परन्तु मरण सँवर जाता है और किसीका जीवन सुखी होता है तो मरण बिगड़ जाता है। श्रीचक्रवर्ती नरेन्द्र महाराज दशरथजीके जीवन मरण दोनों ही अच्छे रहे। उनका निर्मल निष्कलङ्क यश अनेक ब्रह्माण्डोंमें छा गया। उन्होंने जीते जी श्रीरामचन्द्रजीका मुखचन्द्र भर आँख देखा और रामवियोगको निमित्त बनाकर अपना मरण सँवार लिया। भाव कि संयोगी भक्तकी अपेक्षा वियोगी भक्तको प्रियतमका दर्शन अधिक होता है। अतएव जीते-मरते श्रीरामका दर्शन करके महाराज दशरथने अपने जीवन-मरण दोनों सँवार लिये।

जिअन मरन फलु दसरथ पावा।
अंड अनेक अमल जसु छावा॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा।
राम बिरह करि मरनु सँवारा॥

श्रीदोहावली रामायणमें कुछ दोहे श्रीदशरथजीके विषयमें गोस्वामीजीने लिखे हैं—

राम बिरह दसरथ मरन मुनि मन अगम सुमीचु।
तुलसी मंगल मरन तरु सुचि सनेह जल सींचु॥
जीवन मरन सुनाम जैसें दसरथ राय को।
जियत खिलाए राम राम बिरहँ तनु परिहरेउ॥

(श्रीदोहावलीजी २२०, २२१)

श्रीदशरथजीके मृत्युशोकमें रानियाँ, दास-दासियाँ सब रो रहे हैं। श्रीअयोध्याजीके प्रत्येक घरमें भी नर-नारी रो रहे हैं। अर्द्धरात्रिमें श्रीदशरथजीने देह विसर्जन किया था। प्रात:काल हो गया। अनेक ज्ञानी महामुनि आये, श्रीवसिष्ठजीने समयानुकूल इतिहास कह करके और अपने विज्ञानके प्रकाशसे सबके शोकका निवारण किया।

एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी।
आए सकल महामुनि ज्ञानी॥
तब वसिष्ठ मुनि समयसम कहि अनेक इतिहास।
सोक निवारेउ सबहि कर निज बिग्यान प्रकास॥

नावमें तेल भरकर उसमें राजाका पार्थिव शरीर रखा गया।

तेल नावँ भरि नृप तनु राखा।
दूत बोलाइ बहुरि अस भाषा॥

श्रीवसिष्ठजीने दूतोंको बुलाकर उनको आज्ञा दी—हे सिद्धार्थ! हे विजय! हे अशोक! हे नन्दन! तुम लोग केकय देश जाओ। वहाँ जाकर भरतसे कहना—आपलोग यहाँसे शीघ्र चलिये, श्रीअयोध्यामें आपसे अत्यन्त आवश्यक कार्य है। ध्यान रखना श्रीभरतजीको श्रीरामके वनवास और पिताजीकी मृत्युका समाचार नहीं बताना।

धावहु बेगि भरत पहिं जाहू।
नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू॥

एतनेइ कहेहु भरत सन जाई।
गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई॥

मुनिराजकी आज्ञा सुनकर धावन धाये—दूत दौड़े। वे अपने वेगसे उत्तम घोड़ोंको भी लज्जित करते हुये चले।

सुनि मुनि आयसु धावन धाए।
चले बेग बर बाजि लजाए॥

जबसे श्रीअयोध्यामें अनर्थ—उत्पात आरम्भ हुआ है, तबसे श्रीभरतजीको अपशकुन हो रहे हैं। उनके अशुभ अङ्ग आदि फड़कने लगे हैं। रात्रिमें भयानक स्वप्न देखते हैं। जागकरके अनेक प्रकारकी अशुभ कल्पनायें करते हैं—मैंने अतिशय भयङ्कर स्वप्न देखा है। इसका फल यह है कि मैं, श्रीराम, पिताजी तथा लक्ष्मण इनमेंसे किसी एककी मृत्यु अवश्य होगी।

एवमेतन्मयादृष्टमिमां रात्रिं भयावहाम्।
अहं रामोऽथवा राजा लक्ष्मणो वा मरिष्यति॥

(श्रीवाल्मीकीरामायण २। ६९। १७)

अनरथु अवध अरंभेउ जब तें।
कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें॥
देखहिं राति भयानक सपना।
जागि करहिं कटु कोटि कलपना॥

दु:स्वप्नकी शान्तिके लिये दिनमें ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दान देते हैं, रुद्राभिषेक करते हैं और श्रीशङ्करजीसे प्रार्थना करते हैं कि मेरी माता, पिता, परिजन और भाई कुशलसे रहें।

बिप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना।
सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना॥
मागहिं हृदयँ महेसु मनाई।
कुसल मातु पितु परिजन भाई॥

श्रीभरतजी सोच ही रहे थे कि उसी समय श्रीअयोध्याके दूत आ गये। दूतोंने गुरुदेवकी आज्ञा सुनायी। सुन करके श्रीभरतजी तत्काल श्रीगणेशजीकी वन्दना करके चल पड़े।

एहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ।
गुर अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ॥

श्रीभरतजी वायुके समान वेगवाले घोड़ोंको हाँकते हुये विकट नदी, पहाड़ तथा जङ्गलोंको पार करते हुये चले जा रहे हैं। उनके हृदयमें बड़ा सोच था, उन्हें कुछ अच्छा नहीं लगता था। मनमें सोचते हैं कि उड़कर पहुँच जाऊँ।

चले समीर बेग हय हाँके।
नाघत सरित सैल बन बाँके॥
हृदयँ सोचु बड़ कछु न सोहाई।
अस जानहिं जियँ जाउँ उड़ाई॥

श्रीभरतजी यशाशीघ्र श्रीअयोध्याजी आ गये। श्रीभरतजीको नगरमें प्रवेश करते ही अपशकुन होने लगे। कौए, गधे और सियार विपरीत बोल रहे हैं। इनके शब्दोंको सुन-सुनकर श्रीभरतके मनमें वेदना होती है।

असगुन होहिं नगर पैठारा।
रटहिं कुभाँति कुखेत करारा॥
खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला।
सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥

श्रीअयोध्याके ब्रह्मकुण्ड, सीताकुण्ड आदि सरोवर जनशून्य थे। कल-कलनिनादिनी श्रीसरयूकी धारा म्लान है उसमें कोई गति नहीं थी। नगरके उद्यानोंके वृक्षोंकी श्री नष्ट हो गयी थी। जो वृक्ष असमयमें भी फूलों और फलोंके भारसे सदा झुके रहते थे, वे आज ठूँठकी भाँति खड़े थे। उनके नीचे ढेर सारी सूखी पत्तियाँ पड़ी थीं। मानों वे वृक्ष भी श्रीरामवियोगकी कथा कह करके करुण

क्रन्दन कर रहे थे। जो श्रीअयोध्याजी नई नवेली दुल्हनकी भाँति सोलह शृङ्गारोंसे सजी रहती थीं, वह; आज भयावनी लग रही थीं।

श्रीहत सर सरिता बन बागा।
नगरु बिसेषि भयावनु लागा॥

बाजार और मार्ग देखे नहीं जाते थे। मानों नगरमें दशों दिशाओंमें दावाग्नि लगी है।

हाट बाट नहिं जाइ निहारी।
जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी॥

श्रीभरतजीके व्याकुल मनने सोचा कि निश्चित ही इस समय गम्भीर परिस्थिति है। उन्होंने शीघ्र से शीघ्र पिताजी और श्रीरामजीका दर्शन करना चाहा एतावता वे कैकेयीमहलमें प्रविष्ट हो गये। पुत्रका आगमन सुनकर कैकेयी हर्षित हो गयीं। वे आरती सजाकर दौड़ीं। दरवाजेपर ही स्वागत करके श्रीभरत-शत्रुघ्नको महलमें ले आयीं। श्रीभरतसे नैहर सम्बन्धी कुशल प्रश्न किया। श्रीभरतने अत्यन्त संक्षेपमें कुशल समाचार सुनाकर पूछा—हे माताजी! मेरे पिताजी कहाँ हैं? मैं उन्हींका दर्शन करनेके लिये यहाँ आया हूँ। श्रीभरतके कहनेका आशय यह है कि मैं केवल आपका दर्शन करने नहीं आया हूँ, न नानाजीकी भेंट सामग्री देने आया हूँ। आपके महलमें प्राय: श्रीरामजी रहते थे अत: श्रीलक्ष्मणका रहना भी निश्चित था। दोनों बच्चोंके आनेपर प्राय: माताएँ भी अपनी लाड़ली पुत्रवधुओंको लेकर यहाँ चली आती थीं। आशय यह है कि मैं आपके महलमें सबके दर्शनकी अभिलाषा लेकर आया हूँ।

सकल कुसल कहि भरत सुनाई।
पूँछी निज कुल कुसल भलाई॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता।
कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता॥

इन पंक्तियोंके प्रश्नमें ही श्रीभरतका मनोभाव व्यक्त हो रहा है और उनके कैकेयीके महलमें आनेका कारण भी स्पष्ट हो रहा है। श्रीभरतके स्नेहिल वचनोंको सुनकर नेत्रोंमें कपट जल भर श्रीभरतके कानों और मनको शूलके समान व्यथित करनेवाले वचन कैकेयी बोलीं।

सुनि सुत बचन सनेहमय कपट नीर भरि नैन।
भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली बैन॥

हे पुत्र! यहाँका वातावरण सब तुम्हारे प्रतिकूल था, सब बात बिगड़ गई थी; परन्तु मैंने बिगड़ी बातको सँवार लिया। श्रीअयोध्यामें मेरा कोई सहायक नहीं था, विचारी कुबड़ी मन्थरा ही एकमात्र सहायिका हुई।

तात बात मैं सकल सँवारी।
भै मन्थरा सहाय बिचारी॥

परन्तु विधाताने कुछ कार्य बीचमें ही बिगाड़ दिया; राजाका स्वर्गवास हो गया।

कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ।
भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ॥

यह सुनते ही श्रीभरत अत्यन्त व्याकुल होकर 'तात! तात! हा तात!' पुकारते हुए भूमिपर गिर पड़े। श्रीभरतके मनमें दो दु:ख विशेष हैं। एक दु:ख तो यह है कि मैं पिताका अन्तिम दर्शन न कर सका और दूसरा दु:ख है कि पिताने अपने हाथोंसे मुझे रामको सौंपा नहीं। अध्यात्म-रामायणमें भी इसी प्रकार लिखा है कि श्रीभरतने कहा—हा तात! मुझे दु:ख समुद्रमें छोड़कर आप कहाँ चले गये? हे महाराज! रामको मुझे सौंपे बिना ही आप कहाँ चले गये?

हा तात क्व गतोऽसि त्वं त्यक्त्वा मां वृजिनार्णवे॥
असमर्प्यैव रामाय राज्ञे मां क्व गतोऽसि भोः।

(अध्यात्मरामायण २। ७। ६६, ६७)

तात तात हा तात पुकारी।
परे भूमितल ब्याकुल भारी॥
चलत न देखन पायउँ तोही।
तात न रामहि सौंपेहु मोही॥

इसके पश्चात् श्रीभरतने अपनेको सँभालकर पिताकी मृत्युका कारण पूछा। कैकेयीने अपनी सब करनी आरम्भसे अन्ततक मुदित मनसे सुना दी।

आदिहु तें सब आपनि करनी।
कुटिल कठोर मुदित मन बरनी॥

श्रीरामजीके वनगमनका दुःखद समाचार सुनते ही श्रीभरतको पिताका मरण भूल गया। वे कुछ बोल नहीं सके, स्तम्भित रह गये।

भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु॥

दुःख दो तरहके होते हैं। बड़ा मनोवैज्ञानिक निरूपण है। एक दुःखमें रोना आता है और दूसरे दुःखमें व्यक्ति रोना भी भूल जाता है। दूसरा दुःख अधिक भयङ्कर है। कुशल वैद्य उसे रुलाना चाहता है। आज श्रीभरतके मनमें महान् वेदना है। कुछ देर बाद धैर्य धारण करके श्रीभरतने कहा—अरी पापिनि! तूने सब प्रकारसे कुलका नाश कर दिया।

धीरज धरि भरि लेहिं उसासा।
पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा॥

श्रीभरतजीने बहुत कुछ कहा है; परन्तु अन्तमें कहते हैं—मैं तुझे कुछ भी व्यर्थ ही कह रहा हूँ। मेरे समान कोई पापी हो सकता है?

मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि।

इस प्रसङ्गमें श्रीगोस्वामीजीका एक पद मनन करने योग्य है—अरी! तूने 'राम तुम वनको जावे।' ऐसे कठोर वचन कैसे कहे?' उस समय तेरा हृदय इस प्रकार कठोर कैसे हो गया? सूर्यकुल जैसा वंश, दशरथजीकी तरह पिता और राम-लक्ष्मण जैसे भाई मिले और माता! तू माता हुई। इसमें मैं क्या कहूँ, विधाता किसको दोष नहीं लगाता? मैं राजमाता होकर सुख भोगूगीं और मेरा पुत्र अपने सिरपर छत्र धारण करेगा—ऐसा कुल कलङ्क, पापमय मनोरथ तुम्हारे अतिरिक्त कौन कर सकता है? श्रीराम पुनः लौटेंगे और सब लोग सुखी भी हो जायेंगे। ईश्वर मेरा अपयश भी दूर कर देंगे; परन्तु मुझे चिन्ता यह है कि तू अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत करेगी?

ऐसे तैं क्यों कटु बचन कह्यो री?
'राम जाहु कानन', कठोर तेरो कैसे धौं हृदय रह्यो री॥
दिनकर, बंस, पिता दसरथते राम, लखन से भाई।
जननी; तू जननी? तौ कहा कहौं, बिधि केहि खोरि न लाई॥
हौं लहिहौं सुख राजमातु ह्वै, सुत सिर छत्र धरैगो।
कुल-कलंक मल-मूल मनोरथ तौ बिनु कौन करेगो?॥
अइहैं राम सुखी सब ह्वै हैं ईस अजस मेरो हरिहैं।
तुलसिदास मोको बड़ो सोच है, तू जनम कौन बिधि भरिहै॥

(श्रीगीतावली रामायण २। ६०)

माताकी कुटिलता सुनकर शत्रुघ्नजीका समस्त अङ्ग क्रोधसे जलने लगा। उसी समय वस्त्र और गहनोंसे सजी हुई वानरीकी तरह पुरस्कार लेनेके लिए मन्थरा आयी। उसको देखकर दुःखी और क्रुद्ध शत्रुघ्नका क्रोध अत्यन्त विवर्धमान हो गया।

लखि रिस भरेउ लखनु लघु भाई।
बरत अनल घृत आहुति पाई॥

इस प्रसङ्गमें श्रीशत्रुघ्नको *'लखनु लघु भाई'* कहना साभिप्राय है। इसी भाँति इस प्रसङ्गमें महर्षि वाल्मीकिने भी तीन बार, लक्ष्मणानुज नाम अभिहित किया है।

भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नो लक्ष्मणानुजः।

शत्रुघ्नजीने उसको हुमककर एक लात मारी। उससे उसका कूबर टूट गया, खोपड़ी फूट गई, दाँत टूट गया और मुखसे रुधिर बहने लगा। उसने कहा—हाय दैव! मैंने क्या बिगाड़ा था जो भला करते बुरा फल पाया। उसकी यह बात सुनकर और उसको नख शिख दुष्ट जानकर शत्रुघ्नने झोंटा पकड़कर घसीटना आरम्भ किया।

हुमगि लात तकि कूबर मारा।
परि मुह भर महि करत पुकारा॥
कूबर टूटेउ फूट कपारू।
दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू॥
आह दइअ मैं काह नसावा।
करत नीक फलु अनइस पावा॥
सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी।
लगे घसीटन धरि धरि झोंटी॥

जिस समय श्रीशत्रुघ्न उसे घसीट रहे थे उसी समय श्रीभरतने कहा—हे सुमित्राकुमार! नारी सब प्राणियोंके लिये अवध्य होती है; एतावता इसे क्षमा कर दो। हे शत्रुघ्न! इस दासीको, टुकड़खोरको मारनेसे क्या लाभ है? मेरा मन तो यह था कि मैं इसकी स्वामिनी राजरानी कैकेयीको मार डालूँ परन्तु हे लक्ष्मणानुज! धर्मात्मा रघुनन्दन मुझे मातृहत्यारा समझकर घृणा करने लगेंगे, इस भयके कारण मैं उसे नहीं मार सका। हे भ्रातः! यदि श्रीरामजी इस कुबरीके मारनेके समाचारसे अवगत हो जायँ तो यह निश्चित है कि प्रभु तुमसे और मुझसे बात करना त्याग देंगे।

तं प्रेक्ष्य भरतः क्रुद्धं शत्रुघ्नमिदमब्रवीत्।
अवध्या सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति॥
हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम्॥
इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः।
त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ७८। २१-२२)

श्रीभरतके वचन सुनकर श्रीशत्रुघ्नने मन्थराके वधका विचार त्याग दिया।

भरत दयानिधि दीन्हि छड़ाई।
कौसल्या पहिं गे दोउ भाई॥

सम्प्रति श्रीभरतजी अतिशय चिन्तित हैं। उनके मनमें अभिलाषा हुयी कि इस समय मुझे स्नेहपूर्ण आश्रय चाहिये। कोई प्यारभरी गोद मिल जाय, जिस गोदमें सिर रखकर आँसू बहाकर मैं अपने मनकी व्यथा कह सकूँ। परन्तु हा हन्त! अब मुझे वह गोद कहाँ मिलेगी? यह मेरी जननी तो डायन है। इस डायन जननीकी गोद अब आश्रय लेने योग्य नहीं रही। मेरे पिताजी जो अपनी गोदमें बिठाकर मेरा शिर सूँघा करते थे, मेरे शरीरमें धूल लगी होती तो अपने स्नेहपूर्ण हाथोंसे साफ करते थे। मेरा मुखड़ा झुकाकर अपने सामने लाकर मुझे प्यार करते थे। हा हन्त! वह पिताजीकी गोद अब केवल स्मरण करनेके लिये ही रह गयी है। एक गोद और है जो सबसे अधिक वात्सल्यपूर्ण है; परन्तु हा हन्त! वह मेरे आराध्य परम प्रियतम श्रीरामचन्द्रजी इस समय वनमें हैं। अब तो बस एक ही गोदका सहारा है,

यह सोचकर श्रीभरत वात्सल्यमयी ममतामयी माता श्रीकौसल्याके दर्शन करनेके लिये चल पड़े। दोनों भाई श्रीकौसल्या मैयाके पास गये। माता मलीन वस्त्र पहने हुये हैं, उनके चेहरेका रंग बदल गया है, व्याकुल हो रही हैं, दु:खके भारसे मुख सूख गया है। मानों सोनेकी सुन्दर कल्पलताको वनमें पाला मार गया हो।

मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीर दुख भार।
कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हुनी तुहार॥

श्रीभरतको देखकर माता उठकर दौड़ीं; परन्तु चक्कर खाकर बीचमें ही भूमिपर गिर पड़ीं।

भरतहि देखि मातु उठि धाई।
मुरुछित अवनि परी झइँ आई॥

श्रीगोस्वामीजीके अनोखे चित्रणपर ध्यान दें। कैकेयी और कौसल्या दोनों ही श्रीभरतको देखकर उठकर दौड़ीं हैं; परन्तु दोनोंकी भावनामें कितना अन्तर है।

देखकर श्रीभरत व्याकुल होकर माताके चरणोंपर गिर पड़े।

देखत भरतु बिकल भए भारी।
परे चरन तन दसा बिसारी॥

श्रीभरतने कहा—माँ! पूज्य पिताजी कहाँ हैं? उनका दर्शन करा दें। श्रीसीताजी, श्रीरामजी, लक्ष्मणजी दोनों भाई कहाँ हैं?

मातु तात कहँ देहि देखाई।
कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई॥

हे माँ! त्रैलोक्यमें मेरी तरह अभागा कौन है? जिसके कारण आपकी यह दुर्दशा हुयी है। पिताजी स्वर्ग चले गये और श्रीरामजी वनमें चले गये। इन अनर्थोंका कारण मात्र मैं ही हूँ।

को तिभुवन मोहि सरिस अभागी।
गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥
पितु सुरपुर बन रघुबर केतू।
मैं केवल सब अनरथ हेतू॥

हे मात:! मेरे अभाग्यकी कोई सीमा नहीं है। मैं बहुत बड़ा अभागा हूँ। इससे बढ़कर मेरा अभाग्य क्या होगा कि मैं अपने परम प्रियतमसे, अपने आराध्यसे, अपने सेव्य श्रीरामजीसे बारह वर्षके लिये अलग कर दिया गया। मैं उधर तड़फता रहा मेरे स्वामी इधर मुझे स्मरण करते रहे।

रामहि बंधु सोच दिन राती।
अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती॥

(२। ७)

हे माँ! इससे बढ़कर मेरा और अभाग्य क्या होगा कि मैं उस क्रूरहृदया कैकेयीका पुत्र हूँ, जिसने श्रीराम सीता लक्ष्मणको वनवास दे दिया। इससे बढ़कर मेरा अभाग्य क्या होगा कि मेरे राज्यतिलकके लिये रघुकुलतिलक श्रीरामजीको वन जाना पड़ा। इससे बढ़कर मेरा अभाग्य क्या होगा कि मेरे लिये इतने दिनोंतक मेरे पिताको मुखाग्नि नहीं मिल पायी, उनका अन्तिम संस्कार नहीं हो पाया। हे राम जननि! इससे बड़ा मेरा अभाग्य क्या होगा कि मेरे लिये मेरे पिताको श्रीरामचन्द्रकी तरह ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ पुत्रके द्वारा अन्तिम संस्कारसे वञ्चित होना पड़ा तथा ज्येष्ठ पुत्रके रहते मध्यमपुत्रसे मुखाग्नि लेनी पड़ेगी। इतना कहते कहते श्रीभरत मैया कौसल्याजीके श्रीचरणोंमें गिर पड़े और फफक-फफककर रोने लगे। सारा वातावरण शोकसे परिपूर्ण हो गया।

माताने श्रीभरतको हृदयसे लगा लिया। मानों

श्रीरामजी वनसे लौट आये हों।

सरल सुभाय मायँ हियँ लाए।
अति हित मनहुँ राम फिरि आए॥

वात्सल्यमयी माता श्रीकौसल्याने श्रीभरतको गोदमें बैठा लिया और आँसू पोंछकर कोमल वचन बोलीं—हे वत्स! धैर्य धारण करो, कुसमय समझकर शोकका परित्याग कर दो।

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू।
कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥

हे पुत्र! पिताकी आज्ञासे श्रीरामने भूषण, वस्त्र त्यागकर बल्कल वस्त्र पहन लिये। उनके मनमें न हर्ष था न विषाद।

पितु आयस भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर॥

श्रीसीता और लक्ष्मण भी उनके साथमें चल दिये। यह सब मेरी आँखोंके सामने हो गया। फिर भी मैं जीवित हूँ। अपने स्नेहकी ओर देखकर मुझे लज्जा भी नहीं आती; रामकी तरह पुत्रकी मैं माता हूँ, जीना मरना तो तुम्हारे पिताने ही भलीभाँति जाना। मेरा हृदय तो सैकड़ों वज्रकी भाँति है।

जिऐ मरै भल भूपति जाना।
मोर हृदय सत कुलिस समाना॥
कौसल्याके बिरह-बचन सुनि रोइ उठीं सब रानी।
तुलसिदास रघुबीर-बिरहकी पीर न जाति बखानी॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। ५३। ४)

इसके पश्चात् श्रीभरतने चौदह पङ्क्तियोंमें चार बार शपथ ली है। उसमें तीन बार शपथ ली कि हे माता! श्रीराम वनगमनमें मेरी सम्मति—राय नहीं थी।

ते पातक मोहि होहुँ बिधाता।
जौं यहु होइ मोर मत माता॥

दूसरी शपथ इस प्रकार ली—

जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर॥

तीसरी शपथ—

पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा।
जौं जननी यहु सम्मत मोरा॥

और चौथी बार यह शपथ ली कि माता! मैं इस भेदको नहीं जानता हूँ।

तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ।
जननी जौं यह जानौं भेऊ॥

श्रीभरतजी श्रीगीतावली रामायणमें कहते हैं—हे मातः! यदि मैं अपनी माता कैकेयीके मतसे सहमत होऊँ तो अब संसारमें अपने मुखकी कालिमा कहाँ धो सकूँगा। आज शपथ लेनेसे भी मैं कैसे दोषरहित हो सकता हूँ? मेरी बातको सत्य भी कौन मानेगा? भला, किस सुकृतीकी महिमारूपी मृगी दुष्टोंके वाग्बाणोंसे विद्ध हुये बिना बची है? किसीकी जिह्वा पकड़ी नहीं जा सकती इसलिये जिसको जो सूझे वह कहे। मेरे हृदयकी बात तो करुणासिन्धु दीनबन्धु श्रीरामके विना कोई न समझ सकेगा? श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—श्रीरामके वियोगरूप विषसे सब नरनारी व्याकुल हो रहे थे उस समय श्रीभरतके स्नेहरूप अमृतसे सिञ्चित होकर वे सब सुखी हो गये।

जौ पै हौं मातु मते महँ ह्वैहौं।
तौ जननी, जगमें या मुखकी कहाँ कालिमा ध्वैहौं॥
क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि? कौन मानि है साँची।
महिमा, मृगी कौन सुकृतीकी खल बचन बिसिषन बाँची॥
गहि न जाति रसना काहू की, कहौ जाहि जोइ सूझै।
दीनबन्धु कारुण्य सिन्धु बिनु कौन हियेकी बूझै॥

तुलसी राम बियोग बिषम बिष बिकल नारि नर भारी।
भरत-सनेह-सुधा सींचे सब भए तेहि समय सुखारी॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। ६२)

श्रीभरतजीके स्नेह परिपूर्ण छलरहित सरल वचनोंको सुनकर माताने कहा—हे पुत्र! मैं जानती हूँ कि तुम मन, वचन और शरीरसे श्रीरामको प्रिय हो, श्रीराम तुम्हारे प्राणोंके भी प्राण हैं, तुम भी श्रीरामको प्राणोंसे अधिक प्रिय हो।

मातु भरतके बचन सुनि साँचे सरल सुभायँ।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायँ॥

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे।
तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥

हे पुत्र! 'श्रीरामके वनगमनमें तुम्हारी सम्मति है' इस प्रकार जो कहते हैं, उनको स्वप्नमें भी सुख और सुन्दर गति नहीं मिलेगी।

मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं।
ते सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥

इस प्रकार कहकर माताने श्रीभरतको अपने हृदयसे लगा लिया। उस समय वात्सल्यमयी जननीके स्तनोंसे वात्सल्यरस दूधके रूपमें और नेत्रोंसे करुणरस आँसूके रूपमें बहने लगा।

अस कहि मातु भरत हियँ लाए।
थन पय स्रवहिं नयन जल छाए॥

इस प्रकार अनेक प्रकारसे विलाप करते हुये रात्रि व्यतीत होगयी।

प्रातःकाल सूर्यकुलके परम हितैषी श्रीवसिष्ठजी और वामदेवजी आये। उन्होंने अनेक प्रकारसे श्रीभरतको समझाया और कहा—हे तात! धैर्य धारण करके सम्प्रति जो-जो करना चाहिये वह करो। यह वचन सुनकर श्रीभरतने उठकर समग्र सामग्री प्रस्तुत करनेके लिये कहा।

तात हृदयँ धीरजु धरहु करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुर बचन सुनि करन कहेउ सबु साजु॥

वैदिक पद्धतिसे श्रीदशरथजीके पाञ्चभौतिक शरीरको स्नान कराया गया। परम विचित्र विमान बनाया गया।

नृप-तनु बेद बिदित अन्हवावा।
परम बिचित्र बिमानु बनावा॥

श्रीदशरथजीको विमानपर विराजमान करके जब श्रीसरयूजीके तटपर आये तब एक अत्यन्त कारुणिक दृश्य उपस्थित हो गया। जिसे देखकर सब नर-नारी आश्चर्यचकित हो गये। सबकी आँखोंसे झर झर आँसू झरने लगे। श्रीभरत तो आश्चर्य-विस्फारित नेत्र होकर स्तब्ध हो गये। श्रीअयोध्याकी सभी महारानियाँ पतिके शवके साथ लिपटकर सती होनेके लिये—चितामें जलजानेके लिये श्रीसरयू तटपर आ गयीं। यह देखकर चारों ओर हाहाकार मच गया; परन्तु किसीको कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ। श्रीभरत रुदन करने लगे। उन्होंने कहा—माँ! मैं माताओंको सती नहीं होने दूँगा। हे माँ! मेरे पिताजी स्वर्ग सिधार गये, मेरे भाई श्रीराम वनमें हैं, अब हम किसकी गोदका आश्रय लेंगे? हमारी रक्षा कौन करेगा? माँ! अपने इस अभागे पुत्रको और भाग्यहीन मत बनाओ। हे माँ! आपकी कृपाके सहारे मैं इस विपत्तिके महान् समुद्रको पार कर जाऊँगा, अन्यथा निश्चय ही डूब जाऊँगा। हे माँ! जब श्रीरामजी आपकी यह गति सुनेंगे तब उनको कितना क्लेश होगा? क्या इसकी आपने कल्पना की है? 'श्रीरामजीको वनमें क्लेश न हो, तुम्हें वही करना है' यह उपदेश करना कितना सरल है; परन्तु उसका पालन अति कठिन है। हे

माँ! आज आप स्वयं श्रीरामको क्लेश देनेके लिये समुद्यत हैं। हे माँ! श्रीरामको क्लेश मत दो। स्वयंको आगमें मत जलाओ। हे माँ! श्रीरामकी प्राप्तिके लिये समस्त कर्मों, धर्मोंका त्याग तो किया जा सकता है; परन्तु सामान्य धर्मके लिये श्रीरामका त्याग करना कहाँतक उचित है? अन्तमें श्रीभरतने कहा—हे माताओं! जबतक अपने आराध्य श्रीरामको, आपके लाड़ले पुत्र श्रीरामको वनसे लौटाकर आपकी गोदमें न बिठा दूँगा, पूज्य पिताजीकी अभिलाषाको न पूर्ण कर लूँगा अर्थात् जबतक श्रीरामचन्द्रजीको अयोध्याके राज्यसिंहासनपर न बिठा दूँगा—उन्हें भारतवर्षका सम्राट् न बना दूँगा। तबतक मैं सुखसे नहीं बैठूँगा। हे माँ! आपके चरणोंकी शपथ करता हूँ कि श्रीअयोध्यामें राजा श्रीराम थे, श्रीराम हैं और श्रीराम ही रहेंगे। माताओंको श्रीरामदर्शनकी आशा हो गयी और उन्होंने सती होनेका विचार त्याग दिया।

गहि पद भरत मातु सब राखी।
रहीं रानि दरसन अभिलाषी॥

श्रीभरतजीने अपने पिता श्रीदशरथजीकी अन्त्येष्टि क्रिया विधिवत् सम्पन्न की।

सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम।
दिए भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम॥
पितु हित भरत कीन्ह जसि करनी।
सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी॥

एक दिन शुभ दिन विचारकर मुनिश्रेष्ठ श्रीवसिष्ठजी आए। उन्होंने मन्त्रियों और महामन्त्रीको बुलाया। जब राज्यसभामें सब लोग बैठ गये तब गुरुदेवने श्रीभरत-शत्रुघ्नको बुलाया। श्रीवसिष्ठने श्रीभरतको अपने पास बिठा लिया। और नीति तथा धर्मसे परिपूर्ण वचन कहे—

भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे।
नीति धरममय बचन उचारे॥

सर्वप्रथम कैकेयीकी कुटिल करनीका वर्णन किया। फिर राजाके सत्य धर्मव्रतकी श्लाघा की। इसके पश्चात् श्रीरामजीके गुण, शील और स्वभावका वर्णन करते हुए मुनि पुलकित हो गये, उनकी आँखोंमें प्रेमाश्रु छलक आये। फिर श्रीलक्ष्मण और श्रीसीताजीकी प्रीतिका वर्णन करते-करते ज्ञानी मुनि शोक और स्नेहमें डूब गये।

कहत राम गुन सील सुभाऊ।
सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी।
सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी॥

श्रीवसिष्ठजीने विह्वल होकर कहा—हे भरत! सुनो, भावी बड़ी बलवती है। हानि और लाभ, जीवन और मरण, यश और अपयश सब विधाताके हाथ हैं।

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥

इसमें हानि अवधवासियोंकी हुई। लाभ देवता और वनवासियोंको मिला। जीवन सुग्रीव, विभीषण आदिको मिला। मरन रावणादिका हुआ। यश श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण और श्रीहनुमान आदि वानरोंका हुआ। अपयश कैकेयी और मन्थराको मिला। अथवा श्रीरामवनगमनरूपी हानि, श्रीदशरथजीका मरण और कैकेयीको अपयश ये तीन मुख्य हैं।

श्रीवसिष्ठने कहा—हे भरत! श्रीदशरथजीका शोक नहीं करना चाहिये। श्रीदशरथजी सोच करने योग्य नहीं हैं। जिनके श्रीराम, भरत,

लक्ष्मण और शत्रुघ्नकी भाँति पवित्र पुत्र हों, उनके सोच करनेका प्रश्न ही नहीं है। हे भरत! उन्होंने तुमको राजपद दिया है अतः पिताका वचन तुम्हें सत्य करना चाहिये।

रायँ राजपदु तुम्ह कहुँ दीन्हा।
पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा॥

श्रीपरशुरामजीने पिताकी आज्ञासे माताका वध कर दिया। राजा ययातिके पुत्र राजकुमार पुरुने पिताको उनकी आज्ञासे अपनी युवावस्था दे दी। पिताकी आज्ञा पालन करनेसे उन्हें पापका अपयश नहीं हुआ। हे भरत! अनुचित और उचितका विचार त्याग करके जो पिताके वचनोंका पालन करते हैं वे संसारमें सुख एवं सुयशके पात्र हो करके अन्तमें स्वर्गमें निवास करते हैं।

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजसु के बसहिं अमरपति ऐन॥

इसलिए हे भरत! तुम पिताकी आज्ञा मानकर राज्य करो। श्रीरामचन्द्रजीके आनेपर राज्य उन्हें समर्पित कर देना और प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करना।

सौंपेहु राजु राम के आएँ।
सेवा करेहु सनेह सुहाएँ॥

मन्त्रियोंने हाथ जोड़कर कहा—हे भरतजी! गुरुदेवकी आज्ञाका पालन अवश्य करना चाहिए। श्रीरामजीके वनसे लौटनेपर जैसा उचित हो,तब वैसा ही कीजिएगा।

कीजिअ गुर आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि॥

श्रीकौसल्या माताने धैर्य धारण करके कहा—हे पुत्र! गुरुदेवकी आज्ञा पथ्य है एतावता उसका आदर हित मानकर करना चाहिये और कालकी गतिको समझकर विषादका परित्याग करना चाहिये।

कौसल्या धरि धीरजु कहई।
पूत पथ्य गुर आयसु अहई॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी।
तजिअ बिषादु काल गति जानी॥

अर्थात् तुम रोगी हो, गुरुदेव कुशल वैद्य हैं, उनकी औषधिसे—हितोपदेशसे सूर्यकुलका आजतक कल्याण हुआ है। तुम्हारा भी कल्याण होगा। हे पुत्र! पथ्य रोगीकी रुचिके अनुकूल नहीं होता है। अतः यदि तुम्हारी रुचिके अनुकूल न हो तो भी इस आज्ञारूपी पथ्यको स्वीकार कर लो।

श्रीभरतजीने गुरुके वचन और सचिवोंका अभिनन्दन सुना; परन्तु व्याकुल नहीं हुए। लेकिन माताकी स्नेह सानी वाणी सुनकर व्याकुल हो गये।

सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरतु ब्याकुल भए।

व्याकुल होनेका भाव कि मेरी माँ भी मुझे श्रीरामसे विमुख करना चाहती है। अथवा रोग कुछ और है और पथ्य कुछ और ही दिया जा रहा है। मेरी सरल हृदया माँ समझ नहीं पा रही है अतः व्याकुल हो गये। अथवा माताकी आज्ञामें अगाध वात्सल्यभरा हुआ है इसका कैसे पालन करूँ? पालन करना सम्भव नहीं है अतः व्याकुल हो गये। बड़ोंके प्रतिकूल वचनोंका समुचित उत्तर देना कठिन कार्य है। एतावता धीर धुरन्धर श्रीभरत धैर्य धारण करके करकमलोंको जोड़ करके अपनी वाणीको अमृतमें डुबोकर सबको उचित उत्तर देने लगे।

भरतु कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि।

बचन अमिय जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि॥

श्रीभरतने कहा—मुझे मेरे गुरुदेवने सुन्दर आदेश दिया है। उसमें प्रजा, मन्त्री आदि सबका सम्मत है। माताजीने भी उचित समझकर आज्ञा दी है और मैं भी उसका आदर व पालन करना चाहता हूँ।

मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका।
प्रजा सचिव संमत सब ही का॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा।
अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा॥

आपलोग सब मेरे हितैषी हैं; परन्तु आप सब लोगोंने मेरे हितके पहचाननेमें भूल की है। अन्यथा आप लोग श्रीसीतारामजीके सेवकको राज्य करनेके लिये नहीं कहते।

पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु॥
हित हमार सियपति सेवकाई।
सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं।
आन उपायँ मोर हित नाहीं॥

जिस प्रकार बिना वस्त्रके ढेर सारे आभूषण व्यर्थ है। बिना बैराग्यके कोरा ब्रह्म विचार व्यर्थ है, रोगी शरीर वालेके लिए विषयभोग व्यर्थ है, बिना हरि भक्तिके जप, यज्ञ व्यर्थ है और बिना जीवके सुन्दर शरीर व्यर्थ है, उसी प्रकार मेरे लिये बिना श्रीरामचन्द्रके राज्य आदि सब व्यर्थ हैं। मेरा हित तो एकमात्र श्रीरामकी सेवामें ही है। अतः आपलोगोंसे प्रार्थना है कि मुझे अपने आराध्य, अपने जीवनसारसर्वस्व, अपने प्रभु प्रियतम भगवान् श्रीरामचन्द्रके श्रीचरणोंमें जानेकी आज्ञा प्रदान करें।

जाउँ राम पहिं आयसु देहू।
एकहिं आँक मोर हित एहू॥

श्रीभरतजी सबको सम्बोधन करते हुए कहते हैं—मेरा हित राज्य करनेमें है ही नहीं यह निश्चित है। यदि आपलोग मुझे राजा बनाकर अपना भला चाहते हैं—अपना हित चाहते हैं तो यह भी आपलोगोंका स्नेहजाड्य ही कहा जायेगा अर्थात् स्नेहजन्य जड़तावश ऐसा कह रहे हैं। सबने रामविमुख करानेवाला वचन कहा है अतः सबके लिए कठोर वचनका प्रयोग हो गया।

मोहि नृप करि भल आपन चहहू।
सोउ सनेह जड़ता बस कहहू॥

श्रीभरतजी कहते हैं आपलोग मुझे हठ करके ज्यों ही राज्य देंगे त्यों ही रसाका रस समाप्त हो जायेगा, यह रसातलमें चली जायेगी।

मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं।
रसा रसातल जाइहि तबहीं॥

यह चौपाई अत्यन्त भावपूर्ण है, इसकी व्याख्यामें तो एक ग्रन्थ लिखा जा सकता है। श्रीभरत कहते हैं। मेरे राजा बननेसे सबसे बड़ा, अनर्थ यह होगा कि इस रसापर—भूमिपर पुनः रामराज्य नहीं होगा। श्रीवाल्मीकीयरामायणमें माता कौसल्याने श्रीदशरथसे कहा है—हे राजन्! अब मैं अपने कमलनयन श्रीराममचन्द्रके मुखचन्द्रका दर्शन कब करूँगी? चौदह वर्षकी अवधि पूर्ण करके भी यदि मेरा राम आयेगा तब भी क्या राज्य लेगा? हे महाराज! एक ब्रह्मभोजमें पहली पंक्तिमें ब्राह्मण भोजन करके उठ गए। यद्यपि वे सब ब्राह्मण ही थे तथापि जो उत्तम और ज्ञानी ब्राह्मण हैं; क्या भुक्त शेष अन्नको दूसरी पंक्तिमें बैठकर भोजन करेंगे? कभी नहीं करेंगे। वे उसे

अपना अपमान मानेंगे। जैसे अच्छी जातिके बैल अपनी सींग कटानेको प्रस्तुत नहीं होते हैं।

ब्राह्मणेष्वपि वृत्तेषु भुक्तशेषं द्विजोत्तमाः।
नाभ्युपेतुमलं प्राज्ञाः शृङ्गच्छेदमिवर्षभाः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ६१। १४)

हे नरेन्द्र! इसी प्रकार ज्येष्ठ और वरिष्ठ भाई राम अपने छोटे भाई भरतके द्वारा उपभुक्त राज्यको किस प्रकार स्वीकार करेंगे? क्या वे उस राज्यका त्याग नहीं करेंगे?

एवं कनीयसा भ्रात्रा भुक्तं राज्यं विशाम्पते।
भ्राता ज्येष्ठो वरिष्ठश्च किमर्थं नावमन्यते॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ६१। १५)

हे नरेन्द्र! जिस प्रकार वनराज सिंह गीदड़ आदिके लाये हुये शिकारको नहीं खाना चाहता है, वह तो स्वयं शिकार करके खानेमें प्रसन्न रहता है। हे प्राणेश्वर! आपका पुत्र पुरुष शार्दूल राम दूसरोंके द्वारा उपभुक्त राज्यको क्या स्वीकार करेंगे?

न परेणाहृतं भक्ष्यं व्याघ्रः खादितुमिच्छति
एवमेव नरव्याघ्रः परलीढं न मंस्यते।

(श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण ३। ६१। १६)

श्रीरामजी मेरे राज्याभिषेकके लिये ही तो वन गये हैं। उन्होंने कहा भी तो है—

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू।
बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसेउ काजा।
प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा॥

वे जब सुनेंगे कि मैं श्रीअयोध्याके राज्यपर बैठकर राज्य कर रहा हूँ तो मेरे राज्यमें विघ्न देनेके लिये, कण्टक बननेके लिये वे कभी न आवेंगे। अतः इस भूतलपर रामराज्य कभी न होगा। अतः ***'रसा रसातल जाइहि तबहीं'***। (३) ***'चाहिय धरम सील नरनाहू'*** का भाव यह है कि यदि मैं राज्यपर बैठ गया तो पृथ्वीसे सारे धर्म उठ जायेंगे; क्योंकि मेरे राज्यपर बैठते ही लोग कहेंगे—पिता मरता है तो मरने दो, मातायें विधवा होती हैं तो होने दो, भाई जंगलमें रहते हैं तो रहने दो, देवीके समान सुकुमारी राजदुलारी भाभी वनमें ठोकरें खा रही हैं तो खाने दो। पुत्रके समान अनुज वनवासी हो गया तो होने दो, प्रजा शोक सन्तापसे सन्तप्त हो रही है तो सन्तप्त होने दो तुम तो आरामका जीवन, भोगका जीवन व्यतीत करो। इस प्रकार कहनेवालों या करनेवालोंसे कोई पूछेगा तो लोग यही उत्तर देंगे कि राजा भरतने भी तो ऐसा ही किया। भरतके पिता मर गये, मातायें विधवा हो गयीं, श्रीराम, लक्ष्मण, सीता वनवासी हो गये, श्रीअयोध्याकी प्रजा शोक सन्तप्त हो गयी फिर भी भरतने राज्यपर बैठकर राज्य किया। यदि मैं राज्य करूँगा तो यह अनादर्श स्थापित हो जायगा। इसका परिणाम यह होगा कि रसा रसातलमें चली जायगी।

श्रीभरतके इस वचनका महत्त्व किं बहुना उनके त्यागका महत्त्व मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामने समझा तभी तो वे चित्रकूट प्रसङ्गमें कहते हैं—मैं एक सत्यका उद्घोष करने जा रहा हूँ; सम्भव है कि मेरे इस सत्यके उद्घोषको कोई मेरा पक्षपात समझ ले अतः अपने वचनकी सत्यता प्रमाणित करनेके लिए मैं शपथपूर्वक कह रहा हूँ कि हे भरत! अगर तुम्हारा त्याग न होता, तुम्हारा बलिदान न होता तो आज पृथ्वीसे भ्रातृत्व समाप्त हो जाता, सहृदयता और सदाशयता समाप्त

हो जाती, मानवता समाप्त हो जाती।

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी।
भरत भूमि रह राउरि राखी॥

(२। २६४)

श्रीभरतजी माता कौसल्याके स्नेहिल वचनोंका उत्तर देते हैं—माताने कहा—

'पूत पथ्य गुरु आयसु अहई'। श्रीभरतजी कहते हैं—हे माँ! पथ्यके पूर्व रोगका निदान होना चाहिये। बिना निदानके औषधि एवं पथ्यका क्या महत्त्व है। मन्थराका कुचक्र ही ग्रह है। मन्थराको 'साड़े साती शनि' कहा गया है।

सजि प्रतीति बहुबिधि गढ़ि छोली।
अवध साढ़ साती तब बोली॥

(२। १७)

पूज्य पिताजीका मरण ही वातरोग—सन्निपातका रोग है, श्रीरामजीका वनगमन बिच्छूका डंक मारना है।

नगर व्यापि गइ बात सुतीछी।
छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी॥

(२। २१२)

राज्यतिलक ही वारुणी—मदिरा है।

केहि न राज मद दीन्ह कलंकू।

श्रीभरत कहते हैं—जो क्रूर ग्रहोंसे ग्रस्त हो, फिर वात रोगके वशमें हो, उसे बिच्छूने भी डंक मारा हो, ऐसे अभागे रोगीको यदि मदिरा पिलायी जाय तो क्या रोगीका सच्चा उपचार कहा जायगा?

ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार॥

श्रीभरतजीका भाव यह है कि मेरा उपचार अथवा पथ्य राज्य नहीं है। सत्य तो यह है—

एहि कुरोग कर औषधु नाहीं।
सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं॥

(२। २१२)

इस कुरोगकी एकमात्र औषधि 'श्रीरामजी पुनः अयोध्याजीमें आ जायँ' है।

मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ।
बसइ अवध नहिं आन उपाएँ॥

(२। २१२)

आप सब लोग संशय, शील और प्रेमके वशमें हैं, एतावता आप सब जो कहें उचित ही है। श्रीरामजीकी जननी अत्यन्त सरलचित्त हैं, मेरे प्रति उनका लड़कपनसे ही विशेष प्रेम है, मैं उनकी गोदमें पला हुआ हूँ, वे मेरी दीनता देखकर सहज स्नेहवश हो राज्यको पथ्यके रूपमें स्वीकार करनेके लिये कहती हैं।

संसय सील प्रेम बस अहहू।
सबुइ उचित सब जो कछु कहहू॥
राम मातु सुठि सरल चित मो पर प्रेमु बिसेषि।
कहइ सुभाय सनेह बस मोरि दीनता देखि॥

आप लोगोंके कहनेका मुझे क्लेश नहीं है; दुःख तो यह है कि मेरे गुरुदेव जो कि विवेकके अगाध समुद्र हैं, यह सम्पूर्ण संसार जानता है। जिनके लिये विश्व करतलस्थित बदरी फलकी भाँति है, परन्तु आज वे भी मेरे लिये तिलकका साज सज रहे हैं—राज्य करनेकी आज्ञा दे रहे हैं। ठीक ही है, विधाताके प्रतिकूल होनेसे सभी लोग विपरीत हो जाते हैं। अन्यथा मैं गुरुदेवका प्रिय शिष्य हूँ। मेरे प्रति उनका सहज वात्सल्य स्नेह है। वे सबके असन्दिग्ध हितैषी हैं; परन्तु आज वे भी मेरे प्रतिकूल हो गये हैं। अयोध्याके लोगोंकी भावना तो मेरे अनुकूल है ही नहीं

अन्यथा वे मेरे राज्यतिलकका समर्थन नहीं करते। वे लोग सोचते हैं कि श्रीरामवनगमनमें मेरी सम्मति है *'एक भरत कर संमत कहहीं'* 'श्रीरामवनगमनमें मेरी सम्मति नहीं थी' इस बातको श्रीसीतारामचन्द्रजीके अतिरिक्त कोई कहनेवाला नहीं है।

परिहरि रामु सीय जग माहीं।
कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं॥
दीनबन्धु कारुण्य सिन्धु बिनु कौन हियेकी बूझै।

(श्रीगीतावलीरामायण २। ६२)

मैं जानता हूँ कि मेरी बात सुनकर लोग मुझे अच्छा नहीं कहेंगे। पिताजीकी आज्ञा, माताजीकी आज्ञा और गुरुकी आज्ञा न माननेसे परलोक भी नष्ट हो जायेंगे। इस प्रकार मेरे लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जायेंगे; परन्तु मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। मुझे तो एकमात्र चिन्ता यह है—मेरे हृदयमें अत्यन्त प्रचण्ड दावाग्नि दहक रही है कि मेरे लिये मेरे परमाराध्य प्रियतम श्रीसीतारामजी दु:खी हो रहे हैं। यह मेरी जलन कैसे मिटेगी?

एकइ उर बस दुसह दवारी।
मोहि लगि भे सिय रामु दुखारी॥

मेरा यह दाहक रोग राज्य करनेसे नहीं नष्ट होगा। इस रोगकी तो एकमात्र औषधि है श्रीसीता रामजीके श्रीचरणोंका दर्शन।

आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।
देखे बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ॥

श्रीभरतजीके चरित्रसे यह उपदेश है—जहाँ लौकिक पारलौकिक धर्म भगवद् भागवद् धर्मके प्रतिकूल पड़ते हों, वहाँ भगवद्धर्मपर आरूढ मनुष्यको लोक परलोक दोनोंका त्याग कर्त्तव्य है।

लौकिका वैदिका धर्मा उक्ता ये गृहवासिनाम्।
त्यागस्तेषां तु पातित्यं सिद्धौ कामविरोधिता॥

(शिवसंहिता)

श्रीभरतजी कहते हैं—उपाय तो शास्त्रोंमें और भी बहुत होंगे परन्तु मुझे कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। श्रीरामजीके बिना मेरे हृदयका दर्द कोई नहीं समझ सकता। भक्तोंके हृदयका दर्द, प्रेमियोंके हृदयका दर्द कोई विद्वान् किंवा सांसारिक नहीं समझ सकता है। मीरा भी यही कहती हैं—

ए री मैं तो प्रेम दिवानी मेरो दर्द न जाने कोय।

अब तो मेरे मनमें एकमात्र निश्चय यही है कि प्रात:काल प्रभुके पास चलूँगा।

आन उपाउ मोहि नहिं सूझा।
को जिय कै रघुबर बिनु बूझा॥
एकहिं आँक इहइ मन माहीं।
प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं॥

श्रीअध्यात्मरामायणमें भी इसी प्रकार कहा है। श्रीभरतजी कहते हैं—कल प्रात:काल होते ही आपलोग चलें या न चलें मैं तो शत्रुघ्नके सहित पैदल ही दण्डकारण्य जाऊँगा। हे मुने! जिस प्रकार मेरे आराध्य श्रीरामजी गये हैं उसी प्रकार बल्कल धारण करके जाऊँगा।

तच्छ्वोभूते गमिष्यामि पादचारेण दण्डकान्।
शत्रुघ्नसहितस्तूर्णं यूयमायात वा न वा।
रामो यथा वने यातस्तथाहं वल्कलाम्बर:॥

(अध्यात्मरामायण २। ८। ८-९)

यद्यपि मैं बुरा हूँ और अपराधी हूँ और अयोध्यामें हुए समस्त उत्पातोंका कारण भी हूँ फिर भी मेरा विश्वास है कि श्रीरामजी मुझे शरणमें सम्मुख आया हुआ देखकर मेरे समस्त

अपराधोंको क्षमा करके मुझपर विशेष कृपा करेंगे।

जद्यपि मैं अनभल अपराधी।
भै मोहि कारन सकल उपाधी॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी।
छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी॥

मेरे श्रीरामजी परम शीलवान्, परम सङ्कोची और अत्यन्त सरल स्वभावके हैं। कृपा और स्नेहके तो घर ही हैं। जगन्मङ्गल करनेवाले श्रीरामचन्द्रने कभी बैरीका भी अनिष्ट नहीं किया। मैं यद्यपि टेढ़ा हूँ परन्तु हूँ तो उनका शिशु और सेवक ही।

सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ।
कृपा सनेह सदन रघुराऊ॥
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा।
मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा॥

श्रीभरतजी परम विश्वासपूर्वक कहते हैं—यद्यपि मेरा जन्म श्रीरामको वन देनेवाली कुमातासे हुआ है और मैं दुष्ट तथा सदोष भी हूँ, फिर भी मुझे अपने भक्तवत्सल श्रीरामजी पर भरोसा है कि वे मुझे अपना भक्त जानकर कभी मेरा परित्याग नहीं करेंगे।

जद्यपि जनमु कुमातु तें मैं सठु सदा सदोष।
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस॥
राम-सपथ, कोउ कछू कहै जनि, मैं दुख दुसह सहा है।
चित्रकूट चलिए सब मिलि, बलि, छमिए मोहि हहा है॥
यों कहि भोर भरत गिरिवरको मारग बूझि गहा है।
सकल सराहत, एक भरत जग जनमि सुलाहु लहा है॥
जानहिं सिय-रघुनाथ भरतको सील सनेह महा है।
कै तुलसी जाको रामनाम सों प्रेमनेम निबहा है॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। ६४)

भाई! हौं अवध कहा रहि लैहौं।
राम-लखन-सिय चरन बिलोकन काल्हि काननहि जैहौं॥
जद्यपि मोतें, कै कुमात तें ह्वै आई अति पोची।
सनमुख गए सरन राखहिंगे रघुपति परम सँकोची॥
तुलसी यों कहि चले भोरही, लोग बिकल सँग लागे।
जनु बन जरत देखि दारुन दव निकसि बिहँग मृग भागे॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। ६५)

यद्यपि श्रीभरतजीके वचनमें कठोरता थी। गुरुदेव, मन्त्रियों और माता कौसल्या सबका यथोचित शालीनतापूर्ण उत्तर था; परन्तु एक-एक शब्दोंमें श्रीराम प्रेम और त्यागकी भावना छलकती थी अत: सबको अच्छा लगा। इन वचनोंसे श्रीरामदर्शन करनेका अवसर मिलेगा, अत: सबको अच्छा लगा। अमृत सभीको प्रिय लगता है उस अमृतमें यदि रामप्रेम मिला हो तो उसकी महत्ता बढ़ जाती है। श्रीभरतजीके वचनोंके आदि अन्त दोनोंमें अमृत शब्द दिया है *'वचन अमिय जनु बोरि'* आरम्भमें और *'राम सनेह सुधा जनु पागे'* अन्तमें। इस प्रकार श्रीभरतका वचन अमृतसे सम्पुटित था।

मातु सचिव गुर पुर नर नारी।
सकल सनेहँ बिकल भए भारी॥
भरतहि कहहिं सराहि सराही।
राम प्रेम मूरति तनु आही॥

आज श्रीभरतजीके रामप्रेमकी बहुत बड़ी विजय हुई है। जो लोग परिस्थितिवश किं वा अतिशय रामस्नेहके कारण श्रीभरतके आलोचक बन गये थे वे आज प्रशंसक बन गये। श्रीभरतजीको श्रीरामप्रेमकी साक्षात्मूर्ति मानने लगे *'रामप्रेम मूरति तनु आही'* कहने लगे। अपनी पूर्वकी भावनाओंपर प्रायश्चित्त करते हुए कहते हैं—हे

भैया भरत! हम लोगोंने सोचा था—भरत कैकेयीके पुत्र हैं, अतः माताकी वरयाचनामें उनकी सम्मति होगी; परन्तु हम यह नहीं सोच पाये कि सर्पसे समुत्पन्न मणि सर्पके पाप, विष और अवगुणोंको नहीं ग्रहण करती अपितु वह सर्पदंशजन्य विषका अपहरण कर लेती है और श्रीरामके वियोगजन्य दुःख और दारिद्र्यका भी अपनोदन कर देती है।

जो पावँरु अपनी जड़ताईं।
तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाईं॥
सो सठु कोटिक पुरुष समेता।
बसिहि कलप सत नरक निकेता॥
अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई।
हरइ गरल दुख दारिद दहई॥

इस सभामें जितने लोग आये थे, वे सब श्रीवसिष्ठजीके बुलानेसे आये थे और उनके मतका समर्थन करने आये थे; परन्तु जब श्रीभरतने कहा—मैं राज्य नहीं लूँगा। मैं श्रीरामजीका दर्शन करनेके लिये जङ्गल जाऊँगा तो सभी सभासदोंकी आँखोंमें प्रसन्नताके आँसू छलक आये। सब अयोध्यावासी श्रीरामविरहके शोक-समुद्रमें डूब रहे थे, श्रीभरतने उन डूबते हुए लोगोंके आगे नाव लाकर खड़ी कर दी और वे उस अवलम्बसे डूबनेसे बच गये। वे एक स्वरसे कहने लगे।

अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह।
सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम्ह अवलंबनु दीन्ह॥

आज श्रीअयोध्याके आबालवृद्धनरनारी सबके मनमें विशेष आनन्द है। बहुत दिनोंके बाद आज लोगोंमें उत्साह दृष्टिगोचर हो रहा है। बहुत दिनोंके बाद आज लोगोंको पारस्परिक वार्तामें रस मिल रहा है। बहुत दिनोंके बाद आज लोगोंकी भोजनमें रुचि हुई है। बहुत दिनोंके बाद आज लोगोंके मनमें पानी पीनेकी इच्छा हुई है। बहुत दिनोंके बाद किसी पुत्रवती माँने अपने लाड़ले पुत्रको अपनी गोदमें लेकर लाल कहकर दूध पिलाया है। बहुत दिनोंके बाद किसी प्रेयसी पत्नीने अपनी मधुर वाणीमें अपने प्रियतमरपतिसे बातें की है। बहुत दिनोंके बाद लोगोंकी आज श्रीसरयूमें स्नान करनेकी इच्छा हुई है। प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी है। चारों ओर आनन्द ही आनन्द है। लोगोंकी आँखोंमें आँसू तो पहले भी रहते थे और आज भी हैं परन्तु आजके आँसू मीठे हैं—आनन्दके आँसू हैं। चारों ओर एक ही शब्द सुन पड़ रहा है कि शीघ्र चलो, जल्दी चलो, अविलम्ब तैयारी करो, विलम्ब होगा तो छोड़कर चले जायेंगे '**त्वरयन्ति स्म हर्षिताः।**' चारों ओर भरत धन्य हैं! भरत धन्य हैं यही ध्वनि सुनायी पड़ रही है। आज समस्त अयोध्यावासी श्रीभरतका गुणगान कर रहे हैं। भरत सबके प्राणप्रिय हो गये हैं।

भा सब कें मन मोदु न थोरा।
जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा॥
चलत प्रात लखि निरनउ नीके।
भरतु प्रानप्रिय भे सबही के॥

कोई घरमें नहीं रहना चाहता।

'को न चहै जग जीवनु लाहू।'

सब कहते हैं—सम्पत्ति और सुख सब भाड़में जाय, यदि ये श्रीरामदर्शनमें बाधक हैं तो जल जायँ।

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद करै न सहस सहाइ॥

श्रीभरतजीने श्रीरामजीकी सम्पत्ति समझकर

इसकी रक्षा करनेकी व्यवस्था की। माताओंके लिये पालकी, सुखासन और रथ आदिकी व्यवस्था की।

आरत जननी जानि सब भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकीं सजन सुखासन जान॥

सम्पूर्ण तैयारी हो गयी। श्रीभरतजीने चतुर मन्त्रियोंसे कहा कि श्रीरामजीके राज्यतिलककी सामग्री ले चलो। श्रीवसिष्ठजी वनमें ही प्रभुको राज्य देंगे।

कहेउ लेहु सबु तिलक समाजू।
बनहि देब मुनि रामहि राजू॥

भगवती अरुन्धतीदेवीका भी वात्सल्य छलक उठा। उन्होंने श्रीवसिष्ठजीसे कहा—हे स्वामिन्! आपके शिष्य पुत्र रघुनन्दनके मुखारविन्दका दर्शन करनेके लिये मैं भी चलूँगी। श्रीगुरुदेवने भी रुँधे हुए कण्ठसे आज्ञा दे दी।

अरुंधती अरु अगिनि समाँऊ।
रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ॥

अनेक प्रकारके वाहनोंपर चढ़कर विप्रवृन्द चले सब नागरिक चले। पालकियोंपर चढ़-चढ़कर माताएँ चलीं। सबको आदरपूर्वक प्रस्थान कराकर, पवित्र और विश्वस्त सेवकोंको नगर सौंपकर श्रीसीता रामजीके मङ्गलमय श्रीचरणोंका स्मरण करके सबके अन्तमें श्रीभरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले।

सौंपि नगर सुचि सेवकनि सादर सकल चलाइ।
सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाइ॥

'श्रीसीता-रामजी इस समय वनमें पैदल ही चलते हैं' इस भावनासे श्रीभरत शत्रुघ्न पैदल ही चले।

बन सिय रामु समुझि मन माहीं।
सानुज भरत पयादेहिं जाहीं॥

श्रीभरतजीका चरित्र त्यागियोंको भी त्यागकी शिक्षा देता है। त्यागी श्रीरामकी प्रजा—श्रीअयोध्यावासी श्रीभरतका स्नेह देखकर प्रेममग्न हो गये। वे घोड़े, हाथी और रथसे उतर-उतरकर श्रीभरतके साथ पैदल चल पड़े।

देखि सनेहु लोग अनुरागे।
उतरि चले हय गय रथ त्यागे॥

श्रीभरतने वाणीसे नहीं चरित्रसे शिक्षा दी। श्रीरामकी माता श्रीकौसल्याजीने अपने अधिकारका प्रयोग करके कहा—'रथपर चढ़कर चलो।' माँकी आज्ञा शिरोधार्य करके श्रीभरत रथपर चढ़कर चले।

तात चढ़हु रथ बलि महतारी।
होइहि प्रिय परिवारु दुखारी॥
तुम्हरें चलत चलिहि सबु लोगू।
सकल सोक कृस नहिं मग जोगू॥
सिर धरि बचन चरन सिरुनाई।
रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई॥

कोई पुरवासी दुग्धाहार कोई फलाहार करते हैं, कुछ लोग रात्रिमें एक बार भोजन करते हैं। आभूषण और भोगसामग्री छोड़कर अपने प्रियतम श्रीरामके लिए नियम और व्रत करते हैं।

पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग।
करत रामहित नेम ब्रत परिहरि भूषन भोग॥

प्रथम दिन तमसा नदीके तटपर, दूसरे दिन गोमतीके तटपर, तीसरे दिन सई नदीके तटपर निवास करके चौथे दिन शृङ्गवेरपुरके समीप जा पहुँचे।

जब श्रीनिषादराजने श्रीभरतके सपरिकर आनेका समाचार सुना तब वे विचार करने लगे। श्रीभरत वन क्यों जा रहे हैं? इनके मनमें अवश्य

ही कपट भाव है। यदि इनके मनमें कुटिलता न होती, केवल प्रेमके लिए जाते तो साथमें सेना क्यों ले आते। ये श्रीराम लक्ष्मणको मारकर अपने राज्यको निष्कण्टक बनाना चाहते हैं। परन्तु श्रीभरतने रातनीतिका विचार नहीं किया। श्रीरामजीको समस्त देवता और असुर मिलकर भी समराङ्गणमें नहीं जीत सकते।

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा।
रामहि समर न जीतनिहारा॥

गुहने अपनी जातिवालोंसे कहा—सब लोग सावधान हो जाओ। डाँड़, पतवार और नावोंको जलमें डुबा दो तथा घाटोंको अवरुद्ध कर लो। सब लोग मरनेके लिये प्रस्तुत हो जाओ।

अस बिचारि गुँह ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु।
हथवाँसहुँ बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु॥
होहु सँजोइल रोकहु घाटा।
ठाटहु सकल मरै के ठाटा॥

श्रीभरतने सोचा होगा कि मेरा सामना कौन करेगा? परन्तु मेरा स्मरण भी न आया होगा। श्रीभरतजीका सामना मैं करूँगा और अपने जीवित रहते हुये गङ्गापार न करने दूँगा।

सनमुख लोह भरत सन लेऊँ।
जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥

हमारे जीवित रहते हुये कोई भगवान् श्रीरामपर आक्रमण करनेके लिये चला जाय और हम देखते रहें ऐसा कभी नहीं हो सकता। हे साथियों! हम जीते जी श्रीभरतजीको गङ्गापार नहीं जाने देंगे, उन्हें हमारी लाशपर चढ़कर गङ्गापार करना होगा। इस प्रकारकी मृत्यु बड़े भाग्यसे मिलती है। एक तो समराङ्गण, दूसरे गङ्गातट, तीसरे रामजीके कार्यके लिये क्षणभङ्गुर शरीरको देना, चौथे श्रीभरत श्रीरामजीके भाई हैं, राजा हैं और मैं नीच सेवक हूँ। एक साथ इतना संयोग दुर्लभ है। ऐसा दुर्लभ अवसर हमलोगोंको हाथसे नहीं जाने देना चाहिये। आज श्रीरामजीके लिये मैं प्राण विसर्जन कर दूँगा। आज मेरे दोनों हाथोंमें लड्डू हैं।

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा।
राम काजु छनभंगु सरीरा॥
भरत भाइ नृपु मैं जन नीचू।
बड़े भाग असि पाइअ मीचू॥

हे भाइयों! साधुओंके समाजमें जिसकी गणना न हो, श्रीरामजीके भक्तोंमें जिसका नाम न हो, वह पृथ्वीका भार है; संसारमें उसका जीवन व्यर्थ है। वह अपनी माताके यौवनरूपी वृक्षको काटनेके लिये कुल्हाड़ीरूप ही उत्पन्न हुआ है।

साधु समाज न जाकर लेखा।
राम भगत महुँ जासु न रेखा॥
जायँ जिअत जग सो महि भारू।
जननी जौबन बिटप कुठारू॥

विषादसे रहित होकर निषादपतिने सबका उत्साह बढ़ाकर श्रीरामजीका स्मरण करके तुरन्त ही तरकस, धनुष और कवच माँगा।

बिगत बिषाद निषादपति सबहि बढ़ाइ उछाहु।
सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु॥

श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंकी जूतियोंका स्मरण करके उन्होंने भाथियाँ बाँधकर धनुषको सज्ज कर लिया।

सुमिरि राम पद पंकज पनहीं।
भाथीं बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं॥

निषादराजने कहा—हे भाइयों! धोखा न लाना, आज मेरे जीवनका सबसे बड़ा कार्य है।

सुनकर सब योद्धा बोले—हे वीर! अधीर न होइये। हे नाथ! भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापसे और आपके बलसे हमलोग श्रीभरतकी सेनाको बिना वीर और बिना घोड़ोंके कर देंगे। जीते जी पैर पीछे नहीं धरेंगे। पृथ्वीको रुण्डमुण्डमयी कर देंगे।

भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट बीर अधीर न होहि॥
राम प्रताप नाथ बल तोरे।
करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे॥

निषादराजने कहा—जुझाऊ ढोल बजाओ। इतना कहते ही बायीं ओर छींक हो गयी। दो रामभक्तोंका, दो पनहींके उपासकोंका, दो सर्वस्व त्यागियोंका और दो महान् प्रेमियोंका पारस्परिक संग्राम कैसे हो सकता था? भगवान् श्रीरामकी प्रेरणासे बायीं ओर छींक हो गयी। एकने कहा—छींक सुन्दर दिशामें हुयी है अतः हमारी जीत होगी; परन्तु एक अनुभवी और वृद्ध शकुनवेत्ताने कहा—शकुन ऐसा बता रहा है कि श्रीभरतजीमें विरोधभाव नहीं है। उनसे आदर और स्नेहपूर्वक मिल लीजिये। युद्ध नहीं होगा।

बूढ़ु एक कह सगुन बिचारी।
भरतहि मिलिअ न होइहि रारी॥

सुनकर निषादने कहा—बुड्ढा ठीक कहता है। हमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। जोशमें कभी-कभी कार्य नष्ट हो जाता है; फिर पछताना पड़ता है।

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा।
सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा॥

परन्तु आपलोग असावधान न हों। सबलोग इकट्ठे होकर घाटोंको रोक लें। मैं श्रीभरतजीसे मिलकर उनका मर्म जाननेका प्रयास करता हूँ—उनका भाव मित्रका है किं वा शत्रुका है अथवा मध्यका है। यह जानकर तब आकर उसीके अनुसार व्यवस्था करूँगा।

गहहु घाट भट समिटि सब लेउँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति तस तब करिहउँ आइ॥

यह मर्म लेनेके लिये निषादराजने तीन प्रकारकी भेंट सामग्री सजायी। सात्त्विक, राजसिक और तामस। कन्दमूल, खगमृग और मछलियाँ। आशय यह है—अगर ये सात्त्विक भावके होंगे तो कन्दमूल फल स्वीकार करेंगे, तब मैं जान लूँगा कि इनका रामजीसे मित्रका भाव है। यदि ये राजस भावके होंगे तो खगमृग स्वीकार करेंगे, तब मैं जान लूँगा कि इनका रामजीसे शत्रुभाव है। यदि ये तामस भावके होंगे तो मछलियाँ स्वीकार करेंगे तब मैं जान लूँगा कि ये रामजीके प्रति उदासीन हैं। इस प्रकारकी भेंट सामग्रियोंका संकलन करके श्रीनिषाद श्रीभरतके पास चले। श्रीमुनिपुङ्गव वसिष्ठको देखकर अपना नाम बताकर दूरसे ही दण्डवत् किया। उन्होंने रामका प्रिय समझकर आशीर्वाद देकर भरतजीको समझाकर कहा कि यह रामसखा निषादराज है। श्रीभरतजी रामसखा सुनकर ही सद्यः अपने कर्त्तव्यका निर्णय करके रथपरसे कूद पड़े और प्रेमसे उमँगते हुये निषादको अपनानेके लिये चल पड़े।

राम सखा सुनि संदनु त्यागा।
चले उतरि उमगत अनुरागा॥

निषादराजने अपना पूर्ण परिचय देकर भूमिष्ठ होकर जोहार किया। श्रीभरतजीने निषादको

दण्डवत् करते हुये देखकर उठाकर हृदयसे लगा लिया और ऐसा अनुभव किया कि मानो मेरा लक्ष्मण ही मिल गया।

करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।
मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदयँ समाइ॥

चारों ओरसे धन्य धन्यकी मङ्गलमयी ध्वनि होने लगी। इस मिलनको देखकर देवतालोग फूल बरसाने लगे।

धन्य धन्य धुनि मंगल मूला।
सुर सराहि तेहि बरिसहिं फूला॥

निषादराजने सोचा था कि भेंट सामग्री अर्पण करके भेद लूँगा; परन्तु श्रीभरत तो तीनों गुणोंकी सीमासे परे गुणातीत थे। श्रीभरतने निषादराजसे कुशल प्रश्न किया। श्रीभरतजीका शील, स्नेह देखकर निषादजी तो विदेह हो गये। अहा! मैंने इस प्रेमविग्रहको कपटी समझा था। इस बातका सङ्कोच, मैं योद्धाके रूपमें इनके सामने नहीं आया इस बातका मोद और भैया भरतके रूपमें श्रीरामजीके दर्शनका स्नेह इस प्रकार सङ्कोच, मोद और स्नेहकी त्रिवेणीमें स्नान करके श्रीनिषादजी श्रीभरतलालजीको टकटकी लगाकर देखने लगे।

देखि भरत कर सीलु सनेहू।
भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥
सकुच सनेहु मोदु मन बाढ़ा।
भरतहि चितवत एकटक ठाढ़ा॥

श्रीनिषादराजने कहा—हे भैया! जबसे प्रभुने अपनाया तबसे मैं भुवनभूषण हो गया। नीच निषादसे श्रीरामसखा हो गया।

श्रीगुहने अपने सेवकोंको सङ्केतसे कहा—अब आपलोग चिन्तारहित होकर युद्धकी नहीं स्वागतकी तैयारी करो।

सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरु तर सर बाग बन बास बनाएन्हि जाइ॥

सबलोगोंने शृङ्गवेरपुरमें जाकर श्रीगङ्गाजीके दर्शन किये। रामघाटको प्रणाम किया।

रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू।
भा मनु मगनु मिले जनु रामू॥

श्रीभरतजीने स्नान करके गङ्गा मैयासे हाथ जोड़कर कहा—हे गङ्गे! मैं आपसे यही वर मागता हूँ कि श्रीसीतारामचन्द्रके श्रीचरणकमलोंमें मेरा स्वाभाविक प्रेम हो।

जोरि पानि बर मागउँ एहू।
सीय राम पद सहज सनेहू॥

श्रीनिषादराजजीकी व्यवस्थाको स्वीकार करके सब लोगोंने निवास किया। श्रीभरत और शत्रुघ्न माता कौसल्याके श्रीचरणकमलोंकी सेवा करने लगे। सहसा कुछ स्मरण कर श्रीशत्रुघ्नको माताकी सेवा सौंप करके गुहसे कहा—हे भैया! मेरे नेत्र और मन श्रीरामदर्शनके लिये संतप्त हैं। अब आप हमें वह स्थान दिखा दें, जहाँपर श्रीसीताराम, लक्ष्मणने रात्रिमें शयन किया था। उस पावन स्थानका दर्शन करके मेरे नेत्र और मन शीतल होंगे।

पूँछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ।
नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ॥
जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए।
कहत भरे जल लोचन कोए॥

श्रीगुह श्रीभरतके वचनोंको सुनकर तत्काल उन्हें वहाँ ले गये जहाँ श्रीरामजीने अशोक वृक्षके नीचे विश्राम किया था।

जहँ सिंसुपा पुनीत तर रघुबर किये बिश्रामु।
अति सनेहँ सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनामु॥

श्रीनिषादराजने कहा—हे श्रीरामभक्त! मैंने उस स्थानको सुरक्षित रखा है जहाँ श्रीरामजीने रात्रिमें विश्राम किया था। इस प्रसङ्गमें श्रीगुहकी निष्ठा मनन करने योग्य है। नगरके बाहर वृक्षके तले श्रीरामने शयन किया था। वे तृण, वे पत्ते क्या सुरक्षित रह सकते हैं? ऋतु भी गर्मीकी है, हवाएं भी चलती ही होंगी। क्या वे तृण उड़ नहीं गये होंगे। श्रीनिषादराजने अपने पारिवारिक जनोंको बुलाकर कहा—यह सिंसिपा—अशोकका वृक्ष और इसके नीचेका भूखण्ड मेरा 'आराध्य स्थल' है। यहाँका एक तृण भी इधर उधर नहीं होना चाहिये। मैं इस स्थलकी नित्य पूजा और परिक्रमा करूँगा। मेरे लिये यह स्थल श्रीअयोध्याजीके समान है। श्रीअयोध्याजीसे भी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ मेरे जीवनाराध्यने रात्रि व्यतीत की है। यहाँकी कोई सामग्री तिलमात्र भी इधर उधर न होने पावे। यथास्थिति बनी रहे। अब मेरे जीवनसार सर्वस्व श्रीरामचन्द्रजी कभी शृङ्गवेरपुरमें रात्रि व्यतीत करें या न करें। श्रीरामके भक्त—सखाने श्रीरामजीके भावुक भाईको वह 'आराध्यस्थल' दिखाया—हे भैया! यह वही सिंसिपा वृक्षकी जड़ है, जिसका श्रीरामने उपधान बनाया था, यही वे कुश और तृण हैं जिनपर श्रीसीतारामजीने शयन किया था। श्रीभरतने शय्याका दर्शन किया। उन्होंने बड़े विह्वल स्वरमें प्रश्न किया '**कथं शेते महीतले?**' सुकुमारी मैथिली और सुकुमार अवधेशकुमारने पृथ्वीपर, इन तृणोंपर कैसे शयन किया होगा? उन्हें नींद कैसे आयी होगी? मेरे प्रभु यहाँ सोये थे। यह देखो यहाँपर श्रीठाकुरजीने करवट बदली है। यहाँपर तृण अधिक दब गया है। अहा? यहाँ श्रीसीताका उत्तरीय वस्त्र फँस गया था वह सूत्र—कौशेय सूत्र अभी भी तृणमें चमक रहा है। इन सबका श्रीभरतजी दर्शन कर रहे हैं। इसमें श्रीभरतजीके श्रीरामभक्तिपूर्ण भावुक हृदयका महत्त्व तो है ही; परन्तु निषादराजकी भावना भी श्लाघ्य है—स्तुत्य है। एक खुले हुए वृक्षके नीचे गर्मीके महीनेमें इन अवशेषोंको कैसे सँजोया होगा? सँजोया है, सँजोए हैं और जीवनपर्यन्त सँजोए रहेंगे अपने 'आराध्य मन्दिर' को।

मैं एक बार पंजाब गया। वहाँ एक 'बटाला' नामका स्थान है। वहाँपर सिक्खोंका एक धार्मिक स्थल है—'कन्द साहब'। कन्दका अर्थ दिवाल होता है। एक मिट्टीकी दीवाल थी, जिसके ऊपर खड़े होकर गुरुनानकदेवजीने उपदेश किया था। सिक्ख लोग उस स्थानको इतना सुरक्षित रखे हैं कि वह मिट्टीकी दीवाल आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। यह सिक्खोंकी धार्मिक निष्ठा है। उस समय मुझे स्मरण आ गया श्रीनिषादराजका 'आराध्यस्थल'। उस समय मेरी आँखें बरस पड़ीं। मैंने सोचा—नगरके भीतर दीवालको सुरक्षित रखना आसान है मेरे निषादराजने तो नगरके बाहर वृक्षके तले कुशकी शैय्याको भी सुरक्षित रखा था।

यह श्रीगुहकी वैष्णवता है। इसका रहस्य शुष्क हृदय व्यक्ति नहीं जान सकता है। इस रहस्यको तो वह जानेगा जिसका मन रामस्नेह रससे सरस है। श्रीभरतजीने कुशोंमें लिपटे हुए कनक बिन्दुओंको—स्वर्णखण्डोंको देखा—सलमा सितारे देखे जो श्रीसीताजीके वस्त्रोंके थे।

कनक बिंदु दुइ चारिक देखे।
राखे सीस सीय सम लेखे॥

श्रीभरत इन अवशेषोंको देखकर शोकके कारण रुदन करते हुए कहने लगे—'हा हन्त! हा हतोऽस्मि!' मेरा जीवन व्यर्थ हो गया। मेरे ही कारण अनाथकी भाँति श्रीसीता-रामजीको इस प्रकारकी शैय्यापर शयन करना पड़ता है। पतिव्रताशिरोमणि श्रीसीताजीकी कुशशैय्या देखकर मेरा हृदय हहरकर फट क्यों नहीं जाता है। हे हर! यह मेरा हृदय वज्रसे भी अधिक कठोर है। आशय यह है कि वज्र भी अपना अपमान नहीं सह सकता है।

जब चेरी पायँन परो तब न उठी तन पीर।
जानि जौहरी पग धरेउ तब फाटेउ नग हीर॥

अर्थात् जब हीरा दासीके चरणोंके नीचे पड़ा, तब हीराको कष्ट नहीं हुआ; क्योंकि दासी हीराका मूल्य क्या समझे? परन्तु जब जौहरीने अपने चरणोंसे अपमान किया तब वह फट गया।

पति देवता सुतीय मनि सीय साँथरी देखि।
बिहरत हृदय न हहरि हर पबि तें कठिन बिसेषि॥

श्रीसीता-रामजीकी कुश शैय्याको देखा; परन्तु श्रीलक्ष्मणजीकी शैय्या न देखी तब पूछा कि मेरा लक्ष्मण कहाँ सोया था? तब निषादने विह्वल होकर श्रीलक्ष्मणके रात्रिमें जगनेकी कथा सुनायी। सुनकर श्रीभरत विह्वल हो गये। हे सखे! मेरे लक्ष्मण तो दुलार करने योग्य हैं, बहुत सुन्दर हैं ऐसा भाई न हुआ; न है और न भविष्यमें होनेका ही है। अवधके लोग उन्हें बहुत प्यार करते हैं। समस्त माताएँ और पिताजी लक्ष्मणको बहुत दुलार करते थे। श्रीसीता-रामजीके तो वे प्राणोंसे भी प्यारे हैं। मृदुमूर्ति, सुकुमार स्वभाव लक्ष्मणको गरम हवा भी कभी नहीं लगी। सम्प्रति वे वनमें सब प्रकारकी विपत्तियाँ सहन कर रहे हैं। हा हन्त! मेरा हृदय करोड़ों वज्रोंसे भी अधिक कठोर है।

लालन जोगु लखन लघु लोने।
भे न भाइ अस अहहिं न होने॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे।
सिय रघुबीरहि प्रानपिआरे॥
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ।
तात बाउ तन लाग न काऊ॥
ते बन सहहिं बिपति सब भाँती।
निदरे कोटि कुलिस एहिं छाती॥

सुखस्वरूप श्रीरामजी मङ्गल और आनन्दके निधान हैं। वे भूमिपर इस प्रकार कुश शैय्यापर सोते हैं। हा हन्त! विधाताकी गति अति बलवती है।

सुखस्वरूप रघुबंसमनि मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुस डासि महि बिधि गति अति बलवान॥

श्रीभरतजी यह करुण दृश्य देखकर अपनेको धिक्कृत करने लगे।

मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी।
सबु उतपातु भयउ जेहि लागी॥

तब निषादराजने उन्हें बड़े प्रेमसे समझाया—हे नाथ! बाम विधाताकी करनी कठिन है जिसने माता कैकेयीको बावली बना दिया। उस रात प्रभु अनेक बार आपकी आदरपूर्वक सराहना करते थे। हे भैया! मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि श्रीरामजीको आपकी तरह प्यारा कोई नहीं है। हे स्वामिन्! परिणाममें मङ्गल होगा यह जानकर आप अपने हृदयमें धैर्य धारण करें।

बिधि बाम की करनी कठिन जेहिं मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी॥

तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतमु कहतु हौं सौहें किएँ।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हिएँ॥

श्रीनिषादराजने कहा—हे स्वामिन्! अब आप चलकर विश्राम करिये। उस रात्रिके व्यतीत होनेपर प्रातःकाल सुन्दर नावपर गुरुजीको चढ़ाकर और नवीन नावपर सब माताओंको चढ़ाया। चार घड़ीमें सब लोग गङ्गाके उस पार हो गये। श्रीभरतजीने उतरकर सबकी सम्भाल की।

गुरहि सुनावँ चढ़ाइ सुहाईं।
नईं नाव सब मातु चढ़ाईं॥
दंड चारि महँ भा सबु पारा।
उतरि भरत तब सबहि सँभारा॥

प्रातःकालीन कृत्य सम्पन्न करके माताके चरणोंकी वन्दना करके, गुरुदेवको प्रणाम करके श्रीभरतजीने मार्गदर्शकके रूपमें निषादोंको आगे करके सेना चला दी। श्रीनिषादराज गुहको आगे करके सब माताओंकी पालकियाँ चला दीं। श्रीशत्रुघ्नको गुरुदेवके साथ कर दिया और ब्राह्मणोंके साथ गुरुदेवने प्रस्थान किया।

प्रातक्रिया करि मातु पद बंदि गुरहि सिरु नाइ।
आगें किए निषाद गन दीन्हेउ कटकु चलाइ॥

कियउ निषादनाथु अगुआईं।
मातु पालकीं सकल चलाईं॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा।
बिप्रन्ह सहित गवनु गुर कीन्हा॥

श्रीभरतकी आज बड़ी सुनियोजित भक्तिपूर्ण और आदर्श यात्रा है। गुहके नेतृत्वमें यात्रा हो रही है। श्रीशत्रुघ्न भी गुरुदेवके साथ हैं। जब सब चल पड़े तब श्रीभरतजीने गङ्गा मैयाको प्रणाम करके श्रीलक्ष्मणके साथ श्रीसीता-रामजीका स्मरण करके प्रस्थान किया। श्रीभरत पैदल चल रहे हैं। 'कोतल'—सजे सजाये खाली घोड़ेकी डोरी पकड़कर सेवक चल रहे हैं। श्रीभरतजी सबसे पीछे चल रहे हैं जिससे कि श्रीअयोध्याकी भाँति माताजी रथपर चढ़नेकी आज्ञा न दें। उनकी आज्ञाका प्रत्याख्यान उचित नहीं होगा और पालन करना भक्तिमार्गमें उचित नहीं है। अवधवासी भी मुझे देखकर पैदल चलेंगे। अतः सबके पीछे चल रहे हैं। सेवकोंने बार-बार प्रार्थना की—हे नाथ! घोड़ेपर चढ़ लीजिए। सेवकोंके कई बार कहनेपर श्रीभरतने कहा—हमारे लिए रथ, हाथी, घोड़े बनाये हैं और मेरे प्रियतम राम पैदल गये हैं। मेरे लिए तो यह उचित है कि मैं सिरके बल जाऊँ, सेवक धर्म सबसे कठिन धर्म है।

मौनान्मूकः प्रवचनपटुश्चाटुलो जल्पको वा,
धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा दूरतश्चाप्रगल्भाः।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशोनाभिजातः,
सेवा धर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः॥

(नीतिशतक)

आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू।
सुमिरे लखन सहित सिय रामू॥
गवने भरत पयादेहिं पाए।
कोतल संग जाहिं डोरिआए॥
कहहिं सुसेवक बारहिं बारा।
होइअ नाथ अस्व असवारा॥
रामु पयादेहि पायँ सिधाए।
हम कहँ रथ गज बाजि बनाए॥
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा।
सब तें सेवक धर्म कठोरा॥

सबलोग प्रयाग पहुँचकर स्नान आदि कर लिये। सब लोग श्रीभरतजीकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। श्रीसुमित्राजीने पूछा—हे शत्रुघ्न! भैया भरत

कहाँ हैं ? श्रीशत्रुघ्नने रोते हुये कहा—माँ! मुझे तो मेरे स्वामीने आज गुरुदेवकी सेवामें नियुक्त कर दिया था। मैया! आज तो भैया निपट अकेले हैं। सबकी व्याकुल आँखें श्रीभरतकी प्रतीक्षा कर रही हैं। उसी समय बड़ी मधुर, भावभीनी, स्नेहसानी वाणी सुनायी पड़ी 'सीताराम सीताराम सीताराम'। लोग प्रसन्न हो गये। यह मधुर वाणी तो मेरे भरतकी ही है। फिर लोगोंने वाणीके साथ श्रीभरतजीका दर्शन किया।

भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग॥

श्रीभरतजीके चरणोंमें झलका—छाले पड़ गये हैं। वे कैसे झलक रहे हैं जैसे कमलपत्रोंके भीतर ओसके कण हों। झलकाके भीतर जल रहता है अत: कमलकोशके भीतर ओसकणकी उपमा दी। श्रीभरतजीके जीवनकी सम्भवत: यह पहली ही इतनी लम्बी यात्रा है। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और भक्तिपूर्ण यात्रा है। इस यात्रासे भक्तोंको प्रेरणा लेनी चाहिये।

'आज श्रीभरतजी पैदल चलकर आये हैं' यह सुनकरके समस्त समाज दु:खी हो गया।

झलका झलकत पायन्ह कैसें।
पंकज कोस ओस कन जैसें॥
भरत पयादेहिं आए आजू।
भयउ दुखित सुनि सकल समाजू॥

श्रीभरतजीने पता लगाया कि सब लोगोंने स्नान किया या नहीं। यह 'लोकनायक' का स्वरूप है कि स्वयं थके हुए हैं फिर भी सब लोगोंकी चिन्ता है। श्रीभरतजीने त्रिवेणी तटपर आकर प्रणाम किया। श्याम-धवल जलमें विधिपूर्वक स्नान किया। ब्राह्मणोंको—तीर्थपुरोहितोंको दान देकर उनका समादर किया।

सबिधि सितासित नीर नहाने।
दिए दान महिसुर सनमाने॥

श्रीत्रिवेणीकी श्यामल धवल लहरोंको देखकर श्रीभरतको श्रीसीताराम और श्रीराम-लक्ष्मणकी स्मृति प्रबल हो गयी। उनका शरीर रोमाञ्च कण्टकित हो गया। उन्होंने हाथ जोड़ लिये।

देखत स्यामल धवल हलोरे।
पुलकि सरीर भरत कर जोरे॥

पण्डित श्रीशिवलालजी पाठकने अपने 'मानस अभिप्राय दीपक' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि श्याम-धवल लहरोंको देखकर श्रीभरतजीको श्रीकनकभवनविहारी विहारिणी सरकारका स्मरण आ गया।

स्याम धवल हिलोर लखि सिय रघुबर अनुहारि।
सुरति भई जनु राम सिय मन्दिर कनक बिहारि॥

श्रीभरतजीने त्रिवेणी तटपर खड़े होकर कहा—मैं अपना धर्म त्याग करके भिक्षा माँग रहा हूँ। आर्तप्राणी कौनसा कुकर्म नहीं करता है।

मागउँ भीख त्यागि निज धरमू।
आरत काह न करइ कुकरमू॥
अस जिय जानि सुजान सुदानी।
सफल करहिं जग जाचक बानी॥

क्षत्रियका निज धर्म माँगना नहीं है अपितु देना है। श्रीभरतजी कहते हैं—मैं निज धर्म त्यागकर माँग रहा हूँ।

तुलसी कर पर कर करो कर तर कर न करो।
जा दिन कर तर कर करो ता दिन मरण करो॥

अथवा—अपने कुलकी कन्याओंको देना चाहिये, उनसे माँगना नहीं चाहिये। श्रीयमुनाजी सूर्यकन्या हैं, श्रीगङ्गाजी भगीरथनन्दिनी हैं और

श्रीसरस्वतीजी वसिष्ठजननी हैं, इसलिये *'त्यागि निज धरमू'।* श्रीभरतजी याचना करते हैं—मुझे न अर्थकी कामना है, न धर्मकी, न कामकी अभिलाषा है और न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ। जन्म- जन्ममें मेरी श्रीरामचरणोंमें रति हो केवल यही वरदान माँग रहा हूँ। फिर कहते हैं—मेरे स्वामी, मेरे परमप्रियतम श्रीरामजी चाहे मुझे कुटिल समझें और लोग मुझे गुरुद्रोही और स्वामिद्रोही क्यों न कहें; परन्तु श्रीसीतारामजीके चरणोंमें मेरा प्रेम आपकी कृपासे दिनोत्तर वृद्धिंगत हो।

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥
जानहुँ राम कुटिल करि मोही।
लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥
सीता राम चरन रति मोरें।
अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥

इस वर याचनामें भक्ति तत्त्वका समग्र निरूपण हो गया है। इसमें श्रीभरतजीका जीवन दर्शन सन्निहित है। एकाङ्गी प्रेमका—चातक निष्ठा एवं चकोर निष्ठाका भावपूर्ण निरूपण है। मैं अपने प्रियतमका स्मरण करता हुआ तिल तिलकर जल जाऊँ और उनके कानमें भनक भी न पड़ने पाये कि मैं उनका स्मरण करता हूँ किं वा प्रेम करता हूँ। धन्य हैं श्रीभरत! और धन्य है उनकी याचना।

आज इस वरयाचनाको सुनकर त्रिवेणीजी भी निहाल हो गयीं। उन्होंने श्रीभरतजीका महत्व एक पङ्क्तिमें निरूपण किया है जो अभूतपूर्व है। त्रिवेणीके मध्यसे गम्भीर वाणी, कोमल वाणी, मङ्गलमयी वाणी और स्नेहसानी वाणी सुनायी पड़ी—हे तात! हे भरत! तुम सब प्रकारसे साधु हो। मन, वचन, कर्मसे साधु हो, त्यागसे साधु हो और अनुरागसे साधु हो। श्रीरामचन्द्रमें तुम्हारा अगाध अनुराग है। तुम्हारे अनुरागकी थाह आजतक कोई नहीं पा सका। आशय यह कि तुम्हारे अनुरागकी थाह हम तीनोंने भी नहीं पायी है। बस हम इतना ही जानती हैं कि तुम्हारे समान श्रीरामचन्द्रजीको कोई प्रिय नहीं है।

भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी।
भइ मृदु बानि सुमंगल देनी॥
तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू।
राम चरन अनुराग अगाधू॥
बादि गलानि करहु मन माहीं।
तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं॥

श्रीत्रिवेणीके अनुकूल वचन सुनकर श्रीभरतजीका शरीर पुलकित हो गया और हृदय प्रसन्न हो गया। हे भरतजी! आप धन्य हैं! धन्य हैं! कहकर देवता लोग भी नन्दनकाननके फूल बरसाने लगे।

तनु पुलकेउ हियँ हरषु सुनि बेनि बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल॥

श्रीभरतजी महर्षि श्रीभरद्वाजजीके पास आये। साधु भरतने मुनिके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीभरद्वाजने अनुभव किया कि श्रीभरत नहीं अपितु मेरा सौभाग्य ही आज भरतजीके रूपमें मेरे सामने प्रत्यक्ष हो गया है। मुनिने भरतजीको अपने हृदयसे लगाकर उन्हें आशीर्वाद देकर स्वयंको और अपने आशीर्वादको कृतार्थ कर लिया।

दंड प्रनामु करत मुनि देखे।
मूरतिमंत भाग्य निज लेखे॥

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे।
दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे॥

महर्षिने आसन दिया। श्रीभरत प्रणाम करके आसनपर विराज गये। श्रीगोस्वामीजीने एक बहुत सुन्दर भावपूर्ण एवं अनूठी उत्प्रेक्षा की है ***'चहत सकुच गृहँ जनु भजि पैठे।'*** साहित्य एवं प्रेम दोनों ही दृष्टिसे इस अनोखी उत्प्रेक्षाका अध्ययन अपेक्षित है।

श्रीभरतजीके मनमें बड़ी चिन्ता है—'मुनि मुझसे कुछ पूछेंगे?' भाव कि इनके किसी भी प्रश्नका मेरे पास सुन्दर उत्तर नहीं है। यदि ये मेरे पिताकी कुशलके विषयमें पूछें तो मैं क्या उत्तर दूँगा? यदि ये श्रीरामजीके विषयमें पूछें तो क्या उत्तर दूँगा? यदि ये माताओंके विषयमें पूछें तो क्या उत्तर दूँगा? ***'देखि न जाहिं बिकल महतारी।'*** यदि ये प्रजाके विषयमें पूछें तो क्या उत्तर दूँगा? ***'जरहि दुसह जर पुर नर नारी।'*** यदि ये मेरे ही विषयमें पूछें तो क्या उत्तर दूँगा? श्रीभरतजीके मनोभावको महर्षि समझ गये, इसीलिये उन्हें 'ऋषि' शब्दसे अभिहित किया गया है।

बोले ऋषि लखि सीलु सँकोचू।

महर्षिने कहा—हे भरत! सुनो, हमको सब समाचार मिल गया है, तुमसे कुछ नहीं पूछना है। सुनकर श्रीभरतने महर्षिकी ओर कृतज्ञ दृष्टिसे देखा कि महर्षे! आपने मुझे एक बहुत बड़े सङ्कटसे उबार लिया। श्रीभरतजीके नेत्रोंमें एक मूक जिज्ञासा हुयी कि हे महर्षे! मैं आजतक नहीं समझ पाया कि यह सब क्यों हो गया? कैसे हो गया? इतना बड़ा परिवर्तन किस प्रकार सम्भव हुआ? इसके मूलमें कौन है? यह कोई षड्यन्त्र है? देवप्रेरणा है अथवा मेरे कर्मोंका भयङ्कर फल है। इसका उत्तर महर्षिने चार पङ्क्तियोंमें दिया है। मैं उनका पाठमात्र करूँगा। भाव स्पष्ट करनेका समय नहीं है, अतः इस प्रसङ्गको प्रणाम करके आगेकी बात कहूँगा।

सुनहु भरत हम सब सुधि पाई।
बिधि करतब पर किछु न बसाई॥
तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति॥
यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ।
लोकु बेदु बुध संमत दोऊ॥
तात तुम्हार बिमल जसु गाई।
पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई॥

श्रीभरद्वाजजी कहते हैं—हे भरत! यदि तुम राज्य भी करते तो तुम्हें दोष न होता और अब तो तुमने बहुत ही अच्छा किया है। यह मत तुम्हारे सर्वथा योग्य है। भाव यह है कि पिताकी आज्ञासे राज्य तो बहुत लोग कर सकते हैं; परन्तु प्राप्त राज्यको रामसेवाके लिये, श्रीरामचरणानुरागके लिये छोड़ना तो तुम्हारी तरह अनन्य भक्त ही कर सकते हैं। हे भरत! संसारमें समस्त सुमङ्गलोंका मूल तो श्रीरामचरणानुराग ही है। 'मूल' कहनेका भाव उसमें सब धर्म समाहित है और इसके न होनेपर सब धर्मोंका होना भी व्यर्थ है। वह राम प्रेम तो तुम्हारा धन, जीवन और प्राण है एतावता तुम्हारी तरह भूरिभाग—परम भाग्यवान् कौन हो सकता है?

तुलसी कहत सुनत सब समुझत कोय।
बड़े भाग अनुराग राम सन होय॥

(बरवै रामायण ६३)

करतेहु राजु त तुम्हहि न दोषू।
रामहि होत सुनत संतोषू॥

अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहि उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु॥
सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना।
भूरिभाग को तुम्हहि समाना॥

महर्षि भरद्वाज श्रीभरतजीकी 'रामप्रीति' कहकर अब श्रीरामजीका 'भरतप्रेम' कहते हैं। हे भरत! श्रीरामजीके मनमें तुम्हारी तरह कोई प्रेमपात्र नहीं है। श्रीरामने मेरे आश्रममें एक रात्रि निवास किया था। उस रात्रिमें श्रीराम-लक्ष्मण सीता तीनोंने शयन नहीं किया और तुम्हारी सराहनामें ही उनकी सारी रात व्यतीत हो गयी। कभी श्रीराम वक्ता होते और श्रीसीता लक्ष्मण दोनों श्रोता होते, कभी श्रीसीता कहतीं तो श्रीराम लक्ष्मण सुनते और कभी श्रीलक्ष्मण वक्ता होते तो श्रीसीता राम सुनते। इस प्रकार भरत चरित्र कहते सुनते समस्त रात्रि व्यतीत हो गयी।

सुनहु भरत रघुबर मन माहीं।
प्रेम पात्र तुम्ह सम कोउ नाहीं॥
लखन राम सीतहि अति प्रीती।
निसि सब तुम्हहि सराहत बीती॥

हे भरत! और लोग तो श्रीरामजीसे प्रेम करते हैं; परन्तु तुम तो श्रीराम प्रेमके साक्षात् विग्रह हो। प्रेम प्रत्यक्ष नहीं दिखाई पड़ता, उसका अनुभव किया जा सकता है '**अनुभवरूपत्वात्**' परन्तु श्रीरामप्रेम ही मूर्तरूपसे प्रकट हुआ है, उसका नाम भरत है।

तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू।
धरें देह जनु राम सनेहू॥

श्रीभरद्वाजजी कहते हैं—हे भरत! तुम्हारे लिए यह कलङ्क है; परन्तु हम सबके लिये उपदेश है। श्रीरामभक्तिरूपी रसकी सिद्धिके लिये यह समय श्रीगणेश हुआ है।

तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समउ गनेसु॥

श्रीभरतजीको गुरुदेवने, मन्त्रियोंने तथा माताने राज्य करनेके लिये कहा; परन्तु श्रीभरतजीने उस राज्यग्रहणको भक्तिमार्गमें कलङ्क माना और उसका त्याग कर दिया। निषादराजने भी राज्यको कलङ्क ही माना। वे कहते हैं

तब कलंकु अब जीवनु हानी।

श्रीभरतजीका यह कलङ्क मानकर राज्यका परित्याग करना ही समस्त रामभक्तोंके लिये, त्यागियोंके लिये, तपस्वियोंके लिये उपदेश हो गया। यहाँतक कि श्रीभरतके राज्यके प्रस्तोता—प्रस्ताव करनेवाले श्रीवसिष्ठजी भी चित्रकूटमें कहते हैं *'भरत भगति बस भै मति मोरी।'* और अन्तमें श्रीअयोध्याजीमें जाकर यह कहेंगे—

समुझब कहब करब तुम्ह जोई।
धरम सारु जग होइहि सोई॥

(२। ३२३)

श्रीभरद्वाजजी भी कहते हैं—हे भरत! तुम्हारा कलङ्क मानकर राज्य आदि वैभव सुखका परित्याग करना ही हम सबके लिए उपदेश हो गया। इससे श्रीरामभक्तिरस स्वयं सिद्ध हो गया। भाव कि विषयरसमें यदि आनन्द होता तो श्रीभरतजी उसका परित्याग क्यों करते? एतावता श्रीराम भक्तिरसको सिद्ध करनेके लिये आपका त्याग श्रीगणेश हो गया। भाव यह है कि हे भरत! तुम भक्तिरसके सिद्ध आदर्श हो। प्रवृत्तिमार्गी और निवृत्तिमार्गी दोनों ही इस चरित्रसे शिक्षा ग्रहण करेंगे। इसीका विस्तार आगे कर रहे हैं।

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा।
रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥

श्रीभरद्वाजजीने श्रीभरतयशचन्द्रका अनुपम वर्णन किया है। उसका अनुशीलन करनेसे श्रीभरतकी महत्ताका स्पष्ट परिज्ञान होता है। श्रीरघु, श्रीदशरथ आदि सभीके यश चन्द्रमाके समान हैं; परन्तु श्रीभरतका यशचन्द्र अनुपम है; क्योंकि श्रीभरतयशचन्द्रमें रामप्रेम मृगके रूपमें निरन्तर निवास करता है।

कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा।
जहँ बस राम प्रेम मृगरूपा॥

इसी सन्दर्भमें श्रीभरद्वाजजीने कहा—आपके पूर्व पुरुष सभी महान् थे। राजा भगीरथने इस भूतलपर पतितपावनी कलिमलहारिणी भगवती भास्वती भागीरथी गङ्गाको प्रकट किया। उनकी परम पावन तपस्याके प्रभावने श्रीगङ्गाको भूतलपर आनेके लिये विवश कर दिया। जिन गङ्गाके स्मरण करते ही समस्त मङ्गलोंकी खानि प्राप्त हो जाती है। उनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व चक्रवर्त्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजीका है। श्रीदशरथके गुण समूहोंका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनसे अधिककी तो चर्चा ही व्यर्थ है, उनके समान भी संसारमें कोई नहीं है। उनकी विशेषता यह है कि उनके प्रेम और सङ्कोचके वशमें होकरके पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीराम आकर प्रकट हो गये। जिनको भूतभावन भगवान् श्रीगौरीनाथने अपने हृदयके नेत्रोंसे कभी तृप्त होकर नहीं देखा। हे भरत! तुमने कीर्तिरूपी अनुपम चन्द्रमाको समुदित किया; जिसमें रामप्रेमरूपी हिरन बसता है। एक दूसरेसे दूसरेका महत्त्व अधिक कहा है। गङ्गासे श्रेष्ठ श्रीरामजी और रामजीसे श्रेष्ठ रामजीका प्रेम है। गङ्गाजीकी उत्पत्ति भगवान् श्रीरामके मङ्गलमय पावन चरणोंसे है।

नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी।
(७। १३)

और भगवान् श्रीरामका प्राकट्य श्रीरामप्रेमसे होता है ***'प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।'*** श्रीगङ्गाको लानेवाले श्रीभगीरथजी अपने कुलमें सर्वश्रेष्ठ हुए। उनसे भी श्रेष्ठ श्रीदशरथजी, जिन्होंने भगवान् श्रीरामको प्रकट किया और उनसे श्रेष्ठ हे भरत! तुम हो; क्योंकि तुमने श्रीराम प्रेमामृतको प्रकट किया है।

भूप भगीरथ सुरसरि आनी।
सुमिरत सकल सुमंगल खानी॥
दशरथ गुन गन बरनि न जाहीं।
अधिकु कहा जेहि सम जग नाहीं॥
जासु सनेह संकोच बस राम प्रगट भए आइ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ॥
कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा।
जहँ बस राम पेम मृगरूपा॥

इसके पश्चात् श्रीभरद्वाजजीने बड़ी उदारतापूर्वक श्रीभरतजीकी महिमाका निरूपण किया है। वे कहते हैं—हे भरत! हमारी बात ध्यानसे सुनो। हमारे वचनमें अतिशयोक्ति नहीं, चाटुकारिता नहीं है, मिथ्या स्तुति नहीं है; क्योंकि हम मिथ्या भाषण नहीं करते। मिथ्याभाषण राग और द्वेषसे किया जाता है हम उदासीन हैं, तपस्वी हैं और वनमें रहते हैं। किसीसे हमारा कोई स्वार्थ नहीं है।

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं।
उदासीन तापस बन रहहीं॥
सब साधन कर सुफल सुहावा।

लखन राम सिय दरसनु पावा॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा।
सहित पयाग सुभाग हमारा॥

हे भरत! हमने वनमें उदासीन भावसे रहकर तपस्या की और अनेक साधन किये। उनके सुन्दर फलके रूपमें हमें श्रीसीतारामजी और श्रीलक्ष्मणजीके दर्शन मिले। उस दर्शनके फलके रूपमें तुम्हारा दर्शन हुआ। हे भरत! तुमने अपने पावन यशके द्वारा जगत्को जीत लिया। इतना कहते-कहते मुनिराजकी प्रेम समाधि लग गयी किं वा वे श्रीभरतजीके स्नेहसमुद्रमें डूब गये।

भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ।
कहि अस पेम मगन मुनि भयऊ॥

जिन्होंने मनन करके विचार करके कहा था ऐसे मुनिके वचनोंको सुनकर सभासद—तीर्थराज प्रयागके निवासी महात्मा प्रसन्न हो गये। देवताओंने 'साधु-साधु' कह करके फूलोंकी वर्षा की। आकाश और प्रयागमें 'धन्य-धन्य' की ध्वनि होने लगी।

सुनि मुनि बचन सभासद हरषे।
साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
धन्य धन्य धुनि गगन पयागा।
सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा॥

श्रीभरतजीके शरीरमें पुलकावली छा गयी, उनके हृदयमें श्रीसीतारामजी हैं, उनके कमलके समान नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलक रहे हैं। वे मुनि-मण्डलीको प्रणाम करके आर्द्रस्वरमें बोले।

पुलक गात हियँ रामु सिय सजल सरोरुह नैन।
करि प्रनामु मुनि मंडलिहि बोले गदगद बैन॥

श्रीभरतजीने अपने हृदयके दु:खको श्रीअयोध्याजीमें नहीं कहा। आज मुनियोंकी सभामें तीर्थराजमें अपने दु:खका निवेदन करते हैं। संसारके सामने कभी अपना दु:ख कहना भी नहीं चाहिए। संसारके लोग दु:ख सुनकर हँसी उड़ाते हैं। श्रीराम प्रेमको ढोंग समझते हैं। एतावता भगवान् और भगवान्के भक्तोंके सामने ही हृदयका निवेदन करना चाहिये। श्रीभरतजीने कहा हे महर्षे! आप सर्वज्ञ हैं। यहाँ मुनियोंका समाज है और यह तीर्थराज प्रयाग है मैं सच्चेभावसे कहता हूँ। मुझे माता कैकेयीके करनीकी कोई चिन्ता नहीं है। संसार मुझे नीच कहेगा या सोचेगा इसका भी मेरे मनमें क्लेश नहीं है। मुझे मेरे परलोकके नष्ट होनेका भी डर नहीं है और न पिताजीकी मृत्युका ही शोक है। उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणकी तरह पुत्र प्राप्त किये और श्रीरामजीके विरहमें अपने क्षणभङ्गुर देहका त्याग किया ऐसे महान् पुरुषके लिए शोक करनेका प्रसङ्ग ही कौन है? हे महर्षे! हमारे मनमें केवल यही दु:ख है कि श्रीरामजी, श्रीलक्ष्मणजी और श्रीसीताजी अपने श्रीचरणोंमें बिना पदत्राण धारण किये हुए मुनियोंका वेष बनाये वन-वनमें फिरते हैं। वे वल्कल वस्त्र धारण करते हैं, फलोंका भोजन करते हैं, कुश और पत्ते बिछाकर भूमिपर शयन करते हैं। वृक्षोंके नीचे निवास करके निरन्तर सर्दी, गर्मी, वर्षा और हवा सहते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! इस दु:खके दाहसे मेरा हृदय निरन्तर सन्तप्त रहता है। न मुझे दिनमें भूख लगती है और न रातको निद्रा आती है। मैंने मन ही मन समस्त विश्वको खोज डाला, परन्तु इस कुरोगकी औषधि कहीं नहीं है।

तुम्ह सर्बग्य कहउँ सतिभाऊ।
उर अंतरजामी रघुराऊ॥

मोहि न मातु करतब कर सोचू।
नहिं दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू॥
नाहिन डर बिगरिहि परलोकू।
पितहु मरन कर मोहि न सोकू॥
सुकृत सुजस भरि भुवन सुहाए।
लछिमन राम सरिस सुत पाए॥
राम बिरहँ तजि तनु छनभंगू।
भूप सोच कर कवन प्रसंगू॥
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं।
करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं॥
अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥
एहि दुख दाह दहइ नित छाती।
भूख न बासर नीद न राती॥
एहि कुरोग कर औषधु नाहीं।
सोधेउँ सकल बिश्व मन माहीं॥

इसके आगे श्रीभरतजी एक कुयोगकी बात कहते हैं—माताका कुमत—बुरा विचार पापोंका मूल बढ़ई है। उसने हमारे हितका वसूला बनाया, उससे कलहरूपी कुत्सित काष्ठका—बहेड़ा अथवा बेरकी लकड़ीका कुयन्त्र बनाया और चौदह वर्षकी अवधिरूपी कठिन कुमन्त्र पढ़कर उस यन्त्रको गाड़ दिया। मेरे लिये उसने यह समस्त कुठाट—बुरासाज रचा और बारह बाट करके नष्ट कर डाला। यह कुयोग श्रीरामचन्द्रजीके लौट आनेपर ही मिट सकता है और तभी श्रीअयोध्याजी बस सकती हैं, अन्य किसी उपायसे नहीं बस सकती हैं।

मातु कुमत बढ़ई अघ मूला।
तेहिं हमार हित कीन्ह बँसूला॥
कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू।
गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू॥
मोहि लगि यहु कुठाटु तेहि ठाटा।
घालेसि सब जगु बारहबाटा॥
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ।
बसइ अवध नहिं आन उपाएँ॥

इस प्रयोगके कई उपाय विचारकोंने कहे हैं। एक विचारकका भाव यह है—कि तन्त्रविद्यामें एक प्रयोग होता है, भरणी आदि कुत्सित नक्षत्रमें, निकृष्ट मासमें, रिक्ता आदि तिथिमें शनि या मंगलके दिन वज्र आदि कुत्सित योगमें नग्न होकर बहेड़ा या बेरकी लकड़ी लावे और उसकी कील बनाकर उच्चाटन मन्त्र पढ़कर जहाँ गाड़ दे वहाँके निवासी वहाँसे भाग जायेंगे और वह स्थान बारहबाट—उजाड़ हो जायेगा। 'बारहबाट' शब्दका प्रयोग गोस्वामीजीने अन्यत्र भी किया है।

लंक असुभ चर्चा चलति हाट बाट घर घाट।
रावन सहित समाज अब जाइहि बारह बाट॥

(रामाज्ञा प्रश्न ५। ६। २)

श्रीगोस्वामीजीने श्रीदोहावली रामायणमें लिखा है कि जो क्रूर राजा राज्य करते हुये अकारण ही बुरे बारहबाटकी रचना करने लगते हैं वे दुर्योधनके समान बारहबाट हो जाते हैं, अर्थात् सब प्रकारसे नष्ट हो जाते हैं।

राज करत बिनु काज ही ठटहिं जे कूर कुठाट।
तुलसी ते कुरुराज ज्यों जैहैं बारहबाट॥

(श्रीदोहावलीजी ४। १७)

कुछ लोग 'बारहबाट' इस प्रकार कहते हैं।

मोहो दैन्यं भयं ह्रासो हानिर्ग्लानिः क्षुधा तृषा।
मृत्युः क्षोभो व्यथा कीर्तिर्वाटो ह्येते च द्वादश॥

उसको हिन्दीमें इस प्रकार कहा जाता है।

दैन्य मोह भय ह्रास क्षुधा लोभ पीड़ा मरन।

हानि गलानि पियास अपयश बारहबाट ये॥

इसमें मोह, दीनता, हानि और ग्लानि अवधवासियोंको, भय रावणको, ह्रास श्रीजनक आदिको, क्षुधा एवं प्यास श्रीलक्ष्मण-जानकीको, क्षोभ देवताओंको, मृत्यु श्रीदशरथजीको, व्यथा कुबरी आदिको और अपयश कैकेयीको प्राप्त हुआ।

श्रीभरतजीके वचनोंको सुनकर श्रीभरद्वाज मुनिने उन्हें आश्वस्त करते हुये कहा—हे तात! आप चिन्ता न करिये, श्रीरामचन्द्रजीके मङ्गलमय श्रीचरणोंका दर्शन मिलते ही समस्त क्लेशोंकी निवृत्ति हो जायगी।

तात करहु जनि सोचु बिसेषी।
सब दुखु मिटिहि राम पग देखी॥

श्रीभरद्वाजजीने कहा—हे भरत! अब आप हमारा आतिथ्य स्वीकार करें।

करि प्रबोधु मुनिबर कहेउ अतिथि पेमप्रिय होहु।
कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु॥

सुनकर श्रीभरतजीको सोच और सङ्कोच अवश्य हुआ; परन्तु उन्होंने '**गुरोराज्ञा गरीयसी**' के अनुसार मुनिराजकी वाणीका गौरव समझकर उनके चरणोंमें वन्दना करके हाथ जोड़कर कहा—हे नाथ! आपकी आज्ञाको आदरपूर्वक मानना हमारा धर्म है।

सुनि मुनि बचन भरत हियँ सोचू।
भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू॥
जानि गरुइ गुर गिरा बहोरी।
चरन बंदि बोले कर जोरी॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा।
परम धरम यहु नाथ हमारा॥

मुनिने ऋद्धियों और अणिमादि सिद्धियोंको बुलाकर सब व्यवस्था करनेकी आज्ञा दी कि श्रीभरतजी शत्रुघ्न एवं समाजके सहित श्रीरामके विरहमें व्याकुल हैं। उनका प्रेमपूर्वक आतिथ्य कर उनके श्रमका अपहरण करो।

राम बिरह ब्याकुल भरतु सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज॥

सुनते ही सबने सबको निवास स्थान देकर स्वागत की, भोजनकी, शयनकी अपूर्व व्यवस्था की। श्रीभरतजीने जब मुनिके प्रभावका दर्शन किया तब उन्हें लोकपतियोंके लोकोंके वैभव थोड़े प्रतीत हुये।

मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका।
सब लघु लगे लोकपति लोका॥

श्रीभरतजीने अपने समाजके सहित मुनिके उस वैभवशाली आश्रममें रात्रि किस प्रकार व्यतीत की श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं।

संपति चकई भरतु चक मुनि आयस खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजराँ राखे भा भिनुसार॥

प्रात:काल उठकर श्रीभरतजीने तीर्थराजमें स्नान किया और अपने समाजके साथ मुनिके श्रीचरणोंमें प्रणाम करके उनकी आज्ञा एवं आशीर्वाद प्राप्त करके पुन: दंडवत् करके अनेक प्रकारसे विनती की।

कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा।
नाइ मुनिहि सिरु सहित समाजा॥
रिषि आयसु असीस सिर राखी।
करि दंडवत बिनय बहु भाषी॥

तदनन्तर चतुर मार्गदर्शकोंके साथ सब लोगोंको साथमें लिये हुये श्रीभरतजी चित्तसे श्रीसीतारामका स्मरण करते हुये चले। उनके चरणोंमें न तो जूते हैं और न शिरपर छाया है। उनका प्रेम, नेम, व्रत और धर्म सच्चा है। श्रीरामचन्द्रजीके निवास

करनेके स्थानों और वृक्षोंको देखकर श्रीभरतजीके हृदयमें प्रेम रोके नहीं रुकता। श्रीभरतजीकी यह स्नेहमयी स्थिति देखकर देवता पुष्प बरसाने लगे। भगवती भूदेवी सुकोमल होगयीं और मार्ग मङ्गलका मूल बन गया।

राम बास थल बिटप बिलोकें।
उर अनुराग रहत नहिं रोकें॥
देखि दसा सुर बरिसहिं फूला।
भइ मृदु महि मगु मंगल मूला॥

एक भावुक सन्तसे एक कथा सुनी थी, वह कथा इस प्रसङ्गमें स्मरण आ रही है। श्रीरामजी इसी मार्गसे जब चित्रकूट जा रहे थे तब एक बड़ा तीखा सा काँटा श्रीकिशोरीजीके चरणोंमें लगा। वह काँटा पादतलसे प्रविष्ट होकर पाद पृष्ठतक पहुँच गया। परम सुकुमार श्रीचरणकमलोंवाली परम सुकुमारी श्रीकिशोरीजी भूमिपर गिर पड़ीं। श्रीलक्ष्मण करुणार्द्र होकर आँखोंसे अश्रुवर्षण करते हुये धीरे-धीरे काँटा निकाल रहे हैं। करुणामय श्रीठाकुरजीकी आँखोंमें आँसू छलक आये। भगवान्‌ने पृथ्वीसे कहा—हे पृथ्वि! मेरी एक प्रार्थना है-------। पृथ्वीने कहा—हे रघुनन्दन! अब इस प्रकार काँटे नहीं गड़ेंगे। श्रीरामजीने कहा—हे वसुन्धरे! यदि श्रीसीताके चरणोंमें काँटे नहीं गड़ेंगे तो भारतीय संस्कृतिकी आराध्या, पतिव्रताओंकी आदर्शस्वरूपा श्रीसीताका स्वरूप संसारके सामने कैसे आयेगा? हे क्षमाशीले! यदि लक्ष्मणके चरणोंमें काँटे नहीं गड़ेंगे तो सेवक धर्मका आदर्श कैसे स्थापित होगा? हे धरित्रि! यदि मेरे चरणोंमें काँटे नहीं गड़ेंगे तो लोकनायकका उदात्तस्वरूप दुनियाँके सामने कैसे आयेगा? हे पृथ्वि! लोकनायकका स्वरूप मखमली गद्दीपर नहीं है अपितु बीहड़ वनमें काँटोंपर चलनेमें है। उत्तरकाण्डमें वेदोंने अपनी स्तुतिमें कहा है—

ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे॥

(७। १३)

श्रीशुकदेवजी महाराजने श्रीरामचरित्रका वर्णन करते हुये दण्डक कण्टक विद्ध श्रीचरणोंका स्मरण किया है।

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः।
स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात्ततः॥

(श्रीमद्भागवत ९। ११। १९)

अर्थात् भगवान् लोकनायक श्रीराम अपने स्मरण करनेवाले भक्तोंके हृदयमें अपने उन श्रीचरणकमलोंको स्थापित करके, जो दण्डक वनके काँटोंसे विद्ध होगये थे, अपने स्वयंप्रकाश परमज्योतिर्मय धाममें चले गये।

भगवान् लोकनायक श्रीराम भूदेवीसे प्रार्थना करते हैं। हे सर्वंसहे! मेरे, सीताके और लक्ष्मणके मार्गमें यदि काँटे आते हैं तो आयें, गड़ते हैं तो गड़ें परन्तु हे देवि! इस मार्गसे जब मेरा लाड़ला, दुलारा, प्यारा, सुकुमार स्वभावका, भक्तहृदय भरत आवे तो उसके मार्गको सुकोमल बना देना। उसके चरणोंमें काँटे न चुभोना; अन्यथा अनर्थ हो जायगा। पृथ्वीने पूछा—हे प्रभो! जब आप, सीता और लक्ष्मण काँटोंकी व्यथा सह सकते हैं तो श्रीभरत सह नहीं सकते? वे तो सन्त हैं, सन्त तितिक्षु होता है। श्रीरामजीने कहा—हे पृथ्वि! आपने सन्तकी परिभाषा गलत की है। सन्त कभी अपने दुःखसे दुःखी नहीं होता है।

सन्त हृदय नवनीत समाना।
कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता।
पर दुख द्रवहिं सन्त सुपुनीता॥

(७। १२५)

मेरा भरत साधु स्वभावका है अत: मेरे भरतके चरणोंमें जब इस प्रकार काँटे चुभेंगे तब वह अपनी व्यथासे व्यथित नहीं होगा अपितु काँटा लगते ही वह यह सोचेगा कि हा हन्त! इसी तरह काँटे मेरे परम सुकुमार स्वामी श्रीरामजीके, परम सुकुमारी मैथिलीके चरणोंमें और कोमलमूर्ति श्रीलक्ष्मणके चरणोंमें चुभे होंगे। यह सोचकर हे देवि! उसका हृदय विदीर्ण हो जायेगा। इसलिए मेरी प्रार्थना है—जब मेरा लाड़ला भरत आवे तब आप अपने कोमल स्वरूपका दर्शन कराना और उसके चरणोंमें इस प्रकार काँटे न चुभाना। आर्द्र होकर भूदेवीने कहा—हे नाथ! हमें क्षमा करें, आपकी आज्ञाका यथावत् पालन होगा।

आज जब श्रीभरतलालजी इस मार्गमें आये तब भूमि कोमल हो गयी, देवताओंने भी मार्गको पुष्पमय बना दिया, मेघ भी छाया किये जा रहे हैं और सुन्दर वायु बहने लगी। श्रीभरतजीके जाते समय जैसा सुखमय मार्ग हुआ। वैसा मार्ग श्रीरामजीकी यात्राके समय नहीं हुआ था।

देखि दसा सुर बरिसहिं फूला।
भइ मृदु महि मगु मंगल मूला॥
किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात॥

देवतालोगोंने जब श्रीभरतजीका प्रभाव देखा तब चिन्तित होकर गुरु वृहस्पतिजीसे कहते हैं—हे गुरुदेव! श्रीरामजीका संकोची स्वभाव है और वे प्रेमाधीन हैं। श्रीभरतजी अकपटप्रेमके समुद्र हैं। बनी बनाई बात बिगड़ना चाहती है। अतएव ऐसा छल सोचा जाय कि काम बन जाय।

रामु सँकोची प्रेम बस भरत सपेम पयोधि।
बनी बात बेगरन चहति करिअ जतनु छलु सोधि॥

इन्द्रकी बात सुनकर साधु हृदय श्रीवृहस्पतिजीने अपने मनमें सोचा—इस इन्द्रके हजारों नेत्र हैं; परन्तु यह अन्धा ही है। श्रीभरतजीकी महिमा इसकी समझमें नहीं आ रही है।

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने।
सहसनयन बिनु लोचन जाने॥

श्रीगुरुदेव कहते हैं—हे देवेन्द्र! श्रीरामजीका यह स्वभाव है कि वे कभी भी अपने अपराधसे क्रुद्ध नहीं होते; परन्तु जो उनके भक्तका अपराध करता है वह उनकी क्रोधाग्निमें भस्म हो जाता है। यह महिमा महर्षि दुर्वासा भलीभाँति जानते हैं। यह इतिहास लोक वेदमें प्रसिद्ध है।

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ।
निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥
जो अपराधु भगत कर करई।
राम रोष पावक सो जरई॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा।
यह महिमा जानहिं दुरबासा॥

श्रीगोस्वामीजी श्रीकवितावली रामायणमें श्रीरामजीके इस स्वभावका वर्णन करते हैं।

बेद बिरुद्ध मही, मुनि, साधु ससोक किए, सुरलोकु उजारो।
और कहा कहौं, तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोपु न धारो॥
सेवक-छोह तें छाड़ी छमा, तुलसी लख्यो राम! सुभाउ तिहारो।
तौलौं न दापु दल्यो दसकंधर जौलौं बिभीषन लातु न मारो॥

(श्रीकवितावलीरामायण ७। ३)

गुरूजीने श्रीभरतका अत्यन्त संक्षिप्त परंतु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और परिपूर्ण परिचय दिया है। श्रीभरतजीको समझनेके लिये अनूठी पंक्ति है। यह परिचय 'बिन्दु में सिन्धु' की भाँति है।

भरत सरिस को राम सनेही।
जगु जप राम रामु जप जेही॥

श्रीगुरुदेव कहते हैं—हे सुरपाल! श्रीरामजीके भक्त महान् परोपकारी, दूसरोंके दु:खसे दु:खी और कृपालु होते हैं। फिर श्रीभरतजी तो भक्तोंके चक्रचूड़ामणि हैं। एतावता उनसे भय न करो। वे तुम्हारा भी मङ्गल करेंगे।

राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत ते जनि डरपहु सुरपाल॥

श्रीगुरुदेवका वचन सुनकर देवेन्द्र इन्द्रकी ग्लानि समाप्त हो गयी। वे प्रसन्न होकर श्रीभरतजीके स्वभावकी श्लाघा करते हुए फूल बरसाने लगे।

सुनि सुरबर सुरगुर बर बानी।
भा प्रमोदु मन मिटी गलानी॥
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ।
लगे सराहन भरत सुभाऊ॥

उस दिन श्रीयमुनाजीके तटपर निवास किया। दूसरे दिन श्रीनिषादराजके प्रयत्नसे सब लोग एक ही खेवेमें यमुना पार हो गये।

प्रात पार भए एकहि खेवाँ।
तोषे राम सखा की सेवाँ॥

स्नानादिसे निवृत्त होकर श्रीयमुनाजीको प्रणाम करके सबलोगोंने प्रस्थान किया। मार्गके नर-नारी श्रीभरतजीका दर्शन करते हैं। उन्होंने पहले श्रीरामजीके दर्शनका आनन्द लिया था। ग्राम बधूटियाँ एक दूसरेसे कहती हैं। एकने कहा—हे सखि! ये राम-लक्ष्मण हैं कि नहीं? दूसरीने कहा—हे सखि! अवस्था, शरीर और रङ्ग-रूप तो वही है। शील, स्नेह और चाल भी उन्हींके समान है। तीसरीने कहा—हे सखि! हमें तो दोनोंमें अन्तर दिखाई पड़ता है। दोनोंके वेषमें अन्तर है। इनके साथ सीताजी भी नहीं हैं। इनके आगे चतुरङ्गिणी सेना चली जा रही है, इनके मन प्रसन्न नहीं हैं और इनके मनमें खेद है। इस भेदके कारण सन्देह होता है।

कहहिं सपेम एक एक पाहीं।
रामु लखनु सखि होहिं कि नाहीं॥
बय बपु बरन रूपु सोइ आली।
सीलु सनेहु सरिस सम चाली॥
बेषु न सो सखि सीय न संगा।
आगें अनी चली चतुरंगा॥
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा।
सखि संदेहु होइ एहिं भेदा॥

वास्तवमें यह अन्तर जीव और ब्रह्मका अन्तर है। अत्यन्त संक्षेपमें—मात्र स्पर्श करके कह रहा हूँ। ब्रह्म और जीवमें अन्तर होता है; क्योंकि ब्रह्म सर्वदा एकरस रहता है, ब्रह्म शक्तिमान् है अत: श्रीरामजीके साथ आदिशक्ति, महाशक्तिस्वरूपा श्रीसीताजी रहती हैं। जीवको बाह्य उपकरणकी आवश्यकता होती है अत: श्रीभरतके साथ चतुरङ्गिणी सेना है। ब्रह्मके मनमें कोई कामना नहीं होती है वह आप्तकाम—पूर्णकाम है। इसीलिये श्रीरामजी प्रसन्न हैं। जीवके मनमें कामनायें आती रहती हैं अत: वह प्रसन्न नहीं है इसी कारण उसे मानसिक खेद भी है। एक सखीने कहा—हे सखि! तू तो बड़ी सयानी है। तू तो वेदान्तकी व्याख्या कर रही है।

तासु तरक तियगन मन मानी।
कहहिं सकल तेहि सम न सयानी॥

सखियाँ एक दूसरेको सब कथा प्रसङ्ग सप्रेम सुनाकर श्रीभरतजीके शील, स्नेह और सौभाग्यकी सराहना करने लगीं। एक भावुक ग्रामबधूटी कहने लगी—हे सखि! ये श्रीभरत पितृप्रदत्त राज्यका परित्याग करके बड़े भाईकी भाँति पैदल चल रहे हैं, फलाहार करते हैं और श्रीरामजीको मनाने जा रहे हैं अत: इनके समान आज कौन है?

चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहि भरत सरिस को आजु॥

इस प्रकार मार्गमें लोगोंको आनन्द देते हुए, उस दिन रातमें मार्गमें ही निवास करके दूसरे दिन प्रात:काल श्रीरामजीका स्मरण करके चले। सबलोगोंकी श्रीभरतकी ही भाँति श्रीरामजीके दर्शनोंकी उत्कट लालसा है।

तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ॥

किसीके मनमें श्रीरामजीके प्रति वात्सल्य भाव है वह अपनी भावनाके अनुसार श्रीरामजीसे मिलनेकी अभिलाषा कर रहा है। इसी तरह किसीकी मित्रकी भावना है, किसीका दास्यभाव है। सबलोग अपनी अपनी भावनाके अनुसार प्रभुसे मिलनेकी अभिलाषा कर रहे हैं। सब मोहरूपी मदिरासे छके हुए मदमत्तकी भाँति चल रहे हैं। मदमत्तके अङ्गमें शिथिलता आ जाती है, चलनेमें चरण कभी इधर कभी उधर पड़ते हैं, मुखसे शब्द भी ठीक नहीं निकलते हैं, सब प्रेमके वशमें हैं। इनके वचनोंमें विह्वलता दिखाई और सुनायी पड़ती है।

करत मनोरथ जस जियँ जाके।
जाहिं सनेह सुराँ सब छाके॥
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं।
बिहबल बचन प्रेम बस बोलहिं॥

धन्य हैं श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी, जिन्होंने स्नेहका इस प्रकार सुरा-मदिराके रूपमें वर्णन किया है। प्राय: लोगोंने मोहको मदिराके रूपमें कहा है। रामसखा निषादराजने उस समय सबको शैलशिरोमणि कामदगिरिका दर्शन कराया। जिनके निकट ही पयस्विनी नदीके तटपर श्रीरामजीके सहित दोनों भाई निवास करते हैं। श्रीकामदगिरिका दर्शन करके 'जानकीजी, श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो' इस प्रकार जोरसे और स्नेहसे सम्मिलित गर्जना कर दण्डवत् प्रणाम करते हैं।

देखि करहिं सब दंड प्रनामा।
कहि जय जानकि जीवन रामा॥

श्रीगोस्वामी कहते हैं—अन्य लोगोंके स्नेहका तो वर्णन मैं किञ्चिन्मात्र कर भी लेता परन्तु श्रीभरतजीका उस समय जैसा प्रेम था वैसा ठीक ठीक वर्णन तो सहस्रमुखवाले भगवान् शेष भी नहीं कर सकते हैं। कविके लिये तो वह उसी प्रकार अगम है जिस प्रकार अज्ञान और ममतासे मलिन मनवाले मनुष्योंके लिए ब्रह्मानन्द।

भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु॥

समस्त नर-नारी श्रीरामजीके अतिशय प्रेमसे शिथिल होनेके कारण सूर्यास्त होनेतक चलते रहनेपर भी दिनभरमें दो ही कोस चल पाये। फिर जल-थलका सुभीता देखकर रातको वहीं बिना कुछ खाए पीए सो गये। रात्रि व्यतीत होनेपर श्रीरामानुरागी भरतजीने आगे प्रस्थान किया।

सकल सनेह सिथिल रघुबर कें।
गए कोस दुइ दिनकर ढरकें॥

जलु थलु देखि बसे निसि बीतें।
कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीतें॥

उधर श्रीरामजी एक प्रहर रात्रि रहते—प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्तमें जगे। श्रीसीताजी भी उदास मनसे श्रीरामजीके पास आ गयीं। आज श्रीसीताजीने स्वप्न देखा है। प्रभुने उन्हें उदास देखकर पूछा—आज तुम उदास क्यों हो? प्रभुके पूछनेपर करुणामयी जानकी फफककर रो पड़ीं। वे आर्द्रकण्ठसे स्वप्न सुनाने लगीं—हे नाथ! मैंने स्वप्न देखा है कि समाजके सहित श्रीभरतजी आये हैं। आपकी विरहरूपी अग्निमें उनका शरीर सन्तप्त है। सभी लोग मनमें उदास हैं, दीन हैं और दुःखी हैं। हे स्वामिन्! मैंने अपनी सासुओंको दूसरी ही तरह देखा है अर्थात् सौभाग्यवती स्त्रियोंके शृङ्गारसे रहित देखा है, उनकी माँगमें सिन्दूर नहीं था। श्रीसीताजीके स्वप्नको सुनकरके श्रीरामजीकी आँखोंमें आँसू भर आये। प्रभुने कहा—हे लक्ष्मण! यह स्वप्न अच्छा नहीं प्रतीत होता है। कोई अशुभ समाचार सुनावेगा।

उहाँ रामु रजनी अवसेषा।
जागे सीयँ सपन अस देखा॥
सहित समाज भरत जनु आए।
नाथ बियोग ताप तन ताए॥
सकल मलिन मन दीन दुखारी।
देखीं सासु आन अनुहारी॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन।
भए सोचबस सोच बिमोचन॥
लखन सपन यह नीक न होई।
कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥

उसी समय श्रीरामजीके प्रिय एवं विश्वस्त सेवकोंने—कोल किरातोंने सब समाचार सुनाया कि सेनाके सहित श्रीभरतजी आ रहे हैं।

सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे।

श्रीभरतके आगमनका मङ्गलमय समाचार श्रवण करके श्रीरामजीके मनमें अतिशय आनन्द हुआ। उनका शरीर पुलकित हो गया और शरद् ऋतुके कमलकी भाँति नेत्रोंसे प्रेमाश्रु छलक आये।

सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल॥

फिर श्रीसीतारमण श्रीरामजी सोचने लगे—मैंने श्रीपिताजीकी आज्ञाका पालन करनेका निश्चय किया है, कहीं इस निश्चयमें बाधा तो नहीं होगी? हे लक्ष्मण! मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि माता कैकेयीके प्रति कुपित होकर उनको कठोर वचन सुनाकर और पिताजीको प्रसन्न करके श्रीमान् भरत मुझे राज्य देनेके लिये आये हैं।

अम्बां च केकयीं रुष्य भरतश्चाप्रियं वदन्।
प्रसाद्य पितरं श्रीमान् राज्यं मे दातुमागतः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ९७। १२)

उसी समय फिर एक किरातने आकर कहा—हे प्रभो! श्रीभरतजीके साथमें विशाल चतुरङ्गिणी सेना है। सुनकर प्रभुको और अधिक चिन्ता हो गयी कि सबलोग मिलकर यदि श्रीअयोध्या लौट चलनेका प्रेमपूर्ण आग्रह करेंगे तो क्या होगा? भैया श्रीभरतजीका सौशील्य स्मरण करके कि यदि उन्होंने अधिक आग्रह किया तो मैं उसे कैसे ठुकरा पाऊँगा? श्रीगोस्वामीजीने स्पष्ट लिखा है कि प्रभुके मनमें यही सोच है—एक ओर पूज्य श्रीपिताजीकी आज्ञा और दूसरी ओर स्नेहमूर्ति भावते भैया भरतका सङ्कोच।

बहुरि सोचबस भे सियरवनू।
कारन कवन भरत आगवनू॥
एक आइ अस कहा बहोरी।
सेन संग चतुरंग न थोरी॥
सो सुनि रामहि भा अति सोचू।
इत पितु बच इत बंधु सकोचू॥

सोचते-सोचते प्रभुकी समस्याका समाधान भी श्रीभरतजीके स्वभावके स्मरणसे हो गया कि मेरा भरत मेरा आज्ञाकारी है, साधु है।

साधु ते होइ न कारज हानी।

भरत सयाने हैं अर्थात् परिस्थितिको, कर्तव्याकर्तव्यको, धर्माधर्मको समझकर दुराग्रह नहीं करेंगे।

समाधान तब भा यह जाने।
भरतु कहे महुँ साधु सयाने॥

धन्य हैं श्रीभरत! जिनके ऊपर उनके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीका इतना अगाध विश्वास है।

श्रीलक्ष्मणजीके जीवनका तो एक ही लक्ष्य है—मेरे स्वामीके मनमें किसी प्रकारका क्लेश न हो। उनकी माताका एकमात्र यही उपदेश है।

जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू।
सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥
(२। ७५)

अतएव वे प्रभुका क्षुब्ध एवं चिन्तित मुखमण्डल देखकर कहने लगे—हे स्वामी! श्रीभरतजी नीतिपरायण, साधु और सुजान हैं। उनका सरकारके श्रीचरणोंमें प्रेम है; परन्तु वे भी आज राज्यपद पाकरके धर्मकी मर्यादा समाप्त करके आये हैं।

भरतु नीति रत साधु सुजाना।
प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना॥
तेऊ आजु राम पदु पाई।
चले धरम मरजाद मेटाई॥

आज वे अपने राज्यको निष्कण्टक करने आ रहे हैं, अन्यथा इस समय रथों, घोड़ों और हाथियोंका समूह किसको सुहाता?

जौं जियँ होति न कपट कुचाली।
केहि सोहाति रथ बाजि गजाली॥

श्रीलक्ष्मणजीके वक्तव्यके दो भाग हैं। पहले तो वे नीति सम्बन्धी चर्चा कर रहे हैं; परन्तु श्रीभरतने नि:सहाय समझकर मेरे रामका—मेरे स्वामीका निरादर किया है।

निदरे रामु जानि असहाई।

इस विचारके आते ही श्रीलक्ष्मणको नीतिरस भूल गया और

'समर सरोष राम मुखु पेखी'

कहते-कहते पूर्णरूपसे 'वीर रस' समुदित हो गया।

एक कीन्हि नहिं भरत भलाई।
निदरे रामु जान असहाई॥
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेषी।
समर सरोष राम मुखु पेखी॥
एतना कहत नीति रस भूला।
रन रस बिटपु पुलक मिस फूला॥

अभीतक श्रीलक्ष्मणजी बैठकर कह रहे थे; परन्तु वीररसके समुदित होते ही उठकर खड़े हो गये।

उठि कर जोरि रजायसु मागा।
मनहुँ बीर रस सोवत जागा॥

अभीतक शान्तरस रहा, जब श्रीभरतको प्रतिकूल समझा, तब वीररस जो शयन कर रहा था, वह जागृत हो गया। ओष्ठ फड़कने लगे, नेत्र

अरुण होगये आदि वीररसके समस्त चिह्न प्रकट हो गये। जटायें सिरमें बाँधकर, कमरमें निषङ्ग कसकर, धनुषको सज्ज करके हाथोंमें धनुष बाण ले लिया।

श्रीलक्ष्मणजी कहते हैं—जैसे सिंह हाथियोंके झुण्डको कुचल डालता है और बाजनामक पक्षी जैसे लवा नामके पक्षीको अपने लपेटमें ले लेता है, उसी प्रकार मैं भरतको सेनासमेत और छोटे भाई सहित तिरस्कार करके समराङ्गणमें मार डालूँगा। यदि श्रीशङ्करजी भी आकर उनकी सहायता करें तो भी मुझे श्रीरामजीकी शपथ है मैं उन्हें अवश्य मारूँगा।

जिमि करि निकर दलइ मृगराजू।
लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहिं भरतहि सेन समेता।
सानुज निदरि निपातउँ खेता॥
जौं सहाय कर संकरु आई।
तौ मारउँ रन राम दोहाई॥

श्रीलक्ष्मणको अत्यन्त क्रोधसे तमतमाया हुआ देखकर और उनकी प्रामाणिक शपथ सुनकर सब लोग भयभीत हो गये और सब लोकपाल घबड़ाकर अपने लोकोंको त्यागकर भागना चाहते हैं।

अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान॥

उसी समय श्रीलक्ष्मणके बाहुबलकी विपुल—अतिशय प्रशंसा करके देवताओंकी आकाशवाणी हुई।

जगु भय मगन गगन भइ बानी।
लखन बाहुबलु बिपुल बखानी॥

हे तात! वेद और बुध कहते हैं कि जो सहसा किसी कार्यको करके बादमें पश्चात्ताप करते हैं वे बुद्धिमान् नहीं हैं।

सहसा करि पाछें पछिताहीं।
कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥

देवताओंकी आकाशवाणी सुनकर श्रीलक्ष्मण सकुचा गये कि हमसे अवश्य अनुचित होगया है। सम्भव है, हमने भैया भरतजीको न समझा हो। श्रीसीतारामजीने श्रीलक्ष्मणजीका सङ्कोच मिटानेके लिये उनका आदरपूर्वक सन्मान किया अर्थात् अपने पास हाथ पकड़कर बिठा लिया।

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने।
राम सीयँ सादर सनमाने॥

इसके पश्चात् प्रभुने श्रीलक्ष्मणको समझाया। ***'वचन रचना नागर'*** श्रीरामजीके समझानेका बड़ा मनोवैज्ञानिक ढंग है। श्रीलक्ष्मणने अपने वक्तव्यमें जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया था, उसे ही अपने वक्तव्यके आरम्भमें श्रीरामजीने प्रतिपादित किया। श्रीरामजी अपना सबसे पहला वाक्य श्रीलक्ष्मणके समर्थनमें कह रहे हैं। 'वचन रचना नागर' की वाक्य रचनाका यह अनूठा उदाहरण है।

हे तात! तुमने बहुत सुन्दर नीतिका प्रतिपादन किया है। हे भैया! अनेक मदोंमें राज्यका मद सबसे कठिन है। हे भैया! जो राजा राजमदकी मदिराका आचमन अर्थात् पान कर लेता है, वह मतवाला हो जाता है। ध्यान दें, पूरे तीन वाक्योंमें श्रीलक्ष्मणका समर्थन करके अब उस सिद्धान्तके अपवादका प्रतिपादन करते हैं—हे लक्ष्मण! वे ही राजा राजमदमें मतवाले होते हैं, जिन्होंने साधुओंकी सभाका सेवन नहीं किया है। भरत तो स्वयं साधु हैं, अभी-अभी तुमने कहा है।

भरत नीति रत साधु सुजाना।

फिर वे कैसे मतवाले हो सकते हैं? हे लक्ष्मण! भरतकी भाँति साधु पुरुष ब्रह्माकी सृष्टिमें न कहीं सुना गया है और न देखा गया है।

सुनहु लखन भल भरत सरीसा।
बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥

श्रीअयोध्याके राज्यकी चर्चा छोड़ो, ब्रह्मा, विष्णु और शङ्करका पद पाकर भी भरतको राज्यमद नहीं हो सकता है। यह हम मानते हैं कि काँजीके खट्टे बूँदोंसे दूध फट जाता है; परन्तु वे काँजीके खट्टे बूँद क्या क्षीरसागरको भी फाड़नेमें समर्थ हो सकते हैं।

पय सिन्धुका दूध फटेगा नहीं
तुम काँजी का बूँद मिलाते रहो।

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥

हे लक्ष्मण! मेरे भरतका हृदय क्षीरसमुद्र है। क्षीरसमुद्रकी विशेषता यह है कि उसमें शेषशय्यापर श्रीलक्ष्मीनारायण निवास करते हैं। आशय यह है कि मेरे भरतके हृदयरूपी क्षीरसमुद्रमें शेष—लक्ष्मणके सहित श्रीसीतारामजी निवास करते हैं। हे भैया! जिस हृदयमें तुम्हारे आराध्य श्रीसीताराम रहते हैं क्या उस हृदयमें भी तुच्छ राज्यमदका विकार समुत्पन्न हो सकता है? इसका निर्णय तुम करो। प्रभुके कहनेका आशय यह है कि भगवान्‌का भक्त किसी मदमें मदोन्मत्त नहीं हो सकता है। यदि होता है तो वह श्रीरामभक्त नहीं है अपितु दम्भी है।

हे सुमित्रानन्दसंवर्द्धन! जहाँ सूर्य होंगे वहाँ अन्धकार नहीं रह सकता, वह तो सूर्योदयके पूर्व ही भाग जाता है *'उदय तासु त्रिभुवन तम भागा'*, वह अन्धकार तरुण सूर्यको—मध्याह्नकालीन भुवन भास्करको भले ही निगल जाय। अनन्त आकाश, जिसमें सब समा जाते हैं, वह चाहे मेघमें तन्मय होकर मिल जाय, किं वा आकाशमें मेघोंको मार्ग न मिले यह असम्भव सम्भव है। जो समुद्रको तीन आचमनमें सोख गये थे वे कुम्भज ऋषि चाहे गोखुर इतने जलमें डूब जायँ, यह असम्भव भी सम्भव हो सकता है। भूदेवीका नाम 'सर्वंसहा' है, क्षमा इनका सहज स्वभाव है। वे चाहे अपना सहज स्वभाव छोड़ दें और सुमेरु पर्वत अचल है जिसको प्रभञ्जनका वेग भी नहीं डिगा सकता, वह सुमेरु पर्वत चाहे मच्छरके फूँकसे उड़ जाय—ये पाँचों असम्भव सम्भव हो सकते हैं; परन्तु हे लक्ष्मण! मेरे त्यागी भरतको राज्यमद नहीं हो सकता है।

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई।
गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी।
सहज छमा बरु छाड़ै छोनी॥
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई।
होइ न नृपमदु भरतहि भाई॥

ये पाँच दृष्टान्त पाँच तत्वोंके हैं। आशय यह है—पाँचों तत्व अपनी पारम्परिक मर्यादा बदल सकते हैं; परन्तु मेरे भरतका हृदय परिवर्तित नहीं हो सकता है। हे लक्ष्मण! तुमने मेरे भरतको 'कुटिल' और 'कुबन्धु' कहा है

कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी।

इसके उत्तरमें मैं अपनी बातको प्रमाणित करनेके लिये शपथ करता हूँ—भरतके समान पवित्र और सुबन्धु इस सृष्टिमें नहीं है।

लखन तुम्हार सपथ पितु आना।
सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥

हे तात! गुणरूपी दूध और अवगुण रूपी जलको मिलाकर विधाता इस सृष्टिका निर्माण करता है; परन्तु भरतने सूर्यवंशरूपी सरोवरमें हंस रूप जन्म लेकर गुण और अवगुणका अलगाव कर दिया। गुणरूपी दूधको स्वीकार करके और अवगुणरूपी जलका परित्याग करके श्रीभरतने अपने यशचन्द्रसे जगत्‌को प्रकाशित कर दिया है।

सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता।
मिलइ रचइ परपंचु बिधाता॥
भरतु हंस रबिबंस तड़ागा।
जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी।
निज जस जगत कीन्हि उजिआरी॥

श्रीभरतजीके गुण, शील और स्वभावका वर्णन करते-करते श्रीरामजी भरत-प्रेम-पयोधिमें डूब गये।

कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ।
पेम पयोधि मगन रघुराऊ॥

सम्भवत: प्रभु जितना कहना चाहते थे उतना कह नहीं पाये; क्योंकि वे श्रीभरत प्रेम पयोधिमें डूब गये। डूबनेवाला बोलता नहीं है। इसीलिए श्रीनारदजीने प्रेमके स्वरूपको अनिर्वचनीय कहा है—**'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्, मूकास्वादनवत्।'**

गहरो प्रेम समुद्र है डूबे चतुर सुजान।
डूबे सो बोले नहीं बोले सो अनजान॥

देवतालोग प्रभुकी श्रीभरतस्नेहमयी वाणी सुनकर और श्रीभरतजीपर उनका अगाध अनुराग देखकर उनकी श्लाघा करने लगे—श्रीरामजीकी भाँति कृपानिकेत स्वामी और कौन हो सकता है? यदि संसारमें श्रीभरतकी भाँति महान् प्रेमीका जन्म न होता तो धरनीपर समग्र धर्मोंकी धुरीको कौन धारण करता? अथवा समस्त धर्मोंका भार और भूमिको कौन धारण करता?

सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु॥
जौं न होत जग जनम भरत को।
सकल धरम धुर धरनि धरत को॥

अब आइये, श्रीभरतके पास चलकर उनका स्वागत करते हैं उन्हें श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें ले आवें।

श्रीभरतजीने समस्त अयोध्यावासियोंके साथ पावन मन्दाकिनीजीके पावन जलमें स्नान किया। श्रीमन्दाकिनीके तटपर ही सबको रोककर माता, गुरु और मन्त्रियोंकी आज्ञा लेकर निषादराज और शत्रुघ्नको साथमें ले करके श्रीसीतारामजीके पास चले।

इहाँ भरतु सब सहित सहाए।
मंदाकिनीं पुनीत नहाए॥
सरित समीप राखि सब लोगा।
मागि मातु गुर सचिव नियोगा॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई।
साथ निषादनाथु लघु भाई॥

श्रीभरतजीके मनमें अनेक प्रकारके ऊहापोह हैं। वे माताका कर्तव्य समझकर सङ्कुचित होते हैं। मनमें अनेकों कुतर्क करते हैं। श्रीराम, लक्ष्मण और श्रीसीताजी मेरा नाम श्रवण करके अपने स्थानका परित्याग करके कहीं अन्यत्र उठकर न चले जायँ।

समुझि मातु करतब सकुचाहीं।
करत कुतरक कोटि मन माहीं॥
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ।
उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥

जिन श्रीभरतके यशका वर्णन करते-करते

भगवान् श्रीराम प्रेमसमुद्रमें निमग्न हो जाते हैं, उन परम भागवत श्रीभरतजीकी कार्पण्यता, दीनताका अनुसन्धान करें। यही भरतजीकी भक्तिकी विशेषता है, गुण है जिसे दीनबन्धु श्रीराम चाहते हैं, जो उनको प्रिय है। वे इस प्रकारकी दैन्यसंयुक्त भावनाके वशमें हो जाते हैं। इस प्रसङ्गमें आगे भी श्रीभरतके दैन्यभावका रसास्वादन करें। मैं तो दीनतापूर्वक इस प्रसङ्गको प्रणाम करके आगे चलता हूँ। श्रीभरतजी जब अपने परमाराध्य श्रीरघुनाथका स्वभाव स्मरण करते हैं तब उनके श्रीचरणोंमें गति आ जाती है—उनके श्रीचरण मार्गमें शीघ्रतासे पड़ने लगते हैं।

जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ।
तब पथ परत उताइल पाऊ॥

श्रीरामशैल—श्रीकामदगिरिकी दिव्य शोभा देखकर श्रीभरतजीके हृदयमें अतिशय अनुराग हुआ। जैसे तपस्वी नियमकी समाप्ति होनेपर तपस्याका फल प्राप्त करके सुखी हो जाता है।

राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयँ अति पेमु।
तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु॥

(नवाह्नपारायण पाँचवा विश्राम)

श्रीकेवटजी—निषादराजजी दौड़कर ऊँचे स्थानपर चढ़ गये, क्योंकि ऊँचे स्थानसे दूरकी वस्तु भी दीख जाती है। निषादराजने भुजा उठाकर श्रीभरतजीसे कहा—हे नाथ! पाकर, जम्बु-जामुन, रसाल और तमालके विशाल वृक्ष दिखायी देते हैं। इन चारों वृक्षोंके मध्यमें एक विशाल वटवृक्ष है।

तब केवटु ऊँचे चढ़ि धाई।
कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला।
पाकरि जंबु रसाल तमाला॥
जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा।
मंजु बिसाल देखि मनु मोहा॥

यह पाँचों वृक्ष नदीके समीप है, जहाँ श्रीसीतारामजीकी पर्णकुटी छायी है। पर्णकुटीके आसपास श्रीतुलसीजीके बहुतसे सुन्दर वृक्ष हैं। कुछ श्रीसीताजीने लगाए हैं और कुछ श्रीलक्ष्मणजीने लगाए हैं। इसी वटछायामें अपने प्राणप्रियतम श्रीरघुनन्दनके सत्सङ्ग करनेके लिए श्रीसीताजीने अपने सुन्दर कोमल करकमलोंसे सुन्दर वेदीका निर्माण किया है। धन्य हैं श्रीजनकनन्दिनी! और धन्य हैं उनका आदर्श। धन्य है उनकी पतिसेवा और धन्य है उनका सत्सङ्ग प्रेम! इसीलिए ये भारतीय संस्कृतिकी परम आराध्या हैं।

ए तरु सरित समीप गोसाँई।
रघुबर परनकुटी जहँ छाई॥
तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए।
कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए॥
बट छायाँ बेदिका बनाई।
सियँ निज पानि सरोज सुहाई॥

जिस वेदीका निर्माण श्रीजानकीने किया उसकी उपयोगिता क्या है, यह बताते हैं—जहाँ बैठकर सुजान श्रीसीतारामजी मुनिमण्डलीके साथ नित्य ही आगम, निगम, पुराण और इतिहासकी सब कथाएं सुनते हैं।

जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान॥

श्रीरामजीका आश्रम मुनियों और तपस्वियोंसे सेवित था। श्रीअध्यात्मरामायणमें वर्णन करते हैं—आगे बढ़नेपर श्रीशत्रुघ्नके सहित श्रीभरतने दूरसे ही भगवान् श्रीरामका मुनिजनसेवित अति

सुन्दर और भासमान सुन्दर भवन देखा। जिसमें पेड़ोंकी शाखाओंपर वल्कल वस्त्र और मृगचर्म टँगे हुए थे और श्रीरामचन्द्रके निवास करनेके कारण जो परम रमणीक था।

ददर्श दूरादतिभासुरं शुभं,
रामस्य गेहं मुनिवृन्दसेवितम्।
वृक्षाग्रसंलग्नसुवल्कलाजिनं
रामाभिरामं भरतः सहानुजः॥

(अध्यात्मरामायण २। ८। ६६)

श्रीनिषादराजजीके वचनोंको श्रवण करके, वट आदि वृक्षोंको देख करके श्रीभरतजीके नेत्रोंमें आँसू समुच्छलित हो गये। दोनों भाइयोंने जहाँसे देखा वहींसे वे साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हुए चले। अपने आराध्य श्रीरामजीके श्रीचरणोंके चिह्न देखकर दोनों भाइयोंका समस्त शरीर प्रेम और आनन्दसे पुलकित हो गया। वहाँकी रजको मस्तकपर धारण करते हैं तथा हृदय और नेत्रोंमें लगाते हैं। उस समय दोनों भाई श्रीरामजीसे मिलनेके समान आनन्द प्राप्त करते हैं।

सखा बचन सुनि बिटप निहारी।
उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई।
कहत प्रीति सारद सकुचाई॥
हरषहिं निरखि राम पद अंका।
मानहुँ पारसु पायउ रंका॥
रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं।
रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥

श्रीअध्यात्मरामायणमें भी कहते हैं—वहाँ उन्होंने सब ओर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके वज्र, अङ्कुश, कमल और ध्वजा आदिके चिह्नोंसे सुशोभित तथा भूदेवीके लिये अति मङ्गलमय चरण चिन्ह देखे। उन्हें देखकर श्रीभरत, श्रीशत्रुघ्नके सहित उस चरणरजमें लोटने लगे। और मन ही मन कहने लगे—अहो! मैं परम धन्य हूँ, जो आज अपने परमाराध्य श्रीरामचन्द्रजीके उन चरणारविन्दोंके चिन्होंसे सुशोभित भूमिका दर्शन कर रहा हूँ, जिनकी चरण रजको ब्रह्मा आदि देवगण और समस्त श्रुतियाँ भी निरन्तर अन्वेषण करती रहती हैं।

स तत्र वज्राङ्कुशवारिजाञ्चित
ध्वजादिचिह्नानि पदानि सर्वतः।
ददर्श रामस्य भुवोऽतिमङ्गला
न्यचेष्टयत्पादरजःसु सानुजः॥
अहो सुधन्योऽहममूनि राम
पादारविन्दाङ्कितभूतलानि ।
पश्यामि यत्पादरजो विमृग्यं,
ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्च नित्यम्॥

(श्रीअध्यात्मरामायण २। ९। २, ३)

श्रीभरतजीके प्रेमकी स्थिति देखकर सिद्ध और साधक लोग भी अनुरागग्रस्त हो गये और श्रीभरतजीके सहज स्नेहकी श्लाघा करने लगे—यदि इस भूतलपर श्रीभरतजीका 'भाव' न होता तो जड़को चेतन और चेतनको जड़ कौन बनाता? यहाँ 'भाव' शब्दका जन्म और प्रेम दोनों अर्थ है।

होत न भूतल भाउ भरत को।
अचर सचर चर अचर करत को॥

इसी प्रसङ्गमें इसके उदाहरण भी हैं। जङ्गलके मार्गके चप्पे चप्पेसे परिचित निषादराज श्रीभरत स्नेहके वशमें होकर मार्ग विस्मृत हो गये, यह चैतन्यका जड़ होना है। देवतालोग स्वार्थसे जड़ हो रहे थे; परन्तु श्रीभरतजीके प्रेमसे वे इतने प्रभावित हो गये कि पुष्प वर्षण करके श्रीभरतजीका मार्ग प्रदर्शन करने लगे।

सखहि सनेह बिबस मग भूला।
कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला॥

इसके आगे एक अपूर्व दोहा है। इस दोहेमें श्रीभरतलालजीके प्रेमकी उपयोगिताका वर्णन है।

पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुरसाधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥

कृपासिन्धु श्रीरघुबीरने साधुरूपी सुरोंके लिये श्रीभरतरूपी गम्भीर समुद्रका विरहरूपी मन्दर पर्वतके द्वारा मन्थन करके प्रेमरूपी अमृत प्रकट कर दिया। इस दोहामें सम अभेद रूपक बाँधा गया है। मन्दराचलको मन्थानदण्ड बनाकर प्राकृत समुद्रको देवता और दैत्योंने मिलकर मथकर देवताओंको अमरत्व प्रदान करनेके लिये अमृत प्रकट किया। देवतालोग उस अमृतको पीकर सशक्त हो गये। अमरत्व प्राप्त कर लिये। प्रस्तुत प्रसङ्गमें श्रीरामविरहरूपी मन्दराचलका मन्थानदण्ड बनाकर श्रीभरतके हृदयरूपी गम्भीर प्रेम समुद्रको सन्तोंके मङ्गलके लिये—साधुओंके कल्याणके लिये दयासागर श्रीरामजीने मन्थन करके प्रेमामृत प्रकट कर दिया। वहाँ अनेक मन्थन करनेवाले आये थे यहाँ मात्र श्रीठाकुरजीने मन्थन किया। मन्थन करनेमें मेरे भरतको कष्ट न हो, एतावता श्रीरामजीको 'कृपासिंधु' कहा। प्रभुने एकाकी ही मन्थन किया अत: उन्हें 'रघुबीर' अभिधानसे अभिहित किया गया। 'प्रगटेउ' का भाव कि श्रीभरतके हृदयरूपी समुद्रमें वह पहलेसे ही गुप्त था। इस दोहामें दो समुद्रोंका वर्णन है, श्रीभरत समुद्र हैं, श्रीरामजी समुद्र हैं। श्रीभरतजी प्रेम समुद्र हैं और श्रीरामजी कृपा समुद्र हैं।

श्रीभरतने प्रभुके पावन आश्रमका दर्शन किया। आश्रममें प्रवेश करते ही श्रीभरतके हृदयकी जलन समाप्त हो गयी। मानो 'योगी' ने परमार्थकी प्राप्ति कर ली। श्रीभरतजी महान् प्रेमयोगी हैं। श्रीभरतजीने देखा कि श्रीलक्ष्मणजी प्रभुके आगे अपने स्वामीके प्रश्नका उत्तर दे रहे हैं, यह भी एक सेवा है। श्रीलक्ष्मणजी पूर्ण मुनिवेषमें हैं, उनके मस्तकपर जटा है, वल्कलाम्बर धारण किये हैं, तरकस कसे हैं, हाथमें बाण और स्कन्धपर धनुष धारण किये हैं।

भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन।
सकल सुमंगल सदनु सुहावन॥
करत प्रबेस मिटे दुख दावा।
जनु जोगीं परमारथु पावा॥
देखे भरत लखन प्रभु आगे।
पूँछे बचन कहत अनुरागे॥
सीस जटा कटि मुनि पट बाँधे।
तून कसें कर सरु धनु काँधे॥

श्रीलक्ष्मणजीका वर्णन करके अब भगवान् श्रीरामजीका वर्णन करते हैं। श्रीमिथिलेशनन्दिनीके कोमल करकमलोंद्वारा निर्मित वेदिकापर मुनियों और साधुओंका समाज बैठा है और श्रीजानकीजीके साथ श्रीराघवेन्द्र सरकार विराजमान हैं। श्रीरामजी वल्कलवस्त्र धारण किये हैं, उनके सिरपर जटा है, श्यामल विग्रह है। युगल सरकार ऐसे लगते हैं, मानो रति और कामदेवने मुनिका वेष स्वीकार किया हो। आज प्रभुने और श्रीकिशोरीजीने श्रीभरतजीको दर्शन देनेके लिये यह वेष स्वीकार किया है। जिससे श्रीभरतको देखकर क्लेश न हो। मानो प्रभु कह रहे हैं कि हे भरत! हम वनवासी नहीं हैं अपितु वनविहारी हैं। भक्तोंको वनवासी स्वरूपसे क्लेश होता है, वनविहारी स्वरूपसे तो आनन्द ही मिलता है। श्रीरामजी

अपने करकमलोंसे धनुषबाण फेर रहे हैं, हँसकर देखते ही मनकी जलन हर लेते हैं। अर्थात् जिसकी ओर एक बार हँसकर देख लेते हैं, उसीको परमानन्दकी प्राप्ति हो जाती है।

श्रीकपिल भगवान् माता देवहूतिसे कहते हैं—हे माता! श्रीहरिका मङ्गलमय हास्य प्रणतजनोंके—भक्तोंके तीव्रसे तीव्र शोकके अश्रुसागरको सुखा देता है। श्रीहरिका वह हास्य अत्यन्त उदार है।

हासं हरेरवनताखिललोकतीव्र
शोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम्।

(श्रीमद्भागवत ३। २८। ३२)

श्रेष्ठ मुनि मण्डलीके मध्यमें श्रीसीतारामजी इस प्रकार विराज रहे हैं, मानों ज्ञानकी सभामें साक्षात् भक्ति और सच्चिदानन्द विग्रहवान् होकर विराज रहे हैं।

बेदी पर मुनि साधु समाजू।
सीय सहित राजत रघुराजू॥
बलकल बसन जटिल तनु स्यामा।
जनु मुनि बेष कीन्ह रति कामा॥
कर कमलनि धनु सायकु फेरत।
जिय की जरनि हरत हँसि हेरत॥
लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरें भगति सच्चिदानंदु॥

इस झाँकीका वर्णन इस प्रकार भी है—श्रीभरतजीने दूर्वादलश्यामल, विशालनयन श्रीरामजीको बैठे हुए देखा, जो जटाओंका मुकुट और नवीन वल्कलाम्बर धारण किये हैं, प्रसन्न वदन और तरुणारुण द्युति हैं—मध्याह्न कालीन सूर्यके समान प्रभायुक्त हैं। श्रीरामजी शुभलक्षणा श्रीजनकनन्दिनीकी ओर स्नेहपूर्वक निहार रहे हैं तथा श्रीलक्ष्मणजी जिनके पादारविन्दोंका संवाहन कर रहे हैं।

स तत्र दृष्ट्वा रघुनाथमास्थितं
दूर्वादलश्यामलमायतेक्षणम् ।
जटाकिरीटं नववल्कलाम्बरं
प्रसन्नवक्त्रं तरुणारुणद्युतिम्॥
विलोकयन्तं जनकात्मजां शुभां
सौमित्रिणा सेवितपादपङ्कजम्॥

(श्रीअध्यात्मरामायण २। ९। ५, ६)

श्रीशत्रुघ्न और निषादराजके सहित श्रीभरतजीका मन प्रेममें निमग्न हो रहा है। हर्ष, शोक, सुख, दुःख आदि सब विस्मृत हो गए। द्वन्द्व समाप्त हो गया। श्रीरामजीका दर्शन करके द्वन्द्व समाप्त हो जाता है।

सानुज सखा समेत मगन मन।
बिसरे हरष सोक सुख दुख गन॥

'हे नाथ! रक्षा कीजिये, हे गोसाईं! रक्षा कीजिये' कहकर वे भूतलपर लकुटकी भाँति गिर पड़े।

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं।
भूतल परे लकुट की नाईं॥

'लकुटकी नाईं' से श्रीभरतजीकी शारीरिक स्थितिका वर्णन किया। श्रीभरतजीके प्रेमपरिप्लुत वचनोंसे श्रीलक्ष्मणने पहचान लिया और मनमें जान लिया कि श्रीभरतजी प्रणाम कर रहे हैं।

बचन सपेम लखन पहिचाने।
करत प्रनामु भरत जियँ जाने॥

इस पंक्तिमें 'पहिचाने' शब्द अतिशय भाव-गर्भित है। 'सुनने' के स्थानपर 'पहिचाने' शब्दका प्रयोग है। श्रीभरतका आगमन सुनकर श्रीरामजीके हृदयकी खभार—चिन्ता देखकर श्रीलक्ष्मणने अपने

वक्तव्यके आरम्भमें ही कहा था—हे नाथ! आप जीवमात्रके सहज सुहृद—हेतुरहित उपकारी हैं, सरल चित्त हैं, शील और स्नेहके निधान हैं। आप सभीपर प्रेम और विश्वास कर लेते हैं और यह मूढ़ जीव प्रभुता पा करके मोहबस अपने असली स्वरूपको प्रकट कर देता है।

नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ जानिअ आपु समान॥
बिषई जीव पाइ प्रभुताई।
मूढ़ मोह बस होहिं जनाई॥

श्रीरामजीको श्रीलक्ष्मणकी यह बात स्मरण थी। इसलिये श्रीभरतजीकी स्नेहसानी वाणी सुनकर भी प्रभुने उन्हें उठानेका प्रयास नहीं किया। उनका भाव यह था कि मैं नहीं पहचान पाता तो अब जब लक्ष्मण भरतको पहचानकर मुझसे कहेंगे तभी मैं उनसे मिलूँगा। इसीलिए गोस्वामीजीने 'पहिचाना' शब्दका प्रयोग किया।

अथवा श्रीरामजीके न उठानेका दूसरा भाव यह है कि श्रीरामजीने सोचा—मेरा लक्ष्मण निष्कल्मष है, पवित्र है, शुद्ध हृदय है और दुग्ध मुख है। मेरे लक्ष्मणने यह सोचा कि भरत मुझको मारने आ रहे हैं एतावता लक्ष्मणने श्रीभरतके लिए कटु वचनोंका प्रयोग ही नहीं किया अपितु, भरतको मारनेके लिये भी कहा। परन्तु संसार हृदय नहीं देखता है, वह तो केवल वाणी या कर्मकी बात मानता है, इसलिए आनेवाला युग यह कहेगा कि श्रीलक्ष्मण श्रीरामजीके प्रेमी तो अवश्य थे; परन्तु अपने भाईको—भरत आदिको मारना चाहते थे, उनकी दृष्टि एवं उनके विचार भाइयोंके प्रति द्वेषपूर्ण थे।

श्रीरामजीने निश्चय कर लिया कि यह जो अनचाहा मिथ्या कलङ्क आ गया है इसको मुझे समाप्त करना है। यदि मैं भरतको उठाकर हृदयसे लगा लूँगा तो बात नहीं बनेगी। लक्ष्मणके मस्तकपर जो कलङ्क लग गया है उसे प्रक्षालन करना है, अतः जब तक लक्ष्मण नहीं कहेंगे तब तक मैं नहीं उठाऊँगा। लक्ष्मणकी प्रार्थनाके पश्चात् जब मैं उठाऊँगा तब लोग यह कहेंगे कि लक्ष्मणने कारणवश भरतको कटु वचन अवश्य कहा था; परन्तु उनका हृदय विशुद्ध था, इसलिए प्रभुसे प्रार्थना करके भरतको उठानेके लिये भी तो कहा। इस प्रकार अनचाहे जो कलङ्क लग गया है उस कलङ्कपङ्कका प्रक्षालन हो जायेगा। अथवा—प्रभुने सोचा कि लक्ष्मणने मेरे लिये अपने पिताको छोड़ा, स्नेहमयी जननीको छोड़ा, राज्यपरिवार वैभव छोड़ा, यहाँतक कि नवपरिणीता पत्नी उर्मिलाको छोड़कर कभी उसका ध्यान भी नहीं किया, नाम भी नहीं लिया। इस प्रकारका सर्वस्व त्यागी लक्ष्मण यदि भरतसे प्रतिकूलताका भाव रखता है तो जबतक यह नहीं कहेगा तबतक मैं अपने परमप्रिय भरतको नहीं उठाऊँगा। अथवा—श्रीरामजीने श्रीलक्ष्मणजीको श्रीभरतका चरित्र समझाना चाहा; परन्तु जितना समझाना चाहते थे उतना समझा नहीं पाये। भरतस्नेह-समुद्रमें डूब गये। तब प्रभुने सोचा कि मैं अपने लम्बे भाषणसे जो नहीं समझा पाया वह भरतकी एक झीनीसी वाणी समझा देगी। एतावता प्रभुने बिना लक्ष्मणके कहे भरतको नहीं उठाया।

श्रीभरतकी स्नेहसानी वाणीने श्रीलक्ष्मणको भावविह्वल बना दिया। श्रीभरतकी झीनी-सी वाणीने श्रीलक्ष्मणके कर्ण-कुहरोंमें प्रविष्ट होकर उनके हृदयमें अद्भुत अभिनव, अमल प्रेमकी सृष्टि कर दी। श्रीलक्ष्मणजीकी बड़ी विचित्र स्थिति थी। आज श्रीलक्ष्मणके जीवनका प्रथम

अवसर था जब उनके मनमें श्रीरामजीकी सेवाकी अपेक्षा भैया भरतका स्नेह उनके मनको आकर्षित कर रहा है। श्रीलक्ष्मणजीके मनमें एक सरस ऊहापोह है, एक तरफ श्रीभरतका सरस प्रेम दूसरी ओर स्वामीकी सेवाकी प्रबल परवशता। न मिलते ही बनता है न छोड़ते ही। वे सेवाको महत्त्वपूर्ण समझकर उसीमें लगे रहे। मानो चढ़ी हुई पतङ्गको पतङ्ग उड़ानेवाला खींच रहा हो।

बंधु सनेह सरस एहि ओरा।
उत साहिब सेवा बस जोरा॥
मिलि न जाइ नहि गुदरत बनई।
सुकबि लखन मनकी गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू।
चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू॥

पतङ्ग उड़ानेवाला पतङ्गको खींचता है कि डोर न टूटे। इसी तरहसे श्रीलक्ष्मणजी श्रीभरतजीके स्नेहको सँभालते हैं कि यह भी न टूटे और स्वामीकी सेवा भी रहे।

पृथ्वीपर मस्तक रखकर श्रीलक्ष्मण प्रभुको सूचना देते हैं—हे रघुनाथजी! महान् स्नेही भैया श्रीभरतजी आपको प्रणाम कर रहे हैं। *'नाइ महि माथा'* का भाव यह है कि हे नाथ! हम भैया भरतके स्नेहको नहीं समझ पाये, इसीलिए मैंने उनके प्रति अनुचित शब्दोंका प्रयोग किया था। हे करुणासागर! मेरे ऊपर करुणा करके मुझे क्षमा कर दें। मेरे अपराधके लिये भैया भरतको न ठुकरावें, हे स्वामी! उठें और अपने लाड़ले भरतको उठावें—अपनावें। मैं आपके श्रीचरणोंमें मस्तक रखकर क्षमा माँगते हुए प्रार्थना करता हूँ।

कहत सपेम नाइ महि माथा।
भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥

करुणासागर श्रीरामचन्द्रजी तो प्रतीक्षा ही कर रहे थे। उन्हें अपने लक्ष्मणपर विश्वास था; उन्हें अपने लक्ष्मणकी सरलतापर, उनके स्नेही हृदयपर पूर्ण भरोसा था। श्रीलक्ष्मणका स्निग्ध वचन सुनते ही श्रीरघुनन्दन प्रेमअधीर होकर श्रीभरतको उठानेके लिये—अपने हृदयसे लगानेके लिये दौड़ पड़े।

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा।
कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥

श्रीगोस्वामीजीने श्रीविनयपत्रिकामें ठाकुरजीकी अधीरताका वर्णन किया है।

सुमिरत सुलभ, दास-दुख सुनि हरि
चलत तुरत पट पीत सँभार न।
साखि पुरान-निगम, आगम सब,
जानत द्रुपद-सुता अरु बारन॥

(श्रीविनयपत्रिका २०६। ३)

इस प्रसङ्गमें श्रीगीतावलीजीकी निम्न पंक्तियाँ पढ़ने योग्य हैं—

मन अगहुँड़, तनु पुलक सिथिल भयो, नलिन नयन भरे नीर।
गड़त गोड़ मानो सकुच-पंक महँ, कढ़त प्रेम बल धीर॥
तुलसिदास दसा देखि भरतकी उठि धाए अतिहि अधीर।
लिये उठाइ उर लाइ कृपानिधि बिरह-जनित हरि पीर॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। ६९। ३, ४)

बिहारी सतसईमें एक दोहा इस प्रसङ्गके अनुकूल है।

कहा लड़ैते दृग करे परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीतपट कहूँ मुकुट बनमाल॥

(विहारी सतसई)

भक्तवाच्छाकल्पतरु भक्तवत्सल कृपासागर श्रीरामचन्द्रजी श्रीभरतलालको बलपूर्वक उठाकर अपने हृदयसे लगा लिये। श्रीभरत और श्रीरामजीका

स्नेहिल मिलन देखकर सभीको अपनी सुधि विस्मृत हो गयी।

बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलन लखि बिसरे सबहि अपान॥

श्रीअध्यात्मरामायणमें भी इस प्रसङ्गका भावपूर्ण वर्णन है—महाबाहु श्रीरामचन्द्रजीने अपनी दोनों विशाल भुजाओंसे श्रीभरतको उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया और उन्हें अपनी वात्सल्यमयी गोदमें बिठाकर अपने प्रेमाश्रुओंसे सींचते हुए पुनः पुनः अपने विशाल हृदयसे लगाया।

रामस्तमाकृष्य सुदीर्घबाहु-
र्दोर्भ्यां परिष्वज्य सिषिञ्च नेत्रजैः।
जलै रथाङ्गोपरि संन्यवेशयत्
पुनः पुनः संपरिषस्वजे विभुः॥

(अध्यात्मरामायण २। ९। ७)

दोनों भाई श्रीरामचन्द्रजी और श्रीभरतजी मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कारको विस्मृत करके परम प्रेमसे परिपूर्ण हो रहे हैं।

परम पेम पूरन दोउ भाई।
मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥

महाकवि श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने इस प्रसङ्गमें श्रीभरतजीकी स्थितिका गम्भीर चिन्तन किया है। पहले श्रीभरतको 'क्षुधित' कहा है।

भरत दीख बन सैल समाजू।
मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू॥

(२। २३५)

श्रीराम वन शैल समाज देखकर श्रीभरत प्रसन्न हो गये। उनको उसी प्रकार सुख हुआ जिस प्रकार भूखेको सुन्दर अन्न मिलनेसे सुख होता है। वन शैल समाजका दर्शन सुनाज है।

इसके बाद कामदगिरिके दर्शनसे श्रीभरतके हृदयमें अति प्रेम हुआ जैसे तपस्वीको तपस्याका फल प्राप्त होनेपर होता है।

राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयँ अति पेमु।
तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु॥

(२। २३६)

इसके पश्चात् जब आश्रमके दर्शन हुए तब उस आश्रममें प्रवेश करते ही दुःखकी दावाग्नि समाप्त हो गयी। मानों योगीने परमार्थकी प्राप्ति कर ली हो।

करत प्रबेस मिटे दुख दावा।
जनु जोगी परमारथु पावा॥

योगी, कर्मियों और ज्ञानियोंसे श्रेष्ठ है और तपस्वियोंसे भी श्रेष्ठ है।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ६। ४६)

इसके अनन्तर जब श्रीसीताराम लक्ष्मणजीके दर्शन हुए तब 'हर्ष, शोक, सुख, दुःख गन' विस्मृत हो गये। और अब पाँचवी स्थिति है।

परम प्रेम पूरन दोउ भाई।
मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥

इन पाँचों प्रसङ्गोंका अनुसन्धान करना चाहिये।

श्रीभरतजी और श्रीरामजीका प्रेम अगम्य है, जहाँ श्रीब्रह्मा, श्रीविष्णु और श्रीशङ्करका भी मन नहीं जा सकता; उसे और कोई कैसे कह सकता है? क्या कभी गाँडर—मूँजकी ताँतसे सुन्दर राग बन सकता है।

अगम सनेह भरत रघुबर को।
जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को॥

श्रीभरत और श्रीरामका मधुर मिलन देखकर देवताओंका डरके कारण हृदय धड़कने लगा।

देवगुरु वृहस्पतिके समझानेसे उनकी मोहरात्रि दूर हुई और ज्ञान सूर्यका समुदय हो गया तब वे पुष्पवृष्टि करके स्तुति करने लगे।

मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की।
सुरगन सभय धकधकी घरकी॥
समुझाए सुरगुर जड़ जागे।
बरषि प्रसून प्रसंसन लागे॥

फिर श्रीरामजी श्रीशत्रुघ्नसे मिलकर केवटको गले लगाकर मिले। श्रीभरतजीको श्रीलक्ष्मणजीने प्रणाम किया, श्रीभरत बड़े प्रेमसे गले लगाकर मिले।

मिलि सपेम रिपुसूदनहि केवटु भेंटेउ राम।
भूरि भायँ भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम॥

श्रीलक्ष्मण शत्रुघ्न बड़े प्यारसे मिले और श्रीलक्ष्मणजीने निषादको हृदयसे लगा लिया। फिर श्रीभरत और शत्रुघ्नने श्रीचित्रकूटके महात्माओंके चरणोंमें प्रणाम किया। मनोवाञ्छित आशीर्वाद पाकर आनन्दित हुए।

भेटेउ लखन ललकि लघु भाई।
बहुरि निषाद लीन्हि उर लाई॥
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे।
अभिमत आसिष पाइ अनंदे॥

अब चार पंक्तियोंमें श्रीसीताजीको प्रणाम करनेका और उनके आशीर्वादका वर्णन है। श्रीभरत शत्रुघ्न अनुरागसे उमँग करके श्रीसीताजीके श्रीचरणकमलोंकी रजको मस्तकपर धारण करके पुनः पुनः प्रणाम करते हैं। श्रीसीताजीने उन दोनोंको उठाकर अपने करारविन्दोंसे उनके मस्तकका स्पर्श किया और स्नेहपूर्वक बिठाया। श्रीसीताजीने मन-ही-मन आशीर्वाद दिया। श्रीसीताजी प्रेममें मग्न हैं, उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि नहीं है। श्रीभरतजीके मनमें 'अपडर' था कि वनवासमें मुझे कारण जानकर कहीं श्रीरामवल्लभा सीताजी मुझसे अप्रसन्न न हों। किं वा पतिव्रता शिरोमणि श्रीसीताजी अपने पतिको कष्ट सहते देखकर मुझसे रुष्ट न हों; परन्तु श्रीसीताजीको सब प्रकारसे अनुकूल देखकर उनका अपडर समाप्त हो गया।

सानुज भरत उमगि अनुरागा।
धरि सिर सिय पद पदुम परागा॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए।
सिर कर कमल परसि बैठाए॥
सीयँ असीस दीन्हि मन माहीं।
मगन सनेहँ देह सुधि नाहीं॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता।
भे निसोच उर अपडर बीता॥

इस समयके स्नेहकी स्थितिका, स्नेहिल वातावरणका चित्रण श्रीगोस्वामीजी एक पंक्तिमें करते हैं। जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती अपितु उसका अनुभव करके आनन्द लिया जा सकता है। कोई किसीसे कुछ कहता नहीं और न कोई कुछ पूछता ही है। सबका मन प्रेमसे परिपूर्ण है और अपनी गतिसे—सङ्कल्प-विकल्पसे, चाञ्चल्यसे शून्य हो गया है।

कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा।
प्रेम भरा मन निज गति छूँछा॥

उसी समय केवट—निषादराजने हाथ जोड़कर श्रीरामजीसे कहा—हे नाथ! श्रीवसिष्ठजीके साथ सब माताएँ, पुरवासी, सेवक, सेनापति, मन्त्री सब-के-सब आपके वियोगसे व्याकुल होकर—वियोग तापसे संतप्त होकर आपका आश्रय लेनेके लिये आये हैं।

तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि।
जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि॥
नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब आए बिकल बियोग॥

शीलके समुद्र श्रीरामचन्द्रजी गुरुका आगमन श्रवण करके श्रीशत्रुघ्नको श्रीसीताजीके पास रख करके अत्यन्त शीघ्रतासे श्रीगुरुदेवके पास चले। यहाँ श्रीरामजीको तीन विशेषण दिये गये हैं जो मनन करने योग्य हैं *'धीर, धरम धुर और दीन दयाल'।*

सीलसिन्धु सुनि गुर आगवनू।
सिय समीप राखे रिपुदवनू॥

श्रीगुरुदेवका दर्शन करते ही श्रीराम लक्ष्मण अनुरागसे भर गये। साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। श्रीवसिष्ठजी भी सामान्य स्थितिमें नहीं रहे, वे भी दौड़कर प्रभुको उठाकर हृदयसे लगा लिये। मात्र हृदयमें लगानेसे सन्तोष नहीं हुआ, फिर दोनों भाइयोंको अपनी भुजाओंके आश्लेष पाशमें निबद्ध कर लिया। धन्य है! गुरु शिष्यका अनोखा सम्मिलन है।

इसके अनन्तर श्रीवसिष्ठ और केवटका अत्यन्त भावपूर्ण प्रसङ्ग है। जब केवट—निषादराजने श्रीरामजीको गुरुदेवके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करते हुए देखा तब उनके मनमें भी प्रभुप्रेरणासे अभिलाषा जागृत हो गयी कि मैं इस समय अपने स्वामी श्रीरामजीके साथ हूँ अत: मुझे भी प्रणाम करना चाहिये। यद्यपि श्रीनिषादराजने गुरुदेवको पहले भी शृङ्गवेरपुरमें प्रणाम किया था। उस समय व्यावहारिक प्रणाम था। उस समय निषादराजजीका हृदय श्रीभरतजीके प्रति शुद्ध नहीं था। उनके मनमें ऊहापोह था। एतावता उस प्रणाममें औपचारिकता थी; परन्तु आजके प्रणाममें औपचारिकता नहीं थी अपितु उनके शरीरमें पुलकावली छा रही थी। जिस प्रकार उस समय निषादराजका हार्दिक भाव था, उसीके अनुसार श्रीगुरुदेवने आशीर्वाद दिया। आज जब प्रेम परिप्लुत हृदयसे पुलकित होकरके केवटने—निषादराजने अपना नामोच्चारण करते हुए दूरसे प्रणाम किया तब ऋषिने—अन्त:करणके भावको देख करके रामसखा केवटको बरबस गलेसे लगा लिया। जैसे कोई स्नेह—द्रव पदार्थ, इत्र आदि मूल्यवान् पदार्थको भूमिपर गिरते ही शीघ्रतासे समेट ले, उसे फैलने न दे। उसी शीघ्रतासे स्नेहसे विह्वलतासे श्रीवसिष्ठने निषादको भूमिपर गिरते ही तत्काल उठा लिया। इस अलौकिक एवं भावपूर्ण मिलनको देखकर देवता पुष्पवृष्टि करते हुए श्लाघा करने लगे। निषादकी भाँति निपट नीच कोई नहीं है और श्रीवसिष्ठके समान संसारमें बड़ा कौन है? परन्तु उस निषादको देखकर मुनिराज श्रीवसिष्ठजी श्रीलक्ष्मणजीसे भी अधिक मुदित होकर मिले, यह सब श्रीसीतापति श्रीरामजीके भजनका प्रत्यक्ष प्रताप और प्रभाव है।

रामसखा रिसि बरबस भेंटा।
जनु महि लुठत सनेह समेटा॥
रघुपति भगति सुमंगल मूला।
नभ सराहि सुर बरिसहिं फूला॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाहीं।
बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं॥
जेहि लखि लखनहु तें अधिक मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति भजन को प्रगट प्रताप प्रभाउ॥

करुणाकर सुजान भगवान् श्रीरामने सब लोगोंको मिलनेके लिये व्याकुल देखकर उनकी

रुचि और भावनाके अनुसार उनसे मिलकर उनके दु:ख और कठिन सन्तापको नष्ट कर दिया।

आरत लोग राम सबु जाना।
करुनाकर सुजान भगवाना॥
जो जेहि भाय रहा अभिलाषी।
तेहि तेहि कै तसि तसि रुख राखी॥
सानुज मिलि पल महुँ सब काहू।
कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू॥

श्रीरामजीने समस्त माताओंको दु:खी देखा। मानों सुन्दर लताओंकी पंक्तियोंमें पाला मार गया हो।

देखीं राम दुखित महतारीं।
जनु सुबेलि अवलीं हिम मारीं॥

दु:खी तो सब माताएँ हैं; परन्तु कैकेयीजी सबके दु:खका कारण स्वयंको जानकर अधिक दु:खी हैं, अत: सबसे पहले श्रीरामजी कैकेयीसे मिले। प्रभुने अपने सरल स्वभावसे और अपनी सहज भक्तिसे श्रीकैकेयीकी बुद्धिको भिगो दिया। फिर उनके चरणोंमें गिरकर काल, कर्म और विधाताके सिर दोष धरकर उनको आश्वस्त किया।

प्रथम राम भेंटी कैकेई।
सरल सुभायँ भगति मति भेई॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी।
काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥

इसके बाद सभी माताओंको प्रणाम करके माता अरुन्धतीके चरणोंमें दोनों भाइयोंने वन्दना की।

गुरतिय पद बंदे दुहु भाईं।
सहित बिप्रतिय जे सँग आईं॥

फिर दोनों भाई माता सुमित्राके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी गोदमें चिपट गये। मानों किसी अत्यन्त दरिद्रको सम्पत्तिसे भेंट हो गयी हो।

गहि पद लगे सुमित्रा अंका।
जनु भेंटी सम्पति अति रंका॥

फिर श्रीराम लक्ष्मण माता कौसल्याके चरणोंमें गिर पड़े, सब अङ्ग प्रेमसे व्याकुल हो गये। अत्यन्त स्नेहसे माताने दोनोंको हृदयसे लगा लिया और अपने प्रेमाश्रुओंके जलसे उन्हें नहला दिया।

पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता।
परे पेम ब्याकुल सब गाता॥
अति अनुराग अंब उर लाए।
नयन सनेह सलिल अन्हवाए॥

दोनों भाइयोंने मातासे मिलकर गुरुदेव श्रीवसिष्ठसे आश्रमपर पधारनेकी प्रार्थना की।

मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ।
गुर सन कहेउ कि धारिअ पाऊ॥

जब श्रीगुरुदेव समाजसहित आश्रमपर पहुँच गये तब श्रीसीताजीने आकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके आशीर्वाद प्राप्त किया। मुनि पत्नियोंके साथ श्रीमाता अरुन्धतीके चरणोंमें भी प्रणाम किया।

सीय आइ मुनिबर पग लागी।
उचित असीस लही मन मागी॥
गुरपतिनिहि मुनितियन्ह समेता।
मिली पेम कहि जाइ न जेता॥

जब सुकुमारी श्रीजानकीजीने समस्त सासुओंको देखा तब सहमकर उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। श्रीसीताजीको ऐसा परिज्ञात हुआ मानो हंसिनियाँ वधिकके वशमें पड़ गयी हों। श्रीसीताजीने सोचा—हा हन्त! विधाताने क्या कर डाला?

सासु सकल जब सीयँ निहारीं।
मूदे नयन सहमि सुकुमारीं॥
परीं बधिक बस मनहुँ मरालीं।
काह कीन्ह करतार कुचालीं॥

श्रीकौसल्यादि सासुओंने जब श्रीजनकराज किशोरीको देखा तब उन्हें महान् क्लेश हुआ। महर्षि श्रीवाल्मीकिजीने लिखा है—श्रीकौसल्याजी श्रीजानकीजीको अपने हृदयसे चिपकाकर कहती हैं कि विदेहराज जनककी पुत्री, चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजीकी पुत्रवधू तथा श्रीरामकी पत्नी सीता इस निर्जन वनमें क्यों दुःख भोग रही है। हे पुत्रि! तुम्हारा मुख धूपसे सन्तप्त कमल, कुचले हुए उत्पल, धूलसे ध्वस्त हुए सुवर्ण और बादलोंसे ढके हुए चन्द्रमाकी भाँति श्रीहीन हो रहा है। हे वैदेहि! जैसे अग्नि अपने उत्पत्ति स्थान काष्ठको दग्ध कर देती है, उसी प्रकार तुम्हारे इस दुःखको देखकर मेरे मनमें सङ्कटरूपी अरणिसे उत्पन्न हुआ यह शोकानल मुझे दग्ध कर रहा है।

वैदेहराजन्यसुता स्नुषा दशरथस्य च।
रामपत्नी कथं दुःखं सम्प्राप्ता विजने वने॥
पद्ममातपसंतप्तं परिक्लिष्टमिवोत्पलम्।
काञ्चनं रजसा ध्वस्तं क्लिष्टं चन्द्रमिवाम्बुदैः॥
मुखं ते प्रेक्ष्य मां शोको दहत्यग्निरिवाश्रयम्।
भृशं मनसि वैदेहि व्यसनारणिसम्भवः॥

(श्रीबाल्मीकीयरामायण २। १०४। २४-२६)

तब श्रीजनककिशोरी हृदयमें धैर्य धारण करके नीलनलिन नेत्रोंमें आँसू भरकर सब सासुओंसे जाकर मिलीं। उस समय जब समस्त सासुएँ और श्रीसीताजी मिलकर रुदन करने लगीं तब रुदनका करुण स्वर दूर तक फैल गया। अर्थात् पृथ्वीपर करुणरस छा गया।

जनकसुता तब उर धरि धीरा।
नील नलिन लोयन भरि नीरा॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई।
तेहि अवसर करुना महि छाई॥

श्रीसीताजी समस्त सासुओंके चरणोंका अपने अञ्चलपटसे स्पर्श करके अतिशय प्रेमसे मिल रही हैं और सब सासुएँ स्नेहसे सौभाग्यवती होनेका आशीर्वाद दे रही हैं।

लागि लागि पद सबनि सिय भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहिं प्रेम बस रहिअहु भरी सोहाग॥

इसके पश्चात् श्रीगुरुदेव वसिष्ठने सबको अपने पास बिठाकर जगत्की मायिक गतिका निरूपण करके कुछ पारमार्थिक कथाएँ कहकर श्रीदशरथके स्वर्गवासकी बात सुनायी। सुनकर श्रीरघुनाथजीको असह्य वेदना हुई।

कहि जग गति मायिक मुनिनाथा।
कहे कछुक परमारथ गाथा॥
नृप कर सुरपुर गवन सुनावा।
सुनि रघुनाथ दुसहु दुखु पावा॥

समग्र समाज शोकाकुल हो गया। मानों श्रीदशरथजीकी आज ही मृत्यु हुई हो। श्रीवसिष्ठजीने अनेक प्रकारसे समझाया। तत्पश्चात् श्रीरामजीने सबके साथ श्रीमन्दाकिनीमें स्नान किया। उस दिन मर्यादा पुरुषोत्तम पितृवत्सल श्रीरामजीने निर्जल व्रत किया। श्रीगुरुदेवके कहनेपर भी किसीने जल ग्रहण नहीं किया। किंवा मुनिने भी कहा इसलिए भी जल किसीने नहीं लिया।

ब्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा।
मुनिहु कहें जलु काहुँ न लीन्हा॥

दूसरे दिन प्रातःकाल होनेपर मननशील महात्मा श्रीवसिष्ठजीने रघुकुलको आनन्द देनेवाले

श्रीरामको जो जो आज्ञा दी वह सब कार्य प्रभुने श्रद्धाभक्ति सहित आदरपूर्वक किया।

भोरु भएँ रघुनंदनहि जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सबु सादरु कीन्ह॥

श्रीवाल्मीकीयरामायणमें श्रीरामजीके पिण्डदानका बड़ा भावपूर्ण वर्णन है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामने मन्दाकिनी तटपर जाकर स्नान करके दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके जलाञ्जलि दी। तदनन्तर इङ्गुदीके गूदेमें बेरका चूर्ण मिलाकर उसका पिण्ड बनाया और वेदीपर बिछे हुए कुशोंपर पिण्डोंको रखकर अत्यन्त दु:खसे आर्त्त होकर रोते हुए कहा—हे श्रद्धेय पित:! श्राद्धमें श्रद्धापूर्वक दिए हुए इस भोजनको आप प्रीतिपूर्वक भोग लगावें। हे महाराज! उचित तो यह था कि आपको हम खीरका—पायसका पिण्डदान करते; परन्तु आजकल हमलोग आपकी आज्ञानुसार यही आहार करते हैं। मनुष्य स्वयं जो अन्न खाता है, वही अन्न उसके देवता भी स्वीकार करते हैं।

ऐङ्गुदं बदरैर्मिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे।
न्यस्य राम: सुदु:खार्तो रुदन् वचनमब्रवीत्॥
इदं भुडक्ष्व महाराज प्रीतो यदशना वयम्।
यदन्न: पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवता॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १०३। २९-३०)

इसलिए आराधना करनेवालेको कभी ऐसा पदार्थ नहीं खाना चाहिए जो वह अपने आराध्यको समर्पण न कर सके।

'दर्भसंस्तरे' का भाव यह है कि कुशास्तरणपर ही पिण्डदान करना चाहिए। एक बड़ी भावपूर्ण कथा मैंने गयामें सुनी है कि देवव्रत भीष्मजी अपने पिता शन्तनुका गया श्राद्ध करनेके लिये गया गये। जब पिताको पिण्ड देनेके लिए पातित वाम जानु होकर हाथमें पिण्ड लेकर पितृतीर्थसे कुशपर पिण्ड देनेके लिये प्रस्तुत हुए तब उनके पिता शन्तनुका हाथ पिण्ड लेनेके लिये प्रत्यक्ष आ गया; परन्तु श्रीभीष्मजीने उनके हाथमें पिण्ड दान नहीं किया। तीसरी बार पिताने कहा—हे भीष्म! तुम मुझे पिण्डदान क्यों नहीं करते हो? श्रीभीष्मने कहा—हे पित:! आपके इन हस्तकमलोंका दर्शन करके मैं कृतकृत्य हो रहा हूँ और मुझे स्मरण आ रहा है कि इन्हीं हाथोंसे प्यार करते हुए आपने मुझे शिक्षा दी थी कि शास्त्रकी आज्ञाका पालन करना चाहिए। जो व्यक्ति शास्त्रके, वेदके अनुशासनका त्याग करके मनमाना आचरण करता है वह लौकिक किंवा पारलौकिक सिद्धिको प्राप्त नहीं हो सकता है तथा इस लोकके किञ्चित् भोगसुखको भी नहीं पा सकता है फिर परमगतिको तो पा ही कैसे सकता है?

य: शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत:।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

(श्रीगीताजी १६। २३)

हे पित:! मैं शास्त्रविधिके अनुसार आपके हाथमें पिण्डदान न करके कुशास्तरण पर ही करूँगा। श्रीभीष्मके पिता शन्तनु प्रसन्न हो गये। श्रीभीष्मने कुशास्तरण पर ही पिण्डदान किया। कुछ लोग कहते हैं, ***'भाव शुद्ध होना चाहिए', 'मन चंगा तो कठौतीमें गंगा'***, हम तो ऐसा ही करते हैं, हमारा तो यही सिद्धान्त है। वास्तवमें वे उचित नहीं कहते हैं। आपके सिद्धान्तकी कौड़ी कीमत नहीं है। सिद्धान्त तो वैदिक सिद्धान्त होना चाहिए। सन्त शास्त्रानुमोदित सिद्धान्त होना चाहिये। केवल पैसा खर्च करनेसे देवता प्रसन्न नहीं होते हैं। देवता प्रसन्न होते हैं तो

पैसोंकी बरसात हो जाती है। तात्पर्य यह है कि श्रीरामके चरित्रके अनुसार जीवन बनाना चाहिये। इसीलिये प्रभुने मानव शरीर धारण किया है '**मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्य शिक्षणम्।**' श्रीरामने कुशास्तरणपर ही पिण्डदान किया है। मन्दाकिनी तटपर पिण्डदान करके श्रीरामजी, श्रीसीताजी और तीनों भाइयोंके साथ अपनी पर्णकुटीपर, जो चित्रकूट पर्वतपर थी, चले गये। वहाँ जाकर पिताका स्मरण करते हुए वे पाँचों बड़े उच्च स्वरसे रुदन करने लगे। उस समय उनके रुदनकी सम्मिलित ध्वनिकी प्रतिध्वनि ऐसी ज्ञात होती थी मानो कई सिंह गर्जन कर रहे हों।

तेषां तु रुदतां शब्दात् प्रतिशब्दोऽभवद् गिरौ।
भातृणां सह वैदेह्या सिंहानां नर्दतामिव॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। १०३। ३३)

यद्यपि भगवान् 'प्रभु' समर्थ हैं तो भी लोकसंग्रहार्थ समस्त कर्म करते हैं।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ३। २१)

भगवान् गीताचार्य श्रीकृष्णचद्रजी कहते हैं—श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करते हैं अन्यजन भी वही आचरण करते हैं। वह श्रेष्ठ पुरुष जितने प्रमाणमें करता है संसार उसीके पीछे चलता है। जब श्रीरामजीको पितृकर्मसे शुद्ध हुए दो दिवस व्यतीत हो गये तब उन्होंने स्नेहपूर्वक श्रीगुरुदेवसे कहा।

सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते।
बोले गुर सन राम पिरीते॥

श्रीरामजीने कहा—हे नाथ! श्रीअयोध्याजीके दो ही संरक्षक हैं। उनमें एक श्रीदशरथजी महाराज स्वर्गमें हैं, दूसरे संरक्षक—सम्प्रति एकमात्र संरक्षक श्रीमान् हैं। आप भी यहाँ—चित्रकूटमें हैं। श्रीरामजीके कहनेका भाव यह है कि अयोध्यामें कौन है? अतः आप अब सबको लेकर श्रीअयोध्यापुरीको पधारिये। अपनेसे बड़ोंको उनके कर्तव्यका उपदेश करना अति कठोर कर्म है; इसलिये प्रभु कहते हैं—मैंने बहुत कुछ कह डाला यह सब मेरी धृष्टता है। हे गोसाईं! जो उचित हो वह करें।

सब समेत पुर धारिअ पाऊ।
आपु इहाँ अमरावति राऊ॥
बहुत कहेउँ सब कियउँ ढिठाई।
उचित होइ तस करिअ गोसाँई॥

श्रीवसिष्ठजीने कहा—हे राम! तुम धर्मके सेतु हो और करुणाके भवन हो। आप इस प्रकार क्यों न कहेंगे? अयोध्याके लोग आपके वियोग दुःखसे अत्यंत दुःखी हैं। हे करुणामय! उन्हें दो दिन दर्शन करके शान्ति लाभ करने दो। आशय यह है कि दो दिनके बाद हमलोग चले जायेगें।

धर्मसेतु करुनायतन कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहहुँ बिश्राम॥

श्रीरामजीका वचन सुनकर तो श्रीअयोध्याका समस्त समाज डर गया था कि हमलोगोंको आज ही लौटना होगा। मानों मध्य समुद्रमें जहाज डगमगा गया हो; परन्तु श्रीवसिष्ठजीकी सुमङ्गलमूलक वाणी सुनकर तो उस जहाजके लिए मानों हवा अनुकूल हो गयी।

राम बचन सुनि सभय समाजू।
जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू॥
सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला।
भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला॥

अयोध्यावासी पावन पयस्विनी नदीमें किंवा पवित्र जलवाली श्रीमन्दाकिनी नदीमें त्रिकाल स्नान करते हैं, जिसके दर्शनसे पापोंके समूह नष्ट हो जाते हैं और मङ्गलविग्रह श्रीरामजीको दण्डवत् प्रणाम करके नेत्र भर भरके उनका दर्शन करते हैं। कामदगिरिका दर्शन और परिक्रमा करते हैं।

पावन पयँ तिहुँ काल नहाहीं।
जो बिलोकि अघ ओघ नसाहीं॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि।
निरखहिं हरषि दंडवत करि करि॥
राम सैल बन देखन जाहीं।
जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं॥

अब कोल किरातोंके प्रेम और सेवाका वर्णन करते हैं—कोल, किरात, भील आदि वनवासी लोग मधु—शहद लेकर सेवामें आते हैं। चित्रकूटके जङ्गलोंमें आज भी मधु बहुत होती है। यह इन वनवासियोंकी खास सेवा है। मधुके तीन गुण बताते हैं—शुचि, सुन्दर और अमृतके समान स्वादिष्ट। इसके अतिरिक्त कन्द, मूल, फल और अङ्कुर आदिकी जूरियोंको, मधुको छोटे दोनोंमें भरकर और फल आदिको बड़े पत्तोंके दोनोंमें भरकर ले आते हैं। विनयपूर्वक प्रणाम करके देते हैं। स्वाद, भेद, गुण और नाम बताकर देते हैं। भाव कि अपनी अपनी रुचिके अनुसार सब लोग उसे स्वीकार करें।

कोल किरात भिल्ल बनबासी।
मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी॥
भरि भरि परन पुटीं रुचि रुरी।
कंद मूल फल अंकुर जूरी॥
सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा।
कहि कहि स्वाद भेद गुन नामा॥

अयोध्यावासी उदार हैं, अतः बहुत मूल्य देते हैं; परन्तु ये वनवासी भी सहृदय हैं, निर्लोभ हैं अतः मूल्य नहीं लेते हैं। जब वे नागरिक लौटाने लगते हैं तब वनवासी कहते हैं—आपको श्रीरामजीकी शपथ है, आप हमारी भेंट लौटायें नहीं, उसे स्वीकार करें।

देहिं लोग बहु मोल न लेहीं।
फेरत राम दोहाई देहीं॥

वनवासी कहते हैं—आपलोग सङ्कोचको छोड़कर, हमारा प्रेम देखकर कृपा करें और हमको कृतार्थ करनेके लिये फल, तृण, कन्द, अङ्कुर स्वीकार करें।

यह जियँ जानि सँकोचु तजि करिअ छोहु लेखि नेहु।
हमहि कृतारथ करन लगि फल तृन अंकुर लेहु॥

वनवासी कहते हैं—हमारी तो सबसे बड़ी सेवा यह है कि हम आपके बासन—पात्र और वसन—वस्त्र नहीं चुरा लेते। हम तो जड़ जीव हैं, प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले हैं। रात दिन पाप करते रहते हैं फिर भी हमारे शरीर पर न वस्त्र है और न हमारा पेट ही भरता है।

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई।
लेहिं न बासन बसन चोराई॥
हम जड़ जीव जीव गन घाती।
कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥
पाप करत निसि बासर जाहीं।
नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥

वनवासियोंने कहा—श्रीरामके दर्शनका सबसे बड़ा प्रभाव है कि जीवन परिवर्तित हो जाता है, लुटेरा दानी बन जाता है, हिंसक सेवक बन जाता है और अधार्मिक धार्मिक बन जाता है। भौतिक रूप भोगकी भावना उत्पन्न करता है और

श्रीरामजीका स्वरूप त्यागकी भावना उत्पन्न करता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण हम कोल भीलोंका जीवन है।

सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ।
यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ॥
जब तें प्रभु पद पदुम निहारे।
मिटे दुसह दुख दोष हमारे॥

इस प्रसङ्गकी सबसे मूल्यवान् पंक्ति है। श्रीअयोध्यावासी वनवासियोंके वचन सुनकर अनुरागसे भर गये और उनके भाग्यकी प्रशंसा करने लगे।

जितनी सासुएँ थीं, उतने ही रूप धारण करके श्रीसीताजी समस्त सासुओंकी आदरपूर्वक एकसी सेवा करती हैं।

सीय सासु प्रति बेष बनाई।
सादर करइ सरिस सेवकाई॥

श्रीसीताजीके साथ सरल व्यवहार और सरल मनवाले श्रीरामलक्ष्मण दोनों भाइयोंको देखकर कैकेयीजी अत्यधिक पश्चात्ताप करती हैं। वे कहती हैं—हा हन्त! मैं संसारमें क्यों जीवित हूँ। ये वनवासी कोलकिरात इनको इतना प्यार करते हैं और मैंने माँ होकर भी इनको वनवास दे दिया। इन वनवासियोंकी बुद्धि धर्ममय हो गयी और मेरी बुद्धि अधर्ममय हो गयी। इन्होंने धर्म धारण किया और मैंने '**रामो विग्रहवान् धर्मः।**' धर्ममूर्त्ति श्रीरामको घरसे निकाल दिया। हे अवनि! आप रक्षा करनेवाली हैं, अपनी गोदमें लेकर मेरी रक्षा करो। आप फट जायँ और मैं आपके बीचमें समा जाऊँ। हे विधाता! संसारमें कितने लोग रोज मरते हैं क्या मेरे लिये मृत्यु नहीं है? मुझे भी मृत्यु दे दो। मैं जीना नहीं चाहती हूँ।

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई।
कुटिल रानि पछितानि अघाई॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई।
महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥

रात्रिके दो बजे हैं। लोग अपने अपने उटजमें सो रहे हैं। दो महान् भक्त जग रहे हैं। श्रीलक्ष्मण धनुष बाण लेकर श्रीसीतारामकी पर्णकुटीके प्रहरीके रूपमें जग रहे हैं और कुटियाके भीतर एकाकी साश्रुनयन गम्भीर चिन्ताकी मुद्रामें बैठकर श्रीभरतजी जग रहे हैं। श्रीभरतजीको न रातमें नींद आती है, न दिनमें भूख ही लगती है। जैसे कीचड़के जलमें लिपटी मछलीको अनुपल अनुक्षण यह चिन्ता रहती है कि इस कीचड़ का जल सूख जायगा तब मैं क्या करूँगी? इसी प्रकार श्रीभरतजीको चिन्ता है कि श्रीवसिष्ठजीने दो दिनकी अवधि माँगी है, उसमें दो दिन और एक रात्रि व्यतीत हो गयी। यह अन्तिम रात्रि है इसके बीत जानेपर फिर क्या होगा?

निसि न नींद नहिं भूख दिन भरतु बिकल सुचि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सँकोच॥

श्रीभरतजी सोचते हैं—श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक कैसे हो? मुझे तो एक भी उपाय नहीं सूझ रहा है। '***मोहि अवकलत***' का भाव यह है कि अन्य लोगोंको सूझ रहा है कि गुरुदेव सब कार्य ठीक कर लेंगे; परन्तु मुझे नहीं सूझ रहा है। श्रीगुरुदेवकी आज्ञा मानकर श्रीरामजी अवश्य लौट सकते हैं; परन्तु मुनि वसिष्ठजी तो श्रीरामकी रुचि जानकर ही कुछ कहेंगे। '***मुनि पुनि कहब***' का भाव यह है कि यदि मुनिको कहना होता तो दो दिन पूर्व ही कहनेका बहुत अच्छा अवसर

था। उस समय वे प्रभुसे कह सकते थे 'हे राम! हम तुम्हारे बिना नहीं लौटेंगे। परन्तु अब तो उन्होंने दो दिनकी अवधि स्वयं माँग ली है, अब वे पुनः लौटनेके लिये क्यों कहेंगे?' यदि कहेंगे तो श्रीरामजीकी रुचि जानकर कहेंगे। *'राम रुचि'* का भाव यह है कि भरत की रुचि नहीं देखेंगे। श्रीभरत दूसरा उपाय सोचते हैं—यदि श्रीरामकी माता हठ कर लें तो भी प्रभु लौट सकते हैं; परन्तु श्रीरामकी माता क्या कभी हठ करेंगी? *'रामजननि'* कहनेका भाव कि बड़ी गम्भीर हैं। उन्होंने श्रीरामजीसे भी यही कहा था

पितु आयसु सब धरमक टीका।

अब पुनः वे लौटनेका हठ क्यों करेंगी? अथवा—हठ करना तो भरत जननी जानती हैं—

होत प्रातु मुनिवेष धरि जौं न राम बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं॥

(२। ३३)

वे तो राम जननी हैं। वह हठ नहीं कर सकती हैं। तीसरा उपाय यह भी है कि मैं स्वयं हठ कर लूँ। उसका उत्तर स्वयं देते हैं—मैं तो सेवक हूँ। मेरी तो बात ही कितनी है? फिर मेरा समय भी अच्छा नहीं है और विधाता प्रतिकूल हैं। इतनेपर भी यदि मैं हठ करता हूँ तो यह निपट कुकर्म है; क्योंकि सेवाधर्म कैलाश से भी भारी है। कैलाश पर्वतका उठानेवाला रावण सेवा नहीं कर सकता। कैलाश पर्वत तो उसने खेल ही में उठा लिया था।

कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाइ॥

(१। १७९)

परन्तु सेवाके लिये रात भर विचार करके निर्णय करता है।

होइहि भजनु न तामस देहा।
मन क्रम बचन मंत्र दृढ एहा॥

(३। २३)

श्रीरामजीके 'राज्याभिषेक होनेकी' अनेक युक्तियाँ श्रीभरतजी रात्रिपर्यन्त सोचते रहे जिसमें तीन उपाय मुख्य थे; परन्तु एक भी युक्ति—उपाय श्रीभरतजीके मनमें नहीं ठहरी। सोचते सोचते रात्रि व्यतीत हो गयी।

केहि बिधि होइ राम अभिषेकू।
मोहि अवकलत उपाउ न एकू॥
अवसि फिरहिं गुर आयसु मानी।
मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी॥
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ।
राम जननि हठ करबि कि काऊ॥
मोहि अनुचर कर केतिक बाता।
तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता॥
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू।
हर गिरि तें गुरु सेवक धरमू॥
एकउ जुगुति न मन ठहरानी।
सोचत भरतहि रैनि बिहानी॥

प्रातःकाल स्नान करके अपने परमाराध्य श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें प्रणाम करके बैठे ही थे कि उसी समय श्रीवसिष्ठजीने बुला भेजा।

प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई।
बैठत पठए रिषयँ बोलाई॥

चित्रकूटमें श्रीवसिष्ठजीने एक गोष्ठीका आयोजन किया। जिसमें विप्र, महाजन, मन्त्री सभी सभासद आकर एकत्रित हुए। श्रीभरत शत्रुघ्न भी आकर गुरुचरणकमलोंमें प्रणाम करके विराज गये।

गुर पद कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ।
बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ॥

गुरुदेवने कहा—हे सभासदों! श्रीरामजीकी आज्ञा एवं उनका रुख रखनेमें हम सबका हित होगा, यह मेरा मत है। आप लोग सयानें हैं, जो सबका सम्मत हो वही सब मिलकर करो।

राखें राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब सब मिलि संमत सोइ॥

रात्रिमें श्रीभरतजीने जो अनुमान किया था वह सत्य हो गया। श्रीवसिष्ठने फिर कहा—श्रीरामका अभिषेक सबको अच्छा लगता है, मुझे भी अच्छा लगता है; क्योंकि मङ्गल और आनन्दका मूल यह एक ही मार्ग है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब श्रीरामजी अयोध्या लौट चलें। अब आपलोग विचार करके उपाय बताओ कि श्रीरामजी श्रीअयोध्याजी किस प्रकार चलें? वही उपाय किया जाय।

सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू।
मंगल मोद मूल मग एकू॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ।
कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ॥

श्रीवसिष्ठजीकी वाणीको *'नय परमारथ स्वारथ सानी'* कहा है। किसीको कोई उत्तर नहीं सूझा, सब लोगोंने तो निश्चय कर लिया था कि श्रीरामजीको लौटनेका कोई न कोई उपाय गुरुजी अवश्य करेंगे; परन्तु जब उन्होंने उपाय पूछा तो सब लोग विचारशक्तिसे रहित हो गये। सबकी आशाकलिकापर तुषारापात हो गया। जब लोगोंको विचारशक्तिसे रहित देखा—निरुत्तर देखा और श्रीवसिष्ठजीने अपना अभिमत व्यक्त कर दिया तब श्रीभरतजीने कहा।

उतरु न आव लोग भए भोरे।
तब सिरु नाइ भरत कर जोरे॥

श्रीभरतजीने कहा—हे गुरुदेव! सूर्यवंशमें एक से एक अधिक बड़े अनेक राजा हो गये हैं। इसी वंशमें राजा भगीरथ हुए, मान्धाता हुए, हरिश्चन्द्र हुए, रघु हुए। सभीके जन्मके कारण माता पिता ही होते हैं और शुभाशुभ कर्मोंका फल विधाता देते हैं। फिर सूर्यवंशी राजा इतने बड़े कैसे हो गये? हे स्वामिन्! सूर्यवंशियोंकी उन्नतिके कारण तो आप हैं। सूर्यवंशियोंके ऊपर जब भी कभी विपत्तिके बादल मँड़राये तब आपने अपनी कृपापवनसे उन बादलोंको छिन्न भिन्न कर दिया। हे गोसाईं! आप वही हैं जिन्होंने ब्रह्माकी गतिको कभी रोक दिया था। आपने जो टेक टेक दी उसे कौन टाल सकता है? आप वही हैं, सूर्यवंश भी वही है, आपकी महिमामें भी कोई कमी नहीं है फिर आप अब मुझसे उपाय पूँछ रहे हैं, यह सब मेरा अभाग्य है। *'पूछिअ मोहि उपाय'* का भाव कि आपने आजतक किसीसे उपाय नहीं पूछा अपितु सबके उपाय पूछनेपर आपने उपाय बताया। मेरे पिताजी श्रीदशरथजीसे उपाय नहीं पूछा, श्रीरघुसे उपाय नहीं पूछा, श्रीदिलीपसे उपाय नहीं पूछा, आज जब भरतका सन्दर्भ आया तब आप उपाय पूछ रहे हैं और 'अब' उपाय पूछ रहे हैं जब मेरे आराध्य वनमें आ चुके हैं, यह सब मेरा अभाग्य है। मेरे अभाग्यने आपकी महिमाको भी कुण्ठित कर दिया। श्रीभरतके स्नेहमय वचनोंको सुनकर श्रीगुरुदेवके हृदयमें प्रेम उमड़ आया।

भानुबंस भए भूप घनेरे।
अधिक एक तें एक बड़ेरे॥

जनम हेतु सब कहँ पितु माता।
करम सुभासुभ देइ बिधाता॥
दलि दुख सजइ सकल कल्याना।
अब असीस राउरि जगु जाना॥
सो गोसाइँ बिधि गति जेहि छेंकी।
सकइ को टारि टेक जो टेकी॥
बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेहमय गुर बचन उर उमगा अनुरागु॥

श्रीगुरुदेवने कहा—हे तात! तुम्हारी बात सत्य है कि सूर्यवंशी राजा मेरे अनुगत शिष्य थे और हैं तथा मैंने सबकी यथाशक्ति यथामति सहायता भी की है; परन्तु इस प्रसङ्गमें मेरी मति और मेरी शक्तिका वश नहीं है। हे वत्स! आज तक मैंने जो कुछ भी किया वह श्रीरामचन्द्रकी कृपासे ही किया है श्रीरामजीसे विमुख होकर तो स्वप्नमें भी सिद्धि नहीं हो सकती है। श्रीवसिष्ठजीका आन्तरिक आशय यह है कि इस प्रसङ्गमें श्रीरामजीकी इच्छा वनमें आनेकी थी तब उस इच्छाको कौन रोकनेमें समर्थ हो सकता है। हे भरत! श्रीरामजीके वनवासमें कोई दोषी नहीं हो सकता है। उन्होंने जिससे जो कराना चाहा उसने वह किया। मैं तो मात्र द्रष्टा बनकर प्रभुकी लीलाका दर्शन कर रहा था।

श्रीवृहस्पतिजीसे जब देवताओंने माया करनेके लिये कहा तब उन्होंने बहुत सुन्दर कहा है—हे देवराज! मायापति श्रीरामजीके सेवकके साथ कोई माया करता है तो वह उलटकर माया करनेवालेके ऊपर ही आ पड़ती है। वनवासके समय तो श्रीरामका रुख जानकर ही कुछ किया था, परन्तु इस समय कुचाल करनेसे हानि ही होगी।

मायापति सेवक सन माया।
करइ त उलटि परइ सुरराया॥
तब किछु कीन्ह राम रुख जानी।
अब कुचालि कर होइहि हानी॥
(२। २१८)

हे तात! एक बात कहनेमें सङ्कोच होता है—बुद्धिमान् लोग सर्वस्व जाता देखकर आधा ही जाने देते हैं। भाव यह है कि तुम दोनों भाई वनको जाओ और श्रीलक्ष्मण सीता और श्रीरामको लौटा दिया जाय।

तात बात फुरि राम कृपाहीं।
राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता।
अरध तजहिं बुध सरबस जाता॥
तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई।
फेरिअहिं लखन सीय रघुराई॥

श्रीवसिष्ठजीके वचनोंकी प्रतिक्रियाका दर्शन करें। श्रीवसिष्ठजीके सुन्दर वचनोंको सुनकर दोनों भाई—श्रीभरत और शत्रुघ्न प्रसन्न हो गये, मानों राजा दशरथजी जीवित हो गये हों और श्रीरामजी राजा हो गये हों। अन्य लोगोंको तो इसमें लाभ अधिक और हानि कम प्रतीत हुई, परन्तु रानियोंको—माताओंको दुःख सुख समान ही थे। श्रीराम-लक्ष्मण वनमें रहें या भरत-शत्रुघ्न—दोनों पुत्रोंका वियोग तो रहेगा ही। यह समझकर वे रुदन करने लगीं।

सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता।
भे प्रमोद परिपूरन गाता॥
मन प्रसन्न तनु तेज बिराजा।
जनु जिय राउ रामु भए राजा॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी।
सम दुख सुख सब रोवहिं रानी॥

श्रीभरतजीने कहा—मुनिकी आज्ञाका पालन करनेसे संसारके जीवोंको उनकी अभिलषित वस्तु देनेका फल होगा। हे गुरुदेव! मैं चौदह वर्ष नहीं अपितु जीवनपर्यन्त वनमें रहूँगा। मेरे लिये इससे महान् कोई सुख नहीं है। मेरी बातकी सत्यताका प्रमाण है कि श्रीसीताराम अन्तर्यामी हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं। हे नाथ! यदि आप सत्य कह रहे हैं तो अपने वचनोंको प्रमाणित करिये—उसके अनुसार व्यवस्था कीजिये।

कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे।
फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे॥
कानन करउँ जनम भरि बासू।
एहिं तें अधिक न मोर सुपासू॥
अंतरजामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचनु प्रमान॥

श्रीभरतजीके त्याग एवं स्नेहपूर्ण वचनोंको सुनकर, उनका स्नेह देखकर समस्त सभाके साथ मुनि श्रीवसिष्ठजी विदेह हो गये। किसीको अपने देहकी सुधि नहीं रही।

भरत बचन सुनि देखि सनेहू।
सभा सहित मुनि भए बिदेहू॥

श्रीभरतजीकी महान् महिमा अगाध रामप्रेमका समुद्र है। इसके पूर्व इस समुद्रमें साक्षात् श्रीरामजीका डूबना कह चुके हैं।

कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ।
प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ॥

श्रीभरतजीकी महामहिमारूपी समुद्रके उसपार ज्ञानियोंके चक्रचूड़ामणि परमबुद्धिमान् श्रीहनुमान्‌जी भी नहीं जा सके।

लङ्काकाण्डमें जब श्रीहनुमानजी सञ्जीवनी बूटी लेने गये थे उस समय श्रीभरतजीने उनसे कहा।

हे हनुमान्! आप पर्वतसहित मेरे बाणपर चढ़ जाइये। मैं तत्काल आपको प्रभुके पास पहुँचा दूँगा। यह सुनकर श्रीहनुमान्‌जीके मनमें गुप्त रूपसे गर्व हुआ। वे उनके बाणपर चढ़े और जब देखा कि उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है तब बाणसे उतरकर उनकी महिमाका वर्णन करना चाहा। श्रीभरतजीके गुणोंने उन्हें जीत लिया था। उनका मन अनुरागमें डूब गया तथा 'भरतजी धन्य हैं! भरतजी धन्य हैं!' इस प्रकार कहते हुए प्रेममें मग्न होकर मौन हो गये। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—इस प्राकृतिक समुद्रको तो सगरपुत्रोंने खोदा है। देवताओं और दैत्योंने मथा है, श्रीहनुमान्‌जीने लाँघा है, नल नीलने बाँधा है और श्रीअगस्त्यजीने पान किया है; परन्तु श्रीरामचन्द्रजीके भ्राता श्रीभरतजीकी महिमाके समुद्रको तैरकर कौन कवि पार गया है?

यह जलनिधि खन्यो, मथ्यो,
लँघ्यो, बाँध्यो, अँचयो है।
तुलसिदास रघुबीर बंधु-महिमाको
सिंधु तरि को कबि पार गयो है?

(श्रीगीतावलीरामायण ६। ११)

आज इसी अगाध रामप्रेम समुद्रके तटपर आथर्वणी महात्मा श्रीवसिष्ठजीकी मति अबला स्त्रीकी भाँति असहाय और निरुपाय खड़ी है। वह अबला पार जाना चाहती है। पार जानेके लिये उसने अपने हृदयमें उपाय भी हेरा—अन्वेषण किया; परन्तु इसे पार जानेका साधन—नाव, जहाज या बेड़ा कुछ भी नहीं मिला। अर्थात् श्रीवसिष्ठजी अपने महाप्रेमी शिष्य श्रीभरतके त्याग, बलिदान, सौशील्य और रामप्रेम आदि

गुणोंसे इतने प्रभावित हुए कि श्रीभरतजीकी प्रशंसा करना चाहते हैं; परन्तु उन्हें कोई साधन नहीं मिल रहा है। उनकी बुद्धि काम नहीं कर रही है। बहुत बड़ा अनुभव उनके पास है। वेदोंके परिपूर्ण ज्ञाता हैं; परन्तु वेदोंसे कोई सूत्र नहीं मिला अतः जहाज नहीं मिली। वे बहुत बड़े विद्वान् हैं, साक्षात् परब्रह्मको पढ़ाया है; परन्तु किसी विद्यामें कोई सूत्र नहीं मिला अतः नाव नहीं मिली। जीवनमें सत्सङ्ग भी बहुत किया है; परन्तु आज किसी सन्तकी वाणीका सूत्र भी नहीं मिला अतः बेड़ा भी काम नहीं किया। जब ब्रह्माके पुत्र श्रीवसिष्ठजीकी यह स्थिति है तब श्रीभरतजीकी अगाध महिमाकी बड़ाई और कौन कर सकता है? क्या तलैयाकी सीपीमें समुद्र समा सकता है?

भरत महा महिमा जलरासी।
मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥
गा चह पार जतनु हियँ हेरा।
पावति नाव न बोहितु बेरा॥
औरु करिहि को भरत बड़ाई।
सरसी सीप कि सिंधु समाई॥

इस प्रकार श्रीभरतजीकी भावनासे भावित अन्तःकरण श्रीवसिष्ठजी सबको साथमें लेकर श्रीरामजीके पास आये।

भरतु मुनिहि मन भीतर भाए।
सहित समाज राम पहिं आए॥

श्रीरामजीने प्रणाम करके सुन्दर आसन दिया। सब लोग यथास्थान बैठ गये। आज अपने वचनके अनुसार श्रीवसिष्ठको अयोध्या प्रस्थान करना था। श्रीवसिष्ठजीने जानेके स्थानपर श्रीरामजीसे कहा—हे सर्वज्ञ राम! हे सुजान राम! आप धर्म, नीति, गुण और ज्ञानके निधान हैं। आप सबके हृदयमें निवास करते हैं। सबके भाव और कुभावके ज्ञाता हैं। हे सर्वान्तर्यामिन्! पुरवासियों, माताओं और भरतका जिसमें हित सन्निहित हो वह उपाय बताइये।

सुनहु राम सरबग्य सुजाना।
धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥
सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ॥

भगवान् श्रीरामने कहा—हे नाथ! उपाय तो आपके ही हाथ है। ***'नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ।'***

श्रीवसिष्ठजीने कहा—हे रघुनन्दन! हमारे विचार अब भरतके अनुकूल होंगे; क्योंकि मेरी बुद्धि श्रीभरतकी भक्तिके वशमें हो गयी है।

कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा।
भरत सनेहँ बिचारु न राखा।
तेहिं तें कहउँ बहोरि बहोरी।
भरत भगति बस भइ मति मोरी॥

हे रामचन्द्र! आपसे भी मैं यही कहूँगा कि आप भरतकी विनय आदरपूर्वक सुनिये। सुनकर उसपर विचार करिये और साधुमत, लोकमत, राजनीति तथा वेदोंका सार निकालकर उसीके अनुसार करिये।

भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि॥

श्रीभरतपर गुरुदेवका विशेष अनुराग देखकर श्रीरामजीका हृदय आनन्दसे परिपूर्ण हो गया।

गुर अनुरागु भरत पर देखी।
राम हृदयँ आनंदु बिसेषी॥

श्रीरामजीने कहा—हे नाथ! आपकी शपथ और पूज्य पिताके चरणोंकी दुहाई है कि संसारमें

भरतके समान भाई कोई हुआ ही नहीं। संसारका सबसे भाग्यवान् व्यक्ति वही है जो गुरुचरण कमलोंका भक्त हो और जिसपर आपका—गुरुका इतना अनुराग हो उस भरतके भाग्यकी बड़ाई कौन कर सकता है?

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई।
भयउ न भुअन भरत सम भाई॥
जे गुर पद अंबुज अनुरागी।
ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥
राउर जा पर अस अनुरागू।
को कहि सकइ भरत कर भागू॥

हे स्वामिन्! भरत जो कुछ कहें, वही करनेमें भलाई है। इतना कहकर श्रीरामजी मौन हो गये।

भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई।
अस कहि राम रहे अरगाई॥

श्रीरामकी उदारवाणी सुनकर मुनिने श्रीभरतसे कहा—हे तात! सब प्रकारका सङ्कोच त्यागकर अपने प्रिय भाई करुणासागर श्रीरामजीसे अपने मनकी बात कहो।

तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कै बात॥

श्रीभरतजीने पुलकित होकर सभामें खड़े होकर नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भरकर कहा—मेरा कहना तो श्रीगुरुदेवने ही कह दिया। इससे अधिक मैं क्या कहूँ? मैं अपने स्वामीका स्वभाव भलीभाँति जानता हूँ। वे अपराधी पर भी कभी क्रोध नहीं करते। मुझपर तो उनकी विशेष अनुकम्पा और अनुराग है। मैंने खेलनेमें भी कभी उनकी अप्रसन्नता नहीं देखी। मैंने लड़कपनसे ही कभी उनका साथ नहीं छोड़ा और उन्होंने कभी मेरा मन नहीं तोड़ा। मैंने उनके कृपा करनेके स्वभावको अच्छी तरह देखा है। खेलमें हारनेपर भी मेरे स्वामी मुझे विजयी घोषित करते थे। मैंने भी प्रेम और सङ्कोचके कारण कभी सामने बात नहीं की। मेरे प्रेम प्यासे नेत्र आजतक दर्शनसे तृप्त नहीं हुए।

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ।
अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी।
खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू।
कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही।
हारेहुँ खेल जितावहिं मोही॥
महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि पेम पिआसे नैन॥

साधुओंकी सभा, गुरुदेव और स्वामीकी सन्निधि तथा चित्रकूट स्थल इन चारोंके सन्निकट असत्य बोलना महापाप है। उसपर भी मुनि—मेरे गुरुदेव श्रीवसिष्ठजी और मेरे आराध्य श्रीराम तो सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी हैं तथा चित्रकूट वह पवित्र स्थल है, जहाँ भगवान् विष्णु, ब्रह्मा और श्रीशङ्करजीका प्रपञ्च तो प्रकट हो ही गया तब और कौन प्रपञ्च कर सकता है?

साधु सभा गुरु प्रभु निकट कहउँ सुथल सतिभाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ॥

श्रीगुरुदेवने श्रीरामजीसे कहा था—

पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाय।

उसी बातको श्रीभरतजी कहते हैं—हे नाथ! व्याकुल माताएँ देखी नहीं जाती हैं। श्रीअयोध्याके नर नारी आपके असह्य वियोग सन्तापसे जलते रहते हैं। इन सब अनर्थोंका कारण मैं ही हूँ। यह

सुनकर और समझकर मैंने समस्त दु:खोंको सहन किया है। श्रीरामजी मुनिका वेष बनाकर श्रीलक्ष्मण और सीताजीके साथ, चरणोंमें बिना पदत्राणके पैदल ही वन चले गये। यह सुनकर भी मैं जीवित रह गया।

देखि न जाहिं बिकल महतारीं।
जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं॥
महीं सकल अनरथ कर मूला।
सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा।
करि मुनि बेष लखन सिय साथा॥
बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ।
संकर साखि रहेउँ एहि घाएँ॥

जिनको देखकर मार्गकी सर्पिणी और बीछी भी अपने तीव्र विष और क्रोधका परित्याग कर देती हैं वे ही श्रीराम, लक्ष्मण, सीता जिसको अनहित जान पड़े, उस कैकेयीके पुत्र मुझको छोड़कर विधाता असह्य वेदना किसको सहावेगा?

जिन्हहिं निरखि मग साँपिनि बीछी।
तजहिं विषम बिषु तामस तीछी॥
तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि॥

इन सम्पूर्ण प्रसङ्गोंमें श्रीभरतजीकी मानसिक ग्लानि अभिव्यक्त हो रही है। श्रीगुरुदेवने आज्ञा दी थी।

कृपासिंधु प्रियबंधु सन कहहु हृदय कै बात।

उनकी आज्ञानुसार यहाँतक श्रीभरतने हृदयकी बात कही। श्रीभरतजीकी अत्यन्त व्याकुल तथा दु:ख, प्रेम, विनय और नीतिमें सनी हुई वाणी सुनकर सारा समाज शोकाकुल हो गया। भगवान् श्रीरामचन्द्र उचित वाणीमें श्रीभरतका समाधान करते हैं—हे तात! तुम अपने मनमें व्यर्थकी ग्लानि करते हो। जीवकी गति सर्वथा परमात्माके अधीन होती है। हे भैया! मेरी रायमें अतीत, अनागत और वर्तमान तीनों कालोंमें और तीनों लोकोंमें समस्त सुकृतीजन तुमसे नीचे हैं। हे भैया! जो हृदयमें भी तुम्हारे प्रति कुटिलताका भाव ले आते हैं उनका लोक परलोक नष्ट हो जाता है। माता कैकेयीको तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं जिन्होंने गुरुओं और साधुओंका सत्सङ्ग नहीं किया है।

तात जायँ जियँ करहु गलानी।
ईस अधीन जीव गति जानी॥
तीनि काल त्रिभुअन मत मोरें।
पुन्यसिलोक तात तर तोरें॥
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई।
जाइ लोकु परलोकु नसाई॥
दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई।
जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥

श्रीरामचन्द्रजीने इन पंक्तियोंमें श्रीभरत और कैकेयीको सर्वथा निर्दोष सिद्ध किया है; परन्तु श्रीकैकेयी एवं भरतके ऊपर अनेक लोगोंने दोषारोपण किया था। प्रभुने दोषारोपणका फल कहा ***'जाइ लोकु परलोकु नसाई।'*** इससे यह सम्भव है कि दोष देनेवालेने सोचा होगा कि हमने भी दोष दिया है, एतावता हमें भी उसका फल भोगना होगा। अन्तर्यामी करुणामय श्रीरामजी उनके मनकी भावना समझकर पुन: कहते हैं।

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोकु सुखु सुमिरत नामु तुम्हार॥

यह दोहा दोषारोपण करनेवालोंके दोषोंको नष्ट करनेका उपाय है। श्रीभरत नामका स्मरण करनेसे सब दोष मुक्त हो जायेंगे। श्रीरामचन्द्रजी

श्रीभरतजीके महत्त्वका प्रतिपादन करते हुए श्रीशङ्करकी शपथ करके कहते हैं—हे भरत! मैं स्वभावसे सत्य कहता हूँ कि पृथ्वी तुम्हारे ही रखनेसे रह सकती है।

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी।
भरत भूमि रह राउरि राखी॥

हे तात! मैं तुमको, तुम्हारे स्वभावको और तुम्हारे प्रेमको भलीभाँति जानता हूँ। सम्प्रति क्या करूँ? मेरे मनमें बड़ी दुविधा है। श्रीपिताजीने मुझे त्यागकर सत्यकी रक्षा की और प्रेम प्रणके निर्वाहके लिए अपना शरीर परित्याग कर दिया। उनकी आज्ञाकी अवज्ञा करनेमें मन दुःखी होता है। उससे भी बढ़कर तुम्हारा सङ्कोच है। उसपर भी मुझे गुरुदेवने आज्ञा दी है। एतावता अब तुम जो कुछ कहो, अवश्य ही मैं वही करना चाहता हूँ। हे भैया! मैं तुम्हें दुःखी नहीं देख सकता इसलिए तुम अपने मनको प्रसन्न करके, सङ्कोचका परित्याग करके जो कुछ कहो आज मैं वही करूँगा। सत्यसन्ध श्रीरामजीके वचनोंको सुनकर समग्र समाज सुखी हो गया।

तात तुम्हहि मैं जानउँ नीकें।
करौं काह असमंजस जीकें॥
राखेउ रायँ सत्य मोहि लागी।
तनु परिहरेउ पेम पन लागी॥
तासु बचन मेटत मन सोचू।
तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा।
अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥
मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसंध रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजू॥

भगवान् श्रीरामजीके इन वचनोंसे देवेन्द्र भयभीत हो गये। पहले तो वे श्रीरामजीकी शरण गये। फिर सब देवता आपसमें कानोंसे लग लगकर कहते हैं कि अब देवताओंका कार्य श्रीभरतके हाथ है। हे देवताओं! और कोई उपाय सूझ नहीं रहा है। श्रीरामजी अपने श्रेष्ठ सेवकोंकी सेवाका सम्मान करते हैं, एतावता आपलोग अपने हृदयमें प्रेमपूर्वक श्रीभरतका स्मरण करो। उन्होंने अपने गुण और शीलसे श्रीरामजीको स्वाधीन कर लिया है।

लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा।
अब सुर काज भरत के हाथा॥
आन उपाउ न देखिअ देवा।
मानत रामु सुसेवक सेवा॥
हियँ सपेम सुमिरहु सब भरतहि।
निज गुन सील राम बस करतहि॥

देवताओंकी पारस्परिक बात सुनकर श्रीवृहस्पतिजीने कहा—तुमने अच्छा विचार किया है। श्रीभरतजीके चरणोंका स्नेह संसारमें समस्त सुमङ्गलोंका मूल है। श्रीसीतानाथके सेवकोंकी सेवा सैकड़ों कामधेनुके समान सुन्दर है। तुम्हारे मनमें श्रीभरतजीकी भक्ति आयी है तो अब सोच छोड़ दो। सब बात ब्रह्माजीने बना दी।

सुनि सुर मत सुर गुर कहेउ भल तुम्हार बड़ भागु।
सकल सुमंगल मूल जग भरत चरन अनुरागु॥
सीतापति सेवक सेवकाई।
कामधेनु सय सरिस सुहाई॥
भरत भगति तुम्हरें मन आई।
तजहु सोचु बिधि बात बनाई॥

श्रीभरतजीने अपने मनमें समस्त भार अपने ही सिर जाना। वे मनमें अनेकों प्रकारके अनुमान करने लगे। समस्त विचार करके उन्होंने अपने

मनमें निर्णय किया कि श्रीरामजीकी आज्ञामें ही हमारा कल्याण है। करुणामय श्रीरामजीने अपना प्रण छोड़कर मेरा प्रण रखा। यह उनकी महान् कृपा है। फिर भरतजी दोनों करकमलोंको जोड़कर प्रणाम करके बोले—

निज सिर भारु भरत जियँ जाना।
करत कोटि बिधि उर अनुमाना॥
करि बिचारु मन दीन्ही ठीका।
राम रजायस आपन नीका॥
निज पन तजि राखेउ पनु मोरा।
छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा॥
कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज जुग हाथ॥

श्रीभरतजीने कहा—गुरुदेव श्रीवसिष्ठजी और स्वामी श्रीरामचन्द्रजीका सब प्रकारसे स्नेह देखकर मेरा क्षोभ समाप्त हो गया, अब मेरे मनमें कोई सन्देह नहीं है। हे करुणामय! अब वही कीजिये जिससे दासके निमित्त स्वामीके चित्तमें क्षोभ न हो। जो सेवक अपने स्वामीको सङ्कोचमें डालकर अपना हित चाहता है, उसकी बुद्धि नीच है। सेवकका हित तो इसीमें है कि वह समग्र सुखों और लोभोंका परित्याग करके स्वामीकी सेवा करे। हे नाथ! आपके श्रीअयोध्या चलनेमें सबका स्वार्थ है और आपकी आज्ञापालन करनेमें सब प्रकारसे कल्याण है।

लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू।
मिटेउ छोभु नहिं मन संदेहू॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई।
जन हित प्रभु चित छोभु न होई॥
जो सेवकु साहिबहि सँकोची।
निज हित चहइ तासु मति पोची॥
सेवक हित साहिब सेवकाई।
करै सकल सुख लोभ बिहाई॥
स्वारथु नाथ फिरें सबही का।
किएँ रजाइ काटि बिधि नीका॥

श्रीभरतजीने पुनः कहा—हे देव! आप मेरी एक प्रार्थना सुनकर फिर जो उचित हो वह करें। राजतिलककी समग्र सामग्री सजाकर लाई गयी है, जो प्रभुका मन माने तो उसका उपयोग कीजिये। छोटे भाई शत्रुघ्नके सहित मुझे वनमें भेज दीजिये और आप श्रीअयोध्या लौटकर सबको सनाथ कीजिये। यदि आपको वन जाना ही अभीष्ट है तो हे नाथ! लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों भाइयोंको लौटा दीजिये और मैं आपके साथ चलूँ। किं वा हम तीनों भाई वन चले जायँ और श्रीमान् श्रीसीताजीके साथ श्रीअयोध्या लौट जाइये। हे करुणासागर! जिस तरह प्रभुका मन प्रसन्न हो वही कीजिये।

देव एक बिनती सुनि मोरी।
उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना।
करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना॥
सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ॥
नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई।
बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।
करुना सागर कीजिअ सोई॥

इस प्रकार श्रीभरतजी अपना मन्तव्य निवेदन करके अपने वक्तव्यके अन्तमें कहते हैं—हे कृपालो! अब तो मुझे वही मत अच्छा लगता है, जिससे स्वामीके मनमें सङ्कोच न हो। प्रभुके

चरणोंकी शपथ है, मैं सत्यभावसे कहता हूँ, जगन्मङ्गलके लिये एक ही उपाय है। हे प्रभो! प्रसन्न मनसे सङ्कोच छोड़कर श्रीमान् जिसे जो आज्ञा देंगे सब लोग उसका आदरपूर्वक पालन करेंगे और समस्त उपद्रव और उलझनें समाप्त हो जायेंगी।

अब कृपाल मोहि सो मत भावा।
सकुच स्वामि मन जाइँ न पावा॥
प्रभु पद सपथ कहउँ सति भाऊ।
जग मंगल हित एक उपाऊ॥
प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देव।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब॥

श्रीभरतजीके वचनोंकी प्रतिक्रिया विभिन्न समाजपर क्या हुई? इसका दर्शन करें। श्रीभरतजीके पावन वचनोंको श्रवण करके देवता लोग प्रसन्न हो गये और 'साधु साधु' कहकर श्लाघा करते हुए पुष्प वर्षण करने लगे। श्रीअयोध्याके नर-नारी दुविधामें पड़ गये। चित्रकूटके तपस्वी तथा कोल किरातलोग मनमें प्रमुदित हो गये। परम सङ्कोची श्रीराम मौन हो गये। श्रीरामजीका मौन देखकर समग्र सभा चिन्तित हो गई।

भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे।
साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
असमंजस बस अवध नेवासी।
प्रमुदित मन तापस बनबासी॥
चुपहिं रहे रघुनाथ सँकोची।
प्रभु गति देखि सभा सब सोची॥

जिस समय सब लोग चिन्तित थे, ऊहापोहकी स्थिति थी, उसी समय श्रीजनकजीके दूत आ गये। श्रीवसिष्ठजी पितृस्थानापन्न हैं एतावता उन्होंने दूतोंको तत्काल बुला लिया।

जनक दूत तेहि अवसर आए।
मुनि बसिष्ठँ सुनि बेगि बोलाए॥

'बेगि बोलाए' का भाव यह है कि श्रीजनकके शीघ्र आ जानेसे यह सभा इसी समय समाप्त हो जायगी। परिणामस्वरूप श्रीअवधवासियोंको कुछ दिन और अपने प्रिय श्रीरामजीके पास रहनेका सौभाग्य मिल जायगा। किंवा श्रीजनकके शीघ्र आनेसे नगरवासियोंकी उलझन और श्रीरामका सङ्कोच सद्यः दूर हो जायेगा। दूतलोग दरबारमें आकर प्रणाम करके श्रीरामजीका दर्शन करके उनका मुनि वेष देखकर अत्यन्त दुःखी हो गये।

करि प्रनाम तिन्ह रामु निहारे।
बेषु देखि भए निपट दुखारे॥

श्रीवसिष्ठजीके कुशल प्रश्न करनेपर दूतोंने कहा—हे स्वामिन्! आपका आदरपूर्वक पूछना ही कुशलका कारण हो गया। अन्यथा कुशल तो श्रीकोसलनाथके साथ ही चली गयी। उनके चले जानेसे यों तो सारा संसार ही अनाथ—असहाय हो गया; किन्तु मिथिला और अवध तो विशेष रूपसे अनाथ हो गये।

बूझब राउर सादर साईं।
कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं॥
नाहिं त कोसल नाथ कें साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध बिसेष तें जग सब भयउ अनाथ॥

श्रीजनकके दूतोंने आगे कहा—हे मुनिनाथ! श्रीकोसलनाथके मरणका समाचार सुनकर मिथिलाके सब लोग बावले हो गये। श्रीजनकजीने विद्वानों और मन्त्रियोंसे परामर्श करके चार चतुर चर—दूत श्रीअयोध्या भेजे। उन दूतोंको श्रीजनकका आदेश था कि आपलोग गुप्त रूपसे वहाँ रहकर श्रीभरतजीके सद्भाव और कुभावका परिज्ञान

करो। दूतोंने श्रीअयोध्यामें जाकर वहाँकी परिस्थितिका अध्ययन करके श्रीभरतजीका सद्भाव देखा। जब श्रीभरतजीने चित्रकूटके लिये प्रस्थान किया उसी समय चारो दूत श्रीअयोध्यासे मिथिला आ गये।

गए अवध चर भरत गति बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहि भरतु चार चले तेरहूति॥

दूतोंने जनकपुर आकर श्रीभरतजीका स्नेहिल समाचार सुनाया। उसे सुनकर श्रीमहाराज जनकने स्नेहपूर्वक श्रीभरतजीकी प्रशंसा करके घर, नगर और देशमें रक्षकोंको नियुक्त करके सब साज सजा करके तत्काल 'दुघड़िया मुहूर्त शोध करके श्रीचित्रकूटके लिये प्रस्थान कर दिया। मार्गमें कहीं विश्राम नहीं किया। आज प्रात:काल तीर्थराज प्रयागमें स्नान करके सबलोग यमुनाके पार होने लगे।

घर पुर देस राखि रखवारे।
हय गय रथ बहु जान सँवारे॥
दुघरी साधि चले ततकाला।
किए बिश्रामु न मग महिपाला॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा।
चले जमुन उतरन सबु लागा॥

हमको समाचार लेनेके लिये भेजा गया है। श्रीवसिष्ठजीने सब समाचार सुनकर दूतोंके साथ पथ प्रदर्शन करनेवाले छ: सात किरातोंको करके तत्काल दूतोंको विदा कर दिया। श्रीगोस्वामीजीने श्रीजनकके आनेका समाचार सुनकर समाजमें क्या प्रतिक्रिया हुई? इसका अति भावपूर्ण वर्णन किया है। श्रीअयोध्याके समस्त नर-नारी प्रसन्न हो गये। श्रीरामजीको अत्यन्त सङ्कोच है और देवराज इन्द्रको चिन्ता हो गयी। श्रीकैकेयीके मनमें ग्लानि है। हा हन्त! अब मैं समधिनियोंको कैसे मुख दिखाऊँगी? मुझे तो माँगनेपर मृत्यु भी नहीं मिलती है।

साथ किरात छ सातक दीन्हे।
मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे॥
सुनत जनक आगवनु सबु हरषेउ अवध समाजु।
रघुनंदनहि सकोचु बड़ सोच बिबस सुरराजु॥
गरइ गलानि कुटिल कैकई।
काहि कहै केहि दूषनु देई॥
अस मन आनि मुदित नर नारी।
भयउ बहोरि रहब दिन चारी॥

श्रीअयोध्याके नर नारी श्रीगणेश, गौरी, शङ्कर, सूर्य और रमारमाण—श्रीविष्णुभगवान्से प्रार्थना करते हैं। पञ्चदेवोंकी पूजा करके श्रीरामजीकी भक्ति माँगते हैं। स्मरण रहे, यह उपासना पञ्चदेवोंकी नहीं है अपितु अपने इष्ट की है। ये देवता भी श्रीरामजीके ही उपासक हैं। सब लोग प्रार्थना करते हैं—श्रीरामजी राजा और श्रीसीताजी रानी हों। श्रीअयोध्याजीमें आनन्द हो। श्रीरामजी श्रीभरतको युवराज बनावें।

करि मज्जनु पूजहिं नर नारी।
गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥
रमा रमन पद बंदि बहोरी।
बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी॥
राजा रामु जानकी रानी।
आनँद अवधि अवध रजधानी॥
सुबस बसउ फिरि सहित समाजा।
भरतहि रामु करहुँ जुबराजा॥

इसी प्रकार श्रीअयोध्याके नर नारी याचना करते हैं—नगरकी वृद्धा, युवती और सब तरहकी स्त्रियाँ प्रात:काल और सायंकाल एकाग्रचित्त

होकर परम उदार श्रीरामचन्द्रजीके राजा होनेके लिये देवताओंसे नमस्कार पूर्वक प्रार्थना किया करती हैं। हे देव! उनकी वह प्रार्थना आपके कृपा प्रसादसे पूर्ण होनी चाहिये।

स्त्रियो वृद्धास्तरुण्यश्च सायं प्रातः समाहिताः।
सर्वा देवान्नमस्यन्ति रामस्यार्थे मनस्विनः।
तेषां तद् याचितं देव त्वत्प्रसादात्समृद्ध्यताम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। २। ५२)

सब अयोध्यावासी अपने भाग्यकी सराहना करते हैं—हम महान् पुण्यवान् हैं; क्योंकि भगवान् श्रीराम हमें अपना मानते हैं।

कहत राम गुन गन अनुरागे।
सब निज भाग सराहन लागे॥
हम सम पुन्य पुंज जग थोरे।
जिन्हहि रामु जानत करि मोरे॥

सब अयोध्यावासी श्रीराम गुणगान करते हैं, अतः प्रेममें मग्न हैं। इतनेमें ही 'मिथिलेश श्रीजनक आ रहे हैं' यह सुनकर सूर्यकुलरूपी कमलके दिवाकर श्रीरामजी सभासहित आदरपूर्वक शीघ्रतासे उठ खड़े हुये। भाई, मन्त्री, गुरु और पुरवासियोंको साथमें लेकर श्रीरघुनाथजी श्रीजनकराजका स्वागत करनेके लिये चले।

प्रेम मगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेसु॥
भाइ सचिव गुर पुरजन साथा।
आगें गवनु कीन्ह रघुनाथा॥

गिरिश्रेष्ठ कामदगिरिका दर्शन करते ही श्रीजनकजीने प्रणाम करके रथका परित्याग कर दिया और पैदल चलने लगे। श्रीरामजीके दर्शनकी उत्कट लालसा और उत्साहके कारण किसीको किञ्चिन्मात्र भी मार्गजन्य श्रम और क्लेश नहीं है। इनके मन तो श्रीरामजीके पास हैं। बिना मनके शरीरके सुख दुःखकी स्मृति किसको हो?

गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं।
करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं॥
राम दरस लालसा उछाहू।
पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू॥
मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही।
बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही॥

निकट पहुँचकर पारस्परिक मिलन आरम्भ हो गया। भाइयोंके सहित श्रीरामजी श्रीजनकजीसे मिलकर समाजसहित उन्हें आश्रमको लिवा चले। श्रीरामजीका आश्रम शान्तरसरूपी पावन जलसे परिपूर्ण समुद्र है। श्रीजनकजीकी सेवा करुणाकी नदी है; जिसको श्रीरामजी आश्रमरूपी शान्त रसके समुद्रमें मिलानेके लिये—सङ्गम करानेके लिये लिये जा रहे हैं।

आश्रम सागर सांत रस पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित लिएँ जाहिं रघुनाथु॥

यह करुणानदी जब आश्रम समुद्रमें जाकर मिली तो मानो वह समुद्र क्षुब्ध हो गया अर्थात् वहाँ जो लोग थे पुरजन, रानियाँ, मुनिलोग वे भी व्याकुल हो गये। दोनों राज समाज शोकसे व्याकुल हो गये। श्रीजनक आदिका ज्ञान, धैर्य और स्त्रियोंकी लज्जा आदि नहीं रह गयी।

आश्रम उदधि मिली जब जाई।
मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई॥
सोक बिकल दोउ राज समाजा।
रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा॥

श्रीगोस्वामीजी स्वयं भावविह्वल होकर कहते हैं—देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगी और मुनिगणोंमें कोई भी समर्थ नहीं है जो उस समय विदेहकी

स्नेहिल दशा देखकर प्रेम सरिताका अतिक्रमण कर सके।

सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की॥

भक्तकवि श्रीतुलसीदासजी इस प्रसङ्गमें पाँच पंक्तियोंमें स्नेहकी महान् महिमाका वर्णन किए हैं। जिसके ज्ञानरूपी भुवन भास्करसे भवरूपी रात्रिका नाश हो जाता है और जिन श्रीजनकके वचनरूपी किरणोंसे—उपदेशसे मुनिरूपी कमल विकसित हो जाते हैं। उन जनकके पास क्या मोह ममतारूपी रात्रि आ सकती है? यह श्रीसीतारामजीके स्नेहकी महिमा है। भाव यह है कि सांसारिक स्नेह जनक ऐसे ज्ञानियोंको प्रभावित नहीं कर सकता है यह तो श्रीसीतारामोपासनावाले प्रेममें ही सामर्थ्य है।

जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा।
बचन किरन मुनि कमल बिकासा॥
तेहि कि मोह ममता निअराई।
यह सिय राम सनेह बड़ाई॥

श्रीरामके भाव परिपूर्ण स्नेहके बिना ज्ञान सुशोभित नहीं होता है जैसे कर्णधारके बिना जहाज, आशय यह है कि जो जहाज पार करनेवाला है—सन्तरणका साधन है, वह भी बिना कर्णधारके डुबानेवाला हो जाता है। श्रीमद्भागवतमें श्रीनारदजी भगवान् व्यासजीसे कहते हैं वह निर्मल ज्ञान भी जो मोक्षकी प्राप्तिका साक्षात् साधन है, यदि श्रीठाकुरजीकी भक्तिसे रहित हो तो उसकी पर्याप्त शोभा नहीं होती है।

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।

(श्रीमद्भागवत १। ५। १२)

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥

(७। १३)

श्रीवसिष्ठजीने श्रीजनकजीको अनेक प्रकारसे समझाया। उसके पश्चात् सब लोगोंने रामघाट पर जाकर स्नान किया।

मुनि बहुबिधि बिदेहु समुझाए।
रामघाट सब लोग नहाए॥

सब नर-नारी शोकग्रस्त थे। वह दिन बिना जलके ही बीत गया। उस दिन पशु, पक्षी और मृगोंने भी कुछ आहार नहीं किया। फिर प्रियजन और पुरजनके विषयमें क्या कहना?

सकल सोक संकुल नर नारी।
सो बासरु बीतेउ बिनु बारी॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू।
प्रिय परिजन कर कौन बिचारू॥

दूसरे दिन श्रीविश्वामित्र और श्रीवसिष्ठ आदि मुनियोंने अनेकों कथाएं कहकर प्रबोध किया। श्रीजनकके एवं उनके समाजके रहनेकी व्यवस्था अलग की गयी। श्रीरामचन्द्रजीके चित्रकूटके प्रिय पार्षद कोल किरातोंने अपनी-अपनी सेवा—फल-फूल आदिकी सेवा प्रेमपूर्वक की।

तेहि अवसर फल फूल दल मूल अनेक प्रकार।
लइ आए बनचर बिपुल भरि भरि काँवर भार॥

इस प्रकर चार दिन व्यतीत हो गये। आनन्द-सिन्धु श्रीरघुनन्दनका दर्शन करके सभी नर नारी सुखी हैं। दोनों समाजोंके मनमें यही अभिलाषा है कि श्रीसीतारामजीके बिना नहीं लौटेंगे।

एहि बिधि बासर बीते चारी।
राम निरखि नर नारि सुखारी॥
दुहु समाज असि रुचि मन माहीं।
बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं॥

श्रीसीताजीकी माता सुनयनाने श्रीकौसल्याजीके पास दासियोंको भेजकर मिलनेके अवसरका पता लगाया। सुअवसर जानकर श्रीजनकराजका रनिवास श्रीकौसल्या आदि माताओंसे मिलने आया। श्रीकौसल्याजीने सबका सनमान करके समयोचित आसन बैठनेके लिये दिया। दोनों ओर सबके शील और स्नेहको देखकर और सुनकर कठोर वज्र भी द्रवित हो जाते हैं।

सीलु सनेहु सकल दुहु ओरा।
द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा॥

श्रीसीताजीकी माता सुनयनाजीने मौन तोड़कर वार्ता आरम्भ की। उन्होंने कहा—विधाताकी बुद्धि बड़ी बाँकी—टेढ़ी है जो दुग्धके फेनेको वज्रकी छेनीसे फोड़ता है। तात्पर्य यह है कि श्रीरामजी कोमल दुग्धफेनकी भाँति हैं। उनको वन देना वज्रकी छेनीसे पयफेन फोड़ना है। तात्पर्य यह है कि दूधका फेन तो मुखकी फूँकसे फूट जाता है उसके लिये वज्रकी छेनीकी आवश्यकता नहीं थी अर्थात् श्रीभरतजीको राज्य तो श्रीरामजी मुखके कहनेसे भी दे सकते थे। इसके लिए—श्रीभरतके राज्यके लिये उन्हें वन देनेकी आवश्यकता नहीं थी। श्रीचक्रवर्त्तीजीने इस भावकी ओर सङ्केत भी किया था।

लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जियँ करत रहेउँ नृपनीति॥
(२। ३१)

सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी।
जो पय फेनु फोर पबि टाँकी॥

श्रीसुनयनाजीकी बुद्धि अति सूक्ष्म है। उन्होंने बड़ी सूक्ष्मतासे अपने विचारको अभिव्यक्त किया है। बुद्धिको टेढ़ी कहकर अब करनीको कठोर कहती हैं—रामराज्य अमृत है, अमर करके सबको निजधाम ले जानेवाला है, यह सुननेमें आया। परन्तु वनवासरूपी विष प्रत्यक्ष देखा जिस विषने श्रीचक्रवर्तीजीको मार डाला। अवधवासियोंको तो श्रीभरतजीने मन्त्रौषधिके द्वारा जीवित रख लिया। ***'मन्त्र सबीज सुनत जनु जागे'*** नहीं तो यह भी मृतप्राय थे। विधाताकी सब करतूत भयावनी है। इसी प्रकार काक, उलूक, बक सर्वज्ञ दिखाई देते हैं; परन्तु हंस एक मानसरोवरमें ही दीखता है। कैकयी, मन्थरा काक उलूक बक की तरह हैं। ऐसे आचरणवाले बहुत देखनेमें आते हैं; परन्तु श्रीसीता और लक्ष्मणकी भाँति हंस कहीं कहीं देखनेमें आते हैं।

सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल॥

श्रीसुनयनाजीकी गम्भीर और गूढ़बाणी सुन करके श्रीसुमित्राजी सुनयनाजीका समर्थन करती हुई कहती हैं।

सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा।
बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा॥
जो सृजि पालइ हरइ बहोरी।
बाल केलि सम बिधि मति भोरी॥

हे देवि! विधाताकी गति बड़ी विपरीत और बड़ी विचित्र है। जिसको जो उत्पन्न करता है, पालन करता है उसका वह विनाश कभी नहीं करता है। विषका विरवा लगाकर भी उसे उखाड़नेमें कष्ट होता है। परन्तु यह विधाता जिसका निर्माण करता है और पालन करता है उसीका नाश भी कर डालता है। यह विपरीतता और विचित्रता है। उसकी बुद्धि अज्ञानी बालकोंकी भाँति है। जैसे बालक बालक्रीड़ामें मिट्टीका

घरौंदा बनाकर, उसका आनन्द लेकरके तत्काल नष्ट भी कर डालते हैं। उसी प्रकार विधाताके कार्य हैं। स्वयं निर्माण करके उसको किञ्चिन्मात्र भी क्लेश नहीं होता है यही उसकी बाल केलि है।

श्रीरामजीकी माता श्रीकौसल्याजी सबको निर्दोष करते हुए कहती हैं कि हे देवि! किसीका दोष नहीं है। दुःख-सुख, हानि-लाभ सब कर्मके अधीन हैं, कर्मकी गति दुर्विज्ञेय है, उसे विधाता ही जानता है जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण फलोंका प्रदाता है। इसमें श्रीकौसल्याजीका सौशील्य भी है। श्रीसुनयनाजीने दोष दिया तब वे न बोलीं; परन्तु वे अतिथि हैं, श्रीजनकराजजी पट्टमहिषी हैं, पूज्य हैं, अपने उटजमें आई हैं और समधिन हैं अर्थात् बराबर की हैं।

श्रीसीताजीकी माताने कहा—हे रामजननि! आपकी वाणी सत्य है और श्रेष्ठ है आप महान् पुण्यवान् अयोध्यानाथ श्रीदशरथजीकी धर्मपत्नी हैं। आपको ऐसा कहना ही चाहिए।

सीय मातु कह सत्य सुबानी।
सुकृती अवधि अवधपति रानी॥

श्रीकौसल्याजीने अत्यन्त वेदना परिपूर्ण हृदयसे कहा—हे देवि! श्रीराम, लक्ष्मण और श्रीसीता वनमें जायँ इसका परिणाम तो अच्छा ही होगा, बुरा नहीं होगा; परन्तु मुझे तो महान् स्नेही भरतकी चिन्ता है। भगवान्‌की अनुकम्पा और आपके आशीर्वादसे मेरे चारों पुत्र और बहुएँ परम पावनी गङ्गाके जलके समान पावन हैं। हे सखि! मैंने जीवनमें कभी अपने रामकी शपथ नहीं की है, आज मैं अपने रामकी शपथ करके सत्य कहती हूँ—मेरे लाड़ले भरतके शील, गुण, विनय, बड़ाई, भ्रातृत्व, भक्ति, भरोसे और भलेपनका वर्णन करनेमें अनन्त मुखधारिणी भगवती शारदाकी भी बुद्धि हिचकती है। हे जनकराजवल्लभे! मेरे प्राणेश्वर श्रीमहाराज मुझे बार-बार कहते थे—हे कौसल्ये! मेरे भरतको सदा कुलका दीपक समझना—भाव कि इसे अपने अञ्चलपटके नीचे छिपाकर रखना कहीं यह बुझने न पावे। हे देवि! मैं भी अपने भरतको कुलदीपक ही जानती मानती हूँ।

लखनु रामु सिय जाहुँ बन भल परिनाम न पोचु।
गहबरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु॥

ईस प्रसाद असीस तुम्हारी।
सुत सुतबधू देवसरि बारी॥
राम सपथ मैं कीन्हि न काऊ।
सो करि कहउँ सखी सति भाऊ॥
भरत सील गुन बिनय बड़ाई।
भायप भगति भरोस भलाई॥
कहत सारदहु कर मति हीचे।
सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥
जानउँ सदा भरत कुलदीपा।
बार बार मोहि कहेउ महीपा॥

श्रीकौसल्याजीकी पतितपावनी गङ्गाके समान पावन करनेवाली स्नेहसानी वाणी सुनकर सभी रानियाँ स्नेहसे व्याकुल हो गयीं।

सुनि सुरसरि सम पावनि बानी।
भईं सनेह बिकल सब रानी॥

इसके पश्चात् श्रीकौसल्याजीने धैर्य धारण करके कहा—हे देवि! हे मिथिलेश्वरि! सुनिए, आप विवेकनिधि बल्लभा हैं आपको कौन उपदेश कर सकता है? हे रानी! सुअवसर देखकर श्रीविदेहराजको जहाँतक हो सके तो आप अपनी

ओरसे समझाकर कहियेगा कि लक्ष्मणको श्रीअयोध्यामें रख लिया जाय और भरत रामके साथ वनको जायँ। यदि यह मत राजाके मनमें ठीक जँच जाय; परन्तु अच्छी तरह विचारकर इस प्रकारका प्रयत्न करें। मेरे मनमें भरतके लिये अतिशय सोच है। भरतके मनमें गूढ़स्नेह है एतावता उनका घरमें रहना मुझे भला नहीं प्रतीत होता। स्नेह अनिष्टाशङ्की होता है अत: मेरे मनमें भय बना रहता है।

कौसल्या कह धीर धरि सुनहु देबि मिथिलेसि।
को बिबेकनिधि बल्लभहि तुम्हहि सकइ उपदेसि॥

रानि राय सन अवसरु पाई।
अपनी भाँति कहब समुझाई॥
रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन।
जौं यह मत मानै महीप मन॥
तौ भल जतनु करब सुबिचारी।
मोरें सोचु भरत कर भारी॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं।
रहें नीक मोहि लागत नाहीं॥

श्रीरामजननी कौसल्याजीका स्वभाव देखकर और उनकी सरल और सुन्दर वाणी सुनकर सब रानियाँ करुणरसमें निमग्न हो गयी। आकाशसे पुष्प वर्षाकी झड़ी लग गयी और 'धन्य धन्य'की ध्वनि होने लगी। सिद्ध, योगी और मुनि स्नेहसे शिथिल हो गये।

लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी।
सब भइ मगन करुन रस रानी॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि।
सिथिल सनेहँ सिद्ध जोगी मुनि॥

श्रीकौसल्याजी स्नेहपूर्वक सद्भावसे बोलीं—हे देवि! दो घड़ी रात बीत गयी है, पर्याप्त विलम्ब हो गया है, अत: अब आप शीघ्र पधारिये। हमारे तो अब दो ही सहारे हैं। ईश्वर अथवा मिथिलेश्वर।

बेगि पाउ धारिअ थलहि कह सनेहँ सतिभाय।
हमरें तौ अब ईस गति कै मिथिलेस सहाय॥

श्रीकौसल्याके स्नेहको देखकर उनके विनीत वचनोंको सुनकर श्रीसुनयनाजीने उनके पावन चरणोंको पकड़कर कहा—हे देवि! आप महाराज श्रीदशरथजीकी गृहिणी हैं तथा श्रीराम जननी हैं। आपकी ऐसी नम्रता उचित ही है। स्वामी अपने नीच सेवकोंका भी आदर करते हैं। अग्नि धुएँको और पर्वत तृणको अपने मस्तकपर धारण करते हैं। हमारे राजा तो कर्म, मन और वाणीसे आपके सेवक हैं और श्रीशङ्करभवानी तो आपके सदा सहायक हैं।

लखि सनेह सुनि बचन बिनीता।
जनकप्रिया गह पाय पुनीता॥
देबि उचित असि बिनय तुम्हारी।
दसरथ घरिनि राम महतारी॥
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं।
अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं॥
सेवकु राउ करम मन बानी।
सदा सहाय महेसु भवानी॥

श्रीकौसल्या आदि माताओंका चरण स्पर्श करके श्रीसुनयनाजीने श्रीसीताजीको साथ भेजनेके लिये विनती की। श्रीकौसल्याजीने स्नेहपूर्वक आज्ञा दे दी तो श्रीसीताजीको साथमें लेकर अपने निवासस्थानके लिये चल पड़ीं।

अस कहि पग परि पेम अति सिय हित बिनय सुनाइ।
सिय समेत सियमातु तब चली सुआयसु पाइ॥

श्रीजानकीजी अपने प्रिय कुटुम्बियोंसे यथायोग्य

मिलीं। उन्हें तपस्विनीके वेषमें देखकर सभी अत्यन्त विषादसे व्याकुल हो गये।

प्रिय परिजनहि मिली बैदेही।
जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही॥
तापस बेष जानकी देखी।
भा सबु बिकल बिषाद बिसेषी॥

श्रीजनकजी श्रीरामजीके गुरु श्रीवसिष्ठजीकी आज्ञा पाकर अपने निवासस्थलको चले ओर वहाँ आकर उन्होंने अपनी पुत्री श्रीसीताको देखा। श्रीजनकजीने अपने पवित्र प्रेम और प्राणोंकी पाहुनी श्रीजानकीको हृदयसे लगा लिया।

जनक राम गुर आयसु पाई।
चले थलहि सिय देखी आई॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी।
पाहुनि पावन पेम प्रान की॥

श्रीजनकके हृदयमें प्रेमका समुद्र उमड़ पड़ा मानो श्रीजनकका मन ही प्रयाग है। श्रीसीताजीके प्रेमरूपी अक्षयवटको बढ़ते हुये उन्होंने देखा। उस श्रीसीतारूपी प्रेमवटपर श्रीरामजीका प्रेमरूपी बालक सुशोभित हो रहा है। श्रीजनकका ज्ञानरूपी चिरञ्जीवी मार्कण्डेय ऋषि मानो व्याकुल होकर डूबते-डूबते उस राम प्रेम बालकका अवलम्ब पा गया। कवि कहते हैं—श्रीविदेहमहाराजकी बुद्धि मोहमग्न नहीं है अपितु यह श्रीसीतारामजीके प्रेमका महत्व है।

उर उमगेउ अंबुधि अनुरागू।
भयउ भूप मनु मनहुँ पयागू॥
सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा।
ता पर राम पेम सिसु सोहा॥
चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु।
बूड़त लहेउ बाल अवलंबनु॥
मोह मगन मति नहिं बिदेह की।
महिमा सिय रघुबर सनेह की॥

श्रीसीताजी अपने पिता माताके—श्रीजनक सुनयनाके स्नेहके कारण इतनी विकल हो गयीं कि अपनेको सँभाल न सकीं। परन्तु धरणिकन्या श्रीसीताजीने समय और सुधर्मका विचार करके धैर्य धारण किया।

सिय पितु मातु सनेह बस बिकल न सकी सँभारि।
धरनिसुता धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि॥

'समउ सुधरमु बिचारि'—श्रीसीताने सोचा—मैं तपस्विनी वेषमें हूँ। मेरे माता-पिता मुझे व्याकुल देखकर दु:खी समझ लेंगे तब श्रीमिथिला जानेको कहेंगे। उस समय मैं कैसे कह पाऊँगी कि आपके साथ नहीं चलूँगी और न जाऊँ तो उनकी आज्ञाकी अवज्ञा होगी और यदि जाऊँ तो पातिव्रत्य धर्म नष्ट हो जायगा। यह सुधर्म विचारकर मुझे व्याकुल नहीं होना चाहिये किंवा पृथ्वीका भार उतारनेका समय आ गया है, मैं धैर्य न धारण करूँगी तो बना बनाया काम बिगड़ जायगा और मेरी माँका—भूमिका कष्ट दूर न होगा।

श्रीमैथिलीको तपस्विनीके वेषमें देखकर श्रीजनकको विशेष प्रेम और सन्तोष हुआ। श्रीजनकने स्नेहार्द्र स्वरमें कहा—हे पुत्रि! तुमने निमिकुल और भानुकुल दोनों कुलोंको पावन कर दिया। तुम्हारे निर्मल यशसे समस्त संसार समुज्ज्वल हो रहा है; ऐसा सब कोई कहते हैं। हे पुत्रि! तुम्हारी कीर्तिरूपी सरिताने गङ्गाको भी जीतकर अनेकों ब्रह्माण्डोंमें गमन किया। पृथ्वीपर श्रीगङ्गाजीने तीन स्थानोंको महत्वपूर्ण बनाया है और तुम्हारी इस कीर्ति सरिताने तो अनेकों सन्त समाजरूपी

तीर्थ स्थान बना दिये हैं।

तापस बेष जनक सिय देखी।
भयउ पेमु परितोषु बिसेषी॥
पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ।
सुजस धवल जगु कह सब कोऊ॥
जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी।
गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी॥
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे।
एहिं किए साधु समाज घनेरे॥

श्रीगङ्गाजीने तीन स्थलोंको महत्वूपर्ण बनाया है।

हरिद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे।
सर्वत्र दुर्लभा गङ्गा त्रयस्थाने विशेषतः॥

हरिद्वार, प्रयाग और गङ्गासागर इन्हीं तीन स्थलोंमें गङ्गाका अधिक माहात्म्य कहा जाता है और तुम्हारी समुज्ज्वलकीर्त्ति नदीका माहात्म्य साधु समाजमें है और साधु समाज अगणित हैं, सभी साधु समाज तुम्हारी कीर्त्तिसे महत्वपूर्ण हुये हैं और होंगे।

श्रीसीताजी कुछ प्रकट नहीं कहतीं हैं; परन्तु मनमें सङ्कुचित हो रही हैं कि रात्रिमें सासुओंकी सेवा छोड़कर यहाँ रहना उचित नहीं है। किं वा पति एकाकी आश्रममें रहें और मैं परिजनोंमें रहूँ यह उचित नहीं है। माता सुनयनाने पुत्री सीताका रुख देखकर श्रीजनकसे जना दिया। तब दोनों अपने हृदयमें अपनी पुत्रीके शील और स्वभावकी श्लाघा करने लगे। राजा रानीने बार-बार मिलकर, हृदयसे लगाकर, सन्मान करके अपनी पुत्रीको विदा कर दिया।

कहति न सीय सकुचि मन माहीं।
इहाँ बसब रजनी भल नाहीं॥
लखि रुख रानि जनायउ राऊ।
हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ॥
बार बार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि।

श्रीभरतजीका व्यवहार एक तो सोना उसपर भी सुगन्ध युक्त है। सुधा रूप है अर्थात् स्वादिष्ट है और जीवनदाता है 'ससि सारू' अर्थात् समुज्ज्वल है। सोनेमें सुगन्ध मधुरतामें सुधासार है और स्वच्छतामें शशिसार है। इस प्रकारके भरतके व्यवहारको श्रीसुनयनासे सुनकर श्रीजनकने अपने अश्रुपरिपूरित नेत्रोंको बन्द कर लिया। उनका समस्त शरीर पुलकित हो गया और वे मनमें मुदित होकर श्रीभरतके सुन्दर यशकी श्लाघा करने लगे।

सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू।
सोन सुगंध सुधा ससि सारू॥
मूदे सजल नयन पुलके तन।
सुजसु सराहन लगे मुदित मन॥

श्रीजनकने कहा—हे सुमुखि! हे सुलोचनि! सावधान होकर सुनो, श्रीभरतकी कथा भव बन्धको नष्ट करनेवाली है।

भरत दरस मेटा भव रोगू।

श्रीभरतकी महिमामें मायाका सम्पर्क नहीं है एतावता उसको कोई वर्णन नहीं कर सकता। ब्रह्मा, गणेश, शेष, शङ्कर, शारदा, कवि—व्यास, वाल्मीकि, शुक्राचार्य आदि कोविद—वृहस्पति, शौनक आदि बुध—पण्डित लोग और जो बुद्धि विचक्षण हैं, सबको श्री भरतके चरित्र, कीर्त्ति, करनी, धर्म, शील, गुण और निर्मल ऐश्वर्य समझने और श्रवण करनेमें सबको सुखप्रद हैं। भरतकथा पवित्रतामें श्रीगङ्गाजी तथा मधुरतामें अमृतसे भी बढ़कर है। हे सुनयने! श्रीभरत कथा वर्णन करनेमें सबके लिये अगम है। हे देवि!

श्रीभरतजी असीम गुण सम्पन्न और निरुपम—उपमारहित पुरुष हैं। श्रीभरतके समान तो श्रीभरत ही हो सकते हैं ऐसा जानो। सुमेरु पर्वतको क्या कोई सेरके समान कह सकता है? एतावता श्रीभरतकी किसी पुरुषके साथ उपमा देनेमें कवि समाजकी बुद्धि भी सङ्कुचित हो गयी।

निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबिकुल मति सकुचानि॥

हे रानी! सुनो, श्रीभरतजीकी महिमाको केवल श्रीरामजी ही जानते हैं; परन्तु यदि तुम उनसे सुनने जाओगी तो वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते हैं।

भरत अमित महिमा सुनु रानी।
जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥

श्रीरामजीके श्रीचरणोंका पावन प्रेम ही श्रीभरतका साधन है और वही सिद्धि है श्रीरामप्रेमके अतिरिक्त उन्होंने समस्त परमार्थ सुख—परलोक साधन, मोक्ष आदि और स्वार्थसुखकी ओर तो स्वप्नमें भी मनसे भी नहीं देखा है।

परमारथ स्वारथ सुख सारे।
भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू।
मोहि लखि परत भरत मत एहू॥

'मोहि लखि परत'—मैं निश्चय नहीं कह सकता हूँ; परन्तु मुझे श्रीभरतजीका यही एकमात्र सिद्धान्त ज्ञात होता है।

श्रीजनकजीने स्नेहसे भीगे हुये स्वरमें कहा—हे सुनयने! हे सियजननि! श्रीभरत महान् रामाज्ञापालक हैं। वे भूलकर भी श्रीरामाज्ञाको मनसे भी नहीं टालेंगे। अतः स्नेहवश होकर चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ।
करिअ न सोचु सनेह बस कहेउ भूप बिलखाइ॥
भरतस्य प्रशंसाञ्च कृतवान् मिथिलापतिः।
रामाज्ञा पालकश्चिन्तां भरतो देवि मा कुरु॥

(सुदर्शनसंहिता)

इस प्रकार श्रीजनक सुनयना रात्रिपर्यन्त श्रीरामचन्द्र और श्रीभरतजीके गुणोंकी चर्चा करते रहे। रात्रि पलकके समान व्यतीत हो गयी।

राम भरत गुन गनत सप्रीती।
निसि दंपतिहि पलक सम बीती॥

जीवनमें भगवत् भागवतकी कथाका जो आश्रय लेते हैं उनकी भवरात्रि पलकके समान व्यतीत हो जाती है।

प्रातःकाल स्नान करके श्रीरामजी गुरुदेव श्रीवसिष्ठजीके पास जाकर प्रणाम करके उनका रुख पाकर बोले—हे नाथ! भरत, पुरजन और माताएँ शोकसे व्याकुल और वनवाससे दुःखी हैं। श्रीजनकजीको क्लेश सहन करते हुए बहुत दिन हो गये। हे स्वामिन्! सबका हित आपके ही हाथमें है, जो उचित हो वह करें। इतना कहकर श्रीरामजी अत्यन्त सकुचा गये। सर्व समर्थ कोमल स्वभाव श्रीरामके शील स्वभावका अनुभव करके श्रीवसिष्ठ गद्गद हो गये।

गे नहाइ गुर पहिं रघुराई।
बंदि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरतु पुरजन महतारी।
सोक बिकल बनबास दुखारी॥
सहित समाज राउ मिथिलेसू।
बहुत दिवस भए सहित कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा।
हित सबही कर रौरें हाथा॥

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ।
मुनि पुलके लखि सीलु सुभाऊ॥

स्नेहार्द्र कण्ठसे श्रीवसिष्ठजीने कहा—हे राम! कोई व्यक्ति वनमें निवास करनेसे दुःखी नहीं है और न ही कोई घर जाना चाहता है। हे भक्त हृदयसम्राट् आपके बिना समस्त सुखोंके साज दोनों राज समाजोंके लिए नरकके समान हैं। हे रघुनन्दन! आप प्राणके भी प्राण हैं, जीवके भी जीव और सुखके भी सुख हैं।

आँनद हू के आँनद दाता।

हे तात! आपको छोड़कर जिन्हें घर सुहाता है, उन्हें विधाता प्रतिकूल है—वे अभागे हैं।

तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा।
नरक सरिस दुहु राज समाजा॥
प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह जिन्हहि तिन्हहि बिधि बाम॥

आगे श्रीगुरुदेवने दो पंक्तियाँ जीवमात्रके कल्याणके लिये कही हैं। ये दोनों पंक्तियाँ श्रवण करके भक्तोंको मनन करना चाहिये। श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—हे रघुनन्दन! वह सुख, वह कर्म, वह धर्म, जल जाय—भाड़में जाय। जहाँ श्रीरामचरण-कमलोंमें भक्तिभाव नहीं है। वह योग कुयोग है और ज्ञान अज्ञान है जिसमें श्रीराम प्रेमकी प्रधानता नहीं है।

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ।
जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू।
तहँ नहिं राम पेम परधानू॥

इसी प्रकार श्रीभागवतमें याज्ञिक ब्राह्मणोंने पश्चात्ताप करते हुए कहा है—हा हन्त! हम भगवान् श्रीकृष्णसे विमुख हैं। अति उत्कृष्ट कुलमें हमारा जन्म हुआ, गायत्री मन्त्रकी दीक्षा लेकर हम द्विजाति हुए, वेदाध्ययन करके हमने बड़े-बड़े यज्ञ किये; परन्तु वह सब किस कामका? धिक्कार है! धिक्कार है! हमारी विद्या व्यर्थ गयी, हमारे व्रत बुरे सिद्ध हुए। हमारी इस बहुज्ञताको धिक्कार है! उत्कृष्ट वंशमें जन्म लेना, कर्मकाण्डमें निपुण होना किसी काम न आया। इन्हें बार बार धिक्कार है!

धिग् जन्म नस्त्रिवृद् विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम्।
धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे॥

(श्रीमद्भागवत १०। २३। ३९)

श्रीवसिष्ठजीने कहा—हे सर्वज्ञशिरोमणि! आपकी आज्ञा सभीके सिरपर है। हे कृपालो! आप सबकी गति भलीभाँति जानते हैं। अब आप अपने आश्रमको पधारिये। इतना कहकर मुनिराज स्नेहसे शिथिल हो गये।

राउर आयसु सिर सबही कें।
बिदित कृपालहि गति सब नीकें॥
आपु आश्रमहि धारिअ पाऊ।
भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ॥

श्रीरामजी वहाँसे अपने आश्रम चले गये और श्रीवसिष्ठजी श्रीजनकके पास आए। श्रीवसिष्ठजीने श्रीजनकजीसे कहा—हे महाराज! अब आप वही करें जिससे सबके धर्मका पालन भी हो और सबका हित भी हो। हे राजन्! आप ज्ञानके खजाना हो, सुजान, पवित्र और धर्ममें धीर हो। इस समय आपके बिना इस असमञ्जसको निवारण करनेमें कोई समर्थ नहीं है।

महाराज अब कीजिअ सोई।
सब कर धरम सहित हित होई॥
ग्यान निधान सुजान सुचि धरम धीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहि काल॥

श्रीवसिष्ठजीके वचनोंको सुनकर श्रीजनक

प्रेममें निमग्न हो गए। राम स्नेहका महत्त्व ज्ञान वैराग्यसे अधिक है। श्रीजनकका अनुराग देखकर ज्ञान वैराग्यको भी वैराग्य हो गया कि अब हम यहाँ नहीं रहेंगे। श्रीजनक सोचते हैं हमने यहाँ आकर अच्छा नहीं किया।

सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे।
लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे॥
सिथिल सनेहँ गुनत मन माहीं।
आए इहाँ कीन्ह भल नाहीं॥

हम दोनों समधियोंकी—श्रीदशरथजीकी और मेरी देवता लोग भी श्लाघा करते थे।

सम समधी देखे हम आजू।

परन्तु सम्प्रति हम दोनों समधियोंमें महान् अन्तर हो गया। श्रीदशरथ हमसे बहुत आगे निकल गये। वे श्रीरामजीको वनमें भेजकर अपने स्नेहका निर्वाह करनेके लिये परलोक चले गये और हम श्रीरामजीको वनसे और घने वनमें भेजकर अपने विवेककी बड़ाईमें आनन्दित होते हुए घर लौट जायेंगे।

रामहि रायँ कहेउ बन जाना।
कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रबाना॥
हम अब बन तें बनहि पठाई।
प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई॥

समयका विचार करके श्रीजनक धैर्य धारण करके समाज सहित श्रीभरतके पास चले। श्रीभरतने उनका आगे आकर स्वागत किया और समयके अनुसार सुन्दर आसन दिये। मिथिलेश श्रीजनकने कहा—हे तात! आपको श्रीरामजीके स्वभावका परिज्ञान है। श्रीराम सत्यसन्ध और धर्मरत हैं, सबका शील और स्नेह रखनेवाले हैं। अतः वे सङ्कोचवश सङ्कट सह रहे हैं; अब तुम जो आज्ञा दो वह उनसे कहा जाय।

भरत आइ आगें भइ लीन्हें।
अवसर सरिस सुआसन दीन्हें॥
तात भरत कह तेरहुति राऊ।
तुम्हहि बिदित रघुबीर सुभाऊ॥
राम सत्यव्रत धरम रत सबकर सीलु सनेहु।
संकट सहत संकोचबस कहिअ जो आयसु देहु॥

श्रीजनकराजके विनम्र वचनोंको सुनकर श्रीभरतजी पुलकित हो गये। उन्होंने नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भरकर अत्यन्त धैर्य धारण करके कहा—हे प्रभो! आप हमारे पिताके समान प्रिय और पूज्य हैं और हमारे कुलगुरु श्रीवसिष्ठके समान हितैषी तो माता-पिता भी नहीं हो सकते। श्रीविश्वामित्रजी आदि मुनियों और मन्त्रियोंका समाज है और आज ज्ञान के समुद्र श्रीमान् भी विराजमान हैं। हे स्वामिन्! मुझे अपना बालक, सेवक ओर अनुगामी समझकर शिक्षा दीजिए।

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी।
बोले भरत धीर धरि भारी॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू।
कुलगुरु सम हित माय न बापू॥
कौसिकादि मुनि सचिव समाजू।
ग्यान अंबुनिधि आपुनु आजू॥
सिसु सेवकु आयसु अनुगामी।
जानि मोहि सिख देइअ स्वामी॥

शास्त्र, वेद और पुराणोंमें प्रसिद्ध है और विश्व जानता है कि सेवा धर्म परम कठिन है। स्वामीके प्रति कर्तव्य पालनमें और स्वार्थमें विरोध है—दोनों एक साथ नहीं हो सकते हैं। बैर अन्धा होता है और प्रेमको ज्ञान नहीं रहता अर्थात् मैं स्वार्थवश कहूँगा या प्रेमवश, दोनों में भूल

होनेका भ्रम है। इसलिए मुझे पराधीन जानकर मुझेसे न पूछकर श्रीरामजी का रुख, धर्म और सत्य-व्रतको रखते हुए जो सबके सम्मत हो और सबके लिए हितकारी हो; आप सबका प्रेम पहचानकर वही करिए।

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना।
सेवा धरम कठिन जगु आना॥
स्वामिधरम स्वारथहि बिरोधू।
बैर अंध प्रेमहि न प्रबोधू॥
राखि राम रुख धरमु ब्रतु पराधीन मोहि जानि।
सबके संमत सर्बहित करिअ पेम पहिचानि॥

श्रीभरतके *'अरथु अमित अति आखर थोरे'* वचनोंको सुनकर राजा जनकजी श्रीभरत तथा श्रीवसिष्ठजी समाजके साथ *'बिबुध कुमद द्विजराज'* श्रीरामजीके पास गये।

भूप भरतु मुनि सहित समाजू।
गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू॥

देवता लोगों ने महाप्रेमी श्रीवसिष्ठ और श्रीजनकको देखा। श्रीरामभक्तिसे ओतप्रोत श्रीभरतजीका भी दर्शन किया। इन सबको देखकर स्वार्थी देवता व्याकुल होकर निराश हो गये। उन्होंने भगवती सरस्वतीका स्मरण करके भरतजीकी बुद्धि फेरने की प्रार्थना की। श्रीसरस्वती झल्लाकर बोलीं। आप लोगोंको सहस्र नेत्रोंसे सुमेरु नहीं सूझ रहा है। ब्रह्मा, विष्णु और शङ्करकी माया बड़ी प्रबल है; परन्तु वह भी भरतजीकी बुद्धिकी ओर निहार तक नहीं सकती। उस बुद्धिको मुझे फेरने के लिए कहते हो। अरे! चन्द्रमाकी चाँदनी कहीं प्रखर किरण वाले अंशुमालीको चुरा सकती है? हे देवताओं! श्रीभरतजीके हृदयमें श्रीसीतारामजी का निवास है। जहाँ सूर्यका प्रकाश है, वहाँ कहीं अँधेरा रह सकता है? इस प्रकार कहकर श्रीसरस्वती ब्रह्मलोक चली गई और देवता रात्रिमें चकवा चकवीकी भाँति व्याकुल हो गये।

भरत हृदयँ सिय राम निवासू।
तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥
अस कहि सारद गइ बिधि लोका।
बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका॥

श्रीराजा जनक श्रीवसिष्ठ आदिके साथ सूर्यकुलके दीपक श्रीरामजीके पास गये। प्रभुने सबका यथोचित सम्मान किया। तब श्रीवसिष्ठजीने श्रीजनक और श्रीभरतका संवाद सुनाया। फिर श्रीभरतजीकी कही हुई सुन्दर बातें कह सुनायी। फिर बोले—हे तात राम! मेरा मत तो यह है तुम जैसी आज्ञा दो, वैसी ही सब करें। यह सुनकर बद्धाञ्जलि होकर श्रीरामजी सत्य, सरल और कोमलवाणी बोले—श्रीमान्के और मिथिलेशकी उपस्थितिमें मेरा कुछ भी कहना अनुचित है। मैं आपकी शपथ करके कहता हूँ कि आपकी और श्रीमिथिलेशकी जो आज्ञा होगी वह सबको शिरोधार्य होगी।

तात राम जस आयसु देहू।
सो सबु करै मोर मत एहू॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी।
बोले सत्य सरल मृदु बानी॥
विद्यमान आपुनि मिथिलेसू।
मोर कहब सब भाँति भदेसू॥
राउर राम रजायसु होई।
राउरि सपथ सही सिर सोई॥

श्रीरामजी की शपथ सुनकर सभाके समेत श्रीवसिष्ठजी और श्रीजनकजी सकुचा गये अर्थात् स्तम्भित रह गये। किसीसे उत्तर देते नहीं बनता,

सब लोग श्रीभरतजी का मुख निहार रहे हैं।

राम सपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुखु बनइ न ऊतरु देत॥

श्रीभरतजीने सभाको सङ्कोचवश देखा। रामके प्रिय भ्राता श्रीभरतने अतिशय धैर्य धारण करके और कुसमय देख करके अपने समुच्छलित स्नेह को सम्भाला, जिस प्रकार बढ़ते हुए विन्ध्याचलको महर्षि अगस्त ने रोका था।

सभा सकुच बस भरत निहारी।
राम बंधु धरि धीरजु भारी॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा।
बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा॥

श्रीभरतजीने प्रणाम करके सबके प्रति हाथ जोड़े तथा श्रीरामजी, श्रीजनकजी, श्रीवसिष्ठजी और साधु सन्त सबसे प्रार्थना की और कहा—आपलोग आज मेरे अत्यन्त अनुचित व्यवहारको क्षमा कीजियेगा। मैं कोमल मुखसे कठोर वचन कह रहा हूँ अर्थात् छोटे मुखसे धृष्टतापूर्ण वचन बोल रहा हूँ।

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे।
रामु राउ गुरु साधु निहोरे॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा।
कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा॥

श्रीभरतजी कहते हैं—हे नाथ! मैं आपके और पिताजीके वचनोंको मोहवश न मानकर और सब समाजको साथ लाया। संसारमें भले बुरे, ऊँचे और नीचे, अमृत और अमरपद, विष और मृत्यु आदि किसीको भी कहीं ऐसा नहीं देखा सुना जो मनमें जो आपकी आज्ञाको टाल दें। मैंने सब प्रकारसे धृष्टता की; परन्तु आपने उस धृष्टताको स्नेह और सेवा मान लिया। हे नाथ! आपने अपनी कृपा और भलाईसे मेरा भला किया, जिससे मेरा दोष भी भूषण—गुणके समान हो गया और चारों ओर मेरी सुन्दर कीर्ति फैल गयी।

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली।
आयउँ इहाँ समाजु सकेली॥
जम भल पोच ऊँच अरु नीचू।
अमिअ अमरपद माहुरु मीचू॥
राम रजाइ मेट मन माहीं।
देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं॥
सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई।
प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥
कृपा भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस सुजसु चारु चहुँ ओर॥

श्रीभरतजी कहते हैं—हे मेरे नाथ! आपकी रीति और सुन्दर स्वभाव की बड़ाई संसारमें प्रसिद्ध है, जो वेदों और शास्त्रोंने गायी है। जो क्रूर, कुटिल, खल, दुर्बुद्धि, कलङ्की, नीच, निश्शील, निरीश्वरवादी और निडर हैं ऐसोंको भी शरण और सम्मुख आया हुआ सुनकर एकही बार प्रणाम करने पर अपना लिया। उन शरणागतोंके दोषोंको देखकर भी आप कभी हृदयमें नहीं लाये और उनके गुणोंको सुनकर साधुओंके समाजमें उनकी प्रशंसा करते हुए वर्णन किया। ऐसा और कौन स्वामी सेवक पर कृपा करने वाला है जो आपही सेवकका सब साज समाज सज दे।

राउरि रीति सुबानि बड़ाई।
जगत बिदित निगमागम गाई॥
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी।
नीच निसील निरीस निसंकी॥
तेउ सुनि सरन सामुहें आए।

सकृत प्रनामु किहें अपनाए॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने।
सुनि गुन साधु समाज बखाने॥

यहाँ नौ को गिनाकर ऐसे ही असंख्य मनुष्य सूचित किये। नीच—जो सज्जनका साथ पाकर भी नीचता नहीं छोड़ता।

नीच गुड़ी ज्यों जानिबो सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि दिये गिरि परत महि खैंचत चढ़त अकास॥

(श्रीदोहावलीजी ४०१)

'देखि दोष कबहुँ न उर आने'—

साहिब होत सरोस सेवक को अपराध सुनि।
अपने देखे दोष सपनेहुँ राम न उर धरेउ॥

(श्रीदोहावलीजी ४७)

श्रीभरतजी अपनी इच्छाको श्रीरामजीके ऊपर छोड़कर सर्वस्व समर्पण करते हैं, वे कहते हैं—स्वाभाविक स्नेहसे, स्वार्थ, छल और चारो फलोंको छोड़कर स्वामीकी सेवा करने तथा आज्ञा पालन करनेके समान सुसाहिबकी दूसरी सेवा नहीं है। हे देव! अब वही आज्ञारूप प्रसाद सेवकको मिल जाय। ऐसा कहकर श्रीभरत प्रेमविवश हो गये, उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल भर आया। व्याकुल होकर उन्होंने प्रभुके चरणकमल पकड़ लिये। वह समय और उस समयका स्नेह कहा नहीं जा सकता। दयासागर श्रीरामजीने सुन्दर वाणीसे भरतजीका सम्मान करके हाथ पकड़कर उनको अपने निकट बिठा लिया।

सहज सनेहँ स्वामि सेवकाई।
स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
अग्या सम न सुसाहिब सेवा।
सो प्रसादु जन पावै देवा॥
अस कहि प्रेम बिबस भए भारी।
पुलक सरीर बिलोचन बारी॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई।
समउ सनेहु न सो कहि जाई॥
कृपासिंधु सनमानि सुबानी।
बैठाए समीप गहि पानी॥

श्रीभरतजीकी स्नेहमयी, त्यागमयी और बलिदानमयी वाणी सुनकर सभा, राजा जनक, गुरु, ब्राह्मणों और मन्त्रियों सभीकी बुद्धि पर श्रीभरतजीकी भक्तिने ताला लगा दिया है अर्थात् किसीकी बुद्धि कुछ काम नहीं देती कि क्या कहा या किया जाएगा। सब लोग चित्रकी भाँति अपलक श्रीरामजीको देख रहे हैं कि देखें प्रभु क्या आज्ञा देते हैं। सकुचाते हुए सिखाये हुये से वचन बोलते हैं। श्रीभरतजीकी प्रीति, नम्रता, विनय और बड़ाई श्रवण करनेमें सुखदायक है; परन्तु उसके वर्णन करनेमें कठिनता है जिसकी लव मात्र भक्तिको देखकर मुनिगण और श्रीजनकजी प्रेममें मग्न हो गये हैं; श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—उन श्रीभरतकी महिमा मैं कैसे कहूँ? उनकी भक्ति और सुन्दर भावसे मेरे हृदयमें सुमति हुलस रही है। परन्तु वह बुद्धि अपनेको छोटी और श्रीभरतजी महिमाको बड़ी जानकर कविसमाजकी मर्यादाको समझकर सकुचा गयी।

सभा राउ गुर महिसुर मंत्री।
भरत भगति सब कै मति जंत्री॥
रामहि चितवत चित्र लिखे से।
सकुचत बोलत बचन सिखे से॥
भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई।
सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥
जासु बिलोकि भगति लवलेसू।

प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी।
भगति सुभायँ सुमति हियँ हुलसी॥
आपु छोटि महिमा बड़ि जानी।
कबिकुल कानि मानि सकुचानी॥

श्रीभरतजीका निर्मल यश निर्मल चन्द्रमा है, कविकी सुमति चकोर कुमारी है, भक्तोंके हृदयरूपी निर्मल आकाशमें उस यश चन्द्रमाको उदित देखकर उसकी ओर टकटकी लगाकर देखती ही रह गयी तब उसका वर्णन कौन करे? भरतजीके स्वभावका वर्णन वेदोंको भी सुगम नहीं है, मेरी तुच्छ बुद्धिकी चञ्चलताको कवि क्षमा करें। श्रीभरतजीके सद्भावको कहते सुनते श्रीसीतारामजीके चरणोंमें कौन अनुरक्त न होगा ? श्रीभरतजीका स्मरण करनेसे जिसको श्रीरामजीका प्रेम सुलभ न हुआ उसके समान मन्दभाग्य कौन होगा?

भरत बिमल जसु बिमल बिधु सुमति चकोर कुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि॥
भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ।
लघु मति चापलता कबि छमहूँ॥
कहत सुनत सति भाउ भरत को।
सीय राम पद होइ न रत को॥
सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को।
जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे भरत! आज मैं एक सत्यका उद्घोष कर रहा हूँ कि तुम धर्मकी धुरीको धारण करने वाले हो, लोक वेदके ज्ञाता और प्रेम रसके रसज्ञ जानकार हो। हे भरत! लोग कहते हैं कि 'रामके समान तो केवल राम हैं' परन्तु आज मैं इस चित्रकूट की पावन भूमिमें घोषणा करता हूँ—'कर्म, वचन और मनसे निर्मल मेरे भरतके समान तो मेरा भरत ही है।' गुरुओंके समाजमें छोटे भाईके समस्त गुणोंका वर्णन इस कुसमयमें कैसे किया जा सकता है?

तात भरत तुम्ह धरम धुरीना।
लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना॥
करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुर समाज लघु बंधु गुन कुसमयँ किमि कहि जात॥

हे भरत! हमारे गुरुदेवका अनुग्रह ही समाजके सहित तुम्हारा घरमें और हमारा वनमें रक्षक है। माता, पिता, गुरु और स्वामीकी आज्ञाका पालन समस्त धर्मरूपी भूमिको धारण करनेमें सहस्रशीर्षा शेषकी भाँति है। एतावता हे भैया भरत! पिताजीकी आज्ञाका पालन तुम श्रीअयोध्याजीमें रहकर करो और मुझसे वनमें रहकर पिताकी आज्ञाका पालन कराओ तथा परमपवित्र सूर्यकुलकी मर्यादाका पालन करो।

सहित समाज तुम्हार हमारा।
घर बन गुर प्रसाद रखवारा॥
मातु पिता गुय स्वामि निदेसू।
सकल धरम धरनीधर सेसू॥
सो तुम्ह करहु करावहु मोहु।
तात तरनिकुल पालक होहू॥

आदिकवि श्रीवाल्मीकिजीने इस प्रसङ्गमें बहुत सुन्दर लिखा है आप लोग ध्यानसे श्रवण करें।

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे भावुक भरत! तुम श्रीअयोध्याजी जाकर मनुष्योंके राजा बनो और मैं जङ्गली पशुओंका सम्राट् बनूँगा। इसलिये सम्प्रति तुम सम्प्रहृष्ट होकर श्रीअवधको प्रस्थान करो और मैं भी आनन्दपूर्वक दण्डक काननमें प्रवेश करूँगा। हे भरत! भगवान् भुवन भास्करकी आभा, प्रभा, कान्तिको पराभूत करने वाला छत्र

तुम्हारे मस्तक पर अपनी छायासे शैतल्य प्रदान करे। अब मैं भी शनैः शनैः इन कानन द्रुमोंकी घनी छायाका आश्रय स्वीकार करूँगा। जो घनी होनेके कारण हमें समस्त ऋतुओंमें सुख प्रदान करेगी। अप्रतिम मेधा सम्पन्न शत्रुघ्न कुमार तुम्हारी सहायतामें रहेंगे और जो अपनी सेवाके लिए प्रसिद्ध हैं, जिन्हें माता सुमित्राने मेरी सेवाके लिए ही मेरे साथ भेजा है। वे लक्ष्मण मेरे प्रधान मित्र होंगे। इस प्रकार हम चारों पुत्र अपने आदर्श पिता चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजी की प्रतिज्ञाकी, सत्यकी रक्षा करें। हे भरत! तुम मेरे विषयमें किंवा अपने विषयमें विषाद न करो।

त्वं राजा भरत भव स्वयं नराणां
वन्यानामहमपि राजराण्मृगाणाम्।
गच्छ त्वं पुरवरमद्य सम्प्रहृष्टः
संहृष्टस्त्वहमपि दण्डकान् प्रवेक्ष्ये॥
छायां ते दिनकरभाः प्रबाधमानं
वर्षत्रं भरत करोतु मूर्ध्नि शीताम्।
एतेषामहमपि काननद्रुमाणां छायां
छायां तामतिशयिनीं शनैः श्रयिष्ये॥
शत्रुघ्नस्त्वतुलमतिस्तु ते सहायः
सौमित्रिर्मम विदितः प्रधान मित्रम्।
चत्वारस्तनयवरावयं नरेन्द्रं
सत्यस्थं भरत चराम मा विषीद॥

(श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण २। १०७। १७—१९)

श्रीठाकुरजीके स्नेहसिग्ध वचनोंको सुनकर श्रीभरतजीने प्रेमपूर्वक प्रणाम करके बद्धाञ्जलि होकर कहा—हे नाथ! दासने पहले प्रार्थना की थी ***'नाथ चलउँ मैं साथ'*** वह सुख मुझे प्राप्त हो गया। संसारमें जन्म धारण करनेका फल भी मुझे मिल गया। हे कृपालो! अब आपकी जो आज्ञा हो मैं आदरपूर्वक वही करूँ। हे देव! आपके वियोगकी यह अवधि समुद्रकी भाँति है, इसका पार पानेके लिए—इतने दिनों तक प्राण धारण करनेके लिए मुझे अवलम्ब दीजिए। हे देव! आपके तिलकके लिये गुरुदेवकी आज्ञासे समस्त तीर्थोंका जल ले आया हूँ। उसके लिये क्या आज्ञा है?

कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी।
बोले पानि पंकरुह जोरी॥
नाथ भयउ सुखु साथ गए को।
लहेऊँ लाहु जग जनमु भए को॥
अब कृपाल जस आयसु होई।
करौं सीस धरि सादर सोई॥
सो अवलंब देव मोहि देई।
अवधि पारु पावौं जेहि सेई॥
देव देव अभिषेक हित गुर अनुसासनु पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिलु तेहि कहँ काह रजाइ॥

श्रीभरतजीने पुनः प्रार्थना की—हे करुणामय! मेरे मनमें एक महत्वपूर्ण मनोरथ है जो भय और सङ्कोचके कारण कहा नहीं जाता। सुनकर प्रभुने कहा—हे भैया! अपने मनकी बात कहो। तब प्रभुकी आज्ञा पाकर श्रीभरतजी स्नेहमयी सुन्दर वाणीमें बोले—हे स्वामिन्! यदि श्रीमान्की आज्ञा हो तो चित्रकूटके पावन स्थल, तीर्थ, वन, पशु, पक्षी, सरोवर, नदी, झरने और पर्वतोंके समूह तथा विशेषकर अपने आराध्य प्रभुके श्रीचरण चिह्नोंसे अङ्कित अवनिका—भूमिका दर्शन कर आऊँ।

एक मनोरथु बड़ मन माहीं।
सभयँ सकोच जात कहि नाहीं॥
कहहु तात प्रभु आयसु पाई।
बोले बानि सनेह सुहाई॥

चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन।
खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेषी।
आयसु होइ त आवौं देखी॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर कहा—हे भरत! तुम महर्षि अत्रिकी आज्ञाको सिरपर धारण करो और निर्भय होकर वनमें विचरण करो। हे भैया! अत्रि मुनिके प्रसादसे वन मङ्गलदाता, परम पवित्र और परम सुन्दर है। हे भरत! मुनिराज अत्रि जहाँ आज्ञा दें वहीं तीर्थोंका जल स्थापित कर देना। श्रीरामजीके वचन सुनकर श्रीभरतने सुख प्राप्त किया और प्रमुदित होकर महर्षि अत्रिके चरणकमलोंमें प्रणाम किया।

अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू।
तात बिगतभय कानन चरहू॥
मुनि प्रसाद बनु मंगल दाता।
पावन परम सुहावन भ्राता॥
रिषिनायक जहँ आयसु देहीं।
राखेहु तीरथ जलु थलु तेहीं॥
सुनि प्रभु बचन भरत सुख पावा।
मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा॥

महर्षि अत्रिने श्रीभरतसे कहा—इस पर्वतके समीप ही एक सुन्दर कूप है। इस पवित्र, अनुपम और अमृतोपम तीर्थ जलको उसी कूपमें स्थापित कर दीजिए।

अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप।
राखिअ तीरथ तोय तहँ पावन अमिअ अनूप॥

हे भरत! यह अनादिसिद्ध स्थल है। अब इसको लोग 'भरतकूप' के नाम से जानेंगे। आपके लाए हुए तीर्थोंके जलके संयोगसे तो यह अत्यन्त पावन हो गया। इसमें प्रेमपूर्वक नियम से स्नान करने पर प्राणी मन, बचन और कर्मसे निर्मल हो जायेंगे।

भरत कूप अब कहिहहिं लोगा।
अति पावन तीरथ जल जोगा॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी।
होइहहिं बिमल करम मन बानी॥

श्रीभरतजीने नियमपूर्वक बिना पदत्राणके पैदल चलते हुए पाँच दिनमें समस्त तीर्थ स्थानोंके दर्शन कर लिये। श्रीविष्णु भगवान् और शङ्करजीका सुन्दर यश कहते सुनते पाँचवाँ दिन भी व्यतीत हो गया, सन्ध्या हो गयी।

देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माझ।
कहत सुनत हरि हर सुजसु गयउ दिवसु भई साँझ॥

श्रीभरतजीकी तीर्थयात्रा पूर्ण होने पर छठे दिन प्रात:काल स्नान करके श्रीभरतजी, ब्राह्मण लोग, श्रीमिथिलेश जनक और सबसमाज—अवध—मिथिला दोनों समाज जुड़ा—एकत्रित हुआ। आज श्रीअवध यात्राके लिए शुभ मुहूर्त है, यह मनमें जानकर कृपालु श्रीराम कहते हुए सङ्कोच कर रहे हैं। पहले उन्होंने श्रीवसिष्ठजीकी ओर देखा और नेत्रोंकी भाषामें कहा—हे गुरुदेव! आपतो मेरी वनयात्राके प्रयोजनको जानते हैं अत: प्रस्थान करनेका प्रस्ताव करें। श्रीवसिष्ठजीने भी उसी भाषामें उत्तर दिया—हे करुणामय राम! यह सूर्यकुलका पुरोधा अपनेको बहुत बुद्धिमान् समझता था; परन्तु तुम्हारे इस महाप्रेमी अनुजने मेरी बुद्धिको परतन्त्र कर दिया है। मेरी बुद्धि इसकी भक्तिके वश में है *'भरत भगति बस भै मतिमोरी'* अत: हे भरत के आराध्य श्रीराम! आज मैं कुछ नहीं कर सकता। श्रीजनकराजने उसी भाषामें कहा—हे भरतभावके मर्मज्ञ श्रीराम! श्रीभरतकी

भक्तिभावना की गङ्गा में और इसके स्नेह सङ्कोचकी यमुनाकी तरङ्गों में मेरी ज्ञान सरस्वती प्रविलीन हो गयी है। श्रीठाकुरजी निरुपाय होकर भूमिकी ओर देखने लगे। आज श्रीरामजीको एक उपाधि मिल रही है। अवध और मिथिला समाजके सभी लोग एक स्वरमें कह रहे हैं—श्रीरामचन्द्रकी भाँति शीलवान् और सङ्कोची स्वामी कहीं नहीं है।

भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू।
भरत भूमिसुर तेरहुति राजू॥
भल दिन आजु जानि मन माहीं।
रामु कृपाल कहत सकुचाहीं॥
गुर नृप भरत सभा अवलोकी।
सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी॥
सील सराहि सभा सब सोची।
कहुँ न राम सम स्वामी सँकोची॥

सुजान श्रीभरतजी श्रीरामचन्द्रजी का रुख देखकर स्नेहपूर्वक उठकर अत्यन्त धैर्यधारण करके दण्डवत् करके बद्धाञ्जलि होकर कहने लगे—हे नाथ! आपने मेरी सभी रुचियाँ रखी। हे स्वामिन्! आपने मेरे लिए अनेक प्रकारसे दु:ख पाया और सब लोगोंने सन्ताप सहा। हे गोसाईं! अब मुझे श्रीअवध जानेकी आज्ञा दें। मैं जाकर चौदह वर्षपर्यन्त श्रीअयोध्याधामका सेवन करूँ। हे दीनदयालो! जिस उपायसे यह दास फिर श्रीचरणोंका दर्शन करे हे कोसलाधीश! हे कृपालो! अवधि भरके लिए मुझे वही शिक्षा दीजिए।

भरत सुजान राम रुख देखी।
उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी॥
करि दंडवत कहत कर जोरी।
राखीं नाथ सकल रुचि मोरी॥
मोहि लगि सहेउ सबहिं संतापू।
बहुत भाँति दुखु पावा आपू॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई।
सेवौं अवध अवधि भरि जाई॥
जेहिं उपाय पुनि पाय जनु देखै दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि कोसलपाल कृपाल॥

श्रीरामचन्द्रजीने श्रीभरतको शिक्षा देते हुए कहा—हे भरत! देश, कोष, परिजन, परिवार आदि सबका भार तो श्रीगुरुदेवजीकी चरण रज पर है। तुम तो मुनि वसिष्ठजी माताओं और मन्त्रियोंकी शिक्षाके अनुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानीकी रक्षा करते रहना। हे भरत! मुखिया मुखके समान होना चाहिए, जो खाने पीनेको तो एक है; परन्तु विवेकपूर्वक सब अङ्गोंका पालन पोषण करता है। हे भैया! राजधर्मका सर्वस्व—तत्व भी इतना ही है। जैसे मनके भीतर मनोरथ छिपा रहता है।

देसु कोसु परिजन परिवारु।
गुर पद रजहिं लाग छरुभारू॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी।
पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥
मुखिया मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥
राजधरम सरबसु एतनोई।
जिमि मन माहँ मनोरथ गोई॥

श्रीरघुनाथजीने श्रीभरतजीको अनेक प्रकारसे समझाया; परन्तु श्रीभरतके मनमें न शान्ति है न सन्तोष। श्रीभरतजी अपने मनमें सोचते हैं—मैं बड़े स्नेह से विश्वासपूर्वक लोगोंको कहकर आया था कि श्रीरामजीको लौटा लाऊँगा। परन्तु मैं खाली हाथ अकेला ही जा रहा हूँ। संसार यह

कहेगा कि श्रीरामके दरबारसे भरत निराश चला गया, खाली हाथ चला गया। मेरे रामका दरबार बदनाम हो जायेगा। श्रीभरतकी स्नेहोर्मिल वेदनाका श्रीठाकुरजीको परिज्ञान हो गया।

बेगि पाइअहिं पीर पराई।

श्रीभगवान्‌ने अपनी भावभरी मूक भाषामें कहा—हे मेरे वात्सल्यभाजन भरत! मैं तुम्हें खाली हाथ नहीं जाने दूँगा। हे मेरे लाल! हम दोनों तुम्हारे साथ चलेंगे। हे भावमय! तुम्हारी स्नेहिल भावनाके कारण आज मेरा एक अभिनव अवतार 'पादुका' के रूपमें हो रहा है। इन्हें काष्ठकी पादुका न समझना ये तो साक्षात् श्रीसीताराम तुम्हारे साथ जा रहे हैं।

इधर तो श्रीभरतजीका शील और उधर गुरुजनों, मन्त्रियों तथा समाजकी उपस्थिति। यह देखकर श्री रघुनाथजी सङ्कोच तथा स्नेहके वशीभूत हो गये। अन्तमें श्रीभरतका स्नेह विजयी हुआ और भक्त वाञ्छाकल्पतरु श्रीरामचन्द्रजीने अनुकम्पा करके खड़ाऊँ दे दीं और श्रीभरतने आदरपूर्वक मस्तक पर धारण कर लिया।

बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती।
बिनु अधार मन तोषु न साँती॥
भरत सील गुर सचिव समाजू।
सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं।
सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥

संसारकी दृष्टिमें ये काष्ठकी पादुकाएँ हैं। भक्त लोगोंने अपनी-अपनी भङ्गीसे विभिन्न-विभिन्न रूपोंमें श्रीपादुकाजीका दर्शन किया है; परन्तु श्रीभरतकी दृष्टि तो अनोखी है, भावपूर्ण है और काल्पनिक नहीं है वास्तविक है। श्रीभरतने काष्ठकी खड़ाऊँ नहीं समझा अपितु उन्होंने तो साक्षात् श्रीसीतारामजी समझा।

भरत मुदित अवलंब लहे तें।
अस सुख जस सिय रामु रहें ते॥

श्रीभरतने श्रीरामजीसे प्रणाम करके जानेकी आज्ञा माँगी तब श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया।

मागेउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ।

श्रीभरतने विदाईके समय रोते हुए कहा—हे मेरे आराध्य! अब हमें आज्ञा दें। हमने चित्रकूट आकर आपको सङ्कोचमें डालकर महान् कष्ट दिया है। हे क्षमासागर! आप हमें क्षमा करें। अब हम श्रीअयोध्याजीमें ही आपके दर्शन करेंगे। हे करुणासागर! जानेके पूर्व मैं एक विनम्र निवेदन करता हूँ उसे सुनें। हे सत्य प्रतिज्ञ वीर! मेरे बार बार प्रार्थना करनेपर भी आपने मुझे अपने साथ वनमें रहनेकी आज्ञा नहीं दी। हे स्वामी! अब मैं श्रीअयोध्याजीमें पहुँचकर नगरसे बाहर रहूँगा, उसे वन समझकर ही वहाँ निवास करूँगा। चौदह वर्षोंतक वल्कल वस्त्र धारण करूँगा। मेरे सरपर भी अलकावलियाँ नहीं रहेंगी अपितु जटामण्डल ही रहेगा। कन्द मूल फलका ही भोजन करता हुआ अनुपल अनुक्षण परिगणन करता हुआ आपके मङ्गलमय आगमनकी प्रतीक्षा करूँगा। इतने दिनोंतक राज्यका समस्त भार आपकी चिन्मयी पादुकाओंको सौंपकर सेवा करता रहूँगा। हे चित्रकूटाद्रिबिहारी! आप प्रतिज्ञा पालन करनेमें सक्षम हैं एतावता आपके श्रीचरणोंमें प्रतिज्ञा पालन करनेके लिये शपथ ले रहा हूँ। हे रघुकुलश्रेष्ठ! चौदह वर्ष पूर्ण होनेपर पन्द्रहवें वर्षका मङ्गलमय सुप्रभात आपका श्रीअयोध्याकी

धरामें हो ताकि वहाँ आनन्दकी धारा प्रवाहित हो। यही प्रार्थना है। हे भक्तवत्सल! यदि पन्द्रहवें वर्षके प्रथम सूर्योदयकी बेलामें मुझे अपने परम प्रेमास्पद, प्राणघन, प्राणेश्वरका—आपका दर्शन नहीं मिलेगा तो मैं जलती हुई अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा। हे सत्यन्धरघुनन्दन! आपके पुरस्तात् प्रतिज्ञा इसलिए कर रहा हूँ आपका कोई भक्त यदि प्रतिज्ञा कर लेता है तो आप उस भक्तकी प्रतिज्ञाको पूर्ण कर देते हैं।

यों कहि सीय-राम-पाँयनि परि लषन लाइ उर लीन्हे।
पुलक सरीर, नीर भरि लोचन, कहत प्रेम-पन-कीन्हें॥
तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौ।
तौ प्रभु-चरन-सरोज-सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ।

(श्रीगीतावलीरामायण २। ७६)

चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघूत्तम॥
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।
तथेति च प्रतिज्ञाय तं परिष्वज्य सादरम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ११२। २५, २६)

श्रीरामजीने श्रीभरतलालको हृदयसे लगाकर बड़े प्रेमसे कहा—हे सत्यप्रतिज्ञ वीर! हे भरत! तुम्हारी प्रतिज्ञा की स्मृति मुझे सदा बनी रहेगी। मैं भी अनुपल अनुक्षण तुम्हें और तुम्हारी प्रतिज्ञाको स्मरण करता रहूँगा। हे महान् प्रेमी! मैं यथा समय श्रीअयोध्याजी अवश्य आ जाऊँगा।

श्रीरामचन्द्रजी अपनी भुजाओंमें भरकर भैया भरतसे मिल रहे हैं। श्रीरामजीके भावविह्वल स्नेहका रस वाणीका विषय नहीं है। श्रीरामजीके शरीर, मन और वचन तीनोंमें प्रेम उमँग रहा है। धीरधुरन्धर रघुनन्दनने भी धैर्यका परित्याग कर दिया उनकी कमलकी भाँति आँखोंसे गङ्गा यमुनाकी धारा बहने लगी।

भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो।
राम प्रेम रसु कहि न परत सो॥
तन मन बचन उमग अनुरागा।
धीर धुरंधर धीरजु त्यागा॥
बारिज लोचन मोचत बारी।
---------- ॥

श्रीरघुनाथजीने भरतजीको भेंटकर उनको समझाया। फिर हर्षित होकर श्रीशत्रुघ्नको हृदयसे लगा लिया। श्रीशत्रुघ्नजीको करुणामय श्रीरामजीने अपने सन्निकट बुलाया और उनको अपने हृदयसे लगाकर कहा—हे रिपुदमन लाल! मैं तुम्हे एक विशेष कार्य सौंपना चाहता हूँ। उस कार्यको केवल तुम्हीं कर सकते हो। श्रीशत्रुघ्नने विनयपूर्वक कहा—हे नाथ! आज्ञा दें। भक्तवत्सल प्रभुने कहा—हे भ्रातः! इस कार्यको करनेके लिये मैं तुम्हें शपथ देता हूँ। हे वत्स! तुम सीताको माँ कहते हो न। श्रीशत्रुघ्नने कहा—हे स्वामी! वे तो सर्वदा हम तीनों भाइयोंकी मातृस्थानापन्ना हैं, विशेष करके मुझपर तो उनका अनुपम वात्सल्य है। प्रभुने कहा—हे सीताके लाडले पुत्र! मैं इस कार्यको सम्पन्न करनेके लिये तुम्हें अपनी और तुम्हारी माँ सीताकी शपथ देता हूँ—सीतारामकी सौगन्ध दे रहा हूँ। अब तो तुम मेरा कहा हुआ कार्य अवश्य करोगे। श्रीशत्रुघ्न आज अपने स्वामीकी भाषा समझ नहीं पा रहे थे। वे प्रश्नसूचक और स्वीकृतिसूचक दृष्टिसे श्रीरामजीकी ओर निर्निमेष निहार रहे हैं। प्रभुने कहा—हे रिपुदमनलाल! मैं अपनी माँ की सेवाका भार तुम्हें—केवल तुम्हें सौंप रहा हूँ। प्रभुने तत्काल पुनः कहा—परन्तु हे शत्रुसूदन! वह मेरी माँ

जिनकी सेवा तुम्हें सौंप रहा हूँ श्रीकौसल्या माता अथवा सुमित्रामाता नहीं हैं। उनके पास तो अनन्त सेवक हैं उनकी हमें चिन्ता भी नहीं है। हे सुमित्राकुमार! मैं तो तुम्हें अपनी माता श्रीकैकेयीकी सेवा सौंप रहा हूँ। हे शत्रुघ्न! उनको ही तुम्हारी सेवाकी आवश्यकता है। वे महान् मानिनी हैं, वे किसीसे सेवा लेंगी भी नहीं और उनके पास कोई सेवा करनेके लिये जायगा भी नहीं। हे सुमित्राकुमार! कैकेयीके पुत्र भरत उनसे बात भी नहीं करते हैं, मैं उनसे कुछ कहना भी नहीं चाहता हूँ। हे शत्रुघ्न! यदि मेरे वनगमनके पश्चात् श्रीअयोध्यामें सबसे अधिक कोई दुःखी है तो वे श्रीकैकेयी मैया हैं। अतः हे मेरे लाल! तुम्हें हम दोनोंकी शपथ है कि लोककी दृष्टिमें विगर्हिता पुत्र और पतिके द्वारा परित्यक्ता, समाजके द्वारा बहिष्कृता, सबकी उपेक्षिता परन्तु मेरी अपेक्षिता—मेरी स्नेहमयी जननी श्रीकैकेयी मैयाकी सेवामें हे भैया! कभी चूक मत करना। हे रिपुदमनलाल! श्रीअयोध्याकी प्रजा मुझे प्राणसे अधिक प्यार करती है। सब मुझे वनवासी वेषमें देखकर जा रहे हैं। कहीं किसीका प्रेम अन्धा हो जाय, मेरा वियोग न सह सके, ऐसे प्राणीके द्वारा मेरी माँकी रक्षा भी करनी है, उनकी हर प्रकारसे रक्षा करनी है। बस यही मेरी सेवा है। इतना कहकर श्रीरामजीने शत्रुघ्नको उठाकर हृदयसे लगा लिया। करुणासागरकी आँखोंमें आँसू भर आये। उन्होंने व्यथित मनसे श्रीशत्रुघ्नको विदा कर दिया।

शत्रुघ्नं च परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत्।
मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति॥
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन।
इत्युक्त्वाश्रुपरीताक्षो भ्रातरं विससर्ज ह॥

(श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण ११२। २७-२८)

श्रीभरत शत्रुघ्न दोनों भाई श्रीरामजीके चरण कमलोंकी वन्दना करके श्रीरामजीकी आज्ञा सिरपर धारण करके चल पड़े।

प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई।
चले सीस धरि राम रजाई॥

श्रीभरतजी श्रीलक्ष्मणजीको भेंटके और शत्रुघ्नजी लक्ष्मणको प्रणाम करके श्रीजानकीजीके श्रीचरणोंकी धूलि मस्तकपर धारण करके और उनका मङ्गलमय आशीर्वाद सुनकर प्रेमपूर्वक प्रस्थान किये।

लखनहिं भेंटि प्रनामु करि सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि सकल सुमंगल मूरि॥

श्रीराम लक्ष्मणने श्रीजनकजीको प्रणाम किया। दोनों भाइयोंने सासु श्रीसुनैनाजीके पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। श्रीकैकेयीजीको प्रणाम करके उन्हें पालकी पर चढ़ाया। श्रीसीताजी जनकपुरके कुटुम्बियोंसे और माता पितासे मिलीं। फिर उन्होंने अपनी समस्त सासुओंको प्रणाम किया। श्रीरामजीने सुन्दर पालकी मँगाया और उसपर सभी माताओंको प्रणाम करके चढ़ाया। श्रीरामजी श्रीवसिष्ठजी और माता अरुन्धतीके चरणोंमें प्रणाम करके श्रीसीता और लक्ष्मणके साथ पर्णकुटीपर लौट आये।

गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु सीता लखन समेत।
फिरे हरष बिसमय सहित आए परन निकेत॥

अयोध्यावासी लोग श्रीसीता लक्ष्मणके साथ श्रीरामजीको हृदयमें धारण करके चेतना विहीन होकर यन्त्रकी भाँति चले जा रहे हैं। बैल, घोड़े, हाथी आदि पशु भी श्रीरामके वियोगमें शिथिल हुये पराधीन मनमारे चले जा रहे हैं।

हृदयँ रामु सिय लखन समेता।
चले जाहिं सब लोग अचेता॥
बसह बाजि गज पसु हियँ हारें।
चले जाहिं परबस मन मारें॥

प्रभुने सबके अन्तमें अपने सखा निषादराजको आदरपूर्वक विदा कर दिया। कोल, किरात, भील आदि सब श्रीरामजीको प्रणाम करके अपने घर चले गये।

जब सब लोग चले गये, निपट एकान्तमें श्रीरामजी, श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी वटवृक्षकी छायामें बैठकर प्रिय परिजनोंके वियोगमें व्याकुल हो रहे हैं। श्रीभरतजीके प्रेम, स्वभाव और उनकी स्नेहोर्मिल वाणीका वर्णन श्रीसीता और लक्ष्मणसे कर रहे हैं। श्रीभरतजीकी मन, वचन और कर्मकी प्रीति तथा प्रतीतिको श्रीरामजी अत्यन्त करुण स्वरमें विसूरते हुये आर्द्र कण्ठसे बखान कर रहे हैं। महर्षि वाल्मीकिजी भी लिखते हैं—माताओंके चरणोंमें प्रणाम करके रोते हुये, कलपते हुये, विसूरते हुए श्रीरामजी अपनी पर्णकुटीमें चले गये।

स चैव मातृरभिवाद्य सर्वा
रुदन् कुटीं स्वां प्रविवेश रामः।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ११२। ३१)

चित्रकूट तेहि समय सबनिकी बुद्धि बिषाद हई है।
तुलसी राम-भरत के बिछुरत सिला सप्रेम भई है॥

(श्रीगीतावलीरामायण २। ७८)

उस समय पशु पक्षी और जलके भीतर रहते हुये मछली तथा चित्रकूटके जड़ चेतन सभी जीव दुःखी हो गये।

प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं।
प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं॥
भरत सनेह सुभाउ सुबानी।
प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥
प्रीति प्रतीति बचन मन करनी।
श्रीमुख राम प्रेम बस बरनी॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना।
चित्रकूट चर अचर मलीना॥

देवताओंने भी आकर अपना दुःख निवेदन किया और श्रीरामजीने उनको आश्वस्त किया। वे प्रसन्न होकर भयरहित होकर चले गये। श्रीसीता लक्ष्मणके सहित श्रीरामजी पर्णकुटीमें विराज रहे हैं, मानो भक्ति, वैराग्य और ज्ञान शरीर धारण करके विराज रहे हैं।

सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु वैराग्य जनु सोहत धरे सरीर॥

इधर श्रीभरतजी एवं अवध मिथिलाके सभी लोग श्रीरामजीके गुण समूहोंका स्मरण करते हुये चुपचाप चले जा रहे हैं। पहले दिन सब लोग यमुना पार हुये। वह दिन बिना भोजनके ही व्यतीत हो गया। गङ्गा पार करके दूसरा पड़ाव शृङ्गवेरपुरमें हुआ। श्रीनिषादराजने वहाँ सारी व्यवस्था की। तीसरे दिन सई नदी पार करके गोमतीमें स्नान किया। तीसरे दिन वहीं रह गये। चौथे दिन श्रीअयोध्याजी पहुँच गये।

श्रीजनकजी चार दिन श्रीअयोध्यामें रहकर, राज्य कार्य सँभालकर, मन्त्री, गुरुदेव और भरतजीको राज्य सौंपकर मिथिला चले गये।

श्रीअयोध्याके नर नारी श्रीरामदर्शनके लिये नियम और उपवास करते हैं। सब लोग भूषण और भोग सुखका परित्याग करके अवधिकी आशामें जीवन धारण कर रहे हैं।

राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपबास।
तजि तजि भूषन भोग सुख जिअत अवधि कीं आस॥

श्रीभरतजीने मन्त्रियों और विश्वस्त सेवकोंको समझाया। वे सब शिक्षा प्राप्त करके अपने अपने

कार्यमें लग गये। फिर श्रीशत्रुघ्नको बुलाकर उपदेश किया और उन्हें सब माताओंकी सेवा सौंप दी। ब्राह्मणोंको बुलाकर श्रीभरतजीने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि ऊँचा-नीचा, भला-बुरा जो भी कार्य हो उसके लिए आज्ञा दीजिएगा, सङ्कोच न करियेगा। परिजन, पुरजन और प्रजाको बुलाकर सबका सन्तोष करके सुखपूर्वक स्वतन्त्ररूपसे बसाया।

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे।
निज निज काज पाइ सिख ओधे॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई।
सौंपी सकल मातु सेवकाई॥
भूसुर बोलि भरत कर जोरे।
करि प्रनाम बय बिनय निहोरे॥
ऊँच नीच कारज भल पोचू।
आयसु देव न करब सँकोचू॥
परिजन पुरजन प्रजा बोलाए।
समाधानु करि सुबस बसाए॥

श्रीभरतजीसे श्रीअयोध्याजी अब निहारी नहीं जाती हैं। वे कहते हैं—जिस अयोध्यामें नित्य ही कोई न कोई उत्सव होता रहता था, आज वह नगरी उत्सवशून्य हो गयी है। श्रीअयोध्याजी अपने स्वामी श्रीरामजीके वियोग शोकसे व्यथित हैं। मेरे आराध्य श्रीरामचन्द्रके साथ ही श्रीअयोध्याजीकी समस्त शोभा चली गयी है। अब तो यह पुरी सुखस्वरूप मङ्गलमूर्ति भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके आनेपर ही सुशोभित होगी।

नोत्सवाः सम्प्रवर्तन्ते रामशोकार्दिते पुरे।
सा हि नूनं मम भ्रात्रा पुरस्यास्य द्युतिर्गता॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ११४। २४)

श्रीशत्रुघ्नजीके साथ श्रीभरतजी गुरुदेव श्रीवसिष्ठजीके स्थानमें जाकर दण्डवत् करके बद्धाञ्जलि होकर बोले—हे त्रिकालज्ञ महात्मन्! मेरा मन श्रीअयोध्याजीमें नहीं लगता है, यहाँपर प्रत्येक स्थानोंमें श्रीरामजीकी स्मृति लिपटी हुई है। श्रीकनकभवन, मणिपर्वत, विद्याकुण्ड, वसिष्ठआश्रम, रामघाट, सरयूतट सबको देख देखकर मेरे जीवनधनकी प्रगाढ़ स्मृति होती है। एतावता मेरा मन व्याकुल हो जाता है। हे गुरुदेव! मुझे आज्ञा दें कि मैं नन्दिग्राममें चतुर्दशवर्षपर्यन्त नियमपूर्वक निवास करूँ।

सानुज गे गुर गेहँ बहोरी।
करि दंडवत कहत कर जोरी॥
आयसु होइ त रहौं सनेमा।
------ ------- -----॥

श्रीवसिष्ठ मुनि प्रेमसे पुलकित होकर सप्रेम बोले—हे भरत! तुम जो कुछ भी समझोगे, कहोगे और करोगे वही संसारमें धर्मसार होगा।

--------- -------- ।
बोले मुनि तन पुलकि सपेमा॥
समुझब कहब करब तुम्ह जोई।
धरम सारु जग होइहि सोई॥

श्रीगुरुदेवकी शिक्षा और आशीर्वाद प्राप्त करके, ज्योतिषियोंको बुलाकर मुहूर्त शोधवा कर श्रीभरतजीने श्रीपादुकाजीको सिंहासनपर पधराया।

सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि।
सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि॥

श्रीकौसल्याजी और श्रीगुरुदेवके चरणोंमें प्रणाम करके तथा श्रीपादुकाजीकी आज्ञा प्राप्त करके नन्दिग्राममें पर्णकुटी बनाकर धर्म धुरन्धर धैर्यशाली श्रीभरतने निवास किया। सिरपर जटाजूट

और शरीरमें वल्कलाम्बर धारण किया। पृथ्वीको खोदकर कुशकी साथरी बनायी।

राम मातु गुर पद सिरु नाई।
प्रभु पद पीठ रजायसु पाई॥
नंदिगाँव करि परन कुटीरा।
कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा॥
जटाजूट सिर मुनिपट धारी।
महि खनि कुस साँथरी सँवारी॥

भोजन, वस्त्र, बर्तन, व्रत, नियम आदिके व्यवहारमें ऋषियोंके कठिन धर्मका प्रेमसहित आचरण करने लगे। आभूषण, वस्त्र और अनेकों तरहके भोग सुखोंको मन, शरीर और कर्मसे तृण तोड़कर त्याग दिया। अर्थात् तुच्छ समझकर छोड़ दिया।

असन बसन बासन ब्रत नेमा।
करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा॥
भूषन बसन भोग सुख भूरी।
मन तन बचन तजे तिन तूरी॥

श्रीअयोध्याजीके राज्यको देवेन्द्र इन्द्र ललचाते हैं और श्रीदशरथजीकी सम्पत्तिको सुन करके धनाधीश कुबेर लज्जित होते हैं। उसी अयोध्यापुरीमें श्रीभरतजी बिना रागके अनासक्त भावसे इस प्रकार रहते हैं जैसे चम्पाके बागमें भ्रमर रहता है।

अवध राजु सुर राजु सिहाई।
दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥
तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा।
चंचरीक जिमि चंपक बागा॥

वे रामानुरागी अतिशय भाग्यवान् होते हैं जो रमाविलासको—सांसारिक सम्पत्तिको वमनके समान त्याग देते हैं।

रमा बिलासु राम अनुरागी।
तजत वमन जिमि जन बड़भागी॥

इस प्रकार बाहर और भीतर दोनोंका त्याग कहा। श्रीभरतजी नित्यप्रति अत्यन्त प्रीतिसे श्रीपादुकाजीका पूजन करते हैं। जिस प्रकार श्रीसीतारामजी चिन्मय हैं, उसी प्रकार श्रीपादुकाजी भी चिन्मय हैं। पूर्णब्रह्म परमात्माका अवतार श्रीसीतारामजीके रूपमें हुआ और श्रीसीतारामजीका अवतार पादुकाके रूपमें है। इसीलिये श्रीवैष्णवोंमें श्रीपादुकाजीका मूर्धन्य स्थान है। श्रीभरतजी श्रीपादुकाजीसे आज्ञा माँग माँगकर सब राज काज करते हैं।

नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥

श्रीभरतजी निरन्तर श्रीरामनाम जपते रहते हैं। नाम जापकमें तीन विशेषताएँ होनी चाहिये। शरीरमें रोमाञ्च, हृदयमें श्रीसीतारामका दिव्य विग्रह और नेत्रोंमें प्रेमाश्रु श्रीभरतजीकी स्थितिका दर्शन करें और नाम जपनेकी शिक्षा ग्रहण करें।

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू।
जीह नामु जप लोचन नीरू॥

श्रीलक्ष्मणजी और श्रीसीतारामजी वनमें बसते हैं और श्रीभरतजी नन्दिग्राममें रहकर तपस्याके द्वारा शरीर कसते हैं। श्रीभरतजीका भाव यह है कि मेरे परमाराध्य परम सुकुमार स्वामी उदासी वेषमें वनमें रहकर कष्ट सह रहे हैं, तब हमें राज्यसुख भोगनेका कोई अधिकार नहीं है। यह सोचकर श्रीभरत घरमें ही इस भावनासे नन्दिग्राममें रहकर श्रीरामजीकी भाँति विशेष उदासी भावसे तपस्या करते हैं। दोनों ओरकी स्थिति समझकर सब लोग कहते हैं—श्रीभरतजी सब प्रकारसे प्रशंसा करने योग्य हैं।

लखन राम सिय कानन बसहीं।
भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं॥

दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू।
सब बिधि भरत सराहन जोगू॥

श्रीसीतारामजीका प्रेम अमृत है। उस अमृतके धारण करनेके पात्र श्रीभरतजी हैं। इस प्रकार श्रीसीताराम प्रेमामृतसे परिपूर्ण श्रीभरतजीका जन्म यदि संसारमें न होता तो मुनियोंके मनको भी अगम यम, नियम, शम, दम आदि कठिन व्रतोंका आचरण कौन करता? दु:ख, सन्ताप, दारिद्र्य, दम्भ आदि दोषोंको अपने सुयशके ब्याजसे कौन अपहरण करता? श्रीगोस्वामीजी श्रीभरतजीका उपकार मानते हुए कहते हैं कि इस घोर कलिकालमें मेरे ऐसे शठोंको हठपूर्वक श्रीरामजीके सम्मुख कौन करता?

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

श्रीगोस्वामीजी श्रीभरत चरित्रका उपसंहार करते हुए कहते हैं अथवा श्रीभरत चरित्रकी फलश्रुति कहते हैं—जो श्रीभरत चरित्रको नियम और आदरपूर्वक श्रवण करेंगे उनको श्रीसीतारामजीके चरणोंके प्रेमकी प्राप्ति अवश्य होगी। और उस प्रेमकी पुष्टिके लिये भवरस—विषयरससे वैराग्य भी अवश्य होगा। आशय यह है कि जबतक विषयोंसे वैराग्य नहीं होगा तबतक श्रीसीतारामजीके चरणोंमें प्रेम नहीं होगा। श्रीभरत चरित्रका श्रवण करके भगवच्चरणोंमें प्रेम होगा, उनका प्राप्त राज्य वैभव सुखका परित्याग सुनकर मनमें वैराग्य होगा।

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥

(श्रीअयोध्याकाण्ड समाप्त)

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीरामचरितमानस
कथा-सुधा-सागर
अरण्यकाण्ड

श्रीभरतचरित्रके पूर्ण होते ही श्रीरामकथा अरण्यकाण्डमें प्रविष्ट होती है। अरण्यकाण्डको वनकाण्ड भी कहते हैं। इस काण्डमें श्रीरामजीको पर्णकुटी बनाकर स्वयं रहना होगा। इसलिये इसे अरण्यकाण्ड कहते हैं। अरण्यकाण्डके प्रारम्भमें श्रीगोस्वामीजी भगवान् शङ्करकी वन्दना करते हैं।

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम्।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शङ्करं
वन्दे ब्रह्मकुलं कलङ्कशमनं श्रीरामभूपप्रियम्॥

धर्मरूपी वृक्षके मूल, विवेकरूपी समुद्रको आनन्द देनेवाले पूर्णचन्द्र, वैराग्यरूपी कमलको विकसित करनेवाले सूर्य, पापरूपी गाढान्धकारका निश्चय ही नाश करनेवाले, दैहिक, दैविक और भौतिक त्रिविध तापोंको अपहरण करनेवाले, मोहरूपी बादलोंके समूहको उड़ानेकी विधिमें पवनरूप, कल्याण करनेवाले, ब्राह्मण कुलभूषण, कलङ्कके नाश करनेवाले और श्रीराजा रामचन्द्रजीके प्रिय किं वा जिनको राजा रामचन्द्रजी प्रिय हैं, उन श्रीशङ्करजीकी मैं वन्दना करता हूँ।

भगवद् भागवत धर्मके मूल श्रीशङ्करजी हैं।

संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥

(७। ४५)

पूर्णचन्द्रको देखकर समुद्र सहज ही बढ़ता है।

राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान।
बढ़्यो कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान॥

(७। ३ ग)

विवेकको समुद्र और शङ्करजीको पूर्णचन्द्र कहकर यह ज्ञात कराया कि शिवजीके दर्शनसे विवेककी वृद्धि होती है। वैराग्यमें आसक्ति दोष नहीं होता है, अतः उसे कमल कहते हैं, कमलमें भी आसक्ति दोष नहीं होता है।

जे बिरंचि निरलेप उपाए।
पदुम पत्र जिमि जग जल जाए॥

(२। ३१७)

जैसे कमल जलसे निर्लिप्त रहता है वैसे ही वैराग्यवान् विषयसे निर्लिप्त रहता है। सूर्य कमलको विकसित करता है उसी तरह वैरागियोंके वैराग्यकी वृद्धि परमविरक्त श्रीशङ्करजीके स्मरण एवं दर्शनसे होती है। पहले धर्म, चन्द्रमा और सूर्य कहकर तदनन्तर '**अघघनध्वान्तापहंतापहम्**' कहनेका आशय यह है—धर्मसे अघका नाश, सूर्यसे अन्धकारका नाश और चन्द्रमासे तापका नाश होता है। मोह बादलोंके समूहके समान है। वह मनुष्यके अन्तःकरणपर छाकर उसे आवृत कर लेता है; परन्तु बादलोंको वायु क्षणभरमें छिन्न भिन्न कर देता है, वह वायु स्वसम्भव है। सांख्यशास्त्र कहता है '**आकाशाद्वायुः**' आकाशसे वायु उत्पन्न हुआ। श्रीशङ्करजी मोहके घनपटलको छिन्न भिन्न कर देते हैं। समस्त कल्याणोंको करनेवाले हैं एतावता शिवजी 'शङ्कर' पदवाच्य हैं। '**ब्रह्मकुलम्**'—श्रीशङ्करजी ब्रह्माके कुलके हैं अथवा ब्राह्मणकुलके हैं। '**कलङ्कशमनम्**'—काम ही कलङ्क है *'अकलंकता कि कामी लहई'* पुनः मत्सर भी कलङ्क है *'मच्छर काहि कलंक न लावा।'*

षड्रिपुओंकी गणनाका क्रम इस प्रकार है—'काम, क्रोध, लोभ, मोद, मद और मत्सर'। आदिमें काम है और अन्तमें मत्सर। उपक्रमोपसंहारको कलङ्क कह देनेसे अर्थात् काम और मत्सरको कलङ्क कह देनेसे मध्यवालोंकी भी अर्थात् क्रोध, लोभ, मद, मोहकी भी कलङ्क संज्ञा है। श्रीशङ्करजी षड्रिपुओंका नाश करनेवाले हैं। *'श्रीरामभूपप्रियम्'* श्रीशङ्करजीको श्रीरामजीका राजारूप प्रिय है। वे वर याचना करते हैं।

अनुज जानकी सहित निरंतर।
बसहु राम नृप मम उर अंतर॥

(६। ११५)

इस प्रकार श्रीशङ्करजीकी वन्दना करके श्रीसीता-लक्ष्मणके सहित वनवासी श्रीरामजीकी वन्दना करते हैं।

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम्।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे॥

जिनका शरीर सान्द्रानन्द मेघके समान सुन्दर है, जो पीताम्बर धारण किये हैं और सुन्दर हैं। जिनके हाथोंमें धनुषबाण है, उत्तम तरकसके भारसे जिनका कटि प्रदेश सुशोभित है। जिनके कमलके समान विशाल नेत्र हैं, जो मस्तकपर जटाजूट धारण करनेसे अतिशय सुन्दर लग रहे हैं। श्रीसीता-लक्ष्मणके साथ मार्गमें चलते हुये आनन्द देनेवाले उन श्रीरामचन्द्रजीको मैं भजता हूँ।

सान्द्रानन्दपयोद ही सुभग होता है—

'बिनु जल बारिद देखिअ जैसा।' 'पीताम्बर' ठाकुरजीका नाम है **'पीताम्बरोऽच्युतः शार्ङ्गी विष्वक्सेनो जनार्दनः'** इत्यमरः। अथवा—वीर पुरुष केशरिया जामा धारण करते हैं। अरण्यकाण्डमें विराध, खर, दूषण आदि अच्छे अच्छे वीरोंसे युद्ध होगा। अथवा—पीताम्बरका अर्थ कौशेय वस्त्र ही क्यों किया जाय? उस प्रकाशके केन्द्रका आच्छादन बनकर वल्कल भी चमक जाता है। श्रीठाकुरजीकी अङ्गकान्ति है नील, नील कान्ति भीतरसे आनेके कारण वल्कल सुन्दर पीताम्बर लगता है। मार्गमें चल रहे हैं, जाना है दण्डकारण्यमें। असुरोंका प्राबल्य और बाहुल्य है इस मार्गमें, अतएव दोनों तूणीर कमरमें कस लिये हैं। दाहिने हाथमें बाण है और बायें हाथमें विशाल धनुष है। मुखपर न श्रान्ति है, न क्लान्ति है, न खेद है। वे तो सदा प्रसन्न हैं। उनके बड़े-बड़े नेत्र कमलके समान खिले हुए हैं। मस्तकपर जटाजूट सुशोभित हैं। इस सौन्दर्यराशि कोभला शृङ्गारकी क्या आवश्यकता है? यह तो सदा ही अभिराम हैं। देखते ही मन आनन्दसे परिपूर्ण हो जाता है। आगे-आगे प्रभु हैं, पीछे पीछे श्रीजानकीजी प्रभुके चरणचिह्नोंके मध्यमें चरण रखती जा रही हैं। श्रीसीताजीके पीछे श्रीलक्ष्मणजी हैं। एक पंक्तिमें तीन चरणचिह्न बनते हैं; परन्तु रामानुज श्रीलक्ष्मणका चरणचिह्न कभी प्रभुके चरणचिह्नके दाहिने बनता है और कभी बायें। मार्गमें चलते हुए इस त्रिरूपको हृदयमें रख लीजिये। और इस वेषमें सरकारका भजन कीजिये। यह अन्तिम झाँकी है। अब वनमें फिर तीनों एकत्र न मिलेंगे।

श्रीशङ्करजी कह रहे हैं—हे उमा! श्रीरामजीके गुण गूढ़ हैं। पण्डित और मुनि रामगुणसे वैराग्य प्राप्त करते हैं; परन्तु जो विमूढ हैं, जो श्रीरामजीसे विमुख हैं और जिनकी धर्ममें रति नहीं है, वे

मोहको प्राप्त करते हैं।

उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म रति॥

काण्डके आरम्भमें ही श्रीशङ्करजी सावधान करते हैं कि इसी काण्डके चरित्रमें तुमको पूर्वजन्ममें मोह हुआ था। अतः सावधान हो जाओ। भक्तिपूर्वक श्रवण करो।

एक बार रङ्ग-बिरङ्गे सुन्दर पुष्पोंका चयन करके श्रीरामजीने अपने हस्तकमलोंसे आभूषण बनाये और आदरपूर्वक श्रीजानकीजीको धारण कराये और सुन्दर स्फटिक शिलापर बैठे।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए।
निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर।
बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥

'राम बनाए' का भाव यह है कि श्रीसीताजीके प्रति अतिशय प्रेमके कारण श्रीरामजीने अपने हाथोंसे पुष्पोंका आभूषण बनाकर श्रीसीताजीको पहनाया। जिस दिन सीताजीका हरण हुआ था उस दिन भी श्रीरामजीने पुष्पोंका आभूषण पहनाया था। श्रीवाल्मीकि रामायणमें लिखा है कि जब प्रभु श्रीलक्ष्मणके साथ ऐसे मार्गपर जा पहुँचे जहाँपर कुछ पुष्प दृष्टिगोचर हुये। उन पुष्पोंको देखकर श्रीरामने दुःखी होकर श्रीलक्ष्मणसे दुःखपूर्ण वचन कहा—हे लक्ष्मण! इन पुष्पोंको मैं पहचान गया। ये वही पुष्प हैं, जिन्हें मैंने सीताजीको दिया था और उन्होंने अपने केशोंमें धारण कर लिया था। मैं ऐसा मानता हूँ कि सूर्य, वायु और यशस्विनी भूमिने मेरा प्रिय करनेके लिये—मुझे समाचार देनेके लिये इन पुष्पोंको सुरक्षित रखा है—अम्लान रखा है। ये पुष्प धूलि धूसरित नहीं हो पाये, इधर उधर उड़कर नहीं गये और सूखे भी नहीं।

उवाच लक्ष्मणं वीरो दुःखितो दुःखितं वचः।
अभिजानामि पुष्पाणि तानीमानीह लक्ष्मण॥
अपिनद्धानि वैदेह्या मया दत्तानि कानने।
मन्ये सूर्यश्च वायुश्च मेदिनी च यशस्विनी॥
अभिरक्षन्ति पुष्पाणि प्रकुर्वन्तो मम प्रियम्।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। ६४। २६—२८)

देवेन्द्र इन्द्रका मूर्ख पुत्र जयन्त काकरूप धारण करके श्रीरामजीका बल देखना चाहता है। जिस प्रकार पिपीलिका—चींटी सागरकी थाह लेना चाहे उसी प्रकार महामन्दमति जयन्त भी श्रीरामजीके बलकी थाह लेना चाहता है।

सुरपति सुत धरि बायस बेषा।
सठ चाहत रघुपति बल देखा॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा।
महा मंदमति पावन चाहा॥
सीता चरन चोंच हति भागा।
मूढ़ मंदमति कारन कागा॥

इसके पूर्व दोहेमें कहा है कि ***'पावहिं मोह बिमूढ़'*** उसका तत्काल प्रमाण मिल गया—मूढ़ मंदमति जयन्तको मोह हो गया और वह श्रीसीताजीके श्रीचरणोंमें चोंच मारकर भाग गया। अध्यात्मरामायणमें भी चरणोंमें चोंच मारना लिखा है—श्रीसीताजीने कहा कि इसी समय इन्द्रका पुत्र काक वेषमें वहाँ आया और मांसके लोभसे मेरे चरणके लाल-लाल अँगूठेको उसने अपनी चोंच तथा पञ्जोंसे फाड़ डाला।

ऐन्द्रः काकस्तदागत्य नखैस्तुण्डेन चासकृत्।
मत्पादाङ्गुष्ठमारक्तं विददारामिषाशया॥

(अध्यात्मरामायण ५। ३। ५४)

पण्डित शिवलालजी पाठक लिखते हैं—जयन्तने अपने पिताका लक्षण ग्रहण किया था अत: काक बना। श्रीराम देवताओंके लिये वनमें आये हैं और इस तरह निश्चिन्त होकर शयन कर रहे हैं अत: उनको शिक्षा देनेके निमित्त जयन्तने श्रीसीताजीके चरणमें चोंच मारकर दिखाया कि वनमें असावधानीका यह फल है।

भय भंजनि पद तुंड रघु, बपुधरि तुद केहि हेतु।
जोग पित्रि लक्षण किधौं, रक्षनको सिख देतु॥

(श्रीमानसअभिप्रायदीपक)

श्रीरामजीने धनुषपर सींकका बाण सन्धान कर दिया। श्रीवाल्मीकिजीने भी लिखा है कि श्रीरामजीने कुशकी चटाईसे एक कुश निकाला और उसे ब्रह्मास्त्रके मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया। अभिमन्त्रित करते ही वह कालाग्निके समान प्रज्ज्वलित हो उठा। उसका लक्ष्य यह पक्षी था।

स दर्भसंस्तराद् गृह्य ब्रह्मणोऽस्त्रेण योजयत्।
स दीप्त इव कालाग्निर्जज्वालाभिमुखो द्विजम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ३८। २९)

सींकके बाण सन्धानका भाव यह है—(क) जब तिनकेसे काम चल सकता है तो भारी वस्तुसे काम नहीं लेना चाहिये। (ख) जयन्तको ज्ञात हो जायगा कि जब सींकमें इतना बल है तब इनके बलकी थाह क्या मिलेगी? (ग) जयन्त ऊपरसे कौवा है और भीतरसे बलवान् जयन्त। प्रभुने कहा—कौवेके मारनेके लिये सींकका बाण पर्याप्त है; परन्तु जयन्तके मारनेके लिये इस सींकको ब्रह्मास्त्र बनाकर प्रेरित किया।

चला रुधिर रघुनायक जाना।
सींक धनुष सायक संधाना॥

मन्त्रसे प्रेरित होकर वह ब्रह्मबाण दौड़ा। वायस भी भयभीत होकर भागने लगा।

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा।
चला भाजि बायस भय पावा॥

जयन्त अपना स्वरूप धारण करके पिताके पास गया; परन्तु रामविमुख समझकर इन्द्रने उसकी रक्षा नहीं की। श्रीगोस्वामीजीने श्रीदोहावलीमें लिखा है—जो श्रीरघुनाथजीसे विमुख है, उसको इच्छा करनेपर वृक्षोंसे भरे हुये विन्ध्याचलपर भी ईंधन नहीं मिलता, समुद्रसे जल नहीं मिलता और कुबेरके घर जाकर भी उपवास ही करना पड़ता है।

बिंधि न ईंधन पाइऐ, सायर जुरै न नीर।
परै उपास कुबेर घर जो बिपच्छ रघुबीर॥

(श्रीदोहावली ७२)

जयन्त सत्यलोक, शिवलोक एवं अन्यान्य लोकोंमें गया; परन्तु किसीने भी उसे बैठनेतकके लिये नहीं कहा। श्रीनारदजीने उसको व्याकुल देखा तो उनके हृदयमें कृपा आ गयी; क्योंकि सन्तोंका चित्त अति कोमल होता है।

नारद देखा बिकल जयंता।
लागि दया कोमल चित संता॥

श्रीनारदजीने जयन्तको मात्र चार शब्दोंका उपदेश दिया है—

कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही।

पद्मपुराणमें श्रीनारदके पिता श्रीब्रह्माने जयन्तसे कहा है कि तुम उन्हीं श्रीरामकी शरणमें जाओ वे करुणानिधि सबके रक्षक हैं।

भो भो बलिभुजां श्रेष्ठ! तमेव शरणं व्रज।
स एव रक्षक: श्रीमान् सर्वेषां करुणानिधि:॥
शरणं व्रज देवेशं नान्यत्र शरणं द्विज!

(पद्मपुराण उत्तरखण्ड २४२। २०३—२०५)

श्रीनारदजीका उपदेश सुनकर आतुर और सभय जयन्तने श्रीरामजीके पास जाकर उनके चरण पकड़ लिये। आर्तस्वरमें उसने कहा—हे दयालो! हे राघवेन्द्र! त्राहि माम्! त्राहि माम्! मैं मन्दमति हूँ, अतः मैंने आपके बलको देखनेकी इच्छा की। हे अनाथनाथ! आपका असीम बल है और आपकी असीम सामर्थ्य है, मैं उसे जान नहीं पाया। मैंने अपने कर्मका फल पा लिया। हे प्रभो! मैं आपकी शरणमें आया हूँ मेरी रक्षा करें।

आतुर सभय गहेसि पद जाई।
त्राहि त्राहि दयाल रघुराई॥
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई।
मैं मतिमंद जानि नहिं पाई॥
निज कृत कर्म जनित फल पायउँ।
अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ॥

पद्मपुराणमें लिखा है कि भगवती भास्वती करुणामयी श्रीमैथिलीने भगवान्‌के सामने गिरे हुए जयन्तके मस्तकको उठाकर करुणामय श्रीरघुनन्दनके चरणोंपर रख दिया।

पुरतः पतितं देवी धरण्यां वायसं तदा।
तच्छिरःपादयोस्तस्य योजयामास जानकी॥

(पद्मपुराण उत्तरखण्ड २४२। २०८)

कृपापीयूषसागर श्रीरामने अपने हाथमें उठाकर उस वायससे कहा अब भय मत करो। मैं तुमको अभयदान देता हूँ।

समुत्थाप्य करेणाऽथ कृपापीयूषसागरः।
तमाह वायसं रामो माभैरिति दयानिधिः॥
अभयन्ते प्रदास्यामि गच्छ गच्छ यथासुखम्।

(पद्मपुराण उत्तरखण्ड २४२। २१०)

जयन्तकी दीनवाणीको सुनकर श्रीरामजीने उसको एक आँखका—काना करके छोड़ दिया।

सुनि कृपाल अति आरत बानी।
एकनयन करि तजा भवानी॥

ब्रह्मास्त्रकी अमोघता सिद्ध करनेके लिये कृपालु श्रीरामजीको उसकी एक आँख लेनी पड़ी। अध्यात्मरामायणमें शरणमें आए हुए जयन्तसे कहा—मेरा यह, अस्त्र अमोघ है—यह कभी व्यर्थ नहीं जा सकता। अतः तू केवल अपनी एक आँख देकर यहाँसे चला जा। तब वह काक अपनी बायीं आँख देकर चला गया।

अमोघमेतदस्त्रं मे दत्त्वैकाक्षमितो व्रज।
सव्यं दत्त्वा गतः काक एवं पौरुषवानपि॥

(अध्यात्मरामायण ५। ३। ६०)

कीन्ह मोहबस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रने चित्रकूटसे दण्डकारण्य जानेका मन बना लिया। चित्रकूटसे जानेके कई कारण हो गये। एक तो श्रीअवध और मिथिलासे लोगोंका आना जाना प्रारम्भ होगया था। आसपासके लोग भी आने जाने लगे थे। अध्यात्मरामायणमें लिखा है कि प्रभुको चित्रकूटपर विराजमान सुनकर आसपासके नगर निवासी उनके दर्शनोंकी कामनासे आया जाया करते थे।

नागराश्च सदा यान्ति रामदर्शनलालसाः।
चित्रकूटस्थितं ज्ञात्वा सीतया लक्ष्मणेन च॥

(अध्यात्मरामायण २। ९। ७७)

एक कारण और भी है—श्रीभरतजीके जानेके पश्चात् चित्रकूटमें अशान्ति बढ़ गयी। रावणके द्वारा नियुक्त खरदूषणादि राक्षस एवं उनके सेवक श्रीरामजीका भेद लेनेके लिये आने लगे। वे आकर महर्षियोंको भी कष्ट देने लगे। यज्ञमें भी

विघ्न करने लगे। तब कुलपति महर्षि श्रीरामजीका अभिनन्दन करके उनसे पूछ करके उन्हें सान्त्वना देकरके ऋषियोंके साथ दूसरे वनमें चले गये।

अभिनन्द्य समापृच्छ्य समाधाय च राघवम्।
स जगामाश्रमं त्यक्त्वा कुलैः कुलपतिः सह॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ११६। २४)

चित्रकूट छोड़नेका तीसरा और प्रबल कारण यह भी है कि प्रभु श्रीभरतजीके जानेके बाद बहुत दुःखी होजाते हैं। उनको भरतजीकी स्मृति हो आती है और जब चित्रकूटके समस्त स्थलोंको देखते हैं तब सोचते हैं—इस स्थलमें भरतसे मेरा पहला मिलन हुआ था, यहाँपर मैंने सर्वप्रथम श्रीगुरुदेवको प्रणाम किया था। इस पर्वतकी कन्दरामें हम चारों भाइयोंने पितृशोकमें रुदन किया था, इस मन्दाकिनी तटपर मैंने पूज्य पिताश्रीको पिण्डदान किया था। इस स्थलपर रोते हुए, प्रार्थना करते हुए अपने लाड़ले भरतको मैंने विदा किया था। इस प्रकार चित्रकूटमें श्रीभरतकी लिपटी हुई स्मृतिसे प्रभुका मन उद्विग्न हो जाता है एतावता प्रभुने चित्रकूटसे अन्यत्र जानेका विचार किया।

चित्रकूटसे प्रस्थान करके सबसे पहले प्रभु महर्षि अत्रिके आश्रमपर गये। अत्रि और अनसूया दोनों महान् हैं। जो त्रिगुणोंसे ऊपर उठ गया हो वह अत्रि है। जिसमें असूया न हो वह अनसूया है। गुणोंमें भी दोष निकालनेको असूया कहते हैं। अत्रि और अनसूयाकी गोदमें श्रीब्रह्मा, विष्णु, महेश खेलते हैं। प्रभुके आगमनको सुनकर अत्रि मुनिको महान् प्रसन्नता हुई।

अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ।
सुनत महामुनि हरषित भयऊ॥

मुनि श्रीरामजीसे मिलनेके लिए दौड़े और श्रीरामजी भी उनका स्नेह देखकर आतुर होकर उनके पास पहुँचे।

पुलकित गात अत्रि उठि धाए।
देखि राम आतुर चलि आए॥

प्रभुने महर्षिके चरणोंमें साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और मुनिने अत्यन्त त्वरासे दोनोंको हृदयसे लगाकर आँखोंके आँसुओंसे स्नान करा दिया। आँखोंके आँसुओंको यहाँ 'प्रेमजल' कहा गया है।

करत दंडवत मुनि उर लाए।
प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए॥

श्रीरामजीको देखकर मुनिके नेत्र शीतल हो गये। वे प्रभुको अपने आश्रममें ले आये। विधिवत् पूजा करके मूल फल दिया। प्रभुने उसे बहुत प्रेमसे स्वीकार किया। जब श्रीरामजी आसनपर विराज गये तब मुनिने बड़े प्रेमसे हाथ जोड़कर स्तवन किया। अत्रिकी बड़ी भावपूर्ण स्तुति है। आरम्भमें ही श्रीरामजीको भक्तवत्सल कहते हैं '**नमामि भक्तवत्सलं**' और अन्तमें **उर्विजापतिं** श्रीरामचन्द्रके प्रसन्नताकी प्रार्थना करते हुए प्रभुके श्रीचरणकमलोंकी भक्तिकी याचना करते हैं तथा चरणकमलोंको मेरी बुद्धि कभी न छोड़े यह याचना करते हैं।

अनूप रूप भूपतिं। नतोऽहमुर्विजापतिं॥
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे॥
बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि॥

इधर श्रीसीताजी श्रीअनसूयाजीके पास जाती हैं। दोनोंका पारस्परिक सम्मिलन बड़ा भावपूर्ण है। श्रीअनसूयाजीने श्रीसीताजीको दिव्य आभूषण और वस्त्र धारण कराये, जो नित्य, नूतन, निर्मल और सुन्दर बने रहते हैं।

दिब्य बसन भूषन पहिराए।
जे नित नूतन अमल सुहाए॥

श्रीवाल्मीकीयरामायण एवं अध्यात्मरामायणमें भी वस्त्राभूषणोंका धारण कराना लिखा है। श्रीअनसूयाने प्रसन्न होकर श्रीसीताजीको दिव्य हार, वस्त्र, आभूषण, अङ्गराग अनुलेपनादि दिया और यह भी कहा कि ये वस्तुएँ उपयोगमें लायी जानेपर भी निर्दोष एवं निर्विकार रहेंगी।

इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणानि च।
अङ्गरागं च वैदेहि महार्हमनुलेपनम्॥
मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत्।
अनुरूपमसंक्लिष्टं नित्यमेव भविष्यति॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण २। ११८। १८-१९)

श्रीअध्यात्मरामायणमें लिखा है कि श्रीअनसूयाजीने भक्तिसहित श्रीसीताजीको विश्वकर्माके बनाए हुए दो दिव्य कुण्डल और दो स्वच्छ रेशमी साड़ियाँ दीं। शुभानना श्रीअनुसूयाजीने उन्हें दिव्य अङ्गराग भी दिया और कहा—हे कमलानने! इस अङ्गरागके लगानेसे तुम्हारे शरीरकी शोभा कभी कम न होगी।

दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्मणा।
दुकूले द्वे ददौ तस्यै निर्मले भक्तिसंयुता॥
अङ्गरागं च सीतायै ददौ दिव्यं शुभानना।
न त्यक्ष्यतेऽङ्गरागेण शोभा त्वां कमलानने॥

(अध्यात्मरामायण २। ९। ८८-८९)

उसके बाद श्रीअनसूयाजीने पतिव्रता स्त्रियोंके धर्मका निरूपण किया है। स्त्रीके लिये पतिका अतिशय महत्व है। श्रीअनसूयाजी कहती हैं—हे राजकुमारी! सुनो, माता, पिता, भ्राता और हितकारी सब मितप्रद हैं—थोड़ा देनेवाले हैं—इनके देनेकी सीमा है; परन्तु पतिका दान असीम है।

मातु पिता भ्राता हितकारी।
मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बयदेही।
अधम सो नारि जो सेव न तेही॥

चार प्रकारकी पतिव्रताओंका निरूपण करके अन्तमें कहती हैं—हे सीते! आपका स्मरणमात्र करके स्त्रियाँ पातिव्रत धर्मका पालन करेंगी। आप तो रामप्राणवल्लभा हैं, यह कथा तो मैंने आपके व्याजसे जगन्मङ्गलके लिये कही है।

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित॥

श्रीसीताजीने उनको प्रणाम करके उनसे विदा ली।

श्रीअत्रिमुनिने श्रीरामजीकी पुनः श्लाघाकी उसमें दो पंक्तियाँ मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। महर्षि कहते हैं—हे रघुनन्दन! मैंने श्रीजीकी—श्रीलक्ष्मीजीकी चतुराई अब समझी कि उन्होंने सब देवताओंको छोड़कर आपका ही वरण क्यों किया था। श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि श्रीलक्ष्मीजीने बहुत सोच विचारकर अन्तमें अपने चिरअभीष्ट श्रीठाकुरजीको ही वरके रूपमें चुना, क्योंकि उनमें समस्त सद्गुण नित्य निवास करते हैं। प्राकृत गुण उनका स्पर्श नहीं कर सकते और अणिमा आदि समस्त गुण उनको चाहा करते हैं; परन्तु वे किसीकी अपेक्षा नहीं रखते। वास्तवमें श्रीलक्ष्मीजीके एकमात्र आश्रय श्रीमुकुन्दजी ही हैं। एतावता उन्होंने उन्हींका वरण किया।

एवं विमृश्याव्यभिचारिसद्गुणै-
र्वरं निजैकाश्रयतयागुणाश्रयम्।
वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं
रमा मुकुन्दं निरपेक्षमीप्सितम्॥

(श्रीमद्भागवत ८। ८। २३)

अब जानी मैं श्री चतुराई।
भजी तुम्हहि सब देव बिहाई॥

महर्षि अत्रिने श्रीरामजीको भारी मनसे विदा किया। वे कहते हैं—प्रभो! कैसे कहूँ कि आप चले जायँ। हे स्वामिन्! आपको छोड़नेका साहस नहीं होता है। कहते-कहते मुनिके नेत्रोंसे गङ्गा यमुनाकी धारा बहने लगी।

केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी।
कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी॥
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा।
लोचन जल बह पुलक सरीरा॥

इस प्रकार करुण वातावरणमें भारी मनसे महर्षिके श्रीचरणोंमें प्रणाम करके भगवान् दण्डकारण्यको प्रस्थान कर गये।

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा।
चले बनहि सुर नर मुनि ईसा॥

आगे चलनेपर विराध नामका राक्षस मार्गमें मिला। 'विराध' का अर्थ है जो संसारको सब प्रकारसे पीड़ा दे—कष्ट दे। ***'विराधयतिलोकान् पीडयतीति विराधः'*** अथवा **'विगतःराधः'** जो आराधनासे रहित हो उसे विराध कहते हैं। जो आराधना करता है उसका हृदय सरल हो जाता है; परन्तु यह आराधनासे सर्वथा दूर रहता है अतः यह निर्दय और कठोर है। किंवा, जिसे अस्त्रशस्त्रसे मारना कठिन हो उसे भी विराध कहते हैं। राक्षसने कहा—मेरा नाम विराध है अर्थात् संसारको कष्ट देना ही मेरा काम है। मैं निर्दय हूँ, आराधना मेरे जीवनमें नहीं है। किसी अस्त्र-शस्त्रसे मुझे भय नहीं है इसलिये तुम दोनों इस स्त्रीको यहाँ छोड़कर भाग जाओ, मैं तुम्हें नहीं मारूँगा।

उत्सृज्य प्रमदामेनामनपेक्षौ यथागतम्।
त्वरमाणौ पलायेथां न वां जीवितमाददे॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। ३। ७)

श्रीरामजीने क्रोधसे आँखें लाल करके उस पापी विराधसे कहा—अरे नीच! तुझे धिक्कार है। तेरा प्रयोजन नीच है; क्योंकि तू श्रीसीताजीको प्राप्त करना चाहता है; परन्तु तेरा यह प्रयोजन सफल नहीं होगा। हाँ, तेरा एक दूसरा भी अभिप्राय है कि तू अपनी मृत्यु खोज रहा है वह तुझे अवश्य मिल जायगी। अर्थात् मैं तुझे अवश्य मारूँगा।

क्षुद्र धिक् त्वां तु हीनार्थं मृत्युमन्वेषसे ध्रुवम्।
रणे प्राप्स्यसि संतिष्ठ न मे जीवन् विमोक्ष्यसे॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। ३। ९)

इसके पश्चात् श्रीलक्ष्मणने उसकी बायीं भुजा और श्रीरामने दायीं भुजा बड़े वेगसे भग्न कर दी—तोड़ डाली। फिर विराधके कथनानुसार श्रीलक्ष्मणने गड्ढा खोदकर उसके शरीरको उसमें डाल दिया। उस समय वह भयानक गर्जना कर रहा था। उस गड्ढेमें मिट्टी डालकर खूब कचरकर पाट दिया। इस राक्षसको मारना आसान नहीं था इसीलिये उत्तरकाण्डमें श्रीनारदजीने कहा है।

भुज बल बिपुल भार महि खंडित।
खर दूषन बिराध बध पंडित॥

(७। ५१)

मिला असुर बिराध मग जाता।
आवतहीं रघुबीर निपाता॥
तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा।
देखि दुखी निज धाम पठावा॥

विराधको गति देकर सुन्दर अनुज और

श्रीजानकीजीके साथ श्रीरामजी शरभङ्ग ऋषिके पास आये। महर्षि शरभङ्गजीका जन्म अति धन्य है; क्योंकि उनके पास श्रीरामजी स्वयम् आये अथवा श्रीरामजीके आनेपर मुनिके नेत्ररूपी भ्रमर श्रीरामचन्द्रजीके मुखारविन्दके मकरन्द रससुधाका समास्वादन करने लगे।

पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा।
सुंदर अनुज जानकी संगा॥
देखि राम मुख पंकज मुनिबर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग॥

श्रीशरभङ्गजीने कहा—हे रघुवीर! हे कृपालो! हे शङ्करमानसराजमराल! मेरे पास देवराज इन्द्र मुझे ब्रह्मलोक ले जानेके लिये आये थे; परन्तु हे नरशार्दूल! जब मुझे ज्ञात हो गया कि आप मेरे आश्रमके सन्निकट आ गये हैं तब मैंने निश्चय किया कि जब मेरे यहाँ स्वयम् पूर्णब्रह्म परमात्मा आ रहे हैं—प्रिय अतिथिके रूपमें आ रहे हैं तब उनका दर्शनानन्द समास्वादन किये बिना मैं ब्रह्मलोक नहीं जाऊँगा। ***'आवा नाग न पूजे बाँबी पूजन जाय'*** घरमें आये हुये नाग देवताको तो लगुड प्रहारसे मारनेवाले और दूध लावा थालीमें लेकर बाँबी पूजनेवालेको कोई बुद्धिमान् नहीं कहता है।

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला।
संकर मानस राजमराला॥
जात रहेउँ बिरंचि के धामा।
सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा॥
चितवत पंथ रहेउँ दिन राती।
अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥

हे रघुनन्दन! मैंने आजतक जितने भी कर्म किये हैं और उन कर्मोंके द्वारा ब्रह्मलोक, स्वर्गलोक आदि जितने लोकोंपर विजय प्राप्त की है, मेरे उन सभी लोकोंको अतिथि पूजाके रूपमें आप स्वीकार करें और मुझे अपनी भक्ति प्रदान करें।

जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा।
प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा॥

हे जनमनचोर! अब इस दीनके हित सम्पादन करनेके लिये आप तबतक यहाँ ठहरिये, जबतक मैं शरीर छोड़कर आपसे मिलूँ।

तब लगि रहहु दीन हित लागी।
जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी॥

श्रीशरभङ्ग मुनिने एक याचना और की—हे भक्तवाञ्छाकल्पतरो! श्रीसीता और अनुजके साथ नीलमेघश्याम श्रीराम सगुण रूपसे मेरे हृदयमें निरन्तर निवास कीजिये।

सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम॥

इतना कहकर मुनिने योगाग्निसे अपने देहको जला डाला और श्रीरामकृपासे वैकुण्ठको चले गये।

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा।
राम कृपाँ बैकुंठ सिधारा॥

श्रीशरभङ्ग ऋषिके आश्रममें अनेक ऋषि आये। वे शरभङ्गजीकी गति देख करके विशेष प्रसन्न हुये। समस्त मुनिवृन्द प्रभुकी स्तुति करते हैं 'हे प्रणत हितकारी करुणाकन्द! हे प्रभो! आपकी जय हो।'

रिषि निकाय मुनिबर गति देखी।
सुखी भए निज हृदयँ बिसेषी॥
अस्तुति करहिं सकल मुनि बृंदा।
जयति प्रनत हित करुना कंदा॥

इसके पश्चात् श्रीरामजी आगे वनमें चले। श्रेष्ठ मुनियोंके बहुतसे समूह श्रीरामजीके साथ चलने लगे। आगे हड्डियोंका समूह देखकर सर्वान्तर्दर्शी सर्वान्तर्यामी रघुनाथजीके मनमें करुणा उत्पन्न हो गयी। प्रभुने सब जान लिया, अतः दया आयी;

परन्तु नीतिकी रक्षा करनेके लिये मुनियोंसे अस्थि समूहके विषयमें पूछा।

पुनि रघुनाथ चले बन आगे।
मुनिबर बृंद बिपुल सँग लागे॥
अस्थि समूह देखि रघुराया।
पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया॥

मुनियोंने उत्तर दिया—हे स्वामिन्! हे समर्थ! हे राम! ये ऋषियोंके मस्तक हैं इन्हें राक्षसोंने खा लिया है। समाधिमें मग्न रहनेके कारण भागनेमें असमर्थ मुनीश्वरोंको भक्षण करनेके लिये राक्षस अवसर देखते हुये जहाँ-तहाँ घूमते रहते हैं।

तमूचुर्मुनयो राम ऋषीणां मस्तकानि हि॥
राक्षसैर्भक्षितानीश प्रमत्तानां समाधितः।
अन्तरायं मुनीनां ते पश्यन्तोऽनुचरन्ति हि॥

(अध्यात्मरामायण ३। २। २०, २१)

सुनकरके श्रीरघुबीर रामके नेत्रोंमें जल भर आये। साधारण व्यक्ति कभी जब अपनोंके दुःखसे दुःखित होता है तब कुछ कर डालता है। फिर ये तो रघुवीर हैं। आज प्रभुने राक्षसोंको मारनेकी भुजा उठाकर प्रतिज्ञा कर ली कि मैं पृथ्वीको राक्षसोंसे हीन कर दूँगा।

निसिचर निकर सकल मुनि खाए।
सुनि रघुबीर नयन जल छाए॥
निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

'भुज उठाइ पन कीन्ह' का भाव यह है कि भुजा उठाकर प्रतिज्ञा करनेकी परम्परा है।

पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल।

(१। २४९)

दूसरा भाव—पूज्यपाद काशीनिवासी पण्डित श्रीरामकुमारजीके एक दोहेमें अभिव्यक्त है।

इन बाहुन ते बध करब, बाहुत रूप बनाय।
युद्ध बाहु आधीन है इन्द्र बाहु के राय॥
बध करि उपर पठाइहौं पन करिबे की रीति।
बीरनमें भुज पूज्य है भुजन राखिहौं नीति॥

इन्द्र बाहुके देवता हैं, वे दुःखी हैं उनको अभय करूँगा। यह बाहु उठाकर जनाया। हाथ उठानेसे दूरतक सबको प्रतिज्ञा विदित हो जायगी, शब्द वहाँतक न सुनायी देगा। यह अभय प्रदान की मुद्रा है।

राक्षसोंके वधकी प्रतिज्ञा करके श्रीठाकुरजी मुनियोंके आश्रमोंमें गये। वनमें निवास करनेवाले सभी मुनि श्रीराम, सीता और लक्ष्मणजीको देख रहे हैं। आश्चर्यभूत, अदृष्टपूर्व, दिव्यरूप, दर्शनजन्य आनन्दमें बाधा न हो जाय, व्यवधान न हो जाय, इस भयसे आश्चर्य विस्फारित नेत्रोंसे अपलक दर्शनानन्द ले रहे हैं। भगवान्‌को देखते ही उनके जन्म-जन्मके भक्तिपूर्ण संस्कार जागृत हो गये और वे श्रीरामजीका अतृप्त नेत्रोंसे दर्शन करने लगे। निर्बाध और निर्व्यवधान दर्शन करने लगे। महर्षि लोग अपने प्रिय अतिथियोंको अपनी पर्णशालामें ले जाकर ठहराये। कन्द, मूल, फल, जलद्वारा आतिथ्य-सत्कार करके मुनिलोग आत्मनिवेदन करते हैं—हे श्रीरामजी! हमारा आपका सनातन सम्बन्ध है। प्रभुने कहा—हम तो अभी आ रहे हैं तब सनातन सम्बन्ध कैसे बनाया आपने? मुनियोंने कहा—हम आपके विषय—देशके वासी हैं। एतावता हम सदा आपके रक्ष्य हैं; क्योंकि दण्डकारण्यकी समस्त भूमि श्रीदशरथके ही अधिकार सीमामें है। हे प्रभो! आप केवल हमारे ही नहीं प्राणीमात्रके ईश्वर हैं—जनेश्वर हैं।

ते वयं भवता रक्ष्या भवद् विषयवासिनः।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। १। २०)

इसके बाद मुनियोंने एक बड़ी विलक्षण बात कही है। हे प्रभो! आप शाश्वत—निरन्तर हमारा परिरक्षण करें और स्वयं करें, हमारी रक्षा किसीसे करायें नहीं। प्रभुने कहा—मैं तो अपने भक्तोंकी रक्षा माँ की भाँति सदा ही करता हूँ।

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी।
जिमि बालक राखइ महतारी॥

(३। ४३)

मुनियोंने कहा—हे भक्तवत्सल प्रभो! माता तो कभी-कभी अपना दायित्व धात्रीके ऊपर किंवा पिताके ऊपर डाल देती है, अतः हमें यह माता-पुत्रका भी सम्बन्ध स्वीकार नहीं है। आप तो हमारी रक्षा उस प्रकार करें जिस प्रकार गर्भिणी माता अपने गर्भकी रक्षा करती है। गर्भकी रक्षा तो माता ही करती है। मुनिलोग कहते हैं—हे अशरणशरण! हम तपोधन—तपस्वीलोग आपके गर्भस्थानापन्न हैं। अतः जैसे माता गर्भस्थ अर्भककी रक्षा स्वयं करती है उसी तरह आपको निरन्तर हमारी रक्षा स्वयं करनी चाहिए।

रक्षणीयास्त्वया शश्वद् गर्भभूतास्तपोधनाः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। १। २१)

इस प्रकार मुनियोंके आश्रमोंमें श्रीरामजी जाते हैं और जा-जाकर उन्हें सुख प्रदान करते हैं।

सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

इस प्रकार श्रीरामजी अनेक महात्माओंके यहाँ गये और सब जगह निवास किये। कहीं दस मास, कहीं एक वर्ष, कहीं चार मास, कहीं पाँच या छः मास, कहीं सात मास, कहीं आठ मास, कहीं तीन मास, कहीं साढ़े आठ मास और कहीं ग्यारह मास प्रभुने सुखपूर्वक निवास किया।

क्वचित् परिदशान् मासानेकसंवत्सरं क्वचित्॥
क्वचिच्च चतुरो मासान् पञ्च षट् च परान् क्वचित्।
अपरत्राधिकान् मासानध्यर्धमधिकं क्वचित्॥
त्रीन् मासानष्टमासांश्च राघवोन्यवसत्सुखम्।
तत्र संवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै॥
रमतश्चानुकूल्येन ययुः संवत्सरा दश।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। ११। २४—२७)

इस प्रकार मुनियोंके आश्रमोंपर रहते और अनुकूलता पाकर आनन्दका अनुभव करते हुए तथा समस्त मुनिजनोंको आनन्द प्रदान करते हुए श्रीरामजीके दस वर्ष व्यतीत हो गये। इस प्रकार सब मुनियोंको भाग्यवान् बनाते हुए श्रीरामजी श्रीसुतीक्ष्णजीके आश्रममें पधारे। श्रीसुतीक्ष्णजीका संक्षिप्त परिचय श्रीगोस्वामीजी दो पंक्तियोंमें देते हैं।

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना।
नाम सुतीछन रति भगवाना॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक।
सपनेहु आन भरोस न देवक॥

अगस्त्य मुनिके अनेक शिष्य थे उनमें ये सुजान थे। दूसरा परिचय इनकी बुद्धि कुशाग्रके समान तीक्ष्ण थी अतः इनका नाम सुतीक्ष्ण है किंवा कामादि विकार तथा संसारसे क्रूर और ज्ञान एवं भक्तिमें सुन्दर तीक्ष्ण कुशाग्र बुद्धिवाले हैं। इनकी तीसरी विशेषता है ***'रति भगवाना'*** अर्थात् श्रीरामजीके स्नेहसे इनका सरस अन्तःकरण था। चौथी विशेषता है।

'मन क्रम बचन राम पद सेवक' अर्थात् यह भगवान्‌के परम कृपापात्र थे।

मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई।
भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥

(१। २००)

इनकी पाँचवीं विशेषता है—

'सपनेहु आन भरोस न देवक' भगवान् श्रीरामने श्रीसुतीक्ष्णसे मुस्कराकर कहा—हे मुने! मैं यह जानता हूँ कि तुम्हारा चित्त मेरी उपासनासे निर्मल हो गया है और तुम्हारा मेरे अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है, इसीलिये मैं तुम्हें देखनेके लिये आया हूँ।

मुने जानामि ते चित्तं निर्मलं मदुपासनात्॥
अतोऽहमागतो द्रष्टुं मदृते नान्यसाधनम्।

(श्रीअध्यात्मरामायण ३। २। ३५-३६)

श्रीसुतीक्ष्णजीकी अभिलाषा और कार्पण्यताका वर्णन श्रीगोस्वामीजी करते हैं।

प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा।
करत मनोरथ आतुर धावा॥
हे बिधि दीनबंधु रघुराया।
मो से सठ पर करिहहिं दाया॥
सहित अनुज मोहि राम गोसाईं।
मिलिहहिं निज सेवक की नाईं॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं।
भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥
नहिं सतसंग जोग जप जागा।
नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधान की।
सो प्रिय जाकें गति न आन की॥
होइहैं सुफल आजु मम लोचन।
देखि बदन पंकज भव मोचन॥

निर्भर प्रेम और अविरल भक्तिका लक्षण महाप्रेमी भक्त श्रीसुतीक्ष्णजीके चरित्रमें प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है।

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी।
कहि न जाइ सो दसा भवानी॥
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा।
को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई।
कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥
अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई।
प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई॥

निर्भर प्रेमका प्रत्यक्ष चित्रण इन पंक्तियोंमें है। श्रीमद्भागवतमें श्रीप्रह्लादजी 'रति' अर्थात् रागानुगाभक्तिकी प्राप्ति होनेपर जो लक्षण भक्तके होते हैं उनका वर्णन करते हुए कहते हैं। इस भक्तिके प्राप्त होनेपर भक्तके समस्त बन्धन समाप्त हो जाते हैं और उसको उसी भक्तियोगके प्रभावसे अपने आराध्य श्रीहरिकी प्राप्ति भी हो जाती है। इसका निरूपण करते हैं—जब श्रीहरि अपनी इच्छासे अप्राकृत दिव्यविग्रह श्रीराम, श्रीकृष्ण आदिके रूपमें स्वीकार करते हैं तब अनेक प्रकारके अनुपम चरित्र करते हैं। ऐसे चरित्र करते हैं जो प्राकृत व्यक्ति नहीं कर सकता है। उस समय श्रीहरिके सर्वेश्वरत्व, सर्ववेदैकवेद्यत्व, सर्वशक्तित्व, सर्वात्मत्व, सर्वसमर्थत्व, सर्वज्ञत्व आदि अचिन्त्य गुणोंका बाललीला आदि मधुर मनोहर लीलाओंका, दसमुखविनाशन, सेतुनिर्माण आदिके द्वारा अनेक प्रकारके पराक्रमोंका प्राकट्य होता है। उनको सुनकरके अत्यन्त हर्षके कारण भक्तका शरीर रोमाञ्चकण्टकित हो जाता है, आनन्दाश्रुओंसे वह गद्गद हो जाता है, उसका कण्ठ आर्द्र हो जाता है, स्खलिताक्षरोंमें अपनी भावाभिव्यक्ति करता है, वह भी अच्छी तरह नहीं कर पाता है। उसी आवेगमें भक्त उच्चस्वरसे विरहके पदोंको गाने लगता है, गाते-गाते उसकी विरहवेदना विवृद्ध हो जाती है। वह अनुभव करता है—मेरे प्रियतम, प्राणधन मुझे दर्शन नहीं देते हैं, यह सोचते ही वह रुदन करने लगता है।

रोते-रोते ऐसा अनुभव करता है—'मेरे जीवनधन, मेरे जीवनसारसर्वस्व मुझसे मिलनेके लिये व्यग्र हैं' इस अनुभूतिसे ही आनन्दित होकर नृत्य करने लगता है।

उसकी सभी चेष्टाएँ लोकबाह्य हो जाती हैं। जैसे ग्रहग्रस्त—भूताविष्ट होनेपर व्यक्ति असम्बद्ध बात करता है। अङ्गोंको प्रकम्पित करता है, उसी प्रकारकी चेष्टाएँ वह भी करने लगता है। कभी-कभी सिसकियाँ भरकर करुणक्रन्दन करता है—मेरे प्राणनाथ! कहाँ चले गये मुझको छोड़कर, हे मेरे प्रियतम! तुम्हारे बिना मैं कैसे जीवन धारण करूँगा? हे दयामय! मुझ अकिञ्चनका उद्धार कीजिये। विलाप करते-करते जब थक जाता है तब एकान्तमें नेत्र निमीलित करके ध्यान करने लगता है। ध्यानमें तन्मय हो जाता है, ध्यानमें ही उसके मनमें दीनता समुत्पन्न होती है। उसे अनुभव होता है कि कोई स्नेही भक्त कृपा करें तो सम्भव है मेरे प्राणधन मुझे मिल जायँ। इसलिए जिसे भी सामने देखता है, उसे भगवद्दास समझकरके उसके चरण पकड़ करके कहता है—मुझे वरदान दो कि दयासागर दामोदर दयाकी दृष्टिसे मुझे देखें। कभी सोचता है—'यह लज्जा भगवन्नाममें सङ्कोच उत्पन्न करती है इसलिये इसका परित्याग करना चाहिए' तब लज्जाको तिलाञ्जलि देकर सर्वथा सङ्कोचको छोड़कर बार-बार दीर्घ निःश्वास लेकर हे हरे! रक्षा करो! हे जगत्पते! कृपा करो! हे नारायण! मुझे विपत्तिसागरसे उबारो! हे अच्युत! मेरी ओर दयादृष्टिसे निहारो! इस प्रकार करुण स्वरसे कहते-कहते रुदन करते हुए मूर्च्छित हो जाता है। भक्तियोगकी यही निष्पन्न अवस्था है। इस प्रकार भगवद्रतिकी निष्पन्नावस्थामें भक्तियोगनिष्ठ भक्तको सब कुछ मिल जाता है। वास्तविक लाभ तो यही है।

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्
वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि।
यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं
प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति॥
यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धस
त्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम्।
मुहुः श्वसन्वक्ति हरे जगत्पते
नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ॥

(श्रीमद्भागवत ७। ७। ३४-३५)

श्रीसुतीक्ष्णजीकी अभिलाषा पूर्ण हो गयी। उन्होंने श्रीराम, लक्ष्मण, सीता—तीनोंको अपने नेत्रोंके सामने खड़े देखा। मुनि प्रेममें मग्न होकर लकुटकी भाँति अपने आराध्यके श्रीचरणोंमें गिर पड़े। श्रीरामजीने अपनी विशाल भुजाओंसे उठाकर उनको अपने हृदयमें लगा लिया। लगाया ही नहीं अपितु बहुत समयतक अपने हृदयमें चिपकाये रहे। मानों कनक वृक्षसे तमालवृक्ष मिल रहा हो। दोनोंको वृक्ष कहनेका भाव यह है कि मिलकर प्रेमी और प्रियतम दोनों स्तम्भित हो गये—दोनोंकी जड़वत् स्थिति हो गयी। यह महाभावकी दशा है। भक्तके किंवा प्रेमीके जीवनकी यह चरम सफलता है।

आगें देखि राम तन स्यामा।
सीता अनुज सहित सुख धामा॥
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी।
प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी॥
भुज बिसाल गहि लिए उठाई।
परम प्रीति राखे उर लाई॥
मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला।
कनक तरुहि जनु भेंट तमाला॥

मिलनेके बाद निमेषोन्मेषवर्जित अपलक

नेत्रोंसे श्रीरामरूप-सुधारसका समास्वादन करने लगे। फिर धैर्य धारण करके श्रीसुतीक्ष्णजी सरकारको अपने आश्रममें ले आए और अनेक प्रकारसे उनकी पूजा की।

तब मुनि हृदयँ धीर धरि गहि पद बारहिं बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि पूजा बिबिध प्रकार॥

फिर भक्तवर श्रीसुतीक्ष्णने श्रीभगवान्‌की बड़ी भावपूर्ण और गम्भीर स्तुति की है। स्तुतिके अन्तमें श्रीसुतीक्ष्ण कहते हैं—यद्यपि आप निर्मल, व्यापक, अविनाशी और सबके मनमन्दिरमें निरन्तर निवास करनेवाले हैं। तथापि हे खरारि! हे श्रीराम! अनुज और श्रीजानकीके साथ वनमें विचरण करनेवाले आप इसी रूपसे मेरे मनरूपी काननमें निवास करिये।

जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी।
सब के हृदयँ निरंतर बासी॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी।
बसतु मनसि मम काननचारी॥

फिर श्रीसुतीक्ष्ण सोचने लगे कि काननचारी रूपकी अवधि चौदह वर्षकी है। उसमेंसे मात्र एक वर्ष बचा है, एक वर्षके अन्तमें लौटकर फिर तो ये श्रीअवधमें बसेंगे। अतएव पुनः दूसरा वर माँगते हैं—हे स्वामिन्! यद्यपि आप विशुद्ध, व्यापक, नाशरहित और सब प्राणियोंके हृदयमें निरन्तर निवास करनेवाले हैं। हे प्रभो! जो आपको सगुण, निर्गुण और उरअन्तर्यामीके रूपमें जानते हों वे उसी प्रकार जानें, परन्तु मेरे हृदयमें तो जो कोसलके राजा कमलनयन श्रीरामजी हैं वे ही अपना निवास बनायें।

जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी।
सगुन अगुन उर अंतरजामी॥
जो कोसल पति राजिव नयना।
करउ सो राम हृदय मम अयना॥

पहले कहा—***'बसतु मनसि मम काननचारी'*** काननचारी रूपकी अवधि चौदह वर्षकी है अतः दूसरा वर माँगते हैं कि अवध लौटनेपर फिर भूपरूपसे बसिएगा। पहले काननचारी रूपको बसानेके लिये मनको कानन कहा; परन्तु जब कोसलपति रूपसे बसनेका वर माँगा तब हृदयको भवन कहा; क्योंकि वनविहारीरूपसे तो वनमें ही विचरते हैं अतः वनमें ही रहेंगे और राजारूपके निवासके लिए भवन चाहिए, एतावता एक बार मनको वन, दूसरी बार भवन कहा। श्रीसुतीक्ष्णजी अब एक तीसरा वरदान माँगते हैं—हे रघुनन्दन! मेरा ऐसा अभिमान भूलकर भी न मिटे कि मैं श्रीरामजीका सेवक हूँ और श्रीरामजी मेरे स्वामी हैं।

अस अभिमान जाइ जनि भोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

'अस अभिमान' का भाव कि अन्य अभिमान जैसे विद्याका अभिमान, बलका अभिमान,ऐश्वर्यका अभिमान, पदका अभिमान और यौवनका अभिमान आदि सब नष्ट हो जायँ; क्योंकि उनके नष्ट हुए बिना जीवको सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

तुलसिदास मैं मोर गए बिनु जिय सुख कबहुँ न पावै।

परन्तु सेवकत्वका अभिमान सदा बना रहे, बना ही न रहे अपितु वृद्धिङ्गत हो—बढ़ता ही जाय। सेवकत्वके अभिमानके नष्ट होनेसे तो सेवकधर्मका ही नाश हो जाएगा एतावता यह अभिमान भूलकर भी न छूटे।

सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धान्त बिचारि॥
(७। ११९ क)

यह सेवकत्वका अभिमान तो भक्तिका प्राण है। श्रीहनुमानजी अपने स्वामीके चरणोंमें निवेदन करते हैं—हे नाथ! भव बन्धनको निवारण करनेवाली उस मुक्तिको मैं कदापि कथमपि नहीं चाहता हूँ; क्योंकि उसमें 'श्रीराम मेरे स्वामी हैं और मैं उनका दास हूँ' इस भावका विलोप हो जाता है।

भवबन्धच्छिदे तस्यै स्पृहयामि नयुक्तये।
भवान् प्रभुरहं दास इति यत्र विलुप्यते॥

श्रीसुतीक्ष्णकी स्थिति 'बालक सुत' की भाँति हो गयी है। बालकको ज्ञान तो रहता है कि हमें क्या करना चाहिए; परन्तु वह उचित शब्दोंमें अपने भावकी अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है। माता बालकके स्वभावसे उसके भावको तो जानती है; परन्तु उसके कलभाषणको—तोतलीवाणीको श्रवण करना चाहती है; क्योंकि उसको उसमें आनन्द मिलता है। बालक सुतीक्ष्ण समझते हैं कि मुझसे ठीक कहते नहीं बनता, अतः तीसरी बार प्रयत्न करते हैं। परन्तु तीसरी याचनामें तो सब कुछ छूट गया, कुछ और ही मुखसे निकल गया। सुतीक्ष्ण बालककी यह दशा देखकर माता—श्रीरामजी प्रसन्न हैं। उनसे अब रहा नहीं गया तो वह बालकको हृदयसे लगा लेते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि सेवक सेव्यभावसे भजनेवाला भोला अमानीदास भगवान्‌को अतिशय प्रिय है। ***'सेवक पर ममता अति भूरी।'***

सुनि मुनि बचन राम मन भाए।
बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए॥

'उर लाए' का भाव कि हम तो तुम्हारे हृदयमें रहेंगे ही तुम भी हमारे हृदयमें रहो। फिर प्रभु श्रीसुतीक्ष्णसे कहते हैं—हे सुतीक्ष्ण! हे मेरे निश्छल भक्त! तुम एक बार मेरे कहनेसे और माँग लो। हे मुने! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ तुम जो वर माँगोगे मैं तुमको वही दूँगा।

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही।
जो बर मागहु देउँ सो तोही॥

भगवान्‌की उदार वाणी सुनकर श्रीसुतीक्ष्णने कहा—हे रघुनन्दन! हे अपने भक्तोंको सुख देनेवाले! हे भक्तवाञ्छाकल्पतरो! आपको जो अच्छा लगे वही वर मुझे दीजिए। क्योंकि मैंने जीवनमें कभी किसीसे वरदान नहीं माँगा। हे प्रभो! मैं आपका निष्काम भक्त हूँ। मुझे समझ नहीं पड़ता क्या झूठा है और क्या सच्चा है।

मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा।
समुझि न परइ झूठ का साचा॥
तुम्हहि नीक लागै रघुराई।
सो मोहि देहु दास सुखदाई॥

मुनि कहते हैं झूठ और सचका ज्ञान मुझे नहीं; क्योंकि झूठ और सचका ज्ञान, ज्ञानसे सम्भव है और मुझे आपके स्वरूपका ज्ञान है नहीं एतावता आप अपने मनसे ही दें। श्रीभगवान् मुनिकी सरलता, निश्छलता देखकर बोले—हे सुतीक्ष्ण! तुम अविरल भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और समस्त गुणों तथा ज्ञानके भण्डार हो जाओ। श्रीसुतीक्ष्णने कहा—हे प्रभो! अब मुझे एक वरदान और दो। श्रीरामजीने कहा—अभी-अभी तो तुम कह रहे थे मुझे माँगना नहीं आता, मुझे झूठ-सचका ज्ञान नहीं है और तुरन्त ही माँगनेके लिये भी प्रस्तुत हो गये। तो अब ज्ञान कहाँसे आ गया? श्रीसुतीक्ष्णने कहा—मेरे स्वामी! अभी अभी आपने ही तो मुझे ज्ञान दिया है और सामान्य ज्ञान नहीं दिया है अपितु ज्ञाननिधान होनेका वरदान दिया है। उसी प्रभुप्रदत्त ज्ञानसे विचारकर

एक वरदान और माँग रहा हूँ। वह वरदान माँग रहा हूँ जो मुझे अतिशय प्रिय है। हे प्रभो! अनुज और जानकीजीके सहित धनुषबाणधारी श्रीरामरूप मेरे निष्कामहृदय गगनमण्डलमें निर्मल चन्द्रमाकी भाँति सदा निवास करें।

प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा।
अब सो देहु मोहि जो भावा॥
अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम॥

श्रीठाकुरजी मुनिके स्नेहमय वचनोंको सुनकर 'एवमस्तु' कहकर प्रसन्न होकर के श्रीअगस्त्य ऋषिके पास चले।

एवमस्तु करि रमानिवासा।
हरषि चले कुंभज रिषि पासा॥

इस पंक्तिमें 'रिषि' शब्द देकर यह बताया कि 'मन्त्र' पूछनेके लिये श्रीअगस्त्यके पास जा रहे हैं; क्योंकि ऋषि मन्त्रोंके द्रष्टा होते हैं। जब प्रभु चलने लगे तब श्रीसुतीक्ष्णने कहा कि हे स्वामिन्! मुझे अपने गुरुदेव श्रीअगस्त्य ऋषिका दर्शन किए हुए और इस आश्रममें आए हुए बहुत दिन हो गये हैं। भाव कि जब से आया तबसे आजतक गया ही नहीं। हे नाथ! अब मैं आपके साथ ही अपने श्रीगुरुदेवका दर्शन करने चलूँगा। हे नाथ! इसमें आपका कुछ निहोरा नहीं है। परम कृपालु श्रीरघुनन्दनने श्रीसुतीक्ष्णकी चतुराई देखकर बिहँसकर अर्थात् प्रसन्न होकर उन्हें साथमें ले लिया।

बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ।
भए मोहि एहिं आश्रम आएँ॥
अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं।
तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई।
लिए संग बिहसे द्वौ भाई॥

'चतुराई' हमारे साथमें चलकर गुरुदक्षिणाके रूपमें हमें देना चाहते हैं अन्यथा हमारे साथके बिना गुरुके पास क्यों नहीं जाते हैं, यही चतुराई है। इस सन्दर्भमें सन्त समाजमें एक कथा प्रचलित है—श्रीसुतीक्ष्णजीने गुरुऋणसे उद्धार होनेके लिए अपने गुरुदेव श्रीअगस्त्यसे गुरुदक्षिणा माँगनेका आग्रह किया। श्रीगुरुदेव अगस्त्यने कहा—मैं तुम्हें गुरुऋणसे उऋण कर रहा हूँ। फिर भी अत्यन्त हठ करनेपर श्रीगुरुदेवने कहा—गुरुदक्षिणामें श्रीसीतारामजीको लाकर हमें दर्शन कराओ और जबतक श्रीरामजी न आवें तबतक यहाँ न आना अर्थात् श्रीसीतारामजीके साथ ही आना। इसीलिये सुतीक्ष्ण कहते हैं ***'बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ।'*** ***'कृपानिधि'*** कहनेका भाव यह है—प्रभु कृपाके समुद्र हैं अत: कृपा करके साथमें ले लिया और बिना परिश्रमके गुरुऋण चुकानेका और मार्गमें इष्टके दर्शनों और सत्सङ्गका अवसर दिया।

मार्गमें अपनी अनुपम भक्तिका वर्णन करते हुए देवताओंके रक्षक श्रीरामजी अगस्त्य मुनिके आश्रमपर पहुँच गये। श्रीसुतीक्ष्णजी भगवान्‌को द्वारपर ही रोककर तत्काल गुरुदेवके पास जाकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके इस प्रकार कहने लगे। हे नाथ! कोसलेन्द्र श्रीदशरथजीके राजकुमार, सारे विश्वके आधारस्वरूप आपसे मिलने आये हैं।

पंथ कहत निज भगति अनूपा।
मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा॥
तुरत सुतीछन गुर पहिं गयऊ।
करि दंडवत कहत अस भयऊ॥

नाथ कोसलाधीस कुमारा।
आए मिलन जगत आधारा॥

दण्डवत् करके दक्षिणा दी जाती है अत: श्रीरामजीका आगमन सुनाया मानो गुरुदक्षिणामें रामजीको दिया। श्रीअगस्त्यजी श्रीरामजीका आगमन सुनकर तुरन्त अविलम्ब उठकर दौड़े और प्रभुको देखकर मुनिकी आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आए।

सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए।
हरि बिलोकि लोचन जल छाए॥

श्रीअगस्त्यजीके श्रीचरणोंमें दोनों भाइयोंने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। ऋषिने अत्यन्त स्नेहसे दोनों भाइयोंको हृदयसे लगा लिया।

मुनि पद कमल परे द्वौ भाई।
रिषि अति प्रीति लिए उर लाई॥

इसके पश्चात् श्रीअगस्त्यजीने आसनपर बिठाकर अनेक प्रकारसे प्रभुकी पूजा की और स्वयंको धन्य माना। मुनिके आश्रममें जितने मुनियोंके समूह थे वे सब श्रीठाकुरजीको देखकर अति प्रसन्न हुए। श्रीरामजी मुनिसमूहमें सबकी ओर सन्मुख ही बैठे हुए हैं। यहाँपर श्रीप्रभुने ऐश्वर्य प्रकट किया है कि सब महात्मा श्रीठाकुरको अपने सामने ही बैठे देख रहे हैं। पीठ किसीको दिखाई नहीं पड़ती। मुनिसमूह उनको इस प्रकार अपलक देख रहे हैं मानो चकोरोंका समुदाय शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाकी ओर देख रहा है। चन्द्रमाका पृष्ठ भाग किसीको दृष्टिगोचर नहीं होता है।

मुनि समूह महँ बैठे सन्मुख सब की ओर।
सरद इंदु तन चितवत मानहुँ निकर चकोर॥

श्रीरामजीने ऋषिसे कहा—हे प्रभो! आप तो सर्वज्ञ हैं, आपसे कुछ भी छिपा नहीं है, आपको ज्ञात है कि मैं आपके चरणोंमें क्यों उपस्थित हुआ हूँ। हे तात! अब आप मुझे वह मन्त्र किंवा परामर्श दें जिससे मैं मुनियोंसे द्रोह करनेवाले राक्षसोंका वध करनेमें समर्थ हो सकूँ।

तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं।
तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ।
ताते तात न कहि समझायउँ॥
अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही।
जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही॥

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि श्रीभरद्वाजसे मार्ग पूछा ***'नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं।'*** श्रीवाल्मीकिजीसे स्थान पूछा—

अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ।

और अब अगस्त्यजीसे मन्त्र पूछ रहे हैं। तीन ऋषियोंसे विभिन्न विभिन्न तीन प्रश्न किये। श्रीभरद्वाजसे मार्ग पूछा; क्योंकि उस समय जाना ही इष्ट था और भरद्वाजजी मार्ग जाननेमें परम प्रवीण थे। उनके विषयमें कहा गया है—

तापस सम दम दया निधाना।
परमारथ पथ परम सुजाना॥

(१। ४४)

महर्षि श्रीवाल्मीकिसे स्थान पूछा; क्योंकि भरतजीकी प्रतीक्षा करनी थी एतावता कुछ समय निवास करना अभीष्ट था और महर्षि निवास स्थान बनानेके परम चतुर शिल्पी हैं। उन्होंने रामायणका निर्माण किया अर्थात् रामके घरका निर्माण किया।

बंदउँ मुनि पद पंकजु रामायन जेहिं निरमयउ।

(१। १४)

सम्प्रति महर्षि अगस्त्यसे मन्त्र पूछ रहे हैं;

क्योंकि निशाचरहीन करनेकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं इसलिए निशाचरोंका वध अभीष्ट है। महर्षि अगस्त्यसे बढ़कर मन्त्र और कौन दे सकता है। अध्यात्मरामायणमें लिखा है कि जिस समय श्रीसुतीक्ष्ण अगस्त्याश्रममें पहुँचे उस समय वे अत्यन्त भक्तिपूर्वक अपने शिष्योंको राममन्त्रकी व्याख्या सुना रहे थे।

व्याख्यातराममन्त्रार्थं शिष्येभ्यश्चाति भक्तितः।
दृष्ट्वागस्त्यं मुनिश्रेष्ठं सुतीक्ष्णः प्रययौ मुनेः॥

(अध्यात्मरामायण ३। ३। ८)

महर्षि अगस्त्यरचित 'अगस्त्यसंहिता' तो प्रसिद्ध ही है जिसमें इस मन्त्रकी व्याख्या भी है। अतः इनसे बढ़कर मन्त्र कौन दे सकता था। श्रीभरद्वाजजीने मार्ग बतानेके लिये शिष्योंको बुलाया। महर्षि श्रीवाल्मीकिने श्रीठाकुरजीको स्थान बताया और श्रीअगस्त्यजीने राक्षसोंके वधके लिये मन्त्र बताया और परामर्श दिया।

भगवान् श्रीरामके वचनोंको सुनकर मुनिश्रेष्ठ श्रीअगस्त्यजी मुस्कराने लगे। भाव कि प्रभु समर्थ होकर भी असमर्थकी सी वाणीका प्रयोग कर रहे हैं किंवा मुस्कराये कि नरलीलाका कितना सुन्दर अभिनय कर रहे हैं। मुनिने प्रभुसे कहा—हे नाथ! आपने मुझसे क्या जानकर पूछा? हे पापोंके नाश करनेवाले रघुनन्दन! मैं तो सरकारके भजनके प्रभावसे ही आपकी किञ्चिन्मात्र महिमाको जानता हूँ।

मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी।
पूछेहु नाथ मोहि का जानी॥
तुम्हरेइँ भजन प्रभाव अघारी।
जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी॥

श्रीअगस्त्यजीने प्रभुसे वरदान माँगा—हे कृपानिधान! मैं आपसे इस वरकी याचना करता हूँ कि आप मेरे हृदयमें श्रीसीता, लक्ष्मणके साथ निवास करिये। अविरलभक्ति, वैराग्य, सत्सङ्ग और आपके श्रीचरणकमलोंका अटूट स्नेह मुझे उपलब्ध हो। यह अगस्त्य मुनिके द्वारा 'चतुर्धा-भक्ति' का उपदेश भी हुआ है।

यह बर मागउँ कृपानिकेता।
बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता॥
अबिरल भगति बिरति सतसंगा।
चरन सरोरुह प्रीति अभंगा॥

फिर अगस्त्यजीने श्रीरामजीको पञ्चवटी जानेका परामर्श दिया—हे प्रभो! एक परम मनोहर और पावन स्थान है, उसका नाम पञ्चवटी है। श्रीमान्से प्रार्थना है कि आप दण्डकारण्यको पवित्र करें और मुनिश्रेष्ठ श्रीशुक्राचार्यके शापका अपहरण करें। कल्पान्तरमें श्रीगौतम महर्षिका श्राप देना भी लिखा हुआ है।

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ।
पावन पंचबटी तेहि नाऊँ॥
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू।
उग्र साप मुनिबर कर हरहू॥

'पञ्चवटी' का वर्णन श्रीहनुमन्नाटकमें बहुत सुन्दर है। श्रीलक्ष्मणजी भगवान् श्रीरामसे कहते हैं—हे रघुवंशशिरोमणे! वटके पाँच वृक्षोंका समूह यह पञ्चवटी हमारी कुटीके सर्वथा योग्य है। इन पाँच वट वृक्षोंकी जड़में सरस्वतीके पाँच कुण्ड हैं। यहाँ पथिकोंको जल, छाया आदि मिलती है। इसके दोनों ओर बड़ी सुन्दर भूमि है। यह स्त्री पुत्रादिकी मायामें फँसे हुए पुरुषोंके अशेष क्लेशोंको दूर करनेवाली औषधिकी वटिका है। इसके समीप ही गोदावरी नर्तन करती हुई चली आ रही

है। जिसके तटोंपर तरङ्गें उठ रही हैं। स्रोतोंमें कल्लोलनाद हो रहा है। पद्मगन्धकी तो यह गोदावरी मानो कुप्पी ही है। यह संसार सागरकी नौका है। साधारण कर्मोंसे प्राणियोंको इसका मिलना अत्यन्त कठिन है।

एषा पञ्चवटी रघूत्तमकुटी यत्रास्ति पञ्चावटी,
पान्थस्यैकघटी पुरस्कृततटी संश्लेषभित्तौ वटी।
गोदा यत्र नटी तरङ्गिततटी कल्लोल चञ्चत्पुटी,
दिव्यामोदकुटी भवाब्धिशकटी भूतक्रियादुष्कुटी॥

(श्रीहनुमन्नाटक ३। २२)

महर्षि अगस्त्यकी आज्ञा प्राप्त करके श्रीरामजी वहाँसे प्रस्थान करके शीघ्र ही पञ्चवटीके पास पहुँच गये।

चले राम मुनि आयसु पाई।
तुरतहिं पंचबटी निअराई॥

मार्गमें गीधराज श्रीजटायुसे भेंट हो गयी। उनसे प्रभुने अनेक तरहसे प्रेम बढ़ाया।

गीध राज सैं भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।

पञ्चवटी जाते समय मार्गमें श्रीरघुनन्दनको एक विशाल और भीमपराक्रम गृध्र अचानक मिल गया। श्रीरामजीने उससे पूछा '**को भवान्?**' आप कौन हैं? आपका परिचय क्या है? उत्तरमें श्रीरामजीको अति मधुर वाणी सुननेको मिली। गृध्रने बड़ी कोमल और मधुरवाणीमें कहा—हे वत्स! मुझे अपने पिताका मित्र समझो। इस वाक्यने श्रीठाकुरजीको प्रसन्न कर दिया—सन्तुष्ट कर दिया।

ततो मधुरया वाचा सौम्यया प्रीणयन्निव।
उवाच वत्स मां विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। १४। ३)

अब तो श्रीरामजीको अपने कर्तव्य निर्णय करनेमें विलम्ब नहीं लगा। यह मेरे पिताके मित्र हैं तो मेरे लिए पिताकी तरह पूज्य हैं। इनका आदर करनेके लिये पितृवत्सल श्रीरामजीको और कुछ पूछनेकी अथवा सुननेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई।

स तं पितृसखं मत्वा पूजयामास राघवः।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। १४। ४)

इसके अनन्तर श्रीजटायुने सृष्टिका इतिहास ही वर्णन कर दिया और अन्तमें कहते हैं—हे दशरथनन्दन! मैं विनतानन्दन गरुड़के अनुज अरुणका पुत्र हूँ। मेरा नाम जटायु है। हे तात! यदि आप चाहें तो मैं आपकी सहायता कर सकता हूँ। हे दशरथनन्दन! इस वनमें मृग और राक्षस बहुत हैं, वे आते जाते रहते हैं। यदि कभी आप लक्ष्मणके सहित कहीं चले जायेंगे तो उस समय मैं पुत्री सीताकी रक्षा करूँगा।

इदं दुर्गं हि कान्तारं मृगराक्षससेवितम्।
सीतां च तात रक्षिष्ये त्वयि याते सलक्ष्मणे॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। १४। ३४)

श्रीवाल्मीकीयरामायणके रामायणशिरोमणि टीकाकार लिखते हैं कि इन वचनोंसे श्रीजटायुकी त्रिकालज्ञता सूचित होती है। धन्य हैं श्रीजटायुजी, जिन्होंने आज अपने आराध्य एवं स्नेहभाजन श्रीरामजीसे मिलनेकी प्रथम वेलामें जो प्रतिज्ञा की उसका निर्वाह उन्होंने अपना प्राणार्पण करके किया है। श्रीजटायु इसके बाद '**सीतां च तात रक्षिष्ये**' इसी प्रतिज्ञाके लिये जिए और इसीके लिये मरे। तदनन्तर श्रीजटायुको श्रीरामजीने अपने कण्ठसे लगाकर बहुत सम्मान किया और पुत्रकी भाँति उनके सामने नतमस्तक हो गये।

श्रीगोदावरी नदीके तटपर प्रभुने पर्णशालाका

निर्माण करके निवास किया।

गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाइ॥

एक बार प्रभु सुखपूर्वक विराजमान थे उसी समय श्रीलक्ष्मणजीने बड़े प्रेमसे कहा—हे मेरे नाथ! मुझे वह उपदेश करें कि सबका त्याग करके मैं आपके श्रीचरणरजकी सेवा करूँ। हे देव! ज्ञान, वैराग्य, माया और भक्तिका निरूपण करें, जिससे आप कृपा करते हैं। हे प्रभो! ईश्वर और जीवका भेद भी समझाकर कहें। जिसे सुनकर और जानकर आपके श्रीचरणोंमें रति हो तथा शोक, मोह और भ्रम नष्ट हो जाय।

एक बार प्रभु सुख आसीना।
लछिमन बचन कहे छलहीना॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं।
मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं॥
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा।
सब तजि करौं चरन रज सेवा॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया।
कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया॥
ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥

श्रीरामजी कहते हैं—हे तात! मैं तुम्हारे प्रश्नोंका थोड़ेमें ही और समझाकर उत्तर दूँगा। भाव कि इसकी व्याख्याका विस्तार बहुत है। अथवा समयके अनुसार कहूँगा। अथवा सर्वज्ञ प्रभु जानते हैं कि शूर्पणखा आनेवाली है उसके पहले सब कह दूँ। अथवा उत्तम वक्ताका लक्षण यही है कि गागरमें सागर भर दे। मैं और मेरा, तू और तेरा यही माया है, जिसने समस्त जीवोंको अपने वशमें कर लिया है। इन्द्रियों और इन्द्रियोंके विषय और जहाँतक मन जाय उस सबको माया जानो। उसके भी दो भेद हैं एक अविद्या दूसरी विद्या।

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई।
सुनहु तात मति मन चित लाई॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया।
जेहिं बस कीन्हें जीव निकाया॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई।
सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ।
बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥

सब लोग मायामें पड़े हैं, इसलिए सबसे पहले मायाको ही समझना चाहिए। अविद्या माया दुष्ट है और अत्यन्त दुःखरूपा है। जिस अविद्याके वशमें होकर जीव संसाररूपी कुएँमें पड़ा है।

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा।
जा बस जीव परा भवकूपा॥

'परा भवकूपा' का भाव यह है कि जीव स्वयं भवकूपमें पड़ा है। श्रीगोस्वामीजीने दोहावलीमें लिखा है—

हम हमार आचार बड़ भूरि भार धरि सीस।
हठि सठ परबस परत जिमि कीर कोसकृमि कीस॥

(श्रीदोहावलीजी २४३)

इस दोहेमें गोस्वामीजी मैं और मोर ही बन्धनका मूल है यह निरूपण करते हैं। हम—मैं का भाव अहंकार और हमार—ममकार और ममत्व अर्थात् अहंता और ममता जीवको भारी बोझाके समान है। इसलिए श्रीगोस्वामीजी कहते हैं ***'तुलसि मैं मोर गये बिनु जिव सुख कबहुँ न पावे।'*** इस अज्ञानात्मक वृत्तिके रहते ब्रह्मसुखका समास्वादन नहीं हो सकता है।

कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु।

(२। २२५)

इस अज्ञान बन्धनपर तीन उदाहरण देते हैं—तोता, रेशमकीट और वानर।

तोता—तोता फँसानेवाले दो खड़ी लकड़ी गाड़कर उनपर एक बेंड़ी लकड़ी रखते हैं और उसमें एक बाँसकी पोंगली पहना देते हैं। उसीमें कुछ नीचे लटकती हुई अनाजकी बाली लगा देते हैं। तोता बालीके लोभसे पोंगली पर बैठकर बालीके लिए नीचेकी ओर ज्यों ही झुकता है, त्यों ही वह पोंगली घूम जाती है, वह तोता लटक जाता है, और नीचे गिरनेके भयसे अज्ञानवश पोंगलीको नहीं छोड़ता, लटका ही रह जाता है। इतनेमें ही बहेलिया जाकर उसको पकड़ लेता है और पिंजड़ेमें बन्द कर देता है।

कोशकृमि—रेशमका कीड़ा अपने चारों ओर रेशमका गोला बनाकर स्वयं उसमें बन्द हो जाता है। रेशम निकालनेवाले उस गोलेको गर्म जलमें डाल देते हैं और वह कीड़ा उसीमें फटफटाकर मर जाता है।

वानर—एक सँकरे मुँहकी हण्डी, जिसमें बन्दरका खाली हाथ तो जा सकता हो पर भरी हुई मुट्ठी नहीं निकले—मिट्टीमें गाड़ दिया जाता है। उसमें चना आदिके दाने भर दिये जाते हैं। बन्दर उसमें हाथ डालकर मुट्ठी बाँध लेता है, फिर लोभवश वह मुट्ठी नहीं खोलता और न उसका हाथ ही निकल पाता है। इतनेमें ही मदारी आकर पकड़ लेता है। फिर गलेमें रस्सी बाँधकर उसे नचाता है। जीव ईश्वरका अंश है, इसलिए जीवको ईश्वरके सम्मुख रहकर उसकी सेवा करनी चाहिये। परन्तु यह जीव मायावश हो गया। तोतेके समान इसकी वृत्ति उलट गयी। रजोगुण और तमोगुण बगलकी लकड़ी हुए। सत्वगुण बीचकी लकड़ी और बुद्धि पोंगली हुई। जीव विषय रूपी बाली—चाराके लिए झुका। तब पोंगलीके समान बुद्धि भ्रमित हो गयी। बस, गर्भवासमें आकर तोतेके समान उलटा टँग गया। जन्मकालरूपी बहेलिएने संसाररूपी पिंजड़ेमें बन्द कर दिया। इस बन्धनका कारण इसकी 'अहंता' है। ईश्वरकी शरीररूपतासे अहङ्कारकर इसने अपनी स्वतन्त्र सत्ता मानी। फिर विषयपर वृत्ति गयी और उक्तरीतिसे बँध गया। रेशमके कीड़ेके समान इसने भी स्त्री, पुत्र, पौत्र आदि परिवारवृद्धिरूपी गोला बनाया। उसमें ममत्व करके 'हम हमार' की भावनामें आसक्त होकर बँध गया। दैहिक, दैविक और भौतिक तापरूपी तप्त जलमें फटफटाकर मरता है। वानरके समान संसाररूपी हण्डीमें विषयरूपी दानेके लोभसे इसने ममतारूपी मुट्ठी बाँध ली है, न मुट्ठी खोलता है और न उनसे आसक्ति छूटती है। कर्मरूपी मदारी तीनों ऋणरूपी तीनलरकी रस्सीमें इसका गला फँसाकर अनेक प्रकारके नाच नचाता है।

लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा-डोरि।

(श्रीविनयपत्रिकाजी १५८)

इस प्रकार हमारका बन्धन होता है। तीनों प्रकारके बन्धन इसने उन तोते आदिके समान स्वयं अज्ञानतासे मान लिये हैं। जब चाहें इन्हें छोड़ सकता है। इसे इस प्रकार समझना चाहिए कि मैं ईश्वर श्रीरामजीका ही शरीर हूँ अतः उनका सेवक हूँ और मेरे सम्बन्धकी वस्तुएँ भी उन्हींकी हैं। इस भावसे हम हमारका त्याग करके ईश्वरशरण होना चाहिये।

योऽहं ममास्ति यत्किंचिदिह लोके परत्र च।
तत्सर्वं भवतोरेव चरणेषु समर्पितम्॥

(नारदपाञ्चरात्र)

इस हम हमार से—मैं मोरसे छूटनेका यह उपाय है। अविद्याका प्रथम निरूपण करके तब विद्याका निरूपण करते हैं—इसी विद्यामायाके साहचर्यमें ज्ञान आदि भी कहे जायँ। जिससे श्रुतियोंमें कही हुई विद्याका भाव भी इससे अपृथक् रहे।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।

(ईशावास्योपनिषद् ११)

इसमें विद्यासे ज्ञानोपासनाका अर्थ है।

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं।
देख ब्रह्म समान सब माहीं॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने ज्ञानकी परिभाषामें पाँच श्लोक कहे हैं, मानहीनता, दम्भहीनता, अहिंसा, क्षमा, सरलता, आचार्योपासना, शौच, स्थिरता, आत्मविनिग्रह, इन्द्रियोंके भोगोंमें वैराग्य, अहङ्कारहीनता, जन्म मृत्यु जरा व्यधि एवं दुःखरूप दोषको बारबार देखना, मुझमें अनन्ययोगसे अव्यभिचारिणी भक्ति, अनासक्ति, पुत्र स्त्री घर आदि में अलिप्तता, इष्टानिष्ट प्राप्तियोंमें समचित्तत्त्व, एकान्तदेशके सेवन करनेका स्वभाव, जन समुदायमें अप्रीति, अध्यात्मज्ञानमें नित्यस्थिति और तत्त्वज्ञानके अर्थका दर्शन; यह सब ज्ञान है। इसके विपरीत जो है वह अज्ञान है।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥
असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु॥
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १३। ७-११)

इन श्लोकोंमें आरम्भमें '**अमानित्वम्**' है और अन्तमें '**तत्वज्ञानार्थदर्शनम्**' है। श्रीगोस्वामीजीने ज्ञानके निरूपणमें *'मान जहँ एकौ नाहीं'* से '**अमानित्वम्**' का ग्रहण किया है और अन्तमें *'देख ब्रह्म समान सब माहीं।'* से श्रीगीताजीका '**तत्वज्ञानार्थदर्शनम्**' कहकर श्रीगीताजीमें वर्णित ज्ञानके लक्षणोंको स्वीकार किया है।

कहिअ तात सो परम बिरागी।
तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥

जो संसारके पदार्थोंका त्याग करते हैं उन्हें 'वैरागी' कहते हैं और जो दिव्य पदार्थोंका परित्याग करते हैं वे 'परमवैरागी' पदवाच्य हैं। सिद्धि तीन गुणोंके त्यागके उदाहरण श्रीभरतजी हैं।

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।

(२। २३१)

विधि, हरि, हर ये तीनों गुणोंके क्रमशः रजोगुण, सतोगुण और तमोगुणके स्वरूप हैं। श्रीभरतने तीनोंकी सिद्धियोंको तृणके समान परित्याग कर दिया एतावता ये 'परमविरागी' हैं।

माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोक्ष प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव॥

जो मायाका—इस प्रपञ्चका स्वामी स्वयंको नहीं मानता है अपितु सबका स्वामी श्रीठाकुरजीको मानकर स्वयंको भगवान्का दास मानता है वही जीव है और जो बन्धन तथा मोक्षको देनेवाले,

सबसे परे और मायाके प्रेरक हैं वह ईश्वर हैं।

मोक्षप्राप्तिके साधनोंका निरूपण श्रीगोस्वामी करते हैं कि धर्मसे वैराग्य, वैराग्यसे योग, योगसे ज्ञान और ज्ञान मोक्षका प्रदाता है। इस प्रकार वेदोंने कहा है। इसमें कारणमाला अलङ्कार है।

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।
ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥

जीवनकी सच्ची सार्थकता तो श्रीरामजीको प्रसन्न करनेमें ही है। जीवका चरमलक्ष्य भी यही है। श्रीठाकुरजी शीघ्रातिशीघ्र जिस साधनसे प्रसन्न हो जायँ वही साधन सर्वश्रेष्ठ साधन है। श्रीठाकुरजी कृपा करके स्वयं कहते हैं कि जिससे मैं शीघ्र प्रसन्न होता हूँ वह मेरी भक्ति है, जो भक्तोंको सुखदायी है।

जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई।
सो मम भगति भगत सुखदाई॥

यहाँतक चार प्रश्नोंके उत्तरमें श्रीरामजी अपने ईश्वरत्वका सङ्गोपन करके उत्तर देते आये हैं। ***'मम माया' 'मम प्रेरित'*** इस प्रकारका प्रयोग नहीं किया है। परन्तु ***'बेगि द्रवउँ'*** इन शब्दोंका उच्चारण होते ही वे ऐसे द्रवित हो गये कि अपना दशरथनन्दनत्व भूल ही गये। उन्होंने अपना ब्रह्मत्व प्रकट कर दिया। आगे भी इस प्रसङ्गकी समाप्तिपर्यन्त इसी भावसे कहते हैं। ***'मम धर्म' 'मम लीलारति' 'मम गुन' 'मोरि गति' 'करउँ सदा विश्राम'*** इत्यादि। धन्य है! भक्तिकी महिमाको। जहाँ प्रेम उमड़ आता है वहाँ दुराव रखना असंभव हो जाता है। आगे श्रीरामजी भक्तिके महत्त्वका निरूपण करते हुये कहते हैं कि भक्ति सर्वथा स्वतन्त्र है, परमुखापेक्षी नहीं है। और सब ज्ञान, कर्म आदि स्वतन्त्र नहीं हैं। भक्ति स्वयं साधन एवं साध्यरूप है। ज्ञान विज्ञान भक्तिके अधीन हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा है कि भगवान् वासुदेवमें भक्तियोग करनेपर वह वैराग्य तथा अहैतुक ज्ञानको समुत्पन्न करता है।

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्॥

(श्रीमद्भागवत १। २। ७)

जैसे भोजन करते समय भोजनके प्रत्येक ग्रासके साथ चित्तका सन्तोष, शरीरका पोषण और भूखकी निवृत्ति ये तीनों काम एक साथ सद्यः सम्पादित होते हैं; वैसे ही श्रीभगवान्‌की शरण लेनेपर भगवान्‌की भक्ति, परमात्मतत्त्वका ज्ञान तथा सांसारिक विषयोंसे वैराग्य ये तीनों ही कार्य एकसाथ सम्पन्न होते हैं।

भक्तिः परेशानुभवो विरक्ति
रन्यत्र चैष त्रिक एककालः।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्यु
स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्॥

(श्रीमद्भागवत ११। २। ४२)

आगे श्रीरामजी कहते हैं—हे तात! भक्ति अनुपम और सुखकी मूल है। किंवा—भक्ति अनुपम सुखकी मूल है। यदि सन्त अनुकूल हों तभी भक्तिकी उपलब्धि होती है।

भगति तात अनुपम सुखमूला।
मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥

भाव यह है कि प्रभु कृपासे ही भक्ति मिलती है चाहे साक्षात् श्रीरामजीके द्वारा मिले, चाहे उनके ही अपरस्वरूप सन्तोंके द्वारा मिले। विशुद्ध सन्तका समागम भी श्रीठाकुरजीके कृपाके बिना सम्भव नहीं है।

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही।
चितवहिं राम कृपा करि जेही॥

(७। ६९)

इसके आगे भक्तिका साधन निरूपण करते हुये श्रीरामजी अपना हृदय प्रकट करके करुणाविगलित होकर कहते हैं कि हे लक्ष्मण! मेरे निरन्तर निवास और सदा विश्राम करनेके स्थानके विषयमें भी सुनो। मेरा गुण गाते हुये शरीर रोमाञ्चकण्टकित हो जाय, वाणी गद्‌गद हो जाय, नेत्रोंसे अश्रु प्रवाह होने लगे और काम आदि मद तथा दम्भसे जो रहित हो हे भैया! मैं निरन्तर उसके वशमें रहता हूँ।

मम गुन गावत पुलक सरीरा।
गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाकें।
तात निरंतर बस मैं ताकें॥

भगवान् श्रीहरि देवर्षि श्रीनारदसे कहते हैं—हे नारद! मेरा स्थायी पता सुन लें—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद् भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

आगे भगवान् श्रीराम भक्तोंके लिये महामूल्यवान्, महान् उपयोगी साधन बताते हैं—हे लक्ष्मण! वचन, कर्म और मनसे जिनको मेरा ही आश्रय है तथा मेरी ही आशा है और जो कामगन्धशून्य होकर मेरा भजन करते हैं उनके हृदय कमलमें मैं सदा विश्राम करता हूँ।

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥

श्रीरामजीके द्वारा निरूपित भक्तियोग सुनकर श्रीलक्ष्मणजीको परमसुख प्राप्त हुआ। वे प्रमुदित होकर श्रीरामजीके चरणोंमें प्रणाम करते हैं।

भगति जोग सुनि अति सुख पावा।
लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने राक्षसोंके वधकी प्रतिज्ञा तो कर ली थी; परन्तु युद्ध आरम्भ करनेका कोई सूत्र सामने नहीं दीख रहा था। शूर्पणखाने उस कार्यको आसान कर दिया।

ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि।

श्रीराम रावणके युद्धको मूर्तरूप शूर्पणखाने ही दिया। शूर्पणखाके परिचयमें उसको ***'रावन कै बहिनी'*** कहा है अर्थात् यह रावणकी ही भाँति स्वेच्छाचारिणी है। ***'दुष्ट हृदय'*** है इसीलिए इसको नागिन भी कहा है। सर्पिणी अतिशय दारुण हृदयकी होती है, स्वार्थपरायणा होती है; वह अपने पुत्रको भी खा जाती है **'पुत्रादिनीसर्पिणी'** कहा गया है। संसारकी परम्परा यह है कि माताओंका हृदय परम कारुणिक होता है, वे स्वयं भूखी रहकर भी पुत्रोंको भोजन कराती हैं; परन्तु सर्पिणी अपने पुत्रोंका भक्षण करके अपनी भूख मिटाती है। शूर्पणखाने अपनी इच्छापूर्तिके लिये सारे वंशका नाश कर दिया।

इसका विवाह मायावी राक्षस विद्युज्जिह्वके साथ हुआ था। रावणने उसका स्वयं वध कर दिया और शूर्पणखाको आश्वस्त करनेके लिये रावणने खर, दूषण और त्रिशिरा तथा चौदह हजार बलवान् राक्षसोंकी सेना देकर इसे जनस्थानका अधिकार दे दिया। इसके नख शूर्पके समान थे, इसलिये इसका नाम शूर्पणखा था। **'शूर्पवत् नखानि यस्याः सा शूर्पणखा।'** नखके भी अच्छे या बुरे अनेक प्रकारके गुण शास्त्रोंमें कहे गये हैं। इनमें शूर्पणखाका वर्णन खराब ही है। प्रायः शूर्पणखाएँ राक्षसी ही होती हैं। यह स्वछन्दचारिणी एवं बलवती थी। शूर्पणखाने स्वयं ही कहा है।

अहं प्रभावसम्पन्ना स्वच्छन्दबलगामिनी।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। १७। २५)

सूपनखा रावन कै बहिनी।
दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी॥

वह एक बार पञ्चवटी गई। उसके श्रीरामजीके पास जानेका कारण अध्यात्मरामायणमें बहुत अच्छा लिखा है कि शूर्पणखा एक बार पञ्चवटीके निकट गौतमी नदीके तटपर जगतीपति श्रीरामचन्द्रजीके पद्म, वज्र और अङ्कुशकी रेखाओंसे युक्त चरणचिह्नोंको देखकर वह उनके चरणोंके सौन्दर्यसे मोहित होकर कामासक्त होकर चरणचिह्नोंको देखती-देखती धीरे-धीरे श्रीरघुनाथजीके आश्रममें चली आई।

एकदा गौतमीतीरे पञ्चवट्याः समीपतः।
पद्मवज्राङ्कुशाङ्कानि पदानि जगतीपतेः॥
दृष्ट्वा कामपरीतात्मा पादसौन्दर्यमोहिता।
पश्यन्ती सा शनैरायाद् राघवस्य निवेशनम्॥

(अध्यात्मरामायण ३। ५। २-३)

पंचबटी सो गइ एक बारा।
देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥

श्रीरामलक्ष्मण दोनोंको देखकर विकल—कामातुरा हो गयी। यह इसके दुष्ट होनेका, कुलटा होनेका और व्यभिचारिणी होनेका प्रमाण है। वह सुन्दर रूप धारण करके श्रीरामजीके पास जाकर बहुत मुसकराती हुई बोली।

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई।
बोली बचन बहुत मुसुकाई॥

स्त्रीकी मुसकान, कटाक्ष, हावभाव पुरुषके लिये फन्दा होता है। एतावता मुसुकराकर बोली।

तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी।
यह सँजोग बिधि रचा बिचारी॥

शूर्पणखाकी श्रीरामजीमें कोटि-कोटि कन्दर्पदर्पदलनपटीयान् भुवनमोहन श्रीरामचन्द्रजीमें कामानुरक्ति देखकर उसकी मनःप्रवृत्तिका श्रीवाल्मीकिमुनि अपनी काव्यमयी भाषामें उपहास करते हैं। वे कहते हैं—इस दारुण बुढ़ियामें और श्रीरामजीमें कितना महान् अन्तर है। श्रीरामजीका सुशोभन मुखमण्डल है और यह राक्षसी दुर्मुखी है, श्रीरामजीका कटि प्रदेश अत्यन्त क्षीण है और यह राक्षसी महोदरी है, नगाड़ेकी तरह इसका पेट है। इसका कटिप्रदेश तो पेटमें ही विलीन हो गया है। श्रीरामजीकी कमलकी तरह बड़ी-बड़ी आह्लादित करनेवाली आँखें हैं और इस विकट नेत्री राक्षसीकी आँखें बिल्लीकी तरह हैं। श्रीरामजीके केश, सुचिक्कण, कुञ्चित, स्निग्ध और पतले हैं। इसके बाल ताँबेकी तरह रक्त वर्णके और लोहेके तारकी तरह कड़े हैं। श्रीरामजी प्रिय रूप हैं—प्रियदर्शन हैं जबकि इस राक्षसीका रूप वीभत्स और विकराल है। श्रीरामजीका स्वर स्निग्ध और गम्भीर है और यह राक्षसी भैरवस्वना है, फटे बाँसकी तरह बोलती है। श्रीरामजी नित्य तरुण हैं और शूर्पणखा हजारों वर्षकी बुढ़िया है। श्रीरामजी ऋजुभाषी हैं, शोभन एवं सरल भाषण कुशल हैं और यह दुष्टा मिथ्याभाषिणी और कुटिलभाषिणी है। श्रीरामजी सदाचार सम्पन्न हैं और यह महान् दुराचारिणी है। श्रीरामजी परस्त्रीको देखते भी नहीं हैं और यह तो संसारके सुन्दर पुरुषोंको पतिके रूपमें ही देखती है। श्रीरामजीको देखकर मनमें प्यार उमड़ता है और इसे देखकर मनमें घृणा उत्पन्न होती है।

सुमुखं दुर्मुखी रामं वृत्तमध्यं महोदरी॥
विशालाक्षं विरुपाक्षी सुकेशं ताम्रमूर्धजा।
प्रियरूपं विरूपा सा सुस्वरं भैरवस्वना॥
तरुणं दारुणा वृद्धा दक्षिणं वामभाषिणी।

न्यायवृत्तं सुदुर्वृत्ता प्रियमप्रियदर्शना॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। १७। ९-११)

उसकी बात सुनकर श्रीरामजीने श्रीसीताजीकी ओर देखकर कहा कि मेरा छोटा भाई कुमार है।

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता।
अहइ कुमार मोर लघु भ्राता॥

श्रीसीतीजीकी ओर देखनेका भाव यह है कि तेरा मन मुझको देखकर कुछ माना है; परन्तु मेरा मन तो इनको छोड़कर कहीं जाता ही नहीं है। अथवा—अभी तूने इनका नेत्र भरकर दर्शन नहीं किया है, अन्यथा पता चल जाता कि तू कितनी सुन्दरी है। इस प्रकार श्रीसीताजीकी ओर देखकर प्रभुने ***'न मो सम नारी'*** का उत्तर दिया। ***'अहइ कुआर मोर लघु भ्राता'*** का भाव कि तुमने केवल मुझको ही देखा है मेरा यह छोटा भाई तो कामदेवसे भी सुन्दर है। '**कुत्सितो मारो यस्मात् सः कुमारः।**' प्रभुकी बात सुनकर वह श्रीलक्ष्मणके पास गई। श्रीलक्ष्मणने उसे शत्रुकी बहन समझकर और प्रभुको देखकर उससे कोमल बचन बोले। ***'प्रभु बिलोकि'*** का भाव कि श्रीलक्ष्मणजीने उसकी ओर देखा ही नहीं। श्रीरामजीने श्रीसीताजीको देखकर उससे बात की और श्रीलक्ष्मणजीने प्रभुकी ओर देखकर बात की।

'नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी।' इस उपदेशका अनुपम उदाहरण दोनों भाइयोंने प्रस्तुत किया है।

सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा।
पराधीन नहिं तोर सुपासा॥

श्रीलक्ष्मण कहते हैं—मैं तो उन बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामजीका दास हूँ। मुझे अपना पति बनानेसे तुम्हें भी उनकी दासी बनना पड़ेगा। तुम्हारे लिए इससे अधिक दुःखकी बात और क्या होगी?

तामाह लक्ष्मणः साध्वि दासोऽहं तस्य धीमतः।
दासी भविष्यसि त्वं तु ततो दुःखतरं नु किम्॥

(श्रीअध्यात्मरामायण ३। ५। १६)

हे सुन्दरि! सेवक सुखकी चाह करे, भिखारी प्रतिष्ठा चाहे, व्यसनी धन और व्यभिचारी शुभ गति चाहे, लोभी यश चाहे और दूत अभिमानी होकर रहना चाहे तो ये प्राणी आकाशसे दुग्धदोहन करना चाहते हैं।

सेवक सुख चह मान भिखारी।
ब्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी॥
लोभी जसु चह चार गुमानी।
नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥

इतना सुनकर ही वह पुनः श्रीरामजीके पास गई और श्रीरामजीने पुनः उसे श्रीलक्ष्मणजीके पास भेजा। श्रीलक्ष्मणने कहा—तेरा वरण वही करेगा जो लज्जाको समाप्त कर देगा।

पुनि फिरि राम निकट सो आई।
प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई।
जो तृन तोरि लाज परिहरई॥

अब वह खिसियाई हुई श्रीसीताजीके पास आई और उसने अपना भयङ्कर रूप प्रकट कर दिया।

तब खिसिआनि राम पहिं गई।
रूप भयंकर प्रगटत भई॥

श्रीसीताजीको सभय देखकर श्रीरामजीने श्रीलक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण! ऐसी दुष्टा स्त्रियोंसे कभी बात भी नहीं करनी चाहिये। हे पुरुषसिंह! इस कुरूपा, पुंश्चली, अत्यन्त मतवाली और नगाड़ेकी तरह मोटे और लम्बे पेटवाली राक्षसीको

रूपहीन कर दो—इसकी नाक काट लो।

इमां विरूपामसतीमतिमत्तां महोदरीम्।
राक्षसीं पुरुषव्याघ्र विरूपयितुमर्हसि॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। १८। २०)

हे लक्ष्मण! विरूपा तो यह पहलेसे ही थी, मैंने तुम्हारे पास भेजा था कि सम्भव है तुम्हारी दास्य भक्तिके उपदेशको सुनकर यह सुधर जाय; परन्तु यह स्वामिनीको ही मारकर स्वामिनी बनना चाहती है। अब इसके लिए दण्ड ही एक उपाय है। प्रभुके आज्ञापालक श्रीलक्ष्मणने तत्काल उसको नाक कानसे रहित कर दिया।

सीतहि सभय देखि रघुराई।
कहा अनुज सन सयन बुझाई॥
लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि॥

नाक कान कटनेके पश्चात् वह विलाप करती हुई खरदूषणके पास जाकर बोली—अरे भाई! तेरे पौरुष और बलको धिक्कार है।

खर दूषन पहि गइ बिलपाता।
धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता॥

खरने उससे पूछा—यह अनर्थ किसने किया? तब उसने सब समझाकर कहा। इस प्रश्नके उत्तरमें शूर्पणखाके वाक्योंको श्रीवाल्मीकीयरामायणके अनुसार सुनें।

शूर्पणखा बोली—हे भैया! वनमें दो पुरुष आए हैं, जो तरुण हैं, रूपसम्पन्न हैं, सुकुमार हैं, महाबलवान् हैं, पुण्डरीकके समान—श्वेतकमलके समान उनकी विशाल आँखें हैं, वल्कलवस्त्र और मृगचर्म धारण किये हैं। फलमूलका आहार करते हैं, वे दोनों जितेन्द्रिय, तपस्वी और ब्रह्मचारी हैं। वे दोनों चक्रवर्ती नरेन्द्र अयोध्यानरेश श्रीदशरथजीके पुत्र हैं। उनके नाम राम और लक्ष्मण हैं।

तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ।
पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ॥
फलमूलाशनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ।
पुत्रौ दशरथस्यास्तां भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। १९। १४-१५)

इस प्रसङ्गमें एक बड़ा कुतूहलात्मक भावपूर्ण प्रश्न है—खरने पूछा था कि स्पष्ट बताओ कि तुम्हें कुरूप किसने किया। खरके इस प्रश्नका उत्तर इतना ही पर्याप्त था कि वे दोनों दशरथके पुत्र हैं। उनके नाम राम और लक्ष्मण हैं; परन्तु उसने तो श्रीरामजीके सौन्दर्यका और उनके गुणोंका वर्णन करना आरम्भ कर दिया, इसका क्या कारण है? इसका उत्तर देते हुए श्रीगोविन्दराजजी लिखते हैं—यद्यपि शूर्पणखाको नाक कान कटवाकर श्रीरामजीने उसे विरूप करवा दिया है; तथापि कान नाक कटानेपर भी उसके मनमें श्रीरामजीके प्रति वैराग्य नहीं उत्पन्न हुआ—उनसे राग समाप्त नहीं हुआ है। उसका मन अब भी काममोहातिशयसे परिपूर्ण है इसलिए अपने भाई और सचिव आदिकी उपस्थितिमें भी उसने अपने हृदयकी सच्ची बात ही कही है। उसको लज्जाका अनुभव भी नहीं हुआ। '**कामातुराणां न भयं न लज्जा।**' किं वा श्रीरामजीके प्रति अनुकूल भाव या प्रतिकूल भाव हो, जो एक बार उनका दर्शन कर लेता है उसका यह स्वभाव ही हो जाता है कि वह उनकी निन्दा नहीं कर सकता है। निन्दा भी करेगा तो उसमें प्रशंसा छिपी रहेगी। शूर्पणखाकी बात सुनकर उत्तेजित होकर चौदह हजार राक्षसोंकी सेना लेकर खर दूषण आदि श्रीरामके पास पहुँच गये।

धूरि भूरि नभ मंडल रहा।
राम बोलाइ अनुज सन कहा॥
लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर।
आवा निसिचर कटकु भयंकर॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी।
चले सहित श्री सर धनु पानी॥

श्रीगोस्वामीजीने कहा कि जब राक्षस श्रीरामजीके पास पहुँच गये, आकाश मण्डल धूलिसे परिपूर्ण हो गया तब श्रीरामजीने लक्ष्मणजीसे कहा—हे सुमित्रानन्दसंवर्धन! राक्षसोंकी विशाल सेना आ गयी है। युद्ध अवश्यम्भावी है एतावता तुम जनकनन्दिनीको लेकर पर्वतकी कन्दराओंमें चले जाओ। हे भाई! सावधान रहना। अपने स्वामीकी आज्ञा सुनकर श्रीलक्ष्मण हाथोंमें धनुष बाण लेकर भगवती श्रीजनकनन्दिनीके साथ पर्वतकी कन्दरामें चले गये।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने जब देखा कि शत्रुओंका समूह स्वयं चलकर मेरे पास आ गया है तब प्रभु प्रसन्न हो गये कि अब पृथ्वीके भारको अपहरण करनेका सुयोग स्वयं उपस्थित हो गया है। उन्होंने धनुषको सज्ज कर लिया।

देखि राम रिपुदल चलि आवा।
बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा॥

श्रीगोस्वामीजीने वीरेन्द्रमुकुटमणि श्रीरघुवीर रामके वीरवेषका बहुत सुन्दर वर्णन किया है—भगवान् श्रीरामने कठिन धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा करके धनुषको कन्धेपर लटका लिया तब दोनों हाथोंसे जटाएँ बाँधी। जटाओंका जूड़ा बाँधते हुये प्रभु कैसे सुशोभित हो रहे हैं जैसे नीलमके पर्वतपर अनेकों बिजलियोंसे दो सर्प लड़ रहे हों। मरकतशैल और श्रीरामजीका श्यामल शरीर, अनेकों बिजलियाँ और सुनहली जटाएँ, सर्प और हाथ दोनों परस्पर उपमान और उपमेय हैं। दोनों हाथोंसे जटाओंको पकड़कर बाँधते हैं, यही मानो दो सर्पोंका बिजलियोंसे लड़ना है। कमरमें तरकश कसकर अपनी आजानु लम्बिनी भुजाओंसे धनुषको पकड़कर और बाणको सुधारकर प्रभु इस तरह शत्रुओंको देख रहे हैं मानो गजराजोंका समूह देखकर सिंह उधर देख रहा हो।

कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यों।
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों॥
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै॥

राक्षस योद्धा बड़े वेगसे 'पकड़ लो, पकड़ लो' चिल्लाते हुये दौड़कर आ गये और उन्होंने श्रीरामजीको चारों ओरसे घेर लिया। जैसे उदयकालीन सूर्यको अकेला देखकर मन्देह नामक दैत्य घेर लेते हैं।

आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट।
जथा बिलोकि अकेल बाल रबिहि घेरत दनुज॥

भुवनविमोहन श्रीरामजीके सौन्दर्यका अद्भुत चमत्कार है कि मारने, काटने और लूटनेवाली राक्षसोंकी सेना श्रीरामछवि देखकर थकित—स्तम्भित हो गयी।

प्रभु बिोकि सर सकहिं न डारी।
थकित भई रजनीचर धारी॥

खरदूषणने अपने मन्त्रियोंको बुलाकर कहा—यह राजकुमार कोई मनुष्य जातिका अलङ्करण है। जितने भी नाग, राक्षस, देवता, मनुष्य और मुनि हैं, उनमेंसे हमने न जाने कितनोंको देखा, जीता और मौतके घाट उतार दिया है; परन्तु हे सब भाइयों! सुनो, हमने इस प्रकारका आकर्षक

सौन्दर्य कभी और कहीं जीवनमें नहीं देखा है। यद्यपि इन्होंने हमारी बहिनको नाक कान काटकर कुरूप कर दिया है तथापि ये मारने योग्य नहीं हैं; क्योंकि ये अनुपम पुरुष हैं। तुम लोग जाओ और उनसे कह दो कि अपनी छिपायी हुई भार्या हमें सद्यः दे दो और दोनों भाई जीवित घर लौट जाओ।

सचिव बोलि बोले खर दूषन।
यह कोउ नृपबालक नर भूषन॥
नाग असुर सुर नर मुनि जेते।
देखे जिते हते हम केते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई।
देखी नहिं असि सुंदरताई॥
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा।
बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥
देहु तुरत निज नारि दुराई।
जीअत भवन जाहु द्वौ भाई॥

दूतोंने जाकर श्रीरामजीसे खरदूषणका सन्देश कहा। श्रीरामजी सुनकर मुसकाकर बोले—हे राक्षसों! हम क्षत्रिय हैं, वनमें आखेट करते हैं और तुम्हारी भाँति दुष्ट मृगोंको तो खोजते फिरते हैं। हम बलवान् शत्रुको देखकर भयभीत नहीं होते हैं। एक बार यदि सामना हो जाय तो कालसे भी युद्ध कर सकते हैं। यद्यपि हम मनुष्य हैं; तथापि दानवोंके वंशका नाश करनेवाले और मुनियोंकी रक्षा करनेवाले हैं। बालक हैं; परन्तु खलशालक हैं—दुष्टोंको दण्ड देनेवाले हैं। यदि युद्ध करनेका सामर्थ्य न हो तो घर लौट जावो, समराङ्गणसे विमुख होनेवाले किसीको भी मैं नहीं मारता। समराङ्गणमें आकर कपट चतुराई करना और शत्रुपर दया दिखाना तो बहुत कायरता है। दूतोंने खरदूषणके पास जाकर तत्काल सब बातें कहीं, जिनको सुनकर खरदूषण जल भुन गया।

हम छत्री मृगया बन करहीं।
तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं।
एक बार कालहु सन लरहीं॥
जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक।
मुनि पालक खल सालक बालक॥
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू।
समर बिमुख मैं हतउँ न काहू॥
रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई।
रिपु पर कृपा परम कदराई॥
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ।
सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ॥

श्रीरघुवीर रामने अपनी युद्धनीतिकी स्पष्ट घोषणा की है कि शत्रुको कभी क्षमा नहीं करना चाहिये। आजके सन्दर्भमें इस प्रसङ्गका गम्भीरतासे मनन करना चाहिये। ***'रिपु पर कृपा परम कदराई'*** इस पङ्क्तिपर आजके राजनीतिज्ञोंको विचार विमर्श करना चाहिये। अस्तु, इतना कठोर उत्तर सुनकर खरदूषणका हृदय जल गया। यद्यपि उनके हृदयमें अत्यन्त दाह हुआ तथापि मारनेके लिये नहीं कहा अपितु कहते हैं पकड़ लो; क्योंकि प्रभुका सौन्दर्य अनुपम है, वे नरभूषण हैं, यह बात अब भी उनके हृदयमें हैं।

उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा।

उसके बाद बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। देवता और मुनि डर रहे हैं कि ये प्रेत चौदह हजार हैं और अयोध्यानाथ श्रीरामजी निपट अकेले हैं। देवताओं और मुनियोंको सभय देखकर मायानाथ

श्रीरघुनाथजीने अति कौतुक किया। समस्त राक्षस एक दूसरेको रामरूप देखने लगे और आपसमें ही लड़ करके लड़ मरे।

महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‌यो।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मर्‌यो॥

'राम राम' कहकर शरीर छोड़कर राक्षसोंने मोक्ष प्राप्त कर लिया।

राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान॥

आकाशमें दुन्दुभिध्वनि होने लगी। मुनिलोग जयध्वनि करके स्तुति करने लगे। देवतालोग नन्दनकाननके फूल बरषाने लगे।

हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान॥

युद्ध समाप्त होनेके पश्चात् श्रीलक्ष्मणजी श्रीसीताजीको ले आये। चरणोंमें पड़ते ही प्रभुने उन्हें उठाकर आनन्दसे ओत प्रोत होकर हृदयसे लगा लिया। श्रीसीताजी अत्यन्त अनुरागसे अपने विजयी प्राणाराध्यके, युद्धविजेता अपने प्राणप्रियतमके, महान् वीर रणधीर श्रीरामके श्यामल कोमल श्रीविग्रहका दर्शन कर रही हैं, आज दर्शन करके उनके नेत्र तृप्त नहीं हो रहे हैं।

तब लछिमन सीतहि लै आए।
प्रभु पद परत हरषि उर लाए॥
सीता चितव स्याम मृदु गाता।
परम प्रेम लोचन न अघाता॥

महर्षियोंको आनन्द प्रदान करनेवाले अपने शत्रुहन्ता प्राणेश्वरका दर्शन करके मिथिलेशनन्दिनी श्रीजानकीको अपार हर्ष हुआ। परमानन्दमें निमग्न होकर श्रीसीताजीने अपने स्वामीका आलिङ्गन किया। राक्षसोंका समूह मारा गया और मेरे स्वीमीको कोई क्षति भी नहीं पहुँची यह देखकर और जानकर श्रीजनकनन्दिनीको अतिशय परितोष हुआ।

तं दृष्ट्वा शत्रुहन्तारं महर्षीणां सुखावहम्॥
बभूव हृष्टा वैदेही भर्तारं परिषस्वजे।
मुदा परमया युक्ता दृष्ट्वा रक्षोगणान् हतान्।
रामं चैवाव्ययं दृष्ट्वा तुतोष जनकात्मजा॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। ३०। ३९-४०)

इस प्रकार खरदूषणका विनाश देखकर शूर्पणखाने समुद्र पार करके लङ्कामें जाकर रावणको भड़काया। वह अत्यन्त क्रोधपूर्वक रावणसे बोली—हे भ्रातः! तुमने देश कोषकी स्मृति ही विस्मृत कर दी है। तुम मदिरा पीकर दिन रात सोते रहते हो। तुम्हें खबर नहीं है कि तुम्हारे मस्तकपर शत्रु खड़ा हो गया है। नीति बिना राज्य, धर्मके बिना धन, श्रीहरिको समर्पण किये बिना सत्कर्म, विवेक उत्पन्न किये बिना विद्याध्ययन करनेसे परिणाममें मात्र श्रम ही हाथ लगता है। विषयासक्तिसे यति, कुमन्त्रसे राजा, मानसे ज्ञान और मदिरा पीनेसे लज्जा, विनयके बिना प्रीति और गुणोंके अभिमानसे गुणवान् जल्दी ही विनष्ट हो जाते हैं, इस प्रकारकी नीति मैंने विचारकोंसे सुनी है।

बोली बचन क्रोध करि भारी।
देस कोस कै सुरति बिसारी॥
करसि पान सोवसि दिन राती।
सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥
राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा।

हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ।
श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ॥
संग तें जती कुमंत्र ते राजा।
मान ते ग्यान पान तें लाजा॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी।
नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥

आगे शूर्पणखा पुनः कहती है—शत्रु, रोग, पावक, पाप, प्रभु और सर्प इनको छोटा नहीं समझना चाहिए। भाव यह है कि श्रीराम लक्ष्मण देखनेमें छोटे हैं; परन्तु बड़े प्रभावशाली हैं। इस प्रकार नीतिकी बातें कहते-कहते शूर्पणखा विलाप करती हुई रोने लगी कि अरे दशग्रीव! तेरे जीवित रहते क्या मेरी इस प्रकारकी दुर्दशा होनी चाहिए?

रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन॥
सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि अस गति होइ॥

तब रावणने पूछा कि तुम इधर उधरकी बात कह रही हो अपनी बात बताओ कि तुम्हारे नाक कान किसने काट लिए?

कह लंकेस कहसि निज बाता।
केइँ तब नासा कान निपाता॥

तब शूर्पणखाने आठ पंक्तियोंमें श्रीराम, लक्ष्मण, सीताका उदारतापूर्वक सुन्दर परिचय दिया, एक भी शब्द उसने ऐसा नहीं प्रयुक्त किया जिसमें श्रीरामजीका अपमान झलकता हो। अन्तमें कहती है—शोभाधाम रामके अनुजने मेरे नाक कान काटे हैं। उनके सङ्गमें एक श्यामा स्त्री है। ब्रह्माने उसे सँवारकर बनाया है। सौ करोड़—अनन्त रतियाँ उसपर न्यौछावर हैं।

सोभा धाम राम अस नामा।
तिन्ह के संग नारि एक स्यामा॥
रूप रासि बिधि नारि सँवारी।
रति सत कोटि तासु बलिहारी॥
तासु अनुज काटे श्रुति नासा।
---------- ---------॥

मेरे दुःख निवेदन करनेपर खरदूषणने उनसे युद्ध किया; परन्तु उन्होंने क्षणभरमें ही चौदह हजार सेनाके समेत उनका संहार कर दिया।

खर दूषन सुनि लगे पुकारा।
छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा॥

शूर्पणखाको समझाकर रावण अपने महलमें गया। उसे रातमें नींद नहीं आयी। रावण स्वार्थी है, उसे खर दूषणके वधकी चिन्ता नहीं है; उसे तो यह चिन्ता है कि वे मेरे समान बली थे, भगवान्‌के बिना उन्हें कौन मार सकता है?

खर दूषन मोहि सम बलवंता।
तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥

यदि भगवान्‌ने अवतार लिया है तो भवसन्तरणके दो उपाय हैं—युद्ध अथवा भजन। रावणने रातभर सोचकर निर्णय कर लिया—मैं हठपूर्वक उनसे शत्रुता करूँगा और उनके बाणोंसे मरकर भव पार हो जाऊँगा। मेरे तामसी शरीरसे भजन नहीं होगा। मन, कर्म, वचनसे मेरा दृढ़ निश्चय यही है। दूसरे ही क्षण रावणके मनमें सन्देह हो गया कि ये ईश्वर नहीं भी हो सकते हैं। ईश्वरके अतिरिक्त कोई और होगा तो मैं उसको जीतकर उसकी पत्नीका अपहरण कर लूँगा।

सुर रंजन भंजन महि भारा।
जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥

तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ।
प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥
होइहि भजनु न तामस देहा।
मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा॥
जौ नररूप भूपसुत कोऊ।
हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ॥

यह सोचकर रावण रथपर चढ़कर अकेला ही समुद्रके उस पार मारीचके पास गया।

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ।
बस मारीच सिंधु तट जहवाँ॥

रावण मारीचके पास अकेला क्यों आया? रावण चोरी और परीक्षा आदिमें कुशल था। शूर्पणखाने कहा था *'पुरुषसिंह बन खेलन आए।'* अतः उसने सोचा कि शिकार खेलने आए हैं तो हम मारीचको कपट मृग बना दें। बस, दोनों बातोंकी परीक्षा मिल जायेगी। यदि अवतारी हुए तो जान जायेंगे। यदि राजकुमार हुए तो उसके पीछे दौड़ जायँगे; किन्तु भगवान् देवकार्यके लिये मनुष्य बन गये, मृगके पीछे दौड़े। अकेला आया, क्योंकि प्राण देना है। प्राण देनेमें पलटनकी जरूरत नहीं होती।

अब एक रहस्यमयी लीला श्रीरामजी करने जा रहे हैं। श्रीशंकरजी उमासे कहते हैं—*'उमा'* सम्बोधनका अभिप्राय यह है कि तुमने जो यह कहा था कि—

जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई।
सोउ दयाल राखहु जनि गोई॥

(१। १११)

अब हम वही परम गोप्य रहस्यमयी कथा कहते हैं, उसे तुम सुनो। 'युक्ति' की परिभाषा यह है—जिस साधनसे थोड़े से ही परिश्रममें बड़े कार्यकी सिद्धि हो जाय और धर्ममार्गका विरोध न करना पड़े उसे कर्मकोविदलोग 'युक्ति' कहते हैं।

अल्पायासैरर्थसिद्धिर्धर्ममार्गोऽविरोधतः ।
येन संसाध्यते युक्तिः सा प्रोक्ता धर्म कोविदैः॥

प्रस्तुत प्रसङ्गमें अपनी प्रतिज्ञाको सत्य करना, पृथ्वीको निशाचरहीन करना साध्य है। बिना अपराधके रावणपर आक्रमण करना अधर्म मार्ग होगा। रावण जब श्रीसीताजीको छलसे ले जायगा तब लङ्कापर आक्रमण करना अधर्ममार्गके बिना ही साध्य हो सकता है। इसलिए प्रभुने यही कराने—करनेका निश्चय किया। अथच श्रीसीताजीको रावणका स्पर्श होना भी अधर्म होगा, साथ ही यह भी सम्भव था कि श्रीसीता उसे अपने पातिव्रत्य तेजसे भस्म कर दें एतावता श्रीसीताका अग्निमें निवास और माया सीताका हरण करानेका निश्चय किया।

जब श्रीलक्ष्मणजी मूल फल कन्द लेनेके लिये वनमें गये तब कृपालु श्रीरामचन्द्रजी श्रीसीताजीसे हँसकर कहते हैं—हे प्रिये! हे व्रतरुचिरसुशीले! मैं कुछ ललित नरलीला करूँगा। जबतक मैं निशाचरोंका नाश करूँ तबतक तुम पावकमें निवास करो। श्रीसीताजीने अपना प्रतिबिम्ब वहाँ रखा और स्वयं प्रभुचरणोंको हृदयमें धारण करके अग्निमें प्रविष्ट हो गयीं। श्रीठाकुरजीके इस चरित्रका मर्म श्रीलक्ष्मणजी भी नहीं जानते थे।

इहाँ राम जसि जुगुति बनाई।
सुनहु उमा सो कथा सुहाई॥
लछिमन गए बनहि जब लेन मूल फल कंद।
जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद॥

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला।
मैं कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा।
जौ लगि करौं निसाचर नासा॥
जबहिं राम सब कहा बखानी।
प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता।
तैसइ सील रूप सुबिनीता॥
लछिमनहूँ यह मरमु न जाना।
जो कछु चरित रचा भगवाना॥

रावण मारीचके पास जाता है। मारीचने रावणकी पूजा करके पूछा—आप कैसे आए हैं? रावणने सब कथा सुनाकर प्रस्ताव रखा कि तुम छल करनेवाले कपट मृग बन जाओ जिससे मैं राजाकी स्त्रीका अपहरण कर लूँ।

होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी।
जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी॥

मारीचने रावणको अनेक प्रकारसे समझाया। उसने अपनी कथा सुनाकर श्रीरामके ईश्वरत्वका प्रतिपादन किया। ***'ते नररूप चराचर ईसा।'*** रावणने मारीचकी एक न सुनी, उल्टे उसको मारनेके लिये समुद्यत हो गया तब मारीचने सोचा कि यदि मृग नहीं बनता हूँ तो यह मुझे मार डालेगा और यदि इसकी आज्ञा पालन करके मृग बनता हूँ तो श्रीरामजीके हाथों मारा जाऊँगा। जब मारीचने दोनों प्रकारसे अपना मरण देखा, तब उसने श्रीराघवेन्द्र रामकी शरणमें जानेका निश्चय किया।

उभय भाँति देखा निज मरना।
तब ताकिसि रघुनायक सरना॥
उतरु देत मोहि बधब अभागें।
कस न मरौं रघुपति सर लागें॥

श्रीगोस्वामीजीने मारीचकी भावना और अभिलाषाका बहुत स्नेहिल चित्रण किया है। उसकी स्नेहिल भावनाको देखकर मारीचके स्थानपर उसका नवीन नामकरण ही कर दिया है ***'राम पद प्रेम अभंगा।'*** मारीचके मनमें महान् प्रसन्नता है कि आज मैं अपने परम प्रियतमका दर्शन करूँगा। आज मेरे नेत्र सफल हो जायेंगे।

अस जियँ जानि दसानन संगा।
चला राम पद प्रेम अभंगा॥
मन अति हरष जनाव न तेही।
आजु देखिहउँ परम सनेही॥
निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं॥

मारीच, दर्शन भी एक विशेष भङ्गीसे—विशेष प्रकारसे करना चाहता है—मारीच सोचता है कि श्रीरामजी हाथोंमें धनुष बाण लेकर मेरा पीछा पकड़कर दौड़ेंगे और मैं मुड़ मुड़कर बार बार प्रभुका दर्शन करूँगा। आज मुझसा धन्य कौन होगा?

मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन॥

अहा! मैं आज महान् धन्य हूँ! समस्त भक्तलोग श्रीरामजीके पीछे दौड़ते हैं और श्रीरामजी आज मेरा पीछा पकड़कर दौडेंगे। अत: ***'धन्य न मो सम आन।'*** मारीचका यह भी सौभाग्य है कि श्रीसीताजीने इसको देख लिया। श्रीसीताजीने प्रभुसे इसका चर्म लानेका आग्रह किया।

सीता परम रुचिर मृग देखा।
अंग अंग सुमनोहर बेषा॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला।
एहि मृग कर अति सुंदर छाला॥

सत्यसंध प्रभु बधि करि एही।
आनहु चर्म कहति बैदेही॥

श्रीरामजी तो प्रभु हैं—कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ हैं, सर्वं कर्तुं समर्थ हैं। इस मायावी मृगकी मृगछाला लानेमें भी समर्थ हैं। किं वा—प्रभु हैं, इसलिये उन्हें ज्ञात है कि यह मारीच राक्षस है, फिर भी देवताओंका कार्य सँवारनेके लिये प्रसन्न होकर उठे।

तब रघुपति जानत सब कारन।
उठे हरषि सुर काजु सँवारन॥

श्रीरामजीने श्रीलक्ष्मणसे समझाकर कहा—हे भ्रातः! वनमें अनेक राक्षस फिरते रहते हैं। तुम बुद्धि, विवेक, बल और समयका विचार करके सीताकी रक्षा करना।

प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई।
फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥
सीता केरि करेहु रखवारी।
बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥

भक्तवाञ्छाकल्पतरु श्रीरामजी मारीचकी अभिलाषाको पूर्ण कर रहे हैं। उसके पीछे हाथोंमें धनुष बाण लेकर दौड़ रहे हैं।

प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी।
धाए रामु सरासन साजी॥
निगम नेति सिव ध्यान न पावा।
मायामृग पाछें सो धावा॥

इस 'धावनि' का स्मरण अच्छे अच्छे महान् भक्तोंने किया है। भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी लिख रहे हैं।

मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्।

(श्रीमद्भागवत ११। ५। ३४)

श्रीहनुमन्नाटकमें लिखते हैं—एक हाथसे बाण घुमाते और दूसरे हाथसे धनुषको टङ्कारते पुष्पलतासे जटा पटलको बाँधकर श्रीरामचन्द्रजी वनके रास्तेमें मृगके पीछे पीछे दौड़े।

आन्दोलयन्विशिखमेककरेणसार्धं
कोदण्डकाण्डमपरेणकरेण धुन्वन्।
सन्नह्य पुष्पलतया पटलं जटानां
रामो मृगं मृगयते वनवीथिकासु॥

(श्रीहनुमन्नाटक ४। १)

प्रिया-बचन सुनि बिहँसि प्रेमबस गवहिं चाप-सर लीन्हें।
चल्यो भाजि, फिरि फिरि चितवत मुनिमख-रखवारे चीन्हें॥
सोहति मधुर मनोहर मूरति हेम-हरिन के पाछे।
धावनि, नवनि, बिलोकनि, बिथकनि बसै तुलसी उर आछे॥

(श्रीगीतावलीरामायण ३। ३)

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने मारीचके पीछे दौड़कर कठोर बाण मारा, वह घोर शब्द करके पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसने पहले लक्ष्मणजीका नाम लेकर बादमें मनमें श्रीरामजीका स्मरण किया। उसने अपने प्रेमको अभिव्यक्त नहीं किया। एतावता संसारकी दृष्टिमें तो वह दुष्ट ही रहा; परन्तु उसके आराध्यने—उसके परम प्रियतम श्रीरामने उसके स्नेहिल भावका समादर किया। उसका पीछा पकड़कर दौड़कर उसकी अभिलाषा पूर्ण की और उसके अन्तर्प्रेमको पहचानकर मुनि दुर्लभ गति भी प्रदान की। इसीलिये इस प्रसङ्गमें श्रीरामजीको 'सुजान' नामसे स्नेही कविने स्मरण किया है।

लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा।
पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा।
सुमिरेसि रामु समेत सनेहा॥

अंतर प्रेम तासु पहिचाना।
मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥

मारीचकी मृत्युके पश्चात् देवताओंने पुष्पवृष्टि भी की।

बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबंधु रघुनाथ॥

मारीचकी आर्तवाणी सुनकर श्रीसीताजी भयभीत हो गयीं। उन्होंने भयभीत होकर श्रीलक्ष्मणजीसे कहा—तुम शीघ्र जावो, तुम्हारे भाई श्रीरामजी महान् सङ्कटमें हैं। श्रीलक्ष्मणने हँसकर कहा—हे मातः! जिनके भृकुटिविलाससे सृष्टिका नाश हो सकता है उनका नाश कौन कर सकता है।

आरत गिरा सुनी जब सीता।
कह लछिमन सन परम सभीता॥
जाहु बेगि संकट अति भ्राता।
लछिमन बिहसि कहा सुनु माता॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई।
सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥

श्रीरामजीकी प्रेरणासे श्रीसीताजीके द्वारा मर्म बचन बोला गया और उन्हींकी प्रेरणासे ही श्रीलक्ष्मणजीका मन भी डोल गया अर्थात् उन्होंने श्रीसीताको छोड़कर रामजीके पास जानेका मन बनाया।

मरम बचन जब सीता बोला।
हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥

श्रीजानकीजीके कठोर वचनोंको सुनकर श्रीलक्ष्मणके रोंगटे खड़े हो गये; परन्तु धन्य हैं! श्रीलक्ष्मण, उन्होंने अपना धैर्य नहीं खोया। श्रीवाल्मीकिजीने गद्गद होकर उन्हें '**जितेन्द्रियः**' विशेषण दिया है। श्रीलक्ष्मणने बद्धाञ्जलि होकर कहा—हे देवि! मैं आपकी बातका प्रत्याख्यान नहीं कर सकता; क्योंकि आप मेरी स्वामिनी हैं।

अब्रवील्लक्ष्मणः सीतां प्राञ्जलिः स जितेन्द्रियः।
उत्तरं नोत्सहे वक्तुं दैवतं भवती मम॥

(श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण ३। ४५। २८)

श्रीलक्ष्मणने कहा—हे सुमुखि! अब मैं आपकी इच्छाके अनुसार वहीं जाता हूँ, जहाँ ककुत्स्थकुलके आभूषणस्वरूप श्रीरामजी गये हैं। आपका मङ्गल हो। इस वनके समस्त देवता आपकी रक्षा करें।

गच्छामि यत्र काकुत्स्थः स्वस्ति तेऽस्तु वरानने॥
रक्षन्तु त्वां विशालाक्षि समग्रा वनदेवताः।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। ४५। ३३-३४)

इस श्लोकमें 'वरानने' का भाव यह है कि यद्यपि आपने मेरे प्रति दुर्वचनोंका प्रयोग किया है तथापि आप मेरी माता हैं, इसलिये मेरी उन वचनोंके प्रति अन्यथा भावना नहीं है। मैं तो यह समझता हूँ कि आप जो कुछ कहेंगी वह मेरे कल्याणके लिये ही कहेंगी। इसी प्रकार 'विशालाक्षि' का भाव यह है कि हे मातः! आप मेरे ऊपर कृपादृष्टि बनाये रखें। जाते जाते अन्तमें पुनः कहते हैं—हे वनके देवताओं! हे दिशाओंके देवताओं! आज मैं अपनी माँको अकेली छोड़कर जा रहा हूँ। आपलोग इनकी सब प्रकारसे रक्षा करना।

बन दिसि देव सौंपि सब काहू।
चले जहाँ रावन ससि राहू॥

रावण इसी प्रतीक्षामें था कि लक्ष्मण जायँ तो मैं आऊँ। श्रीलक्ष्मणजीके जाते ही जब उसने एकान्त देखा तब यतिका वेष धारण करके आ गया।

सून बीच दसकंधर देखा।
आवा निकट जती कें बेषा॥

किंवा—शून्यके बीचमें अर्थात् रेखाके मध्यमें जब रावणने श्रीसीताको देखा तब रेखाके बाहर निकालनेके लिये यतिका वेष धारण करके आया। रावणने श्रीसीताजीसे कुछ अश्लील बातें कीं, तब श्रीसीताजीने कहा—हे यति गोसाईं! आप दुष्टकी भाँति वचनोंका प्रयोग क्यों कर रहे हैं?

कह सीता सुनु जती गोसाईं।
बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं॥

जब रावणने अपना स्वरूप प्रकट करके अपना नाम सुनाया तब श्रीसीताजी यद्यपि भयभीत होगयीं तथापि अतिशय धैर्य धारण करके बोलीं—अरे दुष्ट! ठहर जा, मेरे प्रभु आ ही रहे हैं। अरे रावण! जैसे सिंहकी स्त्रीकी क्षुद्र खरगोस कामना करे उसी प्रकार तुम्हारी मुझे प्राप्त करनेकी कामना है। हे पापी राक्षस! जैसे सूर्यकी प्रभाका कोई स्पर्श नहीं कर सकता उसी प्रकार तू भी मुझे स्पर्श नहीं कर सकता है। जैसे जम्बुक—सियारके लिये सिंहिनी दुर्लभ है उसी प्रकार तुम सियार—गीदड़ हो। मैं सिंहिनीके समान तुम्हारे लिये दुर्लभ हूँ।

त्वं पुनर्जम्बुकः सिंहीं मामिहेच्छसि दुर्लभाम्।
नाहं शक्या त्वया स्प्रष्टुमादित्यस्य प्रभा यथा॥

(श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण ३। ४७। ३७)

श्रीसीताजीने कहा—अरे राक्षस! जो अन्तर सिंह और शृगालमें है, जो अन्तर समुद्र और स्यन्दिका—छोटी नदीमें है, जो अन्तर अमृत और काँजीमें है, जो अन्तर स्वर्ण और काँचमें है, जो अन्तर चन्दनके सुवासित जल और दुर्गन्ध भरे कीचड़में है, जो अन्तर हाथी और बिलावमें है, वही अन्तर दशरथनन्दन श्रीराम और तुझमें है।

यदन्तरं सिंहसृगालयोर्वने
यदन्तरं स्यन्दनिकासमुद्रयोः।
सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदन्तरं
तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च॥
यदन्तरं काञ्चनसीसलोहयो-
र्यदन्तरं चन्दनवारिपङ्कयोः।
यदन्तरं हस्तिबिडालयोर्वने
तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च॥

(श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण ३। ४७। ४५-४६)

अरे रावण! जो अन्तर गरुड़ और काकमें है, जो अन्तर मयूर और जलकाकमें है, जो अन्तर हंस और गीधमें है वही अन्तर श्रीदशरथनन्दन राममें और तुझमें है।

यदन्तरं वायसवैनतेययो-
र्यदन्तरं मद्गुमयूरयोरपि।
यदन्तरं हंसकगृध्रयोर्वने
तदन्तरं दाशरथेस्तवैव च॥

(श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण ३। ४७। ४७)

श्रीसीताजीकी पातिव्रत्य निष्ठासे प्रभावित होकर रावण धर्षित हो गया, अतः उसका मस्तक झुक गया, उसने मनमें प्रणाम करके सुख माना।

सुनत बचन दससीस रिसाना।
मन महुँ चरन बंदि सुख माना॥

बहुतसे लोग रावणको श्रीरामजीका भक्त सिद्ध करते हैं। उनके सिद्ध करनेके लिये श्रीरामचरितमानसकी जो चौपाइयाँ कही जाती हैं उनमें यह चौपाई सर्वश्रेष्ठ है। इस चौपाईके देखनेसे आपाततः ज्ञात होता है कि रावण वास्तवमें मनसे रामभक्त था; परन्तु इस चौपाईके पूर्वापर विचार करनेपर रावणके भक्तिभावकी

पुष्टि नहीं होती है। इसी चौपाईमें पहले 'रिसाना' शब्द है और इसके तुरन्त बाद ***'क्रोधवंत तब रावन'*** पद है फिर बीचका भाव, भक्तिभाव कैसे सिद्ध हो सकता है? श्रीसीताजीकी निष्ठासे परिपूर्ण और फटकारभरी वाणी सुनकर उसके मनमें क्षणिक जो भाव आया वह भक्तिभाव नहीं है अपितु धर्षित होनेके कारण उसका मस्तक झुक गया और जीवनमें सर्वप्रथम किसी नारीकी निर्भीक वाणी सुनकर—ओजपूर्ण वाणी सुनकर एक क्षणके लिये उसके मनमें 'धन्य है' यह भाव आया; परन्तु स्वार्थ, भय, काम और क्रोधकी भावनामें बह गया। क्या इस क्षणिक भावको भक्तिभावकी संज्ञा दी जा सकती है? इसका स्वयं विचार करें। रावणने श्रीसीताजीको बलपूर्वक अपहरण करके रथपर बिठा लिया और लङ्काकी ओर चल पड़ा। मार्गमें श्रीसीताजी अत्यन्त करुण विलाप कर रही हैं। हे संसारके अप्रतिमवीर श्रीरामजी! आपने किस अपराधसे मुझपर दया भुला दी। हे दुःखहरण! हे शरणसुखदायक! हे रघुकुलरूपी कमलको विकसित करनेवाले दिवाकर! हा लक्ष्मण! तुम्हारा कोई दोष नहीं है। मैंने तुम्हारे प्रति जो अनुचित क्रोध किया उसका फल तत्काल मुझे मिल गया।

हा जग एक बीर रघुराया।
केहिं अपराध बिसारेहु दाया॥
आरति हरन सरन सुखदायक।
हा रघुकुल सरोज दिननायक॥
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा।
सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा॥

इसी प्रकार श्रीगोस्वामीजीने श्रीगीतावली रामायणमें भी श्रीसीताजीका अत्यन्त हृदयद्रावक विलाप लिखा है।

आरत बचन कहति बैदेही।
बिलपति भूरि बिसूरि 'दूरि गए मृग सँग परम सनेही'॥
कहे कटु बचन, रेख नाँघी मैं, तात छमा सो कीजै।
देखि बधिक-बस राजमरालिनि, लषन लाल! छिनि लीजै॥

(श्रीगीतावलीरामायण ३। ७। १-२)

श्रीहनुमन्नाटकमें भी श्रीसीताजी कहती हैं—हे राम! हे रमण! हे संसारके सर्वश्रेष्ठ वीर! हे नाथ! हे रघुपते! आप मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं? इस प्रकार बार-बार विलाप करती हुई श्रीसीताजीको लेकर रावण आकाशमार्गसे चला गया।

हा राम हा रमण हा जगदेकवीर
हा नाथ हा रघुपते किमुपेक्षसे माम्।
इत्थं विदेहतनयां मुहुरालपन्ती
मादाय राक्षसपतिर्नभसा जगाम॥

(श्रीहनुमन्नाटक ४। १४)

श्रीअध्यात्मरामायणमें श्रीसीता कहती हैं—हे रघुनन्दन! आपकी प्राणप्रिया भार्याको यह राक्षस हरण करके ले जा रहा है, आप छुड़ाइये। हे महाभाग लक्ष्मण! मुझ अपराधिनीको क्षमा करो। हे देवर! मैंने तुम्हें अपने वाग्बाणोंसे छेदा था, तुम मुझे क्षमा करना। श्रीसीताजीके इस प्रकार रुदन करनेसे श्रीरामके आगमनकी आशङ्का करता हुआ रावण उन्हें तीव्र गतिसे ले जा रहा है।

रक्षसा नीयमानां स्वां भार्यां मोचय राघव।
हा लक्ष्मण महाभाग त्राहि मामपराधिनीम्॥
वाक्शरेण हतस्त्वं मे क्षन्तुमर्हसि देवर।
इत्येवं क्रोशमानां तां रामागमनशङ्कया॥
जगाम वायुवेगेन सीतामादाय सत्वरः।

(श्रीअध्यात्मरामायण ३। ७। ६०—६२)

श्रीसीताजीके विलापको सुनकर जड़ चेतन सभी दु:खी हो गये।

सीता कै बिलाप सुनि भारी।
भए चराचर जीव दुखारी॥

गृध्रराज श्रीजटायुने श्रीसीताके करुण विलापको सुनकर उनकी आर्त्तवाणीसे जान लिया कि यह रघुकुल तिलक श्रीरामजीकी प्राणप्रिया पत्नी और मेरी पुत्रवधू मैथिलीकी वाणी है। वे तत्काल हे पुत्रि! भय न करो मैं इस राक्षसका नाश कर दूँगा यह कहते हुए दौड़े।

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा।
करिहउँ जातुधान कर नासा॥
तुलसिदास रघुनाथ-नाम-धुनि अकनि गीध धुकि धायो।
'पुत्रि पुत्रि! जनि डरहि, न जैहै नीचु, मीचु हौं आयो'॥

(श्रीगीतावलीरामायण ३। ७। ४)

श्रीहनुमन्नाटकमें भी श्रीजटायु क्रुद्ध होकर कहते हैं—हे पुत्रि सीते! डरो मत। यह दुष्ट मेरे सामनेसे दूर निकलकर नहीं जा सकता। अरे नीच राक्षस! रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नीको हरकर तू कहाँ भागा जाता है? अरे? अभी चोंचके प्रहारसे तेरी धमनियोंको तोड़कर तेरे चारों ओर लपकते हुए शिरोंकी बलि दिक्पालोंको दिये देता हूँ।

मा भैषी: पुत्रि सीते व्रजति मम पुरो नैष दूरं दुरात्मा
रे रे रक्ष: क्व दारान् रघुकुलतिलकस्यापहृत्य प्रयासि।
चंच्वाक्षेपप्रहार त्रुटित धमनिभिर्दिक्षु विक्षिप्यमाणै-
राशापालोपहारं दशभिरपि भृशं त्वच्छिरोभि: करोमि॥

(श्रीहनुमन्नाटक ४। १०)

जटायुने रावणसे कहा—रे रे दुष्ट! खड़ा क्यों नहीं होता? निर्भय चला जा रहा है मुझे नहीं जानता है। अरे परदारचोर! क्यों घबड़ाया हुआ दौड़ा चला जा रहा है। ठहर, मैं मलयाचलका निवासी जटायु आ गया हूँ। इस पतिव्रताको छोड़ दे, नहीं तो मेरे इस प्रचण्ड तुण्डाङ्कुशके क्रूर प्रहारसे हुए व्रणसे निकलते रुधिरवाले तेरे वक्ष:स्थलको नि:सन्देह गिद्ध, पान करेंगे।

रे रे भो: परदारचोर किमरेऽधीरं त्वया गम्यते,
तिष्ठाधिष्ठितचन्दनाचलतट: प्राप्तो जटायु: स्वयम्।
मुञ्चैनां पतिदेवतां न खलु चेन्मच्चण्डतुण्डाङ्कुश-
क्रूरावस्करणव्रणासृगुरस: पास्यन्ति गृध्रास्तव॥

(श्रीहनुमन्नाटक ४। ७)

श्रीजटायुके ललकारनेपर भी न रुकनेपर श्रीजटायुने पुन: उच्च स्वरसे ललकारकर कहा—अरे दशग्रीव! अरे रावण! ठहर, ठहर मात्र दो घड़ी ठहर, रुक जा, फिर देख, जैसे डण्ठलसे फल गिरता है, उसी प्रकार मैं तुम्हें उत्तम रथसे गिराये देता हूँ। अरे राक्षस! युद्धमें यथाप्राण—यथाशक्ति मैं तुम्हारा आतिथ्य करूँगा, तुम्हारी भेंट पूजा करूँगा।

तिष्ठ तिष्ठ दशग्रीव मुहूर्तं पश्य रावण।
वृन्तादिव फलं त्वां तु पातयेयं रथोत्तमात्।
युद्धातिथ्यं प्रदास्यामि यथाप्राणं निशाचर।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। ५०। २८)

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही।
निर्भय चलेसि न जानेहि मोही॥

श्रीजटायुके और निकट आनेपर रावणने कहा—मैंने जान लिया कि यह जरठ जटायु है। मेरे हाथरूपी तीर्थमें यह शरीर छोड़नेके लिए आ रहा है।

जाना जरठ जटायू एहा।
मम कर तीरथ छाँड़िहिं देहा॥

रावणकी यह बात सुनकर श्रीजटायु क्रोधातुर होकर दौड़े और बोले—हे रावण! मेरी शिक्षा सुनो, मेरी पुत्री जानकीको छोड़कर सकुशल चले जाओ नहीं तो हे बहुत भुजाओंवाले! श्रीरामके क्रोधरूपी अत्यन्त भयङ्कर पावकमें तेरा समस्त कुल शलभकी भाँति स्वाहा हो जायेगा।

सुनत गीध क्रोधातुर धावा।
कह सुनु रावन मोर सिखावा॥
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू।
नाहिं त अस होइहि बहुबाहू॥
राम रोष पावक अति घोरा।
होइहि सकल सलभ कुल तोरा॥

इसके पश्चात् रावण और श्रीजटायुका बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। एक बार तो श्रीजटायुने रावणके चङ्गुलसे श्रीसीताजीको मुक्त करा लिया और अपने स्थलपर रखकर पुनः लौटकर रावणसे भयानक युद्ध किया। युद्ध करके रावणकी तरह पराक्रमी वीरको एक दण्डतक मूर्च्छित कर दिया। उसके पश्चात् खिसियाए हुए राक्षसने परमकराल कृपाण निकालकर श्रीजटायुके पङ्ख काट डाले। इस प्रकार श्रीजटायु अद्‌भुत करनी करके श्रीरामजीका स्मरण करते हुए भूमिपर गिर पड़े। श्रीजटायुकी 'अद्‌भुत करनी' का वर्णन श्रीवाल्मीकीयरामायणमें और इस पदमें देखें—

फिरत न बारहिं बार पचार्‌यो।
चपरि चोंच-चंगुल हय हति रथ खंड खंड करि डार्‌यो॥
बिरथ बिकल कियो, छीनि लीन्हि सिय, घन घायनि अकुलान्यो।
तब असि काढ़ि काटि पर, पाँवर लै प्रभु-प्रिया परान्यो॥
रामकाम खगराज आजु लर्‌यो, जियत न जानकि त्यागी।
तुलसिदास सुर-सिद्ध सराहत, धन्य बिहँग बड़भागी॥

(श्रीगीतावलीरामायण ३। ८)

श्रीजटायुकी अद्‌भुत करनीका वर्णन श्रीहनुमन्नाटकमें इस प्रकार किया है—राक्षसेन्द्र रावणके रथके धुरेको तोड़ता है, ध्वजाको मरोड़ता है, बँधे हुए धुरेको कुचलता है, पहियोंको चूर-चूर करता है, घोड़ोंको घायल करता है, रोकता है, गर्जता है, भय दिखलाता है, तिरस्कार करता है, मार्गमेंसे निकलने नहीं देता है, रावणके शरीरपर चोटें करता है, उसके केशोंको खसोटता है, वस्त्रोंको फाड़ता है, उड़नेकी फुर्ती दिखलाते हुए रावणके प्रहारसे बचावके लिये अपना मस्तक नीचे कर लेते हैं और ऊपर उड़ जाते हैं।

अक्षं विक्षिपति ध्वजं दलयते मृद्‌नाति नद्धं युगं
चक्रं चूर्णयति क्षिणोति तुरगान् रक्षःपते पक्षिराट्।
रुन्धन्गर्ज्जति तर्जयत्यभिभवत्यालम्बते ताडय
त्याकर्षत्यवलुम्पति प्रचलति न्यंचत्युदंचत्यपि॥

(श्रीहनुमन्नाटक ४। ११)

दो घड़ीतक राक्षसराज और पक्षिराजमें घोर संग्राम हुआ तदनन्तर रावणने श्रीरामके लिये घोर युद्ध करनेवाले श्रीजटायुके पङ्ख, चरण तथा पार्श्व भागको तलवारसे काट डाला।

ततो मुहूर्तं संग्रामो बभूवातुलवीर्ययोः।
राक्षसानां च मुख्यस्य पक्षिणां प्रवरस्य च॥
तस्य व्यायच्छमानस्य रामस्यार्थे स रावणः।
पक्षौ पादौ च पार्श्वौ च खड्‌गमुद्‌धृत्य सोऽच्छिनत्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। ५१। ४१-४२)

महागृध्र श्रीजटायुजी रावणके द्वारा पंख काट दिये जानेपर पृथ्वीपर गिर पड़े।

काटेसि पंख परा खग धरनी।
सुमिरि राम करि अद्‌भुत करनी॥

रावण श्रीसीताजीको पुनः रथपर चढ़ाकर भयके कारण बहुत शीघ्रतासे चला। श्रीसीताजी विलाप करती हुई, करुणक्रन्दन करती हुई आकाश मार्गसे जा रही थीं उसी समय किष्किंधा

पर्वतपर बैठे हुए श्रीसुग्रीव आदि वानरोंपर कृपा की। उस समय श्रीसीताजीको कोई अपना नहीं दीख रहा था। कोई नाथ नहीं दीख रहा था—कोई आश्रय नहीं दीख रहा था। उसी समय किष्किंधा पर्वतके उत्तुङ्ग शिखरपर पाँच वानर श्रेष्ठोंको बैठे हुए देखा।

ह्रियमाणा तु वैदेही कंचिन्नाथमपश्यती।
ददर्श गिरिशृङ्गस्थान् पञ्च वानरपुङ्गवान्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। ५४। १)

उन वानरोंको देखकर विशाललोचना श्रीसीताजीने अपने सुनहरे रङ्गके उत्तरीयमें वस्त्राभूषण रखकर उन वानरोंके बीचमें डाल दिये कि सम्भवत: ये मेरे आराध्यसे कुछ समाचार कह सकें।

तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम्।
उत्तरीयं वरारोहा शुभान्याभरणानि च॥
मुमोच यदि रामाय शंसेयुरिति भामिनी।
वस्त्रमुत्सृज्य तन्मध्ये निक्षिप्तं सहभूषणम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। ५४। २-३)

श्रीसीताके इस कार्यको रावण नहीं जान सका क्योंकि वह बड़ी उतावलीमें था।

सम्भ्रमात्तु दशग्रीवस्तत्कर्म च न बुद्धवान्।

'विशालाक्षी' कहनेका यह भाव है कि श्रीसीताको इन वानरोंके हृदयकी श्रीराम भक्तिका देखते ही परिज्ञान हो गया। दूसरा भाव यह भी है इतनी दूरसे देखकर जान लिया कि पर्वतपर कोई बैठा है, यह भी सामान्य नेत्रोंका कार्य नहीं है। तीसरा भाव यह भी है कि करुणामयी श्रीकिशोरीजीने इन्हें देखकर इनके ऊपर अपनी कृपा कर दी। अब इनका सर्वविध कल्याण ही होगा। चौथा भाव यह भी है कि श्री सीताकृपाकटाक्षनिपातनसे भगवत्कृपा प्राप्तिकी योग्यता हो जाती है, अब ये वानरसमूह भगवान्‌की कृपाके पूर्ण अधिकारी हो गये। इस परिस्थितिमें भी करुणामयी श्रीमैथिली श्रीजटायुको कृतार्थ करके श्रीसुग्रीवादि पाँच वानरोंको कृतार्थ कर रही हैं। धन्य हैं!

जन्म जन्मके संस्कार सहसा जागृत हो जाते हैं। श्रीजानकीजीने तो अपनी सहज करुणासे इनपर कृपा की ही है; इन वानरोंने भी उच्चस्वरसे विलाप करती हुई विशालाक्षी। सीताजीको निमेषोन्मेषवर्जित अपलक नेत्रोंसे निहारकर अपनी भक्तिका संवर्द्धन किया है, इसको कहते हैं स्नेहिल संस्कार, श्रीसीताजी नभ मार्गसे जा रही हैं और ये वानर भूविकार भूधर पर बैठे हैं, वे शीघ्रतामें ले जाई जा रही हैं और ये स्थिर बैठे हैं, वे नर जातिकी हैं—नारी हैं, ये वानर हैं। फिर भी संस्कार प्रबल है; एतावता श्रीकिशोरीजीने कृपा करके इन्हें देखा और ये अपनी स्वामिनीके दु:खको निहारकर दु:खी हो रहे हैं।

पिङ्गाक्षास्तां विशालाक्षीं नेत्रैरनिमिषैरिव॥
विक्रोशन्तीं तदा सीतां ददृशुर्वानरोत्तमाः।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। ५४। ४-५)

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी।
कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी॥

'हरि' नाम कहकर वस्त्र गिरानेका भाव कि हे हरिगण! मैं हरी जा रही हूँ, जब हरि आवें तो उनसे मेरे अपहृत होनेका समाचार कहकर प्रार्थना करना कि मेरे अशेष क्लेशोंका अपहरण कर लें।

अनेक तरहसे भय और प्रीति दिखाकर रावण हार गया—लङ्काके राजमहलमें श्रीसीताजीको रखनेमें समर्थ नहीं हो सका। तब उसने अशोक वृक्षके नीचे यत्नपूर्वक रखा।

हारि परा खल बहु बिध भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ॥

नवाह्नपारायण छठा विश्राम

जिस प्रकार श्रीरामजी कपट मृगके साथ दौड़कर चले थे, वही छबि श्रीसीताजी अपने हृदयमें रखकर हरिनाम रटती रहती हैं।

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम॥

आइए, अब श्रीरामजीके पास चलें। श्रीरामजी श्रीलक्ष्मणजीको आते हुए देखकर चिन्तित हो गये। प्रभुने श्रीलक्ष्मणजीसे कहा—हे भैया! तुम श्रीसीताजीको अकेली छोड़कर, मेरी आज्ञाकी अवज्ञा करके यहाँ चले आए। राक्षसोंके समूह इनमें फिरते रहते हैं। मेरे मनमें तो ऐसा विचार आ रहा है कि सीता आश्रममें नहीं हैं।

रघुपति अनुजहि आवत देखी।
बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी॥
जनकसुता परिहरिहु अकेली।
आयहु तात बचन मम पेली॥
निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं।
मम मन सीता आश्रम नाहीं॥

श्रीलक्ष्मणजीने व्याकुल होकर अपने स्वामीके श्रीचरण पकड़कर अपने हृदयका निवेदन बद्धाञ्जलि होकर एक वाक्यमें कर दिया 'हे नाथ मेरा कुछ दोष नहीं है।' धन्य हैं श्रीलक्ष्मण! किसीके ऊपर दोषारोपण नहीं करके स्वयंको निर्दोष कह दिया। दोष किसका है? यह स्वामी स्वयं निर्णय करें।

गहि पद कमल अनुज कर जोरी।
कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी॥

श्रीलक्ष्मणजीके साथ प्रभु गोदावरी तटपर स्थित अपने आश्रममें गये। आश्रमको श्रीजानकीसे रहित देखकर प्राकृत मनुष्यकी भाँति व्याकुल हो गये।

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ।
गोदावरि तट आश्रम जहवाँ॥
आश्रम देखि जानकी हीना।
भए बिकल जस प्राकृत दीना॥

श्रीजानकीसे हीन आश्रमका वर्णन श्रीगोस्वामीजी करते हैं।

सरित-जल मलिन, सरनि सूखे नलिन,
अलि न गुंजत कल कूजैं न मराल।
कोलिनि कोल किरात जहाँ तहाँ बिलखात,
बन न बिलोकि जात खग मृग माल॥
तरु जे जानकी लाए, ज्याये हरि-करि-कपि,
हेरैं न हुँकरि, झरैं फल न रसाल।
जे सुक-सारिका पाले, मातु ज्यों ललकि लाले,
तेऊ न पढ़त न पढ़ावैं मुनिबाल॥
समुझि सहमे सुठि, प्रिया तौ न आई उठि,
तुलसी बिबरन परन-तृन-साल।
औरे सो सब समाजु, कुसल न देखौं आजु,
गहबर हिय कहैं कोसलपाल॥

(श्रीगीतावलीरामायण ३। ९)

श्रीसीताशून्य आश्रम देखकर श्रीरामजी विलाप करने लगे—हा गुणोंकी खानि जानकी! हा रूप, शील, व्रत और नियममें पवित्र सीते! तुम कहाँ हो?

हा गुनखानि जानकी सीता।
रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥

श्रीलक्ष्मणजीने अनेक प्रकारसे प्रबोध किया तब श्रीरामजी लताओं और वृक्षोंकी पंक्तियोंसे पूछते हुए चले। प्रभु कहते हैं—हे खग! हे मृग! हे भौरोंकी पक्तियों! तुमने कहीं मृगनयनी सीताको देखा है?

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी।
तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥

हा सीते! हा जनकवंशवैजयन्ति! हा मेरे नेत्र चकोरोंकी नवचन्द्रलेखाके समान प्रीतिदायिनि! इस प्रकार कहकर फफक फफककर रोते विलपते पर्णशालाके ही चारों ओर घूमते हैं।

सीतेहि हा जनकवंशजवैजयन्ति
हा मद्विलोचनचकोरनवेन्दुलेखे।
इत्थं स्फुटं बहु विलप्यविलप्य राम
स्तामेव पर्णवसतिं परितश्चचार॥

(श्रीहनुमन्नाटक ५। ८)

फिर कहते हैं—हा जानकि! हा विकसित नीलकमलके समान नेत्रवाली! हा मेरे मनके कमल वनमें विचरणशील राजहंसि! हा प्रिये! यह देखो, मैं तुम्हारे वियोगानलमें दग्ध होकर दीन बना फिर रहा हूँ। हा हन्त! मैं तुम्हें कहाँ देखूँ?

हा जानकि प्रचलितोत्पलपद्मनेत्रे
हा मे मनःकमलकाननराजहंसि।
एष प्रिये तव वियोगजवह्निदग्धो
दीनं प्रयामि भवतीं क्व विलोकयामि॥

(श्रीहनुमन्नाटक ५। ९)

पुनः श्रीरामजी कहते हैं—अरे पर्वतस्थ वृक्षों! अरी हिलती हुई वनलताओं! मैं शोकाग्निदग्ध दशरथ तनय राम हूँ। क्या तुममें किसीने बिम्बोष्ठी, सुनयना, सुविपुलजघना, गजमुक्ताओंकी मेखला धारण किये हुए श्रीसीताको देखा है? न जाने मेरी प्राणेश्वरीको कौन ले गया? अरे तुम कौन हो? बताओ तो सही, तुम लोगोंमें से किसीने उसे देखा है?

रे वृक्षाः पर्वतस्थाः गिरिगहनलता वायुना वीज्यमाना
रामोऽहं व्याकुलात्मा दशरथतनयः शोकशुक्रेण दग्धः।
बिम्बोष्ठी चारुनेत्री सुविपुलजघना बद्धनागेन्द्रकाञ्ची
हा सीता केन नीता मम हृदयगता को भवान् केन दृष्टा॥

(श्रीहनुमन्नाटक ५। १०)

फिर विलाप करते हुए श्रीराम कहते हैं—व्यवधानके भयसे मैंने कभी गलेमें हार नहीं पहना, परन्तु इस समय मेरे और तुम्हारे मध्यमें कितने पहाड़, नदियाँ और वृक्ष आ पड़े हैं?

हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा।
इदानीमन्तरे जाताः पर्वताः सरितो द्रुमाः॥

(श्रीहनुमन्नाटक ५। २५)

फिर श्रीलक्ष्मणकी ओर देखकर विकलताका अभिनय करते हैं। श्रीराम—तुम कौन हो? श्रीलक्ष्मण—हे प्रभो! मैं आपका दास लक्ष्मण हूँ। हे नाथ! आपको क्या हो गया है? राम—हे तात! मैं कौन हूँ? लक्ष्मण—आप आर्य भगवान् कोसलेन्द्र हैं। श्रीराम—कौन आर्य? लक्ष्मण—वही राघवेन्द्र! श्रीराम—यहाँ निर्जन वनमें क्या कर रहा हूँ? लक्ष्मण—देवीकी खोज करते हुए इधर उधर घूम रहे हैं। श्रीराम—देवी कौन? लक्ष्मण—राजा जनककी पुत्री। श्रीराम पुनः रोते हुए कहते हैं—हा प्रिये जानकि! तुम कहाँ हो?

के यूयं वद नाथनाथ किमिदं दासोऽस्मि ते लक्ष्मणः
कोऽहं वत्स स आर्य एव भगवानार्यः स को राघवः।
किं कुर्मो विजने वने तत इतो देवी समुद्वीक्ष्यते
का देवी जनकाधिराजतनया हाहा प्रिये जानकि॥

(श्रीहनुमन्नाटक ५। १२)

इस प्रकार अनेक प्रकारसे विलाप करते हुए श्रीलक्ष्मणजीके साथ श्रीरामजीने आगे पड़े हुए अत्यन्त घायल, रक्तसे लथपथ, 'राम राम' इस प्रकार कहते हुए श्रीजटायुको देखा। वे श्रीरामजीके चरणोंकी रेखाओंका स्मरण कर रहे थे।

रटनि अकनि पहिचानि गीध फिरे करुनामय रघुराई।
तुलसी रामहि प्रिया बिसरि गई, सुमिरि सनेह-सगाई॥

(श्रीगीतावलीरामायण ३। ११। ४)

आगें परा गीधपति देखा।
सुमिरत रामचरन जिन्ह रेखा॥

उस समय श्रीजटायु अपने मनमें सोच रहे थे—हा हन्त! मैं तुम्हारे राज्यकी रक्षामें सहायता करूँगा। इस कथनके अनुसार मैं अपने मित्र महाराज दशरथके साथ मित्रता न निभा सका। हठपूर्वक पुत्री सीताको हरते हुए राक्षसेन्द्र रावणको न रोक सका और अन्तिम क्षणमें पुण्यात्मा श्रीरामचन्द्रका मुखचन्द्र भी न देख सका। हा हन्त! मुझ अभागे जटायुका यह जन्म ही निरर्थक व्यतीत हो गया।

न मैत्री निर्व्यूढा दशरथनृपे राज्यविषया
न वैदेही त्राता हठहरणतो राक्षसपतेः।
न रामस्यास्येन्दुर्नयनविषयोऽभूत्सुकृतिनो
जटायोर्जन्मेदं वितथमभवद्भाग्यरहितम्॥

(श्रीहनुमन्नाटक ४। १३)

इन्हीं भावोंका दर्शन श्रीगोस्वामीजीके शब्दोंमें करें—

मेरे एकौ हाथ न लागी।
गयो बपु बीति बादि कानन ज्यों कलपलता दव दागी॥
दशरथसों न प्रेम प्रतिपाल्यौ, हुतो जो सकल जग साखी।
बरबस हरत निसाचर पतिसों हठि न जानकी राखी॥
मरत न मैं रघुबीर बिलोके तापस बेष बनाए।
चाहत चलन प्रान पाँवर बिनु सिय-सुधि प्रभुहि सुनाए॥
बार-बार कर मींजि, सीस धुनि गीधराज पछिताई।
तुलसी प्रभु कृपालु तेहि औसर आइ गए दोउ भाई॥

(श्रीगीतावलीरामायण ३। १२)

कृपासागर श्रीरामजीने अपने कर कमलोंसे श्रीजटायुके मस्तकका स्पर्श किया। छबिधाम श्रीरामचन्द्रजीके दिव्यतापापनोदक, परम आह्लादक मुखचन्द्रसे निर्झरित स्नेहसुधारसका समास्वादन करके—नेत्र भरकर निहारकर श्रीजटायुके समस्त सन्ताप निवृत्त हो गये।

कर सरोज सिर परसेउ, कृपा सिंधु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने श्रीजटायुजीको अपनी गोदमें उठा लिया और अपने नेत्र नलिनोंके पवित्र स्नेहरूप जलसे मानों अर्घ्य दान किया। फिर भावविह्वल होकर कहने लगे—हे सुमित्रानन्दसंवर्धन! वनमें महाभाग श्रीजटायुके मिलनेके पश्चात् मुझे पूज्य पिताश्रीकी मृत्यु विस्मृत हो गयी थी; परन्तु कुटिल विधाता मेरे इस सुखको सहन नहीं कर सका; इसीसे आज उसने यह बड़ा प्रबल पक्ष नष्ट कर दिया।

राघौ गीध गोद करि लीन्हों।
नयन-सरोज सनेह-सलिल सुचि मनहु अरघजल दीन्हों॥
सुनहु लखन खगपतिहिं मिले बन मैं पितु-मरन न जान्यौ।
सहि न सक्यौ सो कठिन बिधाता, बड़ो पछु आजुहि भान्यौ॥

(श्रीगीतावलीरामायण ३। १२। १-२)

जब श्रीजटायुजीकी व्यथा निवृत्त हो गयी तब धैर्य धारण करके उन्होंने कहा—हे भवभय भञ्जन राम! सुनिये, मेरी यह दुर्गति रावणने की है, उसी दुष्टने श्रीजानकीजीका हरण किया है। हे गोसाईं! वह श्रीसीताजीको लेकर दक्षिण दिशामें गया है। मेरी पुत्री सीता कुररी पक्षीकी भाँति करुण क्रन्दन कर रही थी।

तब कह गीध बचन धरि धीरा।
सुनहु राम भंजन भव भीरा॥
नाथ दसानन यह गति कीन्ही।
तेहिं खल जनकसुता हरि लीन्ही॥
लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं।
बिलपति अति कुररी की नाईं॥

इन दो पंक्तियोंमें श्रीजटायुने पूर्ण वृत्तान्त

निवेदन कर दिया है।

सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हतम्।

(श्रीवाल्मीकिरामायण ३। ६७। १५)

श्रीजटायुने कहा—हे कृपासागर! आपके दर्शनोंके लिए मैंने प्राण रोक रखा था अब ये चलना चाहते हैं।

दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना।
चलन चहत अब कृपानिधाना॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे पितः! आप शरीरको बनाये रखिए। सुनकर श्रीजटायुने मुस्कराते हुए कहा—हे वत्स! मरते समय जिसका नाम मुखमें आ जानेसे अधम भी मुक्त हो जाता है वह मेरे नेत्रोंके सामने प्रत्यक्ष विद्यमान हैं फिर हे नाथ! अब मैं किस कामनाकी पूर्तिके लिये शरीर रखूँ।

राम कहा तनु राखहु ताता।
मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता॥
जा कर नाम मरत मुख आवा।
अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा॥
सो मम लोचन गोचर आगें।
राखौं देह नाथ केहि खाँगें॥
मेरे जान तात! कछु दिन जीजै।
देखिअ आपु सुवन-सेवासुख, मोहि पितु को सुख दीजै॥
दिब्य देह, इच्छा-जीवन जग बिधि मनाइ मँगि लीजै।
हरि-हर सुजस सुनाइ, दरस दै, लोग कृतारथ कीजै॥
देखि बदन, सुनि बचन अमिय, तन रामनयन जल भीजै।
बोल्यो बिहग बिहँसि रघुबर! बलि, कहौं सुभाय, पतीजै॥
मेरे मरिबे सम न चारि फल होंहि तौ, क्यों न कहीजै।
तुलसी प्रभु दियो उतरु मौन हीं, परी मानो प्रेम सहीजै॥

(श्रीगीतावलीरामायण ३। १५)

श्रीजटायुने गृध्र शरीरका परित्याग कर दिया और हरिका रूप धारण करके नेत्रोंमें आनन्दाश्रु भरकर स्तुति करने लगे। श्रीजटायुजीकी अत्यन्त भावपूर्ण स्तुति है। स्तुतिके अन्तमें वर याचना करते हैं—निरन्तर दासोंके वशमें रहनेवाले त्रैलोक्याधीश उत्तम श्लोक श्रीसीतानाथ रामचन्द्रजी मेरे हृदयमें निवास करें।

सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी॥

अविरल भक्तिकी वर याचना करके श्रीगृध्रराज हरिधाम पधार गये।

अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम।

श्रीजटायुके हरिधाम जानेके पश्चात् भक्तवत्सल श्रीरामचन्द्रजीने जटायु तीर्थमें जाकर समस्त पवित्र नदियोंका, तीर्थोंका आवाहन किया। इसका प्रमाण अद्यावधि उपलब्ध है। श्रीरामजीने कहा—हे लक्ष्मण! महनीय कीर्ति श्रीमान् राजा दशरथ जैसे मेरे मान्य और पूज्य थे वैसे ही ये पक्षिराज जटायु भी हैं।

राजा दशरथः श्रीमान् यथा मम महायशाः।
पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। ६८। २६)

श्रीरामजीने कहा—हे सुमित्रानन्दन! तुम लकड़ी लाओ, मैं मन्थन करके अग्नि प्रकट करूँगा और मेरे निमित्त प्राण त्याग करनेवाले पितृकल्प श्रीजटायुका दाह संस्कार करूँगा।

सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम्।
गृध्रराजं दिधक्ष्यामि मत्कृते निधनं गतम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। ६८। २७)

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने अपने हाथसे चिता तैयार करके जटायुके शरीरको चितापर रखकर दाह संस्कार किया। '**ददाह रामो धर्मात्मा।**' उनको सर्वोत्तम लोककी प्राप्ति करायी। तत्पश्चात्

श्रीराम लक्ष्मणने गोदावरी तटपर जाकर स्नान करके श्रीजटायुको तिलाञ्जलि दी।

ततो गोदावरीं गत्वा नदीं नरवरात्मजौ।
उदकं चक्रतुस्तस्मै गृध्रराजाय तावुभौ॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ३। ६८। ३५)

श्रीगोस्वामीजीने गीधराजके सन्दर्भमें अत्यन्त भावपूर्ण कई दोहे लिखे हैं। वे सभी दोहे भावुक भक्तोंके मनन करने योग्य हैं।

प्रभुहि बिलोकत गोद गत सिय हित घायल नीचु।
तुलसी पाई गीधपति मुकुति मनोहर मीचु॥
बिरत करम रत भगत मुनि सिद्ध ऊँच अरु नीचु।
तुलसी सकल सिहात सुनि गीधराजकी मीचु॥
मुएँ मरत मरिहैं सकल घरी पहरके बीचु।
लही न काहू आजु लौं गीधराजकी मीचु॥
मुएँ मुकुत जीवत मुकुत मुकुत मुकुत हूँ बीचु।
तुलसी सबही तें अधिक गीधराज की मीचु॥
रघुबर बिकल बिहंग लखि सो बिलोकि दोउ बीर।
सिय सुधि कहि सिय राम कहि देह तजी मति धीर॥

(श्रीदोहावली २२२-२२६)

तेहि की क्रिया जथोचित निजकर कीन्हीं राम॥

श्रीजटायुका अन्तिम संस्कार करके श्रीरामजी दण्डकारण्यमें कौञ्चारण्यके नामसे प्रसिद्ध गहन वनमें चले गये। वहाँसे श्रीसीताजीको खोजते हुए मतङ्ग मुनिके आश्रमके पास पहुँच गये। वहाँपर उन्होंने एक चौड़ी छातीवाले राक्षसको देखा। वह देखनेमें तो विशालकाय था; परन्तु वह कण्ठ और मस्तकसे विहीन था। केवल कबन्ध—धड़मात्र ही उसका स्वरूप था, उसके पेटमें ही मुख था। इसीलिये इस राक्षसका नाम कबन्ध था। कबन्धने दोनों भाइयोंको अपनी भुजाओंमें कस लिया। दोनों भाइयोंने आपसमें परामर्श करके प्रसन्न होकर अपनी अपनी तलवारोंसे उसकी दोनों भुजाएँ स्कन्ध प्रदेशसे अलग कर दीं—काट दीं। दोनों भाई देशकालके जानकार थे अतः समयपर बुद्धिपूर्वक कार्य किया। उसने अपनी कथा सुनाई—पूर्व जन्ममें मैं गानकलाप्रवीण गन्धर्व था। मैं गा रहा था। मेरे गानपर श्रीदुर्वासा ऋषि प्रसन्न नहीं हुए, तब मैंने उन्हें सङ्गीत कलासे अनभिज्ञ कहकर उनका उपहास किया, इसपर मुनिने क्रुद्ध होकर शाप दे दिया कि तू राक्षस हो जा। हे प्रभो! सम्प्रति आपके श्रीचरणोंका दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया। महर्षिका शाप समाप्त हो गया।

आवत पंथ कबंध निपाता।
तेहिं सब कही साप कै बाता॥
दुरबासा मोहि दीन्ही सापा।
प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा॥

श्रीरामजीने कहा—हे गन्धर्व! मुझे ब्राह्मण-कुलका द्रोही अच्छा नहीं लगता। मन, बचन, कर्मसे कपट छोड़कर जो ब्राह्मणोंकी सेवा करता है; उसके वशमें मेरे समेत ब्रह्मा और शिवशङ्कर हो जाते हैं।

सुनु गंधर्ब कहउँ मैं तोही।
मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही॥
मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव॥

इस प्रकार कबन्धका उद्धार करके उदार चक्रचूड़ामणि श्रीरामचन्द्रजी श्रीशबरीजीके आश्रमपर पधारे।

ताहि देइ गति राम उदारा।
सबरी कें आश्रम पगु धारा॥

श्रीशबरीजीके गुरु श्रीमतङ्ग ऋषि थे। उन्होंने अपने उपदेशसे श्रीशबरीजीका जीवन सँवार

दिया। श्रीमतङ्ग ऋषिने शरीर छोड़नेकी इच्छा की यह जानकर उनके शिष्योंको क्लेश हुआ, अत्यन्त क्लेशके कारण शबरीजी करुणक्रन्दन करने लगीं। तब श्रीमतङ्गजीने कहा—हे श्रमणिके! तू दुःख न कर, भक्तवत्सल श्रीरामजी सम्प्रति चित्रकूटमें हैं वे यहाँ यथासमय अवश्य पधारेंगे। तू उनका प्रत्यक्ष दर्शन करेगी। भक्तवत्सल प्रभु जब तेरे घरमें पधारें, तब उनका प्रेमपूर्ण आतिथ्य करके अपना जीवन कृतकृत्य करना, तबतक तुम उनका चिन्तन करते हुए यहीं निवास करो।

इस प्रकार शबरीजीको आश्वासन देकर मतङ्गजी दिव्यलोक चले गये। इधर शबरीजी प्रभुके मङ्गलमय आगमनकी प्रतीक्षा करने लगीं। उत्तरोत्तर उनकी श्रीरामदर्शन लालसा बढ़ती जाती है। तनिक सी आहट सुनकर दौड़कर बाहर जाती हैं। बड़ी आतुरतासे पशु पक्षियोंसे पूछती हैं कि अभी मेरे आराध्य कितनी दूर हैं? मेरे यहाँ कब आयेंगे? मेरे स्वामीके सुकुमार श्रीचरणकमलोंमें कहीं कुछ गड़ न जाय एतावता मार्गसे काँटे कङ्कणोंको साफ करती हैं। वनमें जो फल अधिक स्वादिष्ट और मधुर लगता है वही श्रीरामजीके लिये बड़े प्रेमसे ले आती हैं। सूखे पत्ते वृक्षोंसे झड़कर नीचे गिरते हैं तब प्रेमोन्मत्ता शबरी अपने प्रियतम श्रीरामके श्रीचरणोंकी आहट समझकर दौड़ती हैं। इस प्रकार रात दिन उनका स्नेहिल चित्त श्रीरामजीमें रमा रहने लगा।

एक दिन किसीने बताया कि श्रीरामजी आ रहे हैं, सुनते ही श्रीशबरीजी दौड़ीं।

आगू चले राम आई आगू लेन सबरीहू,
चरन परन धाई वे मिलबे को धाए हैं।
गिरी दण्ड ही सी भुजदण्ड सों उठाय लीन्हों,
फिरि कै गिरी सो पुनि भुजि पसराये हैं॥
प्रेम दशा कही नहीं जात रघुराज दोऊ,
तन मन बचन की सुधि बिसराये हैं।
भले आप मिले मोहि भली मिली तोहूँ यह,
कहत दुहुन के भकारे भरि आये हैं॥
तन को सँभारि करि ताको मिलि बार बार,
वारिज बिलोचननि प्रेम बारि ढारि कै।
कर को पकरि तासु ताहि की कुटी को चले,
राम रघुराज मुनिमंडल बिसारि कै॥
पुनि पुनि पूछैं प्रभु तेरी कुटी केती दूर,
जामें हौ बसौंगो औध आनँद लौ वारिकै।
कोसला ते मिथिला ते कमला निवासहूँ ते,
पायो मैं सनेह सुख तोही को निहारि कै॥

आज श्रीशबरी अचानक अपने घर प्रभुको आया हुआ देखकर अपने गुरुदेवका वचन स्मरण करने लगी। जो उन्होंने परलोक जाते समय कहा था। श्रीशबरीकी यही विशेषता थी कि इतनी महती सफलताको प्राप्त करके भी इन्होंने यह नहीं समझा कि श्रीरामजी मेरी दृढ़ निष्ठासे, तपस्यासे किं बहुना प्रतीक्षासे रीझकर आये हैं अपितु उन्होंने यह समझा कि मेरे गुरुदेवका वचन सत्य करनेके लिये आये हैं।

सबरी देखि राम गृहँ आए।
मुनि के बचन समुझि जियँ भाए॥

स्नेहसे पुलकित होकर श्रीशबरीजी दोनों भाइयोंके श्रीचरणोंसे लिपट गयीं। वे प्रेममें मग्न हैं, उनके मुखसे वाणी नहीं निकल रही है।

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई।
सबरी परी चरन लपटाई॥
प्रेम मगन मुख बचन न आवा।
पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥

आदरपूर्वक श्रीचरणोंका प्रक्षालन किया और सुन्दर आसनपर बैठाकर अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्दमूल फल लाकर श्रीरामजीको समर्पण किया। प्रभुने बारम्बार प्रशंसा करके प्रेमपूर्वक खाया।

सादर जल लै चरन पखारे।
पुनि सुंदर आसन बैठारे॥
कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि॥

श्रीगोस्वामीजीने श्रीशबरीके प्रेमका अत्यन्त सरल और वात्सल्यपूर्ण वर्णन किया है।

दोना रुचिर रचे पूरन कंद-मूल, फल-फूल।
अनुपम अमियहुतें अंब अवलोकत अनुकूल॥
अनुकूल अंबक अंब ज्यों निज डिंब हित सब आनिकै।
सुंदर सनेहसुधा सहस जनु सरस राखे सानिकै॥
छन भवन, छन बाहर, बिलोकति पंथ भूपर पानिकै।
दोउ भाइ आये सबरिका के प्रेम-पन पहिचानिकै॥

(श्रीगीतावलीरामायण ३। १७। ३)

पद-कंज जात पखारि पूजे, पंथ-श्रम-बिरहित भये।
फल-फूल अंकुर-मूल धरे सुधारि भरि दोना नये॥
प्रभु खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनु जये।
फल चारिहू फल चारि दहि, पर चारि-फल सबरी दिये॥

(श्रीगीतावलीरामायण ३। १७। ५)

सुमन बरषि, हरषे सुर, मुनि मुदित सराहि सिहात।
केहि रुचि केहि छुधा सानुज माँगि माँगि प्रभु खात॥
प्रभु खात माँगत देत सबरी, राम भोगी जागके।
पुलकत प्रसंसत सिद्ध-सिव-सनकादि भाजन भागके॥
बालक सुमित्रा कौसिल्याके पाहुने फल-सागके।
सुनि समुझि तुलसी जानु रामहि बस अमल अनुरागके॥

(श्रीगीतावलीरामायण ३। १७। ६)

श्रीसन्त रसिकबिहारीजीने बड़े सुन्दर एवं भावपूर्ण छन्द इस सन्दर्भमें लिखे हैं।

ब्रह्मके उपासी तपराशी वनवासी बर
विपुल मुनीसन के आश्रम सिधायो मैं।
कीने सनमान तिन सहित विधान तऊ
काहू ठौर कबहुँ न पेट भरि खायो मैं॥
अमृत समान शबरी के इन बेरन में
रसिक बिहारी मन भायो स्वाद पायो मैं।
अवध बिहाय वन आयो जबते हौं बन्धु
तबते विचारौ सत्य आज ही अघायो मैं॥
शबरी सुनि रघुबर बचन हिय फूली न समाय।
धाय धायके छिनहि छिन देत मधुर फल लाय॥
बेर बेर बेर लैं सराहैं बेर बेर बहु
रसिक विहारी देत बंधु कहँ फेर फेर।
चाखि चाखि भाषैं यह वाहू ते महान मीठो
लेहु तौ लषन यो बखानत हैं हेर हेर॥
बेर बेर देवै बेर शबरी सुबेर बेर
तोऊ रघुवीर बेर बेर तिहि टेर टेर।
बेर जनि लावो बेर बेर जनि लावे बेर
बेर जनि लावे बेर लावो कहै बेर बेर॥
सदन सिधाऊँ पाऊँ व्यञ्जन अनेक तऊ
याके सम एकहू पदारथ न तूलैगो।
करि करि प्यार मातु, अशन करैहैं जब
मेरे हिय तबहिं सनेह यह सूलैगो॥
आजको अपार सुख कहँ लौ बखानौं सब
छिन छिन नित प्रति चित्त अति फूलैगो।
शबरी तिहारे इन बेरन को स्वाद मोहि
रसिक विहारी कहूँ कबहूँ न भूलैगो॥

राज्याभिषेक सम्पन्न होनेके बाद माता कौसल्याके यहाँ, गुरुमाता अरुन्धतीके यहाँ, और मिथिलामें माता सुनयनाके यहाँ जब जब भी भगवान्‌का आतिथ्य हुआ तब तब शबरीजीकी

स्मृतिमें भक्तवत्सल प्रभुकी आँखें भर आयीं और प्रभुने श्रीशबरीके फलोंकी माधुरी और स्वादका स्मरण किया।

जानत प्रीति-रीति रघुराई।
घर गुरुगृह प्रिय सदन सासुरे, भइ जब जहँ पहुनाई॥
तब तहँ कहि सबरी के फलन की रुचि माधुरी न पाई॥

(श्रीविनयपत्रिकाजी १६४)

फिर श्रीठाकुरजीने शबरीके प्रेमसे नवधा भक्तिका वर्णन किया।

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।
पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा।
निरत निरंतर सज्जन धरमा॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा।
मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा।
सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हियँ हरष न दीना॥

'नवधा भक्ति' श्रवण कीर्तनादिका वर्णन तो इसी काण्डमें श्रीरामजीने श्रीलक्ष्मणसे किया है।

श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं।
मम लीला रति अति मन माहीं॥

प्रस्तुत प्रसङ्गमें जो नवधा भक्ति है वह शबरीके द्वारा आचरणमें लाई हुई भक्ति है। इसी भक्तिके आचरणसे श्रीशबरीने श्रीरामजीको पाया है। प्रभुने सोचा कि इसका भी प्रचार होना चाहिये, अतः इस स्थलपर उस नवधा भक्तिका निरूपण किया। किं वा इस नवधा भक्तिका वर्णन करके श्रीरामजीने महाभागा शबरीकी स्तुति की है। जैसा कि प्रभु स्वयं श्रीमुखसे कहते हैं।

नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई।
नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें।
सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई।
तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥

श्रीशबरी अपनी सब कथा सुनाकर योगाग्निसे शरीरको त्यागकर दुर्लभ हरि पदमें लीन हो गयी।

तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥

यहाँपर *'लीन भइ'* का अर्थ श्रीरामधाममें जाना है। करुणामय श्रीरामजीने श्रीशबरीजीकी अन्तिम क्रिया माताकी भाँति अपने हाथसे सम्पन्न किया है।

सिय-सुधि सब कही नख-सिख निरखि-निरखि दोउ भाइ।
दै दै प्रदच्छिना करति प्रनाम, न प्रेम अघाइ॥
अति प्रीति मानस राखि, रामहि राम-धामहि सो गई।
तेहि मातु-ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जल-अंजलि दई॥
तुलसी-भनित, सबरी प्रनति, रघुबर-प्रकृति करुनामई।
गावत, सुनत, समुझत भगति हिय होय प्रभु पद नित नई॥

(श्रीगीतावलीजी ३। १७। ८)

श्रीगोस्वामीजी श्रीशबरीके प्रसङ्गका उपसंहार करते हुए अपनी भावाञ्जलि प्रस्तुत करते हैं।

जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि॥

इसके पश्चात् श्रीरामजी श्रीसीताजीके विरहमें विलाप करते हुए कामदेवकी सेनाका वर्णन करते हैं। उस प्रसङ्गका उपसंहार करते हुए

श्रीशङ्करजी कहते हैं कि प्रभुने कामियोंका दैन्य प्रदर्शन करके धीर पुरुषोंके मनमें वैराग्यका भाव दृढ़ किया है।

कामिन्ह कै दीनता देखाई।
धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई॥

श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवजीने इस प्रसङ्गमें इसी प्रकारका भाव व्यक्त किया है।

भ्रात्रा वने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः
स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार।

(श्रीमद्भागवत ९। १०। ११)

इसके पश्चात् श्रीरामजी पम्पा सरोवरपर जाते हैं। पम्पा सरोवरके द्वारा अनेक प्रकारके जीवोंका, व्यक्तियोंका और महर्षियोंका पालन पोषण होता है। 'पम्पा' का अर्थ है '**पाति रक्षति महर्ष्यादीन् स्वीय पवित्र सलिलदानादिभिः।**' इसी पम्पासरोवरके पास एक छोरपर श्रीशबरीजी रहती हैं और उसीके दूसरे छोरपर ऋष्यमूक पर्वत है।

पम्पासरोवरमें स्नान करके श्रीरामजी विराज रहे हैं, उस समय उनके पास अनेक देवता और मुनिलोग आये। वे भगवान्‌की स्तुति करके अपने धाम सिधार गये।

पम्पासरोवरपर ही प्रभुका दर्शन करनेके लिये देवर्षि श्रीनारद पधारे। श्रीरामजीका और देवर्षिका बहुत सुन्दर सत्सङ्ग हुआ है। उस सत्सङ्गकी दो बातें मैं आपके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ। श्रीनारदजीने प्रभुसे कहा—हे स्वामिन्! मैं धृष्टता करके श्रीमान्‌से ऐसा वर माँगता हूँ कि यद्यपि आपके अनेक नाम हैं, आपके प्रत्येक नाम एकसे एक बढ़कर हैं, तथापि हे नाथ! आपका श्रीरामनाम सब नामोंसे बढ़कर हो और पापरूपी पक्षियोंके समूहोंके लिये व्याधकी तरह हो। हे भक्तवाञ्छाकल्पतरो! आपकी भक्ति राका रजनी—पूर्णिमाकी रात्रि है; उसमें 'राम' नाम ही पूर्ण चन्द्रमा होकर और अन्य गोविन्द मुकुन्द आदि नाम तारागण होकर भक्तोंके निर्मल गगन मण्डलमें निवास करें।

तब नारद बोले हरषाई।
अस बर मागउँ करउँ ढिठाई॥
जद्यपि प्रभुके नाम अनेका।
श्रुति कह अधिक एक तें एका॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका।
होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥
राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम॥

श्रीनारदजीके श्रीरामनामको चन्द्रमा और अन्य नामोंको नक्षत्र कहनेसे भक्तिरूपी राका रजनीकी शोभा बन गयी और निर्दोष उपासना भी हो गयी तथा श्रीरामनामकी श्रेष्ठता भी प्रतिपादित हो गयी।

श्रीरामजीको अत्यन्त प्रसन्न जानकर श्रीनारदजीने अत्यन्त कोमल वाणीमें प्रश्न किया—हे प्रभो! जब आपने अपनी मायाको प्रेरित करके मुझे मोहित किया था तब मैंने विवाहकी कामना की थी, उस समय आपने मुझे विवाह क्यों नहीं करने दिया?

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी।
पुनि नारद बोले मृदु बानी॥
राम जबहिं प्रेरेउ निज माया।
मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया॥
तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा।
प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा॥

श्रीभगवान्‌ने उत्तर दिया—हे मुने! मैं तुमसे

सहरोषा—प्रसन्नतापूर्वक कहता हूँ—जो अन्याश्रयसे रहित होकर अनन्यभावसे मेरा भजन करते हैं मैं उनकी निरन्तर वैसे ही रक्षा करता हूँ, जैसे बालककी रक्षा माँ करती है। हे नारद! छोटा बालक चमकीला खिलौना समझकर अग्नि या सर्पको दौड़कर जब पकड़ना चाहता है तब वात्सल्यमयी जननी प्राणका भय छोड़कर दौड़कर साँप या अग्निसे अपने बालकको अलग करके उसे बचा लेती है।

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा।
भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी।
जिमि बालक राखइ महतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई।
तहँ राखइ जननी अरगाई॥

श्रीगोस्वामीजीने एक दोहामें इस भावको भलीभाँति अभिव्यक्त किया है।

खेलत बालक ब्याल सँग मेलत पावक हाथ।
तुलसी सिसु पितु मातु ज्यों राखत सिय रघुनाथ॥

(श्रीदोहावलीजी १४७)

यहाँपर काम और सर्प क्रोध और अग्नि परस्पर उपमेय उपमान हैं।

काम भुजंग डसत जब जाही।
विषय निंब कटु लगै न ताही॥

(श्रीविनयपत्रिका १२७)

लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु।

(१। २७६)

श्रीरामजी कहते हैं—हे नारद! प्रौढ़ हो जानेपर पुत्रपर माता प्रेम तो करती है; परन्तु पिछली बात नहीं रहती; क्योंकि प्रौढ़ पुत्र मातापर आश्रित न होकर अपनी रक्षा स्वयं करने लगता है। ज्ञानी मेरे प्रौढ़ पुत्रके समान है और आपकी भाँति अपने बलका मान न करनेवाला सेवक मेरे बालक पुत्रके समान है। मेरे सेवकको केवल मेरा ही बल रहता है और ज्ञानीको अपना बल होता है; परन्तु काम क्रोध रूपी शत्रु तो दोनोंके लिये हैं। यह समझ करके पण्डितजन मेरा भजन ही करते हैं। वे ज्ञानोपलब्धि होनेपर भी भक्तिके आश्रयका परित्याग नहीं करते हैं।

प्रोढ़ भएँ तेहि सुत पर माता।
प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता॥
मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी।
बालक सुत सम दास अमानी॥
जनहि मोर बल निज बल ताही।
दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं।
पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं॥

इसके पश्चात् श्रीनारदजीके प्रश्न करनेपर श्रीरामजीने सन्तोंका गुण वर्णन किया है। अन्तमें प्रभु कहते हैं—हे मुने! सुनो, सन्तोंके जितने गुण हैं उनका वर्णन श्रुति और शारदा भी नहीं कह सकते हैं।

मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते।
कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते॥

इसीके साथ अरण्यकाण्डकी कथा पूर्ण होती है।

अरण्यकाण्ड समाप्त

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीरामचरितमानस
कथा-सुधा-सागर
किष्किन्धाकाण्ड

अब कथा भगवती श्रीहनुमान्‌जीके पास किष्किन्धाकाण्डमें प्रविष्ट हो रही हैं; क्योंकि श्रीहनुमान्‌जीके समान और कोई कथाका रसिया नहीं है और न ही कोई इनके समान कथाका आदर ही कर सकता है।

रामकथा सुनिबेको रसिया।

कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ,
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ,
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः॥

नीलकमलके समान श्यामवर्ण श्रीराम हैं और कुन्दपुष्पकी तरह गौरवर्ण श्रीलक्ष्मण हैं। दोनों सरकार अतिशय सुन्दर हैं, अतिशय बलशाली हैं, विज्ञानके धाम हैं, शोभाके समस्त अङ्गोंसे परिपूर्ण हैं, श्रेष्ठ कोदण्ड धारण किये हैं, वेदोंके द्वारा स्तुत्य हैं, गौ और ब्राह्मणोंके प्यारे हैं अथवा गौ और ब्राह्मण इन्हें प्रिय हैं। कृपापूर्वक मानव विग्रह धारण किये हैं, रघुकुलमें श्रेष्ठ हैं, सद्‌धर्मके रक्षक हैं, प्राणीमात्रके हितैषी हैं, भगवती भास्वती श्रीसीताजीके अन्वेषणमें तत्पर हैं, इन विशेषताओंसे सम्पन्न बटोही श्रीराम लक्ष्मण हम लोगोंको निश्चय ही भक्ति प्रदान करें।

इस श्लोकके द्वारा श्रीगोस्वामीजीने अपने परमाराध्य श्रीरामलक्ष्मणकी मङ्गलमयी वन्दना करके मङ्गलाचरण किया है। ग्रन्थके आरम्भमें तो मङ्गलाचरण प्रायः ग्रन्थोंमें दिखाई पड़ता है, परन्तु ग्रन्थके मध्यमें मङ्गलाचरणकी क्या आवश्यकता है? इससे तो ग्रन्थके कलेवरकी ही वृद्धि होती है और प्रायः ग्रन्थोंमें दिखाई भी नहीं पड़ता है।

महर्षि पतञ्जलिका मत है कि जिस ग्रन्थके आदि, मध्य और अन्तमें मङ्गलाचरण किया जाता है, वह ग्रन्थ निर्विघ्न पूर्ण होता है और सुविख्यात होता है। उसके रचयिता, अध्येता और व्याख्याता सभी सर्वविधि कल्याणोंसे सम्पन्न होते हैं, आयुष्मान् होते हैं और उस ग्रन्थके अध्येता तो प्रवक्ता हो जाते हैं।

मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि
मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते।
वीरपुरुषाणि च भवन्त्यायुष्मत् पुरुषाणि
चाऽध्येतारश्च प्रवक्तारो भविष्यन्ति॥

(पातञ्जलि महाभाष्य)

शास्त्रपरम्पराके प्रबल पोषक श्रीगोस्वामीजीने शास्त्रपरम्पराके अनुसार ही श्रीरामचरितमानसके प्रत्येक काण्डके आरम्भमें तथा ग्रन्थके प्रारम्भ, मध्य और अन्तमें मङ्गलाचरण किया है। इसका फल भी प्रत्यक्ष है कि आज इस ग्रन्थकी प्रसिद्धि समुद्रोंका अतिक्रमण कर गयी है और इसके अध्येता, प्रशंसक, कथाकार, श्रोता और व्याख्याकार सभी लौकिक पदार्थोंकी तो बात ही क्या है, चरम पुरुषार्थ भगवत्प्रेमकी समुपलिब्ध कर रहे हैं।

दास स्वयं कथाकार रहा है, मेरे जीवनमें जो

कुछ है वह श्रीरामचरितमानसजीकी कथाका ही परिणाम है। मैं तो इस ग्रन्थको कामधेनुसे भी श्रेष्ठ मानता हूँ; क्योंकि कामधेनुमें त्रिवर्गकी प्राप्ति करानेका ही सामर्थ्य है; परन्तु कथाकामधेनु तो मोक्ष भी प्रदान करती है। मुझे तो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, भगवत्प्रेम सब कुछ श्रीरामकथाकी ही कृपासे सम्प्राप्त है।

इस मङ्गलाचरणके मङ्गलमय श्लोककी अनुपम विशेषता है कि इसमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी और परमभागवत श्रीलक्ष्मणकुमारकी सम्मिलित वन्दना है एतावता इस पद्यमें प्रयुक्त विशेषण दोनों भाइयोंकी विशेषताका प्रतिपादन करते हैं। दूसरी विशेषता यह है कि यह वन्दना शार्दूलविक्रीडित छन्दमें की गयी है। भाव कि जिस प्रकार शार्दूल—सिंह अरण्य प्रान्तमें निर्भय होकर विचरण करते हैं और मत्तगजेन्द्रोंके मस्तकको विदीर्ण करते हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ नरशार्दूल श्रीरामलक्ष्मण भी वनप्रान्तमें निर्भय विचरण करते हुए, शत्रुके हृदयको दहलाते हुए अपने आश्रितजनोंको निर्भय करते हैं और धर्मद्रोहियों, भक्तद्रोहियोंको दण्ड देकर सनातनधर्मका परिरक्षण करते हैं।

'**पथिगतौ**'—किष्किन्धाकाण्डके आरम्भमें श्रीरामलक्ष्मणकी मङ्गलमयी वन्दना करते हुए श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं '**पथिगतौ**'।

(१) इस काण्डके प्रारम्भ में ही श्रीरामावतारके महान्भक्त केसरीकिशोर आञ्जनेय पवनपूत रामदूत श्रीहनुमान्जी मार्गमें ही मिलेंगे अतएव '**पथिगतौ**' ठाकुरजीकी वन्दना करते हैं।

(२) श्रीगोस्वामीजीको पथिगत—बटोही स्वरूप बहुत प्रिय है। श्रीगीतावलीरामायणके अनेक पद पथिगत प्रभुकी प्रशस्ति में हैं।

सखि! नीके कै निरखि, कोऊ सुठि सुंदर बटोही।
(२।१९)

अतः '**पथिगतौ**' युगलबन्धुकी वन्दनाकी गयी।

(३) यह पथिगत स्वरूप भगवद्धाम प्रदायक है, ऐसा भक्त कविका दृढ़ विश्वास है।

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ।
बसहुँ लखनु सिय रामु बटाऊ॥
राम धाम पथ पाइहि सोई।
जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई॥
(२।१२४)

(४) इस स्वरूपने अर्थात् मार्गमें चलते हुए श्रीराम लक्ष्मणने अनेक भक्तोंका, हर वर्गके भक्तोंका मङ्गल किया—अपने योगिजन दुर्लभ दर्शन देकर कृतार्थ किया है, करते आ रहे हैं और आगे भी करेंगे। अतएव सर्वसुलभ बटोही स्वरूपकी वन्दना करते हैं।

(५) महलमें रहनेवाले स्वरूप तक अधिकारीका ही प्रवेश हो सकता है; परन्तु पथिगत—बटोही ठाकुरके श्रीचरणोंमें तो प्रत्येक व्यक्ति परिचित, अपरिचित, सभ्य, असभ्य, अर्बुदपति और बराकापति, नर और नारी पहुँचकर बटोही ठाकुरका मङ्गलमयदर्शन कर सकते हैं और अपनी बात सुना सकते हैं। एतावता पथिगतौ सरकारकी वन्दना करके श्री रामभक्तिकी याचना करते हैं।

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाव्ययं
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा।
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम्॥

वेदरूपी समुद्रसे समुत्पन्न कलियुगके मलको

अथवा वाद-विवादसे समुत्पन्न मलको विनष्ट करने वाले, अविनाशी, श्रीमान् भगवान् शङ्करके श्रेष्ठ और सुन्दर मुखचन्द्रमें निरन्तर सुशोभित, संसाररूपी रोगकी महौषधि, अशेष सुखोंका सम्पादन करने वाले, नित्यकिशोरी श्रीजनकनन्दिनी के जीवनाधार, श्रीरामनामामृतका जो पुण्यात्मा निरन्तर पान करते हैं वे ही चतुर्दश भुवनोंमें धन्य हैं।

'**ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवम्**'—जिस प्रकार प्राकृत समुद्रके मन्थनसे अमृतका प्राकट्य हुआ है उसी प्रकार वेदरूपी समुद्रके मन्थनसे श्रीरामनामामृत समुद्भूत हुआ है। प्राकृत समुद्रका मन्थन यद्यपि अमृत प्राप्तिके लिए हुआ था तथापि समुद्रसे अमृतके पूर्व और भी तेरह रत्न निकले हैं। प्राकृत समुद्रसे निकले रत्नोंकी संख्या सीमित है; परन्तु ब्रह्माम्भोधिसमुद्भूत रत्न अनन्त हैं—असंख्य हैं। श्रीरामनाममें ही अनन्त रत्न समाहित हैं, अनन्त रत्नमय श्रीरामनाम है। श्रीरामनाम सूर्य, चन्द्र, अग्निके कारण हैं। श्रीरामनाम ब्रह्मा, विष्णु, शङ्करमय है। श्रीरामनाम वेदोंके प्राण हैं, अगुण भी हैं तथा गुणों के भण्डार भी हैं। इस प्रकार श्रीरामनाम सर्वथा अनुपम हैं।

बन्दउँ नाम राम रघुबर को।
हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो।
अगुन अनूपम गुन निधान सो॥

(१।१९)

श्रीरामनामामृतका पान अनेक प्रकारसे सम्भव है। सन्तजन, सुधीजन और प्रेमीजन अनेक प्रकारसे उस दिव्यरामनामामृतका आस्वादन करते हैं। कोई नामोपासक सन्त हजारा माला लेकर अहोरात्र लाखोंकी संख्यामें प्रतिदिन नाम जप करते हैं। कोई स्नेहोन्मत्त होकर उर्ध्वबाहु, साश्रुनयन नर्तन करते हुए श्रीहरिनामका उद्दाम सङ्कीर्तन करते हैं। कोई भाग्यवान् रोमाञ्चकण्टकित शरीर, गद्गदवाणीमें भगवच्चरित्रका वर्णन करते हुए जीवनको कृतार्थ कर रहे हैं। कोई सिसकियाँ लेते हुए साश्रुनयन पुलकित देह, श्रीरामकथाका श्रवण कर रहे हैं। यह सभी भक्त विविधभङ्गीसे श्रीरामनामामृतका ही पान करते हैं।

इसके पश्चात् श्रीगोस्वामीजी श्रीकाशीपुरीकी वन्दना करते हैं।

मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥

काशीपुरी चतुर्धा मुक्तिकी जन्मभूमि है। समग्रज्ञानकी खानि है, सर्वविध पापोंको नष्ट करने वाली है। श्रीकाशीमें भगवान् भूतभावन गौरीनाथ विश्वनाथ श्रीभवानीजी के साथ निवास करते हैं। उस काशीका सेवन क्यों नहीं करते हैं? उसका सेवन करना चाहिए। जो ज्ञानके द्वारा प्राणीके अन्तरात्माको सुप्रकाशित कर दे, उसे काशी कहते हैं। '**काश्यते प्रकाश्यते इति काशी**' जहाँ श्रीरामनामके द्वारा श्रीशङ्करजी जीवोंके ज्ञानको मनको प्रकाशित कर देते हैं उसे काशी कहते हैं। श्रीरामनाम महाराजके महत्त्वको जो प्रकाशित करदे उसे काशी कहते हैं। भगवान् शङ्करके महत्त्वको जो प्रकाशित कर दे उसे काशी कहते हैं। जो सबको प्रकाशित करे उसे ही काशी कहते हैं। '**काशयति प्रकाशयति इदं सर्वं या सा काशी**' अथवा '**काश्यते शिवशूलोपरि या सा काशी**'। '**काशृङ् दीप्तौ**' धातुसे **गौरादित्वात्** '**ङीष्**' प्रत्यय करने पर काशी शब्द निष्पन्न होता

है अर्थात् जो श्रीशङ्करके त्रिशूल पर सुशोभित होती है उसे काशी कहते हैं।

श्रीरामचरितमानसके मध्यमें, किष्किन्धाकाण्डमें काशीका महत्व क्यों प्रतिपादित किया गया? ग्रन्थके प्रारम्भमें किंवा अन्यत्र भी वर्णन हो सकता था फिर किष्किन्धाकाण्डमें ही काशीकी महिमा वर्णन करनेका क्या आशय है? किष्किन्धाकाण्डमें काशीकी वन्दना करके उसे काशीके रूपमें स्वीकार किया है। अन्यकाण्डको **'एवम् अन्यत् अपि ज्ञातव्यम्'** इस पद्धतिसे सङ्केत कर दिया। ग्रन्थकी यह भी एक पद्धति है।

सात पुरियोमें तीन वैष्णव पुरी हैं और तीन शैवपुरी। श्रीअयोध्या, मथुरा और द्वारावती वैष्णवपुरियाँ हैं। माया, काशी और अवन्तिका शैवपुरियाँ हैं। काञ्ची साझेकी पुरी है उसके दो विभाग हैं विष्णुकाञ्ची और शिवकाञ्ची श्रीरामचरितमानसमें किष्किन्धाकाण्ड काशी है अतः इसमें काशीकी वन्दनाकी गयी।

श्रीरामजी श्रीलक्ष्मणके साथ पम्पासरोवरसे चलकर ऋष्यमूक पर्वतके निकट आ गये।

आगें चले बहुरि रघुराया।
रिष्यमूक पर्बत निअराया॥

श्रीरामजी तो तापसवेषमें हैं फिर इन्हें ***'रघुराया'*** कैसे कहा? हमारे श्रीरामजी सर्वदा राजा थे, राजा हैं और राजा रहेंगे। श्रीराजारामजीका अस्तित्व कभी समाप्त नहीं होता है। अस्तित्व तो जन्म और मृत्युके द्वारा समाप्त होता है। श्रीरामजीका न कभी जन्म होता है और न कभी मृत्यु होती है, वे अनादि और अनन्त हैं। संसारी लोगोंकी तरह यदि उनका राज्य छूट भी जाय तो भी राज्य नष्ट नहीं होता है। लौकिक सम्पत्तिका अधिकारी चाहे जो हो जाय—उसका राजा चाहे जो हो जाय; परन्तु भक्तोंके हृदय सिंहासन पर तो एकछत्र राज्य श्रीराजारामका ही है। भक्तहृदय सम्राट् तो श्रीराघवेन्द्र सरकार ही हैं। दण्डकारण्यके बड़े-बड़े अमलात्मा वीतराग तपोधन महात्मागण कहते हैं कि—हे रघुनन्दन! हे मुनिजनोंके हृदयसम्राट् आप चाहे जङ्गलमें रहें या नगरमें, हमारे तो एकमात्र राजा आप ही हैं।

नगरस्थोवनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः। अतः श्रीगोस्वामीजीने अपने हृदयसम्राट् श्रीरामजीको ***'रघुराया'*** लिखा। किंवा—श्रीरघुमहाराजने विश्वजित् नामका यज्ञ बड़े समारोहपूर्वक सम्पन्न किया। उस यज्ञमें उन्होंने अपना सर्वस्व दानमें दे दिया। उनके पास कोई धातुका पात्र भी नहीं बचा था **'ऐसे निःशेष विश्राणित कोषजात' 'निःशेषेण विश्राणितं दत्तं कोषाणामर्थराशीनां जातं समूहो येन तम् निःशेष विश्राणितकोष जातम्'।** श्रीरघुके पास वरतन्तु शिष्य कौत्स चौदह करोड़ स्वर्णमुद्राके प्राप्तिके लिए गये थे। श्रीकौत्सको वे मुद्राएँ अपने गुरुदेव वरतन्तुको दक्षिणाके रूपमें देनी थीं। महाराज श्रीरघुको श्रीकौत्सके आनेका कारण ज्ञात होने पर उन्होंने स्वर्णमुद्राओंकी व्यवस्था कर दी; परन्तु धन्य हैं श्रीकौत्स। उन्होंने गणना करके मात्र चौदह करोड़ स्वर्णमुद्रा ही लीं। भारतवर्षकी राजधानी साकेतपुरी श्रीअयोध्याजीमें धन्य धन्यकी ध्वनि चारों और फैल गयी। महाकवि कालिदासजी लिखते हैं—

जनस्य साकेतनिवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनन्द्यसत्त्वौ।
गुरुप्रदेयाधिकनिःस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च॥

(रघुवंश महाकाव्यम् ५।३१)

ये कौत्स और रघु दोनों अयोध्यावासियोंके

निकट प्रशंसनीय व्यवसाय वाले हुए। एक तो गुरुदक्षिणाके रूपमें गुरुको देनेसे अधिक लेनेमें नि:स्पृह याचक कौत्स और दूसरे याचककी कामनासे अधिक देने वाले महाराज रघु। यह कथा अद्यावधि श्रीरघुकी महिमाको प्रकाशित करती है।

इस कथाके लिखनेका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार तपस्वीकी तरह रहने वाले, मृण्मय पात्रमें महर्षिका पाद्यार्घ्य करने वाले श्रीरघुने महर्षि कौत्सकी अभिलाषा पूर्ण कर दी थी, उसी प्रकार तपस्वी वेषमें रहने वाले श्रीरामचन्द्रजी प्रस्तुत प्रसङ्गमें भी श्रीसुग्रीवको राज्य देनेमें सर्वथा समर्थ होंगे इसीलिए रघुवंशशिरोमणि श्रीरामजीको *'रघुराया'* कहा है।

तहँ रह सचिव सहित सग्रीवा।
आवत देखि अतुल बल सींवा॥

किष्किन्धा पर्वतपर श्रीसुग्रीव अपने मन्त्रियोंके साथ रहते थे, उन्होंने अतुलित बलकी सीमा श्रीरामलक्ष्मणजीको आते हुए देखा। *'सचिव सहित'* का भाव कि राज्यके सात अङ्ग प्रधान होते हैं। राजा, मन्त्री, मित्र, खजाना, राष्ट्र, किला और सेना।

स्वाम्यमात्यसुहृद्कोषराष्ट्र दुर्ग बलानि च।

यद्यपि राज्यके सञ्चालनमें सातों ही अङ्गोंका अपना-अपना महत्व है; परन्तु इन सात अङ्गोंमें सचिवका—मन्त्रीका विशेष महत्व है। राजाका कर्तव्य है कि मन्त्रियोंसे परामर्श करके ही कोई कार्य करे। श्रीसुग्रीवजी बालिके भयसे भयभीत तो सदा ही रहते थे; परन्तु सम्प्रति श्रीरामलक्ष्मण को देख अत्यन्त भयभीत हो गये। उन्होंने श्रीहनुमान्जीको श्रीरामलक्ष्मणके विषयमें जाननेके लिए भेजा। श्रीहनुमान्जी ब्राह्मणका रूप धारण करके श्रीरामलक्ष्मणके पास गये और मस्तक नवाकर इस प्रकार पूछने लगे।

बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।
माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥

श्रीहनुमान्जीके विप्र रूप धारण करनेका भाव यह है—शब्दशास्त्रके अनुसार विप्र शब्दके अनेक अर्थ हैं। प्रस्तुत प्रसङ्गके सन्दर्भमें '**विशेषेण प्राति पूरयति स्वसेवि मनोरथानीति विप्रः।**' अनेकानेक वानर समुदाय वर्षोंसे अपने आराध्यकी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि मेरे स्वामी कब आवेंगे और कब हमें अपनाकर कृतार्थ करेंगे। इस प्रकारकी कामना करते हुए धैर्य धारण करके मार्ग देख रहे हैं।

गिरि तरु नख आयुध सब बीरा।
हरि मारग चितवहिं मतिधीरा॥

(१। १८८)

श्रीहनुमान्जी समस्त वानरसमुदायको श्रीरामदर्शन कराकर तथा उनको श्रीरघुनन्दनका कैङ्कर्य प्रदान करके उनकी अभिलाषा पूर्ण करेंगे। अत: *'बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।'* अथवा श्रीसुग्रीवजी अपने परिवारसे वियुक्त होकर दु:खी हृदयसे दिन रात चिन्ता करते रहते हैं *'बालि त्रास ब्याकुल दिन राती'।* बालिके डरसे निरन्तर आकुल व्याकुल रहते हैं, ऐसे दु:खी सुग्रीवको श्रीठाकुरजीका मङ्गलमय दर्शन कराकर, प्रभुसे सख्य सम्बन्ध कराकर उनकी अभिलाषाको पूर्ण करेंगे। एतावता *'बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।'* अथवा—श्रीरामलक्ष्मण दोनों भ्राता कई दिनोंसे इस आशामें हैं कि वानरेन्द्र सुग्रीवसे मित्रता होगी, उनके द्वारा श्रीसीताजीकी खोज होगी। इसी

अभिलाषाको लेकर दोनों भाई ऋष्यमूक पर्वतकी ओर आ भी रहे हैं। श्रीलक्ष्मणजीने अत्यन्त भावपूर्ण भाषामें इस अभिप्रायको श्रीहनुमान्‌जीसे अभिव्यक्त किया है।

यस्य प्रसादे सततं प्रसीदेयुरिमाः प्रजाः।
स रामो वानरेन्द्रस्य प्रसादमभिकांक्षते॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४।४।२१)

श्रीलक्ष्मणजी कहते हैं कि हे हनुमान्‌जी! जिन रामचन्द्रजीकी कृपापूर्ण प्रसन्नतासे यह सारी प्रजा हर्षोल्लाससे परिपूर्ण हो जाती थी अर्थात् '**तत् प्रसादलब्ध सकल पुरुषार्थ तया सर्वदा प्रसन्नचित्ता भवेयुः**'। भाव कि प्रभु प्रसन्न होकर सबको अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि समस्त पुरुषार्थ प्रदान करते थे, जिसे जिस वस्तुकी अभिलाषा होती थी वह उस वस्तुकी उपलब्धि करके आनन्दसे झूम उठता था। आज वे ही श्रीरामजी वानरेश सुग्रीवकी प्रसन्नताकी अभिकांक्षा—हृदयसे अभिलाषा करते हैं। श्रीरामलक्ष्मणकी इस अभिलाषाकी भी पूर्ति आज श्रीहनुमान्‌जीके माध्यमसे होगी। एतावता *'बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।'* किंवा—श्रीहनुमान्‌जी महाराज स्वयं बचपनमें ही अपनी माता अञ्जनासे भगवच्चरित्र सुन सुनकर श्रीरामदर्शनकी अभिलाषा करने लगे हैं। माताने श्रीहनुमान्‌जीके जन्मजन्मान्तरोंके श्रीरामभक्तिके संस्कार जाग्रत कर दिए हैं। वे निरन्तर श्रीरामलक्ष्मण जानकीके मङ्गलमय दर्शनकी आकांक्षा करते रहते हैं। ऐकान्तिक क्षणोंमें भावविह्वल स्वरमें कहते रहते हैं—हे मेरे आराध्य! वह क्षण कब आवेगा जब आपके मङ्गलमय दर्शन होंगे। हे मेरे सर्वस्व! ये अभागे दिन जो आपके दर्शनके बिना व्यतीत हो रहे हैं कब व्यतीत होंगे। हे स्वामी! वह दिन कब आवेगा जब मैं आपके श्रीचरणारविन्दोंकी उपलब्धि करूँगा। हे मेरे जीवनाराध्य! आपके बिना मैं अपूर्ण हूँ मेरी अपूर्णता—मेरी रिक्तता आप अपनी कृपासे, अपनी पावनी भक्तिसे कब भर दोगे। आज श्रीहनुमान्‌जीकी अपूर्णता पूर्ण होगी, आज उनको अपने जीवनसर्वस्वका प्रसाद पूर्णरूपेण प्राप्त होगा। आज उनकी चिरकांक्षित अभिलाषा पूर्ण होगी। एतावता आज वे स्वयं अपने लिये भी विप्र बने हैं। *'माथ नाइ पूछत अस भयऊ'* इस पङ्क्तिमें प्रायः जिज्ञासुजन प्रश्न करते हैं कि जब श्रीहनुमान्‌जी ब्राह्मण वटुके रूपमें हैं तब उन्होंने श्रीरामजीको प्रणाम कैसे किया? श्रीहनुमान्‌जी श्रीरामलक्ष्मणको देखकर स्वयं ही कहते हैं कि *'छत्री रूप फिरहु बन बीरा'* अतः अवन्द्यवन्दन कैसे किया वटु विप्र वेषधारी श्रीहनुमान्‌जीने? उत्कृष्ट कोटिके भक्तोंका यह प्रधान लक्षण है कि वे सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत्‌में भगवान्‌का ही दर्शन करते हैं।

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(७। ११२)

मेरे श्रीगुरुदेव कहा करते थे कि भक्त लोग सम्पूर्ण प्राणियोंमें अपने श्रीसीतारामजीका दर्शन करते हैं इसीलिए वे सबको प्रणाम करते हैं।

आकर चारि लाख चौरासी।
जाति जीव जल थल नभ बासी॥
सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(७। ८)

श्रीरामरसमें भीगे हुए भक्त तो ठगमें भी

श्रीठाकुरजीका दर्शन करते हैं। श्रीनामदेवजी तो कुत्तेमें भी ठाकुरजीका दर्शन किये थे। तुम्हें श्रीरामजीमें भी अपने श्रीकृष्णभगवान्‌का दर्शन नहीं होता है? श्रीकृष्णजीमें भी अपने श्रीरामजी नजर नहीं आते? उच्चकोटिके भक्तोंमें, साधुओंमें सन्तोंमें भगवान्‌के दर्शन नहीं होते? यदि साधु सन्तोंमें तुम्हें ठाकुरजीका दर्शन नहीं होता है तो कम से कम साधुओंका तो दर्शन करो उनमें। जिसे साधुमें साधुका दर्शन नहीं होता वह कैसा भक्त है? श्रीहनुमान्‌जी महाराजको समस्त सृष्टिमें अपने ठाकुरजीका दर्शन हो रहा है अतः ***'माथ नाइ पूछत अस भयऊ'।*** अथवा किसीका स्वरूप ही उसकी महिमाको अभिव्यक्त करता है। **'रूपमेवास्यैतन्महिमानं व्याचष्टे'** इस न्यायसे श्रीरामलक्ष्मणका मात्र दर्शन करके ही यह निश्चित हो गया कि ये सुग्रीवविरोधी बालिका दमन करनेमें सर्वथा सक्षम हैं। एतावता विप्रवेषधारी श्रीहनुमान्‌जीने अपना सेवकत्व प्रकट करते हुए नमस्कार किया, इसमें कोई दोष नहीं है। अथवा—इस प्रसङ्गसे एक अत्यन्त सुन्दर शिक्षा मिलती है। विनम्रता बहुत बड़ा गुण है, विनम्रतापूर्वक प्रणाम करनेसे बहुत कुछ मिलता है, कम से कम आशीर्वाद तो मिलता ही है, हानि तो कुछ हो ही नहीं सकती है।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

(मनुस्मृति २। १२१)

जिसको सङ्कोचवश प्रणाम न करना पड़ता हो अपितु जो प्रणाम किये विना रह ही नहीं सकता है, अभिवादन करना जिसका स्वभाव हो गया है उसे 'अभिवादनशील' कहते हैं। अपने नाम गोत्रका उच्चारण करते हुए—अपना परिचय देते हुये प्रणाम करना ही अभिवादन है। **'अभिमुखीकरणाय वादनं नामोच्चारणपूर्वक नमस्कारः।'** वृद्ध कई प्रकारके होते हैं। मात्र मस्तकका केश श्वेत होनेसे ही कोई वृद्ध नहीं होता है। जो युवक होनेपर भी शास्त्र मर्मज्ञ है वह भी वृद्ध शब्दसे अभिहित किया जाता है।

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः॥

(मनुस्मृति २। १५६)

इस प्रकार वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, वर्णवृद्ध, आश्रमवृद्ध, साधनवृद्ध, भक्तिवृद्ध, तपोवृद्ध आदि कई प्रकारके वृद्ध होते हैं। जो व्यक्ति अभिवादनशील है और जो वृद्धजनोंके समीप बैठकर उनकी सेवा करता है, उसकी आयु, विद्या, कीर्ति और बलमें वृद्धि होती है। इसलिये उचित स्थलोंपर विनम्रतापूर्वक प्रणाम अवश्य ही करना चाहिये। श्रीहनुमान्‌जी अभिवादनशील हैं, नित्य वृद्धोपसेवी हैं, अतः ***'माथ नाइ पूछत अस भयऊ'।***

श्रीहनुमान्‌जीने प्रश्न किया—आप कौन हैं? आप त्रिदेवोंमें कोई हैं? किंवा—नर नारायण हैं? अथवा—हे स्वामिन्! जगत्‌के कारण, भवसे तारनेवाले, भूमिका भार समाप्त करनेवाले और समस्त भुवनोंके स्वामी पूर्णब्रह्मने तो कहीं आपके रूपमें मनुष्यका अवतार नहीं लिया है? सन्तजन इस दोहेका अर्थ इस प्रकार भी करते हैं कि हे प्रभो! क्या आप इस जड़ चेतनात्मक जगत्‌के कारण हैं? क्या आप भवसे—संसृति सागरसे सन्तरण करानेवाले हैं? क्या आप अपनी प्रिया भूदेवीका भार नष्ट करनेवाले हैं? क्या आप अनन्तानन्त ब्रह्माण्डोंके पति—संरक्षक—स्वामी

हैं ? इस प्रकार इन चार गुणोंसे विशिष्ट पूर्णब्रह्मने—आपने कहीं मनुज अवतार तो नहीं लिया है ?

जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥

श्रीहनुमान्‌जीका प्रश्न श्रवण करके उत्तरके रूपमें श्रीरामजीने अपना परिचय दिया—हम कोसलदेशके राजा श्रीदशरथके पुत्र हैं। पिताका वचन स्वीकार करके वनमें आये हैं। हम दोनोंका राम लक्ष्मण नाम है, हम दोनों भाई हैं। हमारे साथमें सुन्दरसुकुमारी स्त्री थी। वनमें निशाचरने श्रीसीताजीका हरण कर लिया है और हम उन्हींको अन्वेषण करते हुए घूम रहे हैं। हमने अपना चरित्र वर्णन किया। हे ब्राह्मण! अब आप अपनी कथा हमें समझाकर कहिए। श्रीरामजीकी वाणी सुन करके श्रीहनुमान्‌जी अपने स्वामीको पहचानकर उनके श्रीचरणोंमें गिर पड़े। श्रीशङ्करजी कहते हैं—हे उमा! वह सुख वर्णनातीत है।

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना।
सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥

'प्रभु पहिचानि'—स्वाभाविक ही एक प्रश्न उठता है कि श्रीहनुमान्‌ने श्रीरामजीको कैसे पहचान लिया ? उत्तर यह है कि पहचाननेके लिये श्रीरामजीके वक्तव्यमें पर्याप्त सामग्री है। संक्षिप्त होते हुए भी पूर्ण परिचय है। उसीसे पहचान लिया। तब दूसरा प्रश्न उठता है कि उस परिचयसे श्रीदशरथनरेन्द्रनन्दन रघुनन्दनका परिचय तो मिलता है; परन्तु प्रभुका—परमात्माका परिचय नहीं मिलता है। ब्रह्म अज है, श्रीरामजी कहते हैं—***'दसरथके जाए'।*** ब्रह्म अनादि हैं, श्रीरामजी कहते हैं कि हमारे पिता दशरथ हैं। ब्रह्म स्वतन्त्र है, श्रीरामजी कहते हैं—हम पिताकी आज्ञाके अधीन हैं। ब्रह्म एक है, श्रीरामजी कहते हैं—हम तो प्रत्यक्ष ही दो दीख रहे हैं ***'राम लछिमन दोउ भाई।'*** ब्रह्म अनन्त, अचिन्त्य, अपरिमित शक्ति सम्पन्न है, कालका भी काल है; परन्तु श्रीरामजी कहते हैं कि मेरी तो प्राणप्रिया प्रियतमाका राक्षसने अपहरण कर लिया है और मैं अभी तक कुछ नहीं कर सका हूँ। ब्रह्म सर्वज्ञ है, श्रीरामजी कहते हैं—मैं तो सीताजीको खोजते हुए घूम रहा हूँ ***'बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही।'*** ब्रह्म अनासक्त है, जीवके शरीरमें रहकर भी उसके दुर्गुणोंसे सम्पृक्त नहीं होता है। श्रीरामजी कहते हैं—मैं तो परमासक्त हूँ, मेरी पत्नीकी आसक्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है। तात्पर्य यह है कि श्रीरामजीने सर्वप्रकारेण अपनी वाणीद्वारा ब्रह्मके लक्षणके विपरीत स्वयंको जीव ही सिद्ध किया है फिर श्रीहनुमान्‌जीने अपना प्रभु कैसे पहचान लिया ?

श्रीनारदजीको यह रहस्य ज्ञात है कि श्रीशङ्करने वानर विग्रहमें अवतार धारण किया है। यह भी जानते हैं कि भविष्यमें ये श्रीरामभक्तिके अनुपम दानी होंगे। श्रीरामकृपा प्राप्तिके लिये अनोखे साधन होंगे।

रामदुआरे तुम्ह रखवारे।
होत न आज्ञा बिनु पैसारे॥

(हनुमानचालीसा)

वीणा बजाते हरि गुण गाते श्रीनारद प्रायः अञ्जना माताके घरमें आते जाते हैं, श्रीकेसरीजी देवर्षिका बड़ा आदर करते थे। केसरीकिशोर भी विद्याध्ययन करके आ गये हैं। वे तो देवर्षिका दर्शन करके विभोर हो जाते हैं। देवर्षि श्रीरामजीका कौशिकमखसंरक्षण, विवाह आदिका मङ्गल प्रसङ्ग सुनाते। बालक हनुमान्, किशोर हनुमान् सुन

सुनकर पुलकित, प्रमुदित, रोमाञ्चकण्टकित हो जाते थे।

फिर श्रीहनुमान्‌जी किष्किन्धा चले आए। सुग्रीवसचिवके रूपमें कार्य करने लगे; परन्तु उनके प्राणमें—मनमें प्रभु श्रीराम बसे रहे। आज जब स्वयं प्रभुने अपना परिचय दिया तब सब कुछ याद आ गया। अतीतके सारे चित्र आँखोंके सामने नाच उठे और वे।

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना।
राम जन्म सुभ काज सब कहत देवरिषि आइ।
सुनि सुनि मन हनुमानके प्रेम न उमँग अमाइ॥

(रामाज्ञाप्रश्न ४। २२)

'सो सुख उमा जाइ नहिं बरना'—कथा कहते हुए श्रीशङ्करजी कह रहे हैं कि हे उमा! जिस समय श्रीहनुमान्‌जी अपने प्रभुको पहिचान कर उनके मङ्गलमय श्रीचरणोंमें दण्डवत् किये उस समयके आनंदका वर्णन सम्भव नहीं है; क्योंकि आज हमारा वानरावतार सफल हो गया। श्रीरामजीके मङ्गलमय श्रीचरणोंकी प्राप्ति करके जीवन सफल हो गया। इस प्रकार सोचते हुए कथाके वक्ता श्रीगौरीनाथ श्रीहनुमान्‌के रूपमें भगवत्‌शरणागति एवं चरणस्पर्शजन्य भावानंदमें स्वयं विभोर हो रहे हैं, आत्मविस्मृत हो रहे हैं, अब कहे कौन? और कहे क्या? क्योंकि वह आनन्द तो अनिर्वचनीय है। इस उपलब्धिमें आस्वादन तो है परन्तु उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती है अत: ***'सो सुख उमा जाइ नहिं बरना।'*** किं वा वर्षोंसे श्रीहनुमान्‌जी प्रभुके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ***'हरि मारग चितवहिं मति धीरा।'*** अनुपल अनुक्षण जिनके दर्शनकी व्याकुलतासे प्रतीक्षा थी वही परमाराध्य श्रीरामजी आज सामने प्रकट हो गये। उन्हींके श्रीचरणोंमें हम पड़े हैं। इसमें कितना सुख है, इसका आस्वादन ही हो सकता है, वर्णन नहीं हो सकता है। अत: ***'सो सुख उमा जाइ नहिं बरना।'*** इसके पश्चात् श्रीहनुमान्‌ने धैर्य धारण करके भगवान्‌की स्तुति की है। तदुपरान्त वानर शरीर प्रकट करके अकुला करके श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें गिर पड़े और उनके हृदयमें प्रीति छा गयी। इस प्रसङ्गमें दो बार श्रीहनुमान्‌जीने श्रीरामजीके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया है। श्रीरामजीने अपनी कथा कहनेके लिये कहा, तब प्रभुका बचन सुनते ही श्रीहनुमान् अपने स्वामीको पहचानकर आनन्दपूर्वक श्रीचरणोंमें गिर पड़े। भाव यह कि हमारी कथाका समझाना यही है कि हम आपके श्रीचरणोंके दास हैं, हमारी यही कथा है। किंवा—इन चरणोंसे अलग हमारा कोई अस्तित्व नहीं है और न कोई कथा है। यह तो प्रथम बारका प्रणाम है। दूसरी बार अब ***'अस कहि परेउ चरन अकुलाई।'*** इस ***'अकुलाई'*** का कारण है कि श्रीहनुमान्‌जीने अनुभव किया—मुझसे कोई भयङ्कर और भारी भूल हो गयी है, अन्यथा मेरे प्रभुका तो स्वभाव है कि कोई एक बार कह दे कि हे नाथ! मैं आपका शरणागत हूँ, तो ठाकुरजी जीवनभरका ठेका ले लेते हैं। ध्यान देनेयोग्य बात है कि प्रभुकी प्रसन्नताके और जितने भी उपाय हैं उन सबमें आवृत्ति करनेकी—बार बार करनेकी आवश्यकता होती है। स्वाध्याय, पूजा, पाठ, दर्शन, व्रत, उपवास, ध्यान, समाधि, जप, कीर्तन, तीर्थाटन आदि सब बार-बार किये जाते हैं। ***'अधिकस्याधिकं फलम्'।*** इस न्यायके अनुसार जितना अधिक किया जाय उतना ही अधिक

फल है। परन्तु प्रपत्तिमें आवृत्ति शास्त्रको अभीष्ट नहीं है। प्रपत्तिमें—शरणागतिमें एक बारका अनुष्ठान ही प्रधान है—पर्याप्त है।

सकृदेवहि शास्त्रार्थकृतोऽयं तारयेन्नरः।

जो एक बार भी इस परम भागवत धर्मको स्वीकार कर लेता है फिर उसे कोई प्राप्तव्य नहीं रहता है। ठाकुरजी भी आज्ञा करते हैं—'**सकृदेव प्रपन्नाय।**'

कहनेका आशय यह है कि भावपूर्वक एक बारका प्रणाम श्रीभगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये पर्याप्त है। अपने श्रीचरणोंमें गिरे हुए भक्तको भगवान् उठा लेते हैं और उसके मस्तकपर अपना करारविन्द धर देते हैं। श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं कि हा हन्त! मैं श्रीरामजीके श्रीचरणकमलोंमें गिरा फिर भी प्रभुने मुझे नहीं उठाया। अवश्य ही मेरे द्वारा कोई भयङ्कर भूल हो गयी है, यह सोचकर व्याकुल होकर श्रीचरणोंमें पुनः गिर पड़े। श्रीचरणोंमें गिरनेके बाद प्रभुने उठाया नहीं कार्पण्यतापूर्वक स्तुति करनेके बाद भी प्रभु बोले तक नहीं तब ज्ञानिनामग्रगण्य श्रीहनुमान्‌जीने सोच लिया कि अहा! मुझसे अक्षम्य अपराध हो गया है। यद्यपि श्रीरामजी एक बार प्रणाम करने मात्रसे ही प्रसन्न हो जाते हैं, कार्पण्यपूर्ण दो शब्द सुनकर सब कुछ दे सकते हैं; परन्तु साथ ही श्रीरामजीका स्वभाव है कि उन्हें कपट नहीं अच्छा लगता है।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

(५। ४४)

श्रीहनुमान्‌जी सोचने लगे कि मैं मनसे शरणागत हुआ हूँ, वचनसे शरणागत हुआ हूँ, परन्तु मेरी कायिक शरणागति दोषपूर्ण है। मैं जातिसे वानर हूँ, शरीरसे वानर हूँ; परन्तु अभी तक मैंने छद्म ब्राह्मण वेष ही धारण कर रखा है एतावता मेरी शरणागति दोषपूर्ण हो गयी। हा हन्त! मैंने अपने स्वामीसे कपट किया है, जब यह विचार मनमें आया तब दूसरी बार अकुला करके अपने निज स्वरूपको—वानर स्वरूपको प्रकट करके श्रीचरणोंमें गिर पड़े। *'अस कहि परेउ चरन अकुलाई।'* वानर शरीरसे श्रीचरणोंपर गिरनेके पश्चात् श्रीराघवेन्द्र सरकारने श्रीहनुमान्‌जीको उठाकर हृदयसे लगा लिया और अपने नेत्रोंके जलसे सींच करके उन्हें शैतल्य प्रदान किया।

तब रघुपति उठाइ उर लावा।
निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥

'**तब**' का भाव कि जब श्रीहनुमान्‌जी मन, वचन, शरीरसे शुद्ध निष्कपट भावसे प्रपन्न हुए तब। किं वा जबतक श्रीहनुमान्‌जीने कपट शरीर—ब्राह्मण शरीरका परित्याग नहीं किया तबतक श्रीरामजीने उनसे बात तक नहीं की। इस प्रसङ्गके द्वारा श्रीरामजीने एक मर्यादा स्थापित कर दी कि हमें असली वानर पसन्द हैं; परन्तु नकली ब्राह्मण पसन्द नहीं है।

'निज लोचन जल सींचि जुड़ावा'—श्रीहनुमान्‌जी रुद्रावतार हैं। श्रीशङ्करको जलधारा बहुत प्रिय है। '**जलधारा शिवप्रियः।**' हमें तो ऐसा ज्ञात होता है कि श्रीराघवेन्द्र सरकार कहते हैं कि हे शङ्करस्वरूप हनुमान्! मैं तुम्हारा जैसे जलसे अभिषेक कर रहा हूँ ऐसे शीतल, निर्मल, स्नेहिल, स्वच्छ, जलसे शायद ही किसीने किया हो। अतः *'निज लोचन जल सींचि जुड़ावा।'* अथवा श्रीहनुमान्‌जीके हृदयमें यही वेदना है कि मेरे स्वामी मुझे भूल गये। इस सन्तापसे सन्तप्त

श्रीहनुमान्‌जीको परम कृपालु श्रीरामजी अपनी आँखोंसे अश्रुवर्षणके द्वारा शीतल कर रहे हैं। मानो यह कह रहे हैं कि हे मेरे लाल! मैं तुझे कभी नहीं भूला हूँ, मैं तुम्हें सतत स्मरण करता हूँ। ***'निज लोचन जल सींचि जुड़ावा।'*** श्रीरामचन्द्रजी श्रीहनुमान्‌जीसे कहते हैं—हे कपे! सुनो, तुम अपनेको अपने मनमें न्यून मत जानो, तुम मुझे लक्ष्मणसे दूने प्यारे हो।

(१) ***'कपि'***—'**कम्**' पूर्वक पारक्षणे धातुसे '**इन सर्वधातुभ्यः**' सूत्रमें '**इन्**' प्रत्यय और आकारका लोप होकर 'कपिः' शब्द बनता है जिसका अर्थ है सुखस्वरूप भगवद्‌रसका जो परिरक्षण करता है उसे 'कपि' कहते हैं। '**कं सुखं पाति रक्षतीतिकपिः।**'

(२) श्रीरामचरित्रस्वरूप रसका जो नैरन्तर्येण अतृप्तभावसे पान करते रहते हैं उन श्रीहनुमान्‌जीको 'कपि' शब्दसे अभिहित किया गया है।

रामचरित सुनिबे को रसिया।

(३) **सूर्योग्निः खं मरुद्भावः सोमः सन्ध्याहनी दिशः।**
कं कुः कालो धर्म इति ह्येते दैह्यस्य साक्षिणः॥

(श्रीमद्भागवत ६। १। ४२)

जीव शरीर अथवा मनोवृत्तियोंसे जितने भी कर्म करता है उसके साक्षी रहते हैं, सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, इन्द्रियाँ, चन्द्रमा, सन्ध्या, रात, दिन, दिशाएँ, जल, पृथ्वी, काल और धर्म। इस श्लोकमें 'क' का अर्थ जल है जल रसमय होता है। श्रीरामनामसे बड़ा रस और कोई नहीं है। ***'मनुवा राम नाम रस पीजै'***, '**रामरसायनं पिब।**' श्रीहनुमान्‌जी निरन्तर रामनामामृत रसका पान करते रहते हैं एतावता वे कपि शब्द वाच्य हैं। '**कं उदकं-जलं-रसं-श्रीरामनामामृतरसं पिबतीति कपिः।**'

(४) अत्यन्त बालकपनमें श्रीहनुमान्‌जीने सूर्यमण्डलका ही ग्रास कर लिया था। 'कं' अर्थात् सूर्यका ही पान कर लिया—लील लिया अतएव श्रीहनुमान्‌जी 'कपि' पदवाच्य हैं।

(५) 'कपि' का अर्थ श्रेष्ठ भी होता है। '**कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च**' जिसका अर्थ इस प्रकारसे किया जाता है कि हे श्रेष्ठ मनवाले—उत्तम स्वभाववाले हनुमान् सुनो।

श्रीहनुमान्‌जी भगवत्प्राप्तिके अनन्तर भी अपनेमें न्यूनताकी—ऊनताकी अनुभूति कर रहे हैं। स्वयंको 'अकृतार्थ समझ रहे हैं' अपने मनमें प्रसन्नताका अनुभव नहीं कर रहे हैं, अतः परम कृपालु श्रीरामजीने उन्हें आश्वस्त किया।

जियँ मानसि जनि ऊना।

'तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना'—एक प्रश्न सहज ही मनमें आ जाता है कि श्रीलक्ष्मणजी महाराज इतने दिनोंसे सर्वस्व समर्पणपूर्वक श्रीठाकुरजीकी सेवा कर रहे हैं। उन्होंने भगवान्‌की सेवाके लिए सर्वस्व त्याग कर दिया है। वह अनन्य सेवाव्रती श्रीलक्ष्मणजी सामने उपस्थित हैं और श्रीहनुमान्‌जी अभी अभी आए हैं फिर प्रभुने उन्हें ***'लछिमन ते दूना प्रिय'*** कैसे कह दिया? यह प्रश्न व्यवहारिक दृष्टिसे बिल्कुल ठीक है; परन्तु स्नेहिल दृष्टिसे ठीक नहीं है। एक माताके तीन बच्चे हैं—एक पच्चीस वर्षका, दूसरा तीन वर्षका, तीसरा एक दिनका। अब प्रश्न है कि माताको तीनोंमें सबसे अधिक प्रिय कौन होगा? यद्यपि माताकी तीनोंके प्रति कल्याण कामना है, वह तीनोंकी हितैषी है; परन्तु स्नेहके तारतम्यसे पहलेसे दूसरा, दूसरेसे तीसरा अधिक स्नेहपात्र

है। इसी प्रकार श्रीरामजी भी माता हैं।

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी।
जिमि बालक राखइ महतारी॥

(३। ४३)

उन्हें अभी अभी उत्पन्न हुए नवजात शिशु श्रीहनुमान्‌जीका अधिक प्रिय होना स्वभाविक ही है। सद्य: प्रसूता वत्सला धेनुको सद्य: प्रसूत वच्छ अधिक प्रिय होता है यह असंदिग्ध है। यह व्यावहारिक सत्य ही नहीं है अपितु भावपूर्ण सत्य है और यथार्थ सत्य भी है। श्रीरामजी भक्तवत्सल हैं, इन्हें भी अभिनव शरणागत अधिक प्रिय हैं। समुद्रके तटपर समस्त भक्तोंका समुदाय उपस्थित है। श्रीलक्ष्मण, श्रीसुग्रीव और श्रीविभीषणजी भी उपस्थित हैं। इनके मध्य एक समस्या है—***'केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा?'*** श्रीविभीषणने अपना मत व्यक्त किया। श्रीलक्ष्मणका स्पष्ट मुखर विरोध है, यद्यपि उन्हींकी बात आगे मानी भी जायगी; तथापि उस समय श्रीविभीषणके मतका पूर्ण सम्मान हुआ। यह भक्तवत्सल श्रीरघुनन्दनकी शरणागतवच्छलता ही है। इसी आशयसे श्रीहनुमान्‌जीको श्रीलक्ष्मणसे दूना प्रिय कहा है।

श्रीरामचरितमानसके प्राचीन टीकाकार श्रीकरुणासिन्धुजी महाराजका भाव है—श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामजीको अति प्रिय हैं और श्रीहनुमान्‌जी श्रीराम लक्ष्मण दोनोंको ही अति प्रिय हैं तथा श्रीहनुमान्‌जीको श्रीरामलक्ष्मण दोनों अति प्रिय हैं, अत: प्रभुने कहा—

तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना।

काशीके एक पुराने रामायणी व्यास पं० प्यारेलालजी कहा करते थे कि श्रीरामजीके पास प्रियताकी एक परख है—कसौटी है। जिसपर असली सुवर्ण घिसकर—परखकर रखा हुआ है। यह कसौटी स्वयं श्रीरामजीका मङ्गलमय स्वरूप है, उसी कसौटीपर घिसी हुई सुवर्ण रेखा ही श्रीलक्ष्मणजीका स्नेह है। श्रीगोस्वामीजी श्रीविनय पत्रिकामें कहते हैं।

स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं।

श्रीरामजीका मङ्गल स्वरूप ही पवित्र एवं रुचिर कसौटी है, उस कसौटीपर मैं अपने चित्तरूपी कञ्चनको कसूँगा और देखूँगा कि कैसा है मेरा चित्तरूप कञ्चन? उसमें चमक है या नहीं है? ठाकुरजीको चेहरेकी चमक नहीं चाहिये, उन्हें तो चित्तकी चमक चाहिये अर्थात् आपका मन सुन्दर है या नहीं, भगवान्‌को यही अपेक्षित है। श्रीरामरूप रुचिर कसौटीपर श्रीलक्ष्मणजीकी चित्तरूपी घिसी हुयी सुवर्णरेखा प्रस्तुत है। उस कसौटीपर कोई दूसरी रेखा आजतक घिसी नहीं गयी, यदि घिसी गयी तो बहुत अन्तर रहता है। आज श्रीरामजीके उस परखपर जब श्रीहनुमान्‌जीका चित्तसुवर्ण कसा गया तब यह तो विलक्षण रेखा दिखाई पड़ी। उस विचित्र काञ्चनी रेखाको देखकर प्रभुके मुखसे सहसा निकल गया—

'तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना'

श्रीहनुमान्‌जीकी प्रेरणासे श्रीरामजी श्रीसुग्रीवसे मिले। श्रीसुग्रीव और श्रीरामजीकी मित्रता श्रीहनुमान्‌जी एवं श्रीलक्ष्मणजीकी सन्निधिमें अग्निको साक्षी देकर सम्पन्न हो गयी।

तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ॥

श्रीसुग्रीवने कहा—हे रघुनन्दन! श्रीसीताजी अवश्य मिलेंगी। एक बार मैं अपने मन्त्रियोंके

साथ यहीं पर बैठकर विचार कर रहा था। हे राघवेन्द्र! मैंने श्रीजानकीजीको आकाशमार्गसे जाते हुए देखा है, उस समय वे शत्रुके वशमें थीं और अनेक प्रकारसे विलाप कर रही थीं।

'परबस परी बहुत बिलपाता' इस पङ्क्तिमें 'पर' शब्दके दो अर्थ सम्भव हैं। शत्रु और अन्य। श्रीसीताजी परवश थीं अर्थात् स्वाधीन नहीं थीं, दूसरेके वशमें थीं अथवा शत्रुके वशमें थीं। श्रीसुग्रीवके समाचार निवेदनमें उनकी श्रीसीताजीके प्रति भक्तिका दर्शन होता है, उनकी शालीनता एवं गम्भीरताका दर्शन होता है। ***'परबस परी'*** इस शब्दमें भक्तकविकी मर्यादापूर्ण भक्तिभावनाके दर्शन होते हैं। उन्होंने वस्तुस्थितिका, तत्कालीन परिस्थितिका भी वर्णन किया है; परन्तु अपनी भक्तिपूर्ण मर्यादाका परिरक्षण भी किया है। ***'पर बस परी'***—दूसरेके वशमे थीं भाव कि रथमें थीं अथवा रावणाङ्कमें थीं यह मैं नहीं जानता हूँ। धन्य है, मर्यादाका पालन! धन्य है, लिखनेमें सँभाल!

श्रीसुग्रीव कहते हैं—हे श्रीराम! श्रीजानकीजीने हमारी ओर देखकर 'राम राम हा राम' का उच्च स्वरसे—प्लुत स्वरसे उच्चारण करके अपना वस्त्र डाल दिया।

इस चौपाईमें एक प्रश्न मैं अपने अध्ययन कालसे सुनता आ रहा हूँ कि श्रीसीताजी परम पतिव्रता हैं, पतिव्रताओंके लिये आदर्शस्वरूपा हैं फिर उन्होंने अपने मुखसे अपने पतिका नाम 'राम' कैसे उच्चारण किया? जब कि स्त्रीको पतिका नाम लेना वर्जित है। इस प्रसङ्गमें एक स्मार्त श्लोक बहुत प्रसिद्ध है।

आत्मनामगुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयात् जेष्ठापत्यकलत्रयोः॥

लोकमें भी इस नियमका पालन प्रायः देखा जाता है। श्रीरामचरितमानसमें इस प्रसङ्गके अतिरिक्त किसी प्रसङ्गमें श्रीसीताजीके द्वारा 'राम' नाम नहीं लिया गया है।

यद्यपि श्रीरामका नाम लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है। साधारण मानव जिसका नाम राम हो या कुछ और हो, उसका नाम उसकी पतिव्रता पत्नी न ले यह एक सामान्य नियम है; तथापि श्रीसीताजी तो आचार्य स्वरूपा हैं, यदि वे श्रीरामका नाम स्वयं नहीं लेंगी तो अन्य शिष्योंको, अन्य भक्तोंको उपदेश किस प्रकार करेंगी? श्रीसीताजी ठाकुरजीके परब्रह्म स्वरूपको जानती हैं, आचार्य हैं, उपदेशिका हैं अतः उनके द्वारा नामग्रहणमें कोई आपत्ति हो नहीं सकती है।

दूसरा भाव यह भी है कि आपद्धर्ममें गुरु, पति आदिका नाम आदरपूर्वक सुन्दरातिसुन्दर विशेषणोंसे अलङ्कृत करके लिया जा सकता है अतः श्रीसीताजीके नाम लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

श्रीरामचरितमानस भक्तिप्रधान ग्रन्थ है। मर्यादाका, वर्णाश्रमधर्मका, श्रुतिसेतुका, स्मृतियोंके विधि निषेधका इसमें पूर्ण संरक्षण है। इस दृष्टिसे श्रीरामचरितमानसमें यदि श्रीगोस्वामीजीने किसी भी प्रसङ्गमें श्रीसीताजीके द्वारा 'राम नाम' का उच्चारण नहीं कराया है तो इस प्रसङ्गमें भी यदि बचाया जा सके तो क्या आपत्ति है?

श्रीसुग्रीव आदिका राम नाम लेना युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है। श्रीसुग्रीव अपने मन्त्रियोंके साथ बैठकर विचार विमर्श कर रहे थे। उस समय अचानक उन्हें करुणक्रन्दन सुनाई पड़ा, सुनकर जब उन्होंने आखें उठायीं तब श्रीसीताजीकी

स्थिति, परिस्थिति, गतिका दर्शन करके उनके मुखसे दु:खपूर्ण स्वरमें—सहानुभूतिपूर्ण स्वरमें 'राम राम हा राम' निकल पड़ा तो इसमें क्या आश्चर्य है? श्रीसुग्रीवादि आस्तिक हैं, श्रीरामभक्त हैं, देवताओंके अंश हैं और श्रीहनुमान्‌जीकी तरह महाभक्त उनके बीचमें विराजमान हैं। किसीको दु:खमें देखकर 'राम राम हा राम' यह शब्द दु:खपूर्ण स्वरमें सहसा निकल जाय यह सहज सम्भव है। इस भावसे श्रीसुग्रीव आदिके नाम ग्रहणसे एक स्वाभाविक शङ्का निरस्त हो जाती है।

यह प्रश्न भी लोग प्राय: करते हैं कि पंचवटीसे लेकर लङ्काके मध्यके मार्गमें अनेक प्राणी निवास करते होंगे, बड़ा लम्बा मार्ग है, परन्तु श्रीसीताजीने सुग्रीव आदिके सामने ही वस्त्राभूषण क्यों डाला? इसीसे सम्बन्धित दूसरा प्रश्न है कि उन्हींकी ओर क्यों देखा? ऐसी कौन सी विशेषता इनमें थी? इस प्रकार एक साथ जुड़े हुये ये तीन प्रश्न हैं—इन्हींको क्यों देखा? इन्हींके सामने वस्त्र क्यों डाला? और इनमें क्या विशेषता थी?

इन सभी प्रश्नोंका समाधान एक ही उत्तरमें सन्निहित है। जब श्रीसुग्रीव आदिने श्रीजानकीके करुण क्रन्दनको सुनकर—उनके आर्त्तनादको सुनकर यह अनुमान लगाया कि यह कोई असाधारण देवी है, आर्यललना है, क्रूर राक्षस इनका अपहरण करके ले जा रहा है, तब उनके भावुक एवं आर्द्र कण्ठसे, उच्च स्वरसे 'राम राम हा राम' यह शब्द सहसा—बिना सोचे समझे स्वाभाविक संस्कारवश निकल पड़ा। उनकी भीगी हुई वाणीसे निकला हुआ 'राम' नाम जब श्रीसीताजीने सुना तब उन्होंने सोचा कि इस निर्जन पर्वतपर, पर्वतके भी उत्तुङ्ग शिखरपर बैठकर श्रीरामनामका उच्चारण करनेवाले निश्चय ही श्रीरामभक्त हैं। इन श्रीरामभक्तोंको श्रीरामजी निश्चय ही मिलेंगे और जब मिलेंगे तब यह मेरा वस्त्राभूषण उन्हें दे देंगे। इस प्रकार श्रीसुग्रीवादिके 'राम राम हा राम' इस उच्चारणसे समस्त शङ्काएँ स्वयं ही निर्मूल हो जाती हैं।

अब एक प्रश्न और उठता है कि जब श्रीसुग्रीवादिने 'राम राम हा राम' कहा तो श्रीसीताजीने क्या कहा? इस प्रश्नका उत्तर तो श्रीगोस्वामीजीने दो स्थलोंपर दिया है। प्रस्तुत प्रसङ्ग तो किष्किन्धाकाण्डका है। यह प्रसङ्ग तो श्रीसुग्रीव श्रीठाकुरजीको सुना रहे हैं। जहाँपर श्रीसीताजीने वस्त्र डाला है, अरण्यकाण्डमें वहाँका प्रसङ्ग देखें ***'कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी।'*** श्रीसीताजीने 'हरि' शब्दका उच्चारण किया है। भावप्रवणा श्रीजानकीजीके द्वारा 'हरि' नामके उच्चारणका अत्यन्त भावपूर्ण भाव है। एक ही शब्दमें अनेक भाव निकल गये। श्रीसीताजीने सोचा समय कम है, अधिक बोलनेका, समझानेका समय नहीं है एतावता उन्होंने केवल 'हरि' शब्दका उच्चारण किया है। इस 'हरि' शब्दके अनेक भावपूर्ण भाव इस प्रकार हैं—हे हरे! मैं हरी जा रही हूँ, स्वेच्छासे नहीं जा रही हूँ, जब मनको बरवश हरण करनेवाले श्रीहरि आवें तब उनको मेरा वस्त्र देकर यह सन्देश कहना कि इस दुर्दान्त क्रूर राक्षसके प्राणोंका अपहरण करके मेरे क्लेशका—दु:खका अपहरण कर लें। इस प्रकार श्रीसीताजीने अनेकार्थ व्यञ्जक 'हरि' नामका उच्चारण किया है। भगवती भास्वती श्रीमैथिली तो 'हरि' नामका ही अनुष्ठान करती हैं। 'हरि' शब्दका मुखसे उच्चारण करती हैं और अर्थानुसन्धानपूर्वक मनहरण प्रभुसे प्रार्थना करती

रहती हैं कि हे हरे! मेरे अशेष क्लेशोंका, वियोगज दु:खोंका आप अपहरण कर लें।

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम॥

श्रीसुग्रीवका वचन सुनकर श्रीरामजीने वस्त्र तुरन्त माँगा और श्रीसुग्रीवने सद्य: लाकर समर्पण कर दिया। श्रीरामजीने वस्त्रको हृदयसे लगाकर बहुत सोच किया। महर्षि श्रीवाल्मीकिजीने लिखा है कि श्रीरामजीने प्रियवादी सुग्रीवसे कहा—हे मित्र! अब विलम्ब क्यों करते हो तुरन्त वस्त्र लाओ।

तमब्रवीत् ततो राम: सुग्रीवं प्रियवादिनम्।
आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलम्बसे॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। ६। १३)

'सुग्रीवं प्रियवादिनम्' श्रीसुग्रीवने कहा ***'मिलिहि नाथ मिथिलेसकुमारी'*** इससे बढ़कर और प्रियवादिता क्या हो सकती है? किं बहुना वानरराज सुग्रीवने श्रीसीताजीका चरित्र बड़े प्रेमसे गाया है एतावता प्रियवादी हैं। प्रियवादीका अर्थ ही है 'प्रियाजीका गुणगान करनेवाला।' श्रीहनुमन्नाटकमें लिखा है—श्रीहनुमान्‌जीके द्वारा समर्पित आभूषणोंको देखकर आँसू भरकर श्रीरामजीने कहा—हे लक्ष्मण! मैं समझता हूँ कि ये आभूषण जानकीके ही हैं। तुम भी तो जानते हो देखकर निश्चयपूर्वक कहो, ये आभूषण उन्हींके हैं न?

जानक्या एव जानामि भूषणानीति नान्यथा।
वत्स लक्ष्मण जानीषे पश्य त्वमपि तत्त्वत:॥

(श्रीहनुमन्नाटक ५। ३६)

श्रीलक्ष्मणने आँखोंमें अँसू भरकर कहा, हे नाथ! मैं कुण्डल और कङ्कणको तो नहीं पहचानता हूँ। हाँ, इन नूपुरोंको ही जानता हूँ; क्योंकि प्रतिदिन प्रात:काल प्रणाम करते समय मैं इन्हें श्रीचरणोंमें देखा करता था।

कुण्डले नैव जानामि नैव जानामि कङ्कणे।
नूपुरावेव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

(श्रीहनुमन्नाटक ५। ३६)

अमल अमोल गोल कुण्डल प्रकाशमान,
ऐसो दरसात कोऊ राजभामिनी को है।
तैसे ही अमन्द भुजबन्द चंद ते द्विचंद,
दीपति सुदिव्य दुतिहारी दामिनीको है॥
परम पुनीत पद भूषण अनूप चारु,
पूजनीय संतत त्रिलोक नामिनी को है।
रसिक बिहारी और नहिं पहचानैं एक,
जानैं यह नुपूर हमारी स्वामिनी को है॥
भूषन सुलेत ही पिछाने निज लाड़लीके,
हिय हुलसायो अति रसिक विहारी को।
करि करि प्यार फेरि फेरि तिहि हैरैं श्याम,
कलित केयूर मन्जुरूप उजियारी को॥
चूमि चूमि कुण्डल निहारैं नेह ऊमि ऊमि,
बार बार धारैं कर जानि सुकुमारी को।
भरि भरि नैन बैन बोलैं उर लाय लाय,
हाय यह नूपुर हमारी प्राण प्यारीको॥

श्रीरामजीने श्रीजानकीजीके आभूषणोंको हाथमें लेकर इतना रुदन किया कि वे आभूषण उनके अश्रुजलोंसे धुल गये—उनका मलापनयन हो गया।

प्रत्यर्पितानां कपिपुङ्गवेन राम: स्वकान्ताधृतभूषणानाम्।
संस्कार हान्यात् परिधूसराणां प्रक्षालनं बाष्प जलैश्चकार॥

(चम्पूरामायण ४। १०)

श्रीसुग्रीवजीने श्रीरामजीको आश्वासन दिया कि हे रघुनन्दन! आप चिन्ता छोड़ें, मनमें धैर्य लावें मैं सब प्रकार सेवा करूँगा कि जिससे

श्रीजानकीजी आपको आकर मिलें।

सब प्रकार करिहउँ सेवकाई।
जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई॥

'सब प्रकार'—समस्त भूमण्डलमें अपनी सेनाके वीर, बुद्धिमान् वानरोंको भेजकर श्रीसीताका पता लगाऊँगा। दूसरा प्रकार—यदि आवश्यकता पड़ी तो मैं स्वयं जाकर पता लगाऊँगा। तीसरा प्रकार—हे परन्तप! आपकी प्राणप्रिया प्रियतमा श्रीसीताजी पातालमें हों किं वा आकाशमें हों, मैं उन्हें खोजकर आपके श्रीचरणोंमें समर्पित कर दूँगा।

रसातले वा वर्तन्तीं वर्तन्तीं वा नभस्तले।
अहमानीय दास्यामि तव भार्यामरिन्दम॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। ६। ६)

अपने मित्रकी वाणी सुनकर कृपासागर अत्यन्त बलशाली श्रीरामजी प्रसन्न हो गये और पूछे कि हे सुग्रीव! आप इस वनमें किस कारणसे निवास करते हैं, मुझसे कहें। ***'कृपासिन्धु'***—प्रभुकी कृपा तो प्राणिमात्रपर है, सम्प्रति श्रीसुग्रीवके ऊपर विशेष कृपा है अथवा—कृपालु श्रीरामजी सुग्रीवको सनाथ करनेके लिये ही यहाँ आये हैं। अथवा अन्य जलाशय अपनी गम्भीरता नष्ट करके छिछले हो सकते हैं, उनकी थाह मिल सकती है; परन्तु अगाध गम्भीर सागरकी थाह आजतक कोई नहीं पा सका। इसी प्रकार अन्य देवताओंकी किंवा कृपालुओंकी थाह मिल सकती है; परन्तु कृपापाथनाथ श्रीरघुनाथकी कृपाकी थाह आजतक कोई भी नहीं पा सका है। प्रभुकी कृपा कितनी मात्रामें किस प्राणीपर है अथवा यह करुणामयी कृपा किस प्राणीपर कब हो जायेगी, अथवा यह मङ्गलमयी कृपा किस साधनसे होगी, स्तुतिसे या गालीसे, मारनेसे या प्यार करनेसे, बन्धनसे किंवा मुक्त करनेपर होगी, ब्राह्मणपर होगी या श्वपचपर होगी, विद्वान्पर होगी या मूर्खपर होगी, विषयी पामर प्राणीपर होगी या जीवनमुक्त महाज्ञानीपर होगी इसकी थाह आजतक कोई नहीं पा सका। श्रीसुग्रीवके किस गुणपर ठाकुरजी रीझ गये इसका ठीक ठीक निरूपण कोई नहीं कर सकता है, मात्र इतना ही कहना पर्याप्त है श्रीरामजी कृपासिन्धु हैं। अथवा समयानुसार और जलाशयोंका जल सूख जाता है; परन्तु समुद्रका जल न कभी कम होता है और न कभी सूखता है। इसी प्रकार श्रीसुग्रीवके ऊपर कृपामहोदधि श्रीठाकुरजीकी कल्याणी कृपा सर्वदा बनी रहेगी। न कभी कम होगी न कभी समाप्त होगी।

श्रीसुग्रीवने कहा—हे नाथ! बालि और सुग्रीव हम दोनों भाई हैं। पहले हमारा पारस्परिक प्रेम बहुत था। एक दिन मयदानवका पुत्र मायावी हमारे गाँवमें आया। उसने अर्धरात्रिमें युद्धके लिये बालिको ललकारा। बालिने उसका पीछा किया। वह मायावी दानव एक पर्वतकी गुफामें प्रविष्ट हो गया। बालिने मुझे पन्द्रह दिनतक प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। हे खरारि! मैं वहाँ एकमासपर्यन्त रहा। उस गुफासे रक्तकी धारा निकलते देखकर मैंने अनुमान लगाया कि बालि मर गया। मैं दु:खी मनसे नगरमें आ गया। मन्त्रियोंने हठपूर्वक मुझे राज्य दे दिया। बालि उस दानवका वध करके जब नगरमें आया तब उसने मुझसे शत्रुता कर ली। उसने मुझे मारकर मेरा सर्वस्व तथा मेरी स्त्री छीन ली। हे कृपालो! उसके भयसे मैं समस्त भुवनोंमें भागा फिरा। इस स्थानपर महर्षि मतङ्गके शापके कारण वह नहीं आ सकता है; फिर भी

मैं सर्वदा भयभीत रहता हूँ।

श्रीसुग्रीवके दु:खको सुनकर दीनदयाल श्रीरामजीने प्रतिज्ञा कर ली—हे सुग्रीव! मैं बालिको एक ही बाणसे मार डालूँगा। हे सखा! मेरे बलका आश्रय लेकर तुम चिन्ता करना त्याग दो। मैं सब प्रकारसे तुम्हारा कार्य सम्पन्न करूँगा। आज करुणामयकी मङ्गलमयी करुणा उद्वेलित हो गयी है। करुणाके कपाट खुल गये हैं, करुणा प्रवाहित हो रही है। करुणामय उसी प्रवाहमें कहते हैं कि मैं सब प्रकारसे, करणत्रयसे—मन, वचन, कर्मसे तुम्हारा कार्य सम्पन्न करूँगा।

सखा सोच त्यागहु बल मोरें।
सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥

श्रीसुग्रीवको सहसा विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने श्रीरामजीसे कहा—हे रघुवीर! बालि महाबलवान् और अत्यन्त रणधीर है।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा।
बालि महाबल अति रनधीरा॥

इस प्रसङ्गको पढ़कर श्रीसुग्रीवके प्रति श्रीरामभक्तोंका भाव विकृत हो जाता है। सहसा ऐसा ज्ञात होता है कि सुग्रीवकी प्रभुके प्रति सद्भावना नहीं है, कई लोग उल्टी सीधी आलोचना भी कर देते हैं; परन्तु श्रीसुग्रीवका श्रीरामके प्रति गाढ़स्नेह है। उसीके कारण उन्होंने अपने हृदयके भावोंको निश्छल बालकके समान स्पष्ट कह दिया। वे यह भी कहते हैं कि हे रघुनन्दन! निश्चय ही मैं जानता हूँ कि आपमें और बालिमें महान् अन्तर है अत: उससे मैं आपकी तुलना भी नहीं करता हूँ। आप महावीर हैं अत: आपको भयभीत करनेका प्रश्न ही नहीं है। आप मेरे प्राणके समान प्रिय मित्र हैं। अत: आपके अपमान करनेकी भावना मेरे मनमें आ ही नहीं सकती है; परन्तु बालिके भयङ्कर कर्मोंने मुझे कातर बना दिया है। अपनी उसी कातरताके कारण मुझे अब कोई वीर उसकी तरह ज्ञात नहीं होता है, अत: मैंने ऐसा कहा है।

न खल्वहं त्वां तुलये नावमन्ये न भीषये।
कर्मभिस्तस्य भीमैश्च कातर्यं जनितं मम॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। ११। ८०)

श्रीसुग्रीवने अपने विश्वासके लिये दुन्दुभि दैत्यका अस्थिपञ्जर और तालके वृक्ष दिखाये। श्रीरामजीने उन्हें अनायासेन ढहा दिया।

दुन्दुभि अस्थि ताल देखराए।
बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए॥

श्रीरामजीने अपने श्रीचरणोंके अँगूठेसे अनायासेन दुन्दुभि दैत्यके शरीरके कङ्कालको दशयोजन दूर फेंक दिया।

उत्स्मयित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य चास्थि महाबलः।
पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप सम्पूर्णं दशयोजनम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण १। १। ६५)

इस श्लोकमें '**उत्स्मयित्वा**' शब्द है, जिसका अर्थ 'मुसकराकर' होता है। श्रीरामजीके मुस्करानेका भाव है—अरे सुग्रीव! तू देखकर भी अपने नित्यसखा मुझको नहीं समझ पा रहा है। दूसरा भाव यह भी है कि हे सुग्रीव! तेरी बलपरीक्षणकी कसौटी कितनी हल्की है, एक सशक्त शतघ्नीसे—तोपसे तू मच्छर मारनेको कहता है। तीसरा भाव यह भी है कि अभी हे सुग्रीव! तेरे स्नेहके अधीन होकर मुझे और कितने नाच नाचने पड़ेंगे? चौथा कारण यह भी सम्भव है कि अरे सुग्रीव! तो अब मैं परीक्षा देनेके लिये प्रस्तुत हूँ। दुन्दभिकङ्कालप्रक्षेपण मात्रसे श्रीसुग्रीव सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने कहा

कि हे प्रभो! इस कङ्कालके प्रक्षेपण पर भी यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि बालिका बल अधिक है किं वा आपका; क्योंकि उस समय यह आर्द्र था, रक्तसे लथपथ था, मांसादि से युक्त था और इस समय मात्र हड्डियोंका ढाँचा है, शुष्क है। इन दोनों अवस्थाओंमें महान् अन्तर है।

नात्र शक्यं बलं ज्ञातुं तव वा तस्य वाधिकम्।
आर्द्रं शुष्कमिति ह्येतत् सुमहद् राघवान्तरम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। ११। ८९)

श्रीसुग्रीवने सात तालके वृक्ष दिखाये और यह कहा कि बालिकी भुजाओंमें जब खाज उठती थी, जब युद्धकी इच्छा होनेपर कोई युद्ध करनेके लिये नहीं मिलता था तब वह अपनी वानरी प्रकृतिके अनुसार इन वृक्षोंको हिलाकर—झकझोर कर निष्पत्र कर देता था।

एते ताला महासाराः सप्त पश्य रघूत्तम।
एकैकं चालयित्वासौ निष्पत्रान् कुरुतेऽञ्जसा॥

(श्रीअध्यात्मरामायण ४। १। ७२)

इस तालभेदन प्रसङ्गमें हनुमन्नाटकमें इस प्रकार लिखा गया है। इन सप्ततालवृक्षोंके मूल भाग शेषनागकी पीठपर स्थित थे। ये सातों वृक्ष नाग जातिके थे अतः ये स्वभावतः टेढ़े थे। जब श्रीरामजी इन्हें वेधनेके लिये समुद्यत हुए तब श्रीलक्ष्मणजीने आगे बढ़कर अपने श्रीचरणोंके भारसे दबाकर उन्हें सीधा कर दिया। **'सौमित्रिस्तानकृत सरलाञ्शेष पृष्ठस्थमूलान् भारेणांघ्रेरथ रघुपतिः सन्दधेदिव्यमस्त्रम्।'** जिसे आचार्य अपने चरणरजसे पवित्र कर देते हैं किंवा अपने श्रीचरणोंकी ठोकरसे सुधार देते हैं, उन्हें सद्गति प्राप्त करनेकी—रामाश्रय गति प्राप्त करनेकी योग्यता उपलब्ध हो जाती है।

लक्ष्मणजीने अतिशय प्रीतिके कारण आशङ्कापूर्ण स्वरमें प्रभु श्रीरामजीसे कहा—हे देवाधिदेव! समझकर और सावधान होकर बाण चलाइये; क्योंकि ये तालवृक्ष एक ही बारमें और एक बाणद्वारा ही विद्ध होकर समाप्त होंगे अन्यथा ये मारनेवालेको ही मार डालेंगे। हे रघुनन्दन! ये नाग जातिके वृक्ष हैं। नाग दीर्घमन्यु होते हैं, यदि किसीके मारनेके प्रयाससे बच गये तो मारनेवालेको अवश्य ही समाप्त कर देंगे।

एकदैव शरेणैकेनैव भिन्नकलेवराः।
म्रियन्ते सप्त तालास्तं घ्नन्ति हन्तारमन्यथा॥

(श्रीहनुमन्नाटक ५। ४५)

श्रीरामजीने कहा—हे सुमित्रानन्दन! डरो मत। **'मा भैषीर्मयि सौमित्रे'।** तदनन्तर अपने बाणोंको अभिमन्त्रित करते हुए श्रीरामने कहा—श्रीविश्वामित्रजीके चरणोंमें यदि मेरी भक्ति हो, यदि मैंने ब्राह्मणोंके द्वारा तिरस्कृत होनेपर भी उनके प्रति कभी रोष न किया हो और यदि मेरा मन कभी परस्त्रीपर चलायमान न हुआ हो तो हे बाण! तुम इन तालोंको भेदकर अगाध भूतलमें प्रविष्ट हो जाओ।

भावोऽस्ति चेत्कुशिकनन्दनपादयोर्मे
यद्यस्म्यहं द्विजतिरस्कृतिरोषहीनः।
नान्याङ्गनासु च मनः शर सप्त तालान्
भित्त्वा तदा प्रविश भूतलमप्यगाधम्॥

(श्रीहनुमन्नाटक ५। ४७)

इस प्रकार एक ही शक्तिशाली बाणसे असीम सामर्थ्यशाली श्रीरामचन्द्रजीने कोमल केलेके थम्भके समान सातों तालके वृक्षोंको काट डाला।

एकेनैव शरेण बालकदलीकाण्डप्रभङ्गक्रमात्।
कृत्तेषु प्रथमेषु दाशरथिना तालेषु सप्तस्वथ॥

(श्रीहनुमन्नाटक ५। ४८)

इस प्रकार अशरणशरण, अकारणकरुण करुणावरुणालय भक्तवत्सल दशरथनन्दन रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी श्रीसुग्रीवके ऊपर करुणामयी कृपा करके अपने सामर्थ्यकी भी परीक्षा देकर उनके कार्यमें प्रवृत्त हुए। धन्य है प्रभुकी करुणा!

श्रीरामजीका अतिसामर्थ्य देखकर श्रीसुग्रीवकी श्रीचरणोंमें प्रीति बढ़ गई।

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती।
बालि बधब इन्ह भइ परतीती॥

श्रीसुग्रीवको भगवत्तत्वका परिज्ञान हो गया। उन्होंने कहा—हे प्रभो! अब मेरा मन आपकी कृपासे चाञ्चल्यरहित हो गया। बालि तो मेरा परम हितैषी है जिसकी कृपासे विषाद शमन श्रीसीतारमण आप मिल गये। हे स्वामिन्! अब तो ऐसी कृपा करें कि सब कुछ छोड़कर अहोरात्र आपका भजन करूँ।

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती।
सब तजि भजन करौं दिन राती॥

हे प्रभो! यह मेरी वाणी दिनरात चाटुकारिता—चापलूसी करती रहती है। कभी राज्यकी कीर्ति गाती है, कभी राजाकी कीर्ति गाती है, कभी रानीकी कीर्ति गाती है, कभी वैभवकी कीर्ति गाती है, कभी पत्नीकी कीर्तिका गान करती है। हे नाथ! इसे आप अपने नाम गुण सङ्कीर्तनका, कथा सङ्कीर्तनका चश्का लगा दीजिए यही प्रार्थना है। मेरे हाथ संसारके कर्ममें सदा लगे रहते हैं, कभी ये हाथ गदायुद्ध करते हैं, कभी मुष्टिक युद्ध करते हैं। कभी वृक्षोंको तो कभी पहाड़ोंको अस्त्र बनाकर युद्ध करते हैं। इन्हें आप अपनी और अपने भक्तोंकी सेवाके लिए स्वीकार करें। मेरा यह शरीर सेवाके व्याजसे, प्रणाम करनेके व्याजसे, आपके दर्शन करनेके व्याजसे, आपके पादसंवाहनके व्याजसे, उन श्रीचरणोंकी पादरेणु मस्तकपर धारण करनेके व्याजसे, अहर्निश आपका अङ्ग सङ्ग प्राप्त करे यही मेरी प्रार्थना है।

त्वत्पादपद्मार्पितचित्तवृत्ति
स्त्वन्नामसङ्गीतकथासु वाणी।
त्वद् भक्त सेवानिरतौ करौ मे
त्वदङ्गसङ्गं लभतां मदङ्गम्॥

(अध्यात्मरामायण ४। १। ९१)

श्रीसुग्रीवकी वैराग्य मिश्रित वाणी सुनकर हाथोंमें धनुष बाण धारण करनेवाले श्रीराम हँसकर बोले—हे सखे! जो कुछ तुमने कहा है वह सब सत्य है; परन्तु मेरा वचन मिथ्या नहीं होता।

सुनि बिराग संजुत कपि बानी।
बोले बिहँसि रामु धनुपानी॥
जो कछु कहेहु सत्य सब सोई।
सखा बचन मम मृषा न होई॥

'बिराग संजुत' का अर्थ है—राज्यासक्ति और कलत्रासक्तिरूप मलसे रहित वाणी। इस वाणीको सुनकर श्रीरामजी ***'बोले बिहँसि'*** और अध्यात्म रामायणमें '**सस्मितम्**' कहा है। इसका भाव है—श्रीरामजी हँसकर अपनी प्रसन्नता प्रकाशित कर रहे हैं कि इस भटकते हुए जीवने आज सात्त्विक उपलब्धि कर ली। इसने समझ लिया कि संसारमें भजनीय पुत्र, वित्त, कलत्र नहीं हैं, अपितु भजनीयतत्त्व, सेव्यतत्त्व तो श्रीरामजी ही हैं। श्रीसुग्रीवकी इस कल्याणी भावनासे सरकार प्रसन्न हो गये। अथवा प्रभु अपने मनमें कहते हैं कि हे सुग्रीव! ठीक तो वह है जो तुम कहते हो; परन्तु तुम मेरी लीलाके साधन हो, यदि तुम

राज्य नहीं लोगे तो बालिका वध नहीं होगा और मेरी अनादिकालीन लीलामें व्यवधान हो जायेगा। एतावता मैं तुम्हारी इस ज्ञान वैराग्यकी भावनाको तिरोहित करनेके लिये अपनी योगमायाका आश्रय ले रहा हूँ; क्योंकि तुम्हारे उत्कट ज्ञान वैराग्यको मैं सहज ही दूर नहीं कर पाऊँगा।

मायां मोहकरीं तस्मिन् वितन्वन् कार्यसिद्धये।

अर्थात् अपनी कार्यसिद्धिके लिये भक्तजनमोहिनी योगमायाका श्रीठाकुरजीने आश्रय लिया। वह भक्तजनमोहिनीमाया श्रीरामजीकी हँसीमें निवास करती है।

बोले बिहँसि रामु धनुपानी।

श्रीगोस्वामीजी इस प्रसङ्गमें अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करते हैं—श्रीरामजी नट मर्कटकी भाँति सबको नचाते हैं।

नट मरकट इव सबहि नचावत।
रामु खगेस बेद अस गावत॥

श्रीरामजी नट हैं अर्थात् नटस्थानापन्न हैं ***'सबहि'*** सब लोग मर्कटस्थानापन्न हैं। श्रीरामजी नचानेवाले हैं और सबलोग नाचनेवाले हैं। नचानेवाले केवल रामजी हैं। नाचनेवाले ***'सबहि'*** अनेक हैं। ***'सबहि'*** की शृङ्खला अति विस्तृत है। श्रीरामजी मूर्खको भी नचाते हैं, विद्वान्को भी नचाते हैं। अर्बुदपतिको भी नचाते हैं और वराकापतिको भी नचाते हैं। सम्राट, स्वराट्को भी नचाते हैं, लल्लू बुद्धू जगधरको भी नचाते हैं। बड़े बड़े सद्गुणियोंको भी नचाते हैं और गुणहीनोंको भी नचाते हैं। चाण्डालको भी नचाते हैं और ब्राह्मणको भी नचाते हैं। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त सबको नचाते हैं। इन नचानेवाले अनुपम दिव्य नटकी विशेषता यह है कि नाचनेवालोंको तो सब नचाते हैं, यह तो उनको भी नचाते हैं जो स्वयं नचानेवाले हैं।

श्रीसुग्रीवजीको साथमें लेकर श्रीरामजी चले। श्रीठाकुरजीने सुग्रीवको बालिसे युद्ध करने भेजा। श्रीरामजीका बल पाकर, श्रीसुग्रीव बालिके निकट जाकर गर्जना करने लगे। सुनते ही बालि क्रोधातुर होकर दौड़ा। उस समय बालिकी पत्नी ताराने चरण पकड़कर उसे समझाया—हे नाथ! जिनसे सुग्रीव मिले हैं वे दोनों भाई महान् तेजस्वी और बलवान् हैं। वे कोसलेन्द्रनन्दन श्रीराम लक्ष्मण युद्धमें कालको भी जीत सकते हैं।

सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा।
ते द्वौ बंधु तेज बल सींवा॥
कोसलेस सुत लछिमन रामा।
कालहु जीति सकहिं संग्रामा॥

कविताकाननकोकिल आदिकवि महर्षि श्रीवाल्मीकिकी तपःपूत लेखनीसे निर्झरित ताराके प्रबोध वाक्योंका श्रवण करके मनन करें। ताराने कहा—हे वीरश्रेष्ठ! सुग्रीव असहाय नहीं है। अतः आज आप युद्ध करने न जाइये। हे वानरशार्दूल! मैं मात्र अनुमानसे नहीं कह रही हूँ। आपके बुद्धिमान् पुत्र अङ्गदने हमें सब पता लगाकर सुनाया है। कोसलेन्द्रनन्दन श्रीराममें अनन्त दिव्य सद्गुण हैं। उनके कुछ गुणोंको आप ध्यानसे सुनें।

रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः।
निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परा गतिः॥
आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैकभाजनम्।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो निदेशे निरतः पितुः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। १५। १९-२०)

श्रीरामजी प्रलयकालमें प्रज्वलित अग्निके समान परम तेजस्वी हैं। प्रलयाग्निकी तरह श्रीरामजी समराङ्गणमें परबलामर्दी हैं। साधुओंके

लिये श्रीरामजी 'निवास वृक्ष' हैं—परम सुखद आश्रय हैं। श्रीगोविन्दराजजी लिखते हैं—तारा कहती है कि यदि आप यह कहें कि जिस प्रकार श्रीरामजीने सुग्रीवकी सहायता की है उसी प्रकार मेरी भी तो सहायता कर सकते हैं? इसपर तारा कहती है—जो उनकी छायाकी अपेक्षा करते हैं उनके वे निवासवृक्ष हैं। जैसे वृक्ष अपने आश्रितजनोंका, जो घर्म परिपीड़ित होकर—आतपताप व्यथित होकर वृक्षकी छायाका समाश्रयण करते हैं उनका आनेके साथ साथ तुरत तापापनोदन करते हैं। तदनन्तर अपने सुगन्धित मनमोहक पुष्पोंके द्वारा अनेक सुन्दर सुस्वाद सुमधुर फलोंके द्वारा उनका सर्वेन्द्रिय तर्पण करते हैं—उनकी क्षुन्निवृत्ति करते हैं, उनके घ्राणेन्द्रियका, नेत्रेन्द्रियका तर्पण करते हैं। उनको सब प्रकारका सुख प्रदान करते हैं। ठीक उसी प्रकार सन्त निवासवृक्ष श्रीरामजी भी अपने आश्रितोंका आश्रय लेते ही तापापनोदन करते हैं। तदनन्तर जब भक्त स्वस्थचित्त हो जाता है तब उसकी घ्राणेन्द्रियको अपने दिव्य श्रीविग्रहके मनमोहक सौगन्ध्यसे आपूरित कर देते हैं। उसकी रसनेन्द्रियको अपने उपभुक्त नाना प्रकारके अमृतमय सुस्वादु सुमधुर भोज्य पदार्थोंको प्रदान करके उसकी क्षुधा निवृत्ति करके सन्तृप्त कर देते हैं। इस प्रकार वृक्षकी भाँति ही श्रीठाकुरजी भी अपने आश्रितेांका सर्वेन्द्रिय तर्पण करते हैं।

'निवासवृक्ष' कहकर इस आशङ्काकी भी निवृत्ति कर दी कि सामान्य वृक्षकी भाँति किसी समय छाया रहेगी और किसी समय नहीं रहेगी अर्थात् सार्वकालिकी छाया है। कहा भी है कि सर्वत्र निवास करनेवाले दिव्यस्वरूप श्रीरामवृक्षकी छाया न अधिक शीतल है और न आतप क्लेशदायिनी ही है। वह छाया नरकाङ्गारशमनी है। ऐसी दिव्य मङ्गलमयी श्रीरामवृक्षच्छायाका आश्रय सब मनुष्य क्यों नहीं लेते?

वासुदेवतरुच्छाया नाति शीता न घर्मदा।
नरकाङ्गारशमनी सा किमर्थं न सेव्यते॥

तारा कहती है—हे वानरेन्द्र! सुग्रीवसे द्वेष करनेके कारण हममें तो लेशमात्र भी साधुत्व नहीं है। साधुत्वके सर्वथा अभावमें वे हमारे ऊपर कैसे कृपा करेंगे? वे तो साधुओंके ही 'निवासवृक्ष' हैं। वे तो अनाथोंके रक्षकत्वेन परमाश्रय हैं। विपत्तिका निवारण करके उन्हें सुख प्रदान करनेके कारण ही '**आपन्नानां परागति**' हैं। तारा कहती है—हे स्वामिन्! आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये। मैं जो कुछ भी कह रही हूँ, उसमें आपका मङ्गल सन्निहित है। एतावता मेरी बातको ध्यानसे सुनकर उसका अनुसरण करिये। कोसलराजकुमार श्रीराम और श्रीलक्ष्मण इन्द्रके समान तेजस्वी हैं। वे समराङ्गणमें कालको भी पराजित कर सकते हैं, अतः उनके साथ विग्रह न करके उनका अनुग्रह प्राप्त करें।

प्रसीद पथ्यं शृणु जल्पितं हि मे
न रोषमेवानुविधातुमर्हसि।
क्षमो हि ते कोसलराजसूनुना
न विग्रहः शक्रसमानतेजसा॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। १५। ३०)

ताराकी बात सुनकर बालिने कहा—हे भीरुप्रिये! सुनो, श्रीरघुनाथजी समदर्शी हैं अर्थात् उनका कोई स्वपक्ष परपक्ष नहीं है। हे तारे! श्रीरामजी स्वार्थवश मुझे नहीं मारेंगे और स्वार्थवश वे सुग्रीवसे मित्रता भी नहीं करेंगे। सुग्रीवसे

उनका क्या स्वार्थ सिद्ध हो सकता है? यदि स्वार्थवश ही उन्हें मित्रता करनी होती तो वे मुझसे मित्रता करते। मैं रावणको तत्काल पकड़कर उनके श्रीचरणोंमें ला सकता हूँ। एतावता पहले तो वे मुझे मारेंगे नहीं, यदि सुग्रीवके ऊपर उनकी अहैतुकी कृपा हो गयी तो मुझे मार भी सकते हैं; क्योंकि अपने भक्तोंके लिये वे विषमदर्शी भी हो सकते हैं। बालि कहता है कि यदि सुग्रीवके ऊपर अहैतुकी कृपासे मुझे मारेंगे तो भी मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।

कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौ कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ॥

इस प्रसङ्गमें पूज्य पं० श्रीरामगुलामजी द्विवेदीकी एक कविता बड़ी भावपूर्ण है।

हौं तो वीर बाली समद्वीप वानराली पति,
कैसे कै सुकण्ठप्रति दीनता सुनावौं री।
राम के विभेद नाहीं एक रस विश्वमाहीं,
भेंटके किये ते दशशीश गहि ल्यावौं री॥
कौन हेमग्रीवके मिले ते लाभ लेश उन्हें,
वदत गुलाम राम बात समुझावौं री।
जौ पै मोहि मारिहैं खरारि ह्वै गुहारि ताकी,
त्यागि प्लवगेस अमरेस पद पावौं री॥

इस प्रकार कहकर सुग्रीवको तृणकी भाँति तुच्छ समझकर महाअभिमानी बालि युद्ध करनेके लिये चला। बालि और सुग्रीव दोनों भिड़ गये। युद्ध करते करते बीचमें ही बालीने सुग्रीवको बहुत डाँटा और घूँसा मारकर सिंहकी तरह गर्जन किया। तब सुग्रीवजी व्याकुल होकर भगे और श्रीरामजीसे कहा—हे कृपालो! हे रघुवीर! मैंने आपसे पहले ही कहा था कि बालि मेरा भाई नहीं है अपितु काल है। श्रीरामजीने कहा—हे सुग्रीव! तुम दोनों भाई एक रूप हो, इसी भ्रमसे मैंने उसको नहीं मारा।

एकरूप तुम्ह भ्राता दोऊ।
तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ॥

'एकरूप'—श्रीरामचन्द्रजी श्रीसुग्रीवको समझाते हुये कहते हैं कि हे मित्र! मैंने वह बाण—बालिसंहारक बाण क्यों नहीं चलाया उसका कारण सुनो—तुम दोनोंका अलङ्कार एक सा था, आकार प्रकार, लम्बाई चौड़ाई, चाल ढालमें भी तुममें और बालिमें सादृश्य था। तुम दोनोंका स्वर भी एक सा था। तुम दोनोंका तेज और देखनेका ढंग भी एकसा था। हे सुग्रीव! तुम दोनोंका पराक्रम और लड़नेका ढंग भी एकसा ही लग रहा था। हे वानरश्रेष्ठ! तुम दोनोंके इस प्रकारके रूपसादृश्यको देखकर मैं निर्णय नहीं कर पाया कि इसमें मेरा सुग्रीव कौन सा है? अतः मैं अपना महावेगवान् शत्रुसंहारक बाण नहीं छोड़ सका।

अलङ्कारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च।
त्वं च सुग्रीव वाली च सदृशौस्थः परस्परम्॥
स्वरेण वर्चसा चैव प्रेक्षितेन च वानर।
विक्रमेण च वाक्यैश्च व्यक्तिं वां नोपलक्षये॥
ततोऽहं रूपसादृश्यान्मोहितो वानरोत्तम।
नोत्सृजामि महावेगं शरं शत्रुनिबर्हणम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। १२। ३०—३२)

श्रीगोविन्दराजजी 'अलङ्कारेण' इस शब्दमें एक शङ्का करके उसका समाधान भी स्वयं करते हैं। **'ननु काञ्चनमालारूपो बालिनो विशेषोऽस्ति। सत्यम्, तस्मिन् दिने तन्न धृत्वा गतवानिति ज्ञेयम्'** बालिके जन्मके समयही देवेन्द्र इन्द्रने उसे काञ्चनीमाला प्रदान की थी, वह

अलौकिक शक्ति सम्पन्न थी। उसको बालि सदा धारण किये रहता था। वह माला बालिकी विशेष पहिचान थी। तब श्रीरामजीने '**अलङ्कारेण सदृशौस्थः परस्परम्**' ऐसा क्यों कहा? उत्तर देते हैं कि ठीक है, वह माला बालिकी विशेष पहिचान थी तथापि श्रीसुग्रीवकी गर्जना सुनकर बालि क्रोधान्ध होकर शीघ्रतासे निकल आया, अतः उसने वह माला धारण नहीं की, ऐसा समझना चाहिए। इसके पश्चात् जब सुग्रीवसे पुनः युद्ध करने आयेगा तब काञ्चनीमाला धारण करके ही आयेगा।

संसारमें देखा जाता है कि किसी माताको एक ही दिनमें, कुछ समयके अन्तरसे दो पुत्र उत्पन्न हुए देवदत्त और यज्ञदत्त। दोनोंका स्वरूप एक जैसा है, आकार प्रकार, स्वर, गति, मति, प्रकृति सब सदृश है। प्रायः लोग भ्रममें पड़ जाते हैं, पहचान नहीं पाते हैं कि यह यज्ञदत्त है किं वा देवदत्त।

परन्तु प्रश्न है कि उन बच्चोंकी जननीको कभी भ्रम होता है क्या? न वह देवदत्तको यज्ञदत्त समझती है और न यज्ञदत्तको देवदत्त। इसी प्रकार श्रीरामजीके द्वारा सब समुत्पन्न हैं।

सब मम प्रिय सब मम उपजाए।

एतावता श्रीठाकुरको यह भ्रम नहीं होना चाहिए *'एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ'* अतः मैं पहिचान नहीं पाया। इसीसे संलग्न दूसरा प्रश्न है कि जब श्रीरामजीने श्रीसुग्रीवको आश्वस्त करके भेजा था कि जाओ तुम युद्ध करो, तब फिर आश्वासन देनेपर क्यों नहीं मारा? इसमें क्या कारण है? जब श्रीसुग्रीव लड़नेके लिये गये, उस समय श्रीरामजीने अपनेको वृक्षोंमें छिपा लिया था कि मैं सुग्रीवके बल क्षीण होनेपर उसे मारूँगा; परन्तु उसी समय सर्वान्तर्दर्शी सर्वान्तर्यामी प्राणीमात्रके एकमात्र हितैषी श्रीरामजीके कर्णकुहरोंके पास एक बाणी बार-बार टकराकर श्रीरामजीके बालिवधके निश्चयको शिथिल करने लगी। वह वाणी थी *'समदरसी रघुनाथ'* यह वाणी बार-बार टकराकर मानो यह कह रही है कि बालि भी मेरे अस्तित्त्वको—महत्त्वको मानता ही है, फिर क्या यह वध्य है—मारनेयोग्य है? इस ऊहापोहमें समय निकल गया और श्रीसुग्रीव आकर कहने लगे कि *'बन्धु न होइ मोर यह काला।'* तबतक तो श्रीरामजी निश्चय भी कर चुके थे, अतः प्रभुने कहा—तुम दोनों भाई एक रूप थे अतः मैंने नहीं मारा। अर्थात् बालिकी बात सुनकर भ्रम हो गया था कि तुम दोनों भ्राता एक से ही हो। अन्तर तो कुछ भी नहीं है, फिर मैं तो समदर्शी हूँ। परन्तु मेरे देखते देखते जब बालि समराङ्गणमें मार न सह सकनेके कारण भागते हुए तुम्हारा पीछा करने लगा तो मेरे मनका समस्त भ्रम नष्ट हो गया कि अरे, यह तो बड़ा निर्दयी है, क्रूर है। प्राण बचाकर भागते हुये भयभीत व्यक्तिका पीछा कर रहा है। यह तो महान् अपराध कर रहा है, ऐसे अपराधीको तो मारना ही चाहिए। हे सुग्रीव! अब मेरा भ्रम मिट चुका है, अब तुम पुनः जाओ। इस बार वह मारा जायेगा।

पण्डित शिवलाल पाठकजी इस प्रसङ्गमें एक दोहा लिखते हैं—जिसका अर्थ है कि युद्ध करते समय—मल्ल युद्ध करते समय, श्रीसुग्रीव और बालि दोनों ही नखसे शिखतक लिपट करके एक रूप हो गये थे। श्रीरामजी कहते हैं—मैंने इसलिए बाण नहीं चलाया कि बाण चलानेसे एकको लगकर दूसरेको लगेगा और इस तरह दोनों मर जायेंगे।

कहत भानुपति मम वचन मान सत्य जियँ जान।
लपटे नख शिख रूप दोउ उर एक वध युगहानि॥

इस प्रकार श्रीरामजीने अपने करारविन्दोंसे सुग्रीवके शरीरका स्पर्श किया, जिससे उनका शरीर वज्रके समान हो गया और उनकी समग्र वेदना नष्ट हो गयी। फिर श्रीरामजीने उनके कण्ठमें फूलोंकी माला डाल दी और उन्हें विशाल बल देकर युद्ध करनेके लिये भेजा।

कर परसा सुग्रीव सरीरा।
तनु भा कुलिस गई सब पीरा॥
मेली कंठ सुमन कै माला।
पठवा पुनि बल देइ बिसाला॥

'मेली कंठ सुमन कै माला'—(१) बालि और सुग्रीवका पार्थक्य करनेके लिये श्रीरामजीने सुग्रीवके कण्ठमें माला पहना दी कि अब हमें ज्ञात हो जायेगा कि कण्ठमें माला धारण करनेवाला ही हमारा सुग्रीव है। (२) श्रीरामजीने उन्हें अपने हाथोंसे माला पहनाई कि बालि इन्द्रकी कृपासे प्राप्त मालासे बलवान है तो आज मैं तुम्हारे स्नेहिल भावसे, तुम्हारे सर्वस्वसमर्पण भावसे प्रसन्न होकर दिव्य सुमनमाला धारण करा रहा हूँ। देखनेमें तो यह सुमन—पुष्प माला है, परन्तु वास्तवमें यह सु-मन—शोभन हृदय माला है, इसमें मेरे हृदयके भाव पिरोये हुए हैं। अब यह माला उस मालासे नहीं अपितु संसारकी किसी भी शक्तिसे कम प्रभावशाली कथमपि नहीं होगी। हे सुग्रीव! तुम इसे मात्र माला न समझना यह तो अभय प्रदान करनेवाला बलपुञ्ज है।

(३) महर्षि श्रीवाल्मीकिने लिखा है कि श्रीरामजीने अपने प्राणप्रिय अनुज श्रीलक्ष्मणको आज्ञा दी कि हे लक्ष्मण! यह गजपुष्पी—नागपुष्पी लता जो खिली हुई है, यह लता साधारण नहीं है, शुभलक्षणा है। इसके धारण करनेसे ही श्रीसुग्रीवका मङ्गल होगा। इसे उखाड़कर सुग्रीवके कण्ठमें बाँध दो।

गजपुष्पीमिमां फुल्लामुत्पाट्य शुभलक्षणाम्।
कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य सुग्रीवस्य महात्मनः॥
(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। १२। ३९)

मानो अशरणशरण श्रीरामजी कह रहे हैं—हे सुग्रीव! मेरे लक्ष्मण जीवाचार्य हैं। आज यह तुम्हारे कण्ठमें पुष्पकी माला डालकर तुम्हें विधिपूर्वक समाश्रित कर रहे हैं—श्रीवैष्णव बना रहे हैं, अब तुम्हें किसीका भी भय नहीं है। ये जीव जब आचार्यके द्वारा शरणागति प्राप्त कर लेते हैं तब उनके योगक्षेमकी चिन्ता मैं करता हूँ, उनके शत्रुओंके नाशकी चिन्ता भी मैं ही करता हूँ, इसीलिये यह माला कण्ठमें पहनाई गई है।

'कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य' यह प्रभुकी आज्ञा है और श्रीलक्ष्मणजीने श्रीसुग्रीवके कण्ठमें ही धारण कराया है। **'लक्ष्मणो गजपुष्पीं तां तस्य कण्ठे व्यसर्जयत्।'** अध्यात्मरामायणमें कण्ठ शब्द तो नहीं आया है 'बद्ध्वा' शब्द आया है। **'लक्ष्मणस्तु तदा बद्ध्वा'**—कण्ठी बाँधी ही जाती है। श्रीतुलसीजीने तो ***'मेली कंठ'*** लिखा है।

इस प्रकार श्रीरामजीने श्रीसुग्रीवको प्रपन्न बनाकर—यह माला धारण कराकर मानो घोषणा कर दी—हे बालि! अब मैं समदर्शी नहीं हूँ सुग्रीव मेरा शरणागतभक्त है, मात्र मित्र नहीं है अतः 'मैं इसके लिए विषमदर्शी भी हूँ।' इसकी रक्षा करना मेरा मुख्य कर्तव्य है। मेरा प्रपन्न भक्त मेरे लिए सब कुछ छोड़कर मेरे चरणशरणमें आता है एतावता उसको छोड़कर अपनी अनपायिनी

प्राणप्रिया श्रीलक्ष्मीजी—श्रीसीताजीको भी मैं नहीं चाहता हूँ। यहाँ तक कि मैं अपने आपको भी उनसे बढ़कर नहीं चाहता हूँ। आत्मामें रमण करनेके कारण ही मैं आत्माराम कहलाता हूँ; परन्तु प्रपन्नभक्तोंको छोड़कर मैं उस आत्मा को भी नहीं चाहता हूँ, किं वा अपने सच्चिदानन्दमय विग्रहको भी नहीं चाहता हूँ।

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा॥

(श्रीभागवतजी ९। ४। ६४)

इस प्रकार कण्ठमें माला धारण कराके श्रीरामने श्रीसुग्रीवजीको शरणागतभक्त—श्रीवैष्णव बना लिया। (४) श्रीगोस्वामीजीने सुमनकी माला लिखकर सबके भावका समादर किया है। इसके पश्चात् बालि और सुग्रीवमें अनेक प्रकारका युद्ध हुआ। अन्तमें सुग्रीव जब हृदयसे हार गये तब श्रीरामजीने बालिके हृदयमें बाण मार दिया। श्रीरामजीके प्रचण्ड बाणके लगते ही बालि व्याकुल होकर भूमिपर गिर पड़ा। परन्तु श्रीरामचन्द्रजीको सामने देखते ही उठकर बैठ गया। बालिके हृदयमें तो प्रीति थी; परन्तु मुखसे कठोर वचन श्रीरामजीकी ओर देखकर बोला।

हृदयँ प्रीति मुख बचन कठोरा।
बोला चितइ राम की ओरा॥

पहले तो बालिका हृदय नाना प्रकारके अभिमानोंसे परिपूर्ण रहता था, वाणी और कर्मसे भी अभिमान टपकता रहता था। इस प्रकार मन, वचन, कर्म तीनोंमें अभिमान ही भरा रहता था; परन्तु अब सौभाग्यवान् बालिके हृदयमें प्रेम ही प्रेम भरा है, उसका हृदय स्नेहमय हो गया है। अब तो श्रीसुग्रीवके प्रति भी उसके हृदयमें क्रोध, ईर्ष्या, घृणा नहीं है। यदि हृदयमें प्रीति है—रामप्रेम है और वाणीमें कठोरता है तो श्रीरामजीके दरबारमें उसका प्रवेश है।

बचन बेष तें जो बनइ सो बिगरइ परिनाम।
तुलसी मन तें जो बनइ बनी बनाई राम॥

(श्रीदोहावली १५४)

मन, वचन, कर्म तीनों सुधर जायँ, यदि इन तीनोंका ऐक्य हो जाय तब तो वह निश्चित रूपसे महात्मा है।

'मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।'

ऐसे महात्माका तो सर्वत्र सर्वविध कल्याण ही है।

सूधे मन सूधे बचन सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि रघुबर प्रेम प्रसूति॥

(श्रीदोहावली १५२)

यद्यपि सन्तका यही लक्षण है, सन्तको ऐसा ही होना चाहिए। इनमेंसे यदि एक भी बिगड़ जाय तो संसारकी दृष्टिमें उपहासास्पद हो जाता है, संसारकी दृष्टिमें वाणी और क्रियाकी विशेष महत्ता है। मन विकृत हो तो भी बात बनी रहेगी, क्योंकि संसारी मन नहीं देखता है, वह तो चिकनी चुपड़ी बातें सुनता है और छलपूर्ण कर्म देखता है; परन्तु हमारे करुणासिन्धु श्रीरामजीके दरबारमें तो शुद्ध मनवालेका प्रवेश है।

निर्मल मन जन सो मोहिं पावा।

यदि मन शुद्ध है, प्रीति परिपूरित है और वाणी और कर्मसे बात बिगड़ गई है तो चिन्ताकी बात नहीं है। मेरे श्रीरामजी तो मनकी शुद्धता देखकर ही अपना लेते हैं।

कहत नसाइ होइ हियँ नीकी।
रीझत राम जानि जन जी की॥

(१। २९)

बालिने कहा—

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं।
मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥
मैं बैरी सुग्रीव पियारा।
अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥

बालिके तीन प्रश्न हैं। तीनों ही प्रश्नोंमें बालिने श्रीरामजीकी ईश्वरीय सत्ताको स्वीकार किया है। आपने धर्मकी रक्षाके लिए अवतार लिया है, धर्मकी रक्षाके लिए ईश्वर ही अवतार लेते हैं। बालिका दूसरा प्रश्न है।

मैं बैरी सुग्रीव पियारा?

यह प्रश्न उसने श्रीरामजीको ईश्वर मानकर ही किया है। ईश्वर ही समदर्शी हो सकते हैं किं वा भगवद्रसमें डूबे हुए उनके साधुभक्त भी समदर्शी हो सकते हैं। रागद्वेषसे कलुषित चित्तवाले समदर्शी नहीं हो सकते हैं। श्रीरामजी समदर्शी हैं। बालिका तीसरा प्रश्न है कि आपने मुझे किस अवगुनसे मारा है?—किस अपराधसे मारा है? इस प्रकार यह प्रश्न भी श्रीरामजीको ईश्वर मानकर ही कर रहा है। बालिका यह प्रश्न नहीं है कि आपने मुझे क्यों मारा है? मारनेका तो आपको अधिकार है, आप ईश्वर हैं। मैं तो मेरा अपराध जानना चाहता हूँ। इन तीनों ही प्रश्नोंमें बालिका भ्रम है, बालिने श्रीरामजीकी ईश्वरीय सत्ता तो स्वीकार की है; परन्तु उसे ईश्वरके कार्यमें भ्रम है, ईश्वरने ऐसा क्यों किया? किं बहुना बालिको यह भ्रम है कि ईश्वरने अन्याय किया है। धर्मका तात्त्विक स्वरूप न समझनेके कारण ही बालिका यह प्रश्न है *'धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं.....॥'* यद्यपि छिपकर युद्ध करना अधर्म है, सामना करके युद्ध करना ही धर्म है; परन्तु इस प्रसङ्गमें छिपकर बालिको मारना ही धर्म है। श्रीरामजी तो परम धर्मज्ञ हैं *'धरम धुरीन भानुकुल भानू'* विधर्मका परित्याग करके धर्मका पालन ही किया है। छिपकर मारनेमें अनेक देवताओंके प्राणोंकी रक्षा हो गयी। अनेक निरपराध प्राणियोंका वध नहीं हुआ। अपराधीको दण्ड भी मिल गया।

इसी प्रकार बालिका दूसरा प्रश्न है—

मैं बैरी सुग्रीव पियारा?

इस प्रश्नमें भी उसके शरणागत पालन धर्मके ज्ञानका अभाव ही कारण है। यदि उसे शरणागत पालन धर्मका परिज्ञान होता तो यह प्रश्न कभी न करता। यद्यपि ईश्वर समदर्शी है, यह सामान्य लक्षण है, प्रपन्न विशेष प्रिय है और उसका शत्रु शत्रु है, उसका मित्र मित्र है यह विशेष धर्म है।

मानत सुख सेवक सेवकाईं।
सेवक बैर बैरु अधिकाईं॥

(२। २१९)

इसका उसे ज्ञान नहीं था, अत: उसका प्रश्न है कि—*'मैं बैरी सुग्रीव पियारा'* क्यों?

इसी प्रकार उसका तीसरा प्रश्न भी उसके अज्ञानका ही सूचक है। यदि वह दूसरे धर्मको समझ जाता अर्थात् शरणागत पालन धर्मको समझ जाता तो यह तीसरा प्रश्न उसके मनमें स्वयं ही न उठता। शरणागत भक्तके मारनेका प्रयास ही सबसे बड़ा अपराध है।

'ब्याध की नाईं'—ब्याधकी नाईंका भाव कि आपने व्याधकी तरह केवल छिपकर मारा है। व्याधकी क्रूरता, कठोरता आपके पास कहाँ है? व्याध अपने लक्ष्यका वेध करके प्रसन्न होता है, उसे तड़फता देखकर उसका मन मुदित हो जाता है; परन्तु आप तो मुझे तड़फता देखकर स्वयं

तड़फ उठे हैं। जैसे अपराधी बेटेको खूब मारकर उसे तड़फते देखकर माँ तड़फ उठती है। आपने मुझे व्याधकी तरह छिपकर अवश्य मारा है; परन्तु मेरी पीड़ा निवृत्त करनेके लिये आपने तुरन्त मेरे पास आकर अपने वदनारविन्दका दर्शन देकर मेरी पीड़ा निवृत्त कर दी। *'पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे।'* इसी प्रकारका प्रयोग सरकारने पितृकल्प श्रीजटायुके लिये किया था।

निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर।

(३। ३०)

अनुज बधू भगिनी सुत नारी।
सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई।
ताहि बधें कछु पाप न होई॥

श्रीरामचरितमानसमें और श्रीवाल्मीकीय रामायणमें भी श्रीरामचन्द्रजीने बालिके प्रश्नके उत्तरमें कई कारण दिये हैं। वे सभी कारण विचार करनेपर बालिमें घटित होते हैं; परन्तु प्रधान कारण बालिवधमें उसका अनुजवधूके प्रति कुदृष्टिका होना तथा उससे बलात् अनुचित सम्बन्ध स्थापित करना है। श्रीगोस्वामीजीने इसीलिये उसके अपराधोंमें इस अपराधका सर्वप्रथम उल्लेख किया है। कन्या, भगिनी, पुत्रवधू, अनुजवधूमेंसे सर्वप्रथम अनुजवधूका भी उल्लेख इसी कारण है कि बालिका मुख्य अपराध भी यही है। यह भी अकाट्य अपराध है। इसी उत्तरसे बालि सन्तुष्ट हो गया और उसने अनुभव कर लिया कि मैं अपराधी हूँ तथा वधके योग्य ही था। गोस्वामीजीका एक दोहा इस प्रसङ्गमें मनन करने योग्य है।

बंधु बधू रत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि।
तुलसी प्रभु सुग्रीव की चितइ न कछू कुचालि॥

(श्रीदोहावलीजी १५७)

श्रीअध्यात्मरामायणमें भी श्रीरामचरितमानससे मिलता जुलता भाव अभिव्यक्त है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणमें भी श्रीरामजीने कहा है—हे बालि! इस महात्मा—उदारचेता सुग्रीवके जीते जी तुम इसकी पत्नी रुमाका कामके वशमें होकर उपभोग करते हो, जो तुम्हारी पुत्रवधूकी तरह है। एतावता तुम व्यभिचारी हो इसलिये मैंने तुम्हारा वध किया है। हे बालि! तुम इस प्रकार धर्मभ्रष्ट हो, स्वेच्छाचारी हो और अपने महामना भाई सुकण्ठकी पत्नीको अपने कण्ठसे लगाते हो। तुम्हारे इसी अवगुणके कारण मैंने तुम्हें दण्ड दिया है।

अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
रुमायां वर्तसे कामात् स्नुषायां पापकर्मकृत्॥
तद् व्यतीतस्य ते धर्मात् कामवृत्तस्य वानर।
भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन् दण्डोऽयं प्रतिपादितः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। १८। १९-२०)

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अंतकाल गति तोरि॥

'सुनहु राम'—(क) हे मेरे परम प्रेमास्पद! आप मेरे ज्ञाताज्ञात समस्त अपराधोंको क्षमा कर दें।

(ख) अतिशय दुःख, अतिशय प्रसन्नता, अतिशय ग्लानि और अतिशय आश्चर्य आदिकी परिस्थितिमें भक्तहृदय व्यक्तिके मुखसे सहसा 'राम' नाम निकल जाता है। बालिके हृदयमें इस समय अतिशय ग्लानि है कि हा हन्त! मैंने अपनी निकृष्ट बुद्धिबलका गर्व करके अपने स्वामीसे अनुचित भाषामें अनुचित प्रश्न करके इनको कितना कष्ट दिया है। इनका अपमान किया है।

इन बातोंका स्मरण करके बालिका हृदय अतिशय ग्लानिपरिपूरित हो गया और उसके मुखसे सहसा *'सुनहु राम'* शब्द निकल गया।

(ग) हे मेरे प्राणाराध्य! आप मेरे इस कलुषित हृदयके समस्त कालुष्यको समाप्त करके मेरे हृदयमें निवास करिये; क्योंकि 'राम' नामका अर्थ ही है **'रेण रामवाचक महामन्त्ररकारोच्चारणेन अमति आश्रित हृदये प्राप्नोतीति रामः'** अर्थात् जो 'राम' शब्दके 'रा' मात्रका उच्चारण कर लेता है, उसके हृदयमें भगवान् श्रीराम स्वयं निवास करते हैं।

'स्वामी'—स्वामी शब्दका हृदयके अन्तरालसे उच्चारण करके बालि कह रहे हैं कि आप मेरे जन्म जन्मके स्वामी हैं और मैं आपका जन्म जन्मका सेवक हूँ। हे स्वामिन्! मेरा स्वामी सेवक सम्बन्ध स्वीकार करके मुझे निहाल कर दें।

'चल न चातुरी मोरि'—मैं जानता था कि मैं सापराध हूँ। आपके बताये हुये एक एक अपराध—समस्त अवगुण मुझमें हैं; परन्तु मैं इतने निकृष्ट हृदयका प्राणी हूँ कि आपको अपनी बुद्धिकी चातुरीसे शास्त्रार्थमें पराजित करना चाहता था। परन्तु हे सर्वज्ञ! हे वचन रचना नागर! आपने अपनी सशक्त वाणीके द्वारा मेरे समस्त कुतर्कोंका अपाकरण करके मुझे निरुत्तर कर दिया। आपकी बुद्धिके सामने मेरी एक भी नहीं चलने पायी।

प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलिर्वानरेश्वरः।
यत् त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तत् तथैव न संशयः॥
प्रतिवक्तुं प्रकृष्टे हि नापकृष्टस्तु शक्नुयात्।
यदयुक्तं मया पूर्वं प्रमादाद् वाक्यमप्रियम्॥
तत्रापि खलु मां दोषं कर्तुं नार्हसि राघव॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। १८। ४५-४६)

वानरेन्द्र बालिने अञ्जलिबद्ध होकर श्रीराघवेन्द्रसे कहा—हे नरशार्दूल! आपने जो कुछ भी कहा है वही ठीक है, इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं है। भाव यह है कि मैंने जो कुछ भी कहा था वह मेरा अनर्गल प्रलापमात्र था। हे राघवेन्द्र! आपकी भाँति उत्कृष्ट कोटिके पुरुषकी तर्कपूर्ण, धर्मसङ्गत, शास्त्रानुकूल बातका प्रत्युत्तर मेरी तरहका निकृष्ट प्राणी नहीं दे सकता है। हे स्वामिन्! मैंने प्रमादवश पहले जो अप्रिय—कर्णकटु कुतर्क किया था उसमें भी आपको मेरा दोष नहीं मानना चाहिये। उसे मेरा असफल वाक्चातुर्य ही मानना चाहिये; परन्तु वह मेरी वाक्चातुरी आपकी तरह परम समर्थ स्वामीके सामने चल नहीं पायी। आशय यह है कि मेरा बुद्धिबलका गर्व भी खर्व हो गया। हे स्वामिन्! अब मैं जाते जाते एक रहस्यकी बात आपके श्रीचरणोंमें निवेदन कर रहा हूँ। मुझे पहलेसे ही ज्ञात हो गया था कि आप असामान्य महापुरुष हैं, साधारण राजकुमार नहीं हैं, सामान्य वीर नहीं हैं। आप तो पूर्णब्रह्म परात्पर मेरे आराध्य हैं, परन्तु हे कृपासागर! मैं आपकी सहायता करनेमें असमर्थ था; क्योंकि रावणसे अग्निकी साक्षी देकर मैं मित्रता कर चुका था। हे मेरे स्वामी! मैंने सोचा था जो शरीर आपके कार्यमें नहीं आ सकता है उसका विनाश होना ही चाहिये। इसलिये मैं चाहता था कि आपके हाथसे ही मेरी मृत्यु हो। एतावता ताराके वारण करनेपर भी मैं सुग्रीवसे द्वन्द्वयुद्ध करने चला आया।

त्वत्तोऽहं वधमाकाङ्क्षन् वार्यमाणोऽपि तारया।
सुग्रीवेण सह भ्रात्रा द्वन्द्वयुद्धमुपागतः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। १८। ५७-५८)

सुनत राम अति कोमल बानी।
बालि सीस परसेउ निज पानी॥
अचल करौं तनु राखहु प्राना।
बालि कहा सुनु कृपानिधाना॥

जब किसी व्यक्तिको किसी महाभागवत सन्तका अथवा परम पुरुषोत्तम श्रीभगवान्‌का कल्याणमय सङ्ग प्राप्त होता है तब उसके स्वभावमें, प्रकृतिमें, आचरणमें, वाणीमें, व्यवहारमें सद्यः परिवर्तन आता है।

मज्जन फल पेखिअ ततकाला।
काक होहिं पिक बकउ मराला॥

(१। ३)

इस पङ्क्तिके उदाहरणके रूपमें हमें दो प्रसङ्ग बहुत अच्छे लगते हैं। एक लङ्किनीका प्रसङ्ग और दूसरा बालिका प्रसङ्ग। इनमेंसे एकको महाभागवत श्रीहनुमान्‌जीका सङ्ग मिला और दूसरेको साक्षात् परमेश्वर श्रीरामचन्द्रजीका सङ्ग प्राप्त हुआ है। दोनोंमें तत्काल महान् परिवर्तन हुआ है। दोनों की वाणी बदल गयी है। दोनोंका जीवन बदल गया है। दोनोंका जीवनदर्शन बदल गया है। दोनों ही उसके अनन्तर संसारपटलसे ही अदृश्य हो जाते हैं। दोनोंको भगवत्तत्त्वकी समुपलब्धि हो जाती है।

प्रस्तुत प्रसङ्गमें बालिकी वाणीकी विशेषता यही है कि एक तो उसमें अभिमानराहित्य है, दूसरे स्नेहसाहित्य है, तीसरे *'गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा'* की भावना सन्निहित है चौथे अपने अपराधोंकी स्वीकारोक्ति है, पाँचवे पूर्णतया आत्मसमर्पण है, अतः बालिकी अतिकोमल वाणी है और राम मनभावन वाणी है।

बालि सीस परसेउ निज पानी।

(क) म्रियमाण व्यक्तिको कालका भय अधिक व्याप्त होता है, उस समय सबसे बड़ा भय ही यही होता है। 'हाय, हाय! मैं मर जाऊँगा' इस प्रकारका भय, मृत्युका भय—कालका भय बलिको न हो, उसका मरण मङ्गलमय हो, आनन्दमय हो, इस भावनासे श्रीरामचन्द्रजीने अपना सर्वाभयप्रद करस्पर्श बालिके मस्तक पर कर दिया।

मेरे श्रीमहाराजजीका भाव यह है—बालिकी स्नेहसानी भावभीनी वाणी सुनकर भावप्रिय श्रीरघुनन्दन गद्‌गद हो गये। बालिकी कार्पण्यपूर्ण वाणी—आर्द्रवाणी श्रवण करके श्रीरामचन्द्रजी भी आर्द्र हो गये—द्रवित हो गये। प्रभुकी वाणी सहसा मुखरित नहीं हो पायी, कण्ठावरोधके कारण प्रभु सहसा बोल नहीं पाये, अतः प्रभुने भाग्यवान् बालिके मस्तकपर अपना अभयप्रद हाथ रखकर मानों स्नेहमयी-भाषामें—मूकभाषामें—साङ्केतिकभाषामें अपनी भावाभिव्यक्ति की—हे बालि! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। अब तुममें कोई पाप नहीं है। हे वानरेन्द्र! तुमने सबप्रकारके प्रायश्चित एक साथ ही कर लिये हैं, अतएव तुम सर्वथा निष्कल्मष हो गये हो। इस भावसे—

बालि सीस परसेउ निज पानी।

'अचल करौं तनु राखहु प्राना'—परमपूज्य काशी निवासी पं० श्रीरामकुमारजीका भाव है कि बालिने बार बार कहा है कि 'आपने मुझे मारा', इसका उत्तर श्रीरामजी देते हैं कि हमने तुम्हारे शरीरको मारा है, उसे हम अचल किये देते हैं; परन्तु प्राणके सम्बन्धमें प्रभु प्रतिज्ञा कर चुके हैं *'न उबरिहिं प्रान'* उस प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ सकते। इसीसे तनको अचल करने के लिए कहते

हैं और प्राणके लिए कहते हैं कि तुम इनको रखना चाहो तो ये रह सकते हैं, इनका रहना तुम्हारे अधीन है। तुम शरणागत हो, तुम्हारी इच्छाकी पूर्तिके लिए शरणागतके निहोरे मैं प्रतिज्ञा छोड़ दूँगा।

'बालि कहा सुनु कृपानिधाना'—बालिने कहा—हे स्वामी! मैं कृतार्थ हो गया, आप परम कृपालु हैं। कृपालु ही नहीं आप तो कृपानिधान हैं—कृपाके अक्षयकोष हैं। मेरे जैसे अधम प्राणीका आपने अपने बाणरूपी तीर्थसे उद्धार कर दिया।

रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥

(५। ३)

इस प्रकार बालिने श्रीरामकी मारमें प्यारका अनुभव किया। बालिने कहा—हे कृपासागर! मननशील महात्मागण जन्म-जन्म प्रयत्न करते हैं, फिर भी जीवनकी अवसानवेलामें रामनाम मुखसे नहीं निकलता है।

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं।
अंत राम कहि आवत नाहीं॥

'मुनि' का अर्थ है **'मुनिः संलीनमानसः'** जिसका मन श्रीहरिके रूपसुधासागरमें, लीला सुधासागरमें, कथासुधासागरमें पूर्णतः लीन हो गया हो उसे मुनि कहते हैं। इस प्रकारके तपस्वी मुनिगण जन्म-जन्म प्रयत्न करने पर भी अन्त समयमें नामोच्चारण नहीं कर पाते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि प्रयत्न करना—साधन करना छोड़ दें। हताश होने की आवश्यकता नहीं है। श्रीरामजी नामजापकोंपर करुणा करके घोषणा करते हैं कि यदि वातादि दोषके कारण—सन्निपात, लकवा आदि रोगोंके कारण अन्तमें वाणीमें दोष समुत्पन्न हो जाय किंवा स्मृतिभ्रंश हो जाय, इस कारण जीवनभर साधना करनेके बाद भी अन्त समयमें मुखसे रामनाम नहीं निकलता है तो उस जीवनपर्यन्त रामनाम जप करनेवाले भक्तका मैं स्मरण करता हूँ और उसे परमगति प्रदान करता हूँ।

यदि वातादिदोषेण मद्भक्तो मां च न स्मरेत्।
अहं स्मरामि तं भक्तं ददामि परमां गतिम्॥

(श्रीसीतारामनापप्रतापप्रकाश)

पण्डित श्रीशिवलालजी पाठक एक दोहा लिखते हैं।

अन्त राम कहि नहिं फिरत विचरत नित पर धाम।
काशी तुला निमज्जु मन मिलहिं अन्त श्रीराम॥

(मानस अभिप्रायदीपक)

इस दोहाके अनुसार अर्थ है कि मुनिलोग जन्म जन्म अभ्यास करते हैं फिर भी उन साधनोंसे जन्म धारण करना नहीं मिटता है; परन्तु जो नामजापक श्रीरामनामका आश्रय लेकर देहत्याग करते हैं वे फिर निश्चय ही संसारमें नहीं आते हैं। इस दोहामें पाठकजी अपना एक और हार्दिक भाव व्यक्त करते हैं कि किष्किन्धाकाण्ड काशीके तुल्य है। जैसे काशीमें मरनेसे मुक्ति प्राप्त होती है उसी प्रकार किष्किन्धाकाण्डका प्रेमसे स्वाध्याय करनेवालेको श्रीराम मिल जाते हैं।

जन्म जन्म मुनि जतन करि अंतकाल कहि राम।
आवत नहिं संसार में जात तुम्हारे धाम॥

(अज्ञात)

बालिने कहा जिसके नामकी इतनी महती महिमा है, वे प्रभु—आप स्वयं मेरे नेत्रोंके सामने कृपापूर्वक आ गये हैं, क्या फिर ऐसा बानक बनेगा? हे प्रभो! आपने मुझे अभिमानी जानकर शरीर रखनेके लिये कहा; परन्तु ऐसा कौन शठ होगा जो कल्पवृक्षको काटकर बबूलके वृक्षकी

रक्षा करेगा? हे प्रभो! अब मेरी ओर करुणदृष्टिसे निहारिये और मेरा अभिलषित वर दीजिए। मैं अपने कर्मवश जिस योनिमें भी जन्म लूँ, उसी योनिमें आपके श्रीचरणोंमें प्रेम करूँ। जिस समय बालि यह चर्चा कर रहे थे उसी समय उनके नेत्रोंके सामने रोते हुए अङ्गद आकर खड़े हो गये। तब बालिने कहा—हे रघुनन्दन! इसी अङ्गदमें मेरा राग है। मेरी इच्छा है कि यह पुत्रमोह भी मेरे मनसे निकल जाय तो मैं केवल आपका ध्यान करता हुआ सर्वतोभावेन आपके स्वरूपमें अपनी चित्तवृत्ति सन्निहित करके प्राण त्याग करूँ। हे स्वामिन्! इस समय मेरे मनमें तारा नहीं है, सुग्रीव नहीं है, शत्रुता नहीं है, मित्रता नहीं है, राज्यकामना नहीं है, मोक्ष कामना नहीं है। मुझे इस समय एक अङ्गदका ही राग व्यथित कर रहा है। मेरा अङ्गद अभी बच्चा है, अपरिपक्व बुद्धि है, एकमात्र पुत्र होनेके कारण तारानन्दन अङ्गद मुझे बहुत प्यारा है। आप मेरे महाबली पुत्रका परिरक्षण करें।

बालश्चाकृतबुद्धिश्च एकपुत्रश्च मे प्रियः।
तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। १८। ५२)

हे स्वामिन्! हे कल्याणप्रद! हे प्रभो! यह मेरा पुत्र अङ्गद विनय और बलमें मेरी ही तरह है इसे आप अपनी शरणमें अङ्गीकार कीजिए। हे देवताओं और मनुष्योंके स्वामी! इसकी बाँह पकड़कर अपना दासत्व प्रदान करिये।

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए॥

इसके बाद श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें दृढ़ प्रीति करके बालिने अपने पार्थिव शरीरका विसर्जन कर दिया। बालिको अपने प्राणविसर्जनका आभास उसी तरह नहीं हो पाया जिस प्रकार हाथीको अपने गलेसे मालाके गिरनेका आभास नहीं होता है।

राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥

तात्पर्य यह है कि दृढ़प्रीति, दृढ़विश्वास, दृढ़नियम, दृढ़व्रत आदिका होना सफलताके लिये परम आवश्यक है।

बालिके प्रीतिकी दृढ़ताका ही परिणाम है कि मरणकालमें जब कि प्रायः लोगोंकी बुद्धि विकृत हो जाती है, मोहग्रस्त हो जाती है, कर्तव्याकर्तव्यके विवेकसे शून्य हो जाती है, परन्तु उसके विपरीत बालिकी बुद्धि निर्मल हो गयी। बालिकी श्रीरामजीके चरणोंमें अनुरागपूर्ण निष्ठा बढ़ गयी। उनका हृदय राग द्वेषसे शून्य हो गया। न उनकी उस समय किसीसे शत्रुता थी और न किसीके प्रति मोह था। उनका कर्तव्याकर्तव्य विवेक जागृत हो गया था।

बालिने सुग्रीवको बुलाकर उन्हें भी सुन्दर शिक्षा दी और उनको उनके कर्तव्यके प्रति जागरूक किया। बालिने कहा—हे सुग्रीव! यह तारानन्दन अङ्गद तुम्हारे समान ही पराक्रमी है। तुम्हारी प्रतिज्ञापालनमें यह तुम्हारा सहायक सिद्ध होगा। रावणादि राक्षसोंके युद्धमें यह सदा तुम्हारे आगे आगे रहेगा। अतः इसे सँभालकर रखना।

एष तारात्मजः श्रीमांस्त्वया तुल्यपराक्रमः।
रक्षसां च वधे तेषामग्रतस्ते भविष्यति॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। २२। ११)

बालिने अपने भाईको बड़ी महत्वपूर्ण शिक्षा दी है, वे कहते हैं—हे सुग्रीव! श्रीरामजीका कार्य तुम्हें शङ्कारहित होकर करना चाहिए। श्रीरामका कार्य न करनेपर अधर्म होगा। मिथ्या प्रतिज्ञा करनेका पातक भी होगा। श्रीरामजीका अपमान भी होगा। इसका विपरीत परिणाम भी सम्भव है।

राघवस्य च ते कार्यं कर्तव्यमविशङ्कया।
स्यादधर्मो ह्यकरणे त्वां च हिंस्यादमानितः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। २२। १५)

मरते समय अपनी दुर्लभ सम्पत्तिको बालिने अपनी पत्नी ताराको नहीं दिया, प्रिय पुत्र अङ्गदको भी नहीं दिया। बालिके जन्मके समय बालिके पिता देवेन्द्र इन्द्रने काञ्चनीमाला दी थी। वह अतिशय महिमामयी और विजयश्री सम्पन्ना थी। श्रीरामचरणोंके दृढप्रेमी, ईर्ष्या, द्वेष, राग, मोह आदि दुर्भावनासे रहित, स्थिरमति महात्मा बालिने वह माला सुग्रीवको दे दी। बालिने कहा—हे सुग्रीव! मेरी यह काञ्चनी दिव्यमाला तुम धारण कर लो। इस मालामें परमोदारा, विजयादि लक्ष्मीका निवास है। मेरे मर जानेपर—मृतक शवके स्पर्शसे इसकी महिमा नष्ट हो जायेगी, सुतराम् तुम अभी इसी समय मेरे हाथसे इसे धारण कर लो। हे सुकण्ठ! मुझ मरणासन्न बालिका यही अन्तिम स्नेहोपहार है। बालिने सुग्रीवके गलेमें वह माला पहना दी। इस प्रकार श्रीरामचरणोंकी दृढ़प्रीतिसे बालिकी बुद्धि निर्मल हो गयी।

इमां च मालामाधत्स्व दिव्यां सुग्रीव काञ्चनीम्।
उदाराःश्रीः स्थिता ह्यस्यां सम्प्रजह्यान्मृते मयि॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। २२। १६)

मृत्युके समय महान् कष्ट होता है।

जनमत मरत दुसह दुख होई।

परन्तु बालीको तो प्राणत्यागका आभास भी नहीं हुआ, अर्थात् उसका देहाध्यास समाप्त हो गया था। यह बहुत बड़ी उपलब्धि थी कुछ ही क्षणोंमें। बालिके प्राणत्यागके लिए श्रीगोस्वामीका दृष्टान्त भी अनोखा है—***'सुमन माल..... ॥'*** बालि इन्द्रके अंशसे समुत्पन्न थे। सुतराम् उनकी मृत्युके समय देवताओंने पुष्पवर्षण नहीं किया। भावुक महाकविने बालिके प्राणोंकी पुष्पाञ्जलि श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें समर्पित करके अपने परमाराध्य वीरेन्द्र मुकुटमणि श्रीराघवेन्द्रकी विजयश्रीका अभिनन्दन अपनी साहित्यिक भाषामें अनोखे ढंगसे प्रस्तुत किया।

इसके पश्चात् श्रीरामजीने ताराको ज्ञानोपदेश करके भक्तिका वरदान दिया।

उपजा ग्यान चरन तब लागी।
लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥

ताराने कहा—हे स्वामिन्! आपने मुझे ज्ञान दे दिया, जिसके प्रभावसे मैं जान गयी कि आपकी भक्तिके बिना जीवन व्यर्थ है, अतः मेरी बार बार श्रीचरणोंमें प्रार्थना है कि मुझे अपनी परमाभक्ति प्रदान करें। श्रीसुग्रीवको श्रीरामजीने आज्ञा दी—हे सुग्रीव! बालिकी अन्तिम क्रिया विधिवत् सम्पन्न करो। सुग्रीवने बालिका समस्त मृतक कर्म विधिके अनुसार सम्पन्न किया।

तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा।
मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा॥

तदनन्तर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे श्रीलक्ष्मणजीने श्रीसुग्रीवको राज्यपद और अङ्गदको युवराज पदपर अभिषिक्त कर दिया।

राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुबराज॥

भगवान् श्रीरामकी आज्ञासे श्रीसुग्रीव किष्किन्धा

चले गये और भगवान् श्रीराम प्रवर्षण पर्वतपर निवास किये।

जब सुग्रीव भवन फिरि आए।
रामु प्रबरषन गिरि पर छाए॥

देवताओंने श्रीरामजीके इस क्षेत्रमें आनेसे पूर्व ही प्रवर्षणपर्वतपर एक सुन्दर गुफा बना दिया था। उनके मनकी भावना थी कि कृपानिधान श्रीरामजी इस पर्वतपर पधारकर कुछ कालपर्यन्त सुखपूर्वक रहेंगे।

प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखेउ रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ॥

श्रीगोस्वामीजीके 'गिरि' शब्दका प्रयोग भी अनूठा भाव लिये हुए है। 'गिरि' शब्दके दो अर्थ होते हैं। '**गिरति धारयति पृथ्वीमिति गिरिः**' जो पृथ्वीको धारण करे उसे गिरि कहते हैं। यह तो प्रायः पर्वतोंका अर्थ होता ही है। 'गिरि' शब्दका इस प्रसङ्गमें विशेष अर्थ है '**ग्रियते स्तूयते गुरुत्वात् इति गिरिः**' अर्थात् जो लोगोंके द्वारा अपने गुरुत्वके कारण स्तुत्य हो उसे 'गिरि' कहते हैं। आज प्रवर्षणगिरि नाम सार्थक है; क्योंकि श्रीरामके निवास करनेके कारण वे समस्त रामभक्तोंके द्वारा स्तुत्य हो गये हैं।

राम देहु गौरव गिरिवरहू।

श्रीरामजी उस पर्वतपर चातुर्मास्य व्रत करते हुए अनेक प्रकारकी भक्ति, वैराग्य, नृपनीति और विवेककी कथा कहते हुए निवास कर रहे हैं।

कहत अनुज सन कथा अनेका।
भगति बिरति नृपनीति बिवेका॥

श्रीरामजीने वर्षाऋतुका सुन्दर वर्णन किया है। वे कहते हैं—हे लक्ष्मण! वर्षा ऋतुमें आकाशमें मेघ छाये हुए हैं, जब वे गरजते हैं तो बहुत सुहावने प्रतीत होते हैं।

बरषा काल मेघ नभ छाए।
गरजत लागत परम सुहाए॥

श्रीरामने कहा—हे सुमित्रानन्दन! देखो, मयूरोंके समूह बादलोंको देखकर नृत्य कर रहे हैं जैसे वैराग्यवान् गृहस्थ श्रीविष्णुके भक्तको देखकर प्रसन्न हो जाता है।

लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरत रत हरष जस बिष्नु भगत कहुँ देखि॥

'***मोर गन नाचत***' संस्कृतके मयूर शब्दका अपभ्रंश मोर है। मयूर शब्दके दो अर्थ हैं '**मीनाति हन्ति सर्पानिति मयूरः**' अर्थात् जो सर्पोंको समाप्त कर दे उसको मयूर कहते हैं। दूसरा अर्थ है '**मयुरिव राति शब्दायते इति मयूरः**' अर्थात् जो मयुकी तरह—किन्नरकी तरह शब्द बोले, जिसकी वाणीमें किन्नरके स्वरकी माधुरी हो उसे मयूर कहते हैं। भाव यह है कि मधुर शब्द करते हुए मयूर नृत्य कर रहे हैं।

मोरकी एक विशेषता है कि वह घनश्यामको देखकर ही नाचता है और किसीको देखकर किंवा और किसीके सामने वह नहीं नाचता है। सुतराम् आज उसे यह सौभाग्य मिला है कि निखिल ब्रह्माण्डाधिनायक भगवान् श्रीरामचन्द्र उसका नृत्य देख रहे हैं और श्रीलक्ष्मणको दिखा रहे हैं।

वर्षाऋतुके वर्णनमें श्रीगोस्वामीजीने अनेक प्रकारके धर्मोंका और अनेक वर्गके व्यक्तियोंके धर्मोंका सुन्दर निरूपण किया है। एक ही चौपाईमें 'कृषक' और 'बुध' दोनोंका सुन्दर लक्षण देखें।

कृषी निरावहिं चतुर किसाना।
जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥

'चतुर किसाना' (क) किसानकी चतुरता यह है कि प्रमादरहित होकर खेतको निरावे—खेतसे अनावश्यक तृण आदिको खुरपी आदिसे निकालकर बाहर फेंक दे। इसी प्रकार 'बुध' का कर्तव्य है कि मोह, मद, मान आदि अनावश्यक तत्त्वोंको समूल उच्छिन्न कर दे। ये दुर्गुण यदि रहेंगे तो साधना नष्ट हो जायगी।

(ख) जबतक खेतमें अनावश्यक तृण आदि रहेंगे तबतक खेती बढ़ेगी नहीं। इसी प्रकार जबतक मोह, मद, मान आदि अशुद्ध तत्त्व रहेंगे तबतक श्रीरामचरणानुराग वृद्धिंगत नहीं होगा।

मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

(७। ६१)

(ग) खेतमें यदि अनावश्यक तृण आदि रहेगा तो खेतकी समस्त उर्वराशक्ति खींचकर अनावश्यक और अनपेक्षित तृण तो बढ़ जायेंगे; परन्तु अन्न आदिकी आवश्यक वनस्पतियाँ पीली पड़ जायँगी और नष्ट हो जायँगीं। इसी प्रकार मोह, मद, मान आदि दुर्गुण जब जीवनमें विवर्धमान होंगे तब श्रीरामचरणानुराग शिथिल हो जायगा और धीरे धीरे समाप्त हो जायेगा। सुतराम् खेतोंसे धान्येतर पौधोंको चतुर किसान समयसे निकाल देता है और उत्तम साधक जीवनसे मोह, मद, मान आदिको समाप्त कर देते हैं।

(घ) किसानको निरानेमें चतुर होना चाहिए। उसको धान्य और धान्येतर पौधोंका भलीभाँति परिज्ञान होना चाहिए। धानके खेतमें धानकी तरहका एक पौधा और होता है। गेहूँके खेतमें तथा साँवा—श्यामक अन्नके खेतमें भी इन धान्योंके आकार प्रकारसे मिलता जुलता एक और पौधा भी होता है। कभी कभी देखा गया है कि मूर्ख किसान धानको तो काटकर निकाल देता है और धान्येतरको छोड़ देता है। फसल कटनेपर उसके हाथमें धानका दाना भी नहीं लगता है। अतः किसानको चतुर होना चाहिए, निरानेके समय उसकी आँखोंको ठीक होना आवश्यक है। इसी प्रकार भक्ति करनेवाले साधकको भी काम और प्रेमका अन्तर, मोह और प्रेमका अन्तर सूक्ष्म बुद्धिसे विचारना चाहिए। कभी कभी काम किं वा मोहको ही लोग प्रेम समझ लेते हैं। परिणामस्वरूप प्रेम तो अंशमात्र भी उनको नहीं मिलता है हाथमें मोह किं वा काम ही लगता है। जिसका परिणाम त्रिकालमें दुःख ही है। इसलिए इनके समझनेके लिए भी दृष्टिका—ज्ञानका—भगवत्प्रदत्त बुद्धिका उपयोग करना चाहिए।

(ङ) बहुतसे कृषक एक भूल और करते हैं कि गेहूँके खेतके निरानेके समय अनपेक्षित तृणोंको तो निकाल देते हैं, परन्तु कुछ पौधोंको जैसे बथुआ आदिको छोड़ देते हैं कि इसका साग होगा, कुछ दिनमें निकाल देंगे, परिणाम यह होता है कि गेहूँ पतला हो जाता है, बथुआ फैल जाता है। इस प्रकारका लोभ भी चतुर किसानको नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार कुछ साधक यह भूल करते हैं कि धन, वैभव, पुत्र, कलत्र आदि सबका परित्याग कर देते हैं, परन्तु त्यागका अभिमान नहीं छोड़ पाते हैं, परिणामस्वरूप वह अभिमान इतना प्रबल हो जाता है कि साधना दुर्बल हो जाती है, अभिमान ही फैल जाता है—बढ़ जाता है। चतुर साधकको पैनी दृष्टिसे—बुद्धिसे सोचकर उसे भी निकाल फेंकना चाहिये।

श्रीरामजी कहते हैं—हे लक्ष्मण! देखो, वर्षा

ऋतु व्यतीत हो गयी और अतिशय सुहावनी शरद् ऋतु आ गयी।

बरषा बिगत सरद रितु आई।
लछिमन देखहु परम सुहाई॥

(क) वर्षाऋतुके प्रारम्भमें भी श्रीलक्ष्मणको सम्बोधन किया था *'लछिमन देखहु मोर गन'* और अब पुनः शरद्ऋतुके आरम्भमें सम्बोधन कर रहे हैं। (ख) बीच बीचमें सम्बोधन करनेसे श्रोता असावधान नहीं होता है। (ग) बीच बीचमें सम्बोधन करके अपनी बात कहनेकी प्राचीन परम्परा है। (घ) सम्बोधन करके श्रीलक्ष्मणके प्रति अपनी प्रियता तथा श्रीलक्ष्मणकी स्नेहपात्रताकी अभिव्यक्ति कर रहे हैं। (ङ) श्रीलक्ष्मण अपने परमाराध्य श्रीरामको छोड़कर—उनके श्रीचरणोंके अतिरिक्त न कुछ चाहते हैं, न कुछ देखते हैं और न कुछ देखना ही चाहते हैं।

करत न सपनेहुँ लखनु चितु बंधु मातु पितु गेहु।

(२। १३९)

अतः श्रीरामजी कहते हैं—हे भैया! हे मेरे अनुरागी! हे मेरे प्राणाधार! कमसे कम इस शरद् ऋतुमें इस वनकी सुहावनी शोभा भी तो देख लो। इस आशयसे श्रीरघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी सुमित्रानन्दनको सम्बोधित करते हैं। श्रीरामचन्द्रजी शरद्ऋतुका वर्णन करते हुये कहते हैं—हे लक्ष्मण! सरिता और सरोवरोंका निर्मल जल बहुत अच्छा लग रहा है जिस प्रकार मद और मोहसे रहित सन्तोंका हृदय सुशोभित होता है। सरिता और सरमें यह अन्तर है कि जो निरन्तर बहती रहती है, एक पल भी नहीं रुकती है, एक क्षणका भी जिसमें ठहराव नहीं है, कोई बीचमें पड़ाव नहीं है उसे सरिता कहते हैं। जिसमें गति तो है, परन्तु प्रवाहमें बहता नहीं है उसे सर कहते हैं। (क) निवृत्तिमार्गी सन्त सरिताकी तरह हैं और प्रवृत्तिमार्गी सन्त सरके तरह हैं। (ख) जो सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं, सिद्ध हैं, जिनके लिये घर वनमें कोई अन्तर नहीं है, स्त्री पुरुषका भेद जिनकी दृष्टिमें महत्त्वपूर्ण नहीं है वह सन्त सरोवर स्थानापन्न हैं और जो सन्त बन्धन और बाधाओंको नष्ट करके प्रियतमसे मिलनेके लिये चल पड़े हैं, अनन्तसे मिलनेके लिये अनन्तयात्रा स्वीकार करके अनन्तपथपर चल रहे हैं, वे प्रेमी सन्त सरिताकी तरह हैं। जिस प्रकार सरिता अपने प्रियतम नदनदीपति समुद्रसे मिलनेके लिये दौड़ती रहती है, बहती रहती है किसी अन्तरायको सहन नहीं करती है, बड़े बड़े अवरोधक चट्टानोंको तोड़कर बहा ले जाती है, इस प्रकार समस्त अवरोधोंको निरस्त कर देती है और जाकर समुद्रके अङ्कमें प्रविष्ट हो जाती है।

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे अस्तं गच्छन्ति।

(मुण्डकोपनिषद् ३। २। ८)

उसी प्रकार अपने आराध्य श्रीरामजीसे मिलनेको आतुर सन्त अपनी वेगवती साधनाके द्वारा मोहमदके चट्टानोंको तोड़ते हुये अपने परमाराध्य श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें पहुँचकर ही विश्राम लेते हैं।

पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।

(७। १३०)

(ग) जो सन्त घूम घूमकर लोककल्याण करते रहते हैं, जिनका अपना कोई निश्चित स्थान नहीं है, वे स्थान बना भी नहीं सकते हैं, वे एक स्थलपर रह भी नहीं सकते हैं, वे तो परिभ्रमणशील हैं, भ्रमण करना, घूमकर, दौड़कर, भागकर भक्तिरसका परिवेषण करना जिनका शील बन

गया है, स्वभाव बन गया है वे ही सन्त सरिताकी तरह हैं। जो एक आश्रममें निवास करते हैं, यत्र तत्र परिभ्रमणमें उनकी वृत्ति नहीं है, जो साधक, शिष्य भक्त आश्रममें विनम्रभावसे, शुद्ध भगवद् विषयिणी जिज्ञासासे आ गये हैं उनका मार्गदर्शन कर देते हैं वे सन्त सरोवरकी तरह हैं। दोनों प्रकारके सन्तोंकी उपादेयता है, दोनों जगन्मङ्गल करते हैं, दोनों श्रेयः सम्पादन करते हैं। इनमें किसीको उत्तम मध्यम नहीं कहा जा सकता, इनमें कोई छोटा बड़ा नहीं है। दोनों ही महिमामय हैं, समाजको दोनोंकी आवश्यकता है। इसी प्रकार सरिता और सरोवर दोनों ही आवश्यक हैं; परन्तु निर्मल होना आवश्यक है। मद मोह ममताके मलका नाश आवश्यक है। जिस प्रकार सरिता और सर निर्मल जलसे सुशोभित होते हैं उसी प्रकार सन्तगण भी मद और मोहके निवृत्त होनेपर ही सुशोभित होते हैं।

सरिता सर निर्मल जल सोहा।
संत हृदय जस गत मद मोहा॥

श्रीरामजी शरद् ऋतुके वर्णनमें आगे कहते हैं कि मेघोंसे रहित निर्मल आकाशमण्डल उसी प्रकार सुशोभित हो रहा है जिस प्रकार श्रीहरिके भक्त समस्त आशाओंका परित्याग करके सुशोभित होते हैं। शरद् ऋतुमें विना मेघके आकाश सुशोभित हो रहा है, प्रत्येक पदार्थ समयानुसार ही सुशोभित होते हैं। वर्षाऋतुमें इन्हीं मेघोंने नभोमण्डलकी शोभा बढ़ा दी थी, इनकी गर्जना बड़ी सुहावनी लग रही थी।

बरसा काल मेघ नभ छाए।
गरजत लागत परम सुहाए॥

(४। १३)

शरद्ऋतुमें मेघोंके अभावने आकाशको सुशोभित किया है। इसी प्रकार आशा यदि भगवान्‌के सम्बन्ध की है, भगवद्भक्तिकी है, भगवद्कथा श्रवणकी है तो वह आशा वर्षा ऋतुके मेघकी भाँति भक्तोंके हृदयाकाशको सुशोभित करती है। इसके विपरीत यदि आशा संसारी पदार्थोंकी है, विषयसम्बन्धिनी है तो वह दौर्बल्य है, ***'विषय आस दुर्बलता गई'।*** ऐसी आशा शरद् ऋतुके मेघकी भाँति अशोभन है। मेघमें कोई दोष नहीं है, इसी प्रकार यदि आशा भगवत् सम्बन्धिनी है तो श्लाघ्य है, स्तुत्य है, निन्द्य कथमपि नहीं है। श्रीगोस्वामीजी तो एक ही आशाकी अभिलाषा करते हैं।

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

(श्रीदोहावलीजी २७७)

श्रीगोस्वामीजी बड़े रोचक ढंगसे—साहित्यिक ढंगसे 'आशा' का परिचय देते हुए कहते हैं कि संसारके समस्त देवी देवताओंकी यह रीति है कि उनका सेवन करनेसे सुख मिलता है और उनसे विमुख होनेपर शोक मिलता है; परन्तु एक अनोखा देवता है कि जिसके सेवन करनेपर शोककी प्राप्ति होती है और उससे विमुख होते ही विश्राम मिल जाता है। उस अद्भुत देवताका नाम है 'आशा देवी'।

तुलसी अद्भुत देवता आसा देवी नाम।
सेयें सोक समर्पई बिमुख भएँ अभिराम॥

(श्रीदोहावलीजी २५८)

इस प्रसङ्गकी एक अत्यन्त मूल्यवान् पङ्क्ति है, जिसका अर्थ है, जैसे मछलियाँ अपार जलमें सुखी हैं, वैसे श्रीरामजीकी शरणागति प्राप्त होनेपर

एक भी कष्ट नहीं रहता है।

सुखी मीन जे नीर अगाधा।
जिमि हरि सरन न एकउ बाधा॥

'जिमि हरि सरन न एकउ बाधा'—जिस प्रकार मीन अगाध जलमें ही सुखी रहता है। गाध जलमें—छिछले जलमें सुखी नहीं रहता है। गाध जलमें अनेक प्रकारके भय हैं। जलाशयोंके तटपर एक लम्बी चोंचवाला घातक, मांसाहारी पक्षी होता है, वह पक्षी मत्स्यको निगल जाता है—उसकी जीवनलीला ही समाप्त कर देता है अथवा यदि मार न सका तो अपने तीक्ष्ण तुण्डाघातसे—चञ्चुप्रहारसे मत्स्यके शरीरको घायल तो कर ही देता है। दूसरा भय है कि ग्रीष्म ऋतुमें भगवान् अंशुमालीकी प्रचण्ड किरणोंसे जल सन्तप्त हो जाता है, जलके सन्तप्त होनेसे मत्स्य भी सन्तप्त हो जाता है, इसके विपरीत अगाध जलमें किसी पक्षीके तुण्डाघातकी एवं चञ्चु प्रहारके कारण जीवनलीलाके समाप्त होनेका भय नहीं होता है। अगाध जल भगवान् सूर्यकी प्रखर—तीक्ष्ण किरणोंसे सन्तप्त भी नहीं होता है। इसलिये मत्स्यको सन्तप्त होनेका सन्ताप भी नहीं होता है, वह आतपक्लान्त भी नहीं होता है। अगाध जलमें मत्स्य सर्वविध सुखानुभव ही करता है।

सुखी मीन जे नीर अगाधा।

मत्स्यकी ही भाँति अरविन्दनयन, पूर्णानुरागरससारसागर मर्यादापुरुषोत्तम रघुनन्दन श्रीरामचन्द्र प्रभुके मङ्गलमय चरणारविन्दकी शरणमें ही जीव बाधारहित अकुतोभय जीवन व्यतीत कर सकता है। ***'जिमि हरि सरन न एकउ बाधा'।***

हरिशरण कहनेका भाव (क) भगवच्चरण—शरण ग्रहण करते ही जीवनके अशेष क्लेशोंको जन्म जन्मान्तरके नि:शेष दुरितोंको श्रीठाकुरजी अपहरण कर लेते हैं और उसे पापरहित करके सुखी सम्पन्न कर देते हैं।

(ख) भगवान् श्रीहरिके अतिरिक्त और किसीके शरणमें जानेपर जीव पूर्ण सुखी नहीं हो सकता है; क्योंकि श्रीहरिके अतिरिक्त लोग चाहे कितने समर्थ क्यों न हों, सम्राट् स्वराट् ही क्यों न हों अल्पज्ञ हैं। अल्पज्ञत्वात् ये सब मनका भाव जाननेमें नितान्त असमर्थ हैं। भगवान् सर्वज्ञ हैं, वे विश्वके अणु अणुमें परिव्याप्त हैं एतावता जीवके हार्दिक भावका उन्हें स्वत: परिज्ञान है, किसीके सूचनाकी उन्हें आवश्यकता नहीं है वे भृत्य चक्षुष नहीं हैं। वे अनन्त नेत्रोंसे देखनेवाले सहस्राक्ष हैं। सुतराम् शरण्यपदवाच्य तो एकमात्र भगवान् श्रीरघुनन्दन ही हैं। प्रकृति भी शरण्य नहीं हैं; काल और कर्म भी शरण्य नहीं हैं एतावता ***'हरि सरन न एकउ बाधा'*** कहा है।

(ग) हरि शब्दसे सगुण ब्रह्मका ग्रहण है। निर्गुण ब्रह्मसे जीवकी दु:ख निवृत्ति नहीं होती है।

ब्यापकु एक ब्रह्म अबिनासी।
सत चेतन घन आनँद रासी॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी।
सकल जीव जग दीन दुखारी॥

इसलिए सगुण साकाररूप श्रीमद्दशरथनन्दन कौसल्यानन्दसंवर्धन आनन्दकन्द कोसलचन्द्रके अनुराग भरे कटाक्ष मोक्षमण्डित मुखचन्द्र सौन्दर्य माधुर्यामृतका पान करके अशेष दु:ख निवृत्तिके लिए, निर्बाध सुख प्राप्तिके लिए भगवच्चरण शरण ग्रहण करना चाहिए।

(घ) जहाँ अगाध जल होता है, वहाँ झष—मछली मारनेवालेकी वंशी भी नहीं पहुँच पाती है, एतावता मत्स्यको उस बाधाका भी भय नहीं है। भय न होनेसे सुखी है। इसी प्रकार जिसने

श्रीठाकुरजीकी शरणागति स्वीकार कर ली है उसके सन्निकट काल, कर्म, गुण सम्बन्धी कोई बाधा नहीं पहुँच पाती है अतः वह अबाध सुखी रहता है।

(ङ) शरणका अर्थ घर भी होता है, **'शरणं गृह रक्षित्रोः'** जैसे घरमें व्यक्ति पूर्ण सुख और सन्तोषका अनुभव करता है उसी प्रकार श्रीहरिके चरणारविन्दोंको अपना घर समझना चाहिए अर्थात् परमाश्रय मानना चाहिए तभी जीव निर्बाध सुख सम्प्राप्त कर सकता है, अतः कहा ***'हरि सरन न एकउ बाधा'।***

(च) प्रभुके अनन्त नाम हैं और सभी अनुपम हैं। यहाँ 'हरि शरण' में हरि नामके प्रयोगका अत्यन्त रहस्यपूर्ण भाव यह है कि भगवान्‌के अवतारोंमें एक 'हरि' अवतार है **'तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत्'।** यह अवतार गजेन्द्रकी रक्षाके लिये हुआ है। गजेन्द्रकी पुकार सुनकर—गजेन्द्रकी आर्त्त वाणी सुनकर **'वह्निकुण्ड प्रविश्यमाण राजपुत्र न्यायसे'** ठाकुरजी स्वयं दौड़े। इस न्यायकी व्याख्या इस प्रकार है। एक राजाका दरबार लगा था, उसके मन्त्री, सेनापति आदि सब पासमें यथास्थान उपस्थित थे। दरबारमें ही कुछ दूरपर एक अग्निकुण्ड था। उस अग्निकुण्डमें राजाका प्रिय पुत्र गिर पड़ा। उसे गिरते देखकर स्नेहपारवश्यात् अधीर होकर राजा स्वयं उसे निकालनेके लिये दौड़ा। उसने पासमें ही बैठे हुए मन्त्री आदिको आज्ञा नहीं दी। इसीको **'वह्निकुण्डप्रविश्यमाण राजपुत्रन्याय'** कहते हैं। करुणामय श्रीहरि भी इसी न्यायसे अधीर होकर हाथमें चक्र लेकर गजेन्द्रकी रक्षाके लिये और किसीको आज्ञा न देकर स्नेहाधीन होकर स्वयं दौड़े। उसी समय 'हरि' अवतार हो गया।

छन्दोयमेन गरुडेन समुह्यमान
श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः।

(श्रीमद्भागवत ८। ३। ३१)

इसी प्रकार श्रीहरिने गजेन्द्रकी बाधा दूर कर दी। गजेन्द्रकी भाँति जो भी शरणागत आर्त्त होकर आर्त्त स्वरसे प्रभुको पुकारता है श्रीहरि गजेन्द्रकी भाँति उसकी रक्षा करते हैं। इसी भावसे कहा ***'जिमि हरि सरन न एकउ बाधा।'***

इस प्रकार भगवान् श्रीराम श्रीलक्ष्मणसे कहते हैं कि हे तात! वर्षा ऋतु व्यतीत हो गयी। निर्मल शरद ऋतु आ गयी; परन्तु श्रीसीताजीका कोई समाचार नहीं मिला। हे भैया! सुग्रीवने भी मेरी सुधि भुला दी।

सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी।
पावा राज कोस पुर नारी॥

'सुग्रीवहुँ' कहनेका भाव संसारमें प्रलुब्ध प्राणी भूल जाय तो क्या आश्चर्य है; परन्तु सुग्रीवको तो परमात्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त हो गया था उसके मनका चाञ्चल्य समाप्त हो गया था। ***'नाथ कृपा मन भयउ अलोला।'*** ऐसा स्थिरबुद्धि अंचचल मन सुग्रीव भूल गया यह आश्चर्य है। अतः कहते हैं ***'सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी।'***

(२) जिस सुग्रीवको दीन समझकर, स्वार्थरहित होकर मैंने मित्र बनाया उसके दुःखसे दुःखी होकर मैं अपना दुःख भूल गया। अपनी प्राणाधिका प्रियतमा तपस्विनी श्रीसीताको भी भूलकर उसके कार्यका सविधि सम्पादन किया। उसके कार्यको सम्पन्न करके मैंने पूर्व उपकार किया। उस पूर्वोपकारीको भी मेरा कार्य भूल गया। अतः आश्चर्यसे कहते हैं ***'सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी।'***

(३) जिसने अग्निकी साक्षी देकर मुझसे

मित्रता की। श्रीहनुमान् और तुम्हारे ऐसे महान् भक्तोंकी पावन सन्निधि में जिसने मित्रता की वह सुग्रीव मुझे भूल गया यह महान् आश्चर्य है। अत: कहा *'सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी।'*

(४) साधारण भक्तका ज्ञान विलुप्त हो जाय सम्भव है; परन्तु जिस सुग्रीवने मेरी भलीभाँति परीक्षा ली, मेरे सामर्थ्यकी परीक्षा ली और मैंने अपनी सहज करुणाके कारण कई प्रकारसे परीक्षा देकर उसे सन्तुष्ट किया। तदनन्तर जिस सुग्रीवको मेरे स्वरूपका भलीभाँति ज्ञान हो गया था वह सुग्रीव भी मुझे भूल गया। यह महान् आश्चर्य है। इस भावसे कहते हैं।

सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी।

इसके पश्चात् श्रीरामजी कहते हैं—जिस बाणसे मैंने बालिको मारा था, उसी बाणसे कल मैं सुग्रीवको मारूँगा।

जेहिं सायक मारा मैं बाली।
तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली॥

पढ़ने सुननेमें तो यह प्रतिज्ञा ज्ञात होती है; परन्तु वास्तवमें यह प्रतिज्ञा नहीं है अपितु अपने दु:खकी अभिव्यक्ति मात्र है। करुणामय श्रीरामजीको यह क्लेश है मेरे मित्र सुग्रीवका सुयश नष्ट हो जायगा, उसकी प्रतिज्ञा नष्ट हो जायगी तथा उसका सुकृत नष्ट हो जायेगा। सुकृतीका सुकृत नष्ट हो गया तो उसका सर्वनाश हो गया एतावता प्रभु श्रीरामजी क्रोध करके नहीं अपितु क्रोधका अभिनय करके कहते हैं। यदि इसे प्रतिज्ञा मान लेंगे तो कई दोष उपस्थित हो जायेंगे **'सहसाविदधीत न क्रियाम्'** इस न्यायसे जल्दबाजीका दोष आ जाता है और 'स्वार्थ सिद्ध न होनेपर मार दिया' यह दोष उपस्थित हो जायेगा। 'बहुत शीघ्र क्रोध आ जाता है' इस मिथ्यापवादका भी दोष उपस्थित हो जायेगा। यद्यपि श्रीरामजीमें इन दोषोंकी कल्पना करना भी कल्पनातीत पाप है; क्योंकि प्रभुमें तो किन्हीं भी दुर्विचारोंकी गन्धबिन्दु भी नहीं है। श्रीरामजी नीति, प्रीति, परमार्थ और स्वार्थके अपूर्व ज्ञाता हैं। श्रीरामका यह केवल भयप्रदर्शन है। श्रीलक्ष्मणजीसे आगे यही कहेंगे *'भय देखाइ लै आवहु'।* श्रीशङ्करजी इस प्रसङ्गपर श्रीपार्वतीको सावधान करते हुए अपनी टिप्पणी करते हैं। उत्तम कोटिके वक्ताका यही लक्षण है कि जब भ्रमित होनेका, मोहित होनेका किं बहुना ऐसा प्रसङ्ग आवे जिससे उचित शिक्षा मिल सकती है, जिस शिक्षाको ग्रहण करनेसे जीवनकी दिशा परिवर्तित हो सकती है तो पहलेसे ही समझा दे, सावधान कर दे जिससे श्रोताको प्रश्न करनेका अथवा भ्रमित होनेका अवसर ही न मिले। एतावता श्रीशङ्करजी कहते हैं।

जासु कृपाँ छूटहिं मद मोहा।
ता कहुँ उमा कि सपनेहुँ कोहा॥

श्रीलक्ष्मणजीने जब अपने स्वामीको क्रोधयुक्त जाना तब उन्होंने धनुषको सज्ज करके बाण हाथमें ले लिया।

लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना।
धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना॥

तब करुणासागर श्रीरघुनाथजीने अपने छोटे भाई श्रीलक्ष्मणजीको समझाया कि हे तात! सुग्रीव मेरा सखा है, केवल भय प्रदर्शन करके उसको मेरे पास ले आओ।

तब अनुजहिं समुझावा रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव॥

'तब अनुजहि समुझावा' करुणासागर श्रीरामजीके शब्दोंको पढ़कर *'तात सखा सुग्रीव'* इस वाक्यके माधुर्यरसका अनुभव करके कौन

कह सकता है कि अभी कुछ क्षण पूर्व आज ही श्रीरामजी कह रहे थे *'तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली'* और अब कह रहे हैं, 'हे लक्ष्मण! सुग्रीव मेरा सखा है। तुम्हें उसे मारनेके लिए नहीं कहना चाहिए। मैंने तो भावावेशमें कह दिया था इसलिए कि मेरा सखा है। अपने सखामें किसी दुर्गुणकी कल्पना करके मनमें दु:खका होना स्वाभाविक है अत: मैंने कुछ कह दिया क्योंकि *'तात सखा सुग्रीव।'* दोनों वचनोंमें कितना अन्तर है? पहलेमें अतिशय काठिन्य है दूसरेमें अतिशय मार्दव है।

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि॥
(७। १९ ग)

श्रीरामजी कहते हैं—हे भ्रात:! मेरा विश्वास है कि सुग्रीवका आन्तरिक भाव दुष्ट नहीं है। बहुत कालके पश्चात् परिवारको प्राप्त करके वह पारिवारिक मोहमें फँस गया है। सम्प्रति मेरा कार्य उसे अवश्य ही विस्मृत हो गया है; परन्तु तुम्हारे स्मरण कराते ही वह पुन: तन, मन, वचन, कर्म और सम्पूर्ण शक्तिसे सीताशोधमें प्रवृत्त हो जायगा। मेरा विश्वास है कि कालान्तरमें वह मेरा प्रिय सखा सिद्ध होगा। हे सुमित्राकुमार! मेरा यह विश्वास है कि राम रावण समरमें वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति समर्पित कर देगा। प्राणोंको हथेलीपर रखकर वह रावण सदृश दुर्धर्ष, दुर्दान्त शत्रुसे लोहा लेगा। एक दिन तुम्हारा ही नहीं, तुम्हारे समस्त कुटुम्बका—श्रीअयोध्यावासियोंका स्नेहपात्र बन जायेगा। हे लक्ष्मण! सुग्रीवका हृदय बहुत स्वच्छ है, सुतराम् तुम उसपर आन्तरिक क्रोध न करो। इन्हीं भावोंका समावेश भक्त महाकविने *'तब अनुजहि समुझावा'* इस पदमें किया है।

'भय देखाइ लै आवहु'—उसको केवल इतना ही कहकर भय देखाना कि तुम बालिके समान मारे जाओगे।

किंतु भीषय सुग्रीवं बालिवत् त्वं हनिष्यसे।
(अध्यात्मरामायण ४। ५। १३)

इसके मध्यमें एक प्रसङ्ग और है कि श्रीहनुमान्‌जीके प्रबोधनपर श्रीसुग्रीवने श्रीहनुमान्‌जीके माध्यमसे दूतोंको भेजकर वानर यूथोंका आवाहन किया।

इधर श्रीलक्ष्मणजी नगरमें आये। उन्होंने धनुष सज्ज करके कहा—मैं अभी इस नगरको जलाकर भस्म कर दूँगा। तब समस्त नगरवासियोंको व्याकुल देखकर बालिनन्दन अङ्गद श्रीलक्ष्मणके सन्निकट आये।

धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउँ पुर छार।
ब्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार॥

'आयउ बालिकुमार'—श्रीरामचरितमानसके पटलपर श्रीअङ्गदका यह पहला चरित है, अत्यन्त संक्षिप्त है; परन्तु उच्चतम आदर्शसे परिपूर्ण है। इस समय युवराज अङ्गदने अपने दायित्वका अनुभव किया है, यह उनकी विशेषता है। यद्यपि राजाके रहते हुए नगरके संरक्षणका प्रजाजनोंके कल्याणका, बाहरी आक्रमणका सन्धि और विग्रहका, शत्रुता और मित्रताका, जय और पराजयका समस्त दायित्व राजाका ही होता है। परन्तु योग्य राजकुमार अथवा युवराज, राजाके रहते हुए भी प्रजाका अनुरञ्जन करके, प्रजाके सुख दु:खमें सम्मिलित हो करके, प्रजाको सँभाल करके प्रजाके हृदयमें अपना स्थान बना लेता है। श्रीअङ्गद आज अपने प्रजाजनोंके ऊपर आये हुए दु:खका अनुमान करके स्वयं कूद पड़े।

श्रीअङ्गदने लक्ष्मणजीको साष्टाङ्ग दण्डवत्

करके प्रार्थना की। श्रीलक्ष्मणजीने अङ्गदको अभय बाँह दी—निर्भय कर दिया।

चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही।
लछिमन अभय बाँह तेहि दीन्ही॥

श्रीलक्ष्मणके क्रोधको सुनकर श्रीसुग्रीव अत्यन्त भयसे व्याकुल हो गये। उन्होंने श्रीहनुमान्‌जीसे कहा—आप अपने साथमें ताराको लेकर जाइए और विनती करके राजकुमार श्रीलक्ष्मणको समझाइये।

सुनु हनुमंत संग लै तारा।
करि बिनती समुझाउ कुमारा॥

श्रीहनुमान्‌जीने ताराके सहित श्रीलक्ष्मणके पास जाकर विनयपूर्वक उनके यशका वर्णन किया। बुद्धिमती ताराजी कहती हैं—हे विपक्षी वीरोंका नाश करनेवाले राजकुमार! मैंने माना कि श्रीसुग्रीवजीने विषयके वशमें होकर भयङ्कर अपराध किया है, उनका अपराध अक्षम्य है; परन्तु हे सुमित्रानन्दन! वे आपके भाई हैं—श्रीरामजीके सखा होनेके सम्बन्धसे आपके अपने भाई हैं, अतः इन वानरवंशनाथको क्षमा कर दें।

क्षमस्व तावत् परवीर हन्त
स्त्वद् भ्रातरं वानरवंशनाथम्।

श्रीलक्ष्मणको महलमें ले जाकर उनका स्वागत करके श्रीसुग्रीवने उनसे विनम्र वचनोंमें क्षमायाचना की। श्रीलक्ष्मणजी प्रसन्न हो गये। श्रीहनुमान्‌जीने भूमण्डलके वानरोंको आवाहनके लिए दूतोंके जानेका समाचार सुनाया। इसके पश्चात् श्रीरामानुज लक्ष्मणको आगे करके, अङ्गद आदि वानरश्रेष्ठोंको साथमें ले करके प्रसन्न हो करके, श्रीसुग्रीवजी किष्किन्धानगरीसे प्रस्थान किये और उस प्रवर्षण पर्वतपर आये जहाँ श्रीरामजी विराज रहे हैं।

हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगें करि आए जहँ रघुनाथ॥

श्रीसुग्रीवने हाथ जोड़कर प्रणाम करके श्रीरामजीसे कहा—हे नाथ! मेरा किञ्चिन्मात्र भी दोष नहीं है। आपकी माया अतिशय प्रबल है, वह आपकी दयासे ही छूटती है। हे स्वामिन्! देवता, मनुष्य और मुनि सभी विषयोंके वशमें हैं; फिर मैं तो पामर पशु और अत्यन्त कामी वानर हूँ। हे नाथ! नारिनयनबाणसे जो आहत नहीं हुआ, घोर क्रोधरूपी अँधेरी रात्रिमें जो जागता रहता है और लोभपाशसे जिसने अपना गला नहीं बँधाया है, हे राघवेन्द्र! वह मनुष्य आप ही के समान है। श्रीसुग्रीवकी बात सुनकर श्रीराम मुसकराकर बोले तुम मुझे भरतके समान प्रिय हो।

तब रघुपति बोले मुसुकाई।
तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई॥

'मुसुकाई'—करुणामय श्रीरघुनन्दनने मनमें विचार किया कि सुग्रीवको अधिक दण्ड मिल गया। लक्ष्मणने किष्किन्धानगरीमें जाकर अच्छी तरह भय प्रदर्शन किया है। सुग्रीव त्रस्त हो गये हैं। जब लक्ष्मण इन्हें दण्ड दे ही चुके हैं तब पुनः मेरा दण्ड देना ठीक नहीं है, अतः श्रीराम मुसकराकर बोले कि तुम्हारे ऊपर मेरा क्रोध कभी नहीं था। हे सखे! तुम चिन्ता न करो, मैंने तुम्हें हृदयसे क्षमा कर दिया। किं बहुना मुसकराकर मानो कहने लगे कि हे सुग्रीव! तुम मेरे प्रिय मित्र हो, तुम्हारे ऊपर मेरी पूर्णकृपा है। कृपालु ठाकुरकी मनोहर स्मितमें—हासमें कृपाका निवास है।

हृदयँ अनुग्रह इन्दु प्रकासा।
सूचत किरन मनोहर हासा॥

(१। १९८)

'तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई'—दो वस्तुओंमें भेद होते हुए भी जब धर्मगत समता दिखायी जाती है तो उसे उपमा कहते हैं। भाव कि यद्यपि श्रीभरतभावमें और श्रीसुग्रीवभावमें अन्तर है; परन्तु प्रेमी दोनों हैं। दोनों भगवान्‌के प्रिय हैं और धर्मसादृश्य यह है कि श्रीभरत और श्रीसुग्रीव दोनों ही हृदयसे राज्य नहीं लेना चाहते थे; परन्तु श्रीरामजीने दोनोंको ही अपनी गरीयसी आज्ञासे राज्यकार्यमें नियुक्त कर दिया। उस भावसे श्रीरामजीने कहा।

'तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई।' इस प्रकार भगवान् श्रीराम और सुग्रीवकी बतकही हो ही रही थी कि उसी समय वानरोंके समूह आ गये। अनेक वर्णोंके वानरोंके समुदाय सम्पूर्ण दिशाओंमें दिखायी देने लगे।

एहि बिधि होत बतकही आए बानर जूथ।
नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरुथ॥

वानर सेनामें एक भी ऐसा वानर नहीं था जिससे श्रीरामजीने कुशल न पूछी हो अर्थात् सबसे पूछी।

अस कपि एक न सेना माहीं।
राम कुसल जेहि पूछी नाहीं॥

समस्त वानर सुग्रीवका आदेश पाकर जहाँ तहाँ खड़े हो गये। तब श्रीसुग्रीवने सबको समझाकर कहा—हे वानरवृन्द! यह श्रीरामजीका कार्य है और मेरा अनुरोध है कि आपलोग चारों दिशाओंमें जाओ और श्रीजानकीजीको खोजो; परन्तु हे भाइयों! आपलोग एक मासके भीतर लौट आना। अवधिकी सीमाका उल्लंघन करके, जो बिना सीताजीकी सुधिके लौटेगा उसको विवश होकर मरवाना ही पड़ेगा।

ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई।
कह सुग्रीव सबहि समुझाई॥
राम काजु अरु मोर निहोरा।
बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा॥
जनकसुता कहुँ खोजहु जाई।
मास दिवस महँ आएहु भाई॥
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ।
आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ॥

श्रीसुग्रीवके वचनोंको श्रवण करते ही जब तीनों दिशाओंके लिये वानरोंने प्रस्थान कर दिया। उसके पश्चात् श्रीसुग्रीवने अङ्गद, नल और श्रीहनुमान्‌जीको बुलाया। श्रीअङ्गदजी युवराज हैं अतः उनका आवाहन सबसे पहले किया। युवराज राजाका प्रतिनिधि होता है। अथवा सर्वप्रथम युवराजका नाम लेकर सबके उत्साहका संवर्धन किया है। किं वा—पहले आवाहनका भाव यह है कि श्रीरामके कार्यरूपी यज्ञमें सर्वप्रथम मैं अपने प्रिय पुत्र अङ्गदकी नियुक्ति कर रहा हूँ।

बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत।
तब सुग्रीवँ बोलाए अंगद नल हनुमंत॥

श्रीसुग्रीवजीने दक्षिण दिशामें जानेवाले वीरोंको बुलाकर सात पङ्क्तियोंमें उनका उद्‌बोधन किया है। इसमें सेवक धर्मकी सुन्दर व्याख्या है।

सुनहु नील अंगद हनुमाना।
----- जो रघुबीर चरन अनुरागी॥

सबसे पहले नीलका नाम लिया गया है। युद्ध कार्यमें सेनापतिका अतिशय महत्त्व होता है। इस पदपर योग्य व्यक्तिकी ही नियुक्ति होती है। जैसे महाभारतके युद्धमें सबसे पहले अद्वितीय योद्धा श्रीभीष्मपितामहके सेनापतित्वमें दस दिनतक युद्ध हुआ है। नीलका सेनापतित्त्व ही नीलकी गरिमाका और महिमाका परिचायक है। लङ्काके युद्धमें श्रीवाल्मीकीय आदि ग्रन्थोंमें नीलके युद्धका अनोखा वर्णन है। इनके लाघवकी प्रशंसा

श्रीराघव तो करते ही हैं रावण भी करता है। एतावता नीलका सर्वप्रथम सम्बोधन उचित ही है। समस्त वानर श्रीरामजीसे आज्ञा माँग करके और उनके श्रीचरणोंमें प्रणाम करके, प्रभुका स्मरण करते हुये प्रसन्नतापूर्वक दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान किये।

सीय सोध कपि भालु सब बिदा किए कपिनाथ।
जतन करहु आलस तजहु नाइ राम पद माथ॥
तुलसी करतल सिद्धि सब सगुन सुमंगल साज।
करि प्रनाम रामहि चलहु साहस सिद्ध सुकाज॥
संग नील नल कुमुद गद जामवंत जुबराज।
चले राम पद नाइ सिर सगुन सुमंगल साज॥

(श्रीरामाज्ञा प्रश्न सर्ग ३)

'पाछें पवन तनय सिरु नावा'—दक्षिण दिशाकी ओर जानेवाले समस्त वानर वीर श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें प्रणाम करके प्रस्थान कर गये। सबके पश्चात् श्रीहनुमान्‌जीने अपने आराध्यके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया।

सब वानर जा रहे थे और श्रीहनुमान्‌जी सोच रहे थे—अब मेरे स्वामीके श्रीचरणोंका कुछ दिनोंतक वियोग रहेगा, अब कुछ दिनोंतक इस दिव्य श्रीविग्रहके साक्षात् दर्शन नहीं होंगे, अब कुछ दिनोंतक इस अनुपम मुखचन्द्रसे निर्झरित अमृतमयी वाणी श्रवणगोचर नहीं होगी। जितने क्षणोंतक यह दिव्य दर्शन कर लें उतना ही अच्छा होगा।

'जानि काज प्रभु निकट बोलावा'—करोड़ों, अरबों वानर हैं; परन्तु सबकी आशाके केन्द्र विन्दु एकमात्र श्रीहनुमान्‌जी ही हैं। सबको विश्वास है कि कार्य तो इनके द्वारा ही सम्पन्न होगा। वानरेन्द्र श्रीसुग्रीव भी कहते हैं—हे हरिश्रेष्ठ! पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, देवलोक अथवा जलमें भी आपकी गति अप्रतिहत है—कभी बाधित नहीं होती है।

न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये।
नाप्सु वा गतिसङ्गं ते पश्यामि हरिपुंगव॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। ४४। ३)

श्रीसुग्रीव कहते हैं—हे पवननन्दन! समस्त भूमण्डलमें आप अप्रतिम हैं। आपके तेजकी समानता करनेवाला कोई नहीं है, इसलिये हे हनुमन्! जिस प्रकार श्रीसीताकी उपलब्धि हो आप उसी उपायका चिन्तन कीजिये।

तेजसा वापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते।
तद् यथा लभ्यते सीता तत् त्वमेवानुचिन्तय॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। ४४। ६)

श्रीरामजीने निश्चय कर लिया कि कार्य तो श्रीहनुमान्‌जीके द्वारा ही सम्पन्न होना है। इसलिये प्रभुने सोचा यह कार्य हो गया, अतः श्रीरामजीकी इन्द्रियाँ और उनका मन हर्षातिरेकसे प्रफुल्लित हो गया।

तं समीक्ष्य महातेजा व्यवसायोत्तरं हरिम्।
कृतार्थ इव संहृष्टः प्रहृष्टेन्द्रियमानसः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। ४४। ११)

'परसा सीस सरोरुह पानी'—सर्वसमर्थ श्रीरघुनन्दनने अपने करारविन्दोंसे श्रीहनुमान्‌जीके मस्तकका स्पर्श किया। प्रभुने अपने करस्पर्शके द्वारा शक्तिपात करके समर्थको परम समर्थ बना दिया। किंवा—श्रीठाकुरजीने अपने करकमलसे श्रीहनुमान्‌जीके मस्तकका स्पर्श करके अनायासेन समुद्रसन्तरणके योग्य बना दिया; क्योंकि श्रीरामकरकमलोंमें भवसमुद्र सन्तरणका सामर्थ्य विद्यमान है।

सुमिरत श्रीरघुबीरकी बाहैं।
होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहैं॥

(श्रीगीतावलीरामायण ७। १३)

कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी—श्रीरामजीने मनमें जान लिया कि हनुमान्‌जी बलबुद्धि निधान हैं, अतः मनमें प्रमुदित होकर मुद्रिका प्रदान कर दी।

जानसिरोमनि जानि जियँ कपि बल बुद्धि निधानु।
दीन्हि मुद्रिका मुदित प्रभु पाइ मुदित हनुमानु॥

(श्रीरामाज्ञाप्रश्न तृतीय सर्ग)

रजायसु रामको जब पायो।
गाल मेलि मुद्रिका मुदित मन पवनपूत सिर नायो॥

(श्रीगीतावलीरामायण ५। १)

श्रीरामजीने मुद्रिका देकर श्रीहनुमान्‌जीसे कहा—हे हनुमन्‌! श्रीसीताको अनेक प्रकारसे समझाना और मेरा बल तथा विरह कहकर शीघ्र आ जाना।

'हनुमत जन्म सुफल करि माना'—जब श्रीठाकुरजीने कहा—***'बेगि तुम्ह आएहु'*** इस भावपूर्ण वचनको सुनकर श्रीहनुमान् भावविभोर हो गये कि इस दासकी भी मेरे स्वामीको आवश्यकता है, सेवकका इससे बढ़कर क्या सौभाग्य हो सकता है कि वह अपने स्वामीके उपयोगमें आ जाय एतावता आज मेरा जन्म सुफल हो गया। अथवा करुणासागर श्रीरामजीने श्रीहनुमान्‌को अत्यन्त सन्निकट बुलाकर उनके कानमें कुछ कहा। वश इतनेसे ही उन्होंने अपने जन्मको सुफल मान लिया।

कहँ हम पसु साखामृग चंचल
बात कहौं मैं विद्यमानकी।
कहँ हरि सिव अज पूज्य ग्यान घन
नहिं बिसरति वह लगन कानकी॥

(श्रीगीतावलीरामायण ५। ११)

'चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना'—का भाव कि श्रीरामजी कृपामय हैं, भगवान्‌का प्रत्येक कार्य कृपामय है, वे निरन्तर कृपामृतकी वृष्टि करते रहते हैं, वे तो कृपा वारिधर हैं ***'कृपा बारिधर राम खरारी'।*** श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं कि सम्प्रति मेरे ऊपर प्रभुकी कितनी कृपा है, इस प्रकार श्रीरघुनन्दनकी अद्‌भुत कृपाका अनुसन्धान करते हुये उसका हृदयमें स्मरण करते हुये श्रीपवननन्दन प्रस्थान कर रहे हैं।

चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।
राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह॥

अङ्गदादि समस्त वानर, रीछ, वनों, नदियों, सरोवरों, पर्वतों और पर्वतोंके मध्यकी खोहों—दर्रोंमें अन्वेषण करते हुये चले जा रहे हैं। उन सबका मन श्रीरामजीके कार्यमें लवलीन—तल्लीन हैं। उन्हें अपने शरीरतकका छोह—ममत्व विस्मृत हो गया। श्रीसीताजीको खोजते खोजते सबको प्यास लग गयी; जिसके कारण सभी बहुत व्याकुल हो गये; परन्तु जल खोजनेपर भी नहीं मिल रहा है, गहन वनमें सब भूल गये। श्रीहनुमान्‌जीने अपने मनमें अनुमान किया कि जल पानके विना सब मरना चाहते हैं। खोजते खोजते श्रीहनुमान्‌ने एक भूविवर देखा। जलका अनुमान करके श्रीहनुमान्‌जी सबको लेकर उसमें प्रविष्ट हो गये। भीतर जाकर सब वानरोंने देखा कि एक सुन्दर उपवन है और उसमें सुन्दर सरोवर है तथा उस सरोवरमें अनेक प्रकारके कमल खिले हुए हैं। वहाँ एक सुन्दर भवन है उसमें एक तपोमयी देवी बैठी है।

दीख जाइ उपबन बर सर बिगसित बहु कंज।
मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज॥

तपस्विनी—स्वयंप्रभाजीकी आज्ञासे सब वानरोंने स्नान किया और मधुर फल खाकर फिर स्वयंप्रभाके पास सब आ गये। स्वयंप्रभाने अपनी कथा सुनाकर कहा कि मैं अब श्रीरामजीके

पास जाऊँगी। मेरा कार्य समाप्त हो गया। आपलोग अपने हाथोंसे अपनी आँखें बन्द कर लें और इस गुफासे बाहर चले जायँ। आप लोग पश्चात्ताप न करें श्रीसीताजी आपको अवश्य मिलेंगी।

मूदहु नयन बिबर तजि जाहू।
पैहहु सीतहि जनि पछिताहू॥

तपस्विनीकी आज्ञासे आँखें बन्द करके वानरलोग समुद्रके तटपर पहुँच गये। स्वयंप्रभा श्रीरामजीके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके, अनपायनी भक्ति प्राप्त करके प्रभुकी आज्ञासे बद्रिकाश्रम चली गयी।

इधर वानरलोग उत्तालतरङ्गोंवाले समुद्रको देखकर निराश हो करके, आमरण अनशन करके समुद्रतटपर बैठ गये।

अस कहि लवन सिंधु तट जाई।
बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥

श्रीरामजीकी कृपासे श्रीजटायुके बड़े भ्राता सम्पाति आ गये। पहले तो उनका अत्यन्त उग्र और भयङ्कर रूप ज्ञात हुआ; परन्तु श्रीअङ्गदके द्वारा श्रीजटायुकी कथा सुनकर वे अपने बन गये। श्रीसम्पातिने श्रीसीताजीका पता बता दिया।

हे रामभक्तों! त्रिकूट पर्वतपर लङ्कानगरी बसी हुई है। वहाँपर रावण रहता है, वह स्वभावसे ही शङ्कारहित है—निर्भय है। वहाँपर अशोक नामक उपवन है, जहाँ श्रीसीताजी रहती हैं। इस समय भी वे बैठकर सोच कर रही हैं। श्रीसीताजीको मैं देख रहा हूँ; परन्तु आपलोग नहीं देख सकते हैं, क्योंकि गृध्रजातिकी अपार दृष्टि होती है फिर हम लोगोंमें गरुडका वंशज होनेके कारण गरुड़की भाँति सुदूरप्रान्ततक अवलोकनकी क्षमता है।

इहस्थोऽहं प्रपश्यामि रावणं जानकीं तथा।
अस्माकमपि सौपर्णं दिव्यं चक्षुर्बलं तथा॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। ५८। ३१)

हे वानरेन्द्रों! सम्प्रति मैं वृद्ध हो गया हूँ। अन्यथा मैं आपकी कुछ तो सहायता अवश्य करता।

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका।
तहँ रह रावन सहज असंका॥
तहँ अशोक उपबन जहँ रहई।
सीता बैठि सोच रत अहई॥
मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार॥

फिर सम्पातिने कहा—हे वानरश्रेष्ठो! जो वीर सौ योजनके इस सागरका उल्लंघन करनेमें समर्थ होगा वही परम बुद्धिमान् वानर भगवान् श्रीरामका कार्य सम्पन्न करेगा।

जो नाघइ सत जोजन सागर।
करइ सो राम काज मति आगर॥

श्रीसम्पातिके जानेके पश्चात् सबने अपना अपना बल कहा; परन्तु सौ योजनके सागरके पार जानेमें सभीने अपना सन्देह व्यक्त किया।

निज निज बल सब काहूँ भाषा।
पार जाइ कर संसय राखा॥

× × ×

दस दस दस सब बढ़ गए नब्बे पर रहे बूढ़।
ताते अंगद दस बढ़े फिरिबो राखे गूढ़॥

(मानस अभिप्राय दीपक)

श्रीअङ्गदने कहा मैं समुद्रके पार तो चला जाऊँगा; परन्तु वहाँसे लौटते समयके लिए मेरे मनमें कुछ सन्देह है।

अंगद कहइ जाउँ मैं पारा।
जियँ संसय कछु फिरती बारा॥
अहमेतद् गमिष्यामि योजनानां शतं महत्।

निवर्तने तु मे शक्तिः स्यान्न वेति न निश्चितम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। ६५। १९)

इस श्लोकका भाष्य करते हुए श्रीगोविन्दराजजी लिखते हैं—श्रीअङ्गदने अपने पराक्रममें न्यूनता इसलिए दिखाई कि उनके मनमें श्रीहनुमान्‌जीके पराक्रमदर्शनकी उत्कट इच्छा है। तदनन्तर श्रीजाम्बवान्‌जीने भी श्रीहनुमान्‌को वचनोंसे प्रेरित किया।

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना—भाव हे भगवच्चिन्तन निमग्न! हे रामकार्य साधक! मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो। इस समय हमलोगोंके सामने एक गम्भीर समस्या है, उसका समाधान तुम्हारे ही पास है एतावता मेरी बातको मनोयोगसे सुनो।

का चुप साधि रहेहु बलवाना—आप एकान्तका समाश्रयण करके चुपचाप क्यों बैठे हैं? कुछ बोलते क्यों नहीं हैं? हे अञ्जनानन्दन! विनतानन्दन गरुड़के समान ही आप भी विख्यात शक्तिशाली तथा तीव्रगामी हैं। उनके दोनों पक्षोंमें जो शक्ति है, वही शक्ति, वही पराक्रम आपकी इन दोनों भुजाओंमें भी है।

पक्षयोर्यद् बलं तस्य भुजबीर्यबलं तव।
विक्रमश्चापि तेजश्च न ते तेनापहीयते॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ४। ६६। ६)

पवन तनय बल पवन समाना—श्रीजाम्बवान्‌ने कहा—हे अञ्जनानन्दन! आप तो साक्षात् पवनदेवके पुत्र हैं अतः आपका पराक्रम भी वायुतुल्य है। आपका तेज भी पवनतुल्य है। हे वत्स! छलाँग लगानेमें भी आप वायुतुल्य हैं। हे पवनपुत्र! सम्प्रति हमारी प्राणशक्ति नष्ट हो गयी है, अतः आप प्राणवायुकी भाँति हमारी रक्षा करें।

बुधि बिबेक बिग्यान निधाना—अतीतमें श्रीसीताके अन्वेषणके समय जब समस्त वानर प्यासके कारण निष्प्राण हो रहे थे उस समय आपने बुद्धि, विवेक और विज्ञानका प्रयोग करके सबके प्राणोंका संरक्षण किया था।

कवन सो काज कठिन जग माहीं।
जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥

सरल कार्य तो सभी कर लेते हैं, परन्तु कठिन कार्य तो प्रायः श्रीहनुमान् ही करते हैं।

दुर्गम काज जगत के जेते।
सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते॥

× × ×

राम काज लगि तव अवतारा।
सुनतहिं भयउ पर्बताकारा॥

अपने अनुभवपूर्ण प्रबोधनका उपसंहार करते हुए श्रीजाम्बवान्‌ने अत्यन्त मार्मिक शब्दका प्रयोग किया है। वे कहते हैं कि—हे हनुमान्! आपका तो अवतरण ही मात्र श्रीरामकार्यके लिए ही हुआ है।

रामुकाज लगि जनम जग सुनि हरषे हनुमान।

(रामाज्ञाप्रश्न ५। १। ४)

जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।
पुरषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान॥

(श्रीदोहावलीजी १४३)

रामकार्यार्थमेव त्वं जनितोऽसि महात्मना॥

(श्रीअध्यात्मरामायण ४। ९। १८)

सुनतहिं भयउ पर्वताकारा—श्रीजाम्बवान्‌के मुखसे यह सुनकर 'मेरा जन्म ही श्रीरामके पावन कार्यको सम्पादन करनेके लिये हुआ है' श्रीहनुमान्‌जी अति प्रसन्न हुए। समस्त ब्रह्माण्डको कम्पायमान करते हुए, सिंहकी भाँति गर्जना करते हुए, दूसरे वामन भगवान्‌की भाँति पर्वताकार हो गये। श्रीहनुमान्‌जीने कहा—मैं इस क्षार समुद्रको खेलहीमें लाँघ जाऊँगा। रावणके प्रधान सहायक कुम्भकर्ण,

मेघनादके साथ सभी सहायकोंको मारकर रावणका वध करके त्रिकूट पर्वतको उखाड़कर यहाँ ला सकनेमें मैं समर्थ हूँ।

सिंहनाद करि बारहिं बारा।
लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा॥
सहित सहाय रावनहि मारी।
आनउँ इहाँ त्रिकूट उपारी॥

श्रीहनुमान्‌जीके सामने तीन विकल्प हैं। (क) रावणको उसके कुलके सहित मारकर श्रीजानकीको ले आना। (ख) रावणके गलेमें रज्जुका फन्दा डालकर और लङ्कानगरीको त्रिकूट पर्वतसहित बायें हाथपर उठाकर श्रीरामजीके आगे डाल देना। (ग) केवल शुभलक्षणा श्रीसीताजीको देखकर ही आ जाना।

रावणं सकुलं हत्वा नेष्ये जनकनन्दिनीम्।
यद्वा बद्ध्वा गले रज्ज्वा रावणं वामपाणिना॥
लङ्कां सपर्वतां धृत्वा रामस्याग्रे क्षिपाम्यहम्।
यद्वा दृष्ट्वैव यास्यामि जानकीं शुभलक्षणाम्॥

(अध्यात्मरामायण ४। ९। २३-२४)

श्रीहनुमान् निर्णय नहीं कर पा रहे हैं कि तीनोंमें किस पद्धतिसे श्रीरामकार्य करूँ, जिससे प्रभुका अपमान न हो और मैं उन्हें अच्छा भी लगूँ। एतावता श्रीजाम्बवान्‌से पूछते हैं।

जामवंत मैं पूँछउँ तोही।
उचित सिखावनु दीजहु मोही॥

श्रीमहात्मा रसिकविहारीजीने श्रीहनुमान्‌जीके पराक्रमका वर्णन उन्हींकी वाणीमें करते हैं।

मेरो ना प्रभाव सीताराम की कृपा ते यह
रसिक विहारी सत्य प्रण ठहराऊँ मैं।
उछलि उतंक तिहुँ लोकहि उलंक आऊँ
सिंधु वापुरे की काह गिनती गनाऊँ मैं॥
जो पै रघुराज कपिराज युवराज और
ऋच्छराज काहूकी रजाइ नेक पाऊँ मैं।
एक ही फलंका में निशंका उत जाऊँ फेरि
हंका दे सुलंकाको उखारि इत लाऊँ मैं॥

(रामरसायन)

श्रीजाम्बवान्‌जीने कहा—हे तात! सम्प्रति तुम जाकर इतना ही कार्य करो कि श्रीसीताजीका दिव्य दर्शन करके लौट आओ और उनकी सुधि बता दो। उसके पश्चात् राजीवलोचन श्रीरामजी अपनी भुजाओंके बलसे समस्त कार्य कर लेंगे। वानरोंकी सेना तो मात्र कौतुकके लिये ही वे अपने सङ्गमें लेंगे। तदनन्तर देवता, मुनि और श्रीनारदादि श्रीरामके त्रैलोक्यपावन सुयशका विस्तारसे वर्णन करेंगे। जिस सुयशको सुनने, गाने, कहने और समझनेसे मनुष्य परमपदकी उपलब्धि करते हैं उसी सुयशको श्रीरघुवीर रामपदाब्ज भ्रमर श्रीतुलसीदासजी गाते हैं।

एतना करहु तात तुम्ह जाई।
सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज भुज बल राजिवनैना।
कौतुक लागि संग कपि सेना॥
कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावन सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

इस प्रकार श्रीकिष्किन्धाकाण्ड पूर्ण करके अब सुन्दरकाण्डकी कथा आरम्भ करते हैं।

(श्रीकिष्किन्धाकाण्ड समाप्त)

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीरामचरितमानस
कथा-सुधा-सागर
सुन्दरकाण्ड

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं गीर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्॥

शान्त, शाश्वत, प्रमाणरहित, निष्पाप, देवताओंको शान्ति देनेवाले ब्रह्मा, शङ्कर और शेषद्वारा निरन्तर सेवित, वेदान्तवेद्य, सर्वव्यापक, जगत्के ईश्वर, देवताओंके परमगुरु, अपनी कृपासे मनुष्य शरीर धारण किये हुए, अशेष क्लेशोंको हरनेवाले, राजराजेश्वर रघुकुलमें श्रेष्ठ श्रीरामनामसे प्रसिद्ध प्रभुकी हम वन्दना करते हैं।

सांसारिक प्राणी भी समय समयपर शान्त हो जाते हैं; परन्तु सदा एकरस रहनेवाले श्रीरामजी ही हैं। 'गीर्वाण' और 'निर्वाण' दोनों पाठ समीचीन है। परन्तु मेरे श्रीमहाराजजी 'गीर्वाण' पाठको अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे। रावणादिके भयसे देवताओंका जीवन अशान्त था। प्रभुने उन्हें शान्ति प्रदान की। ब्रह्माजी, जाम्बवान्के रूपसे, शङ्करजी हनुमान्के रूपसे और शेषजी श्रीलक्ष्मणके रुपसे निरन्तर सेवा करते हैं। श्रीरामप्रभुको उपनिषदोंके द्वारा जाना जाता है ***'ज्ञानगम्य जय रघुराई।'*** वे सर्वसमर्थ हैं और विश्वके अणु-अणुमें परिव्याप्त हैं। देवताओंके स्वामी हैं—देवदेव हैं। वे भक्तोंपर कृपा करके मनुष्य शरीर धारण करते हैं ***'कृपासिंधु जनहित तनु धरहीं।'*** भक्तोंके, पृथ्वीके, मनुष्यके और प्राणीमात्रके अशेष क्लेशोंको हर लेते हैं **'कथ्यते सहरेर्नित्यं भक्तानांक्लेशनाशनः'** राजा तो बहुत हो गये हैं परन्तु सृष्टिके इतिहासमें श्रीरामजीकी भाँति राजा **'न भूतो न भविष्यति'** एतावता भूपाल चूड़ामणि कहते हैं। इस प्रकार प्रणम्यके समस्त सद्गुण श्रीरामजीमें हैं।

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च॥

हे रघुपते! मेरे हृदयमें और कोई भी कामना नहीं है, यह मैं सत्य कह रहा हूँ; फिर आप तो प्राणिमात्रके अन्तरात्मा हैं। हे रघुकुलश्रेष्ठ! मुझे अपनी प्रेमपरिपूर्ण भक्ति प्रदान करें और मेरे हृदयके काम आदि समस्त दोषोंका अपहरण कर लीजिए।

जो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष कुछ भी नहीं चाहता वही भक्तिका सच्चा अधिकारी है। जो सांसारिक स्पृहा—भुक्ति और पारमार्थिक स्पृहा—मुक्तिको भी नहीं चाहता है, वही साधक भक्तिका सच्चा अधिकारी है।

अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि॥

अतुलित बलके धाम, स्वर्ण गिरिके समान आभा प्रभा कान्तिवाले, दनुजरूपी वनको जलानेके

लिए कृशानुस्वरूप, ज्ञानियोंके चक्रचूड़ामणि, समस्त गुणोंके अक्षयकोष, वानरोंके स्वामी और श्रीराघवेन्द्र सरकारके श्रेष्ठ दूत श्रीपवनपुत्रको मैं प्रणाम करता हूँ।

इस श्लोककी व्याख्यामें ही समस्त सुन्दरकाण्ड है।

श्रीजाम्बवान्‌जीने कहा—हे हनुमान्‌! आप श्रीजानकीजीका पता लगाकर उनका दर्शन करके उनका समाचार श्रीरामजीको सुनाइए। यह वचन श्रीहनुमान्‌जीको बहुत अच्छा लगा।

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥

श्रीहनुमान्‌जी सबको सादर प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक जयघोषके साथ समुद्र तटपर एक सुन्दर पर्वत था, उसपर चढ़कर बार-बार श्रीरामजीका स्मरण करके उसपर से कूदे।

सिंधु तीर एक भूधर सुंदर।
कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥
बार बार रघुबीर सँभारी।
तरकेउ पवनतनय बल भारी॥

इसी सुन्दर पर्वतसे इस काण्डका चरित्र प्रारम्भ हो रहा है अतः इस काण्डका नाम सुन्दरकाण्ड है। श्रीरामजीके अमोघ बाणकी तरह श्रीहनुमान्‌जीने प्रस्थान किया।

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना।
एही भाँति चलेउ हनुमाना॥

जिस पर्वतपर चढ़कर श्रीहनुमान्‌जी कूदे उस पर्वतको श्रीरामजीने अपनी भुजाओंसे सँभाल लिया जिससे वह नीचे न जा सके। अतएव श्रीरामजीका हाथ धनुष स्थानापन्न है, पर्वत प्रत्यञ्चा है, श्रीजाम्बवान्‌जी बाण छोड़ रहे हैं। लक्ष्य है *'सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥'* और हनुमान्‌जी बाण हैं। श्रीवाल्मीकीयरामायणमें भी लिखा है। श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे समस्त वानर वीरों! मैं रावणके द्वारा सुरक्षित नगरीमें श्रीरामजीद्वारा निर्मुक्त श्वसन विक्रम—पवनके बाणकी भाँति जाऊँगा।

वानरान् वानरश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत्।
यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः॥
गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम्।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। १। ३९-४०)

'रामबाण' का भाव—(क) जैसे श्रीरामबाण अव्याहत गति होता है उसी प्रकार मेरी गतिको भी कोई रोक नहीं पायेगा। (ख) जैसे श्रीरामका बाण अमोघ—अव्यर्थ होता है उसी प्रकार मैं भी कार्य करके ही लौटूँगा, मेरी यात्रा व्यर्थ नहीं होगी। (ग) जैसे श्रीरामका बाण कहीं दृश्य कहीं अदृश्य, कभी छोटा कभी बड़ा हो जाता है उसी प्रकार मैं भी कहीं दृश्य होकर कार्य करूँगा और कहीं अदृश्य होकर कार्य करूँगा। कभी छोटा रूप धारण कर लूँगा कभी बड़ा रूप। (घ) जैसे श्रीरामके बाणकी त्रैलोक्यमें सर्वत्र गति है उसी प्रकार श्रीजानकीको मैं स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताललोक जहाँ भी मिलेंगी ले आऊँगा। (ङ) जैसे श्रीरामजीका एक बाण अनन्त रूपोंमें कार्य करता है उसी प्रकार मैं भी एक होकर अनन्तवीरोंका कार्य एकाकी ही सम्पादन करूँगा। (च) जैसे श्रीरामजीका बाण कार्य करके श्रीरामजीके पास चला आता है उसी प्रकार मैं भी श्रीसीता दर्शन करके श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें उपस्थित हो जाऊँगा। (छ) श्रीरामका बाण बिना लक्ष्यके नहीं चलता है उसी प्रकार मेरी यह यात्रा श्रीसीतादर्शनके

लिए है।

श्रीहनुमान्‌जीकी यात्राकी प्रशस्तिमें श्रीरसिकविहारीजी कहते हैं।

देव दहलाने और अदेव हहलाने सिंधु
जीव खहलाने जल उछल नदीश को।
भानुतेज मंद पथ बंद व्योमगामिनको
आसन सुदृढ डगो शंभु सुर ईश को॥
रसिकविहारी रामदूत हनुमंत वीर
कीनो गौन मर्दन प्रताप भुज बीस को।
जै जैकार करत अपार तिहुँ लोक झार
विक्रम पराक्रम निहार वर कीशको॥
हेमगिरि कैधों ह्वै सपक्ष नभ कीनो गौन
कैधों रथ त्यागि प्रात सूरज सिधायो है।
रसिकविहारी परमेश्वर प्रत्यक्ष कैधों
व्योम में विराट् रूप प्रकटि दिखायो है॥
कैधों खगराज हरिकाज हेत चालो आज
कैधों रामचन्द्र बाण विशिख चलायो है।
कैधों हनुमानवीर परम उदण्ड चण्ड
सागर उलंघि वेष मंडल ते धायो है॥

(रामरसायन)

श्रीहनुमान्‌जी आकाशमें अपनी भुजाओंको फैलाकर चल रहे हैं, फैली हुई भुजाएँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानो किसी पर्वत शिखरसे पाँच फनवाले दो सर्प निकल रहे हैं। श्रीहनुमान्‌जीका शरीर ही विशाल शैल है और उनकी भुजायें ही सर्प हैं और उनकी पाँच अँगुलियाँ सर्पके फण हैं।

तस्याम्बरगतौ बाहू ददृशाते प्रसारितौ।
पर्वताग्राद् विनिष्क्रान्तौ पञ्चास्याविव पन्नगौ॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। १। ५६)

जिस समय श्रीहनुमान्‌जी यात्रा कर रहे थे उस समय देवता, गन्धर्व, चारण पुष्पवृष्टि करने लगे। श्रीसूर्यदेवने उन्हें ताप नहीं पहुँचाया, उनका मन प्रसन्न है कि आज मेरा शिष्य रामकार्य करनेके लिये जा रहा है। वायुदेवने अपना वेग सुखद कर दिया। आज उनका पितृत्व कृतार्थ हो रहा है। दिव्य ऋषिमुनि स्तुति कर रहे हैं। देवता और गन्धर्व अपनी वाणीको सफल करके श्रीहनुमान्‌जीकी प्रशंसाके गीत गाकर उत्साह संवर्द्धन कर रहे हैं।

जिस समय श्रीहनुमान्‌जी समुद्र पार कर रहे थे उस समय समुद्रने सोचा कि मैं इक्ष्वाकुनाथ सगरके द्वारा विवर्द्धित हूँ और ये इक्ष्वाकुसचिव हैं, अतः इन्हें समुद्र यात्रामें कष्ट नहीं होना चाहिए। समुद्रने मैनाक पर्वतसे कहा—ये हमारे श्रद्धेय अतिथि हैं एतावता तुम इनको विश्राम दो। तुम्हारे ऊपर किञ्चित्कालपर्यन्त विश्राम करके अवशिष्ट मार्ग सुगमतासे पार कर लेंगे।

हनूमांस्त्वयि विश्रान्तस्ततः शेषं गमिष्यति॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। १। ९९)

जल निधि रघुपति दूत बिचारी।
तैं मैनाक होहि श्रम हारी॥

समुद्रका वचन सुनकर मैनाक प्रसन्नतापूर्वक उठा। श्रीहनुमान्‌जीने विघ्न समझकर अपनी छातीकी ठोकरसे नीचे गिरा दिया। अपनी पराजयके बाद भी—ठोकर खानेके बाद भी मैनाक श्रीहनुमान्‌के महान् वेगका अनुभव करके प्रसन्न होकर गर्जना करने लगा। जिसके प्रति वात्सल्यभाव होता है उससे पराजित होकर भी सुखानुभूति होती है। तदनन्तर मैनाक मनुष्यका रूप धारण करके अपने ही शिखरपर खड़ा होकर मनको प्रसन्न करनेवाली वाणीमें बोला—हे पुत्र! मुझे अपना पितृव्य—चाचा समझो, मैं तुम्हारे

पिता वायुदेवका मित्र हूँ।

पुत्रेति मधुरां वाणीं मनः प्रह्लादयन्निव।
पितृव्यं चापि मां विद्धि सखायं मातरिश्वनः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ५८। १३)

हे वानरोत्तम! आप मुझपर विश्राम करके आगेकी यात्रा करें। समुद्र और मैं दोनों उपकृत हैं, अतः हमारा सत्कार करना परम कर्त्तव्य है; क्योंकि उपकारके बदलेमें प्रत्युपकार करना सनातन धर्म है।

कृते च प्रतिकर्त्तव्यमेष धर्मः सनातनः।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। १। ११३)

श्रीहनुमान्‌जीने विनयपूर्वक कहा—हे पितृकल्प मैनाकजी! आपका दर्शन करके मुझे प्रसन्नता हुई है। मेरा आतिथ्य हो गया। आप अपने मनमें दुःखी न हों किं वा मुझपर कोप न करें। मेरे कार्यका समय मुझे शीघ्रता करनेके लिये प्रेरित कर रहा है। यह दिन भी व्यतीत हो रहा है, मुझे लङ्का पहुँचकर आज ही कार्यारम्भ कर देना है, अतः मैं आपका स्वागत स्वीकार नहीं कर सकता हूँ। हे चाचाजी! मैंने अपने साथियोंसे प्रतिज्ञा की है कि मैं बीचमें विश्राम नहीं करूँगा; एतावता सम्प्रति मैं आपकी और हितैषी समुद्रकी आज्ञा पालन करनेमें असमर्थ हूँ, इसलिये आप दोनों मुझे क्षमा करें। इस प्रकार कहकर अपने हाथसे मैनाकका स्पर्श करके हँसते हुये आकाशमें ऊपर उठकर चलने लगे।

हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥

इसके अनन्तर देवेन्द्र इन्द्रने मैनाकको सर्वदाके लिये निर्भय कर दिया। हे मैनाक! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुमने श्रीरामभक्त हनुमान्‌का स्वागत किया है। हे सौम्य! मैं तुम्हें अभयदान देता हूँ, तुम सुखपूर्वक जहाँ चाहो जाओ।

हिरण्यनाभ शैलेन्द्र परितुष्टोऽस्मि ते भृशम्।
अभयं ते प्रयच्छामि गच्छ सौम्य यथासुखम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। १। १३९)

श्रीरामभक्तकी सेवा करनेके प्रयासका फल शैलेन्द्र मैनाकको तत्काल मिल गया।

इसके पश्चात् देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियोंने सूर्यकी तरह तेजस्विनी नागमाता सुरसाको श्रीहनुमान्‌जीके बल और बुद्धिकी परीक्षाके लिये भेजा।

जात पवनसुत देवन्ह देखा।
जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता।
पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥

सुरसाको परीक्षाके लिये भेजनेका कारण यह है कि परीक्षकको कोमल नहीं होना चाहिये, निष्पक्ष होना चाहिये। सुरसा नागोंकी माता है, नागोंका आहार वायु है और श्रीहनुमान्‌जी वायुपुत्र हैं, आनुवंशिक शत्रुता है। दूसरे, नागमाता कठोर हृदया होती ही है तभी तो अपने पुत्रोंको भी खा जाती है '**पुत्रादिनी सर्पिणी**' अतः सुरसाको भेजा। सुरसा श्रीहनुमान्‌जीको मार्गमें घेरकर बोली—आज देवताओंने मुझे भोजन दिया है एतावता मैं तुम्हें खाऊँगी। यह सुनकर पवनपुत्रने कहा—श्रीरामजीका कार्य करके मैं लङ्कासे लौट आऊँ तब तुम मुझे खा लेना; क्योंकि रामकार्य देवताओंका ही कार्य है, जिन्होंने तुम्हें भोजन दिया है। उसके न माननेपर श्रीहनुमान्‌जीने कहा—मैं तपस्विनी सीताजीकी खबर प्रभुको सुना दूँ तब तुम मुझे खा लेना; इसपर भी उसने स्वीकार नहीं किया तब श्रीहनुमान्‌जीने

कहा कि इस समय तुम मुझे खा सको या न खा सको पर रामकार्य करके मैं स्वयं तुम्हारे मुखमें प्रविष्ट हो जाऊँगा। इसपर भी उसका हठ देखकर श्रीहनुमान्‌जीने चौथे और पाँचवें उपायका प्रयोग किया—हे मैया! मैं सत्य कहता हूँ मुझे जाने दो। जब किसी भी उपायसे उसने जाने नहीं दिया, तब श्रीहनुमान्‌जीने कहा—तो मुझे खा न ले।

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा।
सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
राम काजु करि फिरि मैं आवौं।
सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥
तब तव बदन पैठिहउँ आई।
सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना।
ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥

फिर सुरसाने एक योजनका मुख किया, तब श्रीहनुमान्‌जीने दूना मुख कर लिया। उसने सोलह योजनका मुख किया तब श्रीहनुमान्‌जीने तुरन्त बत्तीसका कर लिया। इस प्रकार जैसे जैसे सुरसा मुख बढ़ाती थी, श्रीहनुमान्‌जी उसका दूना रूप दिखलाते थे।

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा।
तासु दून कपि रूप देखावा॥

अन्तमें उसने घबड़ाकर सौ योजनका अपना मुख बना लिया। तब श्रीहनुमान्‌जीने बहुत छोटा रूप धारण कर लिया। उसी स्वरूपसे सुरसाके मुखमें प्रवेश करके बाहर निकल आये और उसे प्रणाम करके विदा माँगने लगे।

सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा।
अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥
बदन पइठि पुनि बाहेर आवा।
मागा बिदा ताहि सिरु नावा॥

सुरसाने कहा—हे हनुमन्‌! मैंने तुम्हारे बल बुद्धिका मर्म जान लिया। देवताओंने मुझे इसीलिये भेजा था। हे पवनपुत्र! आप बल बुद्धिके अक्षयकोष हैं, अतः समस्त रामकार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न करोगे। इस प्रकार आशीर्वाद देकर सुरसा चली गयी और श्रीहनुमान्‌जी प्रसन्न होकर आगे चले।

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥

सुरसा देवी थी। उसके जानेपर अब एक राक्षसी मिली जो समुद्रमें रहती थी। इसका नाम सिंहिका था, हिरण्यकशिपुकी पुत्री, विप्रचित्ति नामक दैत्यकी पत्नी और राहुकी माता थी।

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई।
करि माया नभु के खग गहई॥

किसीकी छाया किसीके द्वारा पकड़ी नहीं जा सकती ***'तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी।'*** परन्तु यह छाया पकड़कर नभचर जीवोंको खा जाती थी इसके मायाकी यही विशेषता थी।

जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं।
जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं॥
गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई।
एहि बिधि सदा गगनचर खाई॥

वही छल सिंहिकाने हनुमान्‌जीसे किया—हनुमान्‌जीकी छाया पकड़ ली। गतिके अवरुद्ध होनेपर श्रीहनुमान्‌जीको वानरेन्द्र सुग्रीवकी बात याद आ गयी। उन्होंने निश्चय कर लिया कि यह वही राक्षसी है।

कपिराज्ञा यथाख्यातं सत्त्वमद्भुतदर्शनम्।
छायाग्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशयः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। १। १९०)

श्रीहनुमान्‌जी विशालकाय होकर सिंहिकाके फैले हुए विकराल मुखमें शरीरको संक्षिप्त करके आ गिरे और अपने तीक्ष्ण नखोंसे उसका हृदय विदीर्ण कर दिया, वह मर गयी।

ततस्तस्या नखैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युत्कृत्य वानरः।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। १। १९६)

सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा।
तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा॥
ताहि मारि मारुतसुत बीरा।
बारिधि पार गयउ मतिधीरा॥

आकाशके विचरण करनेवाले प्राणी प्रसन्न हो गये और उन्होंने कहा—हे वानरेन्द्र! जिस व्यक्तिमें आपकी तरह धृति, दृष्टि, सूझबूझ, बुद्धि और दक्षता ये चार गुण होते हैं वह कभी किसी कार्यमें असफल नहीं होता है।

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। १। २०१)

यह श्लोक जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें सफलताके लिये स्मरण करना चाहिये। श्रीहनुमान्‌जीकी समुद्रयात्राकी फलश्रुतिके रूपमें इसको समझना चाहिये।

इसके पश्चात् श्रीहनुमान्‌जी एक विशाल पर्वतपर चढ़ गये। उसी पर्वतसे समस्त लङ्काके दृश्य एवं दुर्गको देखा।

सैल बिसाल देखि एक आगें।
ता पर धाइ चढेउ भय त्यागें॥
उमा न कछु कपि कै अधिकाई।
प्रभु प्रताप जो कालहि खाई॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी।
कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥

नगरके अनेक प्रकारके रक्षकोंको देखकर श्रीहनुमान्‌जीने सोचा कि मैं अत्यन्त छोटा सा रूप धारण करके रात्रिमें नगरमें प्रवेश करूँ।

पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार॥

श्रीहनुमान्‌जी मसकके समान रूप धारण करके श्रीनृसिंह भगवान्‌का स्मरण करके लङ्काको चले।

मसक समान रूप कपि धरी।
लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥

स्मरण रहे, श्रीहनुमान्‌जीने रूपान्तर नहीं किया है। श्रीवाल्मीकिजीने भी लिखा है कि श्रीहनुमान्‌जीने अपने वानर शरीरको वृषदंशक के समान बनाया।

सूर्ये चास्तङ्गतेरात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः।
वृषदंशकमात्रोऽथ बभूवाद्‌भुतदर्शनः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। २। ४९)

'वृषान् मूषकान् दशतीति वृषदंशकः मार्जारः तत्प्रमाणम्' अर्थात् जो वृष—मूसकको खा डाले उसे वृषदंशक अर्थात् बिल्ली कहते हैं। आशय यह है कि बिडालके बराबर होकर अद्‌भुत दर्शन हो गये। 'मसक' का अर्थ बिडाल भी होता है **'मसको विडालोमार्जारः'** नगरमें प्रवेश करते ही लङ्काकी अधिष्ठात्री लङ्किनी मिल गयी। उसने श्रीहनुमान्‌जीको दुर्वचन कहा। अरे मूर्ख! तू मेरा मर्म नहीं जानता? जहाँ तक चोर हैं वे सब मेरे आहार हैं।

जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा।
मोर अहार जहाँ लगि चोरा॥

सुनते ही श्रीहनुमान्‌जीने सोचा कि यह मिथ्या भाषण करती है। श्रीजनकनन्दिनीके चोरको तो इसने जाने दिया और मैं चोरीका पता लगाने

आया हूँ, तो मुझे चोर कहकर खाना चाहती है अतएव श्रीहनुमान्‌जीने उसको एक हल्की सी मुठिका मारी। बायें हाथसे मारी।

ततः संवर्तयामास वामहस्तस्य सोऽङ्गुलीः।
मुष्टिनाभिजघानैनां हनुमान् क्रोधमूर्च्छितः॥
स्त्री चेति मन्यमानेन नातिक्रोधः स्वयं कृतः।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ३। ४०-४१)

श्रीहनुमान्‌जीने बायें हाथसे एक मुक्का मारा और वह भी धीरे से मारा। बायें हाथका प्रहार हल्का होता है। इस हल्के प्रहारसे ही उसके अङ्ग अङ्ग व्याकुल हो गये। वह मुखसे खून उगलती हुई पृथ्वीपर लुढ़क गयी।

मुठिका एक महा कपि हनी।
रुधिर बमत धरनी ढनमनी॥

लंकिनीके ऊपर श्रीहनुमान्‌जीने कृपाकी '**कृपां चकार तेजस्वी**'। श्रीहनुमान्‌जी जिन करारविन्दोंसे श्रीरामचरणारविन्दोंका सतत संवाहन करते हैं उसी हाथसे मारनेके कारण उसका स्पर्श करके—श्रीरामभक्तिका शक्तिपात करके कृपा कर दी। सन्तने उसकी जीवनधारा बदल दी। उसका जीवन बदल गया, मन बदल गया और व्यवहार बदल गया तथा वाणी भी बदल गयी। सन्तका यही काम है कि वह धारा बदल देता है, उस धाराके सहारे वह श्रीरामचरणोंकी ओर चल पड़ता है। लङ्किनीका सब कुछ बदल गया। उसके बाद लङ्किनीने बहुत सुन्दर वचन कहा है, जिसको आजतक संसार स्मरण करता है। लङ्किनी कहती है मेरा महान् पुण्य है जो मैंने इन नेत्रोंसे श्रीरामजीके दूतका दर्शन किया है।

तात मोर अति पुन्य बहूता।
देखेउँ नयन राम कर दूता॥

प्रायः लोग कहते हैं कि पुण्यसे भोग मिलता है; परन्तु सन्तोंकी दृष्टिमें पुण्यका परिणाम सन्तकी प्राप्ति है *'पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता'*। यही लङ्किनी कहती है। लङ्किनी स्वर्ग और अपवर्ग दोनोंसे अधिक सत्सङ्गको महत्त्व देती है। स्वर्गमें भोगसुख है अपवर्गमें मुक्तिसुख है। '**अपवृज्यते संसारः मुच्यते अनेनेति अपवर्गः।**' परन्तु जब सत्सङ्ग मिल जाय तो दोनों सुख नगण्य हो जाते हैं, अतः गोस्वामीजी प्रार्थना करते हैं।

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥
यत्र कुत्रापि मम जन्म निजकर्मवश
भ्रमत जगजोनि संकट अनेकं।
तत्र त्वद्भक्ति सज्जन समागम सदा
भवतु मे राम विश्राममेकं॥
प्रबल भव जनित त्रैव्याधि भैषज
भगति भक्त भैषज्यमद्वैतदरसी।
संत भगवंत अंतर निरंतर नहीं
किमपि मति मलिन कह दासतुलसी॥

(श्रीविनयपत्रिका ५७)

इसके बाद लङ्किनीने श्रीहनुमान्‌जीसे कहा कि हे तात! आप कोसलेन्द्र रघुनन्दनको हृदयमें धारण करके समस्त कार्य सम्पन्न करें। जिनके ऊपर भगवत्कृपा होती है उसके लिए विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्रता करने लग जाते हैं, समुद्र गोखुरके बराबर हो जाता है, अग्निमें शैतल्य आ जाता है और सुमेरु पर्वत धूलके समान हो जाता है।

प्रबिसि नगर कीजै सब काजा।
हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई।

गोपद सिंधु अनल सितलाई॥
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही।
राम कृपा करि चितवा जाही॥

इसके विपरीत जयन्तके प्रसङ्गमें कहा है।

मातु मृत्यु पितु समन समाना।
सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना॥
मित्र करइ सत रिपु कै करनी।
ता कहँ बिबुधनदी बैतरनी॥
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता।
जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता॥

(२। २)

प्रस्तुत प्रसङ्गमें हनुमान्‌जीके जीवनमें गरल सुधा आदि सभी लक्षण घटित हुए हैं आपलोग इसपर मनन करें।

अरि मित्रं विषं पथ्यं अधर्मो धर्मतां ब्रजेत्।
प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे विपरीते विपर्ययः॥

(इति पाद्मे)

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणात्,
मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते।
व्यालो माल्यगुणायते विषरसःपीयूषवर्षायते,
यस्याङ्गेऽखिललोक वल्लभतमं शीलं समुन्मीलति॥

(नीतिशतक)

इसके पश्चात् श्रीहनुमान्‌जीने अत्यन्त छोटा सा रूप धारण करके षडैश्वर्य सम्पन्न भगवान् श्रीरामका स्मरण करके नगरमें प्रवेश किया। उन्होंने प्रत्येक महलोंमें खोजा। यत्र तत्र बहुतसे योद्धाओंको देखा; परन्तु श्रीजानकीजीके दर्शन नहीं हुए।

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा।
देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥

फिर वे रावणके भवनमें गये, वहाँ उसको शयन करते हुए देखा; परन्तु श्रीसीताजीके दर्शन वहाँ भी नहीं हुए।

गयउ दसानन मंदिर माहीं।
अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं॥
सयन किएँ देखा कपि तेही।
मंदिर महुँ न दीखि बैदेही॥

श्रीहनुमान्‌जीने श्रीरामजीसे श्रवण करके अथवा अपनी आराधनाके बलपर श्रीसीताजीके मङ्गलमय स्वरूपकी कल्पना कर ली, श्रीवाल्मीकीयरामायणमें बहुत सुन्दर और भावमय वर्णन है—जो श्रीसीता सनातनमार्गपर—अविच्छिन्न पातिव्रत धर्ममें स्थिर रहनेवाली हैं। जो श्रीसीता रामेक्षणी हैं—जो सर्वदा श्रीरामजीके ध्यानमें ही चित्त लगाये रहती हैं '**राममीक्षते ध्यायती रामेक्षणी तां।**' जो श्रीसीता रामविषयक प्रेमसे परिपूर्ण हैं, जो श्रीसीता अपने पतिके श्रीमत्—मनमें—सीताचिन्तनविशिष्ट मनमें सर्वदा प्रविष्ट रहती हैं, जो श्रीसीता दूसरी सभी स्त्रियोंसे सदा ही विशिष्ट हैं उन श्रीसीताजीके दर्शन नहीं हुए।

सनातने वर्त्मनि सन्निविष्टां
रामेक्षणीं तां मदनाभिविष्टाम्।
भर्तुर्मनः श्रीमदनुप्रविष्टां
स्त्रीभ्यः पराभ्यश्च सदा विशिष्टाम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ५। २४)

जो श्रीसीता श्रीरामविरहजन्य तापसे सर्वदा सन्तप्त रहती हैं, जिनके नेत्रोंसे रात दिन गङ्गा यमुनाकी धारा बहती रहती है, जिनका कण्ठ निरन्तर बहते रहनेवाले आँसुओंसे गद्‌गद रहता है '**उष्णार्दितां सानुसृतास्त्रकण्ठीम्**' वक्ताओंमें श्रेष्ठ राजराजेश्वर श्रीरामचन्द्रजीकी प्राणप्रिया प्रियतमा प्रेयसी पत्नी श्रीसीताजीका बहुत देरतक खोजनेपर

भी जब श्रीहनुमान् दर्शन नहीं कर सके तब वे सद्यः अत्यन्त आर्त्त और शिथिल हो गये।

सीतामपश्यन् मनुजेश्वरस्य
रामस्य पत्नीं वदतां वरस्य।
बभूव दुःखोपहतश्चिरस्य
प्लवंगमो मन्द इवाचिरस्य॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ५। २७)

जब साधकजीव भगवद्भक्त व्यक्ति श्रीरामकृपाका अनुभव करनेवाला पुरुष चारों ओरसे निराश हो जाता है। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार ज्ञात होने लगता है, सारे सहारे टूट जाते हैं, प्रयत्न करनेपर भी अपना पुरुषार्थ असफल हो जाता है, अपने पराये हो जाते हैं, जब कुछ नहीं सूझता है तब भगवद्भक्तको एक प्रकाशकी किरण दिखायी पड़ती है। वह प्रकाश प्रभुकी कृपाका होता है। अब आप प्रस्तुत प्रसङ्गको इस दृष्टिसे देखें। श्रीहनुमान्‌जी जब समुद्रके उत्तर तटपर थे तब उन्होंने कहा था कि सब कार्य मैं अपने बलसे कर लूँगा। मेरी शक्ति महान् है, मेरा वेग प्रबल है, मैं समग्र कार्य करनेमें समर्थ हूँ, मैं स्वर्ग और पातालसे श्रीसीताजीको ला सकता हूँ, मैं त्रैलोक्यसे श्रीसीताजीको ढूँढ़ लाऊँगा, मैं रावणको उसके सहायकोंके साथ मार डालूँगा, मैं लङ्काको उखाड़कर उठा लाऊँगा, इत्यादि। यद्यपि श्रीहनुमान्‌जीके कथनमें अतिशयोक्ति नहीं है, वे जो कुछ कह रहे हैं उसके करनेमें सर्वथा समर्थ हैं; परन्तु आज असमर्थ होकर निराश हो रहे हैं। उनकी श्रीसीताजीके अन्वेषणकी शक्तिमें कुण्ठा लग गया है। अब भगवदनुग्रहचन्द्रकी आह्लादमयी किरणें पथप्रदर्शनके लिए समुदित हो गयीं। भगवत्कृपासे श्रीहनुमान्‌जीने श्रीविभीषणका भवन देखा। उसमें श्रीहरिका मन्दिर अलग बना हुआ था। उस घरमें धनुष बाण अङ्कित थे। नवीन श्रीतुलसीजीके वृक्ष समूहोंको देखकर श्रीहनुमान्‌जी परम प्रसन्न हुए।

भवन एक पुनि दीख सुहावा।
हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥
रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपि राइ॥

रावण श्रीविभीषणकी भक्तिमें बाधा नहीं पहुँचाता था। रावणको यह ज्ञात था कि विभीषणने ब्रह्माजीसे भगवद्भक्तिका वरदान माँगा था। यदि मैं इसके वरदानको झूठा बनानेका प्रयास करूँगा तो मेरा भी वरदान असत्य हो सकता है।

इस प्रसङ्गसे शिक्षा मिलती है कि धनुषबाण अङ्कित गृह और तुलसीवनको देखकर श्रीहनुमान्‌जी प्रसन्न होते हैं और वे प्रसन्न होकर श्रीरामजीका दर्शन करा देते हैं। इस दृष्टिसे इस प्रसङ्गका मनन करना चाहिए।

श्रीहनुमान्‌जी अपने मनमें सोचने लगे कि जहाँ एक भी दूषित मनोवृत्तिका व्यक्ति होता है वहाँ सन्त नहीं रहते हैं। फिर जहाँ राक्षसोंके समूहका निवास हो वहाँ सन्त कैसे रह सकता है? उसी समय श्रीविभीषणजीने जगकर श्रीरामनामका स्मरण किया।

लंका निसिचर निकर निवासा।
इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा।
तेहीं समय बिभीषनु जागा॥
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा।
हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥

श्रीविभीषणके मुखसे स्नेहोच्छलित वाणीके

द्वारा 'राम राम' यह मङ्गलमय शब्द सुनकर श्रीहनुमान्‌जीके हृदयमें अति हर्ष हुआ अर्थात् सात्त्विक भावोंका समुदय हो गया। तब उन्होंने समझ लिया कि ये सज्जन हैं—साधु पुरुष हैं। एतावता इनके न चाहनेपर भी मैं हठपूर्वक इनसे परिचय करूँगा। साधुसे कार्यमें सहायता मिल सकती है; परन्तु हानि नहीं हो सकती है।

एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी।
साधु ते होइ न कारज हानी॥

श्रीहनुमान्‌जीने ब्राह्मणरूप धारण करके श्रीरामनामका उच्चारण किया। विभीषणजी भावपूर्ण रामनामका उच्चारण सुनते ही सद्यः श्रीहनुमान्‌जीके पास आये।

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए।
सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥

श्रीहनुमान्‌जीका दर्शन करके श्रीविभीषणके मनमें दो भाव समुत्थ हुए—ये महान् भक्त हैं अथवा करुणामय दीनदयालु श्रीरामजी हैं। यद्यपि विश्वास नहीं होता कि मुझ जैसे अधम साधनहीनके पास रामजी आयेंगे? तथापि मेरे रामजी तो दीनदयालु हैं, अतः दीन समझकर मुझे भाग्यवान् बनानेके लिये ही तो नहीं आ गये। अतः दो ही प्रश्न करते हैं।

की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई।
मोरें हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी।
आयहु मोहि करन बड़भागी॥

भजन उपासनाके लिए दो ही सर्वश्रेष्ठ हैं।

सब संतन निर्णय दियो श्रुति पुरान इतिहास।
भजिबेको दोई सुघर कै हरि कै हरि दास॥

(श्रीनाभाजीकृत भक्तमाल)

श्रीपण्डित शिवलालजी पाठक कहते हैं—श्रीविभीषणजीने श्रीहनुमान्‌जीको आनन्दमें भीगे हुये तीन रूपोंमें देखा। पहले विप्ररूपमें, मध्यमें सन्तके रूपमें और अन्तमें अपने स्वामीके रूपमें देखकर पूछा।

आदि मध्य अवसान हूँ संत सपति महिदेव।
लखे विभीषण ते उलटि आनंद ही के भेव॥

(मानस अभिप्रायदीपक)

तब श्रीहनुमान्‌जीने सब श्रीरामकथा और अपना नाम कहा। सुनते ही दोनोंके शरीर पुलकित हो गये; और श्रीरामजीके गुणसमूहोंका स्मरण करके दोनोंके मन मग्न हो गये।

तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥

एक प्रसिद्ध कहावत '**आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे**' अर्थात् प्रश्न है आम्रके विषयमें और उत्तर कोविदार—कचनारके विषयमें दिया जा रहा है। भाषामें भी कहते हैं '***पूछे आम बतावै इमली।***' इसी प्रकार प्रस्तुत प्रसङ्गमें श्रीविभीषणजीने पूछा कि आप कौन हैं? और श्रीहनुमान्‌जीने उत्तरमें श्रीरामकथा कही। इसमें भाव यह है कि श्रीरामकथा सुनाकर वे विभीषणके हृदयके भावको समझना चाहते हैं किंवा श्रीरामकथा कहकर श्रीविभीषणको श्रीरामजीके श्रीचरणोंकी शरणमें ले जाना चाहते हैं। अथवा रामभक्तोंका परिचय श्रीरामकथामें ही सन्निहित है अतः श्रीरामकथा कही। किं बहुना श्रीविभीषण और श्रीहनुमान् दोनों ही युग युगसे परिचित हैं। इनका सम्बन्ध अनूठा है। दोनों ही एक दूसरेके प्रति अगाध श्रद्धाका भाव रखते हैं। श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं कि अनुकूल देश, काल, परिस्थितिमें भक्तिका निर्वाह करना, साधनका निर्वाह करना

सरल है; परन्तु श्रीविभीषण सर्वथा विपरीत परिस्थितिमें, भगवद्विमुखके साथ रहकर अपने सन्तत्वका किंवा भक्तिका सम्यक् पालन कर रहे हैं एतावता इनसे महान् सन्त और कौन होगा? इधर श्रीविभीषणको ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आज मुझे महान् सन्त मिल गये और मेरे ऊपर भगवान्की महती अनुकम्पा हो गयी।

जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा।
तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा॥

जो समस्त विघ्न बाधाओंका अतिक्रमण करते हुए दुर्लंघ्य समुद्रका समुल्लंघन करके श्रीजनकनन्दिनीका दर्शन करनेके लिये लङ्कामें आये हुए हैं इनसे बढ़कर और कौन सन्त होगा? इसके पश्चात् श्रीविभीषणने सबसे पहले श्रीहनुमान्जीसे अपनी स्थितिका वर्णन किया—(क) हे हनुमान्जी! जिस प्रकार बत्तीस दाँतोंके बीचमें अकेली जीभ रहती है उसी प्रकार इन असंख्य राक्षसोंके मध्यमें मैं अकेला रह रहा हूँ। (ख) जीभ एक है और दाँत अनेक हैं। (ग) जीभ दाँतोंका सदा हित चिन्तन करती है, दातोंमें तृण आदि फँस जाय तो जीभ उसे किसी भी प्रकार सतत प्रयत्न करके निकालना चाहती है, इसी प्रकार मैं सदा इनका हित चिन्तन करता रहता हूँ। (घ) दाँत जब भी अवसर पाते हैं जीभको काट लेते हैं, इसी प्रकार ये जब भी अवसर पाते हैं मुझे कष्ट दे ही देते हैं। (ङ) यमराज दाँतोंके देवता हैं ये भी मुझे यमराजकी तरह यमयातनाका सा कष्ट देते हैं। (च) जीभके देवता वरुण हैं, मैं जब भी अवसर पाता हूँ तभी इनके लिये रामरसका परिवेषण करता हूँ। (छ) सन्तलोग कहते हैं दाँत दो बार जाते हैं और जीभ सदा मुखमें बनी रहती है, इसी प्रकार राक्षस चले जायँगे और विभीषण कल्पपर्यन्त राज्य करते रहेंगे।

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी।
जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥

श्रीविभीषण बड़ी भावपूर्ण भाषामें पूछते हैं—हे तात! मुझको अनाथ जानकर सूर्यकुलको सनाथ बनानेवाले भगवान् श्रीराम क्या कभी मुझे भी सनाथ बनायेंगे? उनकी कृपा प्राप्त करनेके लिये मेरे पास कोई साधन नहीं है। उनके श्रीचरणकमलोंमें मेरा अनुराग भी नहीं है। मेरा शरीर भी तामसी है।

तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा।
करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥
तामस तनु कछु साधन नाहीं।
प्रीति न पद सरोज मन माहीं॥

श्रीविभीषणकी कार्पण्य परिपूर्णवाणी श्रवण करके श्रीहनुमान्जीने आश्वस्त करते हुये कहा—हे विभीषण! मेरी तरह चञ्चल और हीन वानर जिसका प्रातःकाल नाम लेनेमात्रसे आहार नहीं मिलता है; परन्तु हे सखा! श्रीरामचन्द्रजीने मुझ अधम पर भी कृपा की है। श्रीरामजीके गुणोंका स्मरण करके केसरीकिशोर श्रीहनुमान्जीके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये।

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥

श्रीहनुमान्जीने श्रीविभीषणजीसे श्रीसीताजीके रहनेका स्थान और उनके पास पहुँचने की युक्ति जान करके, उनसे विदा लेकर श्रीसीताजीके पास जानेका निश्चय किया।

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई।
चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥

अशोकवनमें पहुँचकर श्रीहनुमान्‌जी की दृष्टि सहसा श्रीसीताजीपर पड़ी। महर्षि श्रीवाल्मीकिजी लिखते हैं—श्रीसीताजीके वस्त्र मलिन थे किंवा उनके अङ्ग मलिन थे। चारों ओर से राक्षसियाँ उन्हें घेरकर बैठी हुयी थीं। उपवास करनेके कारण श्रीसीताजी अत्यन्त दुर्बल और दीन जान पड़ती थीं।

ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम्॥
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। १५। १८-१९)

श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं ये निश्चित ही श्रीसीता हैं; क्योंकि जब ये सिसकियोंसे संयुक्त श्वास लेती हैं तब हा राम! हा राम! हा अयोध्ये! हा कौसल्ये! इस प्रकार कहती हैं। इस प्रकार असहाय श्रीसीताजीको देखकर युक्तियुक्त कारणोंके द्वारा श्रीहनुमान्‌ने अनुमान लगा लिया कि ये ही रामवल्लभा श्रीसीताजी हैं।

तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। १५। २७)

इसके पश्चात् श्रीसीताजीकी दीन दशा देखकर परम तेजस्वी श्रीहनुमान्‌जी आँखोंमें आँसू भरकर श्रीसीताजीके विषयमें विलाप करने लगे।

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः।
सीतामाश्रित्य तेजस्वी हनूमान् विललाप ह॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। १६। २)

श्रीसीताजी अपने आस पासमें रहने वाली, घेरकर पहरा देनेवाली राक्षसियोंको नहीं देखती हैं। श्रीरामजीके वियोगजन्य क्लेशातिशयके कारण राक्षसियोंकी तरह पुष्प फलवाले वृक्षोंको भी देखना उन्हें असह्य है। वे तो एकाग्रचित्त होकर श्रीरामजीका ही दर्शन करती हैं—ध्यान करती हैं अथवा, श्रीरामजीके आगमनकी जिस दिशासे सम्भावना है उस दिशाकी ओर ही देखती रहती हैं अथवा नैरन्तर्येण रामानुभव होनेके कारण निकटवर्ती कोई भी पदार्थ उनकी दृष्टिमें आता ही नहीं है।

नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान् पुष्पफलद्रुमान्।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। १६। २५)

देखि मनहिं महुँ कीन्ह प्रनामा।
बैठेहिं बीति जात निसि जामा॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी।
जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥
निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥

राक्षसियाँ मुझे देख न लें, एतावता सूक्ष्म रूप धारण करके श्रीहनुमान्‌जी वृक्षोंकी शाखाओंमें हरे-हरे पत्तोमें छिप गये और विचार करने लगे कि क्या करूँ?

तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई।
करइ बिचार करौं का भाई॥

श्रीविभीषणकी बताई हुई युक्तिसे श्रीहनुमान्‌जी अशोकवाटिका तक पहुँच तो गये परन्तु आगेका कार्य निर्धारित नहीं कर पा रहे हैं। उसी समय अपनी मन्दोदरी आदि रानियोंके साथ रावण अशोकवाटिका में आ गया। मूल्यवान् वस्त्र और आभूषणोंसे सुसज्जित रावण अपने वैभवके द्वारा समस्त सम्पत्तियोंकी स्वामिनी, अधिष्ठातृ देवी श्रीसीताजीको लुभाना चाहता था। परम सुन्दरी रमणियोंको साथमें लाकर रावण श्रीसीताजीसे मानो यह कहना चाहता है कि इन सुन्दरियोंने मेरे वैभव और बलसे प्रभावित होकर मुझे वरण किया है, तुम भी इन्हींकी तरह मेरा वरण करो।

रावणने कहा—हे सीते! मन्दोदरी आदि सब रानियोंको तुम्हारी सेविका बना दूँगा यह मेरा प्रण है, तुम एक बार मेरी ओर देखो। रावणकी घिनौनी बात सुनकर श्रीसीताजी अपने परम स्नेही अयोध्यानाथ श्रीरामका स्मरण करके तिनके की ओट करके बोलीं।

तृन धरि ओट कहति बैदेही।
सुमिरि अवधपति परम सनेही॥

श्रीवाल्मीकिजीने भी लिखा है—

तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। २१। ३)

'तृणमन्तरतः कृत्वा'—तृणके बीचमें रखनेका भाव अनेक आचार्योंने, सन्तोंने अनेक प्रकारसे कहा है। (१) पापात्मा परपुरुषसे साक्षात् सम्भाषण रूप दोषसे बचनेके लिए तृणको बीचमें कर लिया। (२) रामविरोधी होनेके कारण रावणसे साक्षात् बात करना उचित नहीं है। (३) अरे नीच रावण! तेरी अर्पित समस्त सम्पत्तिको मैं तिनकेकी तरह समझती हूँ। (४) यदि तू मेरी आशा करता है तो तू उस आशाका परित्याग कर दे, मैं तृण की तरह जल जाऊँगी; परन्तु तेरे हाथ नहीं आऊँगी। (५) हे रावण! मैं जिस दिन समझ लूँगी कि मेरे प्रेमास्पद, प्राणाराध्य, वीरशिरोमणि यहाँ तक नहीं आ सकेंगे उस दिन मैं तृणवत् इस देहका परित्याग कर दूँगी। (६) दूसरे पुरुषसे सम्भाषण करते समय पिता अथवा भाई साथमें रहे तो मर्यादा रहती है और बात करनेकी हिम्मत भी बनी रहती है। श्रीसीताजी भूमिजा हैं और तृण भी भूमिसे समुत्पन्न है—भूमिज है, एतावता तृण सीताजीका भाई है, अतः तृणको सामने रखकर सीताजीने बात की। (७) करुणामयी श्रीसीताजी जिस व्यक्तिकी ओर दृष्टिपात कर दें वही व्यक्ति धन्य, गुणी, श्लाघ्य, कुलीन, बुद्धिमान्, शूर और पराक्रमी हो जाता है।

स श्लाघ्यः स गुणीधन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान्।
स शूरः स च विक्रान्तो यं त्वं देवि निरीक्षसे॥

अतः श्रीसीताजी उसकी ओर दृष्टिपात नहीं करना चाहतीं। (८) श्रीसीताजी कहती हैं हे राक्षसराज! मैं तुमको तिनकेके समान तुच्छ समझती हूँ। (९) श्रीसीताजी कहती हैं—हे रावण! इन्द्रपुत्र जयन्तने काकका रूप धारण करके मुझे चोंच मारनेका दुःसाहस किया था, तब मेरे स्वामीने तिनकेके बाणका प्रहार किया था, परिणामस्वरूप उसको त्रैलौक्यमें किसीने शरण नहीं दी। जब श्रीरामजीके हाथोंमें पड़कर एक तृण भी इतना शक्तिसम्पन्न हो जाता है तब उनका बाण कितना शक्तिसम्पन्न होगा इसका अनुमान तुम्हें लगाना चाहिए। (१०) ***'तृन धरि'*** शब्द का अर्थ पृथ्वी भी होता है अर्थात् पृथ्वीकी ओट लेकर अर्थात् मुख नीचे करके बोलीं।

उवाचोधोमुखी भूत्वा निधाय तृणमन्तरे।

(अध्यात्मरामायण)

श्रीसीताजीने कहा—हे रावण! सुनो, क्या जुगुनूके प्रकाशसे कभी कमलिनी विकसित हो सकती है।

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा।
कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥

अरे दुष्ट! तू मुझको प्रभुके न रहने पर चोरकी तरह हर लाया है। अरे अधम! अरे निर्लज्ज! मुझसे बात करनेमें तुझे लज्जा नहीं आती है?

सठ सूनें हरि आनेहि मोही।
अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

'अपनेको खद्योतके समान और श्रीरामजीको सूर्यके समान' इस कठोर वाणीको सुनकर अभिमानी रावण क्रुद्ध होकर श्रीसीताजीको मारनेके लिए समुद्यत हो गया। उस समय मन्दोदरीने उसको नीतिकी बात कहकर समझाया।

सुनत बचन पुनि मारन धावा।
मयतनयाँ कहि नीति बुझावा॥

रावणने सब राक्षसियोंको बुलाकर कहा—सीताको अनेक प्रकारका भय दिखलावो। यदि एक महीनेमें इसने मेरी बात नहीं मानी तो मैं इसे तलवार निकालकर मार डालूँगा। इस प्रकार कहकर रावण अपने घर चला गया। इधर राक्षसियाँ भयङ्कर रूप धारण करके श्रीसीताजीको भय दिखलाने लगीं।

भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद।
सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद॥

राक्षसियाँ श्रीसीताजीसे कहती हैं—हे पापविनिश्चये! हे अनार्ये! हे सीते! यह सब राक्षसियाँ आज और अभी तुझे मारकर तेरा माँस सुखपूर्वक भक्षण करेंगी।

अद्येदानीं तवानार्ये सीते पापविनिश्चये।
राक्षस्यो भक्षयिष्यन्ति मांसमेतद् यथासुखम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। २७। ३)

एक राक्षसी थी, जिसका नाम त्रिजटा था **'त्रिस्त्रा जटा यस्या सा त्रिजटा'**। उसके मस्तक पर तीन जटायें थीं भाव कि इसके मस्तिष्कमें ज्ञान, कर्म, उपासनाकी तीन जटाएँ थीं।

त्रिजटा नाम राच्छसी एका।
राम चरन रति निपुन बिबेका॥

वह वृद्धा थी—ज्ञानवृद्धा थी, वह प्रबुद्धा थी—तुरन्त सोकरके उठी थी अथवा मोहनिद्रासे उठ गई थी, उसका मोह नष्ट हो गया था। किंवा प्रबुद्धा थी अर्थात् भक्तिमती थी। उसने राक्षसियोंसे कहा—अरी नीच निशाचरियों! राजर्षि श्रीजनककी प्राणप्यारी पुत्री और चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजीकी पुत्रवधू श्रीसीताको तुम लोग नहीं खा सकोगी। अपने आपको ही खा जाओ।

राक्षसी त्रिजटा वृद्धा प्रबुद्धा वाक्यमब्रतीत्॥
आत्मानं खादतानार्या न सीतां भक्षयिष्यथ।
जनकस्य सुतामिष्टां स्नुषां दशरथस्य च॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। २७। ४-५)

त्रिजटाने कहा—आज मैंने एक स्वप्न देखा है—एक वानरने लङ्का जला दी, राक्षसोंकी सेना मारी गयी। नङ्ग-धड़ङ्ग रावण गधेपर चढ़कर दक्षिणकी ओर जा रहा था और श्रीविभीषण राजा हो गये हैं। नगरमें श्रीरामजीकी दुहाई फिर गयी। तब प्रभुने श्रीसीताजीको बुलवा भेजा। त्रिजटाने कहा—मैं दृढ़तापूर्वक कहती हूँ कि यह स्वप्न शीघ्र ही सत्य होगा। स्वप्न सुनकर सब राक्षसियाँ डर गईं कि हमने तो श्रीसीताजीका अपमान किया है, इनको खानेके लिए कहा है, हाय-हाय! अब हमारा क्या होगा? हमारे प्राण कैसे बचेंगे? विभीषणके राजा होने पर हमारी रक्षा कौन करेगा? राक्षसियोंको इस प्रकार दुःखी देखकर त्रिजटाने कहा—यद्यपि तुमने जघन्य कर्म किया है; तथापि श्रीसीताजीकी शरणमें जाकर इन दयामयीसे ही अभयकी याचना करो; क्योंकि श्रीराघवेन्द्रकी ओरसे राक्षसोंके लिए घोर भय सम्प्राप्त है। श्रीसीताजी श्रीरामजीके समान ही शरणागतवत्सला हैं, ये भी परमशरण्य हैं; क्योंकि ये श्रीरामजीकी सहधर्मिणी हैं। कृपामयी क्षमाशीला श्रीमैथिली सीताजी मात्र प्रणाम करनेसे प्रसन्न हो

जायेंगी। सम्प्रति करुणामयी श्रीसीताजी ही इस महान् भयसे तुम्हारी रक्षा करनेमें समर्थ हैं।

प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा।
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। २७। ४६)

अब तो राक्षसियाँ भयभीत होकर श्रीसीताजीसे क्षमायाचना करने लगीं। तब श्रीसीताजीने राक्षसियोंको निर्भय कर दिया कि मैं तुम्हारी अवश्य रक्षा करूँगी।

अवोचद् यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। २७। ५४)

तासु वचन सुनि ते सब डरीं।
जनकसुता के चरनन्हि परीं॥

राक्षसियोंके चले जानेके पश्चात् श्रीसीताजी दुःखी होकर प्राण परित्याग करना चाहती हैं। त्रिजटासे कहा—हे माताजी! आप तो मेरी विपत्तिकी सङ्गिनी हैं। आप चिता बनाकर उसमें आग लगा दो। सुनकर त्रिजटाने अनेक प्रकारसे समझाया। श्रद्धेय श्रीत्रिपाठीजीका इस सन्दर्भमें एक पद बहुत भावपूर्ण है।

सिर पै तुम्हरे रघुनाथ से नाथ,
अनाथ सी ह्वै किमि बैन उचारो।
दसकंठ को कुण्ठित साहस भो,
तब चोरनकी सरनी निरधारो॥
जन के पत की जेहि लाज सदा,
विजयानँद सो तुम्हरो रखवारो।
आय गये प्रभु देर नहीं यह
जानि के जानकि धीरज धारो॥

तत्पश्चात् त्रिजटाने निवेदन किया कि रात्रिको आग नहीं मिलती। यह कहकर अपने घर चली गयी। भगवत्प्रेरणासे ही आगामी कार्य सम्पन्न करानेके लिये त्रिजटा घर गयी। अन्यथा श्रीहनुमान्‌जीको बात करनेका सुअवसर कैसे मिलता?

निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी।
अस कहि सो निज भवन सिधारी॥

उसके बाद श्रीसीताजी मुखसे कहती हैं—हा हन्त! विधाता विपरीत हो गया है न अग्नि मिलेगी न शूल नष्ट होगा।

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला।
मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥

विरहकी चरम स्थिति है एतावता श्रीसीताजीको तारे, चन्द्रमा सबमें अग्नि दिखायी पड़ती है।

डहकु न है उजियरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लाग मोहि बिनु राम॥

(श्रीबरवैरामायण ३७)

अन्तमें श्रीसीताजीने अशोकसे अग्निकी याचना की कि हे अशोकवृक्ष! मेरी विनय सुनो! मेरे शोकका अपहरण करके अपना अशोक नाम सत्य करो। तुम्हारे नये नये कोमल पत्ते अग्निके समान हैं, अतः अग्नि दो।

सुनहि बिनय मम बिटप असोका।
सत्य नाम करु हरु मम सोका॥

तब श्रीहनुमान्‌जीने विचार किया कि इस समय मुद्रिका देनेका सुन्दर अवसर है। माताजी अशोकसे अग्निकी याचना कर रही हैं और मैं अशोक वृक्षपर ही हूँ। यह विचारकर उन्होंने ऊपरसे मुद्रिका श्रीसीताजीके सामने गिरा दी। मानो अशोकने अङ्गार दिया हो। यह समझकर श्रीसीताने प्रसन्न होकर उठकर मुद्रिकाको हाथमें ले लिया। यहाँपर 'अङ्गार'का बहुत विलक्षण प्रयोग है। अग्निके जाज्वल्यमान कणोंको 'अङ्गार' कहते हैं। अङ्गारका और मणिका दीप्तिमें सादृश्य है।

कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥

श्रीसीताजीने हाथमें लेकर देखा, अरे! यह तो आगकी तरह ज्वलनशील नहीं है अपितु शीतल है।

महाकवि श्रीकेशवदासजी श्रीरामचन्द्रिकामें लिखते हैं।

जब लगी सियरी हाथ।
यह आग कैसी नाथ।
यह कह्यो लखि तब ताहि।
मन जटित मुँदरी आहि॥

जब श्रीसीताजीने पूछा—तू कौन है? तू सुर है वा असुर? मेरी ओर तो देख तू पक्षका है या विपक्षका अथवा तू रावण ही है? वानर रूप धरकर मेरे साथ माया रचता है तब श्रीहनुमान्‌जीने अपना परिचय दिया। श्रीसीताजी मुद्रिकासे कहती हैं—राज्यलक्ष्मीने श्रीअयोध्यामें, मैंने वनमें और तूने मार्गमें श्रीरामको छोड़ा, अतः हे मुद्रिके! अब स्त्रियोंकी प्रतीति कौन करेगा?

श्रीपुरमें वन मध्य हौं तू मग करी अनीति।
कहि मुँदरी अब तियन की को करिहै परतीति॥

(श्रीरामचन्द्रिका १३। ८५)

श्रीसीताजीके पूछनेपर भी जब मुद्रिकाने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब श्रीहनुमान्‌ने कहा—हे मातः! आप इसे मुद्रिका नामसे सम्बोधन करके पूछती हैं अतः यह मौन है; क्योंकि आपके न रहनेपर आपके वियोगमें श्रीरामजीने इसे कङ्कणकी पदवी दी है। अतः यह मुँदरी अपनेको कङ्कण समझती है।

तुम पूँछत कहि मुद्रिके मौन होत यहि नाम।
कंकन की पदवी दई तुम बिन या कहँ राम॥

(श्रीरामचन्द्रिका १३। ८७)

श्रीगीतावलीजीमें भी श्रीगोस्वामीजीने मुद्रिका और श्रीसीताजीका संवाद लिखा है।

बोलि, बलि, मूँदरी; सानुज कुसल कोसलपालु।
अमिय बचन सुनाइ मेटहि बिरह ज्वाला जालु॥
कहत हित अपमान मैं कियो, होत हिय सोइ सालु।
रोष छमि सुधि करत कबहू ललित लछिमन लालु?॥

(श्रीगीतावली ५। ३। १-२)

सदल सलषन हैं कुसल कृपालु कोसल राउ!
सील सदन सनेह सागर सहज सरल सुभाउ॥
नींद भूख न देवरहि परिहरेको पछिताउ।
धीरधुर रघुबीरको नहि सपनेहू चित चाउ॥

(श्रीगीतावली ५। ४। १-२)

श्रीहनुमन्नाटकमें भी मुद्रिकाका प्रसङ्ग अत्यन्त मनोहर है। श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं—हे मैथिलि! सुन्दर रङ्गवाले, सुन्दर रामनाम वर्णोंसे युक्त दश मासे सोनेकी यह अँगूठी श्रीरघुनाथजीने आपके लिए भेजी है।

सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णस्य च मैथिलि।
प्रेषितं रामचन्द्रेण सुवर्णस्याङ्गुलीयकम्॥

(श्रीहनुमन्नाटक ६। १५)

आगे श्रीसीताजी कहती हैं—हे मुद्रिके! लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामजी प्रसन्न तो हैं न? यह सुनकर श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे स्वामिनि! आप इस चिन्तासे अपने चित्तको व्यथित न करें। अब इस मुद्रिकाको आप दूसरे नामसे पुकारें; क्योंकि आपके विरहमें श्रीरामजीने चिरकालसे इसे कङ्कण नाम दे दिया है अर्थात् श्रीरामजी अति दुर्बल हो गये हैं।

मुद्रे सन्ति सलक्ष्मणाः कुशलिनः श्रीरामपादाः सुखं
सन्ति स्वामिनि मा विधेहि विधुरं चेतोऽनया चिन्तया।
एनां व्याहर मैथिलाधिपसुते नामान्तरेणाधुना
रामस्त्वद्विरहेण कङ्कणपदं ह्यस्यै चिरं दत्तवान्॥

(श्रीहनुमन्नाटक ६। १६)

अँगूठीके नगमें श्रीरामजीके नामाक्षरोंको सादर देखती हुई श्रीसीता उसमें प्रतिबिम्बित हो गयीं। इससे आश्चर्ययुक्त होकर बोलीं—हे प्राणनाथ! मेरी चिन्ता करते करते क्या आप मद्रूप हो गये? यह कहकर श्रीसीता मूर्च्छित होगयीं।

अत्राङ्गुलीयकमणौ प्रतिबिम्बमासी-
द्रामस्य सादरमतीव विलोकयन्ती।
मद्रूप एव किमभून्मम वीक्षयेति
मीमांसया जनकराजसुता मुमोह॥

(श्रीहनुमन्नाटक ६। १७)

मुद्रिकाको देखकर श्रीसीताके मनमें अनेक प्रकारके विचारोंका समुदय हो रहा है, यहाँ कैसे आ गयी? श्रीलक्ष्मण फल लेने गये हों, श्रीरामजी सो गये हों, कोई पक्षी उठा लाया हो। हमारे वियोगमें मेरे प्रियतमने प्राणत्याग कर दिया हो तब कोई लाया हो। व्याकुलताके कारण मैं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ? श्रीसीताजीको इस प्रकार सोचते देखकर श्रीहनुमान्‌जीने श्रीसीताजीके मनका समाधान करनेके लिये श्रीरामकथा कहनेका विचार किया। अब प्रश्न है—रामकथा किस भाषा में कहूँ? महर्षि वाल्मीकिजी लिखते हैं अवधी भाषामें कथा कही गयी। श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं यदि मैं द्विजातिकी भाँति संस्कृतमें बात करूँगा तो श्रीसीताजी मुझे रावण मानकर भयभीत हो जायँगी।

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ३०। १८)

इस स्थितिमें मुझे कोई सार्थक भाषा मानुष भाषाका प्रयोग करनी चाहिये अन्यथा इन सती साध्वी सीताको मैं भलीभाँति आश्वस्त नहीं कर सकता हूँ।

अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ३०। १९)

यहाँपर मानुष भाषाका अर्थ है—जिस भाषाको अयोध्याके आसपासकी सामान्य जनता बोलती है उसी भाषाको देवी श्रीसीताजी जानती हैं।

अत्र वाक्यस्य मानुषत्वं कोसलदेशवर्ति मनुष्यसम्बन्धित्वं विवक्षितम् तादृक् वाक्यस्यैव देवी परिचितत्वात्। (श्रीगोविन्दराज)

इस प्रकार बहुत कुछ सोचने विचारनेके पश्चात् श्रीहनुमान्‌जीने अवधी भाषामें श्रीरामकथा आरम्भ की। श्रीदशरथके पुत्र श्रीराम अपनी पत्नी और भाईके साथ वनमें आ गये। वनमें रावणने श्रीसीताका अपहरण कर लिया। श्रीरामने श्रीसुग्रीवसे मित्रता करके उन्हें किष्किन्धाका राज्य दे दिया। उनकी आज्ञासे सम्पूर्ण दिशाओंमें लाखों वानर श्रीसीताजीकी खोजमें निकले हैं। उन्हींमें से मैं भी एक हूँ। सम्पातिके वचनसे चार सौ कोसके विस्तृत समुद्रको अतिक्रमण करके यहाँ आया हूँ। श्रीरामजीके मुखसे मैंने श्रीसीताजीका जैसा रूप, जैसा रङ्ग और जैसे लक्षण सुने थे उसीके अनुरूप यहाँ पाया है। इतना कहकर श्रीहनुमान्‌जी चुप हो गये।

अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया।
विररामैवमुक्त्वा स वाचं वानरपुङ्गवः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ३१। १६)

सीता मन बिचार कर नाना।
मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥
रामचंद्र गुन बरनैं लागा।
सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥

लागीं सुनैं श्रवन मन लाई।
आदिहु तें सब कथा सुनाई॥

श्रीसीताजीने कहा—कानोंको अमृतके समान सुख देनेवाली कथा जिसने सुनायी हो वह प्रकट क्यों नहीं होता है। श्रीरामचरित्रके वक्तासे कोई परदा नहीं है अपितु उसको देखनेके लिए अतिशय आतुरता है *'प्रगट होति किन भाई।'* धन्य हैं श्रीहनुमान्‌जी! जिनको देखनेके लिये श्रीसीताजी उत्सुक हैं। आज हनुमान्‌जीका कथा सुनाना सफल हो गया। इस कथाने श्रीहनुमान्‌को श्रीसीताकृपाकटाक्षकी उपलब्धि करा दी है। वास्तवमें श्रीरामकथासे न केवल चतुष्टयपुरुषार्थकी उपलब्धि होती है अपितु जीवनका चरम लक्ष्य भगवत्पदप्रेम भी प्राप्त हो जाता है। भगवत्पद प्राप्ति भी हो जाती है। धन्य हैं श्रीहनुमान्! धन्या है उनकी कथा! और धन्य है उनका सौभाग्य!

श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई।
कही सो प्रगट होति किन भाई॥

श्रीसीताजीकी आज्ञा सुनकर श्रीहनुमान्‌जी वृक्षसे उतरकर श्रीसीताजीके निकट आ गये। श्रीसीताजीके मनमें आश्चर्य हुआ कि कथा तो अवधी भाषामें मनुष्यके मुखसे सुनाई पड़ी थी और आनेवाले वानर हैं, अत: फिरकर बैठ गयीं।

तब हनुमंत निकट चलि गयऊ।
फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ॥

श्रीसूरदासजीने अशोकवाटिका प्रसङ्गका बहुत भावपूर्ण वर्णन किया है। श्रीसीताजी हनुमान्‌जीसे पूछती हैं—हे कपि! तुम किस देशसे आये हो? श्रीरामलक्ष्मण कहाँ हैं? यह मुद्रिका तुम्हें कैसे मिली? श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे माता! मैं श्रीरामजीका सेवक हनुमान् हूँ। मेरे स्वामीने आपका समाचार जाननेके लिये मुझे भेजा है। मैं तो रावणको मारकर आपको ले जाता; किन्तु श्रीरामजीकी आज्ञा नहीं मिली है। हे मेरी माँ! आप भय न करें। श्रीरामजी सेना एकत्र करके आ गये हैं। रावण तो अपने कुलका नाश करनेवाला है। उसने सोते हुए सिंहको जगा दिया है।

वनचर! कौन देस तें आयौ?
कहाँ वे राम कहाँ वे लछिमन क्यों करि मुद्रा पायौ?
हौं हनुमंत रामकौ सेवक तुम सुधि लैन पठायो।
रावन मारि तुम्हे लै जातौ रामाज्ञा नहिं पायौ॥
तुम जनि डरपौ मेरी माता राम जोरि दल ल्यायौ।
सूरदास रावन कुल खोवन सोवत सिंह जगायौ॥

दूसरे पदमें श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं—हे मेरी माँ! अब आप चिन्ता न करें। मैं तो जन्म जन्मका आपका दास हूँ, मुझ रङ्कसे आप अपना मुख क्यों फेर रही हैं?

अब जिन सोच करौ मेरी जननी! जनम जनम हौं चेरौ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन कौं सारद रंक कित फेरौ॥

(सूररामचरितावली)

श्रीहनुमान्‌जीने अपना परिचय दिया—हे मात:! हे जानकि! मैं श्रीरामका दूत हूँ। मैं करुणाधिानकी शपथ करके सत्य कहता हूँ। सन्त लोग कहते हैं कि श्रीसीताजी प्रभुको एकान्तमें 'करुणानिधान' नामसे सम्बोधित करती थीं। यह रहस्यकी बात श्रीहनुमान्‌जीने बता दी। हे मात:! यह मुद्रिका मैं लाया हूँ प्रभुने स्वयं आपके अभिज्ञानके लिये दी है।

राम दूत मैं मातु जानकी।
सत्य सपथ करुनानिधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी।
दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥

इसके पश्चात् श्रीसीताजीने पूँछा—तुम्हारा श्रीरामजीसे सम्पर्क कहाँ हुआ? तुम लक्ष्मणको कैसे जानते हो? यह नर वानरोंका अनोखा समागम किस प्रकार हुआ?

नर बानरहि संग कहु कैसें।
कही कथा भइ संगति जैसें॥

श्रीवाल्मीकीयरामायणमें श्रीसीताजीका बड़ा विलक्षण प्रश्न है। वे कहती हैं—श्रीरामलक्ष्मणके जो चिन्ह हैं, उनकी आकृति, उनका रूप, उनकी भुजाएँ और जाँघोंका वर्णन करो।

कीदृशं तस्य संस्थानं रूपं तस्य च कीदृशम्।
कथमूरू कथं बाहू लक्ष्मणस्य च शंस मे॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ३५। ४)

श्रीठाकुरजीके दिव्यदेशमें दर्शन करने तो सभी जाते हैं; परन्तु भक्तके दर्शन करनेकी दृष्टिमें और सामान्यजनकी दृष्टिमें अवनि अम्बरका अन्तर होता है। सामान्य व्यक्ति मन्दिरके निर्माणकी चकाचौंधमें भगवान्‌को भूल जाता है। वह देखता है कि मन्दिर बहुत अच्छा है, साज सज्जा अच्छी है, झाड़ फानूस अच्छे हैं, पुजारीजी बहुत अच्छे हैं; परन्तु भक्त तन्मय होकर श्रीठाकुरजीके दिव्य विग्रहका दर्शन करता है। वह अपनी भावमयी दृष्टिसे श्रीरामजीकी प्रसन्नताका अनुभव करता है। कभी कभी यह भी सोचता है कि आज भगवान्‌का मुखमण्डल उदास है, सेवामें कोई कमी रह गयी है, मेरी भावना दोष पूर्ण है इत्यादि। वह भगवान्‌के दिव्यनेत्रोंका, भगवान्‌के कण्ठका, भगवान्‌की नासिकाका, भगवान्‌के एक एक अङ्गका सूक्ष्म दृष्टिसे दर्शन करता है; यही भक्तकी दृष्टि है।

श्रीसीताजी पूँछती हैं—हे हनुमान्! तुम भगवान्‌के सेवकहो तो उनका पादसंवाहन अवश्य ही करते होगे? उनके श्रीचरणोंमें कौन कौनसी रेखायें हैं? उनकी नखमणिचन्द्रिका कैसी है उनका पार्ष्णिप्रदेश कैसा है? श्रीचरणोंके तलवे कैसे हैं? उनकी मनोहारिणी भुजाएँ कैसी हैं? उनका वक्षस्थल कितना विशाल है? उनके किन किन अङ्गोंमें तिल हैं? उनका ऊरु प्रदेश कैसा है? उनका कटिप्रदेश कैसा है? उनके अधरोष्ठ कैसे हैं? उनकी नासिका कैसी है? उनकी दन्तपङ्क्ति कैसी है? उनकी चिबुक कैसी है? उनका कपोलप्रदेश कैसा है? उनके श्रवण कैसे हैं? उनके नेत्र कैसे हैं? सबका भलीभाँति निरूपण करो। श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे जनकाधिराजतनये! श्रीरघुनन्दनके विशाल नेत्र उत्फुल्ल कमलके समान तापापहारक हैं। उनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान आह्लादक हैं। हे मातः! वे तो जन्म कालसे ही रूपवान् और उदार हैं।

रामः कमलपत्राक्षः पूर्णचन्द्रनिभाननः।
रूपदाक्षिण्यसम्पन्नः प्रसूतो जनकात्मजे॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ३५। ८)

इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जीने श्रीरामजीके विविध श्रीअङ्गोंका अति सुशोभन वर्णन किया है।

श्रीसीताजीने श्रीहनुमान्‌की विकट परीक्षा ली है। इस प्रकारकी परीक्षा शायद ही किसीकी किसीने ली होगी। जो गम्भीर भक्त नहीं होगा वह इस प्रश्नको सुनकर ही घबड़ा जायगा। परन्तु धन्य हैं श्रीहनुमान्‌जी! उन्होंने अनुद्विग्न भावसे गङ्गा यमुनाकी धारा बहाते हुये स्नेहसिक्त वाणीमें वर्णन किया है। सुनकर श्रीसीताजीको पूर्ण विश्वास हो गया। उनकी सारी शङ्कायें निरस्त हो गयीं, उनकी भी आँखोंसे गङ्गायमुनाकी धारा

बहने लगी। श्रीसीताजीके मनमें पूर्ण विश्वास समुत्पन्न हो गया और उनको परिज्ञात हो गया कि श्रीहनुमान्‌जी मन वचन कर्मसे कृपापाथनाथ रघुनाथके निज दास हैं।

कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास॥

श्रीसीताजीने भीगे कण्ठसे कहा—हे तात! तुम न आते तो मैं श्रीराम विरहसमुद्रमें डूबकर मर जाती। तुमने जहाज बनकर मेरे प्राणोंकी रक्षा कर ली।

बूड़त बिरह जलधि हनुमाना।
भयहु तात मो कहुँ जलजाना॥

तदनन्तर श्रीसीताजीने कुशल प्रश्न किया। श्रीहनुमान्‌जीने सुन्दर उत्तर दिया। फिर श्रीसीताजीने अतिशय भावपूर्ण प्रश्न करके अपनी स्नेहपङ्किल अभिलाषाकी अभिव्यक्ति की है। वे पूछती हैं—हे पुत्र! क्या कभी सेवकोंको सुखदेनेवाले श्रीरामजी मेरी याद करते हैं? हे तात! उनके कोमल साँवल अङ्गको देखकर क्या कभी मेरे सन्तप्त नेत्र शीतल होंगे?

कबहुँ नयन मन सीतल ताता।
होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥

श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे मातः! श्रीरामजीका प्रेम आपसे दूना है। अब आप श्रीरामजीका स्नेहपूर्ण सन्देश सुनें। सन्देश सुनाकर धैर्य धारण कराया, आश्वस्त किया और कहा—हे मैया! आप सेवकोंको सुख देनेवाले श्रीरामजीका स्मरण करें।

कह कपि हृदयँ धीर धरु माता।
सुमिरु राम सेवक सुख दाता॥

हे मातः! श्रीरामके प्रचण्ड बाणरूपी दिवाकरके समुदित होनेपर क्या राक्षसोंकी सेनाके गाढान्धकारका अस्तित्व रह सकता है?

राम बान रबि उएँ जानकी।
तम बरूथ कहँ जातुधान की॥

हे मातः! मैं आपको इसी समय अपनी पीठपर बिठाकर ले जा सकता हूँ; परन्तु मेरे स्वामीने मुझे आज्ञा नहीं दी है। हे जननि! कुछ कालपर्यन्त धैर्य धारण करें। वानरीसेनाके साथ श्रीरामजी लङ्कामें आयेंगे और राक्षसोंका वध करके आपको ले जायँगे। त्रैलोक्यमें श्रीनारद आदि ऋषि मुनि श्रीसीतारामजीकी कीर्तिका गान करेंगे।

अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई।
प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा।
कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा॥
निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं।
तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं॥

श्रीसीताजीने अत्यन्त वात्सल्यसे कहा—हे पुत्र! सब वानर तुम्हारे ही समान हैं और राक्षस तो अत्यन्त योद्धा एवं अत्यन्त बलवान् हैं, एतावता मेरे मनमें अत्यन्त सन्देह है कि तुमलोग राक्षसोंसे किस प्रकार युद्ध करोगे? माताका वचन सुनते ही श्रीहनुमान्‌जीने अपना शरीर प्रकट कर दिया। *'निज देह'* का भाव यह है कि यह उनका सहज स्वरूप है, छोटे बड़े रूप तो कार्यानुसार करते रहते हैं।

हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना।
जातुधान अति भट बलवाना॥
मोरें हृदय परम संदेहा।
सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥

श्रीजानकीजीने राक्षसोंमें तीन विशेषता बताकर

सन्देह व्यक्त किया था।

जातुधान अति भट बलवाना।

श्रीहनुमान्‌जीने अपने मुखसे न कहकर अपने स्वरूप प्रदर्शनसे तीनों सन्देह निरस्त कर दिये। श्रीहनुमान्‌का ***'निज शरीर'*** कनकाचलके आकारका था, समरमें भयङ्कर था, अत्यन्त बली और वीर था। श्रीसीताजीके मनमें विश्वास हो गया। श्रीसीताजीने कहा—हे हनुमान्‌! तुम समस्त राक्षसोंका संहार करनेमें समर्थ हो।

कामं त्वमपि पर्याप्तो निहन्तुं सर्वराक्षसान्।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ३७। ५७)

तत्काल श्रीहनुमान्‌जीने छोटा सा रूप धारण कर लिया।

कनक भूधराकार सरीरा।
समर भयंकर अतिबल बीरा॥
सीता मन भरोस तब भयऊ।
पुनि लघु रूप पवनसुत लयऊ॥

श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे मातः! वानरोंमें बहुत बल बुद्धि नहीं होती है; परन्तु प्रभुके प्रतापसे अत्यन्त छोटा सर्प भी गरुड़का भक्षण कर सकता है।

सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप तें गरुड़हि खाइ परम लघु ब्याल॥

श्रीहनुमान्‌की भक्ति, प्रताप, तेज और बल संयुक्त वाणी सुनकर श्रीसीताजीके मनमें संतोष हो गया।

मन संतोष सुनत कपि बानी।
भगति प्रताप तेज बल सानी॥

संतुष्ट होकर करुणामयी श्रीजानकीजीने छः आशीर्वाद दिये। बल, शील, अजर, अमर, गुणनिधि और श्रीरामजीका छोह। सम्प्रति बलकी आवश्यकता है, अतः पहले बल दिया। बल आदि पाँचों वरदानोंकी सार्थकता तभी है जब श्रीरामभक्ति मिले। एतावता अन्तमें श्रीरामकृपा प्राप्तिका आशीर्वाद दिया।

आसिष दीन्ह रामप्रिय जाना।
होहु तात बल सील निधाना॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू।
करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥

श्रीहनुमान्‌जीको अन्तिम आशीर्वाद—रामछोहका आशीर्वाद बहुत अच्छा लगा। उन्होंने इस वरको प्राप्त करके अपनेको कृतार्थ समझा ***'अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता।'*** कार्य सम्पन्न होनेके बाद श्रीहनुमान्‌जीने माँ से कहा—हे माँ! वृक्षोंमें सुन्दर फल लगे हुए हैं, इन्हें देखकर मुझे भूख लग गयी है। वास्तवमें माताको देखकर बालककी क्षुधा जागृत हो जाती है। श्रीसीताजीने कहा—हे पुत्र! बड़े बड़े राक्षस योद्धा इस वनकी रक्षा करते हैं। अभी अभी श्रीहनुमान्‌के बलको देखकर आश्वस्त हो गयी थीं फिर भी मातृत्वने आशंका उत्पन्न कर दी।

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा।
लागि देखि सुन्दर फल रूखा॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी।
परम सुभट रजनीचर भारी॥

श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे जननि! मुझे उन योद्धाओंका किञ्चिन्मात्र भी भय नहीं है; परन्तु मुझे यह चिन्ता है कि आपको दुःख न हो। श्रीहनुमान्‌जीको बल बुद्धि सम्पन्न देखकर श्रीसीताने कहा—हे पुत्र! श्रीरघुनाथजीके श्रीचरणोंको हृदयमें धारण करके मीठे फल खाओ। माताकी आज्ञा प्राप्त करके उनके श्रीचरणोंमें प्रणाम करके

श्रीहनुमान्‌जी बागमें प्रविष्ट हो करके फल खाने लगे और वृक्षोंको तोड़ने लगे।

देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु॥
चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा।
फल खाएसि तरु तोरैं लागा॥

बड़ी महत्त्वपूर्ण चौपाई है *'तरु तोरैं लागा'*—(१) श्रीहनुमान्‌जीने सोचा मैं जगत्पिताका कार्य करने आया हूँ साथ ही साथ अपने पिताका भी कुछ कार्य कर दूँ। इस वाटिकाकी रक्षा करनेमें मेरे पिताको महान् कष्ट होता है। पतझड़के समय पुराने पत्ते ही गिरते हैं; क्योंकि पवनदेव उस बागका लालन पालन रति और कामदेवके विहारस्थलके समान करते थे।

समय पुराने पात परत डरत बातु,
पालत लालत रति मारको बिहारु सो।
(श्रीकवितावली ५। १)

वृक्षोंके समाप्त होनेके बाद उनका यह कार्य ही समाप्त हो जायेगा अत: *'तरु तोरैं लागा।'*

(२) श्रीहनुमान्‌जीने सोचा रावणने मेरी माँको बहुत कष्ट दिया है आज मैं उसको कष्ट दूँगा। यह बाग उसे बेटेसे भी बढ़कर प्रिय है अत: इसके उजाड़नेसे उसे कष्ट होगा।

मेघनाद तें दुलारो प्रान तें पिआरो बागु,
अति अनुरागु जियँ जातुधान धीर कें॥
(श्रीकवितावली ५। २)

(३) इन वृक्षोंने फल खिलाकर हमें तृप्त किया है अत: मैं भी इनको उखाड़कर श्रीरामधामकी प्राप्ति करा दूँ; क्योंकि आज मैं रामबाण बनकर आया हूँ।

(४) श्रीगोस्वामीजीने श्रीगीतावली रामायणमें लिखा है कि श्रीरामजीने तीन कार्य करनेके लिये आज्ञा दी थी।

देखि दुर्ग बिसेषि जानकि जानि रिपु गति आउ।
(श्रीगीतावली ५। ४। ५)

इसलिये श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं कि दुर्ग तो मैंने लङ्कामें प्रवेश करते ही देख लिया था।

गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी।
कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी॥

श्रीजानकीजीके दर्शन भी कर लिये हैं। अब तो शत्रुकी गतिका जानना ही अवशिष्ट है। इस अवशिष्ट कार्यको ही श्रीवाल्मीकिजीने 'अल्पशेष' लिखा है।

श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं कि इस 'अल्पशेष' कार्यको सम्पन्न करनेके लिये साम, दाम, भेद और दण्ड ये चार उपाय हैं। राक्षसोंके प्रति सामनीतिका प्रयोग करनेमें कोई लाभ नहीं है; क्योंकि उनका अत्यन्त क्रूर स्वभाव है। इनके पास प्रभूत सम्पत्ति है, अत: इनके अत्यन्त धनवान् होनेके कारण दानका प्रयोग भी व्यर्थ है, ये अपने बलके दर्पमें मदोन्मत्त हैं, अत: भेदनीतिके द्वारा भी काम नहीं होगा। इस स्थितिमें चतुर्थ उपाय—दण्डनीति अर्थात् पराक्रम दिखाना ही उचित प्रतीत होता है।

अल्पशेषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा।
त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थं इह दृश्यते॥
न साम रक्षःसु गुणाय कल्पते
न दानमर्थोपचितेषु युज्यते।
न भेदसाध्या बलदर्पिता जनाः
पराक्रमस्त्वेष ममेह रोचते॥
(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ४१। २-३)

अब प्रश्न है कि पराक्रम दिखानेका क्या

साधन हो सकता है? श्रीहनुमान्‌जीने सोचा कि रावणकी अशोकवाटिका बहुत सुन्दर है। नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे संयुक्त होनेके कारण नन्दनवनके समान नेत्रोंको आनंद देनेवाली और मनोरम है। इस उपवनको ही मैं विध्वंस कर डालूँगा। जैसे आग सूखे वनको भस्म कर देती है। इसके विध्वंस होनेपर रावण अवश्य ही मुझपर क्रोध करेगा।

इदं विध्वंसयिष्यामि शुष्कं वनमिवानलः।
अस्मिन् भग्ने ततः कोपं करिष्यति स रावणः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ४१। ११)

फिर तो रावण महती सेना लेकर—चतुरङ्गिणी सेना लेकर युद्ध करने आयेगा और महान् युद्ध आरम्भ हो जायेगा। **'ततो महद्‌युद्धमिदं भविष्यति।'** इस विचारसे फलोंको खाकर वृक्षोंको तोड़ने लगे। अब तो महान् युद्ध आरम्भ हो गया। रावणकी चौथाई सेना इस युद्धमें श्रीहनुमान्‌जीने समाप्त कर दी। रावणने अपने पुत्र वीरश्रेष्ठ अक्षयकुमारको लड़नेके लिये भेजा। श्रीहनुमान्‌जी और अक्षयकुमारका संग्राम हुआ। पवननन्दन श्रीहनुमान्‌जीने जैसे गरुड़जी बड़े बड़े सर्पोंको वेगपूर्वक घुमाते हैं; उसी भाँति अक्षयकुमारको पकड़कर हजारों बार घुमाकर भूतलमें पटक दिया। उसकी भुजा, जाँघ, कमर और छातीके टुकड़े टुकड़े हो गये। रक्तकी धारा बहने लगी,हड्डियाँ चूर चूर हो गयीं, आँखें बाहर निकल आयीं और नस तथा नाड़ियोंके बन्धन भी शिथिल हो गये। इस प्रकार अक्षयकुमार मारा गया।

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा।
चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा।
ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥
स भग्नबाहूरुकटीपयोधरः
क्षरन्नसृङ्निर्मथितास्थिलोचनः।
सम्भिन्नसन्धिः प्रविकीर्णबन्धनो
हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ४७। ३६)

'महाधुनि गर्जा'—श्रीहनुमान्‌जी रावणकी विशाल वाहिनीमें घूम घूमकर एकाकी ही युद्ध करते हुए गर्जना कर रहे थे।

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ४२। ३३-३६)

इस घोषणाका एक एक शब्द मन्त्रकी भाँति महत्त्वपूर्ण है। इन श्लोकोंमें श्रीहनुमान्‌जीकी निष्ठाका परिचय, साहसका परिचय और भगवत्कृपापर विश्वासका परिचय मिलता है। इसी गर्जनाको श्रीगोस्वामीजीने ***'महाधुनि गर्जा'*** शब्दसे संकेत किया है। इसके पश्चात् रावणने महान् बलका प्रयोग किया—मेघनादको भेजा। उसको देखकर श्रीहनुमान्‌जी दाँत कटकटाकर गर्जते हुए दौड़े ***'कटकटाइ गर्जा अरु धावा।'*** एक विशालवृक्ष उखाड़कर उसके द्वारा मेघनादके रथ, सारथी और घोड़ोंका नाश कर दिया।

अति बिसाल तरु एक उपारा।
बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा॥

फिर दोनोंका मल्ल युद्ध हुआ और मुष्टिक युद्ध भी हुआ। श्रीहनुमान्‌जी मेघनादको—संसारके अप्रतिम वीरको एक मुक्का मारकर पेड़पर चढ़ गये और वह मूर्च्छित हो गया। उठकर उसने सोचा कि युद्धमें तो इन्हें पराजित करना सम्भव नहीं है। उसकी सारी माया कुण्ठित हो गयी।

तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा।
भिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई।
ताहि एक छन मुरुछा आई॥
उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया।
जीति न जाइ प्रभंजन जाया॥

तब उसने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। श्रीहनुमान्‌जीने विचार किया कि श्रीब्रह्माके वरदानके कारण यद्यपि मुझे ब्रह्मास्त्रके द्वारा कोई हानि नहीं हो सकती है, फिर भी मुझे ब्रह्माका एवं उनके अस्त्रका सम्मान करना चाहिए।

'मयात्मयोनेरनुवर्तितव्यः।'

ब्रह्म अस्त्र तेहिं साधा कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार॥

श्रीहनुमान्‌जीने सोचा कि राक्षसोंके द्वारा पकड़े जानेमें भी मुझे गुण ही गुण दिखायी दे रहे हैं। इसी व्याजसे मुझे रावणसे बात करनेका अवसर मिलेगा, अतः ये मुझे पकड़कर ले चलें।

ग्रहणे चापि रक्षोभिर्मह्यमे गुणदर्शनम्।
राक्षसेन्द्रेण संवादस्तस्माद् गृह्णन्तु मां परे॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ४८। ४४)

श्रीहनुमान्‌जीके बन्धनपर श्रीगोस्वामीजी अपनी टिप्पणी लिखते हैं।

जासु नाम जपि सुनहु भवानी।
भव बंधन काटहिं नर ग्यानी॥
तासु दूत कि बंध तरु आवा।
प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा॥

श्रीहनुमान्‌जीको बाँधकर मेघनाद रावणकी सभामें ले गया। श्रीहनुमान्‌जीने रावणका प्रताप देखा; परन्तु उनके मनमें कोई शङ्का नहीं हुई।

दसमुख सभा दीखि कपि जाई।
कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई॥
कर जोरें सुर दिसिप बिनीता।
भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥
देखि प्रताप न कपि मन संका।
जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका॥

उसके प्रतापका वर्णन अनेक सद्ग्रन्थोंमें है श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं।

बेद पढ़ैं बिधि संभु सभीत पुजावन रावनसों नितु आवैं।
दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि तें सिरु नावैं॥

(कवितावलीजी ७। २)

रावण अपने प्रभावका वर्णन करते हुए स्वयं कहता है कि मृत्यु मेरा पैर दबानेवाला भृत्य है, सूर्य मेरे यहाँ अँगीठी तपानेका कार्य करता है, आठों दिक्पाल मेरे भयसे घबड़ाकर मेरे चरणोंकी धूलिको प्रणाम करते हैं, मेरे चन्द्रहास खड्गको देखकर देवाङ्गनाओं और नागपत्नियोंका गर्भपात हो जाता है।

मृत्युःपादान्तभृत्यस्तपति दिनकरो मन्दमन्दं ममाग्रेऽ
प्यष्टौ ते लोकपाला मम भय चकिताः पादरेणुं ववन्दुः।
दृष्ट्वा तं चन्द्रहासं स्त्रवति सुरवधूपन्नगीनां च गर्भो
निर्लज्जौ तापसौ तौ कथमिह भवतो वानरान्मेलयित्वा॥

(श्रीहनुमन्नाटक ८। १९)

रावणके प्रतापको देखकर श्रीहनुमान्‌जीको भय हो भी नहीं सकता क्योंकि उनका पराक्रम समस्त देवताओं और राक्षसोंसे अधिक है।

श्रीहनुमान्‌जी इसी सभामें रावणसे कहेंगे कि हे दशग्रीव! यद्यपि मैं अकेला ही हाथी, घोड़े और रथोंके सहित समूची लङ्काका नाश कर सकता हूँ; तथापि मेरे रामजीका ऐसा विचार नहीं है।

कामं खल्वहमप्येकः सवाजिरथकुञ्जराम्।
लङ्कां नाशयितुं शक्तस्तस्यैष तु न निश्चयः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ५१। ३१)

पञ्चमुख छमुख भृगुमुख्य भट असुर सुर
सर्व सरि समर समरत्थ सूरो।
बाँकुरो बीर विरुदैत विरुदावली
वेद बंदी बदत पैजपूरो॥

(श्रीहनुमानबाहुक)

निर्भीक श्रीहनुमान्‌जीको देखकर रावण दुर्वचन कहकर दसों मुखोंसे जोरसे हँसा। फिर अक्षयकुमारके वधकी स्मृति करके दुःखी हो गया।

कपिहि बिलोकि दसानन बिहँसा कहि दुर्बाद।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिषाद॥

'बिहँसा कहि दुर्बाद'—श्रीरामचरितमानसमें दुर्वादोंका कहीं स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। जैसे—***'लखन कहेउ कछु बचन कठोरा', 'मरम बचन सीता जब बोला',*** और ***'तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद'*** इत्यादि।

रावणने श्रीहनुमान्‌जीसे पूछा कि अरे वानर! तू कौन है? किसके बलपर तुमने वनको उजाड़कर नष्ट कर डाला? क्या तूने कभी मेरा नाम कानोंसे नहीं सुना? अरे शठ! मैं तुझे अतिशय निडर देख रहा हूँ। तूने किस अपराधसे मेरे राक्षसोंको मारा? अरे शठ! तुझे अपने प्राणोंका भय नहीं है?

कह लंकेस कवन तैं कीसा।
केहि कें बल घालेहि बन खीसा॥
की धौं श्रवन सुनेहि नहिं मोही।
देखउँ अति असंक सठ तोही॥
मारे निसिचर केहिं अपराधा।
कहु सठ तोहि न प्रान कइ बाधा॥

श्रीहनुमान्‌जीने उत्तर दिया—हे रावण! जिनके बलसे माया सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समूहोंकी रचना करती है। तुम्हारी तरह दुष्टोंको शिक्षा देनेके लिये और देवताओंकी रक्षाके लिये जो अनेक प्रकारकी देह धारण करते हैं। खर, दूषण, त्रिशिरा और बालि आदि अत्यन्त बलशालियोंका जिन्होंने वध कर दिया। जिनके लेशमात्र बलसे तुमने समस्त चराचरको जीत लिया और जिनकी प्रिय पत्नीको तुम हर लाये हो मैं उन्हीं श्रीरामजीका दूत हूँ।

जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥

हे रावण! मैं तुम्हारी प्रभुताको जानता हूँ। आपका सहस्रबाहुसे युद्ध हुआ था। वानरेन्द्र बालिसे भी युद्ध करके आपने यश प्राप्त किया था। सन्त दोष छिपाते हैं ***'जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा।'*** श्रीहनुमान्‌जीने भी रावणका उत्तर देकर भी उसकी पोल नहीं खोली। श्रीहनुमान्‌जीने कहा—मुझे भूख लगी थी अतः मैंने फल खा लिया और वानर स्वभावके कारण वृक्षोंको तोड़ दिया। शरीर तो सभीको प्रिय है अतः कुमार्गगामी आपके राक्षस जब मुझे मारने लगे तब जिन्होंने मुझे मारा उन्हें मैंने मारा। उसपर तुम्हारे पुत्रने मुझको बाँध लिया। इसका बदला अभी लेना है और लेकर ही जाऊँगा।

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई।
सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन करि जसु पावा।

सुनु कपि बचन बिहसि बिहरावा॥
खायउँ फल प्रभु लागी भूँखा।
कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
सब कें देह परम प्रिय स्वामी।
मारहिं मोहि कुमारग गामी॥
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे।
तेहि पर बाँधेउँ तनयँ तुम्हारे॥

फिर श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे रावण! तुमने सोचा होगा कि इसको बाँधकर जब नगरमें घुमायेंगे तो यह लज्जित हो जायगा; परन्तु मुझे बाँधे जानेकी लज्जा नहीं है। हमने तो स्वयं बन्धन स्वीकार किया है, मुझे बाँधनेकी सामर्थ्य किसमें है? हे दशग्रीव! मैं तो अपने स्वामीका कार्य करना चाहता हूँ। मेरे स्वामीकी आज्ञा थी कि मैं यह जान लूँ कि तुम कितने पानीमें हो एतावता मुझे बँधना पड़ा।

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा।
कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥

हे रावण! मैं बद्धाञ्जलि होकर विनती करता हूँ कि तुम अभिमान छोड़कर मेरी शिक्षा सुनो, हे रावण! तुम श्रीसीताजीको श्रीरामजीको देकर उनकी शरणागति स्वीकार कर लो। श्रीरामजी प्रणतपाल हैं, करुणासागर हैं, खरारि हैं—परम सामर्थ्य सम्पन्न हैं।

प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥

इस प्रकार अनेक कल्याणमय उपदेश श्रीहनुमान्‌जीने दिया; परन्तु दुष्ट रावणने हँसीमें उड़ा दिया। वह उपहास करते हुये कहता है—हमें बड़ा ज्ञानी वानर गुरु मिला।

बोला बिहसि महा अभिमानी।
मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी॥

पुनः रावणने कहा—तू आसन्नमृत्यु है, उत्तरमें श्रीहनुमान्‌जीने कहा—तुझे मतिभ्रम हो गया है, वास्तवमें तो तू ही आसन्नमृत्यु है। श्रीहनुमान्‌जीकी बात सुनकर रावण खिसिया गया। तब उसने प्राणदण्डकी आज्ञा दे दी। रावणकी आज्ञा सुनकर राक्षस श्रीहनुमान्‌जीको मारने दौड़े उसी समय मन्त्रियोंको साथमें लेकर विभीषणजी आ गये।

सुनत निसाचर मारन धाए।
सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए॥

रावणकी आज्ञाके विपरीत श्रीविभीषणने कहा—हे राक्षसेन्द्र! क्षमा कीजिये, रोषका परित्याग करिये, प्रसन्न होइये और मेरी बात सुनिये। उचित अनुचितका विचार करनेवाले श्रेष्ठ राजागण दूतका वध नहीं करते।

क्षमस्व रोषं त्यज राक्षसेन्द्र
प्रसीद मे वाक्यमिदं शृणुष्व।
वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा
दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ५२। ५)

विभीषणका वचन सुनकर रावण क्रुद्ध हो गया और उसने कहा—पापियोंके मारनेमें पाप नहीं है मैं इसे अवश्य मारूँगा। सुनकर श्रीविभीषणने रावणको अनेक प्रकारसे समझाया। हे राक्षसराज! दूतके किसी अङ्गको विरूपविकृत कर देना, कोड़ेसे पिटवाना, सिर मुड़ा देना, शरीरको दागकर कोई चिन्ह बना देना ये ही दण्ड दूतोंके लिये उचित कहे गये हैं; परन्तु वधका दण्ड नहीं सुना है।

वैरुप्यमङ्गेषु कशाभिघातो
मौण्ड्यं तथा लक्षणसन्निपातः।
एतान् हि दूते प्रवदन्ति दण्डान्
वधस्तु दूतस्य न नः श्रुतोऽस्ति॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ५२। १५)

यह सुनकर रावणने कहा—वानरकी ममता पूँछपर अधिक होती है अतः इसकी पूँछमें आग लगा दो। रावणके सेवकोंने आज्ञा सुनकर तेल और घीमें वस्त्रखण्डको डुबोकर पूँछपर बाँधना आरम्भ कर दिया और श्रीहनुमान्‌जीने पूँछ बढ़ाना शुरू कर दिया परिणाम यह हुआ कि—

रहा न नगर बसन घृत तेला।
बाढ़ी पूँछ कीन्ह कपि खेला॥
बसन बटोरि बोरि बोरि तेल तमीचर
खोरि खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं।
तैसो कपि कौतुकी डेरात ढीले गात कै कै
लातके अघात सहै जीमें कहै कूर हैं॥
बाल किलकारी कै कै तारी दै दै गारी देत
पाछें लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं।
बालधी बढ़न लागी ठौर ठौर दीन्ही आगी
बिंधिकी दवारि कैधौं कोटिसत सूर हैं॥

(श्रीकवितावली रामायण ५। ३)

राक्षसलोग रावणकी आज्ञासे पूँछमें आग लगानेके पश्चात् श्रीहनुमान्‌जीको समस्त लङ्कामें घुमाने लगे। श्रीहनुमान्‌जी आगे आगे चल रहे थे, पीछे पीछे राक्षस शङ्ख, भेरी आदि बजाते हुये चल रहे थे। श्रीहनुमान्‌जी निर्भयतापूर्वक उत्साहसे लङ्काके दुर्गका भलीभाँति निरीक्षण करते हुये चल रहे थे। नगरके नरनारी अपनी अपनी छतोंपरसे यह दृश्य देख रहे थे। श्रीहनुमान्‌जीकी मस्ती भरी चालसे यह ज्ञात होता था कि मानो उनकी अपूर्व शोभा यात्रा निकल रही है और लङ्कानिवासी दर्शन कर रहे हैं।

जिस समय श्रीहनुमान्‌जीकी पूँछमें आग लगायी जा रही थी उसी समय किसी राक्षसीने श्रीसीताजीको समाचार दिया। इस द्रावक एवं क्रूरवचनको सुनकर श्रीसीताजी शोकसन्तप्त हो गयीं। वे मनसे अग्निदेवकी उपासना करने लगीं—हे अग्निदेव! यदि मैंने अपने पतिकी सेवा की है और यदि मुझमें किञ्चिन्मात्र भी तपस्या और पातिव्रत्यका बल है तो आप मेरे हनुमान्‌के लिये शीतल हो जायँ।

यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वंशीतो भव हनूमतः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ५३। २७)

पूँछमें आग लगानेपर श्रीहनुमान्‌जी सोचने लगे कि यह आग भलीभाँति प्रज्वलित होनेपर भी मुझे जला क्यों नहीं रही है?

दह्यमाने च लाङ्गूले चिन्तयामास वानरः।
प्रदीप्तोऽग्निरयं कस्मान्न मां दहति सर्वतः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ५३। ३३)

फिर श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं—मेरी माँ श्रीसीताजीकी कृपासे, मेरे स्वामीके तेजसे और मेरे पिताके सख्य सम्बन्धसे ही श्रीअग्निदेव मुझे नहीं जला रहे हैं।

सीतायाश्चानृशंस्येन तेजसा राघवस्य च।
पितुश्च मम सख्येन न मां दहति पावकः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ५३। ३७)

श्रीहनुमान्‌जीने जब प्रज्वलित अग्निको देखा तब तुरन्त अत्यन्त छोटे हो गये।

पावक जरत देखि हनुमंता।
भयउ परम लघुरूप तुरंता॥

'देखि' कहनेका भाव कि उन्हें दाहका अनुभव नहीं हुआ कि पूँछ जल रही है। श्रीहनुमान्‌जी लघुरूप होनेके कारण बन्धनसे निकलकर सोनेकी अँटारियोंपर चढ़ गये। उस समय राक्षसोंकी स्त्रियाँ भयाक्रान्त हो गयीं। स्त्रियोंके भयका स्वरूप श्रीगोस्वामीजीने वर्णन किया है।

पानी पानी पानी सब रानी अकुलानी कहैं
जाति हैं परानी गति जानी गजचालि है।
बसन बिसारैं मनिभूषन सँभारत न
आनन सुखाने कहैं क्योंहू कोऊ पालिहै॥
'तुलसी' मँदोवै मीजि हाथ धुनि माथ कहै
काहूँ कान कियो न मैं कह्यो केतो कालि है।
बापुरें बिभीषन पुकारि बार बार कह्यो
बानरु बड़ी बलाइ घने घर घालिहै॥

(श्रीकवितावली ५। १०)

उस समय श्रीहरिकी प्रेरणासे उनचासों पवन चलने लगे। श्रीहनुमान्‌जी अट्टहास करके गर्जे और बढ़कर आकाशमें लग गये।

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास॥
बालधी बिसाल बिकराल ज्वालाजाल मानो
लंक लीलिबेको काल रसना पसारी है।
कैधौं ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु
बीररस बीर तरवारि सो उघारी है॥
'तुलसी' सुरेस चापु कैधौं दामिनि कलापु
कैधौं चली मेरु तें कृसानु सरि भारी है।
देखें जातुधान जातुधानीं अकुलानी कहैं
काननु उजार्‌यो अब नगरु प्रजारि है॥

(श्रीकवितावलीजी ५। ५)

श्रीहनुमान्‌जीका शरीर विशाल है; परन्तु फुर्ती बहुत है वे दौड़कर एक महलसे दूसरे महलपर चढ़ जाते हैं। नगर जल रहा है, लोग व्याकुल हो गये हैं, अग्निकी भयङ्कर लपटें झपट रही हैं। श्रीहनुमान्‌जीने रावणकी राक्षसी साधनाको नष्ट कर दिया। रावणने सबको यही सिखाया था कि माता, पिता, साधु और देवताओंको मत मानो इनका कोई महत्त्व नहीं है।

मानहिं मातु पिता नहिं देवा।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी।
ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥

(१। १८४)

प्रस्तुत प्रसङ्गमें सबका महत्त्व ज्ञात होने लगा। सब पिता, माता, सुर और साधुकी महिमाका बखान करने लगे।

तात मातु हा सुनिअ पुकारा।
एहिं अवसर को हमहि उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहिं होई।
बानर रूप धरें सुर कोई॥
साधु अवग्या कर फलु ऐसा।
जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥

लङ्कामें चारों ओर करुणक्रन्दन सुनायी पड़ रहा है। हा तात! हा पुत्र! हा कान्त! हा मित्र! हा प्राणेश्वर! हमारे समस्त पुण्य समाप्त हो गये। इस प्रकार भाँति भाँतिसे विलाप करते हुए राक्षस राक्षसीगण बड़ा भयावह और घोरतर आर्त्तनाद कर रहे हैं।

हा तात हा पुत्रक कान्त मित्र
हा जीवितेशाङ्ग हतं सुपुण्यम्।
रक्षोभिरेवं बहुधा ब्रुवद्भिः
शब्दः कृतो घोरतरः सुभीमः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ५४। ४०)

लङ्कादहनके प्रसङ्गमें महाकवि केशवदास लिखते हैं—जब श्रीहनुमान्‌जीने लङ्कामें आग लगायी तब इतनी ऊँची लपटें उठीं कि देवताओंको अपने विमान ऊपर ले जाने पड़े अन्यथा वे जल जाते। बहुमूल्य पत्थर फटकर उछलते हैं। रानियाँ पानी पानी चिल्लाती हैं। लङ्कानगरीके पिघल

जानेसे सोना पिघलकर अनेक धाराओंसे समुद्रमें जा गिरा। ऐसा ज्ञात होता है कि मानो गङ्गाको हजार धाराओंसे मिलती हुई देखकर ईर्ष्यासे सरस्वती नदी असंख्य धाराओंसे सुखी होकर समुद्रमें मिल रही है।

लंकहि लाय दई हनुमंत विमान बचे अति उच्चरुखी ह्वै।
पाचि फटैं उचटैं बहुधा मनि रानि रटै पयपानी दुःखी ह्वै॥
कंचनको पघिलो पुर पूर पयोनिधि में पसरो सो सुखी ह्वै।
गंग हजार मुखी गुनि केशो गिरा मिली मानो अपार मुखी ह्वै॥

(श्रीरामचंद्रिका १४। ११)

श्रीहनुमान्‌जीने समस्त नगर एक क्षणमें ही जला डाला। एक मात्र श्रीविभीषणका गृह नहीं जलाया।

जारा नगरु निमिष एक माहीं।
एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥

श्रीकेशवदासजी लिखते हैं बचा हुआ विभीषणका घर सूर्योदयकी बेलामें प्रफुल्ल कमलकी भाँति सुशोभित हो रहा है।

हनुमत लाई लंक सब बच्यो बिभीषन धाम।
जनु अरुणोदय बेर में पंकज पूरब जाम॥

(श्रीरामचन्द्रिका १४। १२)

इस प्रकार एक छोरसे दूसरे छोरतक पहुँचकर समस्त लङ्का जला करके समुद्रमें कूद पड़े।

उलटि पलटि लंका सब जारी।
कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥

समस्त लङ्काको व्यथित करके वानर शिरोमणि श्रीहनुमान्‌जीने समुद्रके जलमें कूदकर अपनी पूँछकी आग शान्त कर ली।

लङ्कां समस्तां सम्पीड्य लाङ्गूलाग्निं महाकपिः।
निर्वापयामास तदा समुद्रे हरिपुङ्गवः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ५४। ४९)

श्रीहनुमान्‌जी मानो लङ्कादहन कर्मसे अग्निको संतृप्त करनेके लिये यज्ञ सम्पन्न करके अवभृथस्नान कर रहे हैं। महर्षि श्रीवाल्मीकिने भी लिखा है कि श्रीहनुमान्‌जी सोचते हैं—श्रीअग्निदेवका मेरे ऊपर कितना महान् उपकार है कि मुझे जला नहीं रहे हैं अपितु हिमखण्डकी तरह शैतल्य प्रदान कर रहे हैं एतावता उत्तम गृहोंकी आहुति देकर इनका संतर्पण करना सर्वथा उचित है।

यो ह्ययं मम लाङ्गूले दीप्यते हव्यवाहनः।
अस्य संतर्पणं न्याय्यं कर्तुमेभिर्गृहोत्तमैः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ५४। ५)

श्रीगोस्वामीजीने भी लिखा है।

'तुलसी' समिध सौंज लंक जग्यकुंडु लखि,
जातुधान पुंगीफल जव तिल धान हैं।
स्रुवा सो लँगूल बलमूल प्रतिकूल हबि,
स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनैं हनुमान हैं॥

(कवितावलीजी ५। ७)

इस प्रकार यज्ञान्त अवभृथस्नान करके अर्थात् पूँछ बुझा करके श्रमका अपनोदन करके पुनः छोटे वानरका रूप धारण करके श्रीहनुमान्‌जी श्रीजानकीके पास हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि॥

श्रीहनुमान्‌जीने श्रीजानकीजीसे अभिज्ञान की याचना की। श्रीसीताजीने चूड़ामणि दे दी और सन्देश कहा—हे वत्स! प्रभुको मेरी ओरसे प्रणाम करके कहना कि 'दीनदयालु' आपका बाना है, उसका स्मरण करके हे मेरे नाथ! मेरे भारी सङ्कटको दूर करिये।

दीन दयाल बिरिदु संभारी।
हरहु नाथ मम संकट भारी॥

श्रीमिथिलेशनन्दिनीने स्नेहविह्वल स्वरमें कहा—हे पुत्र! यदि सम्भव हो और उचित समझो तो किसी गुप्त स्थानमें एक दिन और रुक जाओ। बहुत बड़ा कार्य किया है, थक गये होगे; एक दिनका विश्राम मिल जायेगा, फिर चले जाना। तुम्हारे रहनेसे मुझ अभागिनीका अपार विरह दुःख थोड़ी देरके लिये कम हो जायेगा। हे वानरशार्दूल! तुम्हारे जानेके पश्चात् पुनः तुम्हारे आनेतक मैं जीवित रहूँगी या नहीं इसका कोई विश्वास नहीं है। हे वीरपुत्र! उत्तरोत्तर दुःखोंके आते रहनेसे मैं जर्जर हो गयी हूँ। मेरा मन भी शोकके कारण उत्तरोत्तर दुर्बल हो गया है। हे वत्स! अब तुम्हारा वियोग भी मेरे हृदयको और भी विदीर्ण करता रहेगा। हा हन्त! अब मैं अपने प्राणोंकी रक्षा कैसे करूँगी?

कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना।
तुम्हहू तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतल भइ छाती।
पुनि मो कहुँ सोइ दिन सो राती॥

श्रीहनुमान्‌जीने श्रीजानकीको समझाकर अनेक प्रकारसे धैर्य धारण कराया। और उनके श्रीचरण-कमलोंमें प्रणति निवेदन करके गमन किया।

जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह॥

जिस महासागरकी उत्ताल तरङ्गें अपने किनारोंका स्पर्श कर रही थीं उस लवणसागरको लीलापूर्वक लाँघनेकी इच्छासे महावीर श्रीहनुमान्‌जी आकाशमें उड़ चले।

स लिलङ्घयिषुर्भीमं सलीलं लवणार्णवम्।
कल्लोलास्फालवेलान्तमुत्पपात नभो हरिः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ५। ५६। ५१)

समुद्रके उत्तर तटके निकट आकर श्रीहनुमान्‌जीने 'किलकिला' शब्द सुनाया अर्थात् प्रसन्नतापूर्वक गर्जना की। इस गर्जनाको सुनकर वानरोंको नवजीवन मिल गया। श्रीहनुमान्‌जीके इस पार आनेपर उनसे मिलकर सब सुखी हो गये। जैसे तड़फती हुई मछलीको जल मिल गया हो *'तलफत मीन पाव जिमि बारी।'* सबलोग श्रीसीताजीकी कथा कहते सुनते मधुवनमें आ गये और श्रीअङ्गदकी सम्मतिसे फल खाकर मधुपान करके श्रीसुग्रीवके पास आ गये। श्रीजाम्बवान्‌जीने कहा—हे वानरेन्द्र! श्रीहनुमान्‌जीने समस्त कार्य सम्पन्न करके वानरोंके प्राणोंकी रक्षा कर ली। सुनकर श्रीसुग्रीव हनुमान्‌जीसे प्रेमपूर्वक मिलकर प्रसन्नतापूर्वक श्रीरामजीके पास चले। सब लोगोंने श्रीरघुनन्दनके श्रीचरणोंमें साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। करुणामय श्रीरामजीने सबसे प्रीतिपूर्वक मिलकर कुशल पूछी। सबने कहा—हे नाथ! आपके श्रीचरणकमलोंके दर्शन करके अब हम कुशलपूर्वक हैं।

प्रीति सहित सब भेटे रघुपति करुना पुंज।
पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज॥

श्रीजाम्बवान्‌ने कहा—हे रघुनन्दन! श्रीमान्‌की कृपासे समस्त कार्य सम्पन्न हो गया। आज हमारा जन्म सफल हो गया। हे स्वामिन्! पवननन्दन श्रीहनुमान्‌ने जो कार्य किया उसका वर्णन अनन्त मुखोंसे भी नहीं किया जा सकता। श्रीजाम्बवान्‌ने श्रीहनुमान्‌का सुन्दर चरित्र प्रभुको सुनाया।

प्रभु कीं कृपा भयउ सब काजू।
जन्म हमार सुफल भा आजू॥
नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी।
सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥

पवनतनय के चरित सुहाए।
जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥

रुद्रावतार श्रीहनुमान्‌जीके चरित्रको ब्रह्मावतार श्रीजाम्बवान्‌जी पूर्णब्रह्म परमात्मा श्रीरामजीको सुना रहे हैं। अपूर्व चरित्र, अपूर्व वक्ता और अपूर्व श्रोता सब आनन्द विभोर हो गये। कृपावरुणालय अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीहनुमान्‌को पुनः हृदयसे लगा लिये।

सुनत कृपानिधि मन अति भाए।
पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए॥

श्रीरामजीने पूछा—जब मैंने श्रीअयोध्याजीमें सीताजीसे कहा था कि तुम श्रीअयोध्यामें रहो तब उन्होंने कहा था।

राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान।
दीनबंधु सुन्दर सुखद सील सनेह निधान॥
(२। ६६)

अब वे मेरे वियोगमें कैसे अपने प्राणोंकी रक्षा कर रही हैं?

कहहु तात केहि भाँति जानकी।
रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥

श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हेसीतानाथ! श्रीजानकीजीके प्राणोंकी रक्षाके लिए आपका समर्थ नाम रात दिनका पहरा देनेवाला रक्षक है और आपका मङ्गलमय ध्यान कपाट है, नेत्र अपने श्रीचरणोंमें लगाये रहती हैं (यही मानो ताला बन्द है)। हे नाथ! अब आप ही बताइए प्राण किस मार्गसे जायँ?

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥

'निज पद जंत्रित' हे प्रभो! श्रीमाताजी अपने श्रीचरणोंकी रेखाओंको देखकर आपके श्रीचरणोंकी रेखाओंका ध्यान करती रहती हैं, फिर प्राण कैसे जायँ? आपके श्रीचरणोंकी रेखाएँ प्राणोंका संरक्षण कर रही हैं।

जीवति हैं? कहिबेको दयानिधि,
मोरे वियोग मरीं कस नाहीं?
प्राण बसैं पद रेखन मों,
यम ढूँढ़त है पर पावत नाहीं॥

श्रीहनुमान्‌जीने श्रीसीता प्रदत्त चूड़ामणि अर्पण की। श्रीरामजीने उसको लेकर हृदयसे लगा लिया।

चलत मोहि चूड़ामणि दीन्ही।
रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही॥

× × ×

श्रीरघुनाथ जबै मणि देखी।
जी महँ भागदशा सम लेखी॥
फूल उठ्यो मन ज्यों निधि पाई।
मानहुँ अंध सुडीठि सुहाई॥
(श्रीरामचंद्रिका १४। २४)

श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे स्वामिन्! श्रीमिथिलेश नन्दिनीने रोते हुए जो कहा है उसे सुनें। मैयाने आपके श्रीचरणोंमें प्रणाम कहा है और श्रीलक्ष्मणजीसे अपने दुर्वचनोंके लिए क्षमा याचना की है और यह कहा है कि श्रीरामजी कृपा करके मेरा उद्धार करें, यह चेष्टा करें।

तदप्याहाश्रुपूर्णाक्षी कुशलं ब्रूहि राघवम्।
लक्ष्मणं ब्रूहि मे किञ्चिद्दुरुक्तं भाषितं पुरा॥
तत्क्षमस्वाज्ञभावेन भाषितं कुलनन्दन।
तारयेन्मां यथा रामस्तथा कुरु कृपान्वितः॥
(अध्यात्मरामायण ५। ५। ५४-५५)

हे स्वामिन्! माताजीने कहा है—हे नाथ! मेरी आँखें प्राण निकलनेमें बाधा देती हैं। विरह

अग्नि है, शरीर रूई है, श्वास पवन है इस योगसे शरीर एक क्षणमें जल जाय, परन्तु मेरे नेत्र आपके दर्शनकी लालसासे अश्रुवर्षण करते रहते हैं अत: विरहाग्निसे शरीर जलने नहीं पाता है।

अवगुन एक मोर मैं माना।
बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयननि्ह को अपराधा।
निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥
बिरह अगिनि तनु तूल समीरा।
स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी।
जरैं न पाव देह बिरहागी॥

× × ×

बिरह अनल स्वासा समीर निज तनु
जरिबे कहँ रही न कछु सक।
अति बल जल बरसत दोउ लोचन
दिन अरु रैन रहत एकहि तक॥

(श्रीगीतावलीजी ५। ९। २)

श्रीहनुमान्‌जीने प्रार्थना की—

सीता कै अति बिपति बिसाला।
बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥
निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति॥

श्रीसीताजीके दु:खोंको सुनकर सुखधाम श्रीरामके नेत्रकमलोंमें आँसू समुच्छलित हो गये। प्रभुने भावविह्वल होकर कहा—हे हनुमान्! इस महान् उपकारके बदलेमें तुम्हारा क्या प्रत्युपकार करूँ। प्रत्युपकारके योग्य कुछ भी मेरे मनमें नहीं आता है, अत: मेरा मन सन्मुख नहीं हो सकता है। हे पुत्र! मैंने अपने मनमें अच्छी तरह विचारकर देख लिया कि मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता।

प्रति उपकार करौं का तोरा।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥

यह कहते कहते श्रीरामचन्द्रजीका पावन विग्रह रोमाञ्चकण्टकित हो गया और उनकी आँखोंसे गङ्गा यमुनाकी धारा बहने लगी। वे बार बार अपने भावपुत्र श्रीहनुमान्‌को देख रहे हैं।

पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता।
लोचन नीर पुलक अति गाता॥

श्रीरामजीके देखनेका भाव (१) इतना महान् कार्य सम्पन्न करके आये हैं, इतने बड़े बड़े वीरोंसे लड़कर आये हैं, लङ्का जलाकर आये हैं, इनके श्रीअङ्गपर कहीं कोई घाव तो नहीं हो गया है। इस अपूर्व वात्सल्यदृष्टिसे देखा। (२) करुणामय श्रीरामचन्द्रजी स्नेहिल भाषामें—मूक भाषामें कहते हैं कि हे हनुमन्! तुम्हारे इस कार्यके विनिमयमें मेरे पास देनेके लिये कुछ भी नहीं है अत: मेरी जिस कृपाकटाक्षकी उपलब्धिके लिये बड़े बड़े देवता तरसते रहते हैं और प्रार्थना करते हैं '**मामवलोकय पंकज लोचन**', '**महिपाल बिलोकय दीन जनं।**' वह देवदुर्लभ कृपाकटाक्ष आज मैं तुम्हें स्वयं प्रदान कर रहा हूँ। (३) हे हनुमन्! आज तुमने अपनी भक्तिसे मुझे जीत लिया है, अत: लोग मुझे देखते हैं; परन्तु मैं तुम्हें देखता हूँ। (४) देखनेसे मन तृप्त नहीं हो रहा है, अत: दृष्टि हट ही नहीं रही है एतावता बार बार देखते हैं। (५) भगवती भास्वती करुणामयी श्रीसीताजीके कृपापात्र पुत्रको देखकर श्रीजानकीजीके दर्शनका सा सुख मिल

रहा है। अतः बार बार देख रहे हैं। (६) हे हनुमन्! तुम श्रीसीताका दर्शन करके आये हो, उनके विशेष कृपाभाजन बनकर आ रहे हो एतावता मेरी कृपाकटाक्षके अब तुम सहज ही पात्र बन गये हो। (७) हे हनुमन्! आज तुम किशोरी कृपामण्डनसे मण्डित हो, अतः मुझे बहुत अच्छे लग रहे हो एतावता बार बार देख रहा हूँ। श्रीभगवान्के भावविह्वल वचन सुनकर उनके सहज प्रसन्न वदनारविन्द तथा रोमाञ्चकण्टकित अङ्गोंको देखकर श्रीहनुमान्जी प्रसन्न हो गये। और प्रेमविह्वल होकर हे भगवन्! आपकी प्रशस्तिसे कहीं मेरे मनमें अभिमान न जागृत हो जाय एतावता त्राहिमाम् त्राहिमाम् कहते हुए सरकारके श्रीचरणोंमें गिर पड़े।

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥

श्रीठाकुरजी उन्हें बार बार उठाना चाहते हैं; परन्तु प्रेममग्न श्रीहनुमान्जी चरणारविन्दके मकरन्दरसका पान करनेमें प्रमुदित हैं अतः उठना नहीं चाहते हैं। उस आनन्दकी आनन्दमयी दशाका स्मरण करके भगवान् शङ्कर भी उसी प्रेमरसमें निमग्न हो गये। फिर मनको सावधान कर शङ्करजी परम सुन्दर कथा कहने लगे।

सावधान मन करि पुन संकर।
लागे कहन कथा अति सुंदर॥

कुछ मानस मनीषी लोग इस चौपाईके 'सुन्दर' शब्दसे सुन्दरकाण्डकी कथाका अनुसन्धान करते हैं। श्रीरामजीने श्रीहनुमान्को हृदयसे लगाकर उनका हाथ पकड़कर अपने अत्यन्त निकट बैठा लिया। प्रभुने पूछा—हे हनुमान्! जो सारे संसारको रुलानेवाला रावण है, उसको तुमने कैसे रुला दिया? अर्थात् उसकी प्राणप्यारी वाटिका उजाड़कर उसके द्वारा सुरक्षित नगरीको कैसे जला दिया?

कहु कपि रावन पालित लंका।
केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥

श्रीभगवान्को प्रसन्न समझकर श्रीहनुमान्जीने अभिमानरहित होकर कहा—हे प्रभो! शाखामृगोंका बड़ा पुरुषार्थ यही है कि वे एक डालसे दूसरी डालपर कूद जाते हैं। हे प्रभो! समुद्रोल्लंघन करके सोनेका नगर जलाया गया और राक्षस समूहोंको मार कर अशोक वनको उजाड़ा गया। इन सब कार्योंका द्रष्टा तो मैं अवश्य था; परन्तु इसका कर्ता तो कोई और ही था। प्रभुने साश्चर्य पूछा—वह कौन था? श्रीहनुमान्ने सस्मित कहा—आपका प्रताप। प्रभुने कहा मेरे प्रतापने कार्य किया और मैं नहीं जानता। श्रीहनुमान्जीने आर्द्रकण्ठसे कहा—मेरे स्वामी! आपकी यही तो विशेषता है कि आप अपने प्रतापको नहीं देखते हैं अपितु प्रत्येक कार्यमें दूसरोंका ही प्रताप देखते हैं।

कहु कपि रावन पालित लंका।
केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना।
बोला बचन बिगत अभिमाना॥
साखामृग कै बड़ि मनुसाई।
साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा।
निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई।
नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

महाकवि केशवदासजी कहते हैं कि श्रीहनुमान्जीने कहा—हे स्वामिन्! मैंने तो कुछ

भी पुरुषार्थ नहीं किया, आपकी मुद्रिका मुझे उस पार ले गयी और श्रीसीताजीकी चूड़ामणि इस पार ले आयी। मैं तो निर्बल हूँ। लङ्का तो पहले ही से मर गयी थी उसको जलाकर मैंने कौन सा बड़ा कार्य किया। अक्षय कुमार बालक था। शत्रु मुझे बाँध ले गया। जो वृक्ष तोड़े वे तो दुर्बल जड़ जीव थे।

गई मुद्रिका लै पार।
मनि मोहि लाई पार॥
कहा कर्‌यो मैं बल रंक।
अति मृतक जारी लंक॥
अति हत्यो बालक अच्छ।
लै गयो बाँधि विपच्छ॥
जड़ बृच्छ तोरे दीन।
मैं कहा विक्रम कीन॥

(श्रीरामचन्द्रिका १४। ३३, ३४)

श्रीहनुमान्‌जीने प्रभुसे प्रार्थना की—हे नाथ! मुझे अपनी अनपायनी—विश्लेषरहिता भक्ति कृपा करके दीजिये।

नाथ भगति अति सुखदायनी।
देहु कृपा करि अनपायनी॥

श्रीभगवान्‌ने 'एवमस्तु' कहा। इस प्रसङ्गमें एक अत्यन्त मूल्यवान् चौपाई है। भक्तोंको उस चौपाईका मनन करना चाहिये।

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना।
ताहि भजनु तजि भाव न आना॥

श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवको बुलाकर कहा कि अब चलनेकी तैयारी करो। श्रीसुग्रीवजीने प्रभुकी आज्ञानुसार सेनापतियोंके यूथोंको बुलाया। श्रीरामजीने कहा—हे सखे! इस समय मध्याह्नके सूर्य हैं, विजय नामक मुहूर्त है, इसी पावन और शुभ मुहूर्त्तमें प्रस्थानका उद्यम करो।

अस्मिन् मुहूर्त्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय।
युक्तो मुहूर्त्ते विजये प्राप्तो मध्यं दिवाकरः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ४। ३)

प्रसन्नतापूर्वक श्रीरामचन्द्रजीने प्रस्थान किया। मङ्गल शकुन होने लगे। श्रीरामजीका प्रस्थान श्रीसीताजीको ज्ञात हो गया। उनका वाम अङ्ग फड़कने लगा। जो जो शकुन श्रीसीताजीको हुआ वही रावणको अपशकुन हुआ।

प्रभु पयान जाना बैदेहीं।
फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं॥
जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई।
असगुन भयउ रावनहि सोई॥

श्रीवाल्मीकीयरामायणके अनुसार सेनापति नीलको श्रीरामजीने आज्ञा दी—हे नील! जिस रास्तेमें फल मूल अधिक मिल सकें, शीतल छायासे युक्त सघन वन हो, शीतल जलकी सुविधा हो, मधु भी मिल सके, हे सेनापति! ऐसे मार्गसे सेनाको ले चलिये।

फलमूलवता नील शीतकाननवारिणा।
पथा मधुमता चाशु सेनां सेनापते नय॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ४। १०)

इस प्रकार राजनीतिविशारद श्रीरामके कुशल नेतृत्वमें विशाल वानरवाहिनीने प्रस्थान किया। श्रीराम और लक्ष्मण श्रीहनुमान् और अङ्गदके पीठपर विराजमान शुक्र और वृहस्पति इन दो महाग्रहोंसे संयुक्त हुये चन्द्रमा और सूर्यकी भाँति सुशोभित हो रहे थे।

कपिभ्यामुह्यमानौ तौ शुशुभाते नरर्षभौ॥
महद्‌भ्यामिव संस्पृष्टौ ग्रहाभ्यां चंद्रभास्करौ॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ४। ४१, ४२)

इस प्रकार दयासागर श्रीरामजी समुद्रतटपर पहुँच गये। वीर भालु वानर जहाँ तहाँ फल खाने लगे।

एहि बिधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर॥

जबसे श्रीहनुमान्‌जी लङ्का जलाये तबसे वहाँके राक्षस आशङ्कित रहते हैं। दूतियोंसे पुरवासियोंके वचन सुनकर मन्दोदरी भी व्याकुल रहती हैं। उन्होंने एकान्तमें रावणसे कहा—हे पतिदेव! श्रीरामचन्द्रजीके बाण सर्पोंके समूहके समान हैं और निशाचर समूह मेढकके समान हैं। जबतक वे निगलते नहीं तभी तक हठका परित्याग करके अपनी रक्षाका प्रयत्न कर लो। जैसे सर्प मेढकोंको खोज खोजकर खाते हैं, वैसे ही राम बाण राक्षसोंको ढूँढ़ ढूँढ़कर मारेंगे।

रामकी वाम जो आनी चोराय सो,
लंका में मीचु की बेलि बई जू।
क्यों रण जीतहुगे तिन सो
जिनकी धनुरेख न लाँघ गई जू॥
बीस बिसे बलवंत हुते जू,
हुती दृग केशव रूप रई जू।
तोरि सरासन संकर को पिय
सीय स्वयम्बर क्यों न लई जू॥

(श्रीरामचन्द्रिका १५। ६)

मन्दोदरीकी बात सुनकर रावणने हँसकर टाल दिया। रावण सभामें जाकर बैठा तब उसे यह समाचार मिला कि श्रीरामजीकी सेना समुद्रके तटपर आ गयी है। उसने मन्त्रियोंसे पूछा कि यथोचित मत प्रकट करो। मन्त्रियोंने हँसकर कहा—चुप होकर बैठिये। जब देवता और असुरोंको जीत लिया फिर ये नर वानर किस गणनामें हैं? श्रीगोस्वामीजी एक बहुत सुन्दर नीतिका वर्णन करते हैं—मन्त्री, वैद्य और गुरु ये तीन यदि भय या आशासे प्रिय बोलते हैं तो राज्य, शरीर और धर्म इन तीनोंका शीघ्र नाश हो जाता है।

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥

उसी सभामें अच्छा अवसर जानकर श्रीविभीषणजी पधारे और रावणको प्रणाम करके अपने आसनपर बैठ गये। रावणके पूँछनेपर उन्होंने अपना अभिमत कहा। हे गोसाईं! जो अपना कल्याण, सुयश, सुमति, शुभगति और बहुत प्रकारका सुख चाहे, वह परस्त्रीके ललाटको चतुर्थीके चन्द्रमाकी भाँति त्याग दे।

जो आपन चाहै कल्याना।
सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं।
तजउ चउथि के चंद की नाईं॥

उदर्कभूतिमिच्छद्भिः सद्भिः खलु न दृश्यते।
चतुर्थी चन्द्रलेखेव परस्त्रीभालपट्टिका॥

(प्रसन्नराघवम् ७। १७)

और भी लिखा है सिंह राशिपर सूर्यके होनेपर दोनों पक्षोंकी चतुर्थीमें समुदित चन्द्रमाका दर्शन कदापि न करे। इसीसे श्रीपार्वती अपने पति चन्द्रशेखरके मुखका दर्शन वर्षमें दो दिन नहीं करतीं।

पञ्चाननगते भानौ पक्षयोरुभयोरपि।
चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रो नेक्षितव्यः कदाचन॥
चतुर्थ्योर्भाद्रमासस्य चन्द्रचूडस्य भामिनी।
दिनद्वयं वर्षमध्ये पतिवक्त्रं न पश्यति॥

(उद्भटसागर ३। ३९० ग)

श्रीविभीषणजी कहते हैं हे तात! श्रीरामजी

केवल नरभूपाल ही नहीं हैं अपितु समस्त भुवनोंके स्वामी और कालके भी काल हैं। वे भगवान् हैं, निरामय, अज, व्यापक, अजेय, अनादि और अनन्त ब्रह्म हैं।

तात राम नहिं नर भूपाला।
भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता।
ब्यापक अजित अनादि अनंता॥

श्रीविभीषणने रावणसे प्रार्थनापूर्वक कहा—आप श्रीरामजीको श्रीसीताजी दे दें और अकारण स्नेही श्रीरामजीका भजन करें। जिन्हें विश्वद्रोह करनेका पाप लगा हो, श्रीरामजीकी शरणमें जानेपर वे उसका भी त्याग नहीं करते।

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा।
बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥

श्रीविभीषणने कहा कि पुलस्त्य मुनिने अपने शिष्यसे यह सन्देश कहला भेजा था। हे तात! सुन्दर समय पाकर मैंने तत्काल आपसे निवेदन कर दिया। रावणके बुद्धिमान् मन्त्री माल्यवान्ने विभीषणकी बातका समर्थन किया; परन्तु रावणने कहा—ये दोनों मूर्ख शत्रुकी बड़ाई कर रहे हैं। यहाँ कोई है? इन दोनोंको दूर कर दो। रावणके अपशब्दको सुनकर माल्यवान् तो चला गया; परन्तु विभीषणने बद्धाञ्जलि होकर पुनः कहा—हे नाथ! सुमति और कुमति सबके हृदयमें रहती हैं जहाँ सुमति है वहाँ अनेक प्रकारकी सम्पत्ति है और जहाँ कुमति है वहाँ विपत्ति। आपके हृदयमें विपरीता कुमति अर्थात् तामसी बुद्धि है एतावता आप हितको अनहित और शत्रुको मित्र मानते हैं।

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥
तव उर कुमति बसी बिपरीता।
हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥

श्रीविभीषणने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहा—हे तात! मैं आपके चरणोंको पकड़कर याचना कर रहा हूँ कि मेरा दुलार रखिये श्रीसीताजीको श्रीरामजीको समर्पण कर दें, आपका कल्याण होगा।

तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार॥

विभीषणकी बात सुनकर रावण परम क्रुद्ध हो गया और उसने कहा कि तू सदासे मेरे अन्नसे पल रहा है और शत्रुका पक्ष तुझे अच्छा लगता है। मेरे नगरमें रहकर तपस्वियोंसे प्रेम करता है। अरे मूर्ख! अब तू उन्हींसे जाकर मिल और नीतिकी बात भी उन्हें ही बता। इतना कहकर रावनने विभीषणके ऊपर चरणोंका प्रहार किया; परन्तु उन्होंने बार बार उसके चरण ही पकड़े।

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती।
सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा।
अनुज गहे पद बारहिं बारा॥

श्रीशङ्करजी कहते हैं कि सन्तकी बड़ाई इसीमें होती है कि जो उनके साथ नीचता करे उसके साथ भी वे बुराईके बदलेमें भलाई ही करें। श्रीविभीषण साधुताकी सीमा हैं। श्रीविभीषणने कहा—आप पिताके समान हैं और पिताका धर्म रक्षा करना है '**पातिरक्षतीति पिता**' आपने मुझे पाला पोषा है अतः मुझे मारा तो अच्छा ही किया और पुत्रका धर्म है '**पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्रः**' एतावता मैं आपको जाते जाते भी यही कह

रहा हूँ—हे नाथ! आपका मङ्गल श्रीरामजीकी भक्तिसे ही होगा।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई।
मंद करत जो करइ भलाई॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा।
रामु भजें हित नाथ तुम्हारा॥

इतना कहकर श्रीविभीषणजी अपने विश्वस्त चार मन्त्रियोंको साथ लेकर आकाशमार्गमें गये और सबको सुनाकर इस प्रकार कहा—मेरे रामजी सत्यसन्ध हैं, सर्वसमर्थ हैं और आपकी सभा कालके वशमें है। मैं अब श्रीरघुवीर श्रीरामजीके शरणमें जाता हूँ मुझे कोई दोष न दे।

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ।
सबहि सुनाइ कहत अस भयउ॥
रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥

'नभ पथ गयऊ'—आकाशमार्गसे जानेका भाव यह है (क) रावणकी सभा विशाल है, मेरी बात सबको सुनाई पड़े इसलिए आकाशमार्गसे कहा। (ख) रावणने कहा था ***'मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती'*** इसीसे नभपथमें गये कि अब हम लङ्कापुर बासी नहीं है, जब यह पुरी मेरे स्वामीकी होगी तभी मैं इसमें चरण रखूँगा। (ग) जिस प्रकार संतप्त बालुकामयी भूमिमें कोई स्थिर नहीं रह सकता है। यदि कहीं व्यक्तिका पैर उस संतप्त सिकतामय भूमिपर पड़ जाय तो वह जिस प्रकार उछलता है और पुनः उस भूमिपर नहीं आना चाहता, इसी प्रकार श्रीविभीषण भी लङ्काकी भूमिसे उछलकर आकाशमें चले गये। लङ्का संतप्त सिकतामयी भूमि इसलिए है कि सम्प्रति इस भूमिपर मेरे परमाराध्य जीवनसारसर्वस्व श्रीराघवेन्द्र सरकारकी, छोटे सरकारकी, रामप्राणबल्लभा सती शिरोमणि परब्रह्ममहिषी श्रीजनककिशोरीजीकी, मेरे गुरुदेव श्रीहनुमान्‌जीकी निन्दा हो रही है इन तापोंसे यह भूमि संतप्त हो गयी है। इसलिये लङ्कासे उछलकर आकाशमें चले गये। अब इस भूमिमें जब श्रीरामजीकी विजयवैजयन्ती फहर फहर फहरायेगी किं बहुना उनकी कीर्ति सरिता लहर लहर लहरायेगी और कीर्ति सरितासे यह भूमि अभिसिञ्चित होजाएगी तभी मैं आऊँगा। अतः ***'नभ पथ गयउ।'***

'सचिव संग लै'—चार सचिवोंको साथमें ले गये, इसका रहस्य यह है कि उन्होंने आरम्भसे ही मेरा साथ दिया है एतावता इन्हें मेरा प्रिय समझकर इनके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार होनेकी सम्भावना है, इसलिए कृतज्ञताके कारण इन्हें साथमें ले गये। किंवा ये जीवनभर मेरे आश्रित रहे हैं, अब जबकि मैं जीवनका परम लक्ष्य प्राप्त करने जा रहा हूँ तब इनका छोड़ना उचित नहीं है, अतः भगवच्छरणागतिके महान् फलकी प्राप्ति करानेके लिये साथ ले जा रहे हैं। ***'रामु सत्य संकल्प'***—श्रीविभीषण कहते हैं कि वे कालरूप भगवान् ब्रह्माकी प्रार्थनासे आपका वध करनेके लिये अपनी इच्छासे श्रीरामरूप होकर यहाँ आये हैं। ईश्वर सत्यसंकल्प है, इसलिए वे अपनी प्रतिज्ञाको अन्यथा कैसे कर सकते हैं? इसलिए श्रीराम अवश्य ही आपको पुत्र, सेना और वाहनादिके सहित मारेंगे। हे रावण! मैं श्रीरामद्वारा सम्पूर्ण राक्षसवंश और आपका संहार होता नहीं देख सकता। अतः मैं रघुनाथजीके पास जाता हूँ, मेरे चले जानेपर आप आनन्दपूर्वक अपने भवनमें बहुत समयतक भोग भोगना।

कालरूपी स भगवान् रामरूपेण मायया॥
ब्रह्मणा प्रार्थितो देवस्त्वद्वधार्थमिहागतः।
तदन्यथा कथं कुर्यात्सत्यसङ्कल्प ईश्वरः॥

(श्रीअध्यात्मरामायण ६। २। ४२-४३)

इस प्रकार कहकर जिस समय श्रीविभीषणने प्रस्थान किया उसी समय सब निशाचरोंकी आयु समाप्त हो गयी। साधुके अनादरसे समस्त कल्याणोंकी हानि तत्काल हो जाती है। श्रीशुकदेवजी भी कहते हैं—हे परीक्षित्! जो लोग महान् पुरुषोंका अपमान करते हैं उनका वह पाप उनकी आयु, श्री, यश, उत्तम लोक, विषयभोग और समस्त कल्याणके साधनोंको नष्ट कर देता है।

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च।
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः॥

(श्रीमद्भागवत १०। ४। ४६)

रावणने जिस समय विभीषणका त्याग किया उसी समय वह मन्दभाग्य वैभवहीन हो गया।

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं।
आयूहीन भए सब तबहीं॥
साधु अवग्या तुरत भवानी।
कर कल्यान अखिल कै हानी॥
रावन जबहिं बिभीषन त्यागा।
भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥

'चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं'—इस पंक्तिमें दो प्रश्न हैं, एक प्रश्न यह है कि तीन पंक्तियोंके ऊपर एक बार 'चला' क्रिया लिख आये हैं, बीच में कहीं रुकना नहीं कहा। फिर दुबारा 'चलेउ' लिखनेका क्या अभिप्राय है? दूसरा प्रश्न है कि पहले तो 'हर्ष' नहीं लिखा अब बीचमें कौन सा कारण हो गया कि ***'हरषि'*** लिखा गया? इसका उत्तर श्रीगोस्वामीजीके अन्य ग्रन्थोंमें है। श्रीविभीषण रावणके पाससे चलकर अपनी माताके पास गये हैं।

जाय माय पाँय परि कथा सो सुनाई है।
समाधान करति बिभीषन को बार बार,
कहा भयो तात! लात मारे बड़ो भाई है॥
साहिब पितु समान जातुधान को तिलक,
ताके अपमान तेरी बड़िए बड़ाई है।
गरत गलानि जानि सनमानि सिख देति,
रोषि किए दोष सहें समुझें भलाई है॥
इहाँ ते बिमुख भये रामकी सरन गये,
भलो नेकु लोक राखे निपट निकाई है।
मातु पग सीस नाइ तुलसी असीस पाइ,
चले भले सगुन कहत मन भाई है॥

(श्रीगीतावली ५। २६)

माताको प्रणाम करके बड़े भाई कुबेरके पास गये। वहींपर भगवान् शङ्कर मिल गये; उन्होंने हितोपदेश किया—हे विभीषण! तुम श्रीरामजीकी शरणमें शीघ्र जाओ, इसमें कोई शुभ दिन देखनेकी आवश्यकता नहीं है।

जाइ गह पाँय धाइ धनद उठाइ भेट्यो
समाचार पाइ पोच सोचत सुमेरै।
तहँई मिले महेस दियो हित उपदेस,
रामकी सरन जाहि सुदिनु न हेरै॥

(श्रीगीतावली ५। २७। २)

करत मनोरथ बहु मन माहीं— श्रीविभीषणजी अनेक प्रकारकी भावपूर्ण अभिलाषाओंको करते हुए जा रहे हैं।

देखिहउँ जाइ चरन जलजाता।
अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी।
दंडक कानन पावनकारी॥

जे पद जनकसुताँ उर लाए।
कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई।
अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई॥
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥

इस मङ्गलमयी अभिलाषाके प्रसङ्गमें श्रीगोस्वामीजीके दो पद स्मरण आ रहे हैं जिनमें अत्यन्त भावमयी अभिलाषा है। इन पदोंसे स्पष्ट हो जायेगा कि वे किन्हीं सांसारिक कामनाओंसे श्रीरामजीके पास नहीं जा रहे हैं।

पदपदुम गरीबनिवाजके।
देखिहौं जाइ पाइ लोचन फल हित सुर साधु समाजके॥
गई बहोर ओर निरबाहक साजक बिगरे साजके।
सबरी सुखद गीध गतिदायक समन सोक कपिराजके॥
नाहिन मोहि और कतहूँ कछु जैसे काग जहाजके।
आयो सरन सुखद पदपंकज चोंथे रावन बाजके॥
आरतिहरन सरन समरथ सब दिन अपनेकी लाजके।
तुलसी पाहि कहत नत पालक मोहु से निपट निकाजके॥

(श्रीगीतावलीरामायण ५। २९)

महाराज रामपहँ जाउँगो।
सुख स्वारथ परिहरि करिहौं सोइ ज्यौं साहिबहि सुहाउँगो॥
सरनागत सुनि बेगि बोलि हैं हौं निपटहि सकुचाउँगो।
राम गरीबनिवाज निवाजिहैं जानिहैं ठाकुर ठाउँगो॥
धरिहैं नाथ हाथ माथे एहितें केहि लाभ अघाउँगो।
सपनो सो अपनो न कछू लखि लघु लालच न लोभाउँगो॥
कहिहौं बलि रोटिहा रावरो बिनु मोलही बिकाउँगो।
तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं उबरी जूठनि खाउँगो॥

(श्रीगीतावलीरामायण ५। ३०)

श्रीअध्यात्मरामायणमें स्पष्ट लिखा है कि श्रीविभीषणजी सन्तुष्टचित्त होकर रावणके कठोर भाषणसे एक ही क्षणमें समस्त सामग्रीके सहित अपने घरको छोड़कर केवल भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके पादारविन्दोंकी सेवाकी अभिलाषासे श्रीरामजीके पास गये।

विभीषणो रावणवाक्यतः क्षणाद्
विसृज्य सर्वं सपरिच्छदं गृहम्।
जगाम रामस्य पदारविन्दयोः
सेवाभिकाङ्क्षी परिपूर्णमानसः॥

(अध्यात्मरामायण ६। २। ४६)

इस प्रकार स्नेहपूर्ण विचार करते हुए श्रीविभीषणजी शीघ्र ही समुद्र पार आ गये।

एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा।
आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा॥

'आयउ'—जब लङ्कासे विभीषणजी श्रीठाकुरजीके पास गये थे तब 'पहुचेउ' अर्थात् पहुँचना क्रियाका प्रयोग होना चाहिए था। परन्तु 'आयउ' क्रियाका प्रयोग यह घोषित करता है कि कविकी स्वयंकी स्थिति श्रीरामजीके पास है। अथवा यह भी आशय ज्ञात होता है कि श्रीविभीषणजी तो दैव जीव थे। वे लङ्कामें रहकर भी लङ्कासे हार्दिक सम्बन्ध नहीं रखते थे। उन्होंने अपनी स्थितिका वर्णन एकान्तमें श्रीहनुमान्‌जीसे किया था।

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी।
जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥

(५। ७)

वे सदा श्रीरामचन्द्रजीके श्रीचरणोंमें ही अपना घर समझते थे, सुतराम् घरमें आनेके लिए 'आयउ' शब्दका प्रयोग सर्वथा उचित है। भक्त भगवान्‌की नित्य विभूति है। श्रीरामजी ही भक्तोंके आश्रय हैं। आश्रयके पास लौटनेमें आना

ही कहा जायेगा। इसीलिए 'शरणागति' के शरणमें 'आगति' आना कहा जाता है न कि 'गति'। अतः श्रीगोस्वामीजी 'आयउ' शब्दका प्रयोग करते हैं।

'सपदि'—जिस प्रकार पराधीन गायका बछड़ा खूँटेमें बँधा हुआ मातृदर्शन किंवा मातृस्तन्यकी अनुपल, अनुक्षण आकांक्षा करता रहता है, अहर्निश उसीकी चिन्तामें निमग्न रहता है। **'स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्त्ताः'।** अवसर पाते ही समस्त अन्तरायोंको पार करके, प्रतिबन्धोंको तोड़ करके शीघ्रातिशीघ्र 'हम्बारव' करते हुए अपनी माँके पास पहुँच जाता है। उसी प्रकार श्रीविभीषण जन्मसे ही श्रीरामचरणदर्शन एवं उनके वचनामृत दुग्धरस पानकी आकांक्षामें सतत निमग्न रहते थे। आज अवसर पाकर तत्काल ***'सपदि'*** समस्त अन्तरायोंको पार करके अपने प्राणप्रियतम जीवनधन श्रीरामके चरणोंमें पहुँच गये।

कुटुम्ब तजि राम सरन तेरी आयो।

जिस प्रकार जलते हुए अङ्गारोंपर चलना पड़े तो व्यक्ति शीघ्रसे शीघ्र अङ्गारोंको पार करके गन्तव्य स्थलपर पहुँचता है। संसारमें रहना, हरिविमुखोंके सङ्गमें निवास करना अच्छा नहीं है, इसकी अपेक्षा अग्निकी लपटोंमें रहना ठीक है। श्रीविभीषणजी भयानक अग्निके समान दाहक रावणादि हरिविमुखोंका सङ्ग छोड़कर 'सपदि' शीघ्रातिशीघ्र श्रीरामचरणोंमें पहुँच गये।

श्रीविभीषणजी 'श्रीरामजीका मङ्गलमय दर्शन करूँगा' इस परमपवित्र सङ्कल्पको करते हुए श्रीरघुनन्दनके वात्सल्य, सौशील्य, माधुर्य, सौन्दर्य आदि सद्गुणोंका चिन्तन करते हुए चल रहे हैं अतः 'सपदि' अत्यन्त शीघ्र पहुँच गये।

जो श्रीरामजीका चिन्तन करता है वह इस समुद्रकी तो बात ही छोड़ दें वह तो भवसमुद्रसे भी शीघ्र ही पार हो जाता है।

नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं।

श्रीविभीषणजीको वानरोंने आते हुए देखा तो उन्होंने यह समझा कि कोई शत्रुका विशेष दूत आया है। उन्हें ठहराकर सुग्रीवके पास आकर समाचार बताया। श्रीसुग्रीव तत्काल श्रीरामजीके पास जाकर कहते हैं—हे रघुनन्दन! सुनिये, दशाननका भाई आपसे मिलने आया है। भगवान् श्रीराम तो जबसे श्रीहनुमान् लङ्कासे आये हैं तबसे ही विभीषणके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। ज्यों ही उन्होंने विभीषणका आगमन सुना प्रसन्न हो गये। करुणानिधान श्रीरामजी तो श्रीविभीषणकी प्रतीक्षा बहुत दिनोंसे कर रहे थे। श्रीविभीषणके आनेके कुछ क्षण पूर्व करुणामय भक्तवत्सल श्रीरामजीने श्रीलक्ष्मणजीसे पूछा था—हे लक्ष्मण! क्या सचमुच विभीषण यहाँ आवेगा? यह सुनकर श्रीलक्ष्मणने सकुचाते हुए प्रणाम करके कहा—हे भक्तवत्सल! आवेगा क्या, वह तो यहाँ आ गया। प्रभुने आश्चर्यसे विस्फारित नेत्र होकर पूछा—क्या सचमुच मेरा विभीषण आ गया? श्रीलक्ष्मणने कहा—हे सर्वान्तर्यामिन्! आपके सामने ऐसी बात बनाकर कैसे कही जा सकती है? एक श्रीरघुनाथको छोड़कर ऐसा कौन है जो रावणके शत्रुको अपनी शरणमें रखकर तीनों लोकोंमें प्रतिष्ठा रख सके अर्थात् त्रैलोक्यके अन्य सभी लोगोंको रावण अप्रतिष्ठित कर सकता है; परन्तु आपके समक्ष उसकी कुछ नहीं चलती, इसीसे विभीषण आपकी शरणमें आये हैं।

साँचेहु बिभीषन आइहैं।
बूझत बिहँसि कृपालु लखन सुनि कहत सकुचि सिर नाइ है॥
ऐहै कहा नाथ? आयो ह्याँ क्यों कहि जाति बनाइ है।
रावन-रिपुहि राखि रघुबर बिनु को त्रिभुवन पति पाइ है॥
(श्रीगीतावली ५। ३४)

इसी समय श्रीसुग्रीवने कहा—श्रीविभीषण आये हैं। सुनते ही श्रीरामजी ने कहा—पूछते क्या हो, ले आओ, ***'कह प्रभु सखा बूझिएँ काहा।'*** श्रीसुग्रीवने कहा—हे प्रभो! राक्षसोंकी माया जानी नहीं जाती, अत: यह शठ हमारा भेद लेनेके लिए आया है; इसलिए इसको बाँधकर रखा जाय। सुनकर श्रीरामजीने कहा—हे सखा! नीतिकी दृष्टिसे आपका विचार अच्छा है; परन्तु मेरा प्रण तो शरणागतोंका भय दूर करना है। श्रीरामजीके वचनोंको सुनकर परम निर्भीक श्रीहनुमान्‌जीने तत्काल प्रसन्न होकर कहा—मेरे भगवान् शरणागतवत्सल हैं।

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना।
सरनागत बच्छल भगवाना॥

श्रीप्रभुने श्रीसुग्रीवको शरणागत त्यागका दोष बताया कि जो अपने अकल्याणका अनुमान करके शरणागतका परित्याग कर देते हैं, हे सुग्रीव! वे पामर हैं, पापमय हैं, उनको देखने से भी पाप लगता है।

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥

इस प्रसङ्गमें श्रीवाल्मीकीयरामायणमें श्रीरामजीने कहा है—हे सुग्रीव! मित्र भावसे सम्प्राप्त व्यक्तिका मैं किसी तरह भी परित्याग नहीं कर सकता। सम्भव है उसमें कुछ दोष भी हों, तो भी मैं स्वीकार करूँगा; क्योंकि शरणागत भावसे प्राप्त हुए दोषीको भी स्वीकार करना सज्जनोंके द्वारा गर्हित नहीं माना गया है।

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्।
(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। १८। ३)

श्रीरामजीने कहा—हे सुग्रीव! जिसे करोड़ों ब्रह्महत्या लगी हो, उसको भी शरण आने पर मैं नहीं छोड़ता।

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू।
आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥

श्रीठाकुरजी अपना स्वभाव कहते हैं।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

श्रीरामजी कहते हैं—हे मित्र! हम तो चाहते हैं कि लोग हमारा भेद लें; जो हमारा भेद लेने आयेगा वह मेरा भक्त बन जायेगा। वह संसारका नहीं रहेगा। आगे रावणके गुप्तचरकी कथा आने वाली है। वे गुप्तचर भेद लेनेके लिए आए और झूमकर श्रीरामजीका गुणगान करने लगे और भक्त बन गये, निष्कपट हो गये। उनका रावणसे सम्बन्ध ही समाप्त हो गया। एतावता श्रीरामजी कहते हैं—

भेद लेन पठवा दससीसा।
तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥

हे सुग्रीव! यदि विभीषण सभीत होकर मेरी शरणमें आया है तो मैं उसे प्राणकी भाँति हृदय मन्दिरमें बाँधकर रखूँगा।

जौं सभीत आवा सरनाईं।
रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥

समुद्र तटपर श्रीहनुमान्‌जी, श्रीजाम्बवान्‌जी, श्रीलक्ष्मणजी आदि महान् भक्तोंके सामने करुणामय

श्रीरामजीने एक महान् प्रतिज्ञा की। युगयुगान्तर कल्पकल्पान्तरके भक्तगण श्रीरामजीकी इस प्रतिज्ञाको मनन करके, चिन्तन करके, पढ़ करके, श्रवण करके, प्रेरणा प्राप्त करते रहेंगे।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। १८। ३३)

हे वानरेन्द्र! मेरी प्रतिज्ञाको ध्यानपूर्वक सुनो और मेरे स्वभावका परिज्ञान कर लो। जो एक बार भी मेरी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' इस प्रकार कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ। यह मेरा व्रत है। महात्माओंका कहना है कि शरणागतिका एक अधिकार होता है। वह अधिकार क्या है? जब मनुष्य चारों ओर से असहाय और निर्बल होकर यह अनुभव करे कि मैं आत्मज्ञानी नहीं हूँ, भक्तिमान् नहीं हूँ, धर्मनिष्ठ नहीं हूँ, केवल एक अकिञ्चन हूँ, मेरे पास साधनकी कोई पूँजी नहीं है और श्रीरामजीके चरणोंकी गतिके अतिरिक्त अन्य कोई अवलम्ब नहीं है तब वह शरणागतिका अधिकारी होता है।

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी
न भक्तिमाँस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्य
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये॥

(आलवन्दार स्तोत्र)

शरणागत कहता है—हे नाथ! मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है, मेरी युक्तियाँ समाप्त हो गयी हैं, मेरे पास कोई सहारा नहीं है और मैं कोई उपाय भी नहीं जानता हूँ, केवल तुम्हारी शरणमें हूँ। तुम्हीं मेरे आश्रय हो, रक्षक हो, शरण्य हो, तुम्हारे अतिरिक्त मेरा और कोई नहीं है। इसलिए हे नाथ! मुझपर कृपा करो, अपनी शरणमें स्वीकार कर लो।

बुद्धिर्विकुण्ठितानाथ समाप्ताममयुक्तयः।
नान्यत् किञ्चिद् विजानामि त्वमेव शरणं मम॥

श्रीरामजी कहते हैं—कि जब मनुष्य इस प्रकार याचना करता है, तब मैं उसको समस्त भूतोंसे अभय कर देता हूँ। केवल एकबार प्रार्थना करनी है—मात्र एकबार याचना करनी है। श्रीरामजीके कान बहुत बड़े हैं, उनके अनन्त कान हैं, उनकी तरह सुननेवाला त्रैलोक्यमें और कौन हो सकता है?

चींटी के पग नूपुर बाजै सो भी साहब सुनता है।

(कबीर)

सुनना तो श्रीरामजी ही जानते हैं। दुनियाँ बहरी है, बहरोंके सामने जाकर हम गिड़गिड़ाते हैं, चिल्लाते हैं—हे मित्र! मैं तुम्हारा हूँ, हे राजन्! मैं तुम्हारा हूँ, हे सेठजी! मैं तुम्हारा हूँ, हे भूतप्रेतो! मैं तुम्हारा हूँ, परन्तु हा हान्त! कोई नहीं सुनता है ***'अन्धेके आगे रोवे आपन दीदा खोवे'*** क्या कभी श्रीरामजीसे कहा है कि हे प्रभो! हे करुणामय! मैं तुम्हारा हूँ। अब भी चेत जाओ श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें शरणागत होकर आर्त्तस्वरसे पुकारो—हे अशरणशरण! हे शरणागतवत्सल! हे अनाथनाथ! हे जगन्नाथ! हे सीतानाथ! मैं आपका हूँ '**तवास्मीति च याचते**' बात बन जायेगी, बिगड़ी सँवर जायेगी। सँवारना तो साँवरा ही जानता है। '**एतद् व्रतं मम**'—कहनेके पश्चात् श्रीठाकुरजीने सुग्रीवके प्रत्युत्तरकी प्रतीक्षा नहीं की, तत्काल आज्ञा प्रदान कर दी। वह आज्ञा भी श्रीविभीषणशरणागतिके प्रबल विरोधी श्रीसुग्रीवको ही दी—हे वानरश्रेष्ठ! वह रावणानुज विभीषण किंवा स्वयं रावण ही आ गया हो, तुम उसे ले

आओ मैंने उसे अभय दान दे दिया है।

आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। १८। ३४)

श्रीगोविन्दराजजी इस श्लोकका अर्थ इस प्रकार करते हैं—हे वानरेन्द्र सुग्रीव! यदि यह विभीषण न हो अपितु कामरूप धारण करनेवाला रावण ही हो, विभीषणका रूप धारण करके आया हो, फिर भी मैंने इसको अभय दान दे दिया है। अतः आप भी यह रावण है विभीषण नहीं है, यह बतानेके लिए लौटकर मेरे पास मत आइएगा, अपितु उसको ले आइये।

कृपानिकेत सरकार आज्ञा देते हैं कि दोनों प्रकारसे उसे ले आओ। भेद लेन आया हो अथवा सभीत होकर शरणमें आया हो अथवा रावण हो या विभीषण हो अथवा दुष्टहृदय हो अथवा साधुहृदय हो, उसे ले आओ। बड़ी उदार घोषणा है और यह घोषणा विरोधियोंके बीचमें है। प्रसन्नतापूर्वक घोषणा है 'ले आओ'। धन्य है शरणागतवत्सलता।

उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत॥

श्रीविभीषणजी भगवान्‌की आज्ञासे आदरपूर्वक ले आये गये। श्रीविभीषण आर्त्तवाणीसे पुकारते हैं—

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥

प्रणतपाल श्रीरामचन्द्रजीने सुनते ही तत्काल उठकर चरणपर पड़े हुए विभीषणको उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया।

दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा।
भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा॥

भक्तवत्सल श्रीभगवान्‌ने कहा—हे विभीषण! तुम तो मेरे प्राण हो, तुम तो मेरे धन हो और तुम मेरे परमप्रिय हो।

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह के द्विज पद प्रेम॥

सुनु लंकेस सकल गुन तोरें।
तातें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें॥

सगुणोपासना, परोपकार, नीतिमें तत्परता, नियममें दृढ़ता और ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रेम ये मेरे पञ्चप्राण हैं। भक्तोंको इन पञ्चप्राणोंका मनन करना चाहिए। श्रीरामजीने इसके पश्चात् श्रीविभीषणको भक्ति और मुक्ति दोनों ही दिया। श्रीभगवान्‌ने श्रीलक्ष्मणसे कहा—हे सुमित्रानन्दन! समुद्रसे जल ले आओ और लङ्काके राज्यपर विभीषणका अभिषेक कर दो।

अस कहि राम तिलक तेहि सारा।
सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥
जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

श्रीभगवान्‌की उदारताका वर्णन करते हुए श्रीगोस्वामीजी विनयपत्रिकाजीमें गाते हैं।

ऐसो को उदार जग माहीं।
जो संपति दस सीस अरप करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हीं॥

(विनयपत्रिका १६२। ३)

श्रीरामजीने श्रीहनुमान्, श्रीसुग्रीव और विभीषणजीसे पूछा—हम लोग इस अक्षोभ्य गम्भीर सागरका किस तरह अतिक्रमण करें?

सुनु कपीस लंकापति बीरा।
केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा॥

श्रीविभीषणने विनम्रतापूर्वक प्रभुसे कहा—हे प्रभो! समुद्रसे प्रार्थना करनी चाहिए। श्रीभगवान्‌ने कहा कि—हे सखा! आपने अच्छा उपाय बताया।

यही किया जाय यदि दैव सहायक हो। श्रीलक्ष्मणको यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने इस प्रस्ताव का मुखर विरोध किया। विरोधका कारण श्रीलक्ष्मणकी हार्दिक वेदना है कि वे शीघ्रसे शीघ्र लङ्का पहुँचकर रावणके ऊपर विजय प्राप्त करके माता श्रीसीताके दु:खका नाश करना चाहते हैं। श्रीठाकुरजीने श्रीलक्ष्मणके हृदयको समझकर उन्हें आश्वस्त किया ऐसा ही करेंगे।

सुनत बिहसि बोले रघुबीरा।
ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा॥

इसके अनन्तर श्रीरामजी श्रीविभीषणके वचनका सम्मान करके समुद्र तटपर कुश बिछाकरके विराजमान हो गये। महासागरके तट पर भगवान् श्रीरामजीकी अनोखी झाँकी है। ऐसी झाँकीका दर्शन पुन: नहीं होगा। कुशासन बिछा हुआ है श्रीरामजी उस पर लेटे हुए हैं। श्रीरामके पीन श्यामल भुजदण्ड, उपधानका कार्य कर रहे हैं। प्रभु विनम्रतापूर्वक समुद्रकी प्रार्थना भी कर रहे हैं। इस प्रकार तीन दिन व्यतीत होने पर भी जब समुद्रदेवताके दर्शन नहीं हुए तब श्रीरामजीके नेत्र रक्त हो गये। प्रभुने श्रीलक्ष्मणसे कहा—हे सुमित्रानन्दन! मेरा धनुष तथा विषधर सर्पोंके समान भयङ्कर बाण ले आओ। मैं समुद्रका शोषण कर लूँगा। तदनन्तर मेरे वानर लोग पैदल ही लङ्काके लिए प्रस्थान करें।

लछिमन बान सरासन आनू।
सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू॥

श्रीरामके द्वारा क्रोधपूर्वक सहसा धनुष आकर्षित होते ही श्रीलक्ष्मण प्रसन्न हो गये। समुद्रके हृदयके अन्दर अग्निकी ज्वाला जल उठी। मगर, साँप तथा मछलियोंके समूह व्याकुल हो गये, तब समुद्रके अधिष्ठातृ देवता अनेक प्रकारकी भेंट सामग्रीका सङ्कलन करके उसे थालीमें सजा करके श्रीरामजीके समक्ष भेंट करके प्रार्थना करने लगे। उनकी विनम्रता देखकर, उनका सौजन्य देखकर, उनकी निष्ठा देखकर करुणा-वरुणालय श्रीराम वरुणालयके ऊपर प्रसन्न हो गये। वास्तवमें कृपामूर्ति श्रीरामजीको क्रोध आता ही नहीं है, वे अपने भक्तोंके लिए कभी कभी क्रोधाभिनय करते हैं और भक्तद्रोहियोंके लिए अपनेमें समय-समयपर क्रोधका आधान करते हैं।

श्रीरामजीने कहा—हे वरुणालय! आप तो मेरी शरणमें आ गये; परन्तु यह मेरा बाण अमोघ है, इसका प्रहार मैं कहाँ करूँ? श्रीरामजीका वचन सुनकर समुद्रने कहा—हे स्वामिन्! इस बाणसे मेरे उत्तरतटपर रहने वाले दुष्टोंका वध कीजिए। श्रीरामजीने तत्काल समुद्रकी मानसिक व्यथाकी निवृत्ति कर दी।

एहि सर मम उत्तर तट बासी।
हतहु नाथ खल नर अघ रासी॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा।
तुरतहिं हरी राम रनधीरा॥

श्रीसमुद्रने भगवान्की अनेक प्रकारसे प्रार्थना करके कहा—हे नाथ! नल और नील दोनोंको लड़कपनमें मुनिका आशीर्वाद मिला है। इनके स्पर्शकर लेनेसे ही आपकी कृपासे भारीभारी पहाड़ भी मेरे ऊपर तैरने लगेंगे और मैं भी अपनी समस्त शक्तिसे सहायता करूँगा। इस प्रकार मेरे ऊपर पुल बनाकर आप समुद्रका अतिक्रमण करें। यह कहकर समुद्र अपने स्थान चले गये।

(श्रीसुन्दरकाण्ड समाप्त)

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीरामचरितमानस
कथा-सुधा-सागर
लङ्काकाण्ड

श्रीसुन्दरकाण्डकी कथा पूर्ण होकर लङ्काकाण्डमें आगयी है। श्रीगोस्वामीजी वन्दना कर रहे हैं।

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंह योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम्। मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीश रूपम्॥

श्रीमदनारि शङ्करजीके द्वारा परमसेव्य, भवभयका अपहरण करनेवाले, कालरूपी मत्त गजेन्द्रके विनाशक केसरी, योगियोंके स्वामी—महायोगेश्वर, ज्ञानगम्य, सम्पूर्ण दिव्यगुणोंसे सम्पन्न किसीसे पराजित न होनेवाले, सत्व रज तमसे रहित, निर्विकार, मायाकी पहुँचसे बाहर, देवाधिदेव, दुष्टोंके विनाशमें तत्पर, ब्राह्मणवृन्दके एकमात्र देवता, नवजलधररुचिर, पुण्डरीकविशालनयन, पृथ्वीपति राजारूपमें, देव श्रीरामचन्द्रजीकी मैं वन्दना करता हूँ।

शङ्खेन्द्वाभमतीवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं कालव्यालकरालभूषणधरं गङ्गाशशाङ्कप्रियम्। काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शङ्करम्॥

शङ्ख स्वच्छ और सुचिक्कण होता है, चन्द्रमा निर्मल, उज्ज्वल और प्रकाशयुक्त होता है। श्रीशङ्करजी शङ्ख और चन्द्रमाकी कान्तिके समान अत्यन्त सुन्दर शरीरवाले, व्याघ्रका चर्म जिनका वस्त्र है, भयङ्कर कालके समान सर्पका भूषण धारण करनेवाले श्रीगङ्गा और चन्द्रमा जिनको प्रिय हैं, काशीपुराधीश्वर, कलिके पापसमूहको नाश करनेवाले, कल्याणके कल्पवृक्ष, गुणोंके कोष, कामको भस्म करनेवाले, वन्दनीय गौरीनाथ श्रीशङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ।

यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम्। खलानां दण्डकृद्योऽसौ शङ्करः शं तनोतु मे॥

समुद्रका वचन सुनकर श्रीरामजीने मन्त्रियोंको बुलाकर इस प्रकार कहा—अब आप लोग अकारण विलम्ब न करें—सेतु निर्माण करें। श्रीरामजीकी आज्ञासे वानरोंने सेतुका निर्माण आरम्भ कर दिया। बड़े-बड़े पर्वतोंको यन्त्रोंके द्वारा—सम्भवतः क्रेनके द्वारा समुद्रतट पर ले आये।

पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। २२। ६०)

कुछ वानर सौ योजन लम्बा सूत पकड़े हुए थे अर्थात् पुलका निर्माण सूतसे—सिधाईमें हो रहा था।

सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति ह्यायतं शतयोजनम्।

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। २२। ६२)

लगभग पाँच दिनमें पुलका निर्माण सम्पन्न हुआ। नल नीलके द्वारा निर्मित सौ योजन लम्बे और दशयोजन चौड़े उस पुलको सबने देखा। सबकी दृष्टिमें यह कार्य सुदुष्कर था। सेतुकी सुन्दर रचना देखकर श्रीरामजीने कहा—मैं यहाँ शिवजीकी स्थापना करूँगा। श्रीरामजीके वचन

सुनकर वानरेन्द्र सुग्रीवने दूतोंके द्वारा श्रेष्ठ मुनियोंको बुलवाया। शिवलिङ्गकी विधिवत् स्थापना करके पूजन किया। उनका नाम रामेश्वर रखा गया।

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा।
सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥

एक आख्यायिका सन्तसमाजमें प्रसिद्ध है—भगवान् श्रीरामने सबके देखते-देखते हाथमें एक पत्थरका टुकड़ा लेकर समुद्रमें डाल दिया और वह डूब गया। प्रभुने कहा—हे हनुमन्! तुम निर्णय करो, जब मेरे हाथसे छोड़ने पर एक पत्थरका टुकड़ा नहीं तैर सका तो इतने बड़े-बड़े पहाड़ कैसे तैर गये? श्रीहनुमान्‌जीने बड़ी विनम्र वाणीमें कहा—हे नाथ! आपने आज्ञा दी है; अतः धृष्टताके लिए क्षमा माँगते हुए उत्तर दे रहा हूँ कि हे करुणासागर! जिसको आप अपने हाथसे छोड़ देंगे, वह तो इस अभागे पत्थरकी तरह डूब ही जाएगा। हे क्षमासागर! समुद्रके ऊपर पर्वतोंको तो आपने तैराया है; अतः ये तैर रहे हैं और तैरते रहेंगे, साथ ही दूसरोंको भी तारते रहेंगे। हे अनाथनाथ! मेरी प्रार्थना है कि आप अपने करकमलोंसे कभी किसीको छोड़ें नहीं। समस्त वातावरण भक्तिमय हो गया, सब लोग भावविभोर हो गये।

श्री रघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन॥

एक खरब वानर तो पुल बाँधते बाँधते ही समुद्रके उस पार पहुँच गये। कृपालु श्रीरामजी सेतुबन्धके तटपर चढ़कर समुद्रका विस्तार देखने लगे। प्रभुका दर्शन करनेके लिए जलचर जलके ऊपर आ गये। वे प्रभुका दर्शन कर रहे हैं, हटानेसे भी नहीं हटते हैं, सब प्रसन्न हैं, सुखी हैं। उनकी आड़के कारण जल दिखाई नहीं पड़ता वे मनहरण श्रीहरिका चित्ताकर्षक रूप निहारकर मग्न होगये।

प्रभुहिं बिलोकहिं टरहिं न टारे।
मन हरषित सब भए सुखारे॥
तिन्ह की ओट न देखिअ बारी।
मगन भए हरि रूप निहारी॥

श्रीरामजीकी आज्ञा पाकर सेना चली। सेतुबन्ध पर बड़ी भीड़ हो गयी एतावता कुछ वानर आकाश मार्गसे उड़ने लगे। कितने ही जलचर जीवों पर चढ़चढ़कर पार जा रहे हैं।

सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं॥

श्रीवाल्मीकिजीने भी तीन मार्ग लिखे हैं।

सलिलं प्रपतन्त्यन्ये मार्गमन्ये प्रपेदिरे।
केचिद् वैहायसगताः सुपर्णा इव पुप्लुवुः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। २२। ८५)

इस प्रकार जल, थल, नभमें तीनमार्ग बन गये और तीनों ही मार्गोंसे वानर समुद्र सन्तरण कर रहे हैं। जलका मार्ग कर्मका मार्ग है, नभका मार्ग ज्ञानका मार्ग है और सेतुका मार्ग भक्तिका मार्ग है, इस मार्गमें प्रभु साथमें रहते हैं। मार्ग तीनों ही अच्छे हैं। तीनोंसे भवसमुद्रका सन्तरण होता है। अपने लिये जो मार्ग सुविधाजनक और सुखकर प्रतीत हो उसका चयन करना चाहिए। इस प्रकार श्रीरामजी सेनाके सहित समुद्र पार हो गये। श्रीरामजीने समुद्रके पार डेरा डाला। प्रभुकी आज्ञासे रीछ वानर मीठे फल खा रहे हैं, वृक्षोंको हिला रहे हैं और पर्वतोंके शिखरोंको लङ्काकी ओर फेंक रहे हैं। श्रीरामजीकी सेवाके लिए सब वृक्ष समयकी गतिको छोड़कर फलवान् हो गये हैं।

सब तरु फरे राम हित लागी।
रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी॥
खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं।
लंका सन्मुख सिखर चलावहिं॥

बन्दर लोग घूमते-फिरते राक्षसोंको पाकर उन्हें बहुत नचाते हैं और दाँतोंसे उनके नाक कान काटकर प्रभुका सुयश कहकर तब उन्हें जाने देते हैं।

दसनन्हि काटि नासिका काना।
कहि प्रभु सुजसु देहिं तब जाना॥

रावणने जब सेतु निर्माणकी बात सुनी तब वह व्याकुल हो गया और अपने दसों मुखोंसे बोल उठा कि क्या सत्य ही समुद्रको बाँध लिया।

बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥

रावणके दसमुख थे पर वह बोलता एकसे ही था। इस समय असम्भव कार्य सुनकर वह व्याकुल होगया एतावता दसों मुखसे बोल पड़ा।

श्रुत्वासागरबन्धनंदशशिराः सर्वैर्मुखैरेकदा,
तूर्णंपृच्छति वार्तिकान् सचकितो भीत्या परं सम्भ्रमात्।
बद्धः सत्यमपांनिधिर्जलनिधिःकीलालाधिस्तोयधिः,
पाथोधिर्जलधिःपयोधिरुदधिर्वारात्रिधिर्वारिधिः ॥

श्रीवाल्मीकिजीने भी लिखा है कि श्रीरामके सेतु निर्माणकी और वानरी सेनाके साथ इस पार आनेकी बात सुनकर रावणने मन्त्रियों से कहा।

समग्रं सागरं तीर्णं दुस्तरं वानरं बलम्।
अभूतपूर्वं रामेण सागरे सेतुबन्धनम्॥
सागरे सेतुबन्धं तं न श्रद्दध्यां कथञ्चन।
अवश्यं चापि संख्येयं तन्मया वानरं बलम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। २५। २-३)

दुस्तर समुद्रका अतिक्रमण कर लेना और समुद्रपर सेतुका निर्माण करना ये दोनों ही कार्य अभूतपूर्व हैं। सुनकर भी मुझे विश्वास नहीं होता कि समुद्रपर पुल बन गया। रावणकी पत्नी मन्दोदरीने जब सुना कि श्रीरामजीने खेलहीमें समुद्र बाँध लिया और इस पार आ गये हैं। तब वह रावणको अपने महलमें लाकर उसके चरणोंमें मस्तक रखकर समझाने लगी। उसने कहा—हे नाथ! शत्रुता उसीसे करनी चाहिए जिससे बुद्धि और बलसे विजय मिल सकती हो। आपमें और श्रीरामजीमें महान् अन्तर है, जितना अन्तर जुगनू और सूर्यमें होता है।

शक्यो न राघवो जेतुं त्वया चान्यैः कदाचन।
रामो देववरः साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः॥

हे नाथ! श्रीरामजीके चरणकमलोंमें मस्तक नवाकर उनको श्रीजानकीजी सौंपकर पुत्रको राज्य देकर वनमें जाकर श्रीरघुनाथजीका भजन कीजिए।

रामहि सौंपि जानकी नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ॥

हे पतिदेव! जो कुछ भी करना चाहिए था वह सब आप कर चुके। आपने सुर, असुर ही नहीं अपितु चराचर मात्रको जीत लिया अब तो केवल मनको जीतना शेष है। हे दशानन! सन्तजन इस प्रकारकी नीति कहते हैं कि राजाको चतुर्थावस्थामें जङ्गलमें जाना चाहिए।

चाहिअ करन सो सब करि बीते।
तुम्ह सुर असुर चराचर जीते॥
संत कहहिं असि नीति दसानन।
चौथेंपन जाइहि नृप कानन॥

रावण मन्दोदरीकी बात सुनकर उसको उठाकर समझाने लगा—हे प्रिये! सुन, तूने व्यर्थ

ही भय मान लिया है; संसारमें मेरे समान कौन योद्धा है? इसके बाद सभामें आकर रावणने अपने मन्त्रियोंसे पूछा कि वानरी सेना समुद्रके इस पार आ गई है, अब क्या करना चाहिए? रावणके मूर्ख और चापलूस मन्त्रियोंने कहा कि हे राक्षसेन्द्र! आप बार-बार क्या पूछते हैं? बन्दर और भालू तो हमारे भोजन हैं। अच्छा हुआ, जब भूख लगेगी खा लेंगे। मन्त्रियोंकी चाटुकारिता सुनकर रावणके पुत्र प्रहस्तने कहा कि हे पितः! सब मन्त्री मुखदेखी बात कह रहे हैं। समुद्रका उल्लंघन करके एक बन्दर आया था। उसका चरित्र आज भी सब अपने घरमें बैठकर मन ही मन गाया करते हैं।

बारिधि नाघि एक कपि आवा।
तासु चरित मन महुँ सबु गावा॥

प्रहस्तने मन्त्रियोंसे कहा—तुम लोगोंकी भूख उस समय कहाँ चली गयी थी? नगर जलाते समय उसको पकड़कर तुमने क्यों नहीं खा लिया? जिसने खेल ही खेलमें समुद्रके ऊपर सेतुका निर्माण कर लिया और सेनाके समेत सुबेल पर्वतपर डेरा डाल दिया कहो वह मनुष्य है?

जेहिं बारीस बँधायउ हेला।
उतरेउ सेन समेत सुबेला॥
सो भनु मनुज खाब हम भाई।
बचन कहहिं सब गाल फुलाई॥

हे पितः! मेरे वचनको आदरपूर्वक सुनिये, अपने मनमें मुझे डरपोक न समझिए। नीतिकी बात सुनिए। पहले दूत भेजिए और श्रीसीताजीको देकर सन्धि कर लीजिए। यदि स्त्रीको पाकर वे लौट जायँ तो विग्रह न करिये, अन्यथा रणभूमिमें हठपूर्वक उनसे सम्मुख मारकाट करिये।

नारि पाइ फिरि जाहिं जौं तौं न बढ़ाइअ रारि।
नाहिं त सन्मुख समर महि तात करिअ हठि मारि॥

रावणने क्रुद्ध होकर पुत्रसे कहा—अरे मूर्ख! ऐसी कुबुद्धि तुझे किसने सिखाई? पिताकी बात सुनकर प्रहस्तने कहा—हे पितः! आपको हितैषी वाणी अच्छी नहीं लग रही है। जिस प्रकार म्रियमाण रोगीको औषधि नहीं अच्छी लगती या औषधि उसे लाभ नहीं करती।

हित मत तोहि न लागत कैसें।
काल बिबस कहुँ भेषज जैसें॥

रावण सभासे उठकर नृत्य भवनमें चला गया। लङ्काके सुन्दर, सुबेल और नील तीन शिखर थे उसमेंसे नील शिखरपर रावणका मुख्य राजभवन था। वहाँपर ताल, पखावज और वीणा बज रहे हैं। नृत्यकलामें प्रवीण अप्सरायें नृत्य कर रही हैं। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि सैकड़ों इन्द्रोंकी भाँति रावण भोग विलास करता है। परम प्रबल शत्रु सिरपर है तो भी उसे न चिन्ता है और न डर है।

सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास।
परम प्रबल रिपु सीस पर तद्यपि सोच न त्रास॥

अब आइये, श्रीरामजीके पास चलें। श्रीरामचन्द्रजी लङ्काके सुबेल नामक शिखरपर डेरा डाले हैं। सुबेल पर्वतपर एक अत्यन्त उँचा परमरम्य, समतल और अत्यन्त उज्ज्वल शिखर देखकर श्रीलक्ष्मणजीने भगवान्‌की शैय्याके लिये वृक्षोंके अभिनव कोमल पत्ते और सुन्दर फूल अपने हाथोंसे रचकर बिछाये। फिर उसपर रुचिर कोमल मृगछाला बिछा दिया। इसी आसनपर कृपालु श्रीरामजी विराजमान हुए। संत लोग कहते हैं यह मृगचर्म मायामृग मारीचका है। श्रीगीतावलीमें लिखा भी है।

हेमको हरिन हनि फिरे रघुकुलमनि
लखन ललित कर लिए मृग छाल।

भगवान् श्रीराम सुग्रीवजीकी गोदमें अपना सिर रखे हैं। बायीं ओर धनुष और दाहिनी ओर तरकस है। दोनों करारविन्दोंसे प्रभु बाण सुधार रहे हैं। श्रीविभीषण कानोंसे लगकर मन्त्र कह रहे हैं। अतिशय भाग्यशाली श्रीहनुमान् और अङ्गदजी अनेक प्रकारसे श्रीरामजीका पादसंवाहन कर रहे हैं। श्रीलक्ष्मणजी कमरमें तरकस कसे और हाथोंमें धनुष बाण लिए वीरासनसे भगवान्‌के पीछे विराजमान हैं। कृपारूप और गुणोंके धाम श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार विराजमान हैं, वे मनुष्य धन्य हैं जो इस ध्यानमें सदा निमग्न रहते हैं। यह सुबेल पर्वतकी झाँकी श्रीरामचरितमानसकी झाँकियोंमें अपना विशेष महत्त्व रखती है। भक्तोंको इसका विशेष मनन, ध्यान और पाठ करना चाहिए।

इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा।
------- ------ लवलीन॥

श्रीहनुमन्नाटकमें इस झाँकीका वर्णन महोदर नामके राक्षसने रावणसे किया है—वानरवाहिनीपति सुग्रीवकी गोदमें सिर और अक्षहन्ता हनुमान्‌की गोदमें चरण रखकर तथा भूमिमें बिछी हुई कनकमृगके चर्मपर शेष शरीरको रखकर श्रीलक्ष्मणके द्वारा दी हुई प्रत्यञ्चापर राक्षसकुलनाशक तीक्ष्ण बाणको नेत्रके कोंणसे देखते हुए, वह देखिए, आपके भाई विभीषणकी बातें श्रीरामचन्द्रजी कान लगाकर सुन रहे हैं।

अङ्के कृत्वोत्तमाङ्गं प्लवग बलपतेः पादमक्षस्य हन्तु र्भूमौ विस्तारितायां त्वचि कनकमृगस्याङ्गशेषं निधाय। बाणं रक्षः कुलघ्नं प्रगुणितमनुजेनार्पितं तीक्ष्णमक्ष्णोः कोणेनोद्वीक्ष्यमाणस्त्वदनुज वचने दत्तकर्णोऽयमास्ते॥

(श्रीहनुमन्नाटक ११। ७)

जिन्होंने अपने कटाक्षनिक्षेपसे ही समुद्रको बाँधा, बन्दीजन जिन्हें 'रक्षा करो, रक्षा करो' कहकर पुकार रहे हैं, आपके मामा मारीचकी छालपर बैठे, मन्त्रियोंकी बातें सुनते, आधी दृष्टिसे बाणकी परीक्षा करते आपकी पराजयके अभिलाषी लक्ष्मणकी ओर मुसुकराते, सुग्रीवके गर्दनमें हाथ डाले और अङ्गदकी गोदमें पैर रखे वह देखिए श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं।

भ्रूभङ्गाद्बद्धसिन्धू रघुपतिरवताद्वन्दिना वेदितोसौ विष्टस्ते मातुलस्य त्वचि पुनरनुजं मन्त्रिणो दत्तकर्णाः। बाणे दत्तार्धदृष्टिस्तव जयपिशुने लक्ष्मणे सस्मितो यः सुग्रीवग्रीवबाहुः कृतचरणभरः सोऽङ्गदे रावणोऽयम्॥

(श्रीहनुमन्नाटक २१। ८)

श्रीरामजी पूर्व दिशाकी ओर समुदित चन्द्रमाको देखकर अपने वानरोंसे कहने लगे—हे भाइयों! आपलोग अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार बताइये कि चन्द्रमामें जो कालापन है वह क्या है?

कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई।
कहहु काह निज निज मति भाई॥

श्रीसुग्रीवने कहा—हे रघुनन्दन! सुनिये, चन्द्रमामें पृथ्वीकी छाया प्रकट हो रही है।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई।
ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई॥

यह बचन तो स्पष्ट सुग्रीवका ही है, उन्होंने अपने मनकी बात कही। इसके आगे अनुमानसे श्रीविभीषणकी बात ज्ञात होती है; क्योंकि उन्हें रावणकी लात अभीतक भूली नहीं है।

मारेउ राहु ससिहि कह कोई।
उर महँ परी स्यामता सोई॥

सुभाषितरत्नभण्डागारमें इसी प्रकारका एक श्लोक है कि कोमल तरुण तमालके समान इस

कलङ्कको चन्द्रमा धारण किये हैं ऐसा जो कहते हैं वह मिथ्या है। किन्तु हमारी समझमें निर्दय राहुके दाँतके छिद्रसे यह आकाश दृश्यमान है।

तरुणतमालकोमलमलीमसमेतदयं
कलयति चन्द्रमाः किलकलङ्कमिति ब्रुवते।
तदनृतमेव निर्दयविधुंतुददन्तपदव्रण-
विवरोपददर्शितमिदं हि विभाति नभः॥

आगे सम्भवतः श्रीअङ्गदजी कहते हैं कि जब ब्रह्माजीने रतिका मुख बनाया तब चन्द्रमाका सार भाग निकाल लिया। वही छिद्र चन्द्रमाके हृदयमें दिखाई पड़ता है, जिसकी राहसे उस पार आकाशकी नीली परछाईं उसमें दृश्यमान है।

कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा।
सार भाग ससि कर हरि लीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माहीं।
तेहि मग देखिअ नभ परिछाहीं॥

ब्रह्मणारतिमुखं चिकीर्षता संगृहीतममृतं विधोस्तदा।
तेन छिद्रमभवद्धि तद्यथा दृश्यते गगनबिम्बनीलता॥

एक दोहा इसी प्रकार और है।

लीन्हों राधामुख रचन बिधि ने सार तमाम।
तेहि मग होइ अकास यह ससि में दीखत श्याम॥

श्रीरामजीके हृदयमें अपने प्रिय भैया भरतका निवास है अतः चन्द्रमामें भी उसके अति प्रिय बन्धुका निवास कहा और श्रीमिथिलेशनन्दिनीकी विरहाग्नि है अतः जलाना कहा।

प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा।
अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥
बिष संजुत कर निकर पसारी।
जारत बिरहवंत नर नारी॥

श्रीहनुमान्‌जीने भी अपने मनकी भावना अभिव्यक्त की कि हे प्रभो! मेरी भाँति चन्द्रमा भी आपका दास है। जिस प्रकार आप मेरे हृदयमें निवास करते हैं उसी प्रकार चन्द्रमाके हृदयमें भी वास करते हैं वही आपकी नीलिमा चन्द्रमामें दृश्यमान है।

कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति सोइ स्यामता अभास॥

साहित्यदर्पणमें उदाहरणके रूपमें इसी भावका एक श्लोक बहुत सुन्दर है।

नेदं नभोमण्डलमम्बुराशि
नैंताश्च तारा नवफेनभङ्गाः।
नायं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो
नासौ कलङ्कः शयितो मुरारिः॥

रसचन्द्रिकामें भी बहुत सुन्दर श्लोक है। वह पूरे प्रसङ्गके भावोंका प्रतीक है।

केऽप्यङ्कं केऽपि पङ्कं वदत सुकवयः केऽपि शङ्कुं शशाङ्के।
छायां केऽपि क्षयं के क्षपिततरदृशः कज्जलं के विलङ्के॥
शङ्के सर्वान्तरस्थः स्फुरति च सततं सान्द्रनीलाम्बुदाभः।
श्रीवत्साङ्कः कृपावानुपदिशति जनान् बोधयन्नात्मतत्त्वम्॥

अर्थात् कोई कवि चन्द्रमामें चिह्न बताते हैं, कोई पङ्क बताते हैं, कोई कील गड़ी हुई बताते हैं, कोई छाया कहते हैं, कोई छिद्र कहते हैं और कोई केवल कज्जल कहते हैं; परन्तु मैं अनुमान करता हूँ कि सान्द्रनीलमेघके समान कृपालु श्रीवत्साङ्क भगवान् चन्द्रमामें निरन्तर स्फुरित होकर अपने जनोंको अपना तत्त्वबोधन करा रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजी श्रीहनुमान्‌जीकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उनका भावगाम्भीर्य, उनका प्रत्युत्पन्नमतित्व, उनका सरल भक्तिपूर्ण हृदय उनके उत्तरमें प्रतिबिम्बित था। एतावता प्रभु बहुत प्रसन्न हुए। कोई सन्त यह भी कहते हैं कि प्रभुने चन्द्रमाके स्वरूपको देखकर जब यह कहा कि

यह विरही नरनारियोंको दग्ध कर रहा है तो उनको प्रियाजीकी स्मृति हो आयी। यह सोचते ही प्रभु आवेशमें आ गये और उन्होंने चन्द्रमाको दण्ड देना चाहा; परन्तु श्रीहनुमान्‌जीके वचनसे प्रभुका वह भाव समाप्त हो गया अतः प्रसन्न हो गये कि हे हनुमान्! आज तुमने चन्द्रमाको बचा लिया। ठाकुरजी दक्षिण दिशाको देखकर बोले।

(नवाह्नपारायण, सातवाँ विश्राम)

पवन तनय के बचन सुनि बिहँसे रामु सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु बोले कृपानिधान॥

श्रीरामजीने कहा—हे विभीषण! दक्षिण दिशामें बादल उमड़ रहे हैं, बिजली चमक रही है, मेघध्वनि हो रही है, कहीं भयङ्कर वृष्टि न हो जाय और ओले न गिरें। श्रीविभीषणने कहा—हे कृपालो! न मेघखण्ड है न बिजली है। लङ्काके नीलशिखर पर नृत्यभवन है वहाँ रावण बैठा है उसके सिरपरका छत्र ही काली घटा है। उसकी गोदमें बैठी हुई मन्दोदरीके हीरोंके कर्णफूल ऐसे चमक रहे हैं मानों बिजली चमक रही है। हे स्वामिन्! ताल और मृदङ्ग बज रहे हैं वही मधुर ध्वनि सुनायी पड़ रही है। विभीषणकी बात सुनकर प्रभुने धनुष चढ़ाकर बाणका सन्धान कर दिया। परिणामस्वरूप रावणका छत्र और मुकुट तथा मन्दोदरीके कानोंके कर्णफूल सबको एक ही बाणसे गिरा दिया; परन्तु यह रहस्य कोई जान नहीं सका। ऐसा कौतुक करके श्रीरामजीका बाण तरकशमें आकर प्रविष्ट हो गया। रावणकी सभामें सब भयभीत और सशङ्कित हो गये।

छत्र मुकुट ताटंक सब हते एकहीं बान।
सब कें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान॥
अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग॥

समस्त सभाको भयभीत देखकर निर्लज्ज रावणने कहा—अरे! जिसके सिरोंका भी कटना सदा कल्याणकारी होता आया है उसके मुकुटका गिरना कैसे अपसकुन हो सकता है।

सिरउ गिरे संतत सुभ जाही।
मुकुट परे कस असगुन ताही॥

जबसे कानोंका आभूषण गिरा है तबसे मन्दोदरीके हृदयमें चिन्ता बनी रहती है।

मन्दोदरी सोच उर बसेऊ।
जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ॥

इसके पश्चात् मन्दोदरीने कहा—हे कन्त! श्रीरामसे शत्रुता त्याग दें। उनको मनुष्य समझकर मनमें हठ न धारण करें।

कंत राम बिरोध परिहरहू।
जानि मनुज जनि हठ मन धरहू॥

'कन्त' शब्दसे सम्बोधित करनेका भाव कि आप मेरी बात मानकर मुझे सुखित करें। कन्त शब्दका शब्दार्थ है '**कं सुखं तनोतीति कन्तः।**' इसके बाद मन्दोदरीने श्रीभगवान्‌के विश्वरूपका वर्णन किया है—भगवान्‌का चरण पाताल है, मस्तक ब्रह्मलोक है। भ्रूभङ्ग काल है, नेत्र सूर्य हैं, केश मेघमाला है, नासिका अश्विनीकुमार हैं, कान दसों दिशायें हैं, पवन श्वास है, वेद उनकी निज वाणी है, ओष्ठ लोभ है, दाँत भयङ्कर यमराज हैं। हँसी माया है, बाहु दिक्पाल हैं, मुख अग्नि है, जिह्वा वरुण है, उत्पत्ति, पालन, प्रलय उनकी चेष्टा है, अहङ्कार शिव हैं, बुद्धि ब्रह्मा हैं, मन चन्द्रमा हैं और चित्त महतत्त्व किंवा विष्णु हैं। यह जड़ चेतन सहित विश्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रने मनुष्यरूपमें अवतार लिया है।

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥

श्रीमन्दोदरीके इस तात्त्विक स्वरूपको सुनकर भी मूर्ख रावणने यह समझा कि मन्दोदरीने इसी बहानेसे मेरी प्रभुताका वर्णन किया है।

जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई।
एहि बिधि कहहु मोरि प्रभुताई॥

अब आइये श्रीरामजीका दर्शन करें। श्रीरामजी अपने समस्त मन्त्रियों श्रीसुग्रीव, विभीषण, हनुमान्, जाम्बवान्, अङ्गद, शरभ, परिवारसहित सुषेण, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, कुमुद, नल और पनस आदिसे विचार विमर्श करने लगे।

नरवानरराजानौ स तु वायुसुतः कपिः।
जाम्बवानृक्षराजश्च राक्षसश्च विभीषणः॥
अङ्गदो बालिपुत्रश्च सौमित्रिः शरभः कपिः।
सुषेणः सहदायादो मैन्दो द्विविद एव च॥
गजो गवाक्षः कुमुदो नलोऽथ पनसस्तथा।
अमित्रविषयं प्राप्ताः समवेताः समर्थयन्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ३७। १, २, ३)

श्रीजाम्बवान्ने कहा—हे स्वामिन्! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार परामर्श देता हूँ कि बालिनन्दन अङ्गदको दूत बनाकर रावणकी सभामें भेजिये। यह परामर्श सबको अच्छा लगा। श्रीरामजीने श्रीअङ्गदसे कहा—बुद्धि, बल और गुणोंके धाम बालिनन्दन! हे तात! तुम मेरे कामके लिये लङ्का जाओ। तुम्हें अधिक समझाकर क्या कहूँ? तुम परम चतुर हो। शत्रुसे वही वार्तालाप करना जिससे हमारा काम बने और उसका कल्याण हो।

बालितनय बुधि बल गुन धामा।
लंका जाहु तात मम कामा॥
बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ।
परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥
काजु हमार तासु हित होई।
रिपु सन करेहु बतकही सोई॥

श्रीहनुमन्नाटकमें भी कहा है कि श्रीरामचन्द्रजीने राक्षसोंपर कृपा करके इन्द्रके पौत्रको भेजा है।

रामः सुवेलाद्रितटेऽवतीर्णः
समुद्रमुल्लङ्घ्य विकीर्ण सैन्यः।
कृपामुपेत्यारिकुलस्य दूतं
सुरेन्द्रनप्तारमथादिदेश॥

(श्रीहनुमन्नाटक ८। १)

श्रीवाल्मीकिजीने श्रीरामजीके द्वारा रावणको सन्देश दिया है—हे दशग्रीव! मैं तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ—तुम अपना श्राद्ध कर लो और लङ्काको जी भरकर देख लो; क्योंकि तुम्हारा जीवन मेरे अधीन हो चुका है।

ब्रवीमि त्वां हितं वाक्यं क्रियतामौर्ध्वदेहिकम्।
सुदृष्टा क्रियतां लङ्का जीवितं ते मयि स्थितम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ४१। ७२)

श्रीअङ्गदजी प्रसन्न होकर प्रस्थान किये। नगरमें प्रवेश करते ही रावणके पुत्रसे भेंट हो गयी। बातों ही बातों में कलह बढ़नेसे जोश आ गया; क्योंकि दोनों ही अतुलित बली और तरुण थे। उसने अङ्गदको मारनेके लिये लात उठायी। श्रीअङ्गदने उसका वही पैर पकड़कर घुमाकर जमीनपर पटक दिया, वह मर गया।

पुर पैठत रावन कर बेटा।
खेलत रहा सो होइ गै भेटा॥
बातहिं बात करष बढ़ि आई।
जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई॥
तेहिं अंगद कहुँ लात उठाई।
गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई॥

पूज्यपाद पं० श्रीरामकुमारजी लिखते हैं—कर्षकी बात यहाँ नहीं लिखी गई है; परन्तु अनुमानसे ऐसा ज्ञात होता है कि रावण पुत्रने पूछा कि तू कौन है? श्रीअङ्गदने उत्तर दिया कि मैं वालिपुत्र रामदूत अङ्गद हूँ। उसने कहा—तेरे पिताको रामने मार डाला और तू उन्हींका दूत बनकर आया है? तुझे धिक्कार है। श्रीअङ्गदने तत्काल कहा—मैं उस वालिका पुत्र हूँ जिसने तेरे पिताको अपनी काँखमें दबा लिया था और उन रामका दूत हूँ जिन्होंने तेरे बापकी बहिन और तेरी बुआको नकटी बूची कर दिया। तूने अपनी बुआकी गति देखी, लज्जा नहीं आयी! तुझे धिक्कार है! उसने कहा—ये वे ही राम हैं न? जिनकी स्त्रीको मेरे पिताजी हर ले आये थे? तत्काल श्रीअङ्गदने उत्तर दिया—ये वे ही राम हैं जिनके पास तेरे बापकी बहिन कामातुर होकर उन्हें अपना खसम बनाने गयी थी और जिनके छोटे भाईने उसको नकटी बूची बना दिया। जिन श्रीरामके रहते तेरा डरपोक पिता पर्णकुटीके पास जानेका साहस नहीं कर सका। कुत्तेकी तरह चोरीसे यती बनकर गया था।

श्रीअङ्गदजीके जानेपर नगरमें शोर और खलबली मच गयी कि लङ्का जलानेवाला वानर फिर आ गया।

आयो आयो आयो सोई बानर बहोरि भयो
सोरु चहुँ ओर लंकाँ आए जुबराजकें।
एक काढैं सौंज एक धौंज करैं कहा ह्वै है
पोच भई महासोचु सुभटसमाजकें॥
गाज्यो कपिराजु रघुराजकी सपथ करि
मूँदे कान जातुधान मानो गाजें गाजकें।
सहमि सुखात बातजातकी सुरति करि
लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटें बाजकें॥

(श्रीकवितावली रामायण ६। ९)

श्रीअङ्गदजी श्रीरामपादारविन्दोंका स्मरण करके सभाभवनके द्वारपर गये। धीर बलराशि वीर खड़े होकर इधर उधर सिंहकी भाँति देखने लगे।

गयउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज।
सिंह ठवनि इत उत चितव धीर बीर बल पुंज॥

'सिंह ठवनि'—सिंह थोड़ा चलता है फिर अकड़कर खड़ा होकर इधर उधर दृष्टि डाल करके फिर चलता है। उसकी चितवन निर्भयताकी होती है। यही निर्भयता जनानेके लिये 'सिंह ठवनि' पद दिया। श्रीरामजीके लिये भी इसी प्रकार लिखा है।

ठाढे भए उठि सहज सुभाएँ।
ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ॥

(१। २५४)

रावणकी आज्ञा प्राप्त करके श्रीअङ्गदजी निर्भय होकर उसकी सभामें गये। रावणकी सभाके सभी सभासद श्रीअङ्गदको देखकर खड़े हो गये। यह देखकर रावणके हृदयमें अत्यन्त क्रोध हुआ।

उठे सभासद कपि कहुँ देखी।
रावन उर भा क्रोध बिसेषी॥

जैसे मतवाले हाथियोंके झुण्डमें सिंह चला जाता है उसी प्रकार अङ्गदजी सभामें जाकर श्रीरामजीके प्रतापका स्मरण करके सभाको शिर नवा करके बैठ गये। रावणने पूँछा—अरे! तू कौन बन्दर है? श्रीअङ्गदने कहा—हे दसकन्धर! मैं श्रीरामका दूत हूँ।

कह दसकंठ कवन तैं बंदर।
मैं रघुबीर दूत कसकंधर॥

मेरे पितासे आपकी मित्रता थी एतावता मैं आपका हित सम्पादन करने आया हूँ। आप आदरपूर्वक, सम्पूर्ण भय छोड़ करके श्रीसीताजीको

आगे करके श्रीरामजीके पास चलो। श्रीरामजी प्रणतपाल हैं, वे '**त्राहि माम् त्राहि माम्**' इस आर्त्तवाणीको सुनते ही तुमको अवश्य ही निर्भय कर देंगे।

दसन गहहु तृन कंठ कुठारी।
परिजन सहित संग निज नारी॥
सादर जनकसुता करि आगें।
एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें॥
प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि॥

श्रीअङ्गदका वचन सुनते ही रावणने कहा—अरे वानरके बच्चे! सँभालकर बोल। तू मुझको नहीं जानता कि मैं देवताओंका शत्रु हूँ। हे भाई! अपना और अपने पिताका नाम बताओ। श्रीअङ्गदने कहा—मैं बालिका पुत्र अङ्गद हूँ। उनसे तुमसे कभी भेंट हुई थी? श्रीअङ्गदका वचन सुनते ही रावण सकुचा गया और बोला कि हाँ बालि एक वानर था, मैं उसे जानता था।

अंगद नाम बालि कर बेटा।
तासों कबहुँ भई ही भेटा॥
अंगद बचन सुनत सकुचाना।
रहा बालि बानर मैं जाना॥

इसके पश्चात् रावणने भेदनीतिका प्रयोग करते हुए कहा—अरे अङ्गद! तू ही बालिका पुत्र है? कुलका नाश करनेवाला वंशमें कुलरूपी बाँसके लिये अग्निरूप पैदा हुआ है तेरी जननीका गर्भपात नहीं हो गया? तू व्यर्थ पैदा हुआ कि अपने मुखसे अपने पिताके हत्यारे तपस्वीका दूत बनता है।

अंगद तहीं बालि कर बालक।
उपजेहु बंस अनल कुल घालक॥
गर्भ न गयहु ब्यर्थ तुम्ह जायहु।
निज मुख तापस दूत कहायहु॥

श्रीकेशवदासजीने भी इसी प्रकार लिखा है कि रावण भेदनीतिसे काम लेता है। अङ्गदको फोड़ना चाहता है।

नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपिपुंज तिहारे।
आठहु आठ दिशा बलि दै अपनो पदुलै पितु जा लगि मारे॥
तोसे सपूतहि जाइकै बालि अपूतहिकी पदवी पगु धारे।
अंगद संगलै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हते बपु मारे॥

(श्रीरामचन्द्रिका १६। १५)

जो सुत अपने बापको बैर न लेइ प्रकाश।
तासों जीवत ही मर्‌यो लोक कहैं तजि आस॥

(श्रीरामचन्द्रिका १६। १६)

उरसि अंगद लाज कछू गहौ।
जनक घातक बात वृथा कहौ॥
सहित लक्ष्मण रामहिं संहरौ।
सकल वानरराज तुम्है करौं॥

(श्रीरामचन्द्रिका १६। १८)

इस भेदनीतिके उत्तरमें श्रीअङ्गदने कहा—अरे मूर्ख! भेद उसके मनमें हो सकता है, जिसके हृदयमें श्रीरघुबीर नहीं है।

सुनु सठ भेद होइ मन ताकें।
श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाकें॥

रावण कहता है—हे अङ्गद! तुम्हारी सेनामें मुझसे कौन बढ़कर लड़ सकता है? तुम्हारे स्वामी स्त्री विरहसे बलहीन हो गये हैं, लक्ष्मण उनके दु:खसे दु:खी हैं और उदास रहते हैं। तुम और सुग्रीव नदीके तटके वृक्ष हो, विभीषण अति डरपोक है, मन्त्री जाम्बवान् अत्यन्त वृद्ध है, अब वह रणमें क्या लड़ सकता है? नल, नील केवल शिल्प कर्म जानते हैं। हाँ, सेनामें एक वानर

महाबलवान् है; जो पहले मेरा नगर जलाकर गया।

रामः स्त्रीविरहेण हारितवपुस्तच्चिन्तया लक्ष्मणः सुग्रीवोऽङ्गदशल्यभेदकतया निर्मूलकूलद्रुमः। गण्यः कस्य विभीषणः स च रिपोः कारुण्यदैन्यातिथि र्लङ्कातङ्कविटङ्कपावकपटुर्वध्यो ममैकः कपिः॥

(श्रीहनुमन्नाटक ८। ९)

श्रीअङ्गदने कहा—हे राक्षसराज! सत्य कहो। क्या उस वानरने सचमुच तुम्हारा नगर जला दिया? इतने बड़े वीरका नगर एक छोटेसे वानरने जलाया। हे रावण! जिसको तुमने बहुत बड़ा योद्धा कहकर सराहा है वह तो कपीन्द्र सुग्रीवका हरकारा है।

जो अति सुभट सराहेहु रावन।
सो सुग्रीव केर लघु धावन॥

यो लङ्कां समदीदहत् तव सुतं रक्षांसि चापीपिषद् यः कौशल्यमवीवदज्जनकजामब्धिं तथातीतरत्। यश्चाराममभूमुटत् स हनुमानस्मत्प्रवीरोद्यमे दूराक्रामणदौत्य एव न पुनर्योद्धुं समादिश्यते॥

(श्रीहनुमन्नाटक ८। ८)

अर्थात् श्रीअङ्गद कहते हैं जिसने तुम्हारी लङ्का जलायी थी, जिसने तुम्हारे बेटे अक्ष तथा अन्य राक्षसोंको पीस डाला था, जिसने श्रीरामजीको श्रीजानकीजीका कुशल समाचार सुनाया था और जो पुनः समुद्रको लाँघकर वापस गया था वह हनुमान् हमारे वानरवीरोंमें गणनीय नहीं माना जाता। वह दूर देश जानेमें और दूतका काम करनेमें ही भेजा जाता है। श्रीअङ्गदने कहा—अरे रावण! तूने सत्य ही कहा—हमारी सेनामें कोई भी ऐसा नहीं है जो तुमसे लड़नेमें सुशोभित हो। नीति यह है कि प्रीति और विरोध बराबरवालों से ही करना चाहिए। सिंह मेढकको मारे तो क्या उसको कोई अच्छा कहेगा? फिर भी श्रीरामजी तुझे अवश्य मारेंगे; क्योंकि क्षत्रिय जातिका रोष कठिन होता है।

जद्यपि लघुता राम कहुँ तोहि बधें बड़ दोष।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र जाति कर रोष॥

हे रावण! एक बात बता, संसारमें रावण कितने हैं?

कहु रावन रावन जग केते।
मैं निज श्रवन सुने सुनु जेते॥

एक रावण तो राजा बलिको जीतने पाताल गया था, वहाँ बच्चोंने उसे अश्वशालामें बाँध दिया। बालक खेलते थे और जा जाकर उसे मारते थे। दया लगनेपर बलिने छुड़ा दिया। एक रावणको सहस्रबाहुने जलजन्तुकी तरह पकड़ लिया था उसको पुलस्त्य मुनिने मुक्त कराया। एक रावण और है उसे कहनेमें मुझे सङ्कोच हो रहा है, वह मेरे पिताजीके काँखमें रहा। इन रावणोंमें तुम कौन हो? यह मुझे सच सच बताओ।

एक कहत मोहि सकुचि अति रहा बालि कीं काँख।
इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख॥

रावणने उत्तर दिया—

मैं तेरो मरम कछू नहिं पायो।
रे कपि कुटिल ढीठ पसु पाँवर मोहि दास ज्यों डाटन आयो॥
भ्राता कुंभकरन रिपुघातक सुत सुरपतिहि बंदि करि ल्यायो।
निज भुजबल अति अतुल कहौं क्यों कंदुक ज्यों कैलास उठायो॥
सुर नर असुर नाग खग किंनर सकल करत मेरो मन भायो।
निसिचर रुचिर अहार मनुज तनु ताको जस खल मोहि सुनायो॥

(श्रीगीतावलीजी ६। ३। १-३)

श्रीहनुमन्नाटकमें भी रावणने अपने प्रभुत्वका

वर्णन करते हुए कहा है—इन्द्र मेरा माली है, सूर्य मेरा प्रहरी है, चन्द्रमा मेरा छत्रधर है, वायु और वरुण मेरे महलमें झाड़ू देते हैं और अग्नि पाचक—रसोइया है। यह देखकर भी तू राक्षसोंके भक्ष्य मनुष्य शरीरधारी राघवकी स्तुति करता है।

इन्द्रं माल्यकरं सहस्रकिरणं द्वारि प्रतीहारकं,
चन्द्रं छत्रधरं समीरवरुणौ संमार्जयन्तौ गृहान्।
पाचक्ये परिनिष्ठितं हुतवहं कि मद्गृहे नेक्षसे,
रक्षोभक्ष्यमनुष्यमात्रवपुषं तं राघवं स्तौषि किम्॥

(श्रीहनुमन्नाटक ८। २३)

महीमीचु दासी सदा पाँव धोवै।
प्रतीहार होइ कै कृपा सूर जोवै॥
छपानाथ लीन्हें रहैं छत्र जाको।
करैगो कहा शत्रु सुग्रीव ताको॥
सका (भिश्ती) मेघमाला शिखीपाककारी।
करै कोतवाली महादंडधारी॥
पढ़ैं वेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके।
कहा बापुरो शत्रु सुग्रीव ताको॥

(श्रीरामचंद्रिका १६। २२-२३)

जासु चलत डोलति इमि धरनी।
चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी॥
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी।
सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी॥
तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ग्यान॥

श्रीअङ्गदने कहा—अरे मूर्ख रावण! श्रीरामचन्द्र मनुष्य हैं? कामदेव भी क्या धनुर्धर हैं? क्या गङ्गाजी नदी हैं? कामधेनु भी पशु है? कल्पवृक्ष क्या वृक्ष है? अन्न भी क्या दान है? अमृत भी क्या रस है? गरुड़जी क्या पक्षी हैं? शेषजी क्या सर्प हैं? चिन्तामणि क्या पत्थर है? वैकुण्ठ भी क्या लोक है? श्रीरामभक्ति क्या सामान्य लाभ है? सेनाके समेत तेरा अभिमान मथकर, अशोकवनको उजाड़कर नगरको जलाकर और तेरे पुत्रको मार जो लौट गये, क्यों रे दुष्ट वे हनुमान्‌जी क्या वानर हैं?

राम मनुज कस रे सठ बंगा।
धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा।
अन्न दान अरु रस पीयूषा॥
बैनतेय खग अहि सहसानन।
चिंतामनि पुनि उपल दसानन॥
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा।
लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा॥
सेन सहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि॥

तू राक्षसराज है, इसका तुझे बहुत गर्व है और मैं रामजीके दासका दूत हूँ। श्रीरामजीके अपमानका भय न हो तो मैं तुझको पृथ्वीपर पटककर, सेनाको मारकर और तेरे गाँवको चौपट करके तेरी स्त्रियोंके सहित सीता मैयाको लेकर चला जाऊँ।

तैं निसिचर पति गर्ब बहूता।
मैं रघुपति सेवक कर दूता॥
जौं न राम अपमानहि डरऊँ।
तोहि देखत अस कौतुक करऊँ॥
तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ।
तव जुबतिन्ह समेत सठ जनकसुतहि लै जाउँ॥
तूँ रजनीचरनाथु महा रघुनाथके सेवकको जनु हौं हौं।

बलवान् है स्वानु गलीं अपनीं तोहि लाज न गालु बजावत सौहौं॥
बीस भुजा दससीस हरौं न डरौं प्रभु आयसु भंग तें जौं हौं।
खेतमें केहरि ज्यों गजराज दलौं दल बालिको बालक तौ हौं॥
(श्रीकवितावली ६। १३)

कोसलराजके काज हौं आजु त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं।
महा भुजदण्ड द्वै अंडकटाह चपेटकीं चोट चटाक दै फोरौं॥
आयसभंग तें जौं न डरौं सब मीजि सभासद श्रोनित घोरौं।
बालिको बालकु जौं तुलसी दसहू मुखके रनमें रद तोरौं॥
(श्रीकवितावली ६। १४)

श्रीअङ्गदकी बात सुनकर रावण परमक्रुद्ध हो गया, दाँतोंसे होंठोंको काटकर हाथ मलता हुआ बोला।

सुनि सकोप कह निसिचर नाथा।
अधर दसन दसि मीजत हाथा॥

अरे मूर्ख बन्दर! तू जिसके बलका आश्रय लेकर कटूक्ति बोल रहा है उसमें बल, प्रताप, बुद्धि, किंवा तेज कुछ भी नहीं है। उसको अगुण और अमान समझकर ही उसके पिताने वनवास दे दिया उसे एक तो वनवासका दु:ख उसपर स्त्रीविरह और अहोरात्र मेरा भय बना रहता है।

अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनबास।
सो दुख अरु जुबती बिरह पुनि निसि दिन मम त्रास॥

जब रावणने श्रीरामजीकी निन्दा की तब श्रीअङ्गद अत्यन्त क्रुद्ध हो गये।

जब तेहिं कीन्हि राम कै निंदा।
क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा॥
हरि हर निंदा सुनइ जो काना।
होइ पाप गोघात समाना॥
कटकटान कपिकुंजर भारी।
दुहु भुजदण्ड तमकि महि मारी॥
डोलत धरनि सभासद खसे।
चले भाजि भय मारुत ग्रसे॥
गिरत सँभारि उठा दसकंधर।
भूतल परे मुकुट अति सुंदर॥
कछु तेहिं लै निज सिरन्हि सँवारे।
कछु अंगद प्रभु पास पबारे॥

इस प्रकार श्रीअङ्गदने रावणको अगुण बना दिया। आगे जब श्रीरामजी पूछेंगे कि हे अङ्गद! तुमने रावणके चार मुकुट फेंके। हे तात! तुमने उनको किस प्रकार प्राप्त किया? तब अङ्गदजी कहेंगे कि प्रभो! वे मुकुट नहीं, राजाओंके चार गुण हैं।

सुनु सर्बग्य प्रणत सुखकारी।
मुकुट न होहिं भूप गुन चारी॥
(६। ३८)

तदनन्तर रावणको 'अमान' बनानेके लिए श्रीअङ्गदजीने सभाके मध्यमें प्रतिज्ञापूर्वक पैर जमा दिया और कहा—अरे रावण! यदि तू मेरे चरण हटा सके तो श्रीरामजी लौट जायेंगे और मैं श्रीसीताजीको हार गया।

जौं मम चरन सकसि सठ टारी।
फिरहिं रामु सीता मैं हारी॥

बहुतसे बुद्धिवादी लोग इस चौपाईका अर्थ ही बदल देते हैं कि श्रीरामसीता लौट जायेंगे और मैं अपनेको हार जाऊँगा। इस चौपाईका अर्थ लगानेके लिए श्रीरामजीके चरणोंमें भक्ति आवश्यक है। श्रीअङ्गदजीने अपने बलपर प्रतिज्ञा नहीं की है अपितु श्रीरामजीके प्रतापको समझकर तब प्रतिज्ञा की है।

समुझि राम प्रताप कपि कोपा।
सभा माझ पन करि पद रोपा॥

श्रीगोस्वामीजीने बहुत स्पष्ट लिखा है।

तेहि समाज कियो कठिन पन जेहिं तौल्यो कैलास।
तुलसी प्रभु महिमा कहौं की सेवक विस्वास॥

(श्रीदोहावली १६७)

जब श्रीअङ्गदजीके चरणोंको रावणकी सभाका कोई वीर न उठा सका तब श्रीअङ्गदके ललकारनेपर रावण स्वयं उठा।

कपि बल देखि सकल हियँ हारे।
उठा आपु कपि कें परचारे॥

जब रावण अङ्गदजीका चरण पकड़ने लगा तब बालिनन्दन अङ्गदने कहा—अरे मूर्ख! मेरे चरण पकड़नेसे तेरा कल्याण नहीं होगा। अरे मूर्ख! अरे वासनामलिन! अरे कामान्ध! अब भी समय है, तू श्रीसीताजीको, श्रीरामजीको समर्पित कर दे और उनका भजन कर ले, तेरा कल्याण हो जायेगा।

गहत चरन कह बालिकुमारा।
मम पद गहें न तोर उबारा॥
गहसि न राम चरन सठ जाई।
सुनत फिरा मन अति सकुचाई॥
भयउ तेजहत श्री सब गई।
मध्य दिवस जिमि ससि सोहई॥

रावणका मान आज समाप्त हो गया, उसका तेज नष्ट हो गया और श्री भी नष्ट हो गयी। श्रीअङ्गदने कहा—हे रावण! तेरे कहनेमात्रसे न मेरे श्रीराम अगुण हुए और न अमान, परन्तु मैं तुझे अगुण और अमान बनाकर ही जा रहा हूँ। इस प्रकार शत्रुके गर्वको चूर करके श्रीरामजीका सुयश सुनाकर बालिनन्दन अङ्गद श्रीरामजीके पास चल दिये।

रिपु मद मथि प्रभु सुजसु सुनायो।
यह कहि चल्यो बालि नृप जायो॥

रावणको व्याकुल देखकर मन्दोदरीने उसको समझाया। मन्दोदरीने कहा—हे कन्त! मनमें समझकर कुमतिका परित्याग कर दो। तुम्हारा और श्रीरामजीका युद्ध शोभा नहीं देता है, कहाँ श्रीराम और कहाँ आप? अवनि अम्बरका अन्तर है। श्रीरामजीकी बात छोड़ो उनके छोटे भाईने एक छोटी सी लकीर खींची उसे भी आप नहीं लाँघ सके, यही तो आपका पुरुषार्थ है।

रे रे रावण शंभुशैलमथन प्रख्यातवीर्य्यः कथं
रामं योद्धुमिहेच्छसीदमखिलं चेत्तन्न युक्तं तथा।
रामस्तिष्ठतु लक्ष्मणेन धनुषा रेखा कृता लङ्घिता
तच्चारेण च लंघितो जलनिधिर्दग्धा हतोक्षः पुरी॥

(श्रीहनुमन्नाटक ८। ३६)

देव त्वां प्रति संप्रति प्रतिभटप्रोल्लासनं नो मुदे
देवायं प्रतिपद्यते हितमिदं यस्माद्वयं मन्त्रिणः।
सीतारक्षणदक्षलक्ष्मणधनुर्लेखापि नोल्लंघिता
हेलोल्लंघितवारिधिः कपिकुलैः सार्धं स रामो महान्॥

(श्रीहनुमन्नाटक ९। ९)

मन्दोदरी कहती है श्रीजनककी सभामें अनेक राजागण थे। वहाँपर विशाल और अतुलित बली आप भी थे। उस सभामें शङ्कर कोदण्ड खण्डन करके श्रीरामजीने श्रीसीताको ब्याह लिया। तब आपने उनको युद्धमें क्यों नहीं जीता?

जनक सभाँ अगनित महिपाला।
रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला॥
भंजि धनुष जानकी बिआही।
तब संग्राम जितेहु किन ताही॥

× × ×

रामकी वाम जो आनी चोराय सो
लंका में मीचुकी बेलि बई जू।
क्यों रण जीतहुगे तिनसों
जिनकी धनुरेख न लाँघ गई जू॥

बीस बिसे बलवंत हुते जू
हुती दृग केशव रूप रई जू।
तोरि सरासन शंकरको पिय
सीय स्वयम्बर क्यों न लई जू॥

(श्रीरामचंद्रिका १५। ६)

मन्दोदरी कहती हैं—हे पतिदेव! आपके कल्याणके लिये करुणामय श्रीरामजीने दूत भेजा। श्रीअङ्गद और हनुमान् जिनके सेवक हैं, हे पतिदेव! उन्हें आप बार बार मनुष्य कहते हैं। आप व्यर्थ ही मान, ममता और मदका भार वहन कर रहे हैं।

अंगद हनुमत अनुचर जाके।
रन बाँकुरे बीर अति बाँके॥
तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू।
मुधा मान ममता मद बहहू॥

रात्रिपर्यन्त मन्दोदरीके बाणके समान वचन रावण सुनता रहा। प्रात:काल होते ही सभामें चला गया।

नारि बचन सुनि बिसिख समाना।
सभाँ गयउ उठि होत बिहाना॥

श्रीरामचन्द्रजीने श्रीअङ्गदकी बातसे शत्रुदलका निर्णय कर लिया और उन्होंने सेनाकी व्यवस्था की। प्रभुने कहा—अनेक वानरोंके साथ सेनापति नील पूर्वद्वार पर जाकर प्रहस्तसे लोहा लें। विशाल सेनाके साथ बालिनन्दन अङ्गद दक्षिण द्वारपर स्थित होकर महापार्श्व और महोदरके कार्यमें बाधा दें। पवननन्दन हनुमान् अनुपम आत्मबलसे सम्पन्न हैं वे अनेक वानरोंके साथ लङ्काके पश्चिम फाटकमें प्रवेश करें। नगरके उत्तर फाटकपर मैं सुमित्राकुमार लक्ष्मणके साथ आक्रमण करके उसके भीतर प्रवेश करूँगा, जहाँपर सेनाके साथ रावण उपस्थित है। तदनन्तर महामना महात्मा श्रीराम अपनी विशाल सेनाके द्वारा वहाँकी समग्र भूमिको आच्छादित करके शत्रु वधका निश्चयकर अत्यन्त हर्ष उत्साहसे लङ्काकी ओर चले।

ततस्तु रामो महता बलेन
प्रच्छाद्य सर्वां पृथिवीं महात्मा।
प्रहृष्टरूपोऽभिजगाम लङ्कां
कृत्वा मतिं सोऽरिवधे महात्मा॥

(श्रीवाल्मीकिरामायण ६। ३७। ३७)

चारों फाटकोंपर युद्ध आरम्भ हो गया है। श्रीरामचन्द्रजीके प्रतापसे निडर वानर चारों ओरसे घिरी हुयी बादलोंकी घटाकी तरह लङ्काको चारों दिशाओंसे घेरकर वे मुखसे ही डङ्के और भेरी बजाने लगे। उच्च स्वरसे श्रीरामजी, श्रीलक्ष्मण और वानरेन्द्र सुग्रीवकी जय जयघोष करने लगे।

घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी।
मुखहिं निसान बजावहिं भेरी॥
जयति राम जय लछिमन जय कपीस सुग्रीव।
गर्जहिं सिंहनाद कपि भालु महा बल सींव॥

लङ्कामें भारी कोलाहल मच गया रावणने सुनकर कहा अच्छा हुआ, ब्रह्माने घर बैठे भोजन भेज दिया। श्रीशङ्करजी कहते हैं—हे उमा! रावणको ऐसा अभिमान था जैसे टिटिहरी पक्षी पैर ऊपरकी ओर करके सोता है।

उमा रावनहि अस अभिमाना।
जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना॥

उधर रावणकी और इधर श्रीरामजीकी दोहाई बोली जा रही है। 'जय जय जय' की ध्वनि होते ही युद्ध आरम्भ हो गया।

उत रावन इत राम दोहाई।
जयति जयति जय परी लराई॥

वानरोंकी मार सहन न कर सकनेके कारण राक्षस लङ्काकी ओर भाग चले। तब रावणने उन्हें ललकारा—मैं जिसे रणसे पीठ देकर भागा हुआ अपने कानोंसे सुनूँगा उसे स्वयं कठोर कृपाणसे मारूँगा। मेरा सब कुछ खाया अनेक प्रकारके भोग किये और अब समराङ्गणमें प्राण प्यारे लगने लगे।

जो रन बिमुख सुना मैं काना।
सो मैं हतब कराल कृपाना॥
सर्बसु खाइ भोग करि नाना।
समर भूमि भए बल्लभ प्राना॥

रावणकी ललकार एवं उसके उग्र वचनोंको सुनकर सब राक्षस भयभीत होकर, लज्जित होकर युद्धके लिये प्रस्तुत हो गये। उन्होंने प्राणोंका लोभ छोड़ दिया। किसी भी कार्यमें जब व्यक्ति मरने मारनेको समुद्यत हो जाता है तब उसे सफलता मिलती है।

उग्र बचन सुनि सकल डेराने।
चले क्रोध करि सुभट लजाने॥
सन्मुख मरन बीर कै सोभा।
तब तिन्ह तजा प्रान कर लोभा॥

राक्षस ललकार ललकार कर लड़ने लगे। परिघों और त्रिशूलोंसे मार मारकर वे वानर भालुओंको व्याकुल कर दिये।

बहु आयुध धर सुभट सब भिरहिं पचारि पचारि।
ब्याकुल किए भालु कपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि॥

श्रीहनुमान्‌जी पश्चिम द्वारपर मेघनादसे युद्ध कर रहे थे वह द्वार टूटता न था, अत्यन्त कठिनाई हो रही थी। तब श्रीहनुमान्‌जी कूदकर लङ्काके किलेपर आ गये और एक पहाड़ लेकर मेघनादकी ओर दौड़े। उसका रथ तोड़ डाला, सारथीको मार डाला और मेघनादकी छातीमें एक लात मारा। दूसरा सारथी उसको व्याकुल जानकर रथमें डालकर तुरन्त घर ले आया।

भंजेउ रथ सारथी निपाता।
ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता॥
दुसरें सूत बिकल तेहि जाना।
स्यंदन घालि तुरत गृह आना॥

इसके पश्चात् श्रीहनुमान् और अङ्गदने बड़ा भयङ्कर युद्ध किया। उन्होंने कलशके साथ महलको पकड़कर ढहा दिया। यह प्रबल पराक्रम देखकर राक्षसेन्द्र रावण भी भयभीत हो गया।

कलस सहित गहि भवनु ढहावा।
देखि निसाचरपति भय पावा॥

स्त्रियाँ हाथोंसे छाती पीटती हैं और कहती हैं—अबकी बार तो दो उत्पाती वानर एक साथ आ गये हैं। श्रीअङ्गद और हनुमान् वानरलीला करके उनको डराते हैं और श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर यश सुनाते हैं।

नारि बृंद कर पीटहिं छाती।
अब दुइ कपि आए उतपाती॥
कपिलीला करि तिन्हहि डेरावहिं।
रामचंद्र कर सुजसु सुनावहिं॥

इस प्रकार श्रीअङ्गद और श्रीहनुमान्‌ने महाभयङ्कर युद्ध किया। प्रधान सेनापतियोंको पैर पकड़कर प्रभुके पास फेंक देते हैं। श्रीविभीषणजी उनके नाम बताते हैं और कृपालु श्रीरघुनन्दन उन्हें भी अपना धाम दे देते हैं।

कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा।
देहिं राम तिन्हहू निज धामा॥

श्रीशङ्करजी कहते हैं—हे उमा! श्रीरामजी अत्यन्त कोमल हृदय और करुणाकी खानि हैं।

वे सोचते हैं कि ये राक्षस बैर भावसे ही सही मेरा स्मरण तो करते ही हैं।

उमा राम मृदुचित करुनाकर।
बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर॥

श्रीठाकुरजी कहते हैं कि अङ्गद और हनुमान् किलेमें प्रवेश कर गये हैं। दोनों वानर लङ्कामें कैसे शोभा देते हैं जैसे दो मन्दर पर्वत समुद्रका मन्थन कर रहे हों। इस प्रकार अपने भुजाओंके बलसे शत्रुकी सेनाको तहस नहस करके सायङ्काल होता देखकर वे दोनों किलेसे कूदकर प्रभुके पास आ गये। श्रीरामजीने कृपामयी दृष्टिसे दोनोंको निहारकर श्रमापनोदन कर दिया। इसके बाद वानर और भालुओंका बड़ा भयङ्कर युद्ध राक्षसोंके साथ हुआ। रात हुई जानकर वानरोंकी चारों सेनायें श्रीरामजीके पास आ गयीं। सबको श्रीरामजीने कृपादृष्टिसे देखकर श्रमरहित कर दिया।

राम कृपा करि चितवा सबही।
भए बिगतश्रम बानर तबही॥

उधर रावणने मन्त्रियोंको बुलाकर कहा—वानरोंने आधी सेनाका संहार कर दिया अब शीघ्र बताओ क्या उपाय करना चाहिये।

आधा कटकु कपिन्ह संघारा।
कहहु बेगि का करिअ बिचारा॥

माल्यवान् नामका एक अत्यन्त बूढ़ा राक्षस था। वह रावणकी माताका पिता—नाना और श्रेष्ठ मन्त्री था।

माल्यवंत अति जरठ निसाचर।
रावन मातु पिता मंत्री बर॥

माल्यवान्ने कहा—हे तात! मेरी कुछ शिक्षा सुनो। जबसे तुम श्रीसीताजीको हरकर लाये हो तबसे भयङ्कर अपशकुन हो रहे हैं। श्रीरामजी मनुष्य नहीं हैं। हिरण्यकशिपु सहित हिरण्याक्षको और मधु कैटभको मारनेवाले श्रीभगवान् ही श्रीरामरूपसे अवतरित हुये हैं।

हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान।
जेहिं मारे सोइ अवरतेउ कृपासिंधु भगवान॥

हे रावण! शत्रुता छोड़कर श्रीजानकीजीको देकर कृपासिन्धु परमस्नेही श्रीरामका भजन करो।

परिहरि बयरु देहु बैदेही।
भजहु कृपानिधि परम सनेही॥

सुनकर रावणने दुर्वचन कहकर माल्यवान्का घोर अपमान किया। वह रावणको दुर्वचन कहता हुआ उठकर चला गया। तब मेघनाद क्रुद्ध होकर बोला—हे पितः! प्रातःकाल मेरी करामात देखना। मैं बहुत कुछ करूँगा, थोड़ा क्या कहूँ।

कौतुक प्रात देखिअहु मोरा।
करिहहुँ बहुत कहौं का थोरा॥

पुत्रका वचन सुनकर रावण आश्वस्त हो गया और उसने प्रेमके साथ उसे अपनी गोदमें बिठा लिया। इधर प्रातःकाल होते ही वीर वानर चारों दरवाजोंपर पहुँच गये। किलेको घेर लिया। राक्षस भी अस्त्र शस्त्र लेकर दौड़े। इस प्रकार भयङ्कर युद्ध आरम्भ हो गया। मेघनाद भी किलेसे उतरकर, डंका बजाकर सामने चला।

मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ु पुनि छेंका आइ।
उतर्‌यो बीर दुर्ग तें सन्मुख चल्यो बजाइ॥

मेघनादने श्रीराम, श्रीलक्ष्मण, नल, नील, द्विविद, सुग्रीव, अङ्गद, हनुमान् और विभीषण सबको ललकारा और भयङ्कर बाणोंका सन्धान करने लगा। उसकी भयङ्कर मारसे व्याकुल होकर वानर और भालु जहाँ तहाँ भाग चले। श्रीहनुमान्जी

अपनी समस्त सेनाको व्याकुल देखकर कालकी भाँति क्रुद्ध होकर दौड़े और एक विशाल पर्वत उखाड़कर मेघनादके ऊपर छोड़ दिया। उस विशाल पर्वतको आते देखकर मेघनाद आकाशमें चला गया। उस पर्वतके द्वारा उसका रथ, सारथी और घोड़े सब नष्ट हो गये। श्रीहनुमान्‌जी उसको बार बार ललकारते हैं; परन्तु श्रीहनुमान्‌के बलका मर्मज्ञ मेघनाद ललकारनेपर भी श्रीहनुमान्‌जीके निकट नहीं आता है।

बार बार पचार हनुमाना।
निकट न आव मरमु सो जाना॥

यह श्रीहनुमान्‌जीका प्रबल पराक्रम है कि संसारका सर्वश्रेष्ठ वीर मेघनाद ललकारनेपर भी उनके सन्निकट आनेका साहस नहीं करता है। धन्य हैं श्रीहनुमान्! और धन्य है उनका पराक्रम!

श्रीहनुमान्‌जीसे पराजित होकर श्रीरामजीके पास जाकर मेघनाद अनेक प्रकारके दुर्वचन कहने लगा।

रघुपति निकट गयउ घननादा।
नाना भाँति करेसि दुर्बादा॥

श्रीहनुमान्‌से हारनेके कारण खिसिया गया है इसलिए गाली बकने लगा। अस्त्र और शस्त्र सभी प्रकारके आयुध चलाये, प्रभुने उन्हें अनायासेन विफल कर दिया। श्रीरामजीके प्रतापको देखकर खिसिया करके वह माया युद्ध करने लगा।

देखि प्रताप मूढ़ खिसिआना।
करै लाग माया बिधि नाना॥

उसकी माया देखकर वानर भालू व्याकुल हो गये। यह कौतुक देखकर श्रीरामजी मुस्कराये। मुसकराकर मेघनादके मायायुद्धका निरादर किया और वानरोंको उत्साहित किया। श्रीरामजीने एक ही बाणसे मेघनादकी समस्त मायाका निवारण कर दिया। जैसे एक सूर्य अंधकार समूहको नष्ट कर देते हैं।

एक बान काटी सब माया।
जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया॥

श्रीलक्ष्मणजीने मेघनादसे युद्ध करनेके लिये आज्ञा माँगी—हे सर्वसमर्थ प्रभो! मेघनाद रावणका पुत्र है और मैं आपका पुत्र हूँ। युद्धमें आनन्द आयेगा, अतः मुझे युद्ध करनेकी आज्ञा दें। आज्ञा माँगकर अङ्गदादि वानरोंको साथमें लेकर, हाथमें धनुषबाण लेकर श्रीलक्ष्मणजी क्रुद्ध होकर युद्धके लिए चले।

आयसु मागि राम पहिं अंगदादि कपि साथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ॥

वानर और राक्षस जोड़ी से जोड़ी भिड़ गये। दोनों दलोंमें विजयकी प्रबल इच्छा है। मुष्टिकसे, लातोंसे मारते हैं और दाँतोंसे काटते हैं।

भिरे सकल जोरिहि सन जोरी।
इत उत जय इच्छा नहिं थोरी॥
मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं।
कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं॥

बहुत भयङ्कर युद्ध हो रहा है। श्रीलक्ष्मण और मेघनाद दोनों योद्धा अत्यन्त क्रुद्ध हो करके आपसमें भिड़ रहे हैं।

लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा।
भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा॥

श्रीलक्ष्मणजीने क्रुद्ध होकर उसके रथको तोड़ डाला और सारथिको नष्ट कर दिया। अनेक प्रकारसे प्रहार कर रहे हैं। रावणके पुत्र मेघनादने अपने मनमें अनुमान लगाया कि महान् सङ्कट उपस्थित हो गया है, ये मेरे प्राण ले लेंगे।

रावन सुत निज मन अनुमाना।
संकट भयउ हरिहि मम प्राना॥

तब उसने 'वीरघातिनी' नामकी शक्तिका प्रहार कर दिया जो श्रीलक्ष्मणजीके हृदयमें लगी। श्रीलक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये। श्रीलक्ष्मणको मेघनादकी तरह अनेक योद्धा प्रयत्न करके भी नहीं उठा पाये। तब वे सब खिसियाकर चले गये।

वीरघातिनी छाड़िसि साँगी।
तेज पुंज लछिमन उर लागी॥
मुरुछा भई सक्ति के लागें।
तब चलि गयउ निकट भय त्यागें॥
मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसिआइ॥

सन्ध्याके समय दोनों ओरकी सेनाएँ लौट गयीं। सेनापति लोग अपनी अपनी सेनाओंकी सँभाल करने लगे। श्रीरामजीने कहा—लक्ष्मण कहाँ हैं?

ब्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर।
लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर॥

इस प्रसङ्गके आरम्भमें 'व्यापक, ब्रह्म, अजित, भुवनेश्वर और करुणाकर इन पाँच विशेषणोंका मनन करना चाहिए। इन पाँचों विशेषणोंमें प्रसङ्गका तत्त्व सन्निहित है। उसी समय श्रीहनुमान् श्रीलक्ष्मणजीको ले आये। घायल श्रीलक्ष्मणजीको देखकर प्रभुने अत्यन्त दु:ख माना।

तब लगि लै आयउ हनुमाना।
अनुज देखि प्रभु अति दुख माना॥

श्रीजाम्बवान्‌के कथनानुसार श्रीहनुमान्‌जी लङ्कामें जाकर सुषेण वैद्यको घरके समेत तुरन्त ले आये।

जामवंत कह बैद सुषेना।
लंकाँ रहइ को पठई लेना॥
धरि लघु रूप गयउ हनुमंता।
आनेउ भवन समेत तुरंता॥

श्रीरामचन्द्रजीके कहा—हे वीर! तुम इस समय सुषेण नामक वैद्यको ले आओ यद्यपि वह मेरे शत्रु रावणका अनुचर है, तथापि वह वैद्य है—दु:खितमात्रका उपचार करनेवाला है। इस प्रकार श्रीरामजीकी वाणी सुनकर श्रीहनुमान्‌जी पलँग पर सोये हुए वैद्यको शीघ्र ही उठा लाये।

वैद्यं सुषेणमधुनैव तदानयत्वं,
लङ्कापतेरनुचरोपि यतोभिषक्सः।
नैवान्यथा वदति रामगिरा हनूमान्
पर्य्यङ्कसुप्तमचिरेण तमानिनाय॥

(श्रीहनुमन्नाटक १३। १७)

निद्रासे समुत्थ वैद्यसे करुणाके साथ तरुण लक्ष्मणके लिए औषधि पूछी। सुषेणने कहा चन्द्रकान्तसे प्रकाशित रातमें द्रुहिण पर्वत पर स्थित संजीवनी बूटीसे ये जीवित हो सकते हैं।

सुप्तोत्थितं रघुपतिर्भिषजां वरिष्ठं,
पप्रच्छ तं सकरुणं तरुणोपचारम्।
स व्याजहार हिमरश्मिरुचा रजन्यां
जीवत्यसौ द्रुहिणशैलविशल्यवल्ल्या॥

(श्रीहनुमन्नाटक १३। १८)

राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे हनुमान्! वैद्यजीके कथनानुसार संजीवनी बूटी ले आओ। श्रीरामजीके चरणकमलोंको हृदयमें रखकर अपने पराक्रमका वर्णन करके पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जी सद्य: प्रस्थान कर दिये।

'निज बल भाषी'—श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे प्रभो! आपकी आज्ञा हो तो मैं पाताल से अमृत

ले आऊँ, चन्द्रमाको निचोड़कर अमृत चुआँ लूँ अथवा प्रचण्ड किरणमाली सूर्यको रोक दूँ किंवा यमराजके पाशको चूर-चूर कर दूँ।

पातालतः किमु सुधारसमानयामि
निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि।
उद्दण्डचण्डकिरणं ननु वारयामि
कीनाशपाशमनिशं किमु चूर्णयामि॥

(श्रीहनुमन्नाटक १३। १६)

जौ हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चन्द्रमहि निचोरि चैल ज्यों आनि सुधा सिर नावौं॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत कुंड महि लावौं।
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥
बिबुध बैद बरबस आनौं धरि तौ प्रभु अनुग कहावौं।
पटकौं मीच नीच मूषक ज्यौं सबहिको पापु बहावौं॥
तुम्हरिहि कृपा प्रताप तिहारेहि नेकु बिलंब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं॥

(श्रीगीतावली ६। ८)

दूतोंसे समस्त समाचार सुनकरके रावण अपना अभिमान छोड़कर स्वयं कालनेमिके घर गया। स्वार्थी सब कुछ कर सकता है। मारीच मृग बननेमें अद्वितीय था। इसी प्रकार कालनेमि मुनिवेष धारण करनेमें प्रवीण था। रावण कालनेमिके पास जाकर समस्त कथा सुनाकर उससे हनुमान्‌जीको धोखा देनेको कहा कि तुम मायाके द्वारा मुनिवेष धारणकर हनुमान्‌को मोहित करो। जिससे समय निकल जाय, तत्पश्चात् यह कार्य करके अपने घर लौट आना।

मायाया मुनिवेषेण मोहयस्व महाकपिम्।
कालात्ययो यथा भूयात्तथा कृत्वैहि मन्दिरे॥

(श्रीअध्यात्मरामायण ६। ६। ४१)

रावणके वचन सुनकर कालनेमिने कहा—जिसने तुम्हारे देखते-देखते नगर जला दिया, उसके मार्गको कौन रोक सकता है? हे रावण! इसमें सन्देह नहीं है कि जो कुछ दण्डकारण्यमें मारीचका हुआ था वही मेरे साथ भी होगा।

मारीचस्य यथारण्ये पुराभून्मृगरूपिणः॥
तथैव मे न सन्देहो भविष्यति दशानन।

(श्रीअध्यात्मरामायण ६। ६। ४३-४४)

हे दशग्रीव! नील नलिन सुन्दर लोचनाभिराम रामको हृदयमें रखकर उनका ही भजन करो।

नील कंज तनु सुंदर स्यामा।
हृदयँ राखु लोचनाभिरामा॥

सुनकर रावणने कहा ज्ञात होता है कि तू शत्रुसे कुछ लेकर ही इस प्रकार रामके दासकी भाँति बातें बनाता है। याद रख, मेरी आज्ञाका उल्लंघन करने वाले तुझ दुष्टको मैं अभी मार डालूँगा।

निहन्मि त्वां दुरात्मानं मच्छासनपराङ्मुखम्।
परैः किञ्चिद्गृहीत्वा त्वं भाषसे रामकिङ्करः॥

(श्रीअध्यात्मरामायण ६। ७। २)

रावणकी बात सुनकर कालनेमि मार्गमें मायाके द्वारा मंदिर, तालाब, बाग बनाकर बैठ गया। इसने रामकथा कहकर श्रीहनुमान्‌जीको आकर्षित कर लिया। कालनेमिकी कथामें उन्हें प्यास लग गयी। जब श्रीहनुमान्‌जीने जल माँगा तब उसने कमण्डल दिया। श्रीहनुमान्‌जीने कहा—इतने थोड़े जलसे मेरी प्यास नहीं बुझेगी। तब उसने कहा—तालाबमें मज्जन करके आ जाओ आज तुम्हें मैं दीक्षा दूँगा जिससे भगवच्चरित्र दर्शनका ज्ञान तुम्हें मिल जायेगा। अध्यात्मरामायण में भी कहा है—तुम आँखें बन्द करके जल पीना और तत्काल मेरे पास चले आना। मैं तुम्हें एक

मन्त्रका उपदेश करूँगा, जिससे तुम औषधिको देख सकोगे।

निमील्यचाक्षिणी तोयं पीत्वा गच्छ ममान्तिकम्।
उपदेक्ष्यामि ते मन्त्रं येन द्रक्ष्यसि चौषधीः॥

(श्रीअध्यात्मरामायण ६। ७। २०)

तालाबमें प्रवेश करते ही एक मकरीने व्याकुल होकर श्रीहनुमान्‌जीका चरण पकड़ लिया। उन्होंने उसे मार डाला तब वह दिव्य देह धारण करके विमानमें चढ़कर आकाशमें चली गयी।

सर पैठत कपि पद गहा मकरीं तब अकुलान।
मारी सो धरि दिब्य तनु चली गगन चढ़ि जान॥

उसने कहा—यह मुनि नहीं घोर राक्षस है। हे कपि! आप मेरी बात सत्य मानें।

मुनि न होइ यह निसिचर घोरा।
मानहु सत्य बचन कपि मोरा॥

श्रीहनुमान्‌जी कालनेमिके पास आकर बोले—हे मुनि! पहले आप गुरुदक्षिणा ले लीजिए। पीछे आप मुझे मन्त्र दीजियेगा।

आनन्दरामायणमें कालनेमिने यही कहा था कि—आपको मन्त्र लेनेके बाद गुरुदक्षिणा देनी होगी।

मत्तस्त्वं लब्धविद्यः सन् ददस्व गुरुदक्षिणाम्।

(आनन्दरामयण सारकाण्ड ११। ५३)

इस प्रकार कहकर उसके सिरको पूँछमें लपेटकर उसे उठाकर पटक दिया। मरते समय उसने अपना राक्षसी शरीर प्रकट कर दिया और राम-राम कहकर प्राण छोड़े। सुनकरके श्रीहनुमान्‌जी मनमें प्रसन्न होकर चले।

कह कपि मुनि गुरुदछिना लेहू।
पाछें हमहि मंत्र तुम्ह देहू॥
सिर लंगूर लपेटि पछारा।
निज तनु प्रगटेसि मरती बारा॥
राम राम कहि छाड़ेसि प्राना।
सुनि मन हरषि चलेउ हनुमाना॥

वहाँ पहुँचकर श्रीहनुमान्‌जीने पर्वतको देखा; परन्तु औषधि न पहिचान सके। श्रीहनुमान्‌जीको देखकर औषधियाँ अदृश्य हो गयीं तब श्रीहनुमान्‌जीने सहसा पर्वतको उखाड़ लिया। पर्वतको लेकर हनुमान्‌जी रात्रिमें आकाश मार्गसे दौड़े चले जा रहे हैं। वे श्रीअयोध्याके ऊपर आ गये।

देखा सैल न औषध चीन्हा।
सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा॥
गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ।
अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ॥

उसी समय श्रीलक्ष्मणकी माता श्रीसुमित्राने स्वप्न देखा कि एक सर्प मेरी बाँयी भुजा निगल गया है और वह घबड़ाकर उठ बैठीं। श्रीसुमित्राने श्रीकौसल्याको और श्रीकौसल्याने श्रीवसिष्ठको कहा—श्रीवसिष्ठने भरतजीके पास जाकर हवनके द्वारा शान्ति की।

प्रोवाच कोसलसुतापुरतोद्‌भुतं सा
स्वप्नं च सा मुनिवसिष्ठपुरोहितस्य।
पार्श्वे नियोज्य सशरं धनुरादधानं
शान्तिं चकार भरतं मुनिराज्यहोमैः॥

(श्रीहनुमन्नाटक १३। २२)

तगर सहित फूलों और श्रीखण्ड, कमल, कपूर और खससे हवन करके घृतपूर्ण नारियलसे पूर्णाहुति कर ही रहे थे कि उसी समय श्रीहनुमान्‌जी जाज्वल्मान प्रकाशसे पूर्ण उस पर्वतको लिए वहाँ उपस्थित हुए। यह क्या है? ऐसा विचारकर श्रीभरतने उनके ऊपर बाणसे प्रहार किया।

हुत्वा श्रीखण्डकाण्डं सतगरकुसुमं पुण्डरीकं मृणालं
कर्पूरोशीरगर्भं प्रचुरघृतयुतं नारिकेलं जुहाव।
तूर्णं पूर्णाहुतिं स ज्वलदनलनिभं शैलमादाय वीरः
प्राप्तास्तत्राञ्जेनयः स किमिति भरतस्तं शरेणाजघान॥

(श्रीहनुमन्नाटक १३। २४)

इस प्रकार श्रीभरतजीने आकाशमें अत्यन्त विशाल स्वरूप देखा और उन्होंने अपने मनमें ऐसा अनुमान किया कि यह कोई राक्षस है। उन्होंने आकर्ण धनुषका आकर्षण करके बिना फरका बाण मारा।

देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि॥

श्रीहनुमान्‌जी बाणके लगते ही *'राम राम रघुनायक'* इस प्रकार उच्चारण करते हुए मूर्च्छित होकर धरणिपर गिर पड़े। प्रिय वचन सुनकरके भरतजी दौड़े और बड़ी आतुरतासे श्रीहनुमान्‌जीके पास आगये। श्रीहनुमान्‌जीको व्याकुल देखकर श्रीभरतने हृदयसे लगा लिया। अनेक प्रकारसे जगाने पर भी वे जगते न थे।

परेउ मुरुछि महि लागत सायक।
सुमिरत राम राम रघुनायक॥
सुनि प्रिय बचन भरत तब धाए।
कपि समीप अति आतुर आए॥
बिकल बिलोकि कीस उर लावा।
जागत नहिं बहु भाँति जगावा॥

इस प्रसङ्गमें एक बहुत बड़ी शिक्षा मिलती है कि रामनामके उच्चारणसे श्रीभरतजीको ज्ञात हुआ कि ये घायल होनेवाले रामभक्त हैं और अपने हैं। अन्यथा तो उन्होंने अशुद्ध तत्त्वका अनुमान करके ही मारा था। श्रीरामनामके उच्चारणने ही उनके प्राण बचा लिये। अस्तु जिस समय हनुमान्‌जी गिरे उस समय पहाड़को श्रीपवनदेवने धारणकर लिया।

देखेउ जात जानि निसिचर बिनुफरसर हयो हियो है।
पर्‌यो कहि राम, पवन राख्यो गिरि, पुर तेहि तेज पियो है॥

(श्रीगीतावलीजी ६। १०। २)

श्रीभरतजीने हनुमान्‌जीको जीवनदान देनेमें अपने जीवनकी साधनाको समर्पित कर दिया है।

जौं मोरें मन बच अरु काया।
प्रीति रामपद कमल अमाया॥
तौ कपि होउ बिगत श्रम सूला।
जौं मो पर रघुपति अनुकूला॥
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा।
कहि जय जयति कोसलाधीशा॥

इस प्रसङ्गमें एक और शिक्षा महत्त्वपूर्ण है। जो लोग भक्त होते हैं वे संसारकी उपेक्षा कर देते हैं और जो संसारका कार्य कर रहे हैं वे अध्यात्म मार्गकी उपेक्षा कर देते हैं। इन दोनों ही प्रकारके लोगोंके लिए श्रीभरतका आदर्श अनुकरणीय है। श्रीभरतजी एक साथ इतने बड़े राज्यका सञ्चालन करते हैं तथा भक्तिमें भी उनकी तरह कौन हो सकता है। प्रस्तुत प्रसङ्गमें इन दोनों विधाओंका मनन करना चाहिए। इस प्रसङ्गमें शक्ति और भक्तिका युगपत् दर्शन होता है। श्रीहनुमान्‌जी सरीखे महाबलवान् वीरको एक ही बिना फरके बाणसे धराशायी कर देना यह अद्‌भुत शक्तिका उदाहरण है और उन्हें पुनः तत्काल जीवित कर देना यह अनोखी भक्तिका उदाहरण है। इस प्रसङ्गका इस दृष्टिसे अनुशीलन करना चाहिए। इस प्रसङ्गमें आदर्शमाता सुमित्राका भी एक प्रसङ्ग अतिशय महत्त्वपूर्ण है। माता सुमित्राने जब यह सुना कि श्रीलक्ष्मण रणमें घायल पड़े हैं और

उन्होंने श्रीरामके लिए रणभूमिमें एक विशेष वीरसे ललकारकर युद्ध किया है। माताको पुत्रके शोकसे सन्तोष है कि उन्होंने श्रीरामभक्तिका वरण किया है। एक क्षणमें उनका मुख सूख जाता है और दूसरे ही क्षण आनन्दसे हरा हो जाता है। माताने नेत्रोंमें अश्रु भरकर श्रीहनुमान्‌से कहा कि इस कुअवसरमें मेरा राम भाईसे बिछुड़ गया है यद्यपि धनुष उसके साथ है, फिर वे शत्रुघ्नसे बोलीं—हे तात! तुम हनुमान्‌के साथ जावो। मेरे एक पुत्रने रामकार्ययज्ञमें अपने प्राणोंकी आहुति देकर मुझे पुत्रवती होनेका गौरव प्रदान किया है। हे पुत्र! तुम भी जावो। सुनते ही श्रीशत्रुघ्न बद्धाञ्जलि होकर खड़े हो गये और शरीरमें पुलकायमान होकर ऐसे प्रसन्न हुये मानो दैवयोगसे उनके पूरे-पूरे दाँव पड़ गये हों।

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामिकाज संग्राम सुभटसों लोहे ललकारि लरे हैं॥
सुवन सोक संतोष सुमित्रहि रघुपति भगति बरे हैं।
छिन-छिन गात सुखात छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं॥
कपिसों कहति सुभाय अंबके अंबक अंबु भरे हैं।
रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर जद्यपि धनु दुसरे हैं॥
तात जाहु कपि सँग रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधिबस सुढर ढरे हैं।

(श्रीगीतावलीरामायण ६। १३)

श्रीहनुमान्‌जी श्रीभरतजीके पाससे चलते हुये उनकी प्रशंसा करते हुये जा रहे हैं।

उधर श्रीलक्ष्मणजीको देखकर श्रीरामजीने अतिशय द्रावक विलाप किया है—प्रभु कहते हैं—जैसे पङ्ख बिना पक्षी, मणि बिना सर्प और सूँड़ बिना श्रेष्ठ हाथी अत्यन्त दीन हो जाते हैं। हे भैया! यदि कहीं तुम्हारे वियोगमें जड़ दैव मुझे जीवित रक्खे तो मेरा जीवन भी ऐसा ही होगा। हे बन्धु! स्त्रीके लिए प्रिय भाईको खोकर मैं श्रीअयोध्यामें कौनसा मुख लेकर जाऊँगा।

जैहउँ अवध कवन मुहु लाई।
नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई॥

ऐसे कठिन कुअवसरमें भी श्रीरामजीको शरणागत श्रीविभीषणकी चिन्ता विशेष है।

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति बँटावन बंधु बाहु बिनु करौं भरोसो काको॥
सुनु सुग्रीव साँचेहू मोपर फेर्‌यो बदन बिधाता।
ऐसे समय समर संकट हौं तज्यो लषन सो भ्राता॥
गिरि कानन जैहैं साखा मृग हौं पुनि अनुज सँघाती।
ह्वैहै कहा बिभीषनकी गति रही सोच भरि छाती॥

(श्रीगीतावलीरामायण ६। ७)

इस प्रकार समस्त वानर समाजके साथ श्रीरामजी अतिशय व्याकुल थे उसी समय औषधि पर्वत लेकर श्रीहनुमान्‌जी पहुँच गये। श्रीरामचन्द्र और सुग्रीव आदि सबके सब प्रसन्न होकर श्रीहनुमान्‌जीका स्वागत किये। प्रभुने श्रीहनुमान्‌को हृदयसे लगा लिया। तत्काल वैद्यने उपाय किया, जिससे श्रीलक्ष्मणजी हर्षित होकर उठ बैठे।

तुरत बैद तब कीन्हि उपाई।
उठि बैठे लछिमन हरषाई॥

श्रीहनुमान्‌जीने वैद्यको उसके घर पहुँचा दिया। औषधिपर्वतको यथास्थान रख आये। कृतज्ञ श्रीरामजीने कृतज्ञता व्यक्त करते हुये श्रीहनुमान्‌से कहा।

प्रथम सुकण्ठते मिलायो सिंधु नांघो सीय
शोधी दल ज्यायो निज नैनन निहारो मैं।
रसिकविहारी महिरावण ते लायो इमि
भूरि सबही ते यह अधिक विचारो मैं॥

तब उपकार हैं अनेक प्राण पंच एक
प्रति उपकार हेत सो तौ वारि डारो मैं।
ये हो हनुमान बलवान हौं बखानौं सत्य
आजते रहोंगो सदा ऋणिया तिहारो मैं॥

स्वस्थ होनेपर श्रीलक्ष्मणसे श्रीसुग्रीवने पूछा कि आपके घावका दर्द कैसा है? उत्तरमें श्रीलक्ष्मणने कहा—मैं इस शक्तिकी वेदनाको किञ्चिन्मात्र ही जानता हूँ, भलीभाँति तो श्रीरामजी ही जानते हैं; क्योंकि वेदना तो श्रीरामको ही थी, मैं तो घायल मात्र ही हुआ था।

ईषन्मात्रमहं वेद्मि स्फुटं यो वेत्ति राघवः।
वेदना राघवेन्द्रस्य केवलं व्रणिनो वयम्॥

(श्रीहनुमन्नाटक १३। ३८)

हृदय घाउ मेरे पीर रघुबीरै।
पाइ सजीवन जागि कहत यों प्रेमपुलकि बिसराय सरीरै॥
मोहि कहा बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै।
सोभा सुख छति लाहु भूपकहँ केवल कांति मोल हीरै॥
तुलसी सुनि सौमित्रि बचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै।
उपमा राम लषनकी प्रीतिकी क्यों दीजै खीरै नीरै॥

(श्रीगीतावलीरामायण ६। १५)

यह समाचार जब रावणने सुना तब अत्यन्त दुःखसे पुनः पुनः मस्तक पीटने लगा।

यह बृत्तांत दसानन सुनेऊ।
अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ॥

रावण व्याकुल होकर कुम्भकर्णके पास गया और अनेक उपाय करके उसको जगाया।

ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा।
बिबिध जतन करि ताहि जगावा॥

'बिबिध जतन' कुम्भकर्णको जगानेके लिए पहलेतो चन्दनका लेप किया गया, फिर शङ्ख, दुन्दुभि आदि बाजे बजे। इस उपायके व्यर्थ होनेपर उसके बालोंको नोचा गया। फिर किसीने अपने दाँतोसे उसके कानोंको काटा, फिर उसके दोनों कानोंमें सौ सौ घड़े पानी डाल दिये तो भी महानिद्रावशङ्गत कुम्भकर्ण टससे मस नहीं हुआ।

अन्ये भेरीः समाजघ्नुरन्ये चक्रुर्महास्वनम्।
केशानन्ये प्रलुलुपुः कर्णानन्ये दशन्ति च॥
उदकुम्भशतानन्ये समसिञ्चन्त कर्णयोः।
न कुम्भकर्णः पस्पन्दे महानिद्रावशङ्गतः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ६०। ५१-५२)

दूसरे बलवान् राक्षसोंने काँटेदार मुद्गर हाथमें लेकर उसके मस्तक, छाती तथा अन्य अङ्गोंपर गिराये; परन्तु वह नहीं जगा। अन्तमें जब हजारों हाथी उसके शरीर पर भगाये गये तब वह अँगड़ाई तथा जमुहाई लेता हुआ जगा। जगकर कुम्भकर्णने रावणसे पूछा—हे भाई! तुम्हारे मुख सूख क्यों रहे हैं? रावणने समस्त वृत्तान्त सुना दिया। सुनकर कुम्भकर्ण दुःखी होकर बोला।

सुनि दसकंधर बचन तब कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान॥

कुम्भकर्णने कहा—हे भाई! तुमने अच्छा नहीं किया। जिसके श्रीहनुमान्‌की तरह सेवक हैं वह मनुष्य हो सकता है? हा हान्त! तूने मुझे पहले क्यों नहीं सुनाया?

हैं दससीस मनुज रघुनायक।
जाके हनूमान से पायक॥
अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई।
प्रथमहिं मोहि न सुनाएहि आई॥
कीन्हेहु प्रभु बिरोध तेहि देवक।
सिव बिरंचि सुर जाके सेवक॥

कुम्भकर्णने कहा—हे भैया! तुमने मेरे शरीरका पालन-पोषण किया, मेरा विवाह किया, बच्चोंकी

रक्षा की। मैंने तो केवल सोना और खाना ही जाना, अतः इस शरीर पर तुम्हारा पूर्ण अधिकार है। इसे मैं तुम्हारे लिए समर्पण कर दूँगा। हे बन्धु! अब मुझे अन्तिम बार भेंट लो। मैं जाकर तापत्रय विमोचन श्रीरघुनन्दनका दर्शन करके अपने नेत्रोंको सफल करूँगा।

अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई।
लोचन सुफल करौं मैं जाई॥
स्याम गात सरसीरुह लोचन।
देखौं जाइ ताप त्रय मोचन॥

रावणने अनेकों घड़ा मदिरा और भैंसे मँगवाये। कुम्भकर्ण भैंसे खाकर और मदिरा पीकर वज्रघातके समान गर्जा और अकेले ही लड़नेके लिए चल पड़ा। श्रीविभीषणने आकर प्रणाम किया। कुम्भकर्णने उठाकर हृदयसे लगा लिया और कहा।

धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन।
भयहु तात निसिचर कुल भूषन॥

कुम्भकर्णने कहा—हे भाई! मन, वचन और कर्मसे कपट छोड़कर रणधीर श्रीरामका भजन करना। मैं कालके वश हो गया हूँ, मुझे अपना पराया नहीं सूझ रहा है एतावता तुम अब जाओ।

बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि भयउँ कालबस बीर॥

विभीषणने श्रीरामजीसे कहा—हे प्रभो! और राक्षसेन्द्रोंको तो वरदानका बल है; परन्तु महान् तेजस्वी और महाबली कुम्भकर्ण तो प्रकृतिसे ही बलवान् है।

प्रकृत्या ह्येष तेजस्वी कुम्भकर्णो महाबलः।
अन्येषां राक्षसेन्द्राणां वरदानकृतं बलम्॥
(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ६१। १२)

नाथ भूधराकार सरीरा।
कुंभकरन आवत रनधीरा॥

वानरों और कुम्भकर्णका महाभयङ्कर युद्ध हुआ। नल, नील, श्रीहनुमान्, श्रीअङ्गद और श्रीसुग्रीव सबसे अलग अलग युद्ध हुआ। सुग्रीवको अपनी काँखमें दबाकर वह लङ्काकी ओर चला कि हे रावण! देखो, इसके बड़े भाईने तुमको काँखमें दबाया था और मैंने तुम्हारा प्रतिशोध ले लिया। परन्तु रास्तेमें ही श्रीसुग्रीवकी मूर्च्छा दूर हो गयी और उन्होंने कुम्भकर्णकी नाक, कान दाँतोंसे काट लिये। जब उसको प्रतीत हुआ तब वह लङ्का जानेका विचार छोड़कर लौट आया।

नाक कान काटे जियँ जानी।
फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी॥

कुम्भकर्णने पुनः बहुत भयङ्कर संग्राम किया। कपिदलको तितर-बितर कर दिया।

कुंभकरन कपि फौज बिडारी।
सुनि धाई रजनीचर धारी॥

श्रीरामचन्द्रजीने जब वानरी सेनाको व्याकुल देखा तब कमलनयन प्रभुने अभय करते हुए कहा—हे सुग्रीव! हे विभीषण! हे लक्ष्मण! सुनो, तुम लोग सेनाको सँभालो। मैं इस दुष्टके बल और दलको देखता हूँ।

सुनु सुग्रीव बिभीषन अनुज सँभारेहु सैन।
मैं देखउँ खल बल दलहि बोले राजिवनैन॥

प्रभु हाथमें शार्ङ्गधनुष और कमरमें तरकस सजकर शत्रुसेनाको दलन करनेके लिए चले। श्रीरामजीने पहले तो धनुषका टङ्कार किया जिसकी भयावह ध्वनि सुनते ही शत्रुदल बधिर हो गया।

कर सारंग साजि कटि भाथा।
अरि दल दलन चले रघुनाथा॥
प्रथम कीन्हि प्रभु धनुष टँकोरा।
रिपु दल बधिर भयउ सुनि सोरा॥

कुछ ही देरमें प्रभुके बाणोंने विकट निशाचरोंको काट डाला और तरकसमें प्रविष्ट हो गये। कुम्भकर्णने मनमें सोचा कि मेरे रहते रहते इन्होंने क्षणमात्रमें निशाचर सेनाका नाश कर दिया।

कुंभकरन मन दीख बिचारी।
हति छन माझ निसाचर धारी॥

फिर कुम्भकर्णने गम्भीर सिंहगर्जना करके वानरीसेनाको मारना आरम्भ कर दिया। वानर मार सहन न कर सके और पुकारते हुए भागे। हे कृपावारिधर! हे शरणागतके दु:खको दूर करने वाले! रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।

कृपा बारिधर राम खरारी।
पाहि पाहि प्रनतारति हारी॥

श्रीरामचन्द्रजीने कुम्भकर्णकी दोनों भुजाओंको काट गिराया। भुजाओंके कट जानेपर वह दुष्ट पक्षविहीन मन्दराचलकी तरह सुशोभित होने लगा। अन्तमें श्रीरामजीने एक तीव्र बाण लेकर उसका शिर उच्छिन्न कर दिया।

तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा।
धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा॥

देवता दुन्दुभी बजाने लगे और स्तुति करके पुष्प वर्षण करने लगे। देवताओंके जानेके पश्चात् श्रीनारदजीने आकाशमें खड़े होकर वीररसके गुण समूहोंका गान किया।

सुर दुंदुभीं बजावहिं हरषहिं।
अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं॥
करि बिनती सुर सकल सिधाए।
तेही समय देवरिषि आए॥
गगनोपरि हरि गुन गन गाए।
रुचिर बीररस प्रभु मन भाए॥

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—राक्षस रातदिन घटते जा रहे हैं जैसे अपने मुखसे कहनेपर सुकृत नष्ट हो जाते हैं।

छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती।
निज मुख कहें सुकृत जेहि भाँती॥

भाईके शिरको पुन:पुन: हृदयसे लगाकर रावण बहुत विलाप कर रहा है। स्त्रियाँ छाती पीट-पीटकर उसके बलका वर्णन करते हुए रुदन कर रही हैं। उस समय मेघनादने आकर पिताको आश्वस्त किया। दूसरे दिन चारों द्वारों पर पुन: युद्ध आरम्भ होगया। मेघनाद मायामय रथपर चढ़कर आकाशसे नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंकी वर्षा करने लगा। उसने समस्त सेनाके सहित श्रीरामचन्द्रजीको नागपाशमें निबद्ध कर दिया।

ब्याल पास बस भए खरारी।
स्वबस अनंत एक अबिकारी॥

श्रीगोस्वामी कहते हैं—श्रीरामचन्द्रजीने रणकी शोभाके लिए स्वयंको नागपाशमें बँधा लिया; परन्तु देवताओंको महान् भय हुआ। श्रीशङ्करजी कहते हैं—हे गिरिजे! जिसका नाम जपकरके मुनिजन भवपाश काट डालते हैं, वे सर्वव्यापक विश्वनिवास प्रभु क्या बंधन में आ सकते हैं?

रन सोभा लगि प्रभुहिं बँधायो।
नागपास देवन्ह भय पायो॥
गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पास।
सो कि बंध तर आवइ ब्यापक बिस्व निवास॥

सेनाको व्याकुल करके मेघनाद प्रकट होकर दुर्वचन कहने लगा। श्रीजाम्बवान्ने कहा—अरे

दुष्ट! खड़ा रह! सुनकर राक्षसको क्रोध आया, उसने कहा—अरे मूर्ख! मैंने वृद्ध समझकर तुझको छोड़ दिया था। अरे नीच! तू मुझको ही ललकारने लगा है।

जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा।
सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥
बूढ़ जानि सठ छाँड़ेउँ तोही।
लागेसि अधम पचारै मोही॥

ऐसा कहकर उसने एक दीप्तिमान् त्रिशूल चलाया। श्रीजाम्बवान् बड़े वेगसे उसको पकड़कर दौड़े और उसे मेघनादकी छाती पर दे मारा। परिणामस्वरूप वह चक्कर खाकर धराशायी हो गया। वृद्ध जाम्बवान्ने क्रोधमें भरकर उसका चरण पकड़कर घुमाया और भूमिपर पटक दिया। वरदानके प्रतापसे वह मारनेसे मरता नहीं तब श्रीजाम्बवान्ने उसका पैर पकड़कर लङ्कामें फेंक दिया।

बर प्रसाद सो मरइ न मारा।
तब गहि पद लंका पर डारा॥

मेघनादको ब्रह्माजीके द्वारा वरदान मिला था कि जिसने बारह वर्ष तक निद्रा और आहारको छोड़ दिया हो उसीके हाथसे वह मर सकता था।

यस्तु द्वादश वर्षाणि निद्राहारविवर्जितः॥
तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणास्य दुरात्मनः॥

(श्रीअध्यात्मरामायण ६। ८। ६५-६६)

इधर देवर्षि नारदने श्रीगरुड़को भेजा। वे तत्काल श्रीरामजीके पास आये। उन्होंने सद्यः माया सर्पसमूहका भक्षण कर लिया। श्रीरामजी सपरिकर बन्धन मुक्त हो गये।

इहाँ देवरिषि गरुड़ पठायो।
राम समीप सपदि सो आयो॥
खगपति सब धरि खाए माया नाग बरूथ।
माया बिगत भए सब हरषे बानर जूथ॥

उधर मूर्च्छा समाप्त होने पर जब मेघनाद होशमें आया तब पिताजीको देखकर लज्जित हो गया। वह सोचने लगा मैं आज बहुत कुछ करनेके लिए कहकर गया था और कुछ न कर पाया। किंवा एक अत्यन्त वृद्धके हाथों पराजित हो गया।

मेघनाद कै मुरछा जागी।
पितहि बिलोकि लाज अति लागी॥

मेघनादने एक पर्वतकी श्रेष्ठ गुफामें जाकर अजययज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया। समाचार पाकर अत्यन्त सावधान श्रीविभीषणने श्रीरामजीसे कहा—हे प्रभो! मेघनाद दुष्ट है, मायावी है और देवताओंको कष्ट देनेवाला है। वह अपवित्र भावनासे यज्ञ कर रहा है। हे स्वामिन्! यदि वह यज्ञ सिद्ध हो जायेगा तो वह शीघ्र जीता न जा सकेगा।

मेघनाद मख करइ अपावन।
खल मायावी देव सतावन॥
जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि।
नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहि॥

श्रीरामजीने प्रसन्न होकर श्रीअङ्गदादि अनेक बानरोंको बुलाकर कहा—हे भाइयों! आप सब लोग लक्ष्मणके साथ जाओ और यज्ञका विध्वंस करो। श्रीलक्ष्मणसे कहा—हे सुमित्रानन्दसंवर्द्धन संग्राममें उसे तुम मारना। देवताओंको सभीत देखकर मुझे अत्यन्त दुःख है। उसको इस प्रकार बलबुद्धिके उपायसे मारना, जिससे उसका नाश हो। फिर भगवान्ने कहा—हे जाम्बवान्! हे सुग्रीव! हे बिभीषण! आप तीनों सेना समेत लक्ष्मणके साथ रहना।

तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही।
देखि सभय सुर दुख अति मोही॥
मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई।
जेहिं छीजै निसिचर सुनु भाई॥
जामवंत सुग्रीव बिभीषन।
सेन समेत रहेहु तीनिउ जन॥

जब श्रीरघुवीर रामचन्द्रने आज्ञा दी तब श्रीलक्ष्मण अतिशय प्रसन्न होगये, कमरमें तरकस कसकर धनुषको सज्जकरके रणधीर श्रीलक्ष्मण प्रभुप्रतापको हृदयमें धारण करके मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले—हे स्वामिन्! यदि मैं आज मेघनादको बिना मारे आऊँ, तो सरकारका सेवक न कहलाऊँ। हे प्रभो! शिष्यपुत्र समझकर यदि सैकड़ों भयङ्कर प्रलयङ्कर शङ्कर उसकी सहायता करें तो भी श्रीरघुवीरकी दुहाई है आज मैं उसका वध कर ही डालूँगा।

प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा।
बोले घन इव गिरा गँभीरा॥
जौं तेहि आजु बधें बिनु आवौं।
तौ रघुपति सेवक न कहावौं॥
जौं सत संकर करहिं सहाई।
तदपि हतउँ रघुबीर दोहाई॥
रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरंत अनंत।
अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत॥

श्रीहनुमान्, अङ्गद आदि वीरोंने मेघनादके यज्ञका विध्वंस कर दिया। वह समराङ्गणमें लड़ने आगया। श्रीलक्ष्मण और मेघनादका बड़ा भयङ्कर समर हुआ है। तीन दिन और तीन रात्रिपर्यन्त युद्ध चलता रहा। दिव्यास्त्रोंके द्वारा श्रीलक्ष्मण और मेघनादमें भयङ्कर संग्राम हुआ। इस युद्धको पढ़नेसे ज्ञात होता है कि दोनों कितने महान् पराक्रमी और दिव्यास्त्रोंके परिज्ञानसे सम्पन्न थे। अन्तमें सुमित्राकुमार श्रीलक्ष्मणने मेघनादको मारनेकी इच्छासे अपने उत्तम धनुष पर बाण रखकर ऐन्द्रास्त्रका प्रयोग किया और उसे छोड़ते समय कहा—यदि दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ हैं तथा पुरुषार्थमें उनकी बराबरी करनेवाला अन्य कोई वीर नहीं है तो हे अस्त्र! तुम इस रावणपुत्र मेघनादका वध कर डालो।

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि।
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वस्तदैनं जहि रावणिम्।
(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ९०। ६९)

सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा।
सर संधान कीन्ह करि दापा॥
छाड़ा बान माझ उर लागा।
मरती बार कपटु सब त्यागा॥
रामानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छाँड़ेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान॥

श्रीलक्ष्मणके इस कार्यसे इन्द्र, देवता, महर्षि सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। आकाशमें अप्सराओंका नृत्य होने लगा, गन्धर्व गाने लगे, दुन्दुभी ध्वनि होने लगी, देवता लोग नन्दनकाननके पुष्पकी वृष्टि करने लगे। अद्भुत दृश्य समुपस्थित हो गया। हे अनन्त! आपकी जय हो, हे जगदाधार! आपकी जय हो, हे प्रभो! आपने सब देवताओंका महती विपत्तिसे उद्धार किया।

तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा।
चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा॥
बरषि सुमन दुंदुभीं बजावहिं।
श्रीरघुनाथ बिमल जसु गावहिं॥
जय अनंत जय जगदाधारा।
तुम्ह प्रभु सब देवन्हि निस्तारा॥

श्रीविभीषण, श्रीहनुमान्‌जी और श्रीजाम्बवान्

एवं अन्य सब वानर यूथपति श्रीलक्ष्मणका अभिनन्दन करते हुए नाना प्रकारकी स्तुति करने लगे।

विभीषणो हनूमांश्च जाम्बवांश्चर्क्षयूथपः।
विजयेनाभिनन्दन्तस्तुष्टुवुश्चापि लक्ष्मणम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ९०। ९०)

वानर किलकिला ध्वनि करते हुए, कूदते, गर्जते श्रीलक्ष्मणजीको घेरकर खड़े होगये। अपनी अपनी पूँछोंको हिलाते और फटकारते हुए वानरवीर '**जयतु श्रीलक्ष्मणः, जयतु श्रीलक्ष्मणः**' की मधुरध्वनि उत्साहपूर्वक करने लगे।

श्रीहनुमान्‌जी बिना प्रयासके ही मेघनादका शरीर उठाकर लङ्का द्वारपर रख आये।

बिनु प्रयास हनुमान उठायो।
लंका द्वार राखि पुनि आयो॥

श्रीलक्ष्मणजी महाराज कृपासागर श्रीरामजीके पास आये। श्रीरामचन्द्रजी बोले—साधु! साधु! धन्य है! हे लक्ष्मण! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। आज तुमने अत्यन्त दुष्कर कर्म सम्पन्न किया है। रावणपुत्र मेघनादके मरनेसे तुम यह निश्चय मानलो कि हम लोग युद्धमें जीत गये।

साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्म चासुकरं कृतम्।
रावणेर्हि विनाशेन जितमित्युपधारय॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ९१। ८)

कीर्तिवर्द्धन श्रीलक्ष्मण लजा रहे थे; परन्तु पराक्रमी श्रीरामजीने उनको बलपूर्वक खींचकरके अपनी गोदमें बिठा लिया और अत्यन्त स्नेहसे उनका मस्तक सूँघा। युद्धमें घायल श्रीलक्ष्मणको गोदमें बिठाकर, अपने हृदयसे लगाकर बड़े प्यारसे बार-बार उनका मुख देखने लगे।

स तं शिरस्युपाघ्राय लक्ष्मणं कीर्तिवर्द्धनम्।
लज्जमानं बलात् स्नेहादङ्कमारोप्य वीर्यवान्॥
उपवेश्य तमुत्सङ्गे परिष्वज्यावपीडितम्।
भ्रातरं लक्ष्मणं स्निग्धं पुनः पुनरुदैक्षत॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ९१। ९-१०)

पुत्रवधका समाचार सुनते ही रावण मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। पुत्रवत्सला मन्दोदरीको मेघनाद अत्यन्त प्रिय था। एतावता वह भी अत्यन्त करुणविलाप छाती पीट-पीटकर करने लगी।

सुत बध सुना दसानन जबहीं।
मुरुछित भयउ परेउ महि तबहीं॥
मंदोदरी रुदन कर भारी।
उर ताड़न बहु भाँति पुकारी॥

रावणने अपने पुत्रवधसे संतप्त होकर, क्रोधवश होकर, अपनी बुद्धिसे सोचविचारकर श्रीसीताजीको मारनेका निश्चय किया।

स पुत्रवधसन्तप्तः शूरः क्रोधवशं गतः।
समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या वैदेह्या रोचयद् वधम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ९२। २०)

रावण क्रोधपूर्वक मुझे मारने आ रहा है यह सुनकर श्रीसीताजीने कहा—हा हन्त! यद्यपि मैं सनाथा हूँ; परन्तु यह नृशंस, दुर्मति मुझे अनाथाकी भाँति मार डालेगा।

वधिष्यति सनाथां मामनाथमिव दुर्मतिः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ९२। ४९)

उस समय रावणके सुशील और शुद्ध आचार विचारवाले सुपार्श्व नामक बुद्धिमान् मन्त्रीने दूसरे मन्त्रियोंके निवारण करनेपर भी रावणको नीतिपूर्वक बड़े प्रेमसे समझाकर सीतावध रूप पापकर्मसे बचा लिया।

इस प्रसङ्गमें एक बड़ी भावपूर्ण कथा सुननेमें आती है। मेघनाद वधका समाचार

सुनकर मन्दोदरीका भी धैर्य समाप्त हो गया। यद्यपि वह रामभक्ता थी; परन्तु पुत्रके सद्य: समुत्पन्न शोकने उसकी बुद्धिको मोहग्रस्त कर दिया। पतिकी भाँति वह भी समस्त अनर्थोंकी जड़ श्रीसीताजीको मानकर आग्नेयनेत्रोंसे आँसू और क्रोधकी वर्षा करती हुई बड़ी तीव्रगतिसे अशोकवाटिकाकी ओर चली।

विभीषणकी पत्नी सरमाने श्रीसीताजीको सब समाचार सुनाया। श्रीसीताजीका हृदय आशङ्काओंसे भर गया। वे तत्काल उठकर मन्दोदरीके आते ही उसके चरणोंमें गिर पड़ीं और कहने लगी—हे मात:! आपके पुत्रको मेरे पुत्रने मारा है। एतावता मैं आपसे विनयपूर्वक प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरे पुत्रको कहीं शाप न दे देना। हे देवि! मेरे मातृभक्त पुत्रने अपनी माताके उद्धारके लिए ही आपके पुत्रका वध किया है। इसलिए आपको मेरे धर्मात्मा पुत्रको क्षमा करना चाहिए। यदि आपको दण्ड दिए बिना सन्तोष न हो तो जो भी दण्ड देना हो मैं उपस्थित हूँ। हे मात:! आप भी माता हैं और मैं भी माता हूँ। यह निश्चित है कि माताके हृदयकी व्यथाको माता ही जान सकती है। आपके पुत्रने अधर्मका साथ दिया और मेरे पुत्रने धर्मकी रक्षाके लिए कार्य किया है। हे मात:! आप दोनोंका अन्तर समझकर फिर कुछ निर्णय करें।

श्रीसीताजीके मुखसे 'माता' शब्द सुनकर मन्दोदरीकी समस्त व्यथा निवृत्त हो गयी। उसका क्रोध शान्त हो गया। उसने श्रीसीताजीको उठाकर हृदयसे लगा लिया और कहा—हे पुत्रि! हे सीते! हे मैथिलि! आज तुम्हारे मुखसे 'माता' शब्द सुनकर मुझे सब कुछ मिल गया। मेघनाद वधके उपरान्त मुझे तुम्हारी तरह परब्रह्ममहिषी पुत्री प्राप्त हो गयी। मेरा जीवन सफल हो गया। अब मुझे कोई क्लेश नहीं है, न मुझे पुत्रवधका शोक है ओर न पतिके वधकी चिन्ता।

हे पुत्रि! मैं आज रोम रोमसे आशीर्वाद देती हूँ कि तुम्हारा अखण्ड सौभाग्य बना रहे, तुम्हारे प्राणेश्वर रघुनन्दन श्रीराम युद्धमें विजयी हों। इस परिवर्तित भावनाने सबके हृदयको विभोर कर दिया। समस्त वातावरण करुण हो गया। माता और पुत्रीके अद्‌भुत मिलनसे आज यह रावणकी अशोकवाटिका भी धन्य धन्य हो गयी।

दूसरे दिन रावणने अपने योद्धाओंसे कहा कि युद्धमें शत्रुका सामना करनेमें जिसका मन डाँवाडोल हो, वह अभी भाग जाय। युद्धसे विमुख होनेमें कल्याण नहीं है। मैंने अपनी भुजाओंके बलपर शत्रुता की है, अत: जो शत्रु सामने आ गया है उसको मैं समझ लूँगा।

सुभट बोलाइ दसानन बोला।
रन सन्मुख जा कर मन डोला॥
सो अबहीं बरु जाउ पराई।
संजुग बिमुख भएँ न भलाई॥
निज भुज बल मैं बयरु बढ़ावा।
देहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा॥

रावणने रणयात्रा आरम्भ कर दी। जुझाऊ बाजे बजने लगे। अनेकों अपशकुन भी होने लगे। रावणने कहा—हे वीरों! तुम लोग रीछ वानरोंके ठट्टको मसल डालो और मैं दोनों राजकुमार भाइयोंको मारूँगा। ऐसा कहकर उसने अपनी सेना सामने चला दी।

कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा।
मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा॥

हौं मारिहउँ भूप द्वौ भाई।
अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई॥

वानर भालु भी सुनकर श्रीरामजीकी जय जयकार करके दौड़े। दोनों ओरके योद्धा जय जयकार करके अपनी अपनी समानताका वीर चयन करके भिड़ गये। इधर श्रीरामजीका और उधर रावणका बखान कर रहे हैं।

दुहु दिसि जय जयकार करि निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रामहि उत रावनहि बखानि॥

रावणको रथपर सवार और अपने सरकारको रथरहित देखकर भक्तहृदय श्रीविभीषण अधीर हो गये।

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा।
देखि बिभीषन भयउ अधीरा॥

अज्ञानके द्वारा तो सन्देह होता ही है कभी कभी प्रेमातिशयके कारण भी सन्देह हो जाता है, जैसे श्रीविश्वामित्र, श्रीदशरथ, श्रीकौसल्या और श्रीसीताजी आदिको हो गया। श्रीविभीषणजी श्रीरामजीके महत्त्वको भलीभाँति जानते हैं। रावणको उपदेश भी करते थे।

तात राम नहिं नर भूपाला।
भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता।
ब्यापक अजित अनादि अनंता॥

(५। ३९)

परन्तु आज उनके सन्देहका कारण प्रेमाधिक्य है। अतिशय प्रेम होनेके कारण विभीषणके मनमें सन्देह हो गया और वह श्रीचरणोंमें प्रणाम करके स्नेहपूर्वक बोले—हे स्वामिन्! न तो रथ है और न शरीरकी रक्षा करनेवाला कवच ही है। तथा पदरक्षक भी नहीं है तब बलवान् वीर रावणको किस प्रकार जीतियेगा?

अधिक प्रीति मन भा संदेहा।
बंदि चरन कह सहित सनेहा॥
नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना।
केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥

श्रीविभीषणकी स्नेहपूर्ण वाणी सुनकर श्रीरामजीने कहा—हे मित्र! जिस रथसे विजय होती है वह रथ दूसरा ही है। उस रथके शौर्य और धैर्य चक्के हैं। जिस प्रकार चक्कोंके बिना रथ नहीं चलता उसी प्रकार शौर्य और धैर्यके बिना धर्मरथ नहीं चलता है। युद्धमें निर्भयताके साथ प्रवेश करनेके सामर्थ्यका नाम 'शौर्य' है। आरम्भ किये हुए कर्ममें विघ्न उपस्थित होनेपर भी उसे पूर्ण करनेके सामर्थ्यका नाम 'धैर्य' है।

शौर्यं युद्धे निर्भयप्रवेशसामर्थ्यम्। धृतिः आरब्धे कर्मणि विघ्नोपनिपातेऽपि तत्समापन सामर्थ्यम्। (श्रीरामानुजभाष्य)

इस रथके सत्य और शील सुदृढ़ ध्वजा और पताका हैं। ध्वजासे रथ लक्षित होता है और पताकासे समस्त विजय। सत्य सब धर्मोंमें श्रेष्ठ है, इससे बड़ा दूसरा धर्म नहीं है। शीलसे सत्यकी प्रतिष्ठा बढ़ती है।

सुनहु सखा कह कृपानिधाना।
जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥

भगवान्का आश्रय सबसे महान् बल है, भगवत् स्वरूपका ज्ञान ही विवेक है, इन्द्रियोंका जीतना ही दम है और मन वचन कर्मसे किसीको दुःख न पहुँचाना तथा सबका हित सम्पादन करना ही परोपकार है। ये ही धर्मरथके चार घोड़े

हैं। बल और विवेक आगेके घोड़े हैं। ये क्षमारूपी रज्जुसे जुड़े हैं। निर्बल या अविवेकी क्षमा नहीं कर सकता है। जहाँ क्षमा है वहाँ बल और विवेक अवश्य है। इसी प्रकार जहाँ कृपा नहीं है वहाँ दम और परहित नहीं होते हैं। क्षमा और कृपाको जोड़नेवाली रज्जु समता है।

बल बिबेक दम परहित घोरे।
छमा कृपा समता रजु जोरे॥

रथमें सारथीका और धर्मरथमें रामभजनका अतिशय महत्त्व है। यहाँ 'ईश' शब्दसे किसी देव विशेषका ग्रहण नहीं है। ढालके द्वारा शत्रुका प्रहार रोककर उसके अस्त्रोंको व्यर्थ कर दिया जाता है। इसी प्रकार वैराग्यके द्वारा काम आदिके आक्रमणसे व्यक्ति सुरक्षित रहता है, एतावता वैराग्यको ढाल कहा गया है। सन्तोषसे काम क्रोध लोभ तीनोंका निवारण सम्भव है उसी प्रकार कृपाणके द्वारा दाहिने, बायें और सामनेके शत्रुओंका नाश होता है।

ईस भजनु सारथी सुजाना।
बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा।
बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥

दानको परशु कहा है; क्योंकि दानसे समस्त दुःख कट जाते हैं, शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। शक्तिकी अनी जितनी तीखी हो उतनी ही प्रशस्त मानी जाती है इसी प्रकार बुद्धि भी तीव्र होनी चाहिये। श्रेष्ठ विज्ञान वह है जो अनुभवजन्य हो। अनुभवमें जिस ज्ञानका साक्षात्कार होता है वह विज्ञान है। आशय यह है कि जिस प्रकार शत्रुके विजयके लिये श्रेष्ठ धनुष आवश्यक है उसी प्रकार संसारके विजयके लिये विज्ञान आवश्यक है।

अमल अचल मन त्रोन समाना।
सम जम नियम सिलीमुख नाना॥

विषयोंमें आसक्ति ही मनका मल है, विषयोंमें जिनका चित्त नहीं लगा है उनको निर्मल मन कहते हैं।

विषयेष्वेव संरागो मनसो मल उच्यते।
तेष्वेव हतसङ्गस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम्॥

समल मनवाला शत्रुपर विजय नहीं प्राप्त कर सकता है। समस्त विषयोंसे मनको हटाकर ठाकुरजीके चरणोंमें लगा देना ही मनकी अचलता है। निर्मल होनेपर मन अचल होता है एतावता पहले अमल कहकर फिर अचल कहा है। शिलापर रगड़ करके बाणोंके मुखको तीक्ष्ण किया जाता है इसीलिये बाणोंको शिलीमुख कहते हैं। शम, यम और नियम अनेक हैं इसी प्रकार बाण भी अनेक होते हैं। शम, यम और नियमका आधार निर्मल मन है उसी प्रकार बाणका आधार तरकश है। जिस प्रकार बाणके बिना धनुष और धनुषके बिना बाण व्यर्थ है उसी प्रकार शमादिके बिना विज्ञान और विज्ञानके बिना शमादि निरर्थक हैं।

कवच अभेद बिप्र गुर पूजा।
एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥

ब्राह्मण और गुरुकी पूजा अभेद्य कवच है। इसके समान विजयका दूसरा उपाय नहीं है। विप्र और गुरुपूजनरूपी कवच कोई नहीं काट सकता है। विप्र अैर गुरुपूजा दो कवच हैं। एक लोहमय और एक वस्त्रमय। नङ्गे शरीरपर कवच नहीं धारण किया जाता है। उसके नीचे एक कोमल और मजबूत वस्त्र पहना जाता है। श्रीरामजी कहते हैं—हे सखे! ऐसा धर्ममयरथ जिसके पास हो, उसको जीतनेके लिये कोई शत्रु नहीं है। वह

महान् दुर्जय संसारशत्रुको पराभूत कर सकता है।

सखा धर्ममय अस रथ जाकें।
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥
महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥

श्रीरामचन्द्रजीसे धर्मरथका वर्णन सुन करके प्रसन्न होकर श्रीविभीषणने उनके श्रीचरणकमलोंको पकड़ लिया—कृतज्ञता व्यक्त की और कहा—हे कृपासुखपुञ्ज! आपने इसी व्याजसे मुझे धर्म तत्त्वका उपदेश किया।

सुनि प्रभु बचन बिभीषन हरषि गहे पद कंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज॥

अब आइये पुनः रावणके युद्धका दृश्य देखें। उधरसे रावण ललकारता था और इधरसे श्रीअङ्गद और श्रीहनुमान्‌जी ललकारते थे। निशिचर और रीछ वानर अपने अपने स्वामीकी दोहाई करके युद्ध कर रहे हैं।

उत पचार दसकंधर इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालु कपि करि निज निज प्रभु आन॥

श्रीशङ्करजी कहते हैं—हे उमा! ब्रह्मादि समस्त देवता, अनेक सिद्ध और मुनि विमानोंपर चढ़कर आकाशसे युद्ध देख रहे हैं। मैं भी उनके साथ अपने स्वामीकी रणरङ्गलीलाका दर्शन कर रहा था।

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना।
देखत रन नभ चढ़े बिमाना॥
हमहू उमा रहे तेहिं संगा।
देखत राम चरित रन रंगा॥

राक्षसों और वानरोंका भयङ्कर युद्ध हुआ। रावण भी युद्ध कर रहा है। रावणकी मारको वानर और भालु नहीं सह सके। त्राहि त्राहि करके भाग चले। वे कहते हैं—हे प्रभो! हमारी रक्षा करो। हे रघुवीर गोसाईं! यह दुष्ट कालकी भाँति हमारा भक्षण कर रहा है।

पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं।
यह खल खाइ काल की नाईं॥

यह आर्त्तवाणी सुनकर श्रीलक्ष्मणजी कमरमें तरकश कस करके, हाथमें धनुष लेकरके श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रणाम करके, क्रुद्ध होकर रावणसे युद्ध करनेके लिये चले।

निज दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ नाइ राम पद नाथ॥

श्रीलक्ष्मणजीने रावणके पास जाकर कहा—अरे दुष्ट! वानर भालुओंको क्यों मारता है? मुझे देख मैं तेरा काल हूँ।

रे खल का मारसि कपि भालू।
मोहि बिलोकु तोर मैं कालू॥

रावणने वीरतासे परिपूर्ण दुःखमिश्रित वाणीमें कहा—हे मेरे पुत्रके हत्यारे! मैं तुम्हें ही खोज रहा था, आज तुम्हें मारकर अपनी छाती शीतल करूँगा।

खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती।
आजु निपाति जुड़ावउँ छाती॥

रावण और श्रीलक्ष्मणका भयङ्कर समर हुआ। रावणके अस्त्रोंको श्रीलक्ष्मणने तिलके बराबर करके काटकर फेंक दिया, फिर श्रीलक्ष्मणने युद्ध करके उसको धराशायी कर दिया। फिर मूर्च्छा समाप्त होनेपर रावणने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग कर दिया। वह ब्रह्मप्रदत्त प्रचण्ड शक्ति श्रीलक्ष्मणके हृदयमें लगी। वीर लक्ष्मण व्याकुल होकर गिर पड़े। तब रावण उन्हें उठाने लगा; परन्तु उसके अतुलित बलकी महिमा व्यर्थ हो गयी। श्रीगोस्वामीजी

कहते हैं—जिनके एक ही मस्तकपर ब्रह्माण्डरूपी भवन रजकणकी भाँति विराजता है, उन्हें मूर्ख रावण उठाना चाहता है। उसे त्रैलोक्यके स्वामी श्रीलक्ष्मणके स्वरूपका ज्ञान नहीं है।

सो ब्रह्म दत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही।
पर्‌यो बीर बिकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही॥
ब्रह्मांड भवन बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुअन धनी॥

रावणका श्रीलक्ष्मणको उठानेका असफल प्रयास देखकर भावुक हृदय श्रीवाल्मीकिजी अपनी टिप्पणी लिख रहे हैं—जिस रावणमें देवताओंके सहित हिमाचल, मन्दराचल, कनकाचल किंवा त्रैलोक्यको उठानेकी शक्ति थी वह श्रीलक्ष्मणको नहीं उठा सका।

हिमवान् मन्दरो मेरुस्त्रैलोक्यं वा सहामरैः।
शक्यं भुजाभ्यामुद्धर्तुं न शक्यो भरतानुजः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ५९। १११)

श्रीहनुमान्‌जीने दूरसे देखा कि श्रीलक्ष्मण धराशायी हैं और राक्षस रावण उन्हें उठानेका प्रयास कर रहा है। यह देखते ही वे बड़े वेगसे दौड़े। श्रीहनुमान्‌के आते ही रावणने उनपर अत्यन्त भयङ्कर मुष्टि प्रहार किया।

देखि पवनसुत धायउ बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर॥

रावण ऐसे बलवान्‌का मुष्टि प्रहार श्रीहनुमान्‌जीने सहन कर लिया। वे घुटने टेककर रह गये, भूमिपर नहीं गिरे। फिर क्रोधसे भरे हुये श्रीहनुमान् सँभलकर उठे और रावणको एक घूँसा मारा। वह ऐसा गिर पड़ा जैसे वज्रके प्रहारसे पर्वत गिर जाय। रावणने श्रीहनुमान्‌जीको अचानक मारा था, मर्मस्थलमें मारा था; परन्तु श्रीहनुमान्‌जीने उसके विपरीत मारा तब भी रावण मूर्च्छित हो गया।

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा।
उठा सँभारि बहुत रिस भरा॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा।
परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥

रावणकी मूर्च्छा भङ्ग होनेपर वह जगकर श्रीहनुमान्‌जीके महान् बलकी प्रशंसा करने लगा—धन्य है हनुमान्! धन्य है तुम्हारा पराक्रम! धन्य है तुम्हारा साहस! उसकी प्रशंसा सुनकर श्रीहनुमान्‌जीने कहा—मेरे पौरुषको धिक्कार है, धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है, जो हे सुरद्रोही! तू अब भी जीता बच गया।

मुरुछा गै बहोरि सो जागा।
कपि बल बिपुल सराहन लागा॥
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही।
जौं तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही॥

इतना कहकर श्रीलक्ष्मणजीको उठाकर श्रीहनुमान्‌जी श्रीरामजीके पास ले आये। उनका यह असीम पराक्रम देखकर रावणको आश्चर्य हुआ।

अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो।
देखि दसानन बिसमय पायो॥

महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं—श्रीहनुमान्‌जीका हृदय बहुत सुन्दर था, भगवान्‌के सर्वथा अनुकूल था। हृदयका आनुकूल्य ही उठानेके लिये पर्याप्त है, भक्ति तो अधिक हो गयी। श्रीलक्ष्मण शत्रुओंके लिये अप्रकम्प्य थे—उनसे हिलाये डुलाये भी नहीं जा सके, परन्तु अकेले श्रीहनुमान्‌जीके लिये हलके हो गये। भाव यह है कि वे शत्रुओंके लिये दुष्प्राप्य हैं और मित्रोंके लिये सुप्राप्य हैं।

आनयद् राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्य तम्॥

वायुसूनोः सुहृत्त्वेन भक्त्या परमया च सः।
शत्रूणामप्यकम्प्योऽपि लघुत्वमगमत् कपेः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ५९। ११८-११९)

श्रीरामचन्द्रजीने श्रीलक्ष्मणको मूर्च्छित देखकर कहा—हे भ्रातः! हृदयमें समझो, तुम कालके भी भक्षक और देवताओंके रक्षक हो। प्रभुके वचन सुनते ही श्रीलक्ष्मण तत्काल उठ बैठे।

कह रघुबीर समुझु जियँ भ्राता।
तुम्ह कृतांत भच्छक सुर त्राता॥
सुनत बचन उठि बैठ कृपाला।
गई गगन सो सकति कराला॥

श्रीरामचन्द्रजीका उद्‌बोधन वचन सुनकर श्रीलक्ष्मण उठकर धनुष बाण लेकर सद्यः युद्ध करनेके लिये दौड़े। समराङ्गणमें आकर रावणसे लोमहर्षक युद्ध करके उसको मूर्च्छित कर दिया। रावणको सारथि दूसरे रथपर डालकर लङ्का ले गया। रावण दूसरे दिन यज्ञ करने लगा। श्रीविभीषणसे समाचार प्राप्त करके श्रीरामचन्द्रजीने श्रीहनुमान् और अङ्गद आदि वीरोंको यज्ञ विध्वंस करनेके लिये भेजा। वानर वीरोंने जब उसको यज्ञ करते देखा तो उन्हें बहुत क्रोध हुआ। श्रीअङ्गदने कहा—अरे निर्लज्ज! समराङ्गणसे भागकर घर आ गया और यहाँ आकर बगुलेकासा ध्यान लगाकर बैठा है? ऐसा कहकर उसे एक लात मारा; परन्तु उसने दृष्टिपात भी नहीं किया।

रन ते निलज भाजि गृह आवा।
इहाँ आइ बक ध्यान लगावा॥
अस कहि अंगद मारा लाता।
चितव न सठ स्वारथ मन राता॥

जब रावणने नहीं देखा तब वानर क्रुद्ध होकर उसे दाँतोंसे काटकर लातोंसे मारने लगे। उसकी स्त्रियोंको बाल पकड़कर घरसे बाहर घसीट ले आये, वे अत्यन्त दीन होकर चिल्लाने लगीं। तब रावण यज्ञ छोड़कर उठ खड़ा हुआ और वानरोंको चरन पकड़कर पटकने लगा। इस प्रकार वानरोंने यज्ञ विध्वंस कर दिया। रावण यज्ञको विध्वंस हुआ देखकर मनमें निराश हो गया।

नहिं चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारहीं।
धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारहीं॥
तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मन महुँ हारई॥

रावणके यज्ञका विध्वंस हो गया। वह जीनेकी आशा छोड़कर क्रुद्ध होकर रणभूमिमें आया। इधर श्रीरामजीके पास आकर देवताओंने स्तुति की—हे प्रभो! इसने हमको कठिन दुःख दिया है। एतावता अब आप इसे शीघ्र मारिये। श्रीसीताजी अतिशय दुःखी हैं। देवताओंके वचन सुनकर प्रभु मुसकराए। श्रीरामने उठकर अपने बाणोंको सुधारा। श्रीरामजीके बाणोंकी अतिशय महिमा है। शास्त्रोंमें अनेक प्रकारसे बाणोंकी महिमा कही गयी है।

तूनमधि एकै दश होत कर धारत ही
करत संधान शतरूप प्रगटावै हैं।
साजत सरासनपै रचत सहस्त्र गात
गमन समै में ह्वै सुलक्ष वपु जावै हैं॥
लागत करोरि त्यों बहोरि अर्व खर्व होवै
अमित उदण्ड खलझुंडन नसावै हैं।
रसिकबिहारी राम सायक प्रताप भारी
दुष्ट दल मारी सो निषंग फिरि आवै हैं॥
भारी भूधरेश तें दिनेश हूते तापकारी
शेष तें विषारी वेग पवन ते महान हैं।

रसिकविहारी तेजधारी जे हुताशन ते
प्राण तन हारी मृत्यु फाँसते निदान हैं॥
चण्ड जमदंड ते उदंड ब्रह्मदंड हूते
वज्रते कठोर घोर जोर बेप्रमान हैं।
अमित हथ्यार नव खंड में अखंड पै न
ऐसे कहुँ जैसे बरिबंड राम बान हैं॥

श्रीरामजी मस्तकपर जटाओंके जूड़ेको कसकर बाँधे हुए हैं। जटाओंके बीच बीचमें पुष्प सुशोभित हो रहे हैं। उनके नेत्र लाल हैं, शरीर मेघके समान लोचनाभिराम श्याम है। प्रभुने कमरमें तरकस कस लिया है, हाथमें कठोर शार्ङ्ग धनुष ले लिया है। उनके भुजदण्ड पुष्ट हैं और कमनीय विशाल वक्षस्थलपर ब्राह्मणके चरण चिह्न सुशोभित हैं। श्रीसरकार ज्यों ही धनुष बाण हाथमें लेकर फेरने लगे त्यों ही ब्रह्माण्ड, दिग्गज, कच्छप, शेष, पृथ्वी, समुद्र और पर्वत सभी डगमगा गये। श्रीरामजीके इस वीर वेषकी शोभा देखकर प्रसन्न होकर देवता पुष्पवर्षण करने लगे और शोभा, शक्ति और गुणोंके धाम करुनानिधान श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो, जय हो, जय हो इस प्रकार जयघोष करने लगे।

देवताओंने सरकारको बिना रथके युद्ध करते देखा तो उनके हृदयमें विशेष क्षोभ हुआ।

देवन्ह प्रभुहि पयादें देखा।
उपजा उर अति छोभ बिसेषा॥

इन्द्रने तत्काल मातलिनामक सारथिके साथ अपना रथ भेजा। उस दिव्य अनुपम और तेजोमय रथपर कोसलेन्द्र रघुनन्दन हर्षित होकर चढ़े।

तेज पुंज रथ दिब्य अनूपा।
हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा॥

रथारूढ़ श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करके वानरवीर विशेष बल पाकर दौड़े।

रथारूढ़ रघुनाथहि देखी।
धाए कपि बलु पाइ बिसेषी॥

श्रीरामजीने जलद गम्भीर वाणीमें कहा—हे वीरों! तुम सब बहुत थक गये हो, एतावता अब द्वन्द्व युद्ध देखो।

बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गँभीर।
द्वंदजुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर॥

इस प्रसङ्गमें श्रीराम और रावणका पारस्परिक संवाद श्रवण करके मनन करने योग्य है। इस संवादसे श्रीराम रावणका पार्थक्य ज्ञात होता है। साधु स्वभाव और दुष्ट स्वभावका परिज्ञान होता है। उच्छृंखलता और गम्भीरताका अन्तर ज्ञात होता है।

रथारूढ़ श्रीरामजी ब्राह्मणोंके चरणकमलोंमें सिर नवाकर प्रस्थान किये।

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा।
बिप्र चरन पंकज सिरु नावा॥

रथारूढ़ श्रीरामजीको देखकर रावणके हृदयमें क्रोध समुत्पन्न हो गया और वह गर्ज तर्जकर दौड़ते हुए सामने आकर दुष्ट वचन कहने लगा—अरे तपस्वी! सुनो, मैं उन योद्धाओंके समान नहीं हूँ जिनको तुमने समरमें जीता है। मेरा नाम रावण है। समग्र संसारमें मेरा यश विख्यात है।

रावन नाम जगत जस जाना।
लोकप जाकें बंदीखाना॥

खर, दूषण, विराध, बालि, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदिके वधका आज मैं सारा बैर निकाल लूँगा, यदि तुम समराङ्गणसे नहीं भाग गये। आज मैं तुम्हें निश्चय ही मौतके हवाले कर दूँगा। तुम कठोर रावणके पाले पड़े हो।

आजु करउँ खलु काल हवाले।
परेहु कठिन रावन के पाले॥

रावणके दुर्वचनोंको सुनकर और उसे कालवश जानकर कृपासागर श्रीरामजी हँसकर बोले—हे रावण! तुम्हारी सारी प्रभुता जैसा तुम कहते हो, सत्य है, परन्तु अब मिथ्या विकत्थन मत करो, अपना पुरुषार्थ दिखलाओ। हे रावण! मिथ्या बकवाद करनेसे सुन्दर कीर्तिका विनाश हो जाता है। क्षमा करना, मैं तुम्हें नीति सुनाता हूँ। संसारमें तीन प्रकारके पुरुष होते हैं—गुलाब, आम और कटहलके समान। एक फूल देते हैं, एक फूल और फल दोनों देते हैं और एकमें केवल फल ही लगते हैं। इस प्रकार पुरुषोंमें एक कहते हैं करते नहीं, दूसरे कहते और करते भी हैं और तीसरे केवल करते हैं मुखसे कहते नहीं हैं।

सुनि दुर्बचन कालबस जाना।
बिहँसि बचन कह कृपानिधाना॥
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई।
जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई॥
जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥
राम बचन सुनि बिहँसा मोहि सिखावत ग्यान।
बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान॥

श्रीराम रावणका युद्ध प्रारम्भ हो गया। रावणके बाण प्रायः निष्फल हो रहे हैं जैसे दुष्टके मनोरथ।

निफल होहिं रावन सर कैसें।
खल के सकल मनोरथ जैसें॥

तब रावनने रामजीके सारथिको सौ बाण मारे। सारथि 'जय राम' पुकारकर भूमिपर गिर पड़ा। 'जय राम' का भाव कि मेरे रामकी जय हो अथवा मेरे रामकी जयके लिये मेरे तुच्छ प्राणका कोई महत्त्व नहीं है। श्रीरामजीने रथसे उतरकर कृपापूर्वक सारथिको उठाया। तब श्रीरामको अत्यन्त क्रोध हुआ। धन्य हो रघुनन्दन! रावणकी गाली सुननेपर आपको क्रोध नहीं आया, उसका दुर्वचन सुनकर सरकार मुसकराते रहे और सारथिके बाणोंसे आहत होनेपर आपको क्रोध ही नहीं, परम क्रोध हुआ।

तब सत बान सारथी मारेसि।
परेउ भूमि जय राम पुकारेसि॥
राम कृपा करि सूत उठावा।
तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा॥

इसके पश्चात् श्रीराम रावणका बड़ा भयङ्कर संग्राम हुआ। श्रीरामजी उसके मस्तकको उच्छिन्न करते हैं; परन्तु उसके मस्तक पुनः नवीन उत्पन्न हो जाते हैं। सारे आकाशमें उसके सिर और उसकी भुजाएँ छा गयीं।

जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होहिं अपार।
सेवत बिषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार॥

रावणने सब अनर्थोंका मूल विभीषणको मानकर उनके वधके लिये प्रचण्ड शक्तिका प्रहार किया; परन्तु श्रीरामजीने विभीषणको हठात् पीछे करके स्वयं उस शक्तिको सह लिया।

पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छाँड़ी सक्ति प्रचंड।
चली बिभीषन सन्मुख मनहुँ काल कर दंड॥
आवत देखि सक्ति अति घोरा।
प्रनतारति भंजन पन मोरा॥
तुरत बिभीषन पाछें मेला।
सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला॥

श्रीविभीषण श्रीरामजीको श्रमित देखकर

क्रुद्ध होकर गदा लेकर दौड़े। श्रीविभीषणने कहा—अरे मूर्ख! अरे नीच! अरे मन्दभाग्य! अरे दुर्बुद्धे! तूने देवता, मनुष्य, मुनि, नाग सभीसे शत्रुता की। तूने आदरपूर्वक शिवजीको अपने मस्तक काटकर चढ़ाये। इसीसे एक एकके बदलेमें अनेकों सिर पाये। इसीलिये अब तक तू बच रहा है; परन्तु अब तेरा काल तेरे सिरपर मँडरा रहा है। श्रीविभीषणने यह कहते हुए उसकी छातीमें कठोर गदाका प्रहार किया जिससे वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके दसों मुखोंसे रक्त बहने लगा। रावण अपनेको सँभालकर क्रुद्ध होकर दौड़ा। दोनों अत्यन्त बलवान् योद्धा मल्ल युद्ध करने लगे। श्रीरघुवीरके बलसे गर्वित विभीषण उसको घलुआ—पासंगके बराबर भी नहीं समझते। भगवान् शङ्कर कहते हैं—हे उमा! विभीषण क्या रावणके सामने आँख उठाकर देख सकता था? परन्तु अब वही कालके समान लड़ रहा है यह श्रीरामजीकी महिमा है।

द्वौ भिरे अतिबल मल्लजुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै।
रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहिं ता कहुँ गनै॥
उमा बिभीषनु रावनहि सन्मुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यों श्रीरघुबीर प्रभाउ॥

विभीषणको श्रमित देखकर गिरिधारी—श्रीहनुमान् पर्वत लेकर दौड़े। श्रीहनुमान् रावणका स्थल युद्ध हुआ और नभ युद्ध हुआ।

लरत अकास जुगल सम जोधा।
एकहि एकु हनत करि क्रोधा॥

उसके बाद वानर भालुओंका और रावणका भयानक युद्ध हुआ। वानर भालू रावणकी मायासे घबड़ाकर भगे। तब श्रीरामजीने भुजा उठाकर सब वानरोंको लौटाया। तत्पश्चात् अङ्गद और रावणका नभ युद्ध और स्थल युद्ध हुआ। नल और नील रावणके सिरोंपर चढ़कर अपने नखोंसे उसके ललाटको फाड़ने लगे। उसी समय सायंकालका बल पाकर रावणने भी श्रीहनुमान् आदि सभी वानरोंको मूर्च्छित कर दिया।

हनुमदादि मुरुछित करि बंदर।
पाइ प्रदोष हरष दसकंधर॥

श्रीजाम्बवान्जीने अपने दलका विध्वंस देखकर क्रुद्ध होकर एक लात उसके वक्षस्थलमें मारा। उस पाद प्रहारसे रावण विकल होकर रथसे भूमिपर गिर पड़ा। उसे मूर्च्छित देखकर ऋक्षराज श्रीरामजीके पास चले गये। रावणका सारथि उसे रथमें डालकर लङ्का ले आया।

उसी रात्रिमें त्रिजटाने श्रीसीताजीको युद्धका समाचार सुनाया। श्रीसीताने अत्यन्त दुःखी होकर कहा—हे मातः! अब क्या होगा? यह संसारको दुःख देनेवाला किस प्रकार मरेगा? वीर श्रेष्ठ श्रीरामजीके बाणोंसे मस्तक और भुजाओंके कटनेपर भी नहीं मरता है। इससे ज्ञात होता है कि विधाता हमारे प्रतिकूल है। मेरा वह दुर्भाग्य उसको जीवित रख रहा है, जिस अभाग्यके करण मैं हरिपद कमलसे वियुक्त हुई हूँ। जिस दैवने झूठा कनकमृग बनाया, जिस दैवने मेरे द्वारा लक्ष्मणको कटु वचन कहलाया, जिस दैवने मुझे दुसह दुःख सहाये वह मुझपर आज भी रूठा है।

मोर अभाग्य जिआवत ओही।
जेहिं हौं हरि पद कमल बिछोही॥
जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठा।
अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा॥
जेहिं बिधि मोहि दुख दुसह सहाए।
लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए॥

इस प्रकार अनेक प्रकारसे श्रीसीताजीको विलाप करते हुए सुनकर त्रिजटाने बहुत प्रकारसे समझाया। त्रिजटाने कहा—हे राजकुमारी! सुनो, हृदयमें बाण लगते ही रावण मर जायेगा; परन्तु प्रभु उसके हृदयमें बाण इसलिए नहीं मारते हैं कि इसके हृदयमें श्रीजानकीका निवास है। श्रीजानकीके हृदयमें मेरा निवास है और मेरे उदरमें अनेकों भुवन हैं। एतावता रावणके हृदयमें बाण लगते ही समस्त भुवनोंका नाश हो जायेगा। यह सुनकर श्रीसीताजीके मनमें अत्यन्त हर्ष और विषाद हुआ। यह देखकर त्रिजटाने फिर कहा—हे सुन्दरि! महान् संशयका परित्याग कर दें। मस्तकके बार बार काटे जानेसे जब रावण व्याकुल हो जायेगा और तुम्हारा ध्यान टूट जायेगा तब श्रीरामजी उसके हृदयमें बाण मारकर उसका वध कर देंगे।

काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान।
तब रावनहि हृदय महुँ मरिहहिं रामु सुजान॥

इसी भावको अन्यत्र सुनें।

यो रामो न जघान वक्षसि रणे तं रावणं सायकैः
स श्रेयो विदधातु वस्त्रिभुवनव्यापारचिन्तापरः।
हृद्यस्य प्रतिवासरं वसति सा तस्यास्त्वहं राघवो,
मय्यास्ते भुवनावली विलसिता द्वीपैः समं सप्तभिः॥

(श्रीहनुमन्नाटक १४। २६)

इधर अर्धरात्रिमें रावण जगकर अपने सारथिपर क्रुद्ध होकर कहने लगा—अरे मूर्ख! तूने मुझे रणभूमिसे अलग कर दिया। अरे अधम! अरे मन्दमति! तुझे धिक्कार है।

इहाँ अर्धनिसि रावनु जागा।
निज सारथि सन खीझन लागा॥
सठ रनभूमि छड़ाइसि मोही।
धिग धिग अधम मंदमति तोही॥

सारथिने चरण पकड़कर बहुत प्रकारसे समझाया। सारथिके वाक्यसे रावण सन्तुष्ट हो गया और उसने कहा—हे सूत! अब तुम इस रथको शीघ्र रामके सामने ले चलो। रावणका रणभूमिमें आगमन सुनकर वीर वानर भालु पर्वत और वृक्ष उखाड़कर दाँत कटकटाकर दौड़े। रावणने अनेक प्रकारकी माया फैलायी। उसके मायामय युद्धको देखकर वानर भालु व्याकुल हो गये। रावणने बहुतसे हनुमान् प्रकट किये, जो पत्थर लेकर चारों ओरसे श्रीरामजीको घेर लिये। श्रीरामजीने अनेक बार उसके सिर और भुजाओंको काटा फिर भी वह वीर मरता नहीं है। काटते ही सिरोंका समूह बढ़ जाता है जैसे प्रत्येक लाभपर लोभ बढ़ जाता है।

काटत बढ़हिं सीस समुदाई।
जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥

शत्रु मरता नहीं है और परिश्रम बहुत हो गया तब कौतुकी श्रीरामजीने विभीषणकी ओर देखा। श्रीगोस्वामीजी अपनी टिप्पणी कर रहे हैं। श्रीशङ्करजी कहते हैं—हे उमा! जिसकी इच्छामात्रसे काल भी समाप्त हो जाता है वे ही प्रभु सेवककी प्रीतिका परीक्षण कर रहे हैं।

उमा काल मर जाकीं ईछा।
सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा॥

श्रीविभीषणने कहा—हे सर्वज्ञ! हे चराचरके स्वामी! हे प्रणतपाल! हे सुरमुनि सुखदायक! इसकी नाभिकुण्डमें अमृतका निवास है। हे नाथ! यह रावण उसीके बलपर जीवित है।

नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम्॥
तच्छोषयानलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत्।

(अध्यात्मरामायण ६। ११। ५३-५४)

श्रीविभीषणके वचनको सुनकर कृपालु श्रीरामने प्रसन्न होकर हाथमें विकराल बाण ले लिया।

सुनत बिभीषन बचन कृपाला।
हरषि गहे कर बान कराला॥

यह बाण सुग्रीव आदि वानर यूथपतियोंको परमानंद देनेवाला था तथा अत्याचारी राक्षसोंको भयङ्कर दुःख देनेवाला था। वह ऐतिहासिक एवं श्रेष्ठ बाण समस्त लोकों, इक्ष्वाकुवंशियोंके भयका विनाश करनेवाला था, शत्रुओंकी कीर्तिका अपहरण तथा स्वयं अपनी प्रसन्नताकी वृद्धि करनेवाला था। श्रीराघवेन्द्र उस परमोत्तम सायकका सन्धान करने लगे तब सम्पूर्ण प्राणी सन्त्रस्त हो गये—थर्रा उठे और धरा डगमगा गयी। उस समय नाना प्रकारके अपसकुन होने लगे। अनेक गर्दभ, जम्बुक और श्वान रोने लगे। संसारके अशुभको सूचित करनेके लिये पक्षी बोलने लगे। आकाशमें जहाँ तहाँ केतु प्रकट हो गये। दसों दिशाओंमें अत्यन्त दाह होने लगा, बिना ही पर्व सूर्यग्रहण होने लगा। मन्दोदरीका हृदय प्रकम्पित हो गया। मूर्तियाँ नेत्र मार्गसे जल बहाने लगीं। देवताओंको भयभीत जानकर कृपालु श्रीरघुनाथजी धनुषपर बाण सन्धान करने लगे। कानोंतक धनुष खींचकर श्रीरामजीने एकतीस बाण छोड़े, वे श्रीरामचन्द्रजीके बाण ऐसे चले मानों कालसर्प हों।

खैंचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस॥

एक बाणने नाभिके अमृतकुण्डको सोख लिया। दूसरे तीस बाण कोप करके उसके सिरों और भुजाओंमें लगे। बाण सिरों और भुजाओंको लेकर चले। सिरों और भुजाओंसे रहित रुण्ड भूमिपर नर्तन करने लगा। धड़ प्रचण्ड वेगसे दौड़ता है जिससे धरती धँसने लगी।

सायक एक नाभि सर सोषा।
अपर लगे भुज सिर करि रोषा॥
लै सिर बाहु चले नाराचा।
सिर भुज हीन रुंड महि नाचा॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा।
तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा॥

तब वीरेन्द्र मुकुटमणि श्रीरामचन्द्रजीने बाण मारकर उस धड़के दो टुकड़े कर दिये। मरते समय रावण बड़े घोर शब्दसे गरजकर बोला—राम कहाँ हैं? मैं ललकार उनको मारूँ।

गर्जेउ मरत घोर रव भारी।
कहाँ रामु रन हतौं पचारी॥

रावणके गिरते ही पृथ्वी हिल गयी। समुद्र, नदियाँ, दिग्गज और पर्वत क्षुब्ध हो उठे।

डोली भूमि गिरत दसकंधर।
छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर॥

श्रीरामजीके बाणोंने रावणकी भुजाओं और सिरोंको मन्दोदरीके सामने रख दिया और वहाँसे लौटकर श्रीरामजीके निषङ्गमें प्रविष्ट हो गये। रावणका तेज प्रभुके मुखमें समा गया। यह देखकर श्रीशङ्कर और ब्रह्मा प्रसन्न हो गये। समस्त ब्रह्माण्ड जय जय ध्वनिसे आपूरित हो गया। प्रबल भुजदण्डोंवाले श्रीरघुवीरकी जय हो। देवता और मुनियोंके समूह पुष्पवर्षण करने लगे और कहने लगे—कृपालुकी जय हो, मुकुन्दकी जय हो, जय हो।

जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा।
जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा॥
बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा।
जय कृपाल जय जयति मुकुंदा॥

इसके पश्चात् मन्दोदरी आदि रानियोंने विलाप किया है। मन्दोदरीका विलाप अत्यन्त उपदेशपूर्ण है। इसमें मन्दोदरीका भक्तस्वरूप सुप्रकाशित हुआ है। इस विलापमें मन्दोदरीका निष्पक्ष विचार प्रकट हुआ है। मन्दोदरीको श्रीठाकुरजीके परतत्त्वका भलीभाँति ज्ञान है। पूरे विलापमें श्रीरामजीके प्रति उसकी दोष दृष्टिकी किञ्चिन्मात्र भी झलक नहीं है। उसके विलापको सुनकर देवता, मुनि, सिद्ध सबने सुख माना है। श्रीगोस्वामीजीने अत्यन्त संक्षिप्त और महत्त्वपूर्ण वर्णन किया है।

जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुनामयं॥
आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥
अहह नाथ रघुनाथ सम कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति तोहि दीन्हि भगवान॥
मंदोदरी बचन सुनि काना।
सुर मुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना॥

भाईकी दशा देखकर श्रीविभीषणने दु:ख किया। प्रभुकी आज्ञासे श्रीलक्ष्मणने उन्हें बहुत प्रकारसे समझाया। फिर प्रभुकी आज्ञासे विभीषणने हृदयमें देश और कालका विचार करके विधिपूर्वक रावणकी सब क्रिया सम्पन्न की।

कीन्हि क्रिया प्रभु आयसु मानी।
बिधिवत देस काल जियँ जानी॥

श्रीरामचन्द्रजीने श्रीलक्ष्मणजीको बुलाकर कहा—तुम, वानरेन्द्र सुग्रीव, अङ्गद, नल, नील, जाम्बवान् और हनुमान् सब लोग विभीषणके साथ जाओ और उनका राज्याभिषेक कर दो। पिताके वचनोंके कारण मैं नगरमें नहीं आ सकता। प्रभुकी आज्ञा सुनकर सब लोगोंने जाकर राजतिलककी सारी व्यवस्था की। आदरके साथ श्रीविभीषणको सिंहासन पर बिठाकर राजतिलक किया और स्तुति की।

सादर सिंहासन बैठारी।
तिलक सारि अस्तुति अनुसारी॥

इसके अनन्तर श्रीरामजीने वानरोंको बुला लिया और प्रिय वचन कहकर सबको सुखी किया। प्रभुने कहा—हे मित्रों! तुम्हारे ही बलसे यह प्रबल शत्रु मारा गया और विभीषणने राज्य पाया। एतावता तुम्हारी कीर्ति तीनों लोकोंमें नित्य नयी बनी रहेगी। जो मेरे साथ तुम्हारी कीर्तिका सप्रेम गान करेंगे वे भवसमुद्रको अनायासेन पार कर जायँगे। प्रभुके मधुर वचनोंको सुनकर वानर समूह तृप्त नहीं होते हैं। वे बार बार प्रभुको साष्टाङ्ग प्रणाम निवेदन करते हैं।

किए सुखी कहि बानी सुधा सम बल तुम्हारें रिपु हयो।
पायो बिभीषन राज तिहुँ पुर जसु तुम्हारो नित नयो॥
मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं।
संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥
प्रभु के बचन श्रवन सुनि नहिं अघाहिं कपि पुंज।
बार बार सिर नावहिं गहहिं सकल पद कंज॥

तदनन्तर श्रीरामजीने हनुमान्‌जीसे कहा—तुम लङ्का जाओ, श्रीसीताजीको सब समाचार सुनाओ और उनका कुशल समाचार लेकर चले आवो। श्रीहनुमान्‌जीने जाकर श्रीसीताजीको प्रणाम करके सब समाचार सुनाया। श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे मात: ! कोसलेन्द्र रघुनन्दन सब प्रकारसे सकुशल हैं। उन्होंने युद्धमें रावणको जीत लिया है और विभीषणने अविचल राज्य प्राप्त कर लिया है। यह समाचार सुनकर श्रीसीताजीके मनमें अत्यन्त

हर्ष हुआ, शरीर पुलकित हो गया और नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छा गये। वे बार बार कहती हैं—हे पुत्र! मैं तुझे क्या दूँ? इस सन्देशके समान त्रैलोक्यमें कुछ भी नहीं है। श्रीहनुमान्‌जीने कहा—हे मातः! आज मैंने सारे संसारका राज्य पा लिया, जो मैं विजयी और निर्विकार सानुज श्रीरामका दर्शन कर रहा हूँ।

अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा॥
सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं।
रन जीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं॥

श्रीसीताजीने कहा—हे पुत्र! समस्त सद्‌गुण तुम्हारे हृदयमें निवास करें और हे हनुमन्! सानुज कोसलेन्द्र सदा तुम्हारे अनुकूल रहें। हे तात! अब तुम वही उपाय करो जिससे मैं इन नेत्रोंसे कोमल श्यामल श्रीविग्रहका दर्शन करूँ।

श्रीहनुमान्‌जीने सब समाचार एवं सन्देश श्रीरामजीको सुनाया। सुनकर प्रभुने श्रीविभीषणको एवं श्रीअङ्गदको बुलाकर कहा—आपलोग पवननन्दन हनुमान्‌के साथ जाकर आदरपूर्वक श्रीसीताजीको ले आओ। प्रभुकी आज्ञा सुनकर वे सब तत्काल श्रीसीताजीके पास गये। श्रीविभीषणजीने त्रिजटा, सरमा आदिको समझाकर श्रीसीताजीको बहुत प्रकारसे स्नान कराया, अनेक प्रकारके वस्त्राभूषण पहनाये। फिर वे एक सुन्दर सुसज्जित पालकी ले आये। श्रीसीताजी सुखधाम परमस्नेही अपने प्राणप्रियतम श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके प्रसन्नतापूर्वक पालकीपर चढ़ीं।

ता पर हरषि चढ़ी बैदेही।
सुमिरि राम सुखधाम सनेही॥

श्रीसीताजीका आगमन सुनकर असंख्यों वानरोंके समूह उनका दर्शन करनेके लिये दौड़े। हाथोंमें वेत लिये हुए रक्षक उनको रोकनेके लिये दौड़े। श्रीरामजीने कहा—हे विभीषण मेरी बात मानकर श्रीसीताको पैदल ले आओ जिससे ये बलिदानी वानर उनको माताकी भाँति देखें। श्रीरामजीके वचन सुनकर वानर भालु प्रसन्न हो गये। आकाशसे देवताओंने फूलोंकी वृष्टि की।

कह रघुबीर कहा मम मानहु।
सीतहि सखा पयादें आनहु॥
देखहुँ कपि जननी की नाईं।
बिहसि कहा रघुनाथ गोसाईं॥
सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे।
नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे॥

प्रभुने श्रीसीताजीको पहले अग्निमें रक्खा था। अब उन्हें प्रकट करना चाहते हैं एतावता श्रीरामने कुछ कड़े वचन कहे। भक्तकवि श्रीगोस्वामीजी केवल 'दुर्वाद' कहकर मौन हो गये। प्रसङ्गको समझनेके लिये मैं भी केवल एक श्लोक कहूँगा। श्रीरामजीने कहा—हे सीते! तुम्हारे चरित्रमें सन्देहका अवसर उपस्थित हो गया है, इसलिये जिस प्रकार नेत्रके रोगीको दीपककी शिखा नहीं सुहाती है, उसी प्रकार तुम मुझे अत्यन्त अप्रिय ज्ञात होती हो।

प्राप्तचारित्रसन्देहा मम प्रतिमुखे स्थिता।
दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढ़ा॥
(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ११५। १७)

भगवान् श्रीरामजीके शब्दोंसे अभिव्यक्त हो रहा है कि हे सीते! वास्तवमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। तुममें तो दोषकी कल्पना भी नहीं करनी चाहिये, यह उपमान ही ऐसा कह रहा है कि नेत्रके रोगीको दीपकका प्रकाश नहीं अच्छा

लगता है। तो दीपकके प्रकाशमें तो रोग नहीं है, रोग तो दर्शककी आखोंमें है। भाव कि श्रीरामजी जिस भी भावनासे कह रहे हों उस भावनाको हमारा प्रणाम है; परन्तु श्रीरामजीके मुखसे जो शब्द निकल रहे हैं वे श्रीसीताजीको निर्दोष सिद्ध कर रहे हैं। इसपर बुद्धिपूर्वक विचार करना चाहिये। श्रीरामजीने कहा—तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ चली जाओ। मैं अपनी ओरसे अनुमति देता हूँ। हे भद्रे! दशों दिशायें तुम्हारे लिये खुली हैं। अब तुमसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है।

तद् गच्छ त्वानुजानेऽद्य यथेष्टं जनकात्मजे।
एता दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ११५। १८)

श्रीसीताजी रो रहीं थीं, अश्रुधारा बह रही थी। उन्होंने सहसा श्रीलक्ष्मणपर दृष्टिपात किया, वे भी विषण्णवदन चिन्तानिमग्न नीचे नयन विराजमान थे। श्रीसीताने स्खलिताक्षरोंमें कहा—हे लक्ष्मण! यद्यपि मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है, तुमसे कुछ कहने योग्य नहीं हूँ; परन्तु मेरा मन कहता है कि अब भी तुम्हारा मातृभाव नष्ट नहीं हुआ है, तुम्हारी भक्तिमें कोई कमी नहीं देख रही हूँ। अपने आराध्य भगवान् श्रीरामके वचनोंको सुनकर तुम्हारे मनमें जो ऊहापोह है, आक्रोश है, तुम्हारे मुखमण्डलपर जो विषादकी छाया दीख रही है उससे यह ज्ञात हो रहा है कि मेरे प्रति तुम्हारा भक्तिभाव आज भी सरस है, तुम्हारी मातृनिष्ठामें कोई कमी नहीं है। हे लक्ष्मण! मेरे स्वामी मेरे गुणोंसे सन्तुष्ट नहीं हैं, इन्होंने भरी सभामें मुझसे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है—मेरा परित्याग कर दिया है। हे सुमित्रानन्दन! मिथ्यापवादसे लाञ्छित होकर मैं जीवन धारण नहीं कर सकती हूँ; अतः मैं उचित मार्गपर जानेके लिये पावकमें प्रवेश करूँगी। हे लक्ष्मण! मेरे लिये पवित्र अग्निके द्वारा चिताकी व्यवस्था कर दो। मेरे इस अचानक आये हुये दुःखकी एकमात्र यही औषधि है। श्रीसीताजीकी विरह, विवेक, धर्म, और नीतिसे सम्मिश्रित वाणी सुनकर श्रीलक्ष्मणके नेत्रोंमें आँसू उमड़ आये। वे बद्धाञ्जलि खड़े हैं। वे भी प्रभुसे कुछ कह नहीं सकते हैं।

प्रभु के बचन सीस धरि सीता।
बोली मन क्रम बचन पुनीता॥
लछिमन होहु धरम के नेगी।
पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी॥
सुनि लछिमन सीता कै बानी।
बिरह बिबेक धरम निति सानी॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ।
प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ॥

यह तो निश्चित है कि श्रीलक्ष्मणजीसे यह अपमान सहन नहीं हो रहा है; परन्तु वे विवश हैं। श्रीलक्ष्मण तो सदा श्रीरामके हाथोंमें परतन्त्र रहना चाहते हैं। श्रीरामजीके हार्दिक विचारको जाननेमें त्रैलोक्यमें कौन समर्थ हो सकता है? इस समय प्रभुके स्वभावको, उनकी वाणीको न श्रीसीता समझ पा रही हैं और न श्रीलक्ष्मण।

श्रीलक्ष्मणको ठाकुरजीने नेत्रोंकी भाषामें आज्ञा प्रदान की कि अग्नि तैयार कर दो। श्रीलक्ष्मणने तत्काल प्रभुकी आज्ञाका पालन कर दिया।

देखि राम रुख लछिमन धाए।
पावक प्रगटि काठ बहु लाए॥

श्रीसीताजीने प्रबल पावक देखकर श्रद्धापूर्वक श्रीरामजीकी परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया।

श्रीरामजी उस समय नीचे मुख करके खड़े थे। प्रभुने लज्जाके कारण मुख नीचा कर लिया है, किंवा प्रभु सोचते हैं कि श्रीसीताजीका मुख देख लूँगा तो '**प्रीतिर्नयनयोगतः**' न्यायके अनुसार सहज अनुकूलता अभिव्यक्त हो जायगी और लीलामें अवरोध उत्पन्न हो जायेगा। उस समय श्रीसीताजीके हृदयमें हर्ष हुआ उन्हें किञ्चिन्मात्र भी भय नहीं हुआ। उन्होंने कहा—यदि मन, वचन और कर्मसे मेरे मनमें अपने प्राणेश्वर श्रीरामके अतिरिक्त अन्य किसीका आश्रय नहीं है तो सबके मनकी गतिके ज्ञाता अग्निदेव चन्दनके समान शीतल हो जायँ।

पावक प्रबल देखि बैदेही।
हृदयँ हरष नहिं भय कछु तेही॥
जौं मन बच क्रम मम उर माहीं।
तजि रघुबीर आन गति नाहीं॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना।
मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना॥

श्रीसीताजी चन्दनके समान शीतल अग्निमें प्रविष्ट हो गयीं। प्रतिबिम्ब बिम्बमें मिल गया। लौकिक कलङ्क प्रचण्ड पावकमें जल गये। प्रभुके इस चरित्रको न कोई समझ पाया और न देख पाया। श्रीअग्निदेवने भगवती भास्वती करुणामयी जगज्जननी नित्यकिशोरी मिथिलेशराजकिशोरी श्रीसीताजीको रामजीको समर्पण कर दिया। श्रीसीताजी श्रीरामजीके वामाङ्गमें विराज गयीं। देवता, मुनि पुष्पवर्षण करने लगे। आकाशमें दुन्दुभि ध्वनि होने लगी। किन्नर गन्धर्व गाने लगे। अप्सरायें नृत्य करने लगीं। वानर भालु प्रसन्न हो गये और सुखसारसर्वस्व, स्नेहसारसर्वस्व, जीवनसारसर्वस्व, भक्तिसारसर्वस्व, सीता जीवनसारसर्वस्व श्रीरघुनन्दन रामचन्द्रजीकी जय जयकार करने लगे।

बरषहिं सुमन हरषि सुर बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किंनर सुरबधू नाचहिं चढ़ीं बिमान॥
जनकसुता समेत प्रभु सोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे जय रघुपति सुख सार॥

श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे इन्द्रके सारथि मातलि श्रीचरणोंमें प्रणाम करके चले गये। देवताओंने आकर स्तुति की। वे कहते हैं—हे प्रभो! देवताओंने जब जब दुःख पाया तब तब आपने मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन और परशुराम आदि अनेक शरीर धारण करके उनके दुःखका नाश करके उन्हें सुखी किया।

मीन कमठ सूकर नरहरी।
बामन परसुराम बपु धरी॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो।
नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने आकर बड़ी भावपूर्ण स्तुति की है। वे कहते हैं—हे प्रभो! आप सदा सुखके धाम हैं। भक्तोंके क्लेशोंको हरण करनेवाले हैं, रघुनायक हैं, धनुष और बाण धारण करनेवाले हैं, आपकी जय हो।

जय राम सदा सुखधाम हरे।
रघुनायक सायक चाप धरे॥

श्रीब्रह्माजी पुनः कहते हैं—हे विभो! ये सब वानर कृतकृत्य हैं, जो आदरपूर्वक आपके मङ्गलमय मुखारविन्दका दर्शन कर रहे हैं। हे हरे! हमारे जीवन और दिव्य शरीरको धिक्कार है; क्योंकि हम आपकी भक्तिसे शून्य होकर संसारमें भूले पड़े हैं।

कृतकृत्य बिभो सब बानर ए।
निरखंति तवानन सादर ए॥

धिग जीवन देव सरीर हरे।
तव भक्ति बिना भव भूलि परे॥

हे राजराजेश्वर! आप मुझे यह वरदान दें कि आपके श्रीचरणकमलोंमें ही सदा मङ्गलमय प्रेम हो।

नृप नायक दे बरदानमिदं।
चरनांबुज प्रेमु सदा सुभदं॥

इस प्रकार श्रीब्रह्माजीने अतिशय प्रेमसे पुलकित होकर स्तुति की। शोभाके समुद्र प्रभुके मङ्गलमय श्रीविग्रहका दर्शन करते करते उनके नेत्र तृप्त नहीं होते थे।

बिनय कीन्हि चतुरानन प्रेम पुलक अति गात।
सोभासिंधु बिलोकत लोचन नहीं अघात॥

उसी समय श्रीदशरथजी वहाँ आये। प्रिय पुत्रको देखकर उनके नेत्रोंमें जल भर आया।

तेहि अवसर दसरथ तहँ आए।
तनय बिलोकि नयन जल छाए॥

जीते जी तो श्रीदशरथका पुत्रभाव बना ही रहा, मृत्युके पश्चात् भी पुत्रभाव नष्ट नहीं हुआ। प्रभुने भी उसी भावनाके अनुसार श्रीलक्ष्मणके साथ उनकी वन्दना की और पिताने आशीर्वाद दिया। प्रभुने कहा—हे पितः! आपके पुण्य प्रभावसे मैंने दुर्जय निशाचरेन्द्र रावणके ऊपर विजय प्राप्त की। इसके पश्चात् श्रीठाकुरजीने अपने परतम स्वरूपका ज्ञान प्रदान किया। परिणामस्वरूप श्रीदशरथजी ऐश्वर्यभावसे प्रणाम करके देवलोक चले गये।

बार बार करि प्रभुहि प्रनामा।
दसरथ हरषि गए सुरधामा॥

श्रीवाल्मीकीयरामायणके अनुसार प्रस्तुत प्रसङ्गमें श्रीरामजीने बद्धाञ्जलि होकर श्रीदशरथसे कहा—हे पितः! आप माता कैकेयी और भरतपर प्रसन्न हों। आपने श्रीकैकेयीजीसे कहा था कि पुत्रके सहित मैं तुम्हें छोड़ रहा हूँ। आपका यह घोर श्राप पुत्रसहित कैकेयीका स्पर्श न करे।

कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च॥
सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता केकयी त्वया।
स शापः केकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत् प्रभो॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। ११९। २५-२६)

श्रीदशरथजीने बहुत अच्छा कहकर श्रीरामजीकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इसके पश्चात् देवेन्द्र इन्द्रने श्रीरामजीकी स्तुति की। श्रीइन्द्रजी कहते हैं—हे रघुनन्दन! कोई निर्गुण ब्रह्मका ध्यान करते हैं जिनको वेद अव्यक्त कहते हैं; परन्तु हे श्रीराम! मुझे आपका सगुण कोसलपति श्रीरामका स्वरूप ही अच्छा लगता है।

कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव।
अब्यक्त जेहि श्रुति गाव॥
मोहि भाव कोसल भूप।
श्रीराम सगुन सरूप॥

श्रीगोस्वामीजी भी श्रीविनयपत्रिकामें कहते हैं—***'नीके मेरो देवता कोसलपति राम।'*** इन्द्रने कहा—हे कृपालो! अब मेरी ओर कृपा करके देखकर आज्ञा दीजिए कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? इन्द्रके ये प्रिय वचन सुनकर दीनदयालु श्रीरामजी बोले।

अब करि कृपा बिलोकि मोहि आयसु देहु कृपाल।
काह करौं सुनि प्रिय बचन बोले दीनदयाल॥

हे देवेन्द्र! मैं यह चाहता हूँ कि सीताकी प्राप्ति कलङ्कित न हो। कोई देवी यह न कहे कि इस युद्धमें मेरा भाई मर गया, मेरी माँगका सिन्दूर पुँछ गया—मेरा पति मर गया और मेरी गोद सूनी

हो गयी—मेरा पुत्र मर गया। हे देवेन्द्र! इस युद्धमें समराङ्गणमें लड़ते लड़ते जो वानर रीछ मारे गये हैं वे सब जीवित हो जायँ। मैं उन वानरोंको रोगरहित, व्रणहीन और बल पौरुषसे सम्पन्न देखना चाहता हूँ। इन्द्रने अमृत वर्षाकर वानर भालुओंको जीवित कर दिया। सब हर्षित होकर उठे और श्रीरामजीके पास आये।

सुधा बरषि कपि भालु जिआए।
हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए॥

श्रीवाल्मीकीयरामायणमें श्रीरामजीने सुरेन्द्र इन्द्रसे एक याचना की है—हे महेन्द्र! ये मेरे वानरादि जहाँ पर भी रहें, वहाँ अकालमें भी पुष्प, मूल और फलोंकी बहुतायत हो तथा निर्मल जलवाली नदियाँ बहती रहें।

अकाले चापि पुष्पाणि मूलानि फलानि च।
नद्यश्च विमलास्तत्र तिष्ठेयुर्यत्र वानराः॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। १२०। १०)

फूलोंकी वर्षा करके सब देवता सुन्दर विमानोंपर चढ़ चढ़कर चले। तब सुअवसर जानकर—निपट एकान्त देखकर श्रीशङ्करजी आये।

सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर प्रभु पहिं आयउ संभु सुजान॥

स्तुति करनेवालेका स्वरूप किस प्रकार होना चाहिए। किस भावसे श्रीरामजी रीझते हैं इस प्रकार मन, वचन, कर्मका दर्शन करें।

परम प्रीति कर जोरि जुग नलिन नयन भरि बारि।
पुलकित तन गदगद गिराँ बिनय करत त्रिपुरारि॥

और देवताओंने स्तुतिमें कहा—हम सनाथ हो गये; परन्तु श्रीशङ्करजी स्तुतिके प्रारम्भमें ही कहते हैं—हे रघुकुलनायक! मुझे आपके द्वारा रक्षाकी सर्वदा आवश्यकता है।

मामभिरक्षय रघुकुल नायक।
धृत बर चाप रुचिर कर सायक॥

श्रीशङ्करजी स्तुतिका समापन करते हुए कहते हैं—हे प्रभो! कोसलपुरमें जब आपका अभिषेक होगा तब मैं आपके उदारचरित्रका दर्शन करने श्रीअयोध्या आऊँगा।

नाथ जबहिं कोसलपुरीं होइहि तिलक तुम्हार।
कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित उदार॥

इसके पश्चात् श्रीविभीषणने आकर प्रार्थना की—हे नाथ! आपने मुझ अनाथको सब प्रकारसे सनाथ किया है। हे प्रभो! आपका शरीर थका हुआ है। आपके श्रीविग्रहपर समराङ्गणमें उठे हुए रक्तके छींटे लगे हुए हैं एतावता आप दासके घरको पवित्र कीजिए और वहाँ चलकर विधिवत् स्नान कीजिए जिससे समरश्रमकी निवृत्ति हो जायेगी।

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे।
मज्जनु करिअ समर श्रम छीजे॥

श्रीविभीषणके कोमल एवं विनीत वचनोंको सुनकर ही दीनदयालु प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी विशाल आँखोंमें प्रेमाश्रु समुच्छलित हो गये।

सुनत बचन मृदु दीनदयाला।
सजल भए द्वौ नयन बिसाला॥

प्रभुने कहा—हे सखे! तुम्हारा कोष, घर सब मेरा ही है। हे विभीषण! अपने परम प्रिय भरतकी दशा—नन्दिग्रामके तपस्वीकी स्नेहिल दशाका स्मरण करके मुझे एक एक पल कल्पकी भाँति व्यतीत हो रहे हैं। हे सखे! मेरे पिताजीने तो मुझे केवल चौदह वर्षका वनवास दिया है; परन्तु मेरे भावते भरतने उसको अनन्त वर्षोंका बना दिया है। मैंने आजतक किसीके सामने

अपने हृदयकी अभिव्यक्ति नहीं की; क्योंकि श्रीभरत स्नेह सरितामें सारा वानर समाज डूब जाता और युद्ध नहीं हो पाता। हे मित्र! मैं अपने हृदयस्थ भरतका दर्शन कर रहा हूँ; यह भरत मेरे रोम रोममें समाया हुआ है, उसका दर्शन आप भी करें। उसका तपस्वी वेष है, दुर्बल शरीर है, वह अव्यवधान मेरा नाम जपता रहता है यह कहते कहते श्रीरामचन्द्रजी श्रीविभीषणसे भावपूर्ण वाणीमें कहते हैं—हे सखे! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे मेरे नन्दिग्रामके तपस्वीसे शीघ्र मिला दो। भाव कि जिस परम्परासे मैं श्रीअयोध्यासे लङ्का पर्यन्त आया हूँ उस परम्परासे यदि अयोध्या जाऊँगा तो मैं अपने वीर भ्राताको जीवित नहीं पाऊँगा। हे सखे! इस वनवासकी चतुर्दश वर्षकी अवधिमें मैंने किसीसे कुछ याचना नहीं की। आरम्भमें एक प्रेमीके सामने विवश होकर मैंने याचना की थी और आज एक प्रेमीके दर्शन करनेके लिये विवश होकर, निरुपाय होकर मैं तुमसे याचना कर रहा हूँ। *'सखा निहोरउँ तोहि।'*

तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात॥
तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहि।
देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउँ तोहि॥
बीतें अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर॥

तदनन्तर श्रीविभीषणने लङ्कामें जाकर पुष्पक विमानको मणियों, वस्त्रों आदिसे परिपूर्ण कर लिया और श्रीठाकुरजीके सामने उपस्थित किया। कृपासागर श्रीरामने प्रसन्न होकर कहा—हे सखे! सुनो, विमानपर चढ़कर आकाशमें जाओ और पटभूषणोंको बरसाओ। विभीषणने तत्काल प्रभुकी आज्ञानुसार कार्य किया।

बहुरि बिभीषन भवन सिधायो।
मनि गन बसन बिमान भरायो॥
लै पुष्पक प्रभु आगें राखा।
हँसि करि कृपासिंधु तब भाषा॥
चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन।
गगन जाइ बरषहु पट भूषन॥
नभ पर जाइ बिभीषन तबही।
बरषि दिए मनि अंबर सबही॥

श्रीरामके मित्र वानरोंको जो जो पसन्द आता है वही वही लेते हैं। मणियोंको मुखमें लेकर कड़ी वस्तु समझकर बाहर कर देते हैं। यह कौतुक देखकर परम कौतुकी श्रीरामजी, श्रीसीताजी और लक्ष्मणके साथ उन्मुक्त हँसी हँस रहे हैं। इस प्रकारकी हँसी या तो वनवासके आरम्भमें केवटके वचनोंको सुनकर आयी थी या अब हँस रहे हैं। वेद जिनका नेति नेति कहकर निरूपण करते हैं, जो मुनियोंके ध्यानपथमें नहीं आते वे ही कृपापाथनाथ रघुनाथ वानरोंके साथ विविध विनोद कर रहे हैं।

जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं।
मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं॥
हँसे रामु श्री अनुज समेता।
परम कौतुकी कृपा निकेता॥
मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद।
कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन करत अनेक बिनोद॥

एक अत्यन्त मूल्यवान् दोहा—भक्तोंके स्मरण करनेयोग्य दोहा इस प्रकरणमें आ रहा है। उसको सुन करके मनन करें।

उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम॥

आज श्रीरामचन्द्रजी अपने वीर सैनिकोंका,

प्रिय सखाओंका, विपत्तिके साथियोंका, जिन्होंने प्राणोंको हथेलीपर रखकर रावणकी भाँति वरिबण्ड वीरका लोहा लिया है उनका, सर्वस्व त्यागियोंका, बलिदानियोंका अभिनन्दन कर रहे हैं। उत्ताल तरङ्गोंवाले समुद्रके तटपर एक ऊँचेसे बालुके टीलेपर श्रीरामजी, श्रीलक्ष्मण और श्रीसीताजीके साथ विराजमान हैं। सामने असंख्य वानरसमुद्र सुशोभित है; परन्तु यह समुद्र प्रशान्त सागरकी भाँति स्तब्ध है, नि:शब्द है और अचञ्चल विराजमान है। सहज चञ्चल वानर आज निपट अचञ्चल हैं इसे श्रीरामका गाम्भीर्य कहें, श्रीसुग्रीवका प्रशिक्षण कहें या वानरोंका भक्तिभाव कहें। प्रभुने साश्रुनयन गद्‌गद कण्ठसे कहा—हे भाइयों! तुम्हारे बलको प्राप्त करके मैंने रावणको जीता है, वास्तवमें यह विजयश्री मुझे नहीं आप लोगोंको मिली है। तुम्हारे ही बलसे मैंने विभीषनका राजतिलक किया है। आपलोगोंके मनोबल एवं बाहुबलसे मैंने श्रीसीताकी उपलब्धि की है। मैं आपका सर्वदा उपकृत रहूँगा। आप लोगोंको बहुत दिन हो गये अपने घरसे आये अत: अब आप सब लोग अपने अपने घर पधारें। मेरा स्मरण करते रहना। संसारमें किसीका भय नहीं करना मैं सर्वदा तुम्हारे साथ रहूँगा।

चितइ सबन्हि पर कीन्ही दाया।
बोले मृदुल बचन रघुराया॥
तुम्हरें बल मैं रावनु मार्‌यो।
तिलक बिभीषन कहँ पुनि सार्‌यो॥
निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू।
सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू॥

प्रभुके वचनोंको श्रवण करके सब वानर प्रेम विह्वल होकर हाथ जोड़कर सादर बोले—हे स्वामिन्! आप जो कुछ कहें आपको फबता है; परन्तु आपकी बात सुनकर हमको मोह होता है। हे रघुनाथजी! आप त्रैलोक्याधीश्वर हैं, हम वानरोंको दीन जानकर आपने निहाल कर दिया। हमारा महत्त्व बढ़ा दिया। श्रीमान्‌के वचनोंको सुनकर हम लज्जाके मारे मरे जा रहे हैं। हे प्रभो! क्या क्षुद्र मच्छर गरुड़का हित सम्पादन कर सकता है? हे स्वामिन्! यद्यपि आपके चरणोंको छोड़कर हमारी जानेकी इच्छा नहीं है; परन्तु आपकी आज्ञाकी हम अवज्ञा नहीं कर सकते। हे नाथ! जब भी हमारी आवश्यकता हो आप हमें आज्ञा देंगे। इस प्रकार कहकर प्रभुकी अन्त:प्रेरणासे श्रीरामजीके रूपको हृदयमें रखकर अनेकों प्रकारसे विनती करके सब वानर प्रस्थान कर गये।

प्रभु प्रेरित कपि भालु सब राम रूप उर राखि।
हरष बिषाद सहित चले बिनय बिबिध बिधि भाषि॥

कुछ प्रमुख रामभक्तोंने अपने मनके भावोंको प्रभुके सामने निवेदन किया। उन वानरोंमेंसे एकने कहा—हे स्वामिन्! मेरे आराध्य श्रीरामको जन्म देनेका सौभाग्य जिस भाग्यशालिनी जननीको प्राप्त हुआ है, उस स्नेहमयी जननीके दर्शन करनेकी हमारी उत्कट अभिलाषा है। हे रघुनन्दन! उन माता कौसल्याका दर्शन करके उनके श्रीचरणोंमें प्रणति निवेदन करके हम चले आयेंगे। इसलिए हमें अपने साथ श्रीअयोध्याजी ले चलिये। एकने कहा—हे राघवेन्द्र सरकार! श्रीराम रावणके भयङ्कर युद्धमें रक्तके उड़ते हुए छीटोंसे आपके श्रीविग्रहको स्नान सा करते हुए हमने देखा है, हे स्वामिन्! श्रीअयोध्याजीमें विभिन्न तीर्थोंके जलसे भीगे हुए आपके मङ्गलमय दिव्यविग्रहके दर्शन करनेकी

हमारी हार्दिक कामना है, अतः हे भक्तवाञ्छा कल्पतरो! हमें श्रीअयोध्याजी ले चलिए। एकने कहा—हे प्रभो! हमने संसारके बहुत काम किये हैं, संसारके कार्यके लिये हम बहुत दौड़े हैं, सम्प्रति हमारी एक अभिलाषा है कि श्रीराम राज्याभिषेकके लिए दौड़ दौड़कर विभिन्न तीर्थोंसे जल लाकर अनेक सामग्रियोंका सङ्कलन करके हम अपना जीवन कृतार्थ करें। इसलिए हे भक्तवत्सल! हमें श्रीअयोध्याजी ले चलिये। एकने कहा—हे प्रभो! आपको जन्म देनेका सौभाग्य जिस मिट्टीको मिला है, जिस मिट्टीमें आपने बालक्रीड़ा की है और जिस मिट्टीको आपने बलक्रीड़ा करते समय अपने श्रीमुखमें डाला होगा, हे स्वामी! हम लोग श्रीअयोध्याजी चलकर उस मिट्टीको एक बार अपने मस्तकपर धारण करके कृतार्थ होना चाहते हैं, अतः हमें आप अपने साथ ले चलिए। एकने कहा—हृदयसिंहासनपर विराजमान हे वानरहृदय सम्राट्! एक बार आपके राजराजेन्द्र सम्राट् स्वरूपके दर्शन करनेकी हमारी प्रबल अभिलाषा है, अतः हमें श्रीअयोध्याजी चलनेकी आज्ञा प्रदान करें। एकने कहा, कई बार जिनकी स्मृतिमें एकान्तमें आपको फफक फफककर रोते देखा है, अनेक बार आपको हा भरत! हा भरत! कहते सुना है। अनेक बार आपके श्रीमुखसे जिनके स्नेहकी चर्चा सुननेका अवसर मिला है। अभी अभी श्रीविभीषणके स्नान करनेकी प्रार्थनाके पश्चात् जिनको देखनेकी उत्सुकता आपने अभिव्यक्त की थी और जिनकी स्मृतियोंने आपके आँखोंमें प्रेमाश्रुओंका अवतरण कर दिया था। उन महान् स्नेही श्रीभरतजीके श्रीचरणोंका दर्शन करके, उनके जीवनसे कुछ प्रेमका पाठ हम पढ़ना चाहते हैं। इसलिए हे भरतभ्रातः! हमें श्रीअयोध्याजी अवश्य ले चलिए।

अयोध्यां गन्तुमिच्छामः सर्वान् नयतु नो भवान्।
मुद्युक्ता विचरिष्यामो वनान्युपवनानि च॥
दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्द्रं कौसल्यामभिवाद्य च।
अचिरादागमिष्यामः स्वगृहान् नृपसत्तम॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। १२२। १९-२०)

कपिपति नील रीछपति अंगद नल हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे जूथप कपि बलवान॥
कहि न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि।
सन्मुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि॥

अतिसय प्रीति देखि रघुराई।
लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई॥

श्रीरामचन्द्रजीने सबको विमानपर चढ़ाकर मनमें ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रणाम करके पुष्पक विमानको उत्तर दिशाकी ओर चलाया। विमानके प्रस्थान करते समय सबलोग श्रीरघुबीरकी जयध्वनि कर रहे हैं। श्रीरामजी श्रीसीताके सहित विमानस्थ एक अत्यन्त उच्च सुन्दर सिंहासनपर विराजमान हैं। सुन्दर विमान बड़ी शीघ्रतासे चल रहा है। देवता प्रसन्न होकर पुष्पवर्षण कर रहे हैं।

मन महुँ बिप्र चरन सिरु नायो।
उत्तर दिसिहि बिमान चलायो॥
चलत बिमान कोलाहल होई।
जय रघुबीर कहइ सबु कोई॥

पुष्पक विमान चलने लगा, भगवान् श्रीरामजी श्रीसीताजीको एक एक स्थान दिखाने लगे। हे सीते! यह युद्ध भूमि देखो, तुम्हें प्राप्त करनेके लिये तुम्हारे लाड़ले पुत्रकल्प देवर लक्ष्मणने यहाँपर संसारके सर्वश्रेष्ठ योद्धा मेघनादका तीन अहोरात्र युद्ध करके वध किया था। हे सीते!

यहाँपर तुम्हारे भक्तपुत्र हनुमान् एवं अङ्गदादिने अनेकों राक्षसोंको कालका ग्रास बनाया था। हे सीते! देवताओं और मुनियोंको दुःख देनेवाले कुम्भकर्ण और रावण दोनों भाई यहाँ अपने आप विनष्ट हो गये।

कह रघुबीर देखु रन सीता।
लछिमन इहाँ हत्यो इँद्रजीता॥
हनूमान अंगद के मारे।
रन महि परे निसाचर भारे॥
कुंभकरन रावन द्वौ भाई।
इहाँ हते सुर मुनि दुखदाई॥

श्रीठाकुरजीने आगे कहा—हे सीते! यहाँ मैंने सेतुका निर्माण करवाया और सुखधाम श्रीरामेश्वरकी स्थापना की। श्रीसीतासहित श्रीरामजीने श्रीरामेश्वर महादेवको प्रणाम किया।

इहाँ सेतु बाँध्यों अरु थापेउँ सिव सुख धाम।
सीता सहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम॥

फिर श्रीरामचन्द्रजी दण्डकवन, अगस्त्य आदि मुनियोंके आश्रम, जटायु तीर्थ, शबरी आश्रम, किष्किन्धा, चित्रकूट आदि स्थानोंका दर्शन करते कराते सब स्थानों आश्रमोंको भावपूर्वक प्रणाम करते हुए तीर्थराज प्रयाग आ गये। पुष्पक विमान तीर्थराजके आकाशपर मँडराने लगा। सबने तीर्थराज प्रयागको, त्रिवेनी सङ्गमको, श्रीयमुनाजीको, श्रीगङ्गाजीको प्रणाम किया। उस समय प्रभुके भावुक मनने अपनी जन्मभूमि श्रीअयोध्याका स्मरण किया। पुष्पक विमान मनके सङ्कल्पके अनुसार ही चलता था एतावता पुष्पकविमान श्रीअयोध्याके आकाशपर मँड़राने लगा। यूपमालिनी श्रीसरयू एवं श्रीअयोध्याका दर्शन करके श्रीरामजीकी आँखोंमें आँसू आ गये। शरीरमें रोमाञ्च हो गया। प्रभुने आर्द्रकण्ठसे कहा—यह मेरी जन्मभूमि है। यह सुनकर भगवती सीता, भाग्यवान् लक्ष्मण एवं अन्य समस्त भागवतोंने श्रीअयोध्याजीको प्रणाम किया।

सीता सहित अवध कहुँ कीन्ह कृपाल प्रनाम।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम॥

फिर आकरके तीर्थराज प्रयागमें विमान उतरा। श्रीरामजीने प्रसन्न होकर त्रिवेणीमें स्नान किया और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारका दान दिया।

पुनि प्रभु आइ त्रिबेनीं हरषित मज्जनु कीन्ह।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुँ दान बिबिध बिधि दीन्ह॥

तत्पश्चात् भातृवत्सल रघुनन्दनने श्रीहनुमान्से कहा कि सम्भव है कि हमें विलम्ब हो जाय। कहीं मैं अपना रत्न न गवाँ दूँ एतावता हे हनुमान्! तुम वटुरूप धारण करके श्रीअयोध्या जाओ। मेरे नन्दिग्रामके तपस्वीको हमारी कुशल सुनाकर और उनका समाचार लेकर शीघ्र आ जाओ। श्रीहनुमान्जीने सद्यः प्रस्थान कर दिया और श्रीरामजी श्रीभरद्वाजके पास गये।

तुरत पवनसुत गवनत भयऊ।
तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ॥

श्रीभरद्वाजजीने प्रभुकी अनेकों प्रकारसे पूजा की, स्तुति की और आशीर्वाद दिया।

नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही।
अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही॥

इस प्रसङ्गमें महर्षिके माधुर्यभाव एवं ऐश्वर्यभाव दोनोंका अनुसन्धान करना चाहिये। मुनिके चरणोंमें प्रणाम करके प्रभुने पुनः प्रस्थान किया। यहाँ जब निषादने सुना कि प्रभु आ गये, तब उसने नाव कहाँ है, नाव कहाँ है? पुकारते हुये लोगोंको बुलाया इतनेमें ही विमान गङ्गापार आ गया। प्रभुकी आज्ञा पाकर विमान

गङ्गातटपर उतरा।

इहाँ निषाद सुना प्रभु आए।
नाव नाव कहँ लोग बोलाए॥
सुरसरि नाघि जान तब आयो।
उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो॥

श्रीसीताजीने श्रीगङ्गाजीका पूजन किया और उनके चरणोंमें प्रणाम किया। श्रीगङ्गाजीने आशीर्वाद दिया—हे सुन्दरि! आपका अखण्ड सौभाग्य हो। श्रीरामजीके गङ्गाके इस पार उतरनेकी बात सुनते ही निषादराज गुह प्रेमाकुल होकर दौड़े और परम सुखसे परिपूर्ण होकर प्रभुके निकट आ गये।

सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल।
आयउ निकट परम सुख संकुल॥

इस प्रसङ्गमें एक बात ध्यान देनेकी है कि गङ्गाके उस पार गोस्वामीजीने लिखा है ***'इहाँ निषाद सुना'*** और गङ्गाके इस पार लिखते हैं ***'सुनत गुहा धायउ'।*** दोनों ही प्रेमी हैं एक गङ्गाके इस पार और दूसरा गङ्गाके उस पार। दोनोंके साथ 'सुना' क्रियाका प्रयोग है, अतः दो व्यक्तियोंका होना निश्चित है। इस प्रसङ्गपर गम्भीरतासे मनन करना चाहिये।

श्रीजानकीजीके सहित श्रीरामजीका दर्शन करके निषादराज पृथ्वीपर गिर पड़े, उन्हें अपने शरीरकी सँभाल न रही। प्रभुने उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया उनसे कुशल प्रश्न किया। निषादराजने कहा—हे नाथ! श्रीमान्‌के श्रीब्रह्मा और शङ्करके द्वारा सेव्य श्रीचरणकमलोंका दर्शन करके अब मैं सकुशल हूँ। हे सुखधाम! हे आप्तकाम! हे श्रीराम! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ।

अब कुसल पद पंकज बिलोकि बिरंचि संकर सेब्य जे।
सुख धाम पूरनकाम राम नमामि राम नमामि ते॥

श्रीरामचन्द्रजीने निषादजीको अपने हृदयसे श्रीभरतकी भाँति लगा लिया। इसी मधुर प्रसङ्गके साथ कथादेवी लङ्काकाण्डसे निकलकर श्रीउत्तरकाण्डमें प्रविष्ट हो रही हैं।

(श्रीलंकाकाण्ड समाप्त)

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीरामचरितमानस
कथा-सुधा-सागर
उत्तरकाण्ड

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम्॥

यह पुष्पक आरूढ़ श्रीरामजीका ध्यान है। मयूरके कण्ठकी आभाके समान श्यामवर्ण, देवताओंमें श्रेष्ठ, विप्रके चरणकमलके चिह्नसे सुशोभित, शोभाकी खानि, किंवा शोभासे सम्पन्न, पीताम्बरधारी, सरसिजनयन, प्रत्येक परिस्थितिमें प्रसन्न रहनेवाले, भक्तोंकी रक्षाके लिये सदा हाथोंमें बाण और धनुष धारण करनेवाले, वानरोंसे घिरे हुए, श्रीलक्ष्मणजीसे सदा सेवित, परमस्तुत्य, रघुकुल श्रेष्ठ, पुष्पकारूढ, श्रीसीतानाथ रघुनाथको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ।

कोसलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ॥

कोसलेन्द्र श्रीरघुनन्दनके सुन्दर और कोमल दोनों चरण नलिन ब्रह्माजी एवं शङ्करजीके द्वारा नमस्कृत हैं। श्रीजनकनन्दिनीके करकमलोंसे लालित हैं और चिन्तन करनेवालेके मनभ्रमरके सङ्गी हैं अर्थात् चिन्तन करनेवालोंका मनरूपी भ्रमर इन चरणकमलोंमें सर्वदा निवास करता है

'मुनि मन मधुप रहत जहँ छाए।'

कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्।
कारुणीककलकञ्जलोचनं नौमि शङ्करमनङ्गमोचनम्॥

कुन्द पुष्प, चन्द्रमा और शङ्खके समान सुन्दर गौरवर्ण, पराम्बा पार्वतीके पति, वाञ्छित फलके देनेवाले, विकसित कमलके समान नेत्रवाले, कामदेवसे छुड़ानेवाले करुणामय श्रीशङ्करजीको मैं नमस्कार करता हूँ।

श्रीरामजीके लौटनेकी अवधिका एक ही दिन अवशिष्ट है एतावता श्रीरामके नगरके नर नारी अत्यन्त व्याकुल हैं। कौसल्यादि मातायें बैठी बैठी शकुन मनाती हैं। किसी काकको देखकर कहती हैं—हे काक! मेरे बालक सकुशल कब पधारेंगे?

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता॥
दूध भातकी दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम लषन उर लैहौं॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बोलाइ पाँय परि पूछति प्रेम मगन मृदु बानी॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकटतें समाचार लै आयो।
प्रभु आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो॥

श्रीभरतजी अनेक प्रकारकी आशङ्कायें करते हैं। वे सोचते हैं—मेरे स्वामी क्यों नहीं आये? क्या उन्होंने कुटिल समझकर मुझे विस्मृत कर दिया?

रहेउ एक दिन अवधि अधारा।
समुझत मन दुख भयउ अपारा॥

कारन कवन नाथ नहिं आयउ।
जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥

फिर श्रीभरतजी सोचते हैं—मेरे रामजी अपने सेवकका अवगुण कभी नहीं मानते हैं। वे तो दीनबन्धु हैं, उनका स्वभाव अतिशय कोमल है। मुझे शकुन भी अच्छे हो रहे हैं। फिर सोचते हैं—अवधिके क्षण बहुत कम रह गये हैं। उनके आनेका अभी कोई समाचार नहीं मिला है, यदि वे शृङ्गवेरपुर तक आ गये होते तो अबतक मुझे उनका समाचार मिल जाता। प्रेम अनिष्टाशङ्की होता है। वे सोचते हैं कि अवधि बीत जानेपर यदि मैं जीवित रह गया तो संसारमें मेरे समान नीच कौन होगा?

बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना।
अधम कवन जग मोहि समाना॥

इस प्रकार श्रीभरतजी अत्यन्त व्याकुल होकर सोच रहे हैं उनका मन श्रीरामजीके विरह समुद्रमें डूब रहा था उसी समय उनको बचानेके लिये श्रीभगवान् रामने श्रीहनुमान्‌जीके रूपमें एक जहाज भेज दिया जिसपर चढ़कर श्रीभरतजी डूबनेसे बच जायँगे। 'पवनसुत' कहनेका भाव श्रीहनुमान्‌जीके आनेमें विलम्ब नहीं लगा वे यथा समय पहुँच गये।

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥

श्रीहनुमान्‌जीने देखा कि श्रीभरतजी कुशासनपर विराजमान हैं, उनके जटाजूटका मुकुट है, वे क्षीणकाय हैं तथा निरन्तर 'राम राम रघुपति' जप रहे हैं और उनके कमल नयनसे प्रेमाश्रु वर्षण हो रहा है।

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥

श्रीभरतजीको देखते ही हनुमान्‌जी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। सुन्दरकाण्डमें श्रीजानकीजीकी और प्रस्तुत प्रसङ्गमें श्रीहनुमान्‌जीकी एक सी दशा है। वहाँ ***'बैठेहि बीति जात निसि जामा'*** यहाँ ***'बैठे देखि कुसासन'*** वहाँ ***'कृसतनु सीस जटा एक बेनी'*** यहाँ ***'जटामुकुट कृस गात'*** वहाँ ***'जपति हृदय रघुपति गुनश्रेनी'*** यहाँ ***'राम राम रघुपति जपत'*** वहाँ ***'नयन स्रवहिं जल निज हित लागी'*** और यहाँ ***'स्रवत नयन जलजात'***। दोनों जगहकी स्थिति एक है। दोनों जगह श्रीहनुमान्‌जी देखनेवाले हैं; परन्तु वहाँ ***'देखि पवनसुत दुखी भा'*** और यहाँ ***'देखत हनूमान अति हरषेउ।'*** इस अन्तरका कारण यह है कि वहाँ जब माताजीने पूछा था कि—

कबहुँ नयन मम सीतल ताता।
होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता॥

(५। १४)

तब हनुमान्‌जीको यह कहना पड़ा था कि—

कछुक दिवस जननी धरु धीरा।

और यहाँ प्रस्तुत प्रसङ्गमें बिना पूछे ही कह देंगे कि ***'आयउ कुसल देव मुनि त्राता।'*** इसलिये हनुमान्‌जी बहुत प्रसन्न हुए उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया। नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बह चले।

देखत हनूमान अति हरषेउ।
पुलक गात लोचन जल बरषेउ॥

श्रीहनुमान्‌जीने कहा कि जिनके वियोग विरहमें आप दिन रात सोच करते हैं और जिनके गुण समूहकी पंक्ति निरन्तर रटते हैं वे रघुकुलतिलक स्वजनसुखदाता और देवमुनिरक्षक श्रीरामजी पधार रहे हैं।

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती।
रटहु निरंतर गुन गन पाँती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता।
आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥

इन दो पंक्तियोंको सुनकर श्रीभरतजी कुछ नहीं बोले; क्योंकि सीताहरण और लक्ष्मण शक्तिका प्रसङ्ग श्रीभरतजी सुन चुके हैं। इन दोनों पंक्तियोंमें उनका नाम न सुनकर अनिष्टकी आशङ्का हो गयी। तब श्रीभरतजीने सोचा कि श्रीरामका यह दास, यह शरीर श्रीरामका नाम लेता हुआ परित्याग कर देगा; परन्तु श्रीलक्ष्मण और श्रीसीताजीके बिना श्रीरामका दर्शन करनेके लिये आँख नहीं खोलेगा। ज्ञानियोंके चक्रचूड़ामणि श्रीहनुमान्‌ने समझ लिया फिर तत्काल दूसरे वाक्यकी रचना करके बोले।

रिपु रन जीति सुजस सुर गावत।
सीता सहित अनुज प्रभु आवत॥

अब तो सुनते ही श्रीभरतजी सब दुःख भूल गये और उन्होंने पूछा कि आप कौन हैं?

सुनत बचन बिसरे सब दूखा।
तृषावंत जिमि पाइ पियूषा॥
को तुम्ह तात कहाँ ते आए।
मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥

श्रीहनुमान्‌जीने अपना नाम बताया सुनते ही श्रीभरतजी उठकरके आदरपूर्वक उनको हृदयसे लगा लिये। श्रीरामजी और श्रीसीताजीकी भाँति श्रीभरतजीने भी कहा—मैंने विचारकर देख लिया कि संसारमें इस सन्देशके समान कोई पदार्थ नहीं है। हे तात! मैं तुमसे कथमपि उऋण नहीं हो सकता। अब मुझे प्रभुका चरित्र सुनाइये। श्रीभरतजीने बड़ी उत्कण्ठासे पूछा कि रघुवंशके भूषण श्रीरामजी क्या कभी निज दासकी भाँति मेरा स्मरण करते हैं? भरतजीके अतिशय विनम्र वचन सुनकर श्रीहनुमान्‌जी रोमाञ्चित होकर श्रीभरतके चरणोंपर गिर पड़े।

निज दास ज्यों रघुबंसभूषन कबहुँ मम सुमिरन कर्‌यो।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तन चरनन्हि पर्‌यो॥
रघुबीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग जग नाथ जो॥
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो॥

श्रीभरतके श्रीचरणोंमें प्रणाम करके श्रीहनुमान्‌जी श्रीरामजीके पास जाकर सब समाचार सुनाये। सुनते ही प्रभु पुष्पक विमानपर चढ़कर चल पड़े। श्रीभरतजी प्रसन्न होकर नन्दिग्रामसे श्रीअयोध्याजी आ गये। उनके मनमें धर्मसङ्कट है कि सबसे पहले प्रभुके आगमनका समाचार किसको सुनाऊँ? निर्णय करके श्रीगुरुदेवके पास गये। वसिष्ठाश्रममें आज बड़ी भीड़ है। सब उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे हैं श्रीगुरुदेवके सन्देशका। सब जानना चाहते हैं कि चौदह वर्षकी पूर्ति किस क्षण हो रही है। श्रीगुरुदेवके सामने ढेर सारे पञ्चाङ्ग पड़े हैं। गणना हो रही है, वनवासका अन्तिम क्षण कौन सा होगा? गुरुदेव वियोगी भक्त हैं; उन्हें एक एक पलका ज्ञान है परन्तु वे सोचते हैं कि मेरे आश्रमका एक शब्द महत्त्वपूर्ण है। यहाँके शब्दोंमें सम्प्रति जीवन मृत्युका सामर्थ्य है। इसलिए अवधिका अन्तिम क्षण बतानेमें विलम्ब कर रहे हैं। जब श्रीभरतजीने श्रीरामजीके आगमनका समाचार बताया। तब तत्काल घोषणा हो गयी श्रीराम आ रहे हैं, स्वागतकी तैयारी करो।

हरषि भरत कोसलपुर आए।
समाचार सब गुरहि सुनाए॥

इसके अनन्तर श्रीभरतने माताओंको प्रभुके आगमनका समाचार सुनाया। समस्त पुरजनोंको समाचार मिल गया।

जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं।
बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं॥

इसमें एक प्रश्न होता है कि अयोध्यावासी तो चौदह वर्षके लिये भोगोंका त्याग कर दिये थे।

राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपबास।
तजि तजि भूषन भोग सुख जिअत अवधि कीं आस॥

(२। ३२२)

फिर बालक कहाँसे आ गये? इसका उत्तर यह है कि श्रीरामदर्शनकी कामनासे श्रीअयोध्याके बाहरसे जो लोग आए हैं किंवा अयोध्यावासियोंकी पुत्रियाँ जो कुछ दिन पूर्व आई हैं उनके बालक भी तो साथमें हो सकते हैं। दूसरा उत्तर यह है कि बालक स्वार्थका प्रतीक है और वृद्ध परमार्थका। भाव कि श्रीरामके दर्शनकी कामनासे सब प्रेमीजन स्वार्थ परमार्थ दोनोंका परित्याग करके चले। अथवा चौदह वर्षका बालक भी बालक ही कहा जाएगा। श्रीरामजी जब श्रीजनकपुर गये तब पन्द्रह वर्षके थे परन्तु श्रीजनकने उनको बालक ही कहा है ***'कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक।'*** एतावता शङ्का नहीं करना चाहिए। सारा नगर श्रीरामजीके स्वागतके लिये प्रस्तुत हो गया। एक दूसरेसे पूछते हैं—भैया! आपने रामजीको देखा है। श्रीअयोध्याजी सज गयीं वे समस्त शोभाकी खानि हो गईं। यह चिन्मयी पुरी हैं इनको किसीके सजानेकी आवश्यकता नहीं है। श्रीसरयूजीका जल अत्यन्त निर्मल हो गया।

अवधपुरी प्रभु आवत जानी।
भई सकल सोभा कै खानी॥
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा।
भइ सरजू अति निर्मल नीरा॥

इधर श्रीरामजी पुष्पक विमानपर श्रीअयोध्याजीके महत्त्वका वर्णन कर रहे हैं। प्रभु कहते हैं—हे सखाओं! यद्यपि सब लोग वैकुण्ठकी बड़ाई करते हैं; परन्तु श्रीअयोध्याजीके समान मुझे वह प्रिय नहीं है।

जद्यपि सब बैकुंठ बखाना।
बेद पुरान बिदित जगु जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ।
यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥

इसी भावका परिवेषण श्रीसूरदासजी भी करते हैं।

कहा करौं बैकुंठ महँ जाय।
वहँ नहिं नंद वहाँ नहिं गोकुल, नहिं वहँ कदमकी छाँह।
वहँ नहिं, जल जमुनाको निर्मल वहँ नहिं ग्वाल बाल अरु गाय॥

(सूरदासजी)

श्रीअयोध्याजीकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह श्रीरामको उत्पन्न कर सकती हैं। श्रीरामजीका जन्म वैकुण्ठ, जनकपुर, चित्रकूट या अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता। श्रीरामजी कहते हैं मुझे यहाँके निवासीगण बहुत प्रिय हैं। सब वानर भगवान्‌की वाणी सुनकर प्रसन्न हो गये और कहने लगे कि जिस अवधका श्रीरामजीने अपने श्रीमुखसे बखान किया है वह धन्य है।

हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी।
धन्य अवध जो राम बखानी॥

इस प्रसङ्गसे प्रभुने शिक्षा दी है कि **'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'** श्रीरामजीने श्रीअयोध्यावासियोंको उत्कण्ठापूर्वक शीघ्रतासे आते देखा तब पुष्पक विमानको प्रेरित करके उतार दिया। पुष्पक विमानसे उतरकर पुष्पकको कुबेरके पास भेज दिया। श्रीगुरुदेवको शीघ्रतासे आता देखकर श्रीरामजीने दौड़कर साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। प्रभुको गुरुदेवने हृदयसे लगा लिया और कुशल पूछा, तब प्रभुने कहा आपकी दयासे हम

कुशल हैं।

बामदेव बसिष्ट मुनिनायक।
देखे प्रभु महि धरि धनु सायक॥
धाइ धरे गुर चरन सरोरुह।
अनुज सहित अति पुलक तनोरुह॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया।
हमरें कुसल तुम्हारिहिं दाया॥

फिर प्रभुने समस्त ब्राह्मणोंको प्रणाम किया। तदनन्तर श्रीभरतजी प्रभुके श्रीचरणकमलोंको पकड़ लिये और साष्टाङ्ग दण्डवत् किये। प्रभुके उठाने पर भी वे उठ नहीं रहे हैं, प्रभुने बलपूर्वक उनको हृदयसे लगा लिया।

गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज।
नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज॥
परे भूमि नहिं उठत उठाए।
बर करि कृपासिंधु उर लाए॥

श्रीपद्मपुराणमें भी इसी प्रकार कहा है।

रघुनाथोऽपितं दृष्ट्वा दण्डवत् पतितं भुवि।
उत्थाप्यजगृहे दोर्भ्यां हर्षालोकसमन्वितः॥
उत्थापितोऽपिभृशं नोदतिष्ठद्रुदन्मुहुः।
रामचन्द्रपदाम्भोज ग्रहणासक्तबाहुभृत्॥

(पद्मपुराण पातालखण्ड २। ३०-३१)

भगवान्‌के कुशल पूछनेपर भी श्रीभरतके मुखसे वाणी नहीं निकलती कण्ठावरोध हो गया है। बड़ी कठिनतासे कह पाये कि हे अयोध्यानाथ! आपने आर्त्त जानकर दासको दर्शन दिया एतावता सब कुशल है। विरहसागरमें डूबते हुए मुझको आपने अपने हनुमान्‌रूपी हस्तकमलसे पकड़कर बचा लिया।

बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई॥
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥

फिर प्रभुने शत्रुघ्नजीको हृदयसे लगाया। श्रीलक्ष्मणजी भरत और शत्रुघ्नसे मिले। श्रीसीताके श्रीचरणोंमें श्रीभरत शत्रुघ्नने प्रणाम करके अतिशय सुख प्राप्त किया।

सीता चरन भरत सिरु नावा।
अनुज समेत परम सुख पावा॥

श्रीठाकुरजीने समस्त पुरवासियोंको प्रेमातुर देखकर एक कौतुक किया—चमत्कार किया। दयालु श्रीरामजी अनेकों रूपोंमें प्रकट हो गये और सबसे यथायोग्य मिले।

प्रेमातुर सब लोग निहारी।
कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला।
जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥

इस प्रसङ्गमें मुझे श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके दो श्लोक स्मरण आ रहे हैं। उन श्लोकोंसे इस प्रसङ्गपर प्रकाश मिलेगा कि भगवान् किस पद्धतिसे भक्तोंसे मिलते हैं। जब आनन्दकन्द व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुरसे द्वारकाजी पधारे तब स्नेही नर नारियोंसे, पुरवासियोंसे उनके मिलनेका अनोखा वर्णन भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीने किया है।

प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः ।
आश्वास्य चाश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः॥
स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि।
आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्वन्दिभिश्चाविशत्पुरम् ॥

(१। ११। २२-२३)

यशोदानन्दन श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीद्वारकाके स्नेही नरनारियों, बन्धु बान्धवों और सेवकोंसे उनकी

भावनाके अनुसार किंवा उनकी योग्यताके अनुसार अलग अलग मिलकर सबका सम्मान किया। किसीको विनम्रतापूर्वक मस्तक झुकाकर प्रणाम किया, किसीको वाणीसे अपना नाम उच्चारण करते हुए अभिवादन किया, किसी अत्यन्त स्नेहीको हृदयसे लगाया, किसी अनन्य सुहृदसे—मित्रसे हाथ मिलाया, किसीकी ओर देखकर अपने अधरोष्ठोंपर हास्यच्छटा बिखेर दीं और किसीको अपनी प्रेमभरी चितवनसे निहार भर लिया। जिसकी जो इच्छा थी उसे वही वरदान दिया। इस प्रकार चाण्डालपर्यन्त सबको सन्तुष्ट करके गुरुजन, सपत्नीक ब्राह्मण और ज्ञानवृद्धों, वयोवृद्धों और अनुभववृद्धोंका तथा अन्य लोगोंका भी मङ्गलाशीर्वाद ग्रहण करते एवं बन्दीजनोंसे विरुदावली सुनते हुए सबके साथ भगवान् श्यामसुन्दरने अपने नगरमें प्रवेश किया।

श्रीअयोध्याजीके समस्त नागरिक बद्धाञ्जलि होकर समवेत स्वरमें श्रीरामजीसे बोले—हे कौसल्यानन्दसंवर्द्धन! हे महाबाहो! हे श्रीराम! आपका स्वागत है! स्वागत है!

स्वागतं ते महाबाहो कौसल्यानन्दवर्द्धन।
इति प्राञ्जलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। १२७। ५२)

श्रीरामजीने कृपादृष्टिसे देखकर सब नर नारियोंको वियोग शोकसे रहित कर दिया। क्षणमात्रमें भगवान्—सर्वंकर्तुं समर्थ श्रीराम सबसे मिल लिये, यह मर्म कोई नहीं जान सका। इस प्रकार सबको सुखी करके शीलगुणधाम श्रीराम आगे चले।

कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी।
किए सकल नर नारि बिसोकी॥
छन महिं सबहि मिले भगवाना।
उमा मरम यह काहुँ न जाना॥
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा।
आगें चले सील गुन धामा॥

श्रीकौसल्यादि सभी माताएँ इस प्रकार दौड़ीं मानो ब्याई हुई धेनु अपने बिछुड़े हुए बछड़ेको देखकर दौड़ी हो।

कौसल्यादि मातु सब धाई।
निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई॥

दौड़नेमें सबसे पहले और सबसे तेज श्रीकौसल्याजी दौड़ीं, अतः सबसे पहले उनका नाम दिया; परन्तु भेंटनेमें सब माताओंका नाम पहले है।

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहुबिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोगभव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे॥

श्रीलक्ष्मणने माता सुमित्राके चरणोंमें प्रणाम किया। माताने चौदह वर्षपूर्व जब लक्ष्मणको विदा किया था तब आशीर्वाद अवश्य दिया था परन्तु भेंटा नहीं था। आज जब श्रीलक्ष्मणकी रामभक्ति प्रमाणित हो गयी तब 'भेटेउँ' कहा।

भेटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि।

श्रीराम लक्ष्मण सब माताओंसे मिले। श्रीकैकेयीसे विशेष रूपमें मिले। श्रीसीताजीने सब सासुओंसे मिलकर उनके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया। वे भी कुसल पूछकर अखण्ड सौभाग्यवतीका आशीर्वाद देती हैं।

सासुन्ह सबनि मिली बैदेही।
चरनन्हि लागि हरषु अति तेही॥
देहिं असीस बूझि कुसलाता।
होइ अचल तुम्हार अहिवाता॥

सब माताएं श्रीराम मुखारविन्दको वात्सल्य दृष्टिसे देखकर मङ्गल समय जानकर आँसुओंको रोकती हैं। सोनेकी थालमें आरती उतारती हैं, बारम्बार श्रीरामजीके मङ्गलमय दिव्यविग्रहका दर्शन करती हैं।

सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं।
मंगल जानि नयन जल रोकहिं॥
कनक थार आरती उतारहिं।
बार बार प्रभु गात निहारहिं॥

श्रीकौसल्याजी पुनः पुनः रघुबीर कृपासागर, रणधीर श्रीरामजीको देखती हैं। बार बार हृदयमें विचारती हैं कि इन्होंने किस प्रकार लङ्केश रावणका वध किया? मेरे दोनों बालक अतिशय सुकुमार हैं और राक्षस महान् योद्धा और महावीर थे।

कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि।
चितवति कृपासिंधु रनधीरहि॥
हृदयँ बिचारति बारहिं बारा।
कवन भाँति लंकापति मारा॥
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे।
निसिचर सुभट महाबल भारे॥

श्रीहनुमान् आदि समस्त वानर वीर मनोहर मनुष्य शरीर धारण किये हैं।

हनुमदादि सब बानर बीरा।
धरे मनोहर मनुज सरीरा॥

फिर श्रीरामजीने समस्त सखाओंको बुलाकर सिखाया कि सब लोग श्रीवसिष्ठके चरणोंमें प्रणाम करो। ये हमारे गुरु वसिष्ठजी हैं, हमारे कुलपूज्य हैं, इन्हींकी कृपासे राक्षस रणमें मारे गये। वानरोंसे यह कहकर तब श्रीवसिष्ठसे इनका परिचय देने लगे—हे मुने! ये सब मेरे सखा हैं ये संग्रामरूपी समुद्रके सन्तरणमें मेरे लिये बेड़ा रूप हुए। इन लोगोंने मेरे हितके लिये अपने प्राणकी चिन्ता नहीं की एतावता ये मुझे भरतसे भी अधिक प्यारे हैं।

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए।
मुनि पद लागहु सकल सिखाए॥
गुर बसिष्ट कुलपूज्य हमारे।
इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे॥
ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे।
भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे।
भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥

पुनः सब वानरोंने माता श्रीकौसल्याजीके चरणोंमें प्रणाम किया। माताने आशीर्वाद देकर कहा—तुम मुझे मेरे रामके समान प्रिय हो।

कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ॥

श्रीरामजीके आगमनसे नगरमें चारों ओर आनन्द ही आनन्द है। सब लोगोंने अपने अपने द्वारपर अलंकृत कलश रक्खे हुये हैं। सब लोगोंने मङ्गलके लिये बन्दनवार ध्वजा और पताकायें लगायीं। अनेक प्रकारके शुभ शकुन हो रहे हैं।

सुमन बृष्टि नभ संकुल भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नगर नारि नर बृंद॥

श्रीरामजीने सर्वप्रथम माता कैकेयीके यहाँ जाकर उनका प्रबोध करके उनको बहुत सुख दिया। कैकेयीके महलमें जाकर अपने वनवासकी समाप्त की। उसके बाद अपने भवन—कनकभवन गये।

ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा।
पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा॥

इस पङ्क्तिका 'हरि' शब्द बहुत भावपूर्ण है। समस्त नर नारियोंका अशेषक्लेश निवृत्त हो गया, सब सुखी हो गये।

कृपासिंधु जब मंदिर गए।
पुर नर नारि सुखी सब भए॥

श्रीवसिष्ठजीने ब्राह्मणोंको बुलाकर कहा—आज सुन्दर घड़ी है, सुन्दर दिन है। आप सबलोग प्रसन्न होकर आज्ञा दें कि श्रीरामचन्द्रजी सिंहासनपर बैठें। ब्राह्मणोंने अतिशय प्रसन्न होकर कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! अब आप बिलम्ब न करें। श्रीरामजी तो पहले ही से महाराजा हैं, अब आप महाराज श्रीरामचन्द्रजीका राजतिलक कर दीजिये।

अब मुनिबर बिलंब नहिं कीजै।
महाराज कहँ तिलक करीजै॥

एक अत्यन्त रहस्यपूर्ण ध्यान देनेयोग्य प्रसङ्ग है—श्रीदशरथजीको श्रीरामके वन जानेका समाचार सुनानेके पश्चात् श्रीरामचरितमानसके पटलसे सुमन्त्रजीका नाम ही समाप्त हो जाता है। उसके बाद अनेक महत्त्वपूर्ण प्रसङ्ग आये, जैसे श्रीदशरथमरण और उनकी अन्त्येष्टि, श्रीभरतजीको राज्याभिषेकका प्रस्ताव, श्रीभरत वनगमन, चित्रकूटका लम्बा चौड़ा प्रसङ्ग कहींपर भी सुमन्त्रजीका नाम नहीं आया क्या कारण सम्भव है? श्रीदशरथजीको श्रीरामके वन जानेका समाचार सुनानेके पश्चात् सुमन्त्रजीने जान लिया कि अब मेरे महाराज नहीं रहेंगे। उनकी मृत्यु मैं अपनी आँखोंसे नहीं देख पाऊँगा, अतएव वे निर्णय करके ऐसे स्थानमें चले गये जहाँ खोजनेपर भी उन्हें कोई न पा सके। परन्तु त्रिकालज्ञ महात्मा श्रीवसिष्ठजी जानते थे, उनकी व्यथा भी जानते थे। आज जब मुनि गये तब फफक फफककर सुमन्त्र रो पड़े। गुरुदेवने कहा—हे सुमन्त्र! अब तुम्हारे रोनेके दिन व्यतीत हो गये। आज तुम्हारा पुत्र वनसे लौट आया है। उसके राज्याभिषेककी तैयारी करो। अब तो महान् प्रेमीवृद्ध सुमन्त्रमें युवककी शक्ति आ गयी। उन्होंने समग्र सामग्रियोंका सङ्कलन कर दिया और समस्त तैयारी कर दी।

तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ हरषाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ॥
जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रब्य मगाइ।
हरष समेत बसिष्ट पद पुनि सिरु नायउ आइ॥

(नवाह्न पारायण आठवाँ विश्राम)

श्रीअयोध्याजी अत्यन्त सुन्दर सजा दी गयीं। देवताओंने पुष्पोंकी वर्षाकी झड़ी लगा दी। श्रीरामजीने सेवकोंको बुलाकर कहा—सबसे पहले मेरे सखाओंको स्नान करावो। सेवकोंने सुग्रीव आदिको तुरन्त स्नान करा दिया। अब एक विचित्र झांकीका दर्शन करें। श्रीरामजी एक आसनपर पीछे बैठे हैं उनके सामने श्रीभरतजी उनकी ओर पीठ करके ३३ अङ्क की भाँति बैठे हैं। करुणामय श्रीरामजी अपने सुकोमल हाथोंसे उनकी जटाओंके एक एक बालोंको सुलझा रहे हैं। भक्तवत्सल कृपालु श्रीराघवेन्द्रने तीनों भाइयोंको स्नान कराया। श्रीगोस्वामीजी लिखते हैं—श्रीभरतजीका भाग्य और प्रभुकी कोमलताका वर्णन तो अनन्त—शेष भी नहीं कर सकते हैं।

पुनि करुनानिधि भरतु हँकारे।
निज कर राम जटा निरुआरे॥
अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई।
भगत बछल कृपाल रघुराई॥
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई।
सेष कोटि सत सकहिं न गाई॥

फिर अपनी जटाओंको ठीक करके गुरुदेवकी

आज्ञा प्राप्त करके श्रीरामजीने स्नान किया और अपने अङ्गोंमें आभूषण धारण किये।

पुनि निज जटा राम बिबराए।
गुर अनुसासन मागि नहाए॥
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे।
अंग अनंग देखि सत लाजे॥

श्रीकौसल्यादि सासुओंने श्रीजानकीजीको तुरन्त आदरपूर्वक स्नान कराकर उनके अङ्ग अङ्गमें दिव्य वस्त्र और श्रेष्ठ आभूषण सजाये।

सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ।
दिब्य बसन बर भूषन अँग अँग सजे बनाइ॥

महर्षि श्रीवाल्मीकिजीने भी लिखा है—श्रीदशरथजीकी मनस्वी रानियोंने बड़ी प्रीतिसे श्रीसीताजीको स्नान कराया और उनका मनोहर शृङ्गार किया।

प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः।
आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम्॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। १२८। १७)

श्रीकौसल्याजीने श्रीसुग्रीवकी पत्नी रुमा और तारा आदि वानरियोंको बुला करके बड़े प्रेमसे कहा—हे देवियों! हम तुम्हारे बलिदान, त्याग, सेवाके ऋणसे कभी उऋण नहीं हो सकती हैं। आपने हमारे पुत्र रामके लिये अपने सुहाग और गोदकी चिन्ता नहीं की—अपने पतियों और पुत्रोंको रावण सरीखे दुर्द्धर्ष, दुर्दान्त शत्रुसे लड़नेके लिये समर्पित कर दिया। इतना कहकर पुत्रवत्सला श्रीकौसल्याजीने अपने हाथोंसे तारा, रुमा आदि सभी देवियोंका शृङ्गार बड़े यत्नसे किया। 'बड़े यत्न' का भाव कि वे चाहती नहीं थी; परन्तु माताने कहा कि तुम भी तो सीताकी तरह ही मेरी पुत्रवधू हो।

ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभनम्।
चकार यत्नात्कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला॥

(श्रीवाल्मीकीयरामायण ६। १२८। १८)

श्रीरामजीके वामभागमें रूप और गुणोंकी खानि श्रीसीताजी सुशोभित हो रही हैं। सब मातायें उन्हें देखकर अपना जन्म सफल मानकर प्रसन्न हो गयीं।

राम बाम दिसि सोभति रमा रूप गुन खानि।
देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि॥

उस समय ब्रह्मा, शिव, मुनिबृंद और समस्त देवता विमानोंपर चढ़कर आ गये और सभी आनन्दकी वर्षा करनेवाले नीलमेघश्याम श्रीरामजीका दर्शन करने लगे।

सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनि बृंद।
चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद॥

जब विधिवत् स्नान करके श्रीसीतारामजी आभूषण धारण करके विराजमान हुये तब प्रभुका लोकाभिराम मनहर स्वरूप देखकर श्रीवसिष्ठजीके मनमें अत्यन्त अनुराग उत्पन्न हो गया। उन्होंने श्रीब्रह्माजीसे कहा—हे पितः! मेरे शिष्य परब्रह्म राम इस भौतिक सिंहासनपर नहीं बैठेंगे। इनके राज्यसिंहासनासीन होनेके लिये दिव्य सिंहासनकी व्यवस्था होनी चाहिये। महर्षिकी तपस्याके प्रभावसे एवं ब्रह्माकी कृपासे तत्काल दिव्य सिंहासनका अवतरण हो गया, उसका तेज सूर्यके समान देदीप्यमान था। श्रीरामजी ब्राह्मणोंको प्रणाम करके उसपर विराजमान हो गये। श्रीसीतारामजीको सिंहासनासीन देखकर मुनिवृन्द प्रसन्न हो गये।

प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा।
तुरत दिब्य सिंघासन मागा॥
रबि सम तेज सो बरनि न जाई।

बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई॥
जनकसुता समेत रघुराई।
पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई॥

ब्राह्मणोंने वेदमन्त्रोंका उच्चारण किया। आकाशमें देवता ओर मुनि उच्च स्वरसे जयध्वनि करने लगे।

बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे।
नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे॥

सबसे पहले महर्षि वसिष्ठने तिलक किया फिर सब ब्राह्मणोंको तिलक करनेकी आज्ञा दी।

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा।
पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा॥

श्रीसीतारामजीको देखकर मातायें प्रसन्न हो गयीं और बार बार आरती उतार रही हैं। ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दिये। याचकोंको अयाचक बना दिया। त्रैलोक्यके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीको श्रीअयोध्याके राज्यसिंहासनपर विराजमान देखकर देवताओंने दुन्दुभि ध्वनि की।

सुत बिलोकि हरषीं महतारी।
बार बार आरती उतारी॥
बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे।
जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥
सिंघासन पर त्रिभुअन साईं।
देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं॥

आकाशमें बहुतसी दुन्दुभियाँ बज रही हैं गन्धर्व और किन्नर गा रहे हैं। अप्सरायें नृत्य कर रही हैं। देवता और मुनि परमानन्द प्राप्त कर रहे हैं। श्रीभरतजी छत्र, श्रीलक्ष्मणजी चँवर, श्रीशत्रुघ्नजी व्यजन, श्रीविभीषणजी धनुष, श्रीअङ्गदजी तलवार ढाल और श्रीहनुमान्‌जी शक्ति लिये हुये सुशोभित हैं।

नभ दुंदुभीं बाजहिं बिपुल गंधर्ब किंनर गावहीं।
नाचहिं अपछरा बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं॥
भरतादि अनुज बिभीषनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते॥

उस समयकी शोभा, समाज और सुखका वर्णन सम्भव नहीं है। श्रीशारदा, शेष और वेद निरन्तर उसका वर्णन करते हैं और उसका विशेष रस तो श्रीगौरीनाथ जानते हैं। सब देवता भिन्न भिन्न स्तुति करके अपने अपने लोकको प्रस्थान कर गये। तब वन्दीके वेषमें वेद श्रीरामजीके दरबारमें आये। सर्वज्ञ कृपानिधान श्रीरामने वेदोंका अतिशय सम्मान किया; परन्तु इसका रहस्य कोई नहीं जान सका। वेद श्रीरामचन्द्रजीका स्नेहपूर्वक गुणगान करने लगे।

प्रभु सर्बग्य कीन्ह अति आदर कृपानिधान।
लखेउ न काहूँ मरम कछु लगे करन गुन गान॥

वेदोंने चौबीस पंक्तियोंमें—छह छन्दोंमें बड़ी सुन्दर स्तुति की है। अन्तमें समस्त वेद मिलकर स्तुति करते हुए वरयाचना करते हैं कि ब्रह्म अज है, अद्वैत है, अनुभवगम्य है और मनसे परे है जो इस प्रकार ध्यान करते हैं, वे इस प्रकार कहा करें और जानें, हम तो हे नाथ! आपका सगुण यश नित्य गाते हैं। हे करुणाके धाम! हे सद् गुणाकर! हे प्रभो! हे देव! हम आपसे यह वर माँगते हैं कि मनके, कर्मके और वचनोंके विकारोंको छोड़कर हम आपके श्रीचरणोंमें ही अनुराग करें।

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मनपर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं॥

बहुवचन कहकर यह भाव व्यक्त किया कि चारों वेदोंका निष्पन्न सिद्धान्त भगवच्चरणानुराग ही है। वेदोंके स्तुति करके जानेके पश्चात् भगवान् गौरीनाथ आकर गद्गदवाणीमें स्तुति करने लगे—हे राम! हे रमारमण! आपकी जय हो। हे रघुनन्दन! मेरे सुखदु:खादि द्वन्द्व समूहोंका नाश कर दीजिये। हे महिपाल! इस दीन जनकी ओर अपनी कृपामयी दृष्टिसे देखिए। हे श्रीरङ्ग! आपके श्रीचरणकमलोंकी अनपायिनी भक्ति और निरन्तर सत्सङ्गका वरदान आपसे पुन: पुन: माँगता हूँ, आप प्रसन्न होकर वर दीजिए।

रघुनंद निकंदय द्वंद्वघनं।
महिपाल बिलोकय दीनजनं॥
बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥

श्रीशङ्करजी स्तुति करके कैलाश चले गये। श्रीरामजीने श्रीसुग्रीवादि वानरोंको सब प्रकारसे सुखद निवास दिलवाए।

इस प्रकार छ: महीने बीत गये। सब लोग गृह भूल गये। 'गृह' शब्द उपलक्षण है, अर्थात् पुत्र, कलत्र, राज्य, व्यवसाय सब कुछ भूल गये। स्वप्नमें भी स्मृति नहीं आती है जिस प्रकार सन्तोंके मनमें परद्रोह करनेकी बात कभी नहीं आती है। परद्रोह करनेवाला सन्त नहीं दम्भी होता है।

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं।
जिमि परद्रोह संत मन माहीं॥

एक दिन श्रीरामचन्द्रजी सबको बुलाकर स्नेहपूर्वक अपने पास बिठाकर भक्तोंको सुख देनेवाले कोमल वचन बोले—हे सखाओं! आप लोगोंसे अधिक मुझे कोई प्यारा नहीं है। श्रीभरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, राज्य, सम्पत्ति, श्रीसीताजी, शरीर, घर, परिवार और स्नेही ये सब मुझे प्रिय तो हैं; परन्तु आपलोगोंके समान प्रिय नहीं हैं। यह बात असत्य नहीं है, यह मेरा स्वभाव है। सेवक तो सबको ही प्रिय होते हैं; परन्तु मेरा तो दासपर अतिशय प्रेम है। हे मित्रों! अब आपलोग अपने अपने घर पधारें। वहाँपर दृढ़ नियमसे मेरा भजन करना। मुझे सर्वव्यापक और सबका हितैषी जानकर अत्यन्त प्रेम करना। वियोगी भक्तोंके लिये सरकारका यह उपदेश मननीय है।

अनुज राज संपति बैदेही।
देह गेह परिवार सनेही॥
सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना।
मृषा न कहउँ मोर यह बाना॥
सब कें प्रिय सेवक यह नीती।
मोरें अधिक दास पर प्रीती॥
अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम॥

श्रीठाकुरजीने सबको स्नेहपूर्वक वस्त्राभूषण प्रदान किये। श्रीअङ्गदजीने बड़ी विनम्र और करुण प्रार्थना की। श्रीअङ्गदकी प्रार्थनामें अपूर्व कार्पण्यता है। वे कहते हैं—हे स्वामिन्! मेरे प्रभु, गुरु, पिता और माता सब आप ही हैं। मैं आपके इन चरणकमलोंको छोड़कर कहाँ जाऊँ?

मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता।
जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥

बुद्धिमान् अङ्गदमें बुद्धिका अभिमान नहीं है। वे कहते हैं—

बालक ग्यान बुद्धि बल हीना।
राखहु सरन नाथ जन दीना॥

श्रीअङ्गदने अपनी करुण प्रार्थनासे प्रभुको

रुला दिया *'सजल नयन राजीव।'* फिर भी प्रभुने अपनेको सँभालकर अपने हृदयकी माला, वस्त्र और मणि बालिनन्दनको पहनाकर अनेक प्रकारसे समझाकर विदा कर दिया।

निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ॥

इन्द्रने बालिको अपने हृदयका हार दिया था आज श्रीरामजीने अङ्गदजीको अपने हृदयका हार देकर उनको सब प्रकारसे निर्भय कर दिया। अङ्गदकी आशा अन्तिम क्षण तक बनी रही। तीन पंक्तियाँ बड़ी भावपूर्ण हैं इनका अनुशीलन करें।

अंगद हृदयँ प्रेम नहिं थोरा।
फिरि फिरि चितव राम कीं ओरा॥
बार बार कर दंड प्रनामा।
मन अस रहन कहहिं मोहि रामा॥
राम बिलोकनि बोलनि चलनी।
सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी॥

श्रीहनुमान्‌जीके मनमें विचित्र सा ऊहापोह है। वे सोचते हैं श्रीसीतारामकी मुझपर अपार कृपा है। एतावता प्रभुने मुझे जानेके लिये नहीं कहा; परन्तु कपीश सुग्रीवजीने रहनेके लिये नहीं कहा। मैं इनकी आज्ञाके बिना रह नहीं सकता। श्रीहनुमान्‌जीने श्रीसुग्रीवसे श्रीरामजीकी सेवाके लिए दस दिनका अवकाश माँगा।

दिन दस करि रघुपति पद सेवा।
पुनि तव चरन देखिहउँ देवा॥

श्रीसुग्रीवने कहा—हे भाग्यवान् हनुमान्! आजसे तुम एकमात्र श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके सेवक हो। आजसे तुम मेरी सेवासे मुक्त हो गये। हे पुण्यपुञ्ज! अब तुम जीवनपर्यन्त श्रीरामजीकी सेवा करो। हे हनुमान्! आज मैं अपना खजाना खाली करके श्रीरामके चरणोंमें सर्वस्व समर्पण कर रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि श्रीरामचन्द्रको तुम्हारी आवश्यकता है। अतिशय करुण दृश्य उपस्थित हो गया।

पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा।
सेवहु जाइ कृपा आगारा॥

श्रीहनुमान्‌जी कृतकृत्य हो गये—निहाल हो गये। उनके मुखसे कृतज्ञताके शब्द भी नहीं निकल पाये। श्रीअङ्गदने कहा—हे हनुमान्! मेरा एक कार्य तुम्हें सदा ही करना होगा। श्रीरामजीको मेरी बार बार याद कराते रहना।

कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि।
बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि॥

श्रीहनुमान्‌जीने श्रीप्रभुके पास आकर उनसे अङ्गदके प्रेमका वर्णन किया उस समय प्रभु श्रीअङ्गदके प्रेमसरोवरमें डूब गये, मुखसे कुछ बोल नहीं पाये।

अस कहि चलेउ बालिसुत फिरि आयउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत॥

महाकवि भवभूतिने कहा है—

वज्रादपि कठोराणिमृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥

इसी भवभूतिके स्वरमें अपना स्वर मिलाते हुए श्रीगोस्वामीजी भावविह्वल स्वरमें प्रभुकी भावविह्वलताका निरूपण कर रहे हैं।

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि॥

फिर श्रीठाकुरजीने *'सदा रहेहु पुर आवत जाता'* कहकर निषादराजको विदा कर दिया।

श्रीगोस्वामीजीने रामराज्यका बहुत सुन्दर

वर्णन किया है। श्रीरामजीके राज्यपर बैठनेसे त्रैलोक्य सुखी हो गया, सारे शोक निवृत्त हो गये। कोई किसीसे शत्रुता नहीं करता। श्रीरामजीके प्रतापसे वैषम्य नष्ट हो गया। सब लोग अपने अपने वर्ण और आश्रमके अनुकूल धर्मका पालन करते हुए वैदिक मार्गका अनुसरण करते हैं। एतावता उन्हें न किसी बातका भय है, न शोक है और न रोग ही सताता है।

राम राज बैठें त्रैलोका।
हरषित भए गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई।
राम प्रताप बिषमता खोई॥
बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥

रामराज्यमें दैहिकादि तीनों ताप किसीको सन्तप्त नहीं करते। सब अपने अपने धर्मोंपर चलते थे इसलिए पारस्परिक प्रेम था। धर्मके चार चरण हैं—तप, शौच, दया और दान।

तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः।

(श्रीमद्भागवत १। १७। २४)

श्रीरामराज्यमें ये चारों चरण सत्ययुगकी भाँति जगतमें परिपूर्ण हो रहे हैं। रामराज्यके समस्त नरनारी रामभक्ति सम्पन्न हैं।

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं।
पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
राम भगति रत नर अरु नारी।
सकल परम गति के अधिकारी॥

रामराज्यके सुख और सम्पत्तिका वर्णन अनन्त मुखधारिणी श्रीसरस्वतीजी और सहस्रमुख शेष भी नहीं कर सकते हैं।

राम राज कर सुख संपदा।
बरनि न सकइ फनीस सारदा॥

श्रीरामराज्यमें सभी पुरुष एकपत्नीव्रती हैं। स्त्रियाँ भी मन, वचन, कर्मसे पतिकी हितकारिणी हैं।

एकनारि ब्रत रत सब झारी।
ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

श्रीरामजीने अनेकों अश्वमेध यज्ञ किये। श्रीसीताजी सदा श्रीरामजीके अनुकूल रहती हैं। यद्यपि घरमें अनेक दास दासियाँ हैं तथापि श्रीसीताजी घरकी सब सेवा अपने हाथसे करती हैं। अपने प्राणप्रियतम श्रीरामजीकी आज्ञाका अनुसरण करती हैं। श्रीरामजीके समस्त भ्राता श्रीरामजीके अनुकूल रहकर उनकी सेवा करते हैं और श्रीरामजी भी सब भाइयोंपर प्रेम करते हैं। श्रीसीताजीके कुश और लव दो पुत्र उत्पन्न हुए। दोनों ही पुत्र विजयी, विनयी और गुणी हैं। दोनों अत्यन्त सुन्दर हैं। अन्य भाइयोंके भी दो दो पुत्र उत्पन्न हुए। श्रीनारदादि और श्रीसनकादि मुनीश्वर सब अयोध्यानाथका दर्शन करनेके लिये प्रतिदिन श्रीअयोध्या आते हैं।

नारदादि सनकादि मुनीसा।
दरसन लागि कोसलाधीसा॥
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं।
देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं॥

श्रीगोस्वामीजीने नगरका और नगरके वैभवका बहुत सुन्दर वर्णन किया है। सांसारिक वैभवोंकी अधिष्ठातृ देवी श्रीलक्ष्मीजीके स्वामी जहाँ राजा

हों उस नगरका वर्णन क्या किया जा सकता है? अणिमादि सिद्धियाँ और समस्त सुख सम्पत्तियाँ अयोध्यामें सर्वदा छायी रहती हैं।

रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ॥

श्रीरामजीके प्रतापरूपी प्रचण्ड सूर्यका रूपक भी बहुत सुन्दर वर्णन किया है।

एक बार भाइयोंके सहित श्रीरामजी सुन्दर उपवन देखने गये, उनके साथमें श्रीहनुमान्‌जी भी थे। उसी समय एकान्त जानकर श्रीब्रह्माजीके मानसपुत्र सनकादि चारों भाई आये। वे सदा दिगम्बर रहते थे। उनको रामकथा सुननेका ही एकमात्र व्यसन था।

आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं।
रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं॥

श्रीरामजीने उनको आते देखकर हर्षित होकर दण्डवत् किया और स्वागत पूछकर उनके बैठनेके लिये अपना पीताम्बर बिछा दिया।

देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह॥

श्रीठाकुरजीने कहा—हे मुनीश्वरों! आज मैं धन्य हो गया। अत्यन्त भाग्यसे सत्सङ्गकी प्राप्ति होती है। सत्सङ्गसे अनायासेन जन्म मृत्युका चक्र नष्ट हो जाता है।

बड़े भाग पाइब सतसंगा।
बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा॥

सनकादिकोंने प्रभुकी स्तुति करके वर याचना की। वे कहते हैं—हे प्रभो! आप परमानन्दस्वरूप, कृपाके धाम और मनके अभीष्टको पूर्ण करनेवाले हैं। हे भक्तवाच्छाकल्पतरो! आप अपनी अनपायिनी प्रेमाभक्ति हमको प्रदान करें।

परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम॥

बार बार सप्रेम स्तुति करके अभीष्ट वर प्राप्त करके सनकादि ब्रह्मलोक चले गये। उनके जानेके बाद सब भाइयोंने श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम किया। सब लोग भगवान्‌की अमृतस्यन्दिनी वाणीको श्रवण गोचर करके अपने जीवनको कृतार्थ करना चाहते हैं; परन्तु प्रश्न करनेका साहस न होनेके कारण सबके सब श्रीहनुमान्‌जीका मुख देख रहे हैं। इससे यह सिद्ध हो गया कि भगवत्कृपा प्राप्तिके लिये श्रीहनुमान्‌जीके समान माध्यम संसारमें किसीके लिये कोई नहीं है।

पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं।
चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं॥

श्रीहनुमान्‌जीकी कृपासे श्रीभरतजीने प्रभुसे कहा—हे प्रभो! हमलोग सन्त और असन्तका भेद सुनना चाहते हैं। हे प्रणतपाल! आप हमें समझाकर बतावें।

संत असंत भेद बिलगाई।
प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई॥

श्रीरामजीने कहा—हे भैया! सन्तों और असन्तोंकी करनी ऐसी है जैसे कुल्हाड़ी और चन्दनका आचरण होता है। कुल्हाड़ी चन्दनको काटती है; किन्तु चन्दन अपने सुगन्ध गुणसे उसके मुखको सुगन्धित कर देता है। इसी गुणके कारण चन्दन देवताओंके मस्तकपर चढ़ता है और संसार उसको प्रिय मानता है और कुल्हाड़ीके मुखको आगमें जलाकर, घनसे पीटा जाता है।

संत असंतन्हि कै असि करनी।
जिमि कुठार चंदन आचरनी॥

काटइ परसु मलय सुनु भाई।
निज गुन देइ सुगंध बसाई॥
ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड॥

हे भैया! सन्त सबको सम्मान देता है और स्वयं मानकी अपेक्षा नहीं करता। हे भरत! ऐसे अमानी सन्त मेरे प्राणोंके समान हैं, वे निष्काम होते हैं और मेरे नामके परायण होते हैं।

सबहि मानप्रद आपु अमानी।
भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥
बिगत काम मम नाम परायन।
सांति बिरति बिनती मुदितायन॥

हे भैया! असन्त जब किसीकी बड़ाई सुनते हैं तो ऐसी ठंडी साँस लेते हैं मानों उन्हें जूड़ी आ गयी हो और जब किसीकी विपत्ति देखते हैं तब ऐसे सुखी होते हैं मानों संसारका राज्य मिल गया हो।

काहू की जौं सुनहिं बड़ाई।
स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
जब काहू कै देखहिं बिपती।
सुखी भए मानहुँ जग नृपती॥

हे भरत! असन्त माता पिता, गुरु और ब्राह्मण किसीको नहीं मानते हैं। वे स्वयं तो बिगड़े हुए हैं ही अपने सङ्गसे दूसरोंको भी बिगाड़ देते हैं।

मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं।
आपु गए अरु घालहिं आनहिं॥

हे भैया! परहितके समान कोई धर्म नहीं है और परपीड़ाके समान कोई नीचता—पाप नहीं है। समस्त पुराणों और वेदोंका यह निर्णीत सिद्धान्त है।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥
निर्नय सकल पुरान बेद कर।
कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर॥

इस प्रकार श्रीरामजीने चार दोहोंमें सन्तों और असन्तोंके लक्षण कहे हैं। श्रीमुख वचन सुनकर सब भाई और श्रीहनुमान्‌जी प्रसन्न हो गये।

एक बार श्रीरामजीने कृपा करके अपने नगरवासियोंको बुलाया। गुरु, ब्राह्मण और अन्य सज्जन उस सभामें आये। श्रीठाकुरजीने चार दोहोंमें अपने अयोध्यावासियोंको उपदेश दिया है। इसको सन्तलोग 'पुरजनोपदेश' किंवा 'पुरजन गीता' कहते हैं। श्रीरामजीने कहा—हे समस्त नगरवासियों! मेरी बात सुनिये। वही मेरा सेवक है और वही प्रियतम है जो मेरा अनुशासन माने। हे भाई! यदि मैं कुछ अनीतिकी बात कहूँ तो आपलोग निर्भय होकर मुझे रोक देना। हे सज्जनों! यह देवदुर्लभ मनुष्यका शरीर बड़े भाग्यसे मिला है। यह शरीर साधनका धाम और मोक्षका द्वार है। इस शरीरको प्राप्त करके जिसने परलोक नहीं बना लिया वह परलोकमें दुःख पाता है और सिर पीट पीटकर पश्चात्ताप करता है तथा काल, कर्म तथा ईश्वरको मिथ्या दोष लगाता है।

बड़े भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।
पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

हे पुरजनों! इस मानव शरीरको प्राप्त करके जो विषयोंमें मन लगाते हैं वे मूर्ख अमृतके बदलेमें विष ले लेते हैं। जो स्पर्शमणिको प्राप्त करके विनिमयमें घुँघुची स्वीकार करते हैं उनको कोई कभी भला नहीं कहता।

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई।
गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

हे भैया! यह मनुष्य शरीर किसी कर्मका परिणाम नहीं है, यह तो भगवान्‌की वात्सल्यमयी कृपाका परिणाम है। चौरासी लाख योनियोंमें घूमते घूमते जब जीव थक जाता है। श्रान्त, क्लान्त, परिश्रान्त हो जाता है तब प्रभु कृपा करके वत्सलपिताकी भाँति अपने विशेष अधिकारसे उसके सब पापोंको क्षमा करके मानव शरीर प्रदान करते हैं। एतावता इसका प्रयोग भजनमें करना चाहिये।

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

हे पुरजनों! यदि दोनों लोकोंमें सुख प्राप्त करना चाहते हो तो मेरी भक्ति करो। ज्ञानकी प्राप्तिमें अनेकों बाधायें हैं। उसका साधन भी कठिन है। उस कष्टसाध्य ज्ञानको कोई प्राप्त भी कर ले तो वह भी भक्ति हीन होनेसे मुझे प्रिय नहीं होता है।

करत कष्ट बहु पावइ कोऊ।
भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥

और भक्तिमार्गमें कौन सा परिश्रम है? इसमें योग, यज्ञ, जप, तप और उपवास किसीकी आवश्यकता नहीं है। हाँ, इसमें सरल स्वभाव, कुटिलतारहित मन, यथा लाभसन्तोष आवश्यक है।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा।
जोग न मख जप तप उपवासा॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई।
जथा लाभ संतोष सदाई॥

हे सज्जनों! जो मेरा दास कहलाकर किसी मनुष्यकी आशा करता है तो तुम्हीं कहो क्या वह विश्वास योग्य है?

मोर दास कहाइ नर आसा।
करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥

श्रीभगवान्‌का अमृतमय उपदेश श्रवण करके सबने कृपालु श्रीरामके चरण पकड़ लिये। और कहा कि आपके बिना ऐसी शिक्षा हमें कौन दे सकता है; माता पिता भी स्वार्थपरायण हैं। हे असुरारे! नि:स्वार्थ उपकार करनेवाले तो दो ही हैं—एक सरकार, दूसरे आपके सेवक।

हेतु रहित जग जुग उपकारी।
तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

फिर श्रीरामजीकी आज्ञा प्राप्त करके प्रभुकी सुन्दर चर्चा करते हुये सब अपने अपने घर गये।

एक बार महर्षि वसिष्ठजी एकान्तमें श्रीरामजीके पास आये। श्रीरामजीने उनका अत्यन्त आदर सत्कार किया और उनके श्रीचरणोंका प्रक्षालन करके चरणामृत पान किया। श्रीठाकुरजीने गुरुदेवके आदर करनेका मार्गदर्शन किया है।

अति आदर रघुनायक कीन्हा।
पद पखारि पादोदक लीन्हा॥

श्रीवसिष्ठजीने कहा—हे रघुनन्दन! मैंने आपकी कृपा प्राप्त करनेके लिये ही अपने पिताकी आज्ञासे सूर्यवंशकी पुरोहिती स्वीकार की। हे रघुनन्दन! प्रेमभक्ति रूपी निर्मल जलके बिना अन्त:करणका मल कभी नहीं नष्ट होता।

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई।
अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥

हे नाथ! हे श्रीरामजी! मैं आपसे एक वर माँगता हूँ, आप कृपा करके दीजिये कि आपके श्रीचरणकमलोंमें मेरा स्नेह जन्म जन्मान्तरमें कभी कम न हो।

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥

इतना कहकर श्रीवसिष्ठजी घर आ गये।

करुणावरुणालय श्रीरामजी श्रीहनुमान्‌जी और श्रीभरतजी आदि भ्राताओंको साथ लेकर नगरके बाहर गये। वहाँ उन्होंने हाथी, रथ और घोड़े मँगाये और जिस जिसने चाहा उस उसको उचित जानकर दिये। संसारके समग्र श्रमोंका अपहरण करनेवाले प्रभुने श्रमका अनुभव किया और शीतल अमराईमें गये। वहाँ श्रीभरतने अपना वस्त्र बिछा दिया। प्रभु उसपर आसीन हो गये और सब भ्राता उनकी सेवा करने लगे। पवननन्दन श्रीहनुमान्‌जी पवन करने लगे। उनका शरीर रोमाञ्चकण्टकित हो गया और नेत्रोंमें प्रेमाश्रु समुच्छलित हो गये। श्रीशङ्करजी कहते हैं—हे गिरिजे! श्रीहनुमान्‌जीके समान कोई बड़भागी नहीं है और उनके समान कोई श्रीरामचरणानुरागी भी नहीं है, जिनके प्रेम और सेवाकी स्वयं सरकारने बार बार श्लाघा की है।

हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई।
गए जहाँ सीतल अवँराई॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई।
बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई॥
मारुतसुत तब मारुत करई।
पुलक बपुष लोचन जल भरई॥
हनूमान सम नहिं बड़भागी।
नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई।
बार बार प्रभु निज मुख गाई॥

उसी समय श्रीनारदजी हाथमें वीणा लिये हुए आये। वे रामजीकी सुन्दर और सदा नवनवायमान कीर्ति गाने लगे।

तेहिं अवसर मुनि नारद आए करतल बीन।
गावन लगे राम कल कीरति सदा नबीन॥

श्रीनारदजीने नव पङ्क्तियोंमें भगवान्‌की बड़ी सुन्दर स्तुति की है। वे कहते हैं—हे कमलनयन! मेरी ओर देखिये। हे हरि! आपका श्रीविग्रह नीलकमलके समान श्याम है। आप कामारि शङ्करके हृदयकमलके रसपान करनेवाले मधुप हैं।

मामवलोकय पंकज लोचन।
कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन॥
नील तामरस स्याम काम अरि।
हृदय कंज मकरंद मधुप हरि॥

श्रीनारदजी प्रेमपूर्वक श्रीरामगुणग्रामका वर्णन करके, शोभाके समुद्र श्रीरामजीको हृदयमें धरकर ब्रह्मलोक चले गये।

प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम।
सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम॥

श्रीशङ्करजी कहते हैं—हे गिरिजे! मैंने श्रीरामजीकी निर्मल कथा यथामति कही। यह पावन कथा श्रीरामधाम देनेवाली हैं। इसको सुननेसे अनपायनी भक्ति मिलती है। मैंने तुम्हें सब कथा सुना दी। अब और क्या कहूँ? श्रीपार्वतीने प्रसन्न होकर कहा—हे त्रिपुरारि! मैं धन्य हूँ, धन्य धन्य हूँ जो मैंने भवभयहारिणी रामकथा सुनी है।

धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी।
सुनेउँ राम गुन भव भय हारी॥

हे नाथ! आपके मुखरूपी चन्द्रमासे निर्झरित रामकथामृतका श्रवण पुटोंसे पान करके मेरा मन सन्तृप्त नहीं हो रहा है।

नाथ तवानन ससि स्त्रवत कथा सुधा रघुबीर।
श्रवन पुटन्हि मन पान करि नहिं अघात मतिधीर॥

हे स्वामिन्! यह रामकथा जीवनमुक्त, साधक और विषयी तीनोंको आनन्द देनेवाली है। हे प्रभो! आपने जो यह कहा कि यह सुन्दर कथा काकभुशुण्डिजीने गरुड़से कही, सो हे प्रभो! अत्यन्त दुर्लभ हरि भक्ति कौआ कैसे पा गया? यह मुझे समझाकर कहिये और यह भी बताइये कि श्रीरामपरायण ज्ञाननिरत, गुणधाम और धीरबुद्धि भुशुण्डिजीने कौएका शरीर किस कारण पाया? हे कृपालो! उन्होंने यह पावन और सुन्दर चरित्र कहाँ पाया? हे मदनारे! आपने उनसे इस चरित्रको किस प्रकार सुना? महाज्ञानी, सद्गुणोंकी राशि, श्रीहरिके दास और उनके निकट निवासी श्रीगरुड़जीने मुनियोंके समूहको छोड़कर कौएके पास जाकर हरिकथा क्यों सुनी? हे विश्वनाथ! श्रीकाकभुशुण्डि और गरुड़ दोनों हरिभक्तोंका संवाद कैसे हुआ? यह मुझसे कहें।

कहहु कवन बिधि भा संबादा।
दोउ हरिभगत काग उरगादा॥

श्रीपार्वतीजीके प्रश्नको सुनकर श्रीशङ्करजी परम प्रसन्न हुये। उन्होंने कहा—हे देवि! आपका इसके पूर्व दक्षके घरमें अवतार हुआ था। जब आपने दक्षके यज्ञमें अपमानित होकर योगाग्निमें शरीर त्याग दिया तब आपके वियोगमें मैं दुःखी हो गया। उस समय घूमते घूमते मैं सुमेरु पर्वतकी उत्तर दिशामें चला गया, वहाँ नीचाचल पर्वत है वहीं श्रीकाकभुशुण्डिजी रहते हैं। वे वटवृक्षके नीचे श्रीहरिकी कथाओंके प्रसङ्ग कहते हैं। वहाँ अनेकों पक्षी आकर कथा सुनते हैं।

बर तर कह हरि कथा प्रसंगा।
आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा॥

वहाँ जाकर वह दृश्य देखकर मेरे हृदयमें अतिशय आनन्द हुआ। तब मैंने हंसका शरीर धारणकर कुछ कालपर्यन्त वहाँ निवास किया और आदरपूर्वक श्रीरामगुणोंका श्रवण करके कैलास लौट आया।

तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास॥

हे गिरिजे! मैंने यह इतिहास कहा है कि मैं भुशुण्डिजीके पास कैसे और कब गया था। अब वह कथा सुनो, जिस कारणसे गरुड़जी काकभुशुण्डिके पास गये।

गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा।
मैं जेहि समय गयउँ खग पासा॥
अब सो कथा सुनहु जेहि हेतू।
गयउ काग पहिं खग कुल केतू॥

जब श्रीरामजीने रणलीला की, मेघनादने उन्हें नागपाशमें बाँध लिया। तब नारदजीकी प्रेरणासे श्रीगरुड़ने जाकर श्रीरामजीको नागपाशके बन्धनसे मुक्त कर दिया और स्वयं बन्धनयुक्त हो गये। वे सोचने लगे जिसका नाम जपकर मनुष्य संसारबन्धनसे छूट जाते हैं उन्हीं रामको एक तुच्छ राक्षसने नागपाशसे बाँध लिया और वे स्वयं छूट न सके।

भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥

श्रीगरुड़जीको भयङ्कर मोह हो गया। वे व्याकुल होकर देवर्षि श्रीनारदके पास गये। उन्होंने कल्याण कामनासे चतुरानन ब्रह्माके पास भेजा। श्रीब्रह्माने कहा—हे गरुड़! भगवान्‌की मायाका प्रभाव असीम है, जिसने मुझे भी अनेकों बार नचाया है।

हरि माया कर अमिति प्रभावा।
बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा॥

हे गरुड़! श्रीशङ्करजी श्रीरामजीकी महिमा जानते हैं इसलिये तुम और कहीं न जाकर—न पूँछकर शङ्करजीके पास ही जाओ।

बैनतेय संकर पहिं जाहू।
तात अनत पूछहु जनि काहू॥

श्रीशङ्करजी कहते हैं—हे पार्वति! मैं कुबेरके पास जा रहा था और तुम कैलाश पर थीं। उस समय गरुड़ने आकर सादर मुझे प्रणाम किया और अपना सन्देह सुनाया। मैंने सप्रेम उनसे कहा कि हे विनतानन्दन! तुम मुझे मार्गमें मिले हो। मैं तुम्हें किस प्रकार समझाऊँ? तुम्हारे समग्र सन्देहका नाश तभी होगा जब दीर्घकालपर्यन्त सत्सङ्ग किया जाय।

मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही।
कवन भाँति समुझावौं तोही॥
तबहिं होइ सब संसय भंगा।
जब बहु काल करिअ सतसंगा॥

हे भैया! अब मैं तुम्हें वहाँ भेजता हूँ जहाँ प्रतिदिन हरिकथा होती है। हे गरुड़! सत्सङ्गके बिना हरिकथा सुननेको नहीं मिलती, हरिकथाके बिना मोहकी निवृत्ति नहीं होती और मोहकी निवृत्तिके विना श्रीरामजीके चरणोंमें दृढ़ अनुराग नहीं होता और विना अनुरागके केवल योग, तप, ज्ञान और वैराग्य आदिसे श्रीरामजी नहीं मिलते हैं।

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥
मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा।
किएँ जोग तप ग्यान बिरागा॥

श्रीशङ्करजी कहते हैं कि हे गरुड़! उत्तर दिशामें एक सुन्दर नीलपर्वत है। वहाँ परम सुशील श्रीकाकभुशुण्डिजी रहते हैं। वे परम रामभक्त, ज्ञानी और गुणोंके धाम हैं। वे निरन्तर श्रीरामकथा कहते हैं। तुम वहाँ जावो। श्रीगरुड़जी शङ्करजीके चरणोंमें प्रणाम करके श्रीकाकभुशुण्डिजीके आश्रमपर आये। नीलपर्वतको देखकर ही उनका मन प्रसन्न हो गया और सब माया, मोह तथा सोच जाता रहा।

गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडा।
मति अकुंठ हरि भगति अखंडा॥
देखि सैल प्रसन्न मन भयऊ।
माया मोह सोच सब गयऊ॥

जो कार्य श्रीनारदजी, ब्रह्माजी और शङ्करजीके दर्शन एवं सम्भाषणने नहीं किया वह कार्य श्रीकाकभुशुण्डिजीके नील पर्वतके दर्शन मात्रसे सम्पन्न हो गया। श्रीभुशुण्डिजी कथा प्रारम्भ करना चाहते थे उसी समय श्रीगरुड़ पहुँच गये। पक्षिसम्राट्‌को आते देखकर समस्त समाजके सहित श्रीकाकभुशुण्डिजी प्रसन्न हो गये। अत्यन्त आदर करके सप्रेम पूजा करके श्रीकाकजी मधुर वचन बोले।

करि पूजा समेत अनुरागा।
मधुर बचन तब बोलेउ कागा॥

काकका मधुर वचन बोलना श्रीरामचरितमानसकी विशेषता है। श्रीकाकजीने कहा—हे नाथ! आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया। हे खगेश! अब आप आज्ञा दें, आपके आनेका क्या प्रयोजन है? उसे मैं सम्पन्न करूँ।

नाथ कृतारथ भयउँ मैं तव दरसन खगराज।
आयसु देहु सो करौं अब प्रभु आयहु केहि काज॥

बड़ी कोमल वाणीमें श्रीगरुड़जीने कहा—आप तो सदा कृतार्थरूप हैं; क्योंकि आपकी श्लाघा श्रीशङ्करजी आदरपूर्वक करते हैं।

सदा कृतारथ रूप तुम्ह कह मृदु बचन खगेस।
जेहि कै अस्तुति सादर निज मुख कीन्हि महेस॥

हे तात! जिस कार्यके लिये मैं आया था वह सम्पन्न हो गया और आपका दर्शन भी मिल गया। आपके परम पावन आश्रमका दर्शन करके ही मेरा मोह और अनेक प्रकारके संशय तथा भ्रम नष्ट हो गये। अब आप हमें श्रीरामकथा सुनानेकी कृपा करें।

सुनहु तात जेहि कारन आयउँ।
सो सब भयउ दरस तव पायउँ॥
देखि परम पावन तव आश्रम।
गयउ मोह संसय नाना भ्रम॥
अब श्रीराम कथा अति पावनि।
सदा सुखद दुख पुंज नसावनि॥
सादर तात सुनावहु मोही।
बार बार बिनवउँ प्रभु तोही॥

श्रीकाकभुशुण्डिजी उत्साहपूर्वक श्रीरामकथा कहने लगे। श्रीशङ्करजी कहते हैं—हे भवानि! काकभुशुण्डिजीने वह सब कथा श्रीगरुड़को सुना दी, जो कथा मैंने तुमको विस्तारपूर्वक सुनायी है।

कथा समस्त भुसुंड बखानी।
जो मैं तुम्ह सन कही भवानी॥

सम्पूर्ण श्रीरामकथा सुनकर श्रीगरुड़जीने कहा—हे काककुलशिरोमणे! आपके श्रीमुखसे समग्र रामकथा श्रवण करके मेरा मोह निवृत्त हो गया। आपकी कृपासे श्रीरामजीके श्रीचरणोंमें अनुराग हो गया।

गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक॥

श्रीगरुड़ने कहा अब मैं अपने भ्रमको अपना हितकारी मानता हूँ। जो व्यक्ति सूर्यके प्रचण्ड आतपसे बहुत व्याकुल होता है वही वृक्षकी छायाका सुख जानता है।

जो अति आतप ब्याकुल होई।
तरु छाया सुख जानइ सोई॥

जिसे श्रीरामचन्द्रजी कृपा करके देखते हैं उसे ही विशुद्ध सन्त मिलते हैं।

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही।
चितवहिं राम कृपा करि जेही॥

श्रीगरुड़की अनुरागसानी वाणी सुनकर श्रीकाकजी बहुत प्रसन्न हुए। श्रीशङ्करजी कहते हैं—हे उमा! सुमति, सुशील, शुचि, कथारसिक और हरिभक्त श्रोताको प्राप्त करके सज्जनलोग अत्यन्त गुप्त रहस्य भी प्रकाशित कर देते हैं।

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास॥

श्रीभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़जी! आपने जो अपने मोहकी बात कही उसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। हे गोसाईं! मोहने किसको अन्धा नहीं किया? संसारमें कामने किसको नहीं नचाया?

तृष्णाने किसे पागल नहीं बनाया? क्रोधने किसके हृदयको दग्ध नहीं किया? लोभने किसकी विडम्बना नहीं की? श्रीमदने किसको वक्र नहीं किया? प्रभुताने किसको वधिर नहीं किया? ऐसा कौन है जिसको मृगनैनीके नयनबाणने आहत नहीं किया? गुणोंका किया हुआ सन्निपात किसे नहीं हुआ? ममताने किसका यश नहीं नष्ट किया? मत्सरने किसको कलङ्क नहीं लगाया? मानमदसे कौन बचा है? यौवनज्वरने किसे नहीं सन्तप्त किया? शोक रूप पवनने किसको नहीं प्रकम्पित किया? चिन्तारूपी नागिनने किसको नहीं डसा? संसारमें ऐसा कौन है जिसे माया नहीं व्याप्त हुई? किसकी शरीररूपी लकड़ीको मनोरथरूपी घुन नहीं लगा? सुतैषणा, वित्तेषणा और लोकैषणाने किसकी बुद्धिको मलिन नहीं किया? यह सब मायाका बड़ा प्रबल परिवार है।

हे गरुड़जी! जिस प्रकार मुझे मोह हुआ वह कथा भी आपको सुनाता हूँ। श्रीरामजीकी कृपा और अपनी जड़ताकी बात कहता हूँ सावधान होकर सुनें।

राम कृपा आपनि जड़ताई।
कहउँ खगेस सुनहु मन लाई॥

श्रीरामजी जब जब मनुष्य शरीर धारण करते हैं और अपने भक्तोंके लिए अनेक प्रकारकी लीलाएँ करते हैं। तब तब मैं श्रीअयोध्याजी जाकर अपने स्वामी श्रीरामजीके बालचरित्रका दर्शन करता हूँ और पाँच वर्षतक प्रलुब्ध होकर वहीं रहता हूँ; क्योंकि मेरे इष्टदेव कोटि कोटि कन्दर्पदर्पदलनपटीयान् बालक रामजी हैं। अपने प्रभुकी शोभा देखकर मैं अपने नेत्रोंको सुफल करता हूँ।

इष्टदेव मम बालक रामा।
सोभा बपुष कोटि सत कामा॥
निज प्रभु बदन निहारि निहारी।
लोचन सुफल करउँ उरगारी॥

लड़कपनमें वे जहाँ जहाँ फिरते हैं मैं भी छोटे वायसका शरीर धारण करके वहाँ वहाँ उनके साथ उड़ता हूँ। आँगनमें उनकी जो जूठन पड़ती है वही उठाकर मैं खा लेता हूँ।

लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं तहँ तहँ संग उड़ाउँ।
जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ॥

प्रस्तुत प्रसङ्गमें श्रीभुशुण्डिजीने अपने इष्टदेवके बालस्वरूपका अनोखा वर्णन किया है। झीनी और महीन झँगुली प्रभुके श्यामल विग्रहपर शोभा दे रही है। उनकी किलकनि और चितवनि मुझे बहुत अच्छी लगती है। नृप अजिरविहारी, रूपराशि श्रीरामजी श्रीदशरथके मणिमय प्राङ्गणमें अपना सलोना प्रतिबिम्ब निहारकर नाचने लगते हैं।

पीत झीनि झगुली तन सोही।
किलकनि चितवनि भावति मोही॥
रूपरासि नृप अजिर बिहारी।
नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी॥

वे प्रभु मुझसे अनेक प्रकारके खेल करते हैं। किलकारी मारते हुए मुझे जब पकड़नेके लिये दौड़ते हैं और मैं भाग चलता हूँ तब मुझे पुआ दिखाते हैं। मेरे निकट आनेपर हँसते हैं और भाग जानेपर रोते हैं और जब मैं उनका चरण स्पर्श करनेके लिये पास जाता हूँ तब वे पीछे फिर फिरकर भाग जाते हैं। हे खगेश! प्राकृत

बालकोंकी भाँति लीला देखकर मुझे मोह हो गया कि सच्चिदानन्दघन प्रभु यह कैसी लीला कर रहे हैं।

किलकत मोहि धरन जब धावहिं।
चलउँ भागि तब पूप देखावहिं॥
आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं॥
प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह॥

हे गरुड़! मनमें इतनी शङ्का लाते ही श्रीरामजीकी प्रेरणासे मुझे माया व्याप्त हो गयी। उस कौतुकका मर्म किसीने नहीं जाना। न छोटे भाइयोंने जाना और न माता पिताने ही जाना।

तेहि कौतुक कर मरमु न काहूँ।
जाना अनुज न मातु पिताहूँ॥

मेरे प्रभु मुझे पकड़नेके लिए दौड़े और मैं भाग चला। मैं ब्रह्मलोक तक उड़ते उड़ते चला गया और जब पीछे मुड़कर देखा तो श्रीरामकी भुजा और मुझमें केवल दो अङ्गुलका ही अन्तर था। अब मैं भयभीत हो गया तब मैंने आँखें मूँद लीं। फिर नेत्र खोलते ही श्रीअयोध्याजी पहुँच गया। मुझे देखकर श्रीरामजी मुसकराने लगे। उनके हँसते ही मैं तत्काल उनके मुखमें चला गया।

मूदेउँ नयन त्रसित जब भयऊँ।
पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ॥
मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं।
बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं॥

फिर उनके पेटमें हे गरुड़जी! मैंने वह देखा, जो कभी न देखा था, न सुना था और जो मनमें भी नहीं समा सकता था।

जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ॥

मुझे व्याकुल देखकर कृपालु श्रीरामजी हँस दिये और मैं उनके मुखसे बाहर आ गया। श्रीरामजी मुझसे फिर वही बालचरित्र करने लगे। मैं अनेकों प्रकारसे मनको समझाता था; परन्तु शान्ति नहीं मिलती थी। मैं 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' पुकारकर भूमिपर गिर पड़ा। तब मेरे कृपालु स्वामीने अपनी मायाकी प्रभुता रोक दी। प्रभुने मेरे मस्तकपर अपना करकमल रख दिया। दीनदयालु श्रीरामभद्रने मेरा समस्त क्लेश हरण कर लिया।

प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी।
निज माया प्रभुता तब रोकी॥
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ।
दीनदयाल सकल दुख हरेऊ॥

मेरे उदार स्वामीने मुझसे कहा—हे काकभुशुण्डि! तुम मुझे अत्यन्त प्रसन्न जानकर वर माँगो। अणिमादिक सिद्धियाँ, अन्य ऋद्धियाँ, मोक्ष, ज्ञान, विवेक, वैराग्य, विज्ञान, मुनि दुर्लभ गुण और भी जो मन हो वह माँग लो।

काकभसुंडि मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि॥
ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना।
मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना॥
आजु देउँ सब संसय नाहीं।
मागु जो तोहि भाव मन माहीं॥

हे गरुड़जी! मैंने सोचा कि प्रभुने मुझे सब कुछ देनेके लिये कहा; परन्तु अपनी भक्ति देनेके

लिये नहीं कहा। और भक्तिसे रहित सब गुण और सब सुख उसी प्रकार फीके हैं जिस प्रकार रामरस—नमकके बिना बहुत प्रकार भोजनके पदार्थ।

भगति हीन गुन सब सुख ऐसे।
लवन बिना बहु बिंजन जैसे॥

मैंने वर याचना की—हे प्रभो! मैं अपना अभीप्सित वर माँगता हूँ। आप उदार हैं और अन्तर्यामी हैं। आपकी जिस अविरल एवं विशुद्ध भक्तिको श्रुति और पुराण गाते हैं, जिसे योगीश्वर मुनि खोजते हैं और प्रभुकी कृपासे कोई विरला ही पाता है। हे भक्तवाञ्छाकल्पतरो! हे शरणागतहितकारी! हे कृपानाथ नाथ! हे सुखधाम! हे श्रीराम! दया करके मुझे अपनी वही भक्ति दीजिए।

मन भावत बर मागउँ स्वामी।
तुम्ह उदार उर अंतरजामी॥
अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥
भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुख धाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम॥

श्रीरामचन्द्रजी 'एवमस्तु' कहकर सुखदायक वचन बोले—हे कौआ! सुन, तू सहज चतुर है। ऐसा वरदान क्यों न माँगे?

एवमस्तु कहि रघुकुलनायक।
बोले बचन परम सुखदायक॥
सुनु बायस तैं सहज सयाना।
काहे न मागसि अस बरदाना॥

फिर श्रीरामजीने कहा कि मैं तुम्हें अपना सिद्धान्त सुनाता हूँ। भक्तिहीन ब्रह्मा ही क्यों न हो, वह मुझे सब जीवोंके समान प्रिय हैं; परन्तु भक्तिमान् अत्यन्त नीच प्राणी भी मुझे प्राणोंके समान प्रिय हैं यह मेरी घोषणा है।

भगति हीन बिरंचि किन होई।
सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवंत अति नीचउ प्रानी।
मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥

श्रीभगवान् कहते हैं—एक पिताके अनेक पुत्र होते हैं। उनमें कोई पण्डित, कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी, कोई धनी, कोई शूरवीर, कोई दानी, कोई सर्वज्ञ, कोई धर्मरत होता है। यद्यपि पिताका सभीपर प्रेम होता है तथापि जो पुत्र मन वचन कर्मसे पिताका भक्त होता है। स्वप्नमें भी अन्य धर्म नहीं जानता है वह पुत्र पिताको प्राणोंके समान प्रिय होता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण विश्व मेरा ही उत्पन्न किया हुआ है अतः सबपर मेरी समान कृपा है; परन्तु जो मद मायाका परित्याग करके मन, वचन और शरीरसे मेरा भजन ही करता है, वह पुरुष हो, नपुंसक हो, स्त्री हो अथवा जड़ चेतन कोई जीव हो, कपटका परित्याग करके जो सर्वभावसे मेरा भजन करता है वही मेरा परम प्रिय है।

अखिल बिस्व यह मोर उपाया।
सब पर मोहि बराबरि दाया॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया।
भजै मोहि मन बच अरु काया॥
पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

यह विचारकर तुम सब आशा, आश्रयका परित्यागकर मेरा भजन करो। तुम्हें काल कभी

नहीं व्याप्त होगा। इस प्रकार मुझे बहुत प्रकारसे भलीभाँति समझाकर और सुख देकर मेरे स्वामी वही बाललीला करने लगे। श्रीरामजीने आँखोंमें आँसू भरकर मुखको कुछ रूखा सा बनाकर मैया कौसल्याकी ओर देखा कि माँ मुझे भूख लगी है। माता दौड़कर आई और गोदमें लेकर दूध पिलाने लगी तथा श्रीरामजीकी लीलाका गान करने लगी।

बहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई।
लगे करन सिसु कौतुक तेई॥
सजल नयन कछु मुख करि रूखा।
चितइ मातु लागी अति भूखा॥
देखि मातु आतुर उठि धाई।
कहि मृदु बचन लिए उर लाई॥
गोद राखि करावं पय पाना।
रघुपति चरित ललित कर गाना॥

मैं और कुछ समयतक श्रीअयोध्यामें रहकर अपने इष्टदेवकी रसमयी बाललीलाका दर्शन करके प्रभुकी वन्दना करके अपने आश्रममें आ गया। जबसे मुझे मेरे स्वामीने अपनाया तबसे मुझे उनकी माया नहीं व्याप्त हुई। श्रीहरिकी मायाने मुझे जैसे नचाया वह सब गुप्त चरित्र मैंने गाया। हे खगेश! मेरा अनुभव यह है कि बिना हरिभजनके क्लेशकी निवृत्ति नहीं हो सकती है।

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा।
बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा॥

हे पक्षिराज! श्रीरामकी कृपाके बिना श्रीरामजीकी प्रभुताका ज्ञान नहीं होता है। प्रभुता जाने बिना प्रतीति नहीं होती, प्रतीतिके बिना प्रीति नहीं होती और प्रीतिके बिना भक्तिमें दृढ़ता नहीं होती है।

जानें बिनु न होइ परतीती।
बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई।
जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥

गुरुके बिना ज्ञान नहीं हो सकता। श्रीरामभक्तिके बिना क्या सुख मिल सकता है? संतोषके बिना कामनाका नाश नहीं होता और कामनाओंके रहते हुए स्वप्नमें भी सुख नहीं हो सकता है।

बिनु संतोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥

श्रीरामभजनके बिना क्या कामनाएँ मिट सकती हैं? क्या पृथ्वीके बिना पेड़ जम सकता है? क्या बिना विज्ञानके समता आ सकती है? क्या आकाशके बिना कोई अवकाश पा सकता है? श्रद्धाके बिना धर्म नहीं होता है। क्या पृथ्वी तत्त्वके बिना कोई गन्ध पा सकता है? क्या तपस्याके बिना तेजका विस्तार हो सकता है? जलतत्त्वके बिना क्या संसारमें रस हो सकता है? बुधजनोंकी सेवाके बिना क्या शीलकी प्राप्ति हो सकती है? क्या विश्वासके बिना कोई भी सिद्धि हो सकती है? इसी प्रकार श्रीहरिके भजनके बिना भवके भयका नाश नहीं होता।

कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा।
बिनु हरि भजन न भव भय नासा॥

बिना विश्वासके भक्ति नहीं होती, भक्तिके बिना श्रीरामजी प्रसन्न नहीं होते और श्रीरामजीकी कृपाके बिना जीव स्वप्नमें भी विश्राम नहीं पाता।

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥

श्रीरामके नाम, रूप और गुणोंकी कथा अपार और अनन्त है। श्रीरामजी स्वयं अनन्त हैं। मुनिलोग अपनी अपनी मतिके अनुसार श्रीरामजीका गुण गाते हैं। वेद, शेष और शङ्करजी भी उनका पार नहीं पाते हैं। हे गरुड़जी! आपसे लेकर मच्छरपर्यन्त सभी आकाशमें उड़ते हैं; परन्तु आकाशका अन्त नहीं पाते हैं उसी प्रकार श्रीरामजीकी महिमा भी अथाह है, उसका अन्त कौन पा सकता है?

महिमा नाम रूप गुन गाथा।
सकल अमित अनंत रघुनाथा॥
निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं।
निगम सेष सिव पार न पावहिं॥
तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता।
नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा।
तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा॥

श्रीरामजी उपमारहित हैं, उनकी कोई दूसरी उपमा नहीं है। श्रीरामजीके समान तो श्रीरामजी ही हैं।

निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै॥

सुखनिधान, करुणाधाम श्रीराम प्रेमाधीन हैं अतः ममता, मद और मानका परित्याग करके श्रीसीतानाथका भजन करना चाहिये।

भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन॥

श्रीभुशुण्डिजीके सुन्दर वचनोंको श्रवण करके श्रीगरुड़जी प्रसन्न हो गये। उन्होंने अपने पङ्ख फुला लिये।

सुनि भुसुंडि के बचन सुहाए।
हरषित खगपति पंख फुलाए॥

श्रीगरुड़जीने पुनः पुनः श्रीकाकभुशुण्डिके चरणोंमें प्रणाम किया और उन्हें श्रीरामजीके समान जानकर प्रेम बढ़ाया। ब्रह्मा और शङ्करके समान व्यक्ति भी गुरुदेवजीकी कृपाके बिना भव सन्तरण नहीं कर सकता है।

पुनि पुनि काग चरन सिरु नावा।
जानि राम सम प्रेम बढ़ावा॥
गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई।
जौं बिरंचि संकर सम होई॥

श्रीगरुड़जीने कहा—आपने काक शरीर कैसे पाया? यह मुझे समझाकर कहिये।

कारन कवन देह यह पाई।
तात सकल मोहि कहहु बुझाई॥

हे स्वामिन्! आपने रामचरितमानस कैसे पाया और कहाँ पाया? यह भी बताइए। हे नाथ! मैंने श्रीशङ्करजीसे सुना है कि महाप्रलयमें भी आपका नाश नहीं होता है। श्रीशङ्करजी मिथ्या प्रशस्ति तो नहीं कर सकते हैं। हे नाथ! सारा विश्व कालका कलेवा—बालभोग है। आपको वह काल भी व्याप्त नहीं होता इसका कारण क्या है? हे कृपालो! मुझे बताइए, यह ज्ञानका प्रभाव है किंवा योगका बल?

अग जग जीव नाग नर देवा।
नाथ सकल जगु काल कलेवा॥
अंड कटाह अमित लय कारी।
कालु सदा दुरतिक्रम भारी॥

तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल॥

श्रीगरुड़जीने पूछा—हे प्रभो! आपके आश्रममें प्रवेश करते ही मेरा मोह और भ्रम नष्ट हो गया। इसका क्या कारण है? हे नाथ! यह सब प्रेमसहित कहिये।

प्रभु तव आश्रम आएँ मोर मोह भ्रम भाग।
कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग॥

श्रीगरुड़की वाणी सुनकर काकजी प्रसन्न हो गये। उन्होंने अनुरागसे कहा—आपके प्रश्नको सुनकर हमें अनेक जन्मोंका स्मरण हो गया। सब साधनोंका फल श्रीरामपदप्रेम है। उसके बिना कोई कल्याण नहीं प्राप्त कर सकता है। मैंने काक शरीरसे ही रामभक्ति प्राप्त की है एतावता इसपर मेरी ममता अधिक है। जिससे कुछ स्वार्थ होता है उसपर सभी ममता करते हैं।

एहिं तन राम भगति मैं पाई।
ताते मोहि ममता अधिकाई॥
जेहि तें कछु निज स्वारथ होई।
तेहि पर ममता कर सब कोई॥

जीवका सच्चा स्वार्थ यही है कि मन वचन और कर्मसे श्रीरामपादारविन्दोंमें स्नेह हो। वही शरीर पवित्र और सुन्दर है, जिस शरीरको प्राप्त करके श्रीठाकुरजीका भजन किया जाय।

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा।
मन क्रम बचन राम पद नेहा॥
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा।
जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा॥

हे गरुड़जी! जगत्‌में ऐसी कौन योनि है, जिसमें मैंने घूम फिरकर जन्म न लिया हो; परन्तु सम्प्रति मैं बहुत सुखी हूँ। हे पक्षिराज! अब मैं अपने प्रथम जन्मकी कथा कहता हूँ।

पूर्वके एक कल्पमें पापोंका मूल कलियुग था। उस कलियुगमें श्रीअवधमें जाकर शूद्रका शरीर प्राप्त करके मैंने जन्म लिया। मैं मन, वचन और कर्मसे श्रीशङ्करजीका सेवक और अन्य देवताओंका निन्दक था। यद्यपि मैं श्रीअयोध्याजीमें रहता था तथापि मुझे श्रीअयोध्याजीकी महिमाका लेशमात्र ज्ञान नहीं था। श्रीअयोध्याका प्रभाव प्राणी तभी जानता है, जब हाथमें धनुष धारण करनेवाले श्रीरामजी हृदयमें निवास करते हैं।

अवध प्रभाव जान तब प्रानी।
जब उर बसहिं रामु धनुपानी॥

हे गरुड़जी! उस समय कलिकालने सब धर्मोंको ग्रस लिया था। वर्णाश्रमधर्म समाप्त हो गया था। द्विज—ब्राह्मण वेद विक्रय करते थे। हे गोसाईं! सभी मनुष्य स्त्रियोंके विशेष वशमें होकर बन्दरकी तरह नाचते थे।

नारि बिबस नर सकल गोसाईं।
नाचहिं नट मर्कट की नाईं॥

सौभाग्यवती स्त्रियाँ आभूषण नहीं पहनती थीं; परन्तु विधवायें अभिनव शृङ्गार करती थीं। स्त्री पुरुष ब्रह्मज्ञानके बिना दूसरी चर्चा नहीं करते, पर वे लोभके कारण तनिकसे लाभके लिये ब्राह्मण और गुरुकी हत्या कर डालते हैं।

ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात॥

हे गरुड़जी! वेदसे प्रमाणित वैराग्य और

ज्ञानसे युक्त जो हरि भक्तिका मार्ग है उसपर नहीं चलते और अनेकों अभिनव पन्थोंकी कल्पना करते हैं।

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक॥

हे पन्नगारि! कलिकाल पाप और अवगुणोंका घर है; परन्तु उसमें एक महान गुण है कि कलियुगमें बिना ही परिश्रम भवबन्धनसे छुटकारा मिल जाता है। सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें पूजा, यज्ञ और योगसे जो गति मिलती है वही गति कलियुगमें केवल श्रीराम नामसे प्राप्त हो जाती है।

सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार।
गुनउँ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार॥
कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग॥

कृतजुग सब जोगी बिग्यानी।
करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी॥
त्रेताँ बिबिध जग्य नर करहीं।
प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं॥
द्वापर करि रघुपति पद पूजा।
नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥
कलिजुग केवल हरि गुन गाहा।
गावत नर पावहिं भव थाहा॥

हे गरुड़जी! मैं उस कलियुगमें अनेक वर्षोंतक श्रीअयोध्यामें रहा। अकाल पड़नेपर विपत्तिके कारण मैं उज्जैन चला गया। कुछ समयके बाद मैं धनी हो गया। एक सरल और साधु ब्राह्मणसे मैंने शिवमन्त्रकी दीक्षा ले ली। मैं मन्दिरमें जाकर शिवमन्त्र जपता था और विष्णुभक्तोंको देखकर जलता था। एक बार कृपा करके गुरुदेवने मुझे बुलाकर अनेक प्रकारसे नीतिकी शिक्षा दी। उन्होंने कहा—हे पुत्र! शिवजीकी सेवाका फल श्रीरामचरणोंमें अविरल भक्ति है। हे तात! शिवजी और ब्रह्माजी भी रामजीका भजन करते हैं फिर पामर मनुष्यकी बात ही कितनी है? ब्रह्मा और शङ्करजी जिनके चरणोंके अनुरागी हैं, अरे मन्दभाग्य! तू उनसे द्रोह करके सुख पाना चाहता है?

सिव सेवा कर फल सुत सोई।
अबिरल भगति राम पद होई॥
रामहि भजहिं तात सिव धाता।
नर पावँर कै केतिक बाता॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी।
तासु द्रोहँ सुख चहसि अभागी॥

हे गरुड़जी! गुरुदेवकी बात मुझे नहीं अच्छी लगी। एक बार मैं शिवमन्दिरमें बैठकर शिवनाम जप रहा था। उसी समय गुरुदेव वहाँ आये; परन्तु अभिमानके कारण मैंने उन्हें उठकर प्रणाम नहीं किया। मेरे गुरुदेवने कुछ नहीं कहा, उनके हृदयमें तनिक भी क्रोध नहीं था; परन्तु शङ्करजी नहीं सह सके उन्होंने कहा—यद्यपि तेरे गुरुको क्रोध नहीं है तथापि मैं तुझे अवश्य दण्ड दूँगा। अरे पापी! तू गुरुके आनेपर भी उनका सम्मान न करके अजगरकी तरह बैठा रहा एतावता तू सर्प होकर किसी विशाल पेड़के खोखलेमें जाकर रह। श्रीशिवजीका दारुण श्राप सुनकर मेरे गुरुदेवने हाहाकार किया और मुझे काँपता हुआ देखकर उनका हृदय सन्तप्त हो गया। वे सन्तप्त होकर शिवजीके पुरस्तात् दण्डवत् करके बद्धाञ्जलि होकर मेरी भयङ्कर गतिका विचारकर गद्गद

स्वरसे प्रार्थना करने लगे।

हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप।
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप॥
करिं दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि।
बिनय करत गदगद स्वर समुझि घोर गति मोरि॥

मेरे गुरुदेवने रुद्राष्टकसे श्रीशङ्करजीकी स्तुति की—हे गौरीनाथ! मैं योग, जप और पूजा कुछ नहीं जानता हूँ मैं तो सदा आपको प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो! जरा तथा जन्मके दुःख समूहोंसे जलते हुये मेरी रक्षा कीजिये। हे ईश्वर! हे शम्भो! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

न जानामि योगं जपं नैव पूजां।
नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं॥
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं।
प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो॥

ब्राह्मणकी प्रार्थनासे शङ्करजीने प्रसन्न होकर कहा कि यद्यपि इसने दारुण पाप किया है तथापि तुम्हारी साधुता देखकर मैं इसपर विशेष कृपा करूँगा। जन्म मृत्युका दुसह दुःख इसे व्याप्त नहीं होगा। श्रीशङ्करजीने मुझसे कहा—पहले तेरा जन्म श्रीअयोध्यापुरीमें हुआ। वहाँ तूने मन लगाके मेरी सेवा की। पुरीके प्रभाव और मेरे अनुग्रहसे तेरे हृदयमें रामभक्ति उत्पन्न होगी।

पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरें।
राम भगति उपजिहि उर तोरें॥

फिर मैं कालकी प्रेरणासे विन्ध्याचलमें जाकर सर्प हुआ। फिर कुछ काल बीतनेपर बिना ही परिश्रम मैंने वह शरीर त्याग दिया। हे हरिवाहन! मैं जो भी शरीर धारण करता उसे अनायास त्याग देता था, जैसे मनुष्य जीर्ण वस्त्र छोड़कर नवीन वस्त्र धारण कर लेता है।

जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान॥

हे गरुड़जी! मैंने अन्तिम शरीर ब्राह्मणका पाया। मैं ब्राह्मण शरीरमें बालकोंके साथ श्रीरामजीकी ही लीलायें करता था।

खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला।
करउँ सकल रघुनायक लीला॥

मेरे मनसे सारी वासनायें भाग गयीं। केवल श्रीरामजीके चरणोंमें लगन लग गयी।

मन ते सकल बासना भागी।
केवल राम चरन लय लागी॥

मेरी पुत्र, धन और सम्मान प्राप्तिकी प्रबल वासनायें समाप्त हो गयीं। एक अभिलाषा हृदयमें प्रबल हो गयी कि जब श्रीरामचरणारविन्दोंका दर्शन करूँ तब अपना जन्म लेना सफल हो।

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी।
एक लालसा उर अति बाढ़ी॥
राम चरन बारिज जब देखौं।
तब निज जन्म सफल करि लेखौं॥

घूमते घूमते मैंने सुमेरुपर्वतके शिखरपर वटच्छायामें विराजमान लोमशमुनिका दर्शन किया। उनके श्रीचरणोंमें प्रणाम करके मैंने दीन वचन कहा।

मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिरु नायउँ बचन कहेउँ अति दीन॥

लोमशमुनि मुझे निर्गुण मतका उपदेश देने लगे। मैंने उनके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—हे मुनीश्वर! मुझे सगुण ब्रह्मकी उपासना कहिये। हे मुने! मेरा मन रामभक्तिरूपी जलमें मछली होकर रमण कर रहा है। इस स्थितिमें उससे अलग कैसे

हो सकता है? एतावता आप मुझे वही उपदेश करें जिससे मैं अपनी आँखोंसे अपने आराध्य परम प्रेमास्पद श्रीरामजीका दर्शन कर सकूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! पहले नेत्र भरकर श्रीकोसलेन्द्र रघुनन्दनको देखकर तब निर्गुण उपदेश सुनूँगा।

बिबिधि भाँति मोहि मुनि समुझावा।
निर्गुन मत मम हृदयँ न आवा॥
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा।
सगुन उपासन कहहु मुनीसा॥
राम भगति जल मम मन मीना।
किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना॥
सोइ उपदेस कहहु करि दाया।
निज नयनन्हि देखौं रघुराया॥
भरि लोचन बिलोकि अवधेसा।
तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा॥
मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा।
खंडि सगुन मत अगुन निरूपा॥

सगुन उपासनाके पक्षमें मेरे हठके कारण श्रीलोमशजीको क्रोध आ गया। मुनिके क्रोधपूर्वक ज्ञान निरूपणमें मैं अनेकों प्रकारके अनुमान करने लगा। बिना द्वैत बुद्धिके क्रोध कैसा? बिना अज्ञानके क्या द्वैत बुद्धि हो सकती है? मायाके वश रहनेवाला परिछिन्न जड़ जीव क्या ईश्वरके समान हो सकता है? सबका हित चाहनेसे क्या कभी दु:ख हो सकता है? जिसके पास स्पर्शमणि है उसके पास क्या दरिद्रता रह सकती है? परद्रोही क्या निर्भय हो सकते हैं? कामी क्या कलङ्करहित हो सकते हैं? ब्राह्मणका अनहित करनेसे क्या वंश रह सकता है? आत्मज्ञान होनेपर क्या आसक्तिपूर्ण कर्म हो सकते हैं? कुसङ्गसे क्या सुबुद्धि उत्पन्न हो सकती है? परस्त्रीगामी क्या उत्तम गति पा सकता है? परमात्मतत्त्ववेत्ता क्या कभी संसृतिके चक्करमें पड़ सकता है? हरिनिन्दक क्या कभी सुखी हो सकता है? बिना नीति जाने क्या राज्य रह सकता है? श्रीहरिका चरित्र वर्णन करनेसे क्या पाप रह सकता है? बिना पुण्यके क्या पवित्र यश प्राप्त हो सकता है? बिना पापके क्या कोई अपयश पा सकता है? हरिभक्तिके समान क्या कोई लाभ है? मानव शरीर मिलने पर भी हरिभजन न हो इससे बढ़कर क्या कोई दूसरी हानि हो सकती है? चुगलखोरीके समान क्या कोई पाप है? और दयाके समान क्या कोई धर्म है? मुनिने क्रोध करके मुझे चाण्डाल पक्षी कौआ होने का श्राप दे दिया। मैंने श्रापको आदरपूर्वक स्वीकार कर लिया।

सठ स्वपच्छ तव हृदयँ बिसाला।
सपदि होहि पच्छी चंडाला॥
लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई।
नहिं कछु भय न दीनता आई॥

श्रीशङ्करजीने बहुत सुन्दर निरूपण किया है—हे उमा! जो श्रीरामजीके चरणोंके प्रेमी हैं और काम, अभिमान तथा क्रोधसे रहित हैं, वे जगत्‌को निज प्रभुमय देखते हैं, फिर वे विरोध किससे करें?

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

श्रीकाकजी कहते हैं—हे गरुड़! मेरे स्वामी करुणासागर श्रीरामजीने मुनिकी मतिको भोरी करके मेरे प्रेमकी परीक्षा ली।

कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी।
लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी॥

पुनः मुझे मन, कर्म, वचनसे अपना अनन्य भक्त जाना तब प्रभुने मुनिकी मति को पलट दिया। मुनिने मुझे स्वयं बुलाकर प्रसन्न होकर श्रीराममन्त्र की दीक्षा दी। बालकरूप श्रीरामका ध्यान बताया।

मम परितोष बिबिधि बिधि कीन्हा।
हरषित राममंत्र तब दीन्हा॥
बालकरूप राम कर ध्याना।
कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना॥

मुझे श्रीरामचरिमानस पढ़ाया और उन्होंने मुझे यह भी बताया कि मैंने श्रीशङ्करजीसे श्रीरामचरितमानस पाया। मुनिने कृपापूर्वक मुझे अनेकों आशीर्वाद दिये।

सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान।
कामरूप इच्छामरन ग्यान बिराग निधान॥
जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत।
ब्यापिहि तहँ न अबिद्या जोजन एक प्रजंत॥
काल कर्म गुन दोष सुभाऊ।
कछु दुख तुम्हहि न ब्यापिहि काऊ॥
राम रहस्य ललित बिधि नाना।
गुप्त प्रगट इतिहास पुराना॥
बिनु श्रम तुम्ह जानब सब सोऊ।
नित नव नेह राम पद होऊ॥
जो इच्छा करिहहु मन माहीं।
हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥

हे मतिधीर गरुड़! मुनिका आशीर्वाद सुनकर **'द्विबद्धं सुबद्धं भवति'** इस न्यायके अनुसार मेरे स्वामीने भी आकाशवाणीसे मुनिके आशीषको पक्का कर दिया। फिर मैं मुनिके चरणोंमें प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक इस आश्रममें आगया। हे पक्षिसम्राट्! मुझे यहाँ निवास करते सत्ताइस कल्प व्यतीत हो गये।

इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा।
बीते कलप सात अरु बीसा॥

मैं यहाँ रहकर सदा श्रीरामजीके गुणोंका वर्णन करता हूँ। उसको श्रवण करनेके लिए आदरपूर्वक सुजान पक्षी आते हैं। मेरे इष्टदेव श्रीरामजी जब जब श्रीअयोध्याजीमें अपने भक्तोंके लिए अवतार धारण करते हैं तब तब मैं श्रीरामके नगरमें रहकर उनकी शिशुलीलाका दर्शन करके सुखानुभव करता हूँ।

जब जब अवधपुरीं रघुबीरा।
धरहिं भगत हित मनुज सरीरा॥
तब तब जाइ राम पुर रहऊँ।
सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ॥

हे गरुड़जी! मैंने वह सारी कथा आपको सुनादी जिस कारणसे मैंने कौएका शरीर पाया।

श्रीगरुड़जीने पूछा—हे गोसाईं! सन्त, मुनि, वेद और पुराण यह कहते हैं कि ज्ञानके समान दुर्लभ कुछ नहीं है। वही ज्ञान लोमश मुनिने आपसे कहा; परन्तु आपने भक्तिके समान उसका आदर नहीं किया। ज्ञान और भक्तिमें कितना अन्तर है? यह कृपा करके बतावें। आप बतानेमें प्रभु हैं—समर्थ हैं।

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता।
सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता॥

श्रीकाकजीने कहा—भक्ति और ज्ञान दोनों संसारजन्य क्लेशोंका हरण करते हैं एतावता

दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है।

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा॥

हे नाथ! सन्त लोग कुछ भेद कहते हैं, उसे आप सावधान होकर सुनें।

ज्ञान आदि पुरुष वर्ग हैं। माया और भक्ति दोनों नारि वर्ग हैं। मायाका प्रभाव ज्ञानीपर तो सम्भव है; परन्तु भक्ति पर सम्भव नहीं है क्योंकि दोनों भगवान्‌की स्त्रियाँ हैं। भगवान्‌को भक्ति प्यारी है। इसलिए माया भक्तिको देखकर सकुचा जाती है वहाँ कुछ अपनी प्रभुता नहीं कर सकती। यह विचार करके जो विज्ञानी मुनि हैं अर्थात् अनुभवी मुनि हैं वे सब सुखोंकी खानि भक्तिकी ही याचना करते हैं।

भगतिहि सानुकूल रघुराया।
ताते तेहि डरपति अति माया॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी।
बसइ जासु उर सदा अबाधी॥
तेहि बिलोकि माया सकुचाई।
करि न सकइ कछु निज प्रभुताई॥
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी।
जाचहिं भगति सकल सुख खानी॥

ज्ञान और भक्तिका और भी भेद सुनें। जीव ईश्वरका अंश है, अतः अविनाशी, चेतन, निर्मल स्वभावसे ही सुखकी राशि है।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी॥

यह जीव अज्ञानके कारण बँध गया। देहमें अहंभावका होना ग्रन्थि है, यह झूठी है; क्योंकि चेतनसे इतर कोई जड़ वस्तु है ही नहीं तब गाँठ किससे पड़े, परन्तु ज्ञानके साक्षात्कार किये बिना छूटना कठिन है उसके लिए दीपककी आवश्यकता है। ग्रन्थि छूटनेके लिए प्रकाश चाहिए, आँखोंको भी ठीक होना चाहिए। जीवके हृदयमें अज्ञानरूपी अन्धकार विशेष रूपसे छा रहा है इसलिए ग्रन्थि दीखती ही नहीं फिर छूटे कैसे? मोहका अन्धकार दूर करनेके लिए ज्ञान दीपक चाहिए। दीपकको बत्ती चाहिए, घी चाहिए, पात्र चाहिए और घीके लिए गाय होनी चाहिए। श्रीरामजीकी कृपासे यदि सात्त्विक श्रद्धारूपी सुन्दर गौ हृदयभवनमें आकर रहे। अनेक जप, तप, व्रत, यम और नियम आदि शुभ धर्म तथा सदाचार रूपी तृणोंको—घासको जब वह गौ चरे और आध्यात्मिक भावरूपी वत्सको पाकर पेन्हावे। गौ चाहे उच्छृंखल हो या सरल हो उसके पिछले चरणोंमें बन्धन लगाकर ही दोहन करना चाहिए उस बन्धनको 'नोई' कहते है। सांसरिक विषयोंसे निवृत्ति ही यहाँ नोई है। दूध दुहनेका बर्तन विश्वास है। निर्मलमन जो अपने वशमें हो वही दोग्धा अहीर है। परम धर्ममय दूध दुहकर उसे निष्कामभावरूपी अग्निपर अच्छी तरह पकावे। तदनन्तर क्षमा और सन्तोषरूपी हवासे उस पके हुए दूधको ठण्डा करे। तदनन्तर धैर्य और शम—मनका निग्रहरूपी जामन देकर उसे जमावे। मुदितारूपी कमोरी में विचाररूपी मन्थान दण्डसे, दम इन्द्रियदमनरूपी खम्भे आदिके सहारे सत्य और सुन्दरवाणी रूपी रस्सी लगाकर उसका मन्थन करे। मथकर उसमेंसे निर्मल, सुन्दर और अत्यन्त पवित्र वैराग्यरूपी मक्खन निकाल ले। उसको अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह

अर्थात् योगरूपी अग्नि प्रकट करके उस अग्निमें शुभाशुभ कर्मरूपी ईंधन लगा दे अर्थात् समस्त कर्मोंको योगरूपी अग्निमें भस्म कर दे। जब वैराग्यरूपी मक्खनका ममतारूपी मल जल जाय तब ज्ञानरूपी घीको निश्चयात्मिका बुद्धिसे ठण्डा करे। तब विज्ञानरूपिणी बुद्धि उस ज्ञानरूपी निर्मल घीको पाकर उसे चित्तरूपी दिये में भरे। समताको दीवट बनाकर उस पर उसको दृढ़तापूर्वक रखे। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्थाएँ और सत्त्व, रज और तम तीनों गुणरूपी कपाससे तुरीयावस्थारूपी रुईको निकालकर फिर उसे सँवारकर उसकी सुन्दर कड़ी बत्ती बनावे। इस प्रकार तेजकी राशि विज्ञानमय दीपकको जलावे जिसके समीप जाते ही मद आदि सब पतङ्गे स्वयं जल जायेंगे। '**सोऽहमस्मि**' **सः**—वह, **अहम्**—मैं, **अस्मि**—हूँ; **सः** अर्थात् वही ईश्वरअंश जो ऊपर कहा गया है, जो इस जीवका शुद्ध स्वरूप है। भ्रमकी निवृत्ति इतने साधनोंके पश्चात् हो जानेपर जीव यह निश्चय करता है कि मैं तो शुद्ध स्वरूप ईश्वरका अंश, चेतन, अमल हूँ। यह अखण्डवृत्ति ही ज्ञानदीपककी परमप्रचण्ड दीप शिखा है। इस प्रकार आत्मानुभव सुखका सुन्दर प्रकाश फैलाता है तब संसारके मूल भेदभावका नाश हो जाता है और अविद्याके परिवार मोह आदिका गाढान्धकार नष्ट हो जाता है। तब वही विज्ञानरूपिणी बुद्धि प्रकाशको पाकर हृदय भवनमें बैठकर उस ग्रन्थिको खोलती है। यदि वह ग्रन्थिको खोलने पावे तब जीव कृतार्थ हो जाय; परन्तु ग्रन्थिके खोलते समय माया पुनः अनेकों विघ्न करती है। वह बहुत सी ऋद्धि-सिद्धियोंको भेजती है जो आकर बुद्धिको लोभ दिखाती हैं। वे कल बल छल करके समीप जाती हैं और अपने अञ्चल बातसे ज्ञानदीपकको बुझा देती हैं। यदि बुद्धि परम सयानी है तो वह ऋद्धि सिद्धियोंको अमङ्गल करने वाली जानकर उनकी ओर देखती ही नहीं। इस प्रकार यदि मायिक विघ्नोंसे ऋद्धि सिद्धि आदिसे भी बुद्धिको बाधा न हुई तो देवता उपद्रव करते हैं। इन्द्रियोंके द्वार हृदयरूपी घरके अनेकों गवाक्ष हैं। वहाँ प्रत्येक गवाक्षोंपर—झरोखोंपर देवता थाना किये बैठे हैं। वे ज्यों ही विषयरूपी हवाको आते देखते हैं, तत्काल हठपूर्वक कपाट उघाड़ देते हैं। ज्यों ही वह विषयरूपी हवा हृदयरूपी घरमें जाती हैं त्यों ही वह विज्ञानरूपी दीपक बुझ जाता है। ग्रन्थि भी छूट नहीं पायी और वह प्रकाश भी समाप्त होगया। विषयरूपी हवासे बुद्धि व्याकुल होगयी। इन्द्रियद्वार पर विराजमान देवताओंको ज्ञान नहीं सुहाता, क्योंकि उनकी विषय भोगोंमें सदा ही प्रीति रहती है। बुद्धिको भी विषयरूपी हवाने भोरी कर दिया। तब फिर उस ज्ञान दीपकको पुनः कौन जलावे?

बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी।
तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥

ज्ञान कहनेमें कठिन, समझनेमें कठिन और साधनेमें भी कठिन है। यदि घुणाक्षरन्यायसे कदाचित् यह ज्ञान हो भी जाय तो फिर उसे सुरक्षित रखनेमें अनेकों बाधाएँ हैं।

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥

श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं—हे गरुड़जी!

ज्ञानका मार्ग कृपाणकी धारके समान है यदि यह मार्ग निर्विघ्न निबह जाय तो मोक्ष प्राप्त होता है। हे गोसाईं! उस अत्यन्त दुर्लभ मुक्तिपदको बुद्धिमान् हरिभक्त देने पर भी नहीं लेते हैं।

अस बिचारि हरि भगत सयाने।
मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥

हे उरगारि! सेवक सेव्यभावके बिना भवसन्तरण नहीं हो सकता। एतावता ऐसा सिद्धान्त समझकर श्रीरामचरणारविन्दोंका भजन करना चाहिए।

सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥

हे गरुड़जी! मैंने ज्ञानका सिद्धान्त कहा अब भक्तिमणिकी महिमा सुनें। श्रीरामजीकी भक्ति सुन्दर चिन्तामणि है। यह मणि जिसके हृदयके अन्दर बसती है वह दिनरात प्रकाशरूप रहता है। उसको दीपक, घृत और बत्ती कुछ भी नहीं चाहिए। दूसरे भक्तिमणिके रहनेपर मोह दारिद्र्य निकट नहीं आता है। तीसरे लोभरूपी हवा उस मणिमय दीपकको बुझा नहीं सकती। श्रीरामभक्तिरूपी मणि जिसके हृदयमें रहती है उसको स्वप्नमें भी लेशमात्र दुःख नहीं होता। संसारमें वे ही चतुर शिरोमणि हैं जो भक्तिमणिके लिए सुन्दर यत्न करते हैं।

राम भगति मनि उर बस जाकें।
दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं।
जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥

वेद पुराण पर्वत हैं श्रीरामजीकी अनेक प्रकारकी कथाएँ उन पर्वतोंकी खाने हैं। सन्तपुरुष मर्मी—खानोंके रहस्योंको जाननेवाले हैं और सुन्दर बुद्धि खोदने वाली कुदाल है। ज्ञान और वैराग्य ये दो उनके नेत्र हैं। जो प्राणी उसे भक्तिभावके साथ खोजता है वह सब सुखोंकी खानि इस भक्तिरूपी मणिकी उपलब्धि कर लेता है।

पावन पर्बत बेद पुराना।
राम कथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी।
ग्यान बिराग नयन उरगारी॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी।
पाव भगति मनि सब सुख खानी॥

हे गरुड़जी! मेरे मनमें ऐसा विश्वास है कि श्रीरामजीके दास श्रीरामजीसे भी बढ़कर हैं।

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा।
राम ते अधिक राम कर दासा॥

श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं—वेद समुद्र हैं, ज्ञान मन्दराचल और सन्त देवता हैं जो उस समुद्रको मथकर कथारूपी अमृत निकालते हैं। उस कथामृतमें भक्तिरूपी मधुरता बसी रहती है।

ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं॥

वैराग्यरूपी ढालसे अपना संरक्षण करते हुए ज्ञानरुपी तलवारसे मद, लोभ और मोहरूपी शत्रुओंका नाश करके जो विजय प्राप्त करती है वह हरिभक्ति ही है। हे खगेश! इसे विचारकर देखिए।

बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि॥

श्रीकाकभुशुण्डिजीसे श्रीगरुड़जी पुनः स्नेहपूर्वक कहते हैं—हे नाथ! मुझे अपना सेवक जानकर मेरे सात प्रश्नोंका उत्तर दें।

(क) सबसे दुलर्भ कौनसा शरीर है? (ख) सबसे बड़ा सुख कौन है? (ग,घ) सन्त असन्तका मर्म और उनका सहज स्वभाव वर्णन करें। (ङ) सबसे महान् पुण्य कौन है? (च) सबसे भयङ्कर पाप कौन है? (छ) मानसरोगोंको समझाकर कहिए। श्रीकाकभुशुण्डिजीने उत्तर दिया—मनुष्य शरीरके समान कोई शरीर नहीं है चराचर सभी जीव उसकी याचना करते हैं। मनुष्य शरीर नरक, स्वर्ग और मोक्षकी सीढ़ी है तथा ज्ञान, वैराग्य और भक्तिको देनेवाला है। दरिद्रताके समान संसारमें कोई दु:ख नहीं है। सन्तोंके मिलनके समान विश्वमें कोई सुख नहीं है। मन, वचन और शरीरसे परोपकार करना यह सन्तोंका सहज स्वभाव है।

पर उपकार बचन मन काया।
संत सहज सुभाउ खगराया॥

सन्त दूसरोंकी भलाईके लिए दु:ख सहते हैं और अभागे असन्त दूसरोंको दु:ख पहुँचानेके लिए। कृपालु सन्त भोजवृक्षके समान परोपकारके लिए अपनी खालतक उधड़वा लेते हैं; दुष्ट लोग सन की भाँति दूसरोंको बाँधते हैं और उन्हें बाँधनेके लिए अपनी खाल खिंचवाकर विपत्ति सहकर मर जाते हैं।

भूर्ज तरू सम संत कृपाला।
परहित निति सह बिपति बिसाला॥
सन इव खल पर बंधन करई।
खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई॥

वेदोंमें अहिंसाको परमधर्म माना गया है और परनिन्दाके समान भारी पाप नहीं है।

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा।
पर निंदा सम अघ न गरीसा॥

जो अभिमानी जीव देवताओं और वेदोंकी निन्दा करते हैं वे रौरव नरकमें पड़ते हैं। सन्तोंकी निन्दा करनेवाले उल्लू होते हैं। जो सबकी निन्दा करते हैं वे चमगादुर होते हैं। हे तात! अब मानस रोग सुनिये। सब रोगोंकी जड़ मोह है। काम वात है, लोभ कफ है और क्रोध पित्त है जो सदा छाती जलाता रहता है। यदि कहीं ये तीनों भाई वात, पित्त और कफ प्रीति करलें, तो दु:ख देनेवाला सन्निपात रोग हो जाय।

काम बात कफ लोभ अपारा।
क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई।
उपजइ सन्यपात दुखदाई॥

ममता दाद है, ईर्ष्या खुजली है, हर्ष विषाद गलेके रोग—कण्ठमाला आदि हैं। दूसरोंके सुखको देखकर जो जलन होती है वही क्षयी है। दुष्टता और मनकी कुटिलता कुष्ट रोग है।

ममता दादु कंडु इरषाई।
हरष बिषाद गरह बहुताई॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई।
कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई॥

इस प्रकार अनेक मानसरोगोंका वर्णन किया। अब उन रोगोंके नाशका उपाय बताते हैं। सद्गुरु वैद्यके वचनमें विश्वास हो। विषयोंकी आशा न करें यही परहेज है। श्रीरामभक्ति ही सञ्जीवनी जड़ी है। श्रद्धासे परिपूर्ण बुद्धि अनुपान है। इस प्रकार संयोग हो तो मानसरोग भलेही नष्ट हो जायँ, अन्यथा अनेकों उपायोंसे भी नहीं जाते। जब हृदयमें वैराग्यका बल बढ़ जाय तब मनको रोग रहित समझना चाहिए।

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई।
जब उर बल बिराग अधिकाई॥

श्रीशङ्करजी, ब्रह्मा, शुकदेवजी, सनकादि और नारद आदि ब्रह्मविचारमें परम कुशल जो मुनि हैं सबका मत यही है कि श्रीरामपदारविन्दोंमें स्नेह करना चाहिए।

सिव अज सुक सनकादिक नारद।
जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥
सब कर मत खगनायक एहा।
करिअ राम पद पंकज नेहा॥

जलके मन्थन करनेसे चाहे घी निकल जाय, बालूके पेरनेसे चाहे तेल निकल आवे; परन्तु श्रीहरिके भजनके बिना भवसन्तरण नहीं हो सकता। यह सिद्धान्त अटल है।

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥

श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं—यद्यपि मैं सब प्रकारसे अधम हूँ तथापि आज मैं धन्य हूँ, अत्यन्त धन्य हूँ, जो श्रीरामजीने मुझे अपना 'निजजन' जानकर सन्त समागम दिया।

आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब बिधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन॥

हे गरुड़जी! मेरे स्वामीके ऐसा स्वभाव न कहीं सुनता हूँ, न देखता हूँ अतः उनके समान किसको समझूँ।

अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ।
केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥

श्रीरामजीके भजनके बिना कोई भी तर नहीं सकता, अतः मैं अपने स्वामी श्रीरामजीको बार बार प्रणाम करता हूँ। जिनकी शरण जाने पर मेरी तरह पापराशि भी शुद्ध हो जाते हैं, उन अविनाशीको मैं प्रणाम करता हूँ।

तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी।
राम नमामि नमामि नमामी॥
सरन गएँ मो से अघ रासी।
होहिं सुद्ध नमामि अबिनासी॥

श्रीकाकभुशुण्डिजी कथाका उपसंहार करते हुये कहते हैं—जिनका नाम भवरोगकी औषधि है और भयङ्कर त्रयशूलको हरनेवाला है, वे कृपालु श्रीरामजी मुझपर और आपपर सदा अनुकूल रहें।

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल॥

श्रीगरुड़जी स्नेहपूर्वक बोले—हे नाथ! मैं मोहरूपी समुद्रमें डूब रहा था आपने जहाजरूप होकर मुझे बचा लिया। मैं आपका प्रत्युपकार नहीं कर सकता, अतः मैं आपके चरणोंमें बारबार वन्दना करता हूँ।

मो पहिं होइ न प्रति उपकारा।
बंदउँ तव पद बारहिं बारा॥

सन्तोंका हृदय मक्खनके समान होता है, ऐसा कवियोंने कहा है; परन्तु उन्होंने कहना नहीं जाना, क्योंकि मक्खन तो अपनेको ताप मिलनेसे पिघलता है और परम पावन सन्त दूसरोंके दुःखसे द्रवित होते हैं।

संत हृदय नवनीत समाना।
कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता।
पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

हे नाथ! मुझे सदा अपना दास ही जानियेगा। इस प्रकार बार बार कहकर श्रीभुशुण्डिजीके चरणोंमें सस्नेह प्रणाम करके और हृदयमें श्रीरामजीको

धारण करके धीरबुद्धि श्रीगरुड़जी वैकुण्ठको चले गये।

तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर।
गयउ गरुड़ बैकुंठ तब हृदयँ राखि रघुबीर॥

श्रीगौरीनाथ कहते हैं—हे गिरिजे! जो मनुष्य विश्वास मानकर यह कथा निरन्तर सुनते हैं, वे बिना ही प्रयास मुनिदुर्लभ हरिभक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास।
जे यह कथा निरंतर सुनहिं मानि बिस्वास॥

हे गिरिजे! वह देश धन्य है जहाँ श्रीगङ्गा हैं, वह स्त्री धन्य है जो पातिव्रत धर्मपालन करती है।

धन्य देस सो जहँ सुरसरी।
धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी॥

हे उमा! वह कुल धन्य है, जगद्वन्द्य है और परमपावन है जिसमें विनम्र और अनन्य रामभक्त पुरुष उत्पन्न होते हैं।

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥

हे पार्वति! श्रीरामभक्तिके सच्चे अधिकारी वे ही हैं जिनको सत्सङ्गति अति प्यारी है।

राम कथा के तेइ अधिकारी।
जिन्ह कें सतसंगति अति प्यारी॥

हे शैलनन्दिनि! जो श्रीरामचरणरति चाहता हो किंवा निर्वाणपद चाहता हो वह इस कथामृतको भावपूर्वक अपने श्रवणपुटकसे पान करे।

राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान॥

श्रीशङ्करजी कथाका उपसंहार करते हुये कहते हैं—हे गिरिजे! श्रीरामभक्ति प्राप्त करनेके मार्गस्वरूप रामचरितमानसमें सात रुचिर सोपान—सीढ़ियाँ हैं। जिस प्राणीपर श्रीहरिकी अतिशय कृपा होती है वही इस मार्ग पर पैर रखता है। कपटका परित्याग करके जो इस कथाको गाते हैं, उनकी मनः कामना सिद्ध हो जाती है।

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना।
रघुपति भगति केर पंथाना॥
अति हरि कृपा जाहि पर होई।
पाउँ देइ एहिं मारग सोई॥
मन कामना सिद्धि नर पावा।
जे यह कथा कपट तजि गावा॥

यह कथा सुनकर श्रीपार्वतीजी बहुत प्रसन्न हुयीं और वे बोलीं—हे नाथ! आपकी कृपासे मेरा सन्देह नष्ट होगया और श्रीरामचरणोंमें अभिनव अनुराग उत्पन्न होगया। आपकी कृपासे मैं कृतकृत्य होगयी। मेरे हृदयमें दृढ़ रामभक्ति समुत्पन्न होगयी। मेरे अशेषक्लेश नष्ट होगये।

सुनि सब कथा हृदय अति भाई।
गिरिजा बोली गिरा सुहाई॥
नाथ कृपाँ मम गत संदेहा।
राम चरन उपजेउ नव नेहा॥
मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस॥

श्रीयाज्ञवल्क्यजी कहते हैं—यह पावन श्रीशङ्करपार्वतीका संवाद सुख सम्पादक है और विषादनाशक है, भवभञ्जन है, सन्देह गञ्जन है, भक्तजन मनरञ्जन है और सज्जनप्रिय है। संसारके समस्त रामोपासकोंको इसके समान प्रिय कोई पदार्थ नहीं हो सकता है। हे भरद्वाजजी!

श्रीरामजीकी कृपासे मैंने यह सुहावन पावन चरित्र यथामति गाया है।

यह सुभ संभु उमा संबादा।
सुख संपादन समन बिषादा॥
भव भंजन गंजन संदेहा।
जन रंजन सज्जन प्रिय एहा॥
राम उपासक जे जग माहीं।
एहि सम प्रिय तिन्ह कें कछु नाहीं॥
रघुपति कृपाँ जथामति गावा।
मैं यह पावन चरित सुहावा॥

तीन वक्ताओंके उपसंहार वचनके पश्चात् कलिपावनावतार महान् भक्तकवि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज कहते हैं कि इस कलिकालमें योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत और पूजन आदि कोई दूसरा साधन नहीं है। बस, श्रीरामजीका ही स्मरण करना, श्रीरामजीका ही गुण गाना और नैरन्तर्येण श्रीरामगुणग्रामोंका श्रवण करना चाहिए।

एहिं कलिकाल न साधन दूजा।
जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि।
संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥

श्रीगोस्वामीजी अपने मनको सम्बोधित करते हुए कहते हैं—पतितपावन, भक्तवत्सल, श्रीरामजीको भजकर किसने परम गति नहीं प्राप्त की? गणिका, अजामिल, व्याध, गीध और गज आदि अनेकों दुष्टोंका उन्होंने उद्धार कर दिया। आभीर, यवन, किरात, खस, श्वपच आदि जो अतिशय पापरूप थे वे भी मात्र एकबार जिनका नामग्रहण करके परमपावन होगये उन रघुनन्दन रामचन्द्रजीको मैं प्रणति निवेदन करता हूँ।

पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—रघुवंशमें आभूषण स्वरूप श्रीरामचन्द्रजीका यह पावन चरित्र जो मनुष्य कहते, सुनते और गाते हैं, वे कलिकालके और अपने मनके मलको धोकर, अनायासेन श्रीरामजीके मङ्गलमय दिव्यधामको पधार जाते हैं। सम्पूर्ण रामचरितमानसकी तो बात ही क्या है इस ग्रन्थकी पाँच या सात चौपाइयोंको भी जो हृदयङ्गम कर लेते हैं तो उनके पाँच प्रकारकी अविद्याओंसे समुत्पन्न विकारोको श्रीरघुवर अपहरण कर लेते हैं।

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं॥
सत पंच चौपाईं मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अबिद्या पंच जनित बिकार श्री रघुबर हरै॥

श्रीरामजी परम सुन्दर हैं, सुजान हैं, कृपानिधान हैं और अनाथोंपर प्रेम करते हैं? इनके समान निष्काम हित करनेवाला और निर्वाणपद प्रदान करनेवाला अन्य कौन है? जिन श्रीरामजीकी लेशमात्र कृपासे मन्दमति तुलसीदासने भी परम विश्रामकी प्राप्ति कर ली, उन भक्तवत्सल श्रीरामजीके समान सर्व कर्तुं समर्थ स्वामी कहीं भी नहीं हैं।

सुंदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बानप्रद सम आन को॥
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदास हूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥

भक्तकवि श्रीगोस्वामीजी कार्पण्यतापूर्वक अपना

सम्बन्ध कहते हुये लिखते हैं—हे रघुवीर! मेरे समान कोई दीन नहीं है और आपके समान दीनोंका हित करने वाला भी कोई नहीं है। ऐसा विचार कर, हे रघुवंशमणि! आप मेरे विषम भवसङ्कटका अपहरण कर लीजिये।

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर॥

श्रीगोस्वामीजी ग्रन्थके अन्तमें याचना करते हुये अपनी मधुर अभिलाषाकी अभिव्यक्ति करते हैं—हे रघुनाथ! जिस प्रकार कामीके हृदयमें कामिनीके रूपका ध्यान रहता है, उसी प्रकार मेरे मनमें आपके रूपका ध्यान होता रहे। हे श्रीराम! जिस प्रकार लोभीको दामसे सन्तोष नहीं होता, उसी प्रकार हम आपके पावन नामका कितना ही जप करें; किन्तु नामजपसे हमारी तृप्ति न हो।

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

श्रेष्ठ कवि देवाधिदेव महादेवने पहले जिस दुर्गम रामायणकी—श्रीरामचरितमानसकी श्रीमान् रघुनन्दन रामचन्द्रके श्रीचरणकमलोंमें अनपायिनी भक्ति होनेके लिए रचनाकी थी, उस रामायणको श्रीरघुनाथजीके नाममें निरत मानकर अपने अन्तःकरणके गाढान्धकारको नष्ट करनेके लिए तुलसीदासने इस श्रीरामचरिमानसके रूपमें भाषाबद्ध किया।

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥

श्रीगोस्वामीजी अन्तिम पद लिखते हुये कहते हैं—यह श्रीरामचरितमानस पुण्यमय, पापापहारक, सदा कल्याणकारक, विज्ञान भक्तिप्रदायक, मायामोहमलापहारक, परमनिर्मल प्रेमरूपी जलसे लबालब भरा हुआ तथा मङ्गलमय है। जो भक्तिपूर्वक इस मानससरोवरमें अवगाहन करते हैं, वे संसाररूपी भास्करकी प्रखर किरणोंसे सन्दग्ध नहीं होते हैं।

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

(नवाहपारायण, नवाँ विश्राम)

(श्रीउत्तरकाण्ड समाप्त)

श्रीरामायणजीकी आरती

आरति श्रीरामायनजी की।
कीरति कलित ललित सिय पी की॥
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद।
बालमीक बिग्यान बिसारद॥
सुक सनकादि सेष अरु सारद।
बरनि पवनसुत कीरति नीकी॥
गावत बेद पुरान अष्टदस।
छओ सास्त्र सब ग्रंथन को रस॥
मुनि जन धन संतन को सरबस।
सार अंस संमत सबही की॥
गावत संतत संभु भवानी।
अरु घटसंभव मुनि बिग्यानी॥
ब्यास आदि कबिबर्ज बखानी।
कागभुसुंडि गरुड के ही की॥
कलिमल हरनि बिषय रस फीकी।
सुभग सिंगार भक्ति जुबती की॥
दलन रोग भव मूरि अमी की।
तात मात सब बिधि तुलसी की॥